व्युत्पत्ति विज्ञान और आचार्य यास्क

(Etymology and Acharya Yaska)

डॉ० रामाशीष पाण्डेय

व्युत्पत्ति विज्ञान और आचार्य यास्क
Etymology and Acharya Yaska

No-000643

डॉ. रामाशीष पाण्डेय
एम.ए. (संस्कृत एवं हिन्दी) पी-एच.डी., डी.लिट्.
साहित्य, व्याकरण एवं वेदाचार्य
बिहार शासन द्वारा वैदिक साहित्य पुरस्कार से सम्मानित
आचार्य एवं अध्यक्ष - संस्कृत विभाग
मारवाड़ी महाविद्यालय, रांची
रांची विश्वविद्यालय, रांची

प्रकाशक
प्रबोध संस्कृत प्रकाशन
हरमू, रांची (बिहार)

प्रकाशक
प्रबोध संस्कृत प्रकाशन
हरमू , राँची (बिहार)

© लेखक

संस्करण - द्वितीय 1999 ई.

मूल्य : 450/-

व्युत्पत्ति विज्ञान और आचार्य यास्क
Etymology and Acharya Yaska

डॉ. रामाशीष पाण्डेय

मुद्रक : आशा प्रिंटिंग प्रेस,कडरू,(अरगोड़ा रेलवे स्टेशन के नजदीक)
राँची-834002 फोन न0. 306112

समर्पण

पूज्य पिता स्वर्गीय पं० श्री सिद्धेश्वर पाण्डेय,
जिनकी पंचत्व-प्राप्ति तिथि-6.2.1991है,
तथा
पूज्या धर्ममाता (सास) स्वर्गीया श्रीमती सुन्दरी देवी,
जिनकी पंचत्व-प्राप्ति तिथि 18.6.1996 है,
को
सश्रद्ध समर्पित ।

रामाशीष पाण्डेय

Publisher
Prabodh Sanskrit Prakashan
Harmu, Ranchi (Bihar)

© Lekhaka

Edition :- 2nd - 1999

Price : 450/-

Etymology and Acharya Yaska

by

Dr. Ramashish Pandey

Printer : ***ASHA PRINTING PRESS, KADRU,(NEAR ARGORA RAILWAY STATION) RANCHI-834002 Ph. 306112.***

प्राक्कथन

निर्वचन शब्दों के अर्थ प्रतिपादन की वह प्रक्रिया है जिससे शब्दों में निहित समग्र अर्थों के अभिव्यक्त होने की स्थितियों का पता लगाया जाता है। किसी भी शब्द के सम्बन्ध में निःशेष कथन या समग्र विचार निर्वचन के अन्तर्गत समाहित हैं। निर्वचन के लिए निरुक्त, व्युत्पत्ति, व्याख्या आदि शब्दों का प्रचलन भारतीय साहित्य में देखा जाता है। निरुक्त तथा निर्वचन में अर्थगत या शब्दगत कोई तात्त्विक भेद नहीं है। व्युत्पत्ति एवं व्याख्या यद्यपि निर्वचन के लिए कहीं-कहीं प्रयुक्त होते हैं लेकिन निर्वचन के समग्र उद्देश्यों का प्रकाशन इन शब्दों से अभिव्यक्त नहीं होता। निर्वचन के लिए इन सारे शब्दों का प्रचलन इस अर्थ में उसके रूढ़ होने का परिणाम है।

वेद का शाब्दिक अर्थ ज्ञान है। वेद ज्ञान की आधारशिला पर आधारित सम्यक् ज्ञान प्रतिपादन में निरत है। मन्त्र एवं ब्राह्मण भाग को वेद के अन्तर्गत मानने पर संहिताओं के अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् भी इसमें समाविष्ट हैं। वेद समग्र ज्ञान. लाभ. विचार एवं सत्ता का प्रतिपादक तो है ही यह भारतीय संस्कृति का अमूल्य धरोहर है। आर्यों की वैदिक सभ्यता का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने वाला वेद उनके विकसित मस्तिष्क को भी प्रकाशित करता है। वैदिक संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में है। उस समय का साहित्य विश्व की किसी दूसरी भाषाओं में लगभग उपलब्ध नहीं होता। यह कहना असंगत नहीं होगा कि जिस समय विश्व में सभ्यता का उदय भी नहीं हुआ था उस समय भारत में सभ्यता का प्रकाश जगमगा रहा था। भारतीय सभ्यता के प्रकाश की झलक के लिए वैदिक साहित्य का अनुशीलन अपेक्षित है। वैदिक साहित्य श्रुति परम्परा से सुरक्षित रहा है। जटा, माला, शिखा, रेखा आदि विभिन्न विकृतिपाठों के चलते मन्त्रों के स्वरूप में अन्तर तो आज तक नहीं आ सका लेकिन देश काल एवं पात्र के अनुरूप उनके अर्थों में अन्तर देखा जाने लगा। शब्दों की अनेकार्थता प्रसिद्ध है। एक ही शब्द विभिन्न प्रकार के अर्थों के प्रतिपादन की क्षमता से युक्त होता है। शब्दों में भिन्नार्थता की प्रवृत्ति विविध कारणों का परिणाम है। यह देखा जाता है कि विभिन्न आचार्यों ने वैदिक मन्त्रों के अर्थ को भी अनेक रूपों में देखने की चेष्टा की है। कुछ सम्प्रदाय विशेष के लोग तो परम्परागत अर्थों की जगह दूसरे अर्थों के प्रतिपादन में निरत हो गये हैं तथा उन्होंने वेद के अर्थों को असंगत सिद्ध करने का प्रयास भी किया है। वेद के ही कुछ शब्द ऐसे हैं जिनकी जानकारी के अभाव में उनका अर्थ करना असंभव है। वैसे शब्दों के संम्बन्ध में विरोधी विचार वालों का कहना है कि वेद के कुछ मन्त्र अनर्थक हैं।

वेद के मन्त्रों के सम्बन्ध में उठी हुई अर्थ विवक्षा विषयक आशंका को निरस्त करने के लिए उनके अर्थों का प्रकाशन आवश्यक था। शब्दों के अर्थों का प्रकाशन निर्वचन के माध्यम से ही संभव है। निर्वचन के चलते किसी शब्द में निहित समग्र अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं। साथ ही साथ किसी शब्द के अनेक अर्थों के कारण का भी पता चल जाता है। आचार्य यास्क का निरुक्त इस क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यद्यपि अनेक निरुक्तकार हो गये हैं लेकिन उनके निरुक्त ग्रन्थों की उपलब्धि आज नहीं होती। आचार्य यास्क ने अपने निरुक्त में लगभग चौदह पूर्ववर्ती एवं तत्कालीन निरुक्तकारों की चर्चा की है जिससे उन निरुक्तकारों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है तथा उनके निर्वचन सिद्धान्तों का पता चल जाता है।

निरुक्त में शब्दों के अर्थ प्रकाशन करने वाले कुछ सम्प्रदायों की भी चर्चा प्राप्त होती है। शब्दों के अर्थ प्रकाशन में - वैयाकरणा:, नैदाना:, याज्ञिका:, पूर्वेयाज्ञिका:, आत्मप्रवादा:, नैरुक्ता:, हारिद्रविका:, काठका:, ऐतिहासिका: आदि सम्प्रदायों का उल्लेख हुआ है। यास्क के समय उपर्युक्त सभी सम्प्रदाय शब्दों के अर्थ प्रकाशन में अपने-अपने सिद्धान्तों के लिए प्रसिद्ध थे। इन सभी सम्प्रदायों का कार्य यद्यपि शब्दों का निर्वचन करना नहीं था लेकिन शब्दों के अर्थ प्रकाशन में योग देना अवश्य था। अर्थ प्रकाशन के क्रम में कुछ निर्वचन अवश्य प्रस्तुत हो गये हैं।

वैयाकरणों का मूल प्रयोजन शब्दों का व्युत्पादन है। शब्दों के व्युत्पादन में भी अर्थ प्रकाशन होता है। इस सम्प्रदाय की एक सुदीर्घ परम्परा है जिसमें मुनित्रय का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है। पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि ने क्रमश: सूत्र, वार्तिक एवं भाष्य लिख कर इस सम्प्रदाय को आयामित किया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में उनके सारे सूत्र व्यवस्थित हैं। कात्यायन ने पाणिनि के सूत्रों पर ही वार्तिक की रचना की। पुन: पतञ्जलि ने पाणिनि के सूत्रों पर वृहद्भाष्य की रचना की जो महाभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में कई वैयाकरणों का भी उल्लेख किया है। निश्चय ही उनमें अधिकांश वैयाकरण पाणिनि के पूर्ववर्ती होंगे तथा कुछ समकालीन। वैयाकरणों के शब्द व्युत्पादन से अर्थ का प्रकाशन अवश्य होता है लेकिन नैरुक्तों की भांति शब्दों के समग्र अर्थों के प्रकाशन की चेष्टा वहां नहीं की जाती।

नैदान शब्द निदान से निष्पन्न है। निदान का अर्थ होता है- मूलान्वेषणकर्त्ता। शब्दों के मूलान्वेषण कर्त्ता नैदान के अन्तर्गत परिगणित होते हैं। शब्दों एवं शब्दों के अर्थों का मूल खोजना ही इनका मूल प्रयोजन है। उस मूलान्वेषण

में शब्दों के अर्थ प्रकाशन के साथ साथ निर्वचन भी हो जाते हैं। इस सम्प्रदाय का मूल प्रयोजन निर्वचन करना नहीं है। फलतः इसे निरुक्त सम्प्रदाय से किंचित भिन्न सम्प्रदाय माना जायगा।

याज्ञिक का अर्थ होता है यज्ञ से सम्बन्ध रखने वाला। वेद प्रयुक्त शब्दों के अर्थ का यज्ञपरक प्रतिपादन याज्ञिकों का मूल उद्देश्य होता है। अर्थ प्रकाशन उनका भी उद्देश्य है लेकिन उन अर्थों में यज्ञ से सम्बद्धता प्राधान्येन विवक्षित होती है। इस क्रम में शब्दों के निर्वचन भी हो जाते हैं लेकिन निर्वचन करना इनका मूल उद्देश्य नहीं होता। इसी प्रकार अर्थप्रतिपादित करने वाले अन्य सम्प्रदाय भी शब्दों का अर्थ प्रतिपादन करते हैं जिस क्रम में कुछ शब्दों के निर्वचन भी हो जाते हैं।

शब्दों के निर्वचन का उत्स ऋग्वेद से ही प्राप्त होता है। निर्वचन की यह धारा किसी न किसी रूप में आज तक प्रचलित है। शब्दों के अर्थों का अवबोध आज भी जिज्ञासा का विषय है। हम देखते हैं कि शब्दों के साथ कुछ वैसी क्रियाओं का प्रयोग कर दिया जाता है जिससे उस शब्दकी ध्वन्यात्मक, अर्थात्मक या किसी प्रकार की संगति स्पष्ट हो जाती है। वैदिक साहित्य से इस प्रकार के उद्धरण इस ग्रन्थ में यथा स्थान प्रदर्शित हैं। लैकिक संस्कृत के प्रसिद्धकवि कालिदास द्वारा क्षत्र शब्द को स्पष्ट करने के लिए-क्षतात् किल त्रायत उत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढ़ः (रघु. २/५३) में क्षत्र शब्द में क्षित्रैङ् धातुओं का संकेत स्पष्ट है। निर्वचन प्रक्रिया में भी इसी प्रकार धातुओं का सम्बन्ध स्पष्ट किया जाता है। समग्र संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के कुछ निर्वचन प्राप्त होते हैं।

निर्वचन पर अब तक जो कार्य हुए हैं वे सभी यास्क के निरुक्त से सम्बद्ध विविध टीकाओं, अनुवादों एवं समीक्षणों के रूप में प्राप्त हैं। निरुक्त पर किए गए कार्यों में पांचवीं शताब्दी के स्कन्दस्वामी की निरुक्त टीका सर्वप्राचीन है। इन्होंने निरुक्त के बारह अध्यायों की व्याख्या की है। अन्तिम दो अध्याय इनके द्वारा व्याख्यात नहीं हैं। स्कन्द की निरुक्तटीका निरुक्त के अर्थज्ञान का प्राचीनतम स्रोत है। तेरहवीं शताब्दी के दुर्गाचार्य ने निरुक्त पर विस्तृत टीका लिखी जो दुर्गवृत्ति के नाम से विख्यात हैं। निरुक्त पर इस प्रकार की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या दूसरी नहीं प्राप्त होती। निरुक्त के साथ दुर्गवृत्ति संस्कृत प्राकृत पुस्तकमाला बम्बई एवं वेंकेटेश्वर प्रेस से प्रकाशित है।। मनसुखराय मोर, कलकत्ता द्वारा दुर्गवृत्ति के प्रकाशन ने निरुक्त के अध्ययन अध्यापन को अत्यधिक आयामित किया। दुर्गवृत्ति के नाम से निरुक्त के चौदह अध्यायों पर यह वृत्ति प्रकाशित है लेकिन लगता है कि अन्तिम दो अध्यायों

की वृत्तियां इसमें कालान्तर की है। पन्द्रहवीं शताब्दी के आचार्य महेश्वर ने भी निरुक्त की टीका लिखी जो खण्डशः प्राप्त होती है। नीलकण्ठ गार्ग्य प्रणीत निरुक्तश्लोक वार्तिक में निरुक्त के विषयों का पद्यात्मक विवेचन हुआ है जो डॉ. विनयपाल द्वारा सम्पादित है। नीलकण्ठ गार्ग्य का समय बारहवीं शताब्दी का माना जाता है। दुर्गवृत्ति के आधार पर पण्डित मुकुन्द झा वक्सी ने संस्कृत टीका लिखी जो निर्णय सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित है। यह टीका संस्कृत माध्यम के अध्येताओं के लिए विशेष उपादेय है। उपर्युक्त टीकाकारों के अतिरिक्त भी अनेक टीकाकारों का उल्लेख प्राप्त होता है लेकिन उनमें अधिकांश की टीकायें सम्प्रति उपलब्ध नहीं होती।

पाश्चात्य विद्वानों में रॉथ ने जर्मन भाषा में निरुक्त की भूमिका लिखी एवं उसका अनुवाद प्रकाशित किया। इसकी भूमिका का अंग्रेजी अनुवाद डॉ. मैकिशन ने किया जिसका प्रकाशन १९१९ ई. में बम्बई विश्वविद्यालय से हुआ (वैदिक विब्लियोग्राफी-पृ.६०-दाण्डेकर) पाश्चात्य विद्वानों के उपर्युक्त कार्य लगभग अठारहवीं शताब्दी में सम्पन्न हुए। बंगाल के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान पं. सत्यव्रत सामश्रमी का निरुक्तालोचन निरुक्त के तथ्यों को प्रकाशित करने में समर्थ है। डॉ. लक्ष्मणस्वरूप ने उन्नीसवीं शताब्दी में 'एन इण्ट्रोडक्सन टू निरुक्त' लिखा। उनकी 'निघण्टु एवं निरुक्त' संस्कृत की महती सेवा है। जर्मन विद्वान स्कोल्ड ने भी निरुक्त पर अपना शोध प्रबन्ध लिखा जिसका प्रकाशन १९२६ ई. में हुआ। प्रो. राजवाड़े ने १९३५ ई. में सम्पूर्ण निरुक्त का मराठी अनुवाद करवाया। १९४० ई. में पुनः निरुक्त का प्रथमभाग भी प्रकाशित हुआ। अनुसन्धानात्मक दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। डा. सिद्धेश्वर वर्मा ने 'दी इटीमोलाजीज आफ यास्क' लिखकर भाषाविज्ञान की दृष्टि से निरुक्त का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यास्क के निर्वचनों का भाषा विज्ञान की कसौटी पर कसने का प्रयास निर्वचन शास्त्र की महती सेवा है। निरुक्त पर भाषा विज्ञान परक कार्य डॉ. विष्णुपद भट्टाचार्य ने भी किया जिनकी पुस्तक 'यास्कस् निरुक्त एण्ड दी साइन्स ऑफ इटीमोलाजीज' प्रसिद्ध है। पं. शिवनारायण शास्त्री ने निरुक्त मीमांसा लिखकर निरुक्त अध्ययन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी टीकाकारों में पं. सीताराम शास्त्री, मिहिरचन्द्र पुष्करणा, पं. धज्जुराम शास्त्री, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ. 'ऋषि' की भूमिका निरुक्त अध्ययन की दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

निर्वचनों के प्रति मेरी जिज्ञासा आरंभ से ही रही है। व्याकरण शास्त्र के अध्ययन से शब्दों के व्युत्पत्तिविषक ज्ञान की अभिवृद्धि हुई । वेदाचार्य विषयों

के अध्ययन में सम्पूर्ण निरुक्त पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। एम.ए. (संस्कृत) के पाठ्यक्रमों में भी निरुक्त के कुछ अंश निर्धारित हैं। परिणामतः निरुक्त के अध्ययन का विशेष योग प्राप्त होने लगा। निर्वचन के माध्यम से वैदिक एवं लौकिक शब्दों के रहस्य को समझने में बड़ी सहायता मिली। निर्वचन सम्बन्धी जिज्ञासा का ही परिणाम है कि मैंने पी-एच.डी. शोधोपाधि के लिए भी निरुक्त को ही अपना विषय बनाया। उसमें निरुक्त का भाषा वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक पक्ष मीमांसित हुआ जिसमें यास्क के कुछ ही निर्वचनों की समीक्षा की गयी। सभी निर्वचनों का मूल्यांकन वहां संभव भी नहीं था।

निर्वचन शास्त्र की सुदीर्घपरम्परा में यास्क का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस परम्परा में यास्क के सिद्धान्तों एवं निर्वचनों का समीक्षण पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं था। भाषा विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में भी इनकी समीक्षा अपेक्षित थी। फलतः डी.लिट. शोधोपाधि हेतु मैंने निर्वचन को ही अपना विषय बनाया। विविध दृष्टियों से निर्वचनों का एकत्र परिशीलन एवं यास्क के शब्ददर्शन की पृष्ठभूमि को समझने के लिए यह पुस्तक प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के प्रणयन में जिन विद्वानों एवं उनकी कृतियों का सहयोग प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में प्राप्त हुआ है उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूं। रांची विश्वविद्यालय के पूर्वस्नातकोत्तर संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. अयोध्या प्रसाद सिंह का मार्गदर्शन सर्वदा प्राप्त होता रहा है, मैं उनका विशेष ऋणी हूं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभागीय आचार्य डॉ. वीरेन्द्र कुमार वर्मा, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के भाषा विज्ञान विभागाध्यक्ष डॉ. एस.डी. शास्त्री के भी हम आभारी हैं जिनकी संस्तुतियां यथासमय उत्प्रेरित करती रहती हैं। रांची विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. जयनारायण पाण्डेय, विनोवा भावे विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. एच.के. ओझा, उपाचार्य डॉ. रामलक्ष्मण मिश्र, रांची कालेज, रांची के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. चन्द्रकान्त शुक्ल आदि विद्वानों की शुभकामनाओं के लिए इन सबों के प्रति धन्यवाद ज्ञापन करता हूं।

भारत के सभी विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर संस्कृत पाठ्यक्रमों में निर्धारित निरुक्त के विशेष अध्ययन में छात्रों को तथा भारतीय ज्ञानविज्ञान से सम्बद्ध गवेषकों को शब्ददर्शन के ज्ञान में इससे सहयोग प्राप्त हो सकेगा। भाषा विज्ञान के बदलते परिवेश में उसके कुछ भाषा वैज्ञानिक तथ्य कालानुरूप परिवर्तन की अपेक्षा रख सकते हैं फिर भी आशा है शब्दों की अर्थविषयक जिज्ञासा की परितृप्ति शाब्दिकों को उत्प्रेरित करेगी।

नौकया तर्त्तुकामोऽहं विशालं शब्दसागरम्
कामये शब्दवेगेषु निबद्धुश्चार्थवस्त्रकम्।।
अपारे शब्दसंसारे शाब्दिकानां विशेषतः
कामये तर्जनीं धर्तुं गन्तुं तत्र मुहुर्मुहुः।।

रामाशीष पाण्डेय

विषय सूची

पृष्ठ

प्रथम अध्याय

क - निर्वचन विवेचन १
ख - निर्वचन के लिए प्रयुक्त अन्य नाम १
ग - शास्त्र एवं निर्वचन शास्त्र विवेचन २
घ - निर्वचन तथा निरुक्त शब्दों का इतिहास ३
ङ - भाषा विज्ञान और निर्वचन ४
च - भाषा विज्ञान के लिए प्रयुक्त नामों का विवेचन ६

द्वितीय अध्याय (निर्वचनों की ऐतिहासिक परम्परा)

क - वैदिक साहित्य में निर्वचनों का स्वरूप १२
ऋक् संहिता में निर्वचनों का स्वरूप १२
यजु: संहिता में निर्वचनों का स्वरूप १६
साम संहिता में निर्वचनों का स्वरूप १९
अथर्व संहिता में निर्वचनों का स्वरूप २०
ख - ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्वचनों का स्वरूप २३
ग - आरण्यकों में निर्वचनों का स्वरूप २७
घ - उपनिषदों में निर्वचनों का स्वरूप २९
ङ - वृहद्देवता में निर्वचनों का स्वरूप ३१
च - पुराणों में निर्वचनों का स्वरूप ३३
छ - रामायण में निर्वचनों का स्वरूप ३७
ज - महाभारत में निर्वचनों का स्वरूप ३९
झ - संस्कृत साहित्य में निर्वचनों का स्वरूप ४२
ञ - निर्वचनों का तुलनात्मक समीक्षण ४३

तृतीय अध्याय (भारतीय निरुक्तकार एवं उनके निर्वचन सिद्धान्त)

क - निरुक्त में चर्चित निरुक्तकार ५२
ख - आचार्य औपमन्यव ५४
ग - औदुम्बरायण ५६
घ - वार्ष्यायणि ५७
ङ - गार्ग्य ५८
च - शाकपूणि: ६०
छ - और्णवाभ ६२
ज - आचार्य गालव ६३
झ - आचार्य तैटिकी ६४
ञ - आचार्य क्रौष्टुकि ६५
ट - आचार्य कात्थक्य ६५
ठ - आचार्य स्थौलाष्ठीवि ६६
ड - आचार्य आग्रायण ६७
ढ - चर्मशिरा ६७
प - शतवलाक्ष ६८

चतुर्थ अध्याय (यास्क एवं निरुक्त)

क - यास्क का परिचय ७०
ख - यास्क का समय निर्धारण ७३
ग - यास्क की रचनाएं ८४
घ - यास्क के निरुक्त की रूपरेखा ९०

पंचम अध्याय - (निर्वचन के आधार एवं यास्क के सिद्धान्त)

क - ध्वन्यात्मक आधार एवं यास्क के निर्वचन ९४
ख - अर्थात्मक आधार एवं यास्क के निर्वचन १०४

ग - दृश्यात्मक आधार और यास्क के निर्वचन १११
घ - शब्दानुकरण एवं यास्क के निर्वचन ११३
ङ - सादृश्य एवं यास्क के निर्वचन ११५
च - इतिहास आदि आधार एवं यास्क के निर्वचन ११७

षष्ठ अध्याय - (नैघण्टुक काण्ड के निर्वचनों का समीक्षण)

क - प्रथम अध्याय के निर्वचनों का समीक्षण १२१
ख - निरुक्त के द्वितीय अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन १४१
ग - निरुक्त के तृतीय अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन १९७

सप्तम अध्याय- (नैगम काण्ड के निर्वचनों का समीक्षण)

क - निरुक्त के चतुर्थ अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन २४३
ख - निरुक्त के पंचम अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन २८९
ग - निरुक्त के षष्ठ अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ३३३

अष्टम अध्याय - (दैवत काण्ड के निर्वचनों का समीक्षण)

क - निरुक्त के सप्तम अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ३९५
ख - निरुक्त के अष्टम अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ४१०
ग - निरुक्त के नवम अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ४२१
घ - निरुक्त के दशम अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ४४५
ङ - निरुक्त के एकादश अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ४६२
च - निरुक्त के द्वादश अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ४७६
छ - निरुक्त के त्रयोदश अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ४८८
ज - निरुक्त के चतुर्दश अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन ४९१
उपसंहार ४९३
संकेत सूची ५०५
संदर्भ ग्रन्थ सूची ५०७
शब्द सूची ५१२

(क) निर्वचन विवेचन

निर्वचन शब्द निर् +वच् परिभाषणे+ल्युट् प्रत्ययसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार निर्वचन शब्द निःशेष या निखिल वक्तव्य का वाचक है। शब्दों की प्रकृति के अनुसार संभावित अर्थों के अन्वेषण में प्रत्यक्ष, परोक्ष या अति परोक्ष वृत्तियों के द्वारा उपन्यस्त विचार निर्वचन के अन्तर्गत समाहित हैं। शब्दों में अर्थ की अनकेता कारण—वैविध्य को द्योतित करती है। मनुष्य के जो कुछ परिभाषण है, सभी प्रसंगानुकूल एवं अभिव्यक्ति सम्बद्ध हैं। परिस्थितियों एवं व्यवहार के विविध आयामों में प्रयुक्त शब्द प्रायः एक अर्थ पर स्थिर नहीं रहते। शब्दोंमें उस अर्थान्तरता का दर्शन प्रयोग के क्षेत्र में तो होता ही है, साहित्यके क्षेत्र में बाहुल्येन प्राप्त है। कालान्तर में एक ही शब्द अपने विविध अर्थों के साथ आकर मनुष्य की जिज्ञासा को तेज कर देता है। व्यक्ति वैसी परिस्थिति में, उन शब्दों के अर्थात्मक अनुसन्धान में संलग्न उसके सम्बन्ध में विविध सार्थक कल्पनाएं करता है, जो उन अर्थों की ओर स्पष्ट संकेत करती है। कल्पनाओं में सार्थकता की मात्र न्यूनाधिक हो सकती है। परिस्थितियों के सही आकलन के अभाव में कल्पनाएं निराधार भी हो सकती हैं लेकिन अर्थात्मक अनुसन्धान में ऐसी परिस्थितियां कम आती हैं। फलतः शब्द एकार्थक हों या अनेकार्थक सभी आख्येय हो जाते हैं। अर्थात्मक अनुसन्धान में उनका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इन परिस्थितियों से सम्बद्ध शब्दों की व्याख्या ही निर्वचन है। निर्वचनमें प्रत्यक्ष वृत्तिकी अपेक्षा परोक्ष एवं अतिपरोक्ष वृत्ति में निहित अर्थोका प्रकाशन ही विशेष महत्त्व रखता है। प्रत्यक्ष वृत्ति भी निर्वचन का अंग है। शब्दोंमें अर्थकी स्पष्टता एवं ध्वन्यादि सम्बद्धता होने पर प्रत्यक्ष वृत्तिसे ही उसका अर्थ प्रकाशन होता है। शब्दोंकी अनेकार्थता एवं अर्थ संकुलता होने पर परोक्ष एवं अतिपरोक्ष वृत्तिका सहारा लेना पड़ता है। परोक्ष एवं अतिपरोक्ष वृत्ति में अन्तर्निहित शब्दोंके अर्थों का प्रकाशन निर्वचन का प्रधान उद्देश्य होता है। प्रत्यक्ष वृत्ति में अन्तर्निहित शब्दों का अर्थ प्रकाशन तो व्याकरण आदि की प्रक्रिया से भी हो जाता है। प्रत्यक्ष वृत्ति के अतिरिक्त अन्य वृत्तियों में अन्तर्भूत शब्दों के अर्थ प्रकाशन में

शब्दावयवों को पृथक्–पृथक् कर अभिव्यक्त करना निर्वचन कहलाता है।[1]

(ख) निर्वचनके लिए प्रयुक्त अन्य नाम

निर्वचनके लिए समानार्थक निरुक्त शब्दका प्रयोग देखा जाता है। निरुक्त शब्द निर् +वच् परिभाषणे+क्त प्रत्ययके योगसे निष्पन्न होता है व का उ सम्प्रसारणके द्वारा हुआ है।[2] इसका शाब्दिक अर्थ अपिहित अर्थोंका प्रकाशन है। अपिहित अर्थोंके प्रकाशनमें शब्दोंकी निःशेष प्रकारकी व्याख्या निरूक्तके अन्दर समाहित है।[3] निर्वचन के लिए व्युत्पत्तिका प्रयोग हिन्दी भाषामें होता है।[4] शब्दोंका मूलान्वेषण व्युत्पत्तिका प्रधान उद्देश्य है। व्युत्पत्तिका शाब्दिक अर्थ है विशिष्ट उत्पत्ति। वि+उत्+पद्+क्तिन् प्रत्ययसे व्युत्पत्ति शब्द निष्पन्न होता है। निर्वचन एवं व्युत्पत्तिमें तात्त्विक अन्तर है, फिर भी हिन्दी भाषा में निर्वचन के लिए व्युत्पत्तिका प्रयोग होता है। अंग्रजी भाषामें निर्वचन के लिए ETYMOLOGY (इटिमालाजी) शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द मूल रूपमें यूनानी भाषाका शब्द है। Etumos. Logos से Etymology शब्द निष्पन्न होता है। Etumos का अर्थ होता है– यथार्थ तथा Logos लेखा जोखा का वाचक है। इसप्रकार Etymology का अर्थ हुआ यथार्थ लेखा जोखा। यूनानी भाषामें यह दर्शनकी एक शाखा थी। युनानी दार्शनिक किसी–किसी शब्द द्वारा व्यक्त भाव एवं तथ्यात्मक विचारके प्रकाशनके लिए शब्दोंके मूल तथा उसके अर्थका अध्ययन करते थे। कालान्तरमें Etymology शब्द भाषा विज्ञानकी एक शाखाके रूपमें प्रचलित होने लगा। किसी खास शब्दका मूल तथा भाषा वैज्ञानिक व्याख्या करने वाला शास्त्र Etymology कहलाता है। शब्दोंका व्युत्पत्ति प्रदर्शन भी इसका काम है। भाषा विज्ञानका यह वह अंग है जो शब्दों के मूल तथा इतिहाससे सम्बन्ध रखता है।[5]

(ग) शास्त्र एवं निर्वचन शास्त्र विवेचन

शास्त्र शब्द शास् अनुशिष्टौ धातुसे ष्ट्रन् प्रत्ययके द्वारा निष्पन्न होता है (शिष्यते अनेन इति शास्त्रम्)। शास्त्र शब्दका शाब्दिक अर्थ होगा शासन करने वाला, उपदेश करने वाला। शासनसे तात्पर्य है प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का उपदेश करनेवाला। सत्कर्म की ओर प्रवृत्ति एवं दुष्कर्म की ओर से निवृत्ति का उपदेशक शास्त्र कहलाता है। इसके अनुसार शास्त्र धर्म शास्त्र आदि का

संकेतक है। धर्म शास्त्रका मूल उद्देश्य है प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गका अनुशासन करना। विषय के वाचक शास्त्र शब्दकी प्रतीति भी इसी शास् धातुसे होगी, क्योंकि किसी विषयका तथ्यात्मक उपदेश करने वाला भी शास्त्र कहलायगा। फलतः शास्त्र गूढ तत्त्व का प्रतिपादक विषय है जो विशिष्ट ज्ञानका वाचक है। निर्वचन शास्त्र इसी निर्वचन तत्त्व का प्रकाशक शास्त्र है।

निर्वचन शास्त्र आधुनिक भाषा विज्ञानके शब्दोंमें व्युत्पत्ति शास्त्र कहलाता है। यद्यपि व्युत्पत्ति शास्त्र व्याकरणके अनुसार शब्दोंका व्युत्पादक शास्त्र है जो किसी शब्दकी प्रकृति एवं प्रत्ययोंको स्पष्ट करना मात्र अपना उद्देश्य रखता है। शब्दोंकी निर्माण प्रक्रियामें प्रकृति प्रत्ययका उपस्थापन व्युत्पत्ति शास्त्रका कार्य है। निर्वचन शास्त्रके अन्तर्गत व्युत्पत्तिकी प्रक्रिया तो समाहित है ही, व्युत्पति के अतिरिक्त भी कुछ तथ्योंकी स्वीकृति है, जो शब्दोंके मूलान्वेषणमें तथा अर्थ प्रकाशनमें सहायक होते हैं। भाषा विज्ञानका व्युत्पत्ति शास्त्र शब्दोंके मूलका अन्वेषक है तथा उसके ऐतिहासिक पक्षोंका उद्घाटन करता है। निर्वचन शास्त्रके अन्तर्गत भाषा वैज्ञानिक व्युत्पति शास्त्रीय विषय ही समाहित हैं। भारतीय निर्वचनकी परम्परा स्वविषय सम्बद्ध मूलान्वेषण एवं ऐतिहासिक पक्षोंका उद्घाटन करती है। अतः निरुक्त विज्ञान/शास्त्र या Etymology वह विज्ञान है जो शब्दों का उद्भव और इतिहास बतलाता है।[6]

(घ) निर्वचन तथा निरुक्त शब्दोंका इतिहास

वैदिक संहिताओंमें निर्वचन शब्दका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता। निर्+वच् धातुके प्रयोग अथर्ववेदमें प्राप्त भी होते हैं लेकिन निर्वचनके अर्थ को द्योतित नहीं करते।[8] सामवेदके देवताध्यायमें प्रथमतः निर्वचन शब्द प्राप्त होता है, जो अपना पारिभाषिक अर्थ रखता है। अथ निर्वचनम् से प्रारंभ होने वाला यह अध्याय निर्वचनका ही विवेचन करता है। उक्त अवसरपर गायत्री आदि छन्दोंके निर्वचन भी हुए हैं।[10] ये निर्वचन निरुक्तके निर्वचनोंसे साम्य रखते हैं।

यास्कने भी द्वितीय अध्यायमें अथ निर्वचनम् कह कर शब्दोंका निर्वचन प्रारंभ किया है। तैत्तिरीय आरण्यकमें इस शब्दका प्रयोग व्युत्पत्ति शास्त्रीय व्याख्याके अर्थमें हुआ हैं।

निर्वचनके पर्याय निरुक्त शब्द काठक एवं मैत्रायणी संहिताओं में प्राप्त होते हैं। लेकिन इन स्थलों में प्रयुक्त निरुक्त शब्द निर्वचनके पारिभाषिक अर्थको द्योतित नहीं करते। वहां वे मात्र निर्+वच् धातुका अर्थ प्रतिपादन करते हैं। प्राचीन ब्राह्मण ग्रंथ सांखायन में भी निरुक्त शब्द इसी अर्थमें उपलब्ध होता है।[12] शतपथ ब्राह्मणमें निरुक्त शब्द अपने पारिभाषिक अर्थमें प्रयुक्त नहीं हुए हैं।[13] मुण्डकोपनिषद्में वेदांगोंकी गणनाके अवसर पर चतुर्थ वेदांगके रूपमें निरुक्तकी गिनती हुई है।[14] छान्दोग्योपनिषद्में वेद विद्या शब्द का प्रयोग हुआ है जिसकी व्याख्यामें शांकर भाष्य निरुक्त अर्थ प्रतिपादित करता है।[15] शब्दकी व्याख्याके अर्थमें निरुक्त शब्दका प्रयोग छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त होता है। यहां हृदय शब्दकी निरुक्ति भी दी गयी है।[16]

उपर्युक्त उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निर्वचन या निरुक्त शब्द का प्रयोग निरुक्त शास्त्रके अर्थमें नहीं हुआ है। यहां यह स्पष्ट प्रतिपादन या व्याख्याके अर्थमें प्रयुक्त है। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें जिन देवताओंका स्वरूप या उनसे सम्बद्ध बस्तु अभिहित है, उसे निरुक्त कहा गया है। यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में निरुक्त देव विद्याके अर्थ में प्रयुक्त है। आरण्यकों में निर्वचन शब्द का प्रयोग व्युत्पत्ति शास्त्रीय व्याख्याके अर्थमें प्राप्त होता है। उपनिषदोंमें यह निर्वचन प्रक्रिया एवं वेदांगके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। यास्कके निरुक्तमें निरुक्ति के दो अर्थ दृश्य होते हैं, प्रथम शब्द शास्त्रीय निर्वचन सम्बन्धी अर्थ तथा द्वितीय देवविद्या सम्बन्धी अर्थ। निरुक्तमें प्रारंभ के छः अध्याय भाषा शास्त्रीय निर्वचन प्रस्तुत करते हैं तथा शेष देव विद्याका प्रतिपादन करते हैं।

भाषा विज्ञान और निर्वचन

भाषा शब्द संस्कृतके भाष् व्यक्तायां वाचि धातुसे अ प्रत्यय एवं टाप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ होता है स्पष्ट रूपसे बोलना। बोलीको भाषा मान लेनेसे भाषाका तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता। इसके सम्बन्धमें प्रश्न उठता है, किसकी बोली—मनुष्यकी या पशु पक्षियोंकी या समस्त अण्डज उद्भिजोंकी ध्वनियां। सभी प्राणी अपने हृद्गत भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए शब्दोच्चारण करते हैं। कुछ ध्वनियां पदार्थ संघर्षसे भी निकलती हैं जिन्हें भी

बोलीके अन्तर्गत माना जा सकता है। अगर शब्दोच्चारण या बोलीको भाषा मान लिया जाय तो उसकी परिभाषा अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषोंसे अछूती नहीं रह सकती। कुछ प्राणीकी बोली एवं पदार्थ संघर्षसे उत्पन्न ध्वनियोंको भाषा विज्ञानका विषय इसलिए नहीं माना जा सकता, क्योंकि वे मानवकी समझसे बाहरकी चीज हैं। अनुश्रुतियोंके आधार पर पशुपक्षियों एवं स्थावर जंगमादिकोंकी बोलियोंकी मनुष्य द्वारा समझनेकी चर्चा प्राप्त होती है। इन बोलियोंको भाषा नहीं कहा जा सकता। पुनः केवल भाषाका सम्बन्ध विशिष्ट लेखों या साहित्यिक भाषा विशेषसे लिया जाय तो इसमें परिभाषागत उभयविध दोष लग जाएंगे। लेखके अतिरिक्त अर्थ संकेतित शब्दोंका समावेश उसमें नहीं हो सकेगा। पुनः लेख को ही भाषा कैसे माना जा सकता है, लेखकी अपेक्षा भाषाका इतिहास बहुत प्राचीन है।

प्राचीन कालमें भारतमें भाषाके लिए वाक् या वाणी शब्दका प्रयोग होता था। वस्तुतः भाषा, वाक् या वाणीमें स्वरूप भेद होते हुए भी विषय भेद नहीं है। ब्रह्माके निःश्वाससे निःसृत तत्कालीन वैदिक भाषा थी।[17] इसके अनुसार निःश्वासको ही भाषाकी संज्ञा दी जा सकती है। वाक् या वाणीको इन्द्रने व्याकृत किया इसकी चर्चा तैत्तिरीय संहितामें प्राप्त होती है।[18] वाक् शब्द वच् परिभाषणे धातुसे क्विप् प्रत्यय एवं दीर्घ विधानसे निष्पन्न होता है।[19] रामायणमें इसके विशेषणमें वाक् तथा मानुषी शब्दका प्रयोग हुआ है।[20] वस्तुतः मानुषी शब्द मनुष्यकी बोलीसे सम्बन्ध रखता है। आचार्य पाणिनिने संस्कृत के लिए भाषा शब्दका प्रयोग किया है।[21] यास्क भाषाका प्रयोग जनसामान्यमें प्रचलित वैदिक भाषासे भिन्न संस्कृत भाषाके अर्थमें करते हैं।[22]

ऋग्वेदमें प्रतिपादित वैखरी वाणीको भाषा कहा जा सकता है।[23] वैखरी वाणीको तुरीयवाक् कह कर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि उसके पूर्वकी तीन वाक् वाणीके अन्दर परिगणित नहीं हो सकती तथा उन्हें मानुषी या मनुष्य वाक् नहीं कह सकते। शतपथ ब्राह्मणमें भी वैखरी वाणी, जो कि व्यक्त वाणी है, का उल्लेख प्राप्त होता है।[24] महर्षि पतंजलिने वाणीको प्रकट करनेके लिए व्यक्त वर्णों के समाम्नायको भाषा कहा है।[25] महर्षि यास्कने भाषा की परिभाषा देनेकी चेष्टा नहीं की है, लेकिन भाषाके संबंधमें अपना उद्देश्य प्रकट कर दिया है। संस्कृत के लिए उन्होंने भाषा शब्द का प्रयोग किया, जो

संस्कृत उस समय जनसामान्य की भाषा एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषा थी।[26] यास्क केवल लिखित अभिव्यक्तियों को ही भाषा नहीं मानते बल्कि उन्होंने ध्वन्यात्मक रूपों को भी भाषाकी मान्यता दी है। यास्कके समय लेखनकला का विकास हो चुका था।[27] यास्कने निरूक्तमें ऋग्वेद के मंत्रोंकी व्याख्या एवं निर्वचन क्रममें भाषा विषयक अपना अभिमत स्पष्ट कर दिया है।[28] वैखरी वाणीको भाषा माननेके पक्षमें यास्क भी हैं। वैखरी वाणीको तुरीय वाणी भी कहा गया है। वस्तुतः वैखरीमें पूर्व तीन वाक्को व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः परा, पश्यंती एवं मध्यमाको गुहास्थित बताया गया है। परा वाक् मूलचक्र स्थित होती है अर्थात् मूलचक्रस्थ ध्वनि, जो अस्पष्ट एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, परावाक् कहलाती है। पश्यन्ती वाक् नाभि संस्थित है जो पराकी अपेक्षा स्पष्ट होती है फिर भी उसे स्पष्ट वाणी नहीं कह सकते क्योंकि उसका भी व्यक्तिकरण नही होता है। मध्यमा वाक् हृदयस्थ होती है जो परा एवं पश्यन्तीकी अपेक्षा स्थूलतर होती जाती है। परा ही क्रमशः पश्यन्ती एवं मध्यमा के रूपमें स्थानगत आश्रयणके चलते परिगणित होती है। पुनः वही वाणी जब कण्ठ देशमें गमन करती है तो वैखरी कहलाती है जो पूर्ण व्यक्त एवं स्पष्ट होती है, जिसका प्रयोग मनुष्य करता है।[29] इसी वैखरी वाणीका सम्बन्ध भाषा एवं भाषा विज्ञानसे है।

भाषा विज्ञान :— भारतीय शास्त्रके अनुसार विद्या दो प्रकार की है— परा एवं अपरा।[30] अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त एवं ज्योतिषकी गणना होती है। परा विद्या विज्ञानको द्योतित करती है। विशेष ज्ञानका सम्बन्ध परा विद्यासे है।

भाषा विज्ञान के लिए प्रयुक्त नामोंका विवेचन

प्राचीन भारतमें भाषा विज्ञानके लिए कई नामोंका प्रयोग हुआ है। भाषा वैज्ञानिक महत्त्वकी दृष्टिसे शिक्षाका नाम प्रथमतः लिया जा सकता है। शिक्षा की गणना वेदांगोंमें होती है। यों तो भाषा वैज्ञानिकदृष्टि से शिक्षाको ध्वनि विज्ञान कहा जा सकता है, क्योंकि यह स्वर वर्णादि का उच्चारण प्रकार विशेष रूपमें वर्णित करता है।[31] प्राचीन कालमें भाषा वैज्ञानिक गुणोंसे युक्त यह अंग भाषा के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देता था। उस समय भाषा

विज्ञान नामका कोई ग्रन्थ नहीं था। आज कल भाषा विज्ञान ध्वनिविज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान, शब्द विज्ञान आदि विषयोंका समन्वित रूप है।

प्राचीन कालमें प्रत्येक भाषा वैज्ञानिक अंग पर अलग–अलग स्वतंत्र शास्त्र थे, जिसमें शिक्षा ध्वनि विज्ञानका प्रतिपादक थी। वेदांगोंमें शिक्षाका महत्त्वपूर्ण स्थान इन्हीं विशेषताओंके चलते प्राप्त हुआ। भाषा विज्ञानकी शाखाके रूप में कार्य करने वाला महत्त्वपूर्ण शास्त्र व्याकरण था। व्याकरण भी वेदांगोंमें परिगणित है। यह शब्द शास्त्रके रूपमें भी जाना जाता है।[32] इसको व्याकरण शास्त्र, शब्दानुशासन आदि के नामसे भी अभिहित किया गया है। व्याकरण मूल रूपमें शब्दोंकी प्रकृति, निर्माण प्रक्रिया आदिपर विचार प्रस्तुत करता है। प्राचीनकालमें एतद् विषयक कार्य प्रातिशाख्योंके द्वारा हुआ करता था। प्रत्येक वेदके अलग–अलग प्रातिशाख्य ग्रन्थ हैं। वैदिक एवं लौकिक शब्दों के अनुशासनके लिए व्याकरण सम्प्रदाय भी विख्यात हैं।[33] जिनमें ऐन्द्र, चान्द्र काशकृत्स्न आदि कई व्याकरण प्रसिद्ध थे। भाषा विज्ञानकी महत्त्वपूर्ण शाखा थी निरुक्त। इसकी गणना भी वेदांगों में होती है। तत्कालीन भाषाओंकी निरुक्ति के कारण इसका महत्त्व इतना बढ़ गया कि अपने क्षेत्रमें यह प्रारंभिक ग्रन्थ ही माना जाने लगा। निरुक्तमें निर्वचनका विशिष्ट स्थान होनेके कारण यह निर्वचन शास्त्रके नामसे भी प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि निर्वचनोंकी उपलब्धि वेदादि में भी होती है फिर भी व्यवस्थित रूपमें निर्वचन करने वाला शास्त्र निरुक्त ही था। निरूक्त शब्द एवं अर्थ विज्ञानका भी प्रतिपादन करता है, लेकिन वैशिष्ट्य निर्वचन का ही है। यों तो भाषा वैज्ञानिक तथ्योंका विवेचन ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदोंमें भी प्राप्त होता है लेकिन व्यवस्थित ढंगसे भाषा विज्ञान का विवेचन उन ग्रन्थोंमें प्राप्त नहीं होता।

आधुनिक युगमें भाषा विज्ञानके लिए हिन्दी भाषामें भी बहुत से नाम आये। ये सारे नाम अंग्रेजी नामोंके अनुवाद मात्र हैं। इस विज्ञानके लिए भाषा विज्ञान, भाषा शास्त्र, तुलनात्मक भाषा विज्ञान एवं तुलनात्मक भाषा शास्त्रका प्रयोग होता है। विज्ञान एवं शास्त्रका प्रयोग एक दूसरेके पर्याय के रूप में है। अतः भाषा विज्ञान या भाषा शास्त्रमें कोई भेद नहीं। अंग्रेजी नाम साइन्स आफ लेंग्वेज (Science of Language) का हिन्दी अनुवाद भाषा विज्ञान या भाषा शास्त्र है। कम्पेरेटिभ फिलोलाजी (Comparative Philology) का तुलनात्मक

भाषा विज्ञान या तुलनात्मक भाषा शास्त्र। कुछ दिनोंसे हिन्दी में भाषिकी शब्द का प्रयोग भी इस विज्ञानके लिए होने लगा है। भाषिकीका सम्बन्ध भाषासे है तथा लघु नाम अधिक सार्थक प्रतीत होता है। वर्तमान समयमें इस विज्ञानका अधिक प्रचलित नाम भाषा विज्ञान या भाषा शास्त्र ही है, जो फिलोलाजी (Philology) तथा लिंग्विस्टिक (Linguistic) का हिन्दी रूपान्तर है।

19 वीं शताब्दी में भाषा विज्ञानके पुनर्जागरणका काल आया। प्रथमतः इसका नाम कम्पेरेटिभ ग्रामर (Comparative Grammar) रखा गया, क्योंकि इसका क्षेत्र व्याकरण के अन्दर ही सीमित था। व्याकरणके हीं तुलनात्मक अध्ययन को भाषा विज्ञान के शब्दों में हिन्दी में तुलनात्मक व्याकरण कह सकते हैं। उस समय व्याकरण तथा भाषा विज्ञान प्रधानतया एक ही विषय के अन्तर्गत आते थे। भाषा विज्ञानकी मात्र विशेषता थी तुलनात्मक अध्ययन की। कुछ समय के बाद लेागों ने अनुभव किया कि भाषा विज्ञान व्याकरण के तुलनात्मक अध्ययन के अतिरिक्त और कुछ है। फलतः इस नाम से विरक्ति होने लगी। भाषा के तुलनात्मक अध्ययन होने के कारण इसका नाम कम्पेरेटिभ फिलालाजी (Comparative Philology) हुआ। समयान्तर में कम्पेरेटिभ शब्द भी हटा दिया गया क्योंकि किसी भी विज्ञान का यह गुण है कि उसमें तुलनात्मकता भी हो। फलतः कम्पेरेटिभ शब्द हट जाने के बाद केवल फिलोलाजी शब्द ही रहा।

डेवीज ने भाषा विज्ञान के लिए 1716 ई0 में (Glossology) ग्लासोलाजी शब्द का प्रयोग किया। प्रिचर्ड ने 1841 ई में ग्लाटोलाजी (Glottology) शब्द का प्रयोग इस विज्ञान के लिए किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में विद्वानों ने इसके लिए ग्लाटोलाजी शब्द को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम ठहराया। फिरभी इस नामकी व्यापकता नहीं होनेके कारण यह स्थायित्व ग्रहण नहीं कर सका।कुछ देशोंमें उसकेलिए फिलोलाजी (Philology)शब्द प्रचलित हो गया था।[34] यह शब्द यूनानी भाषा का है। Philos+Logos =Philology/Philos का अर्थ होता है प्रेम तथा Logos का अर्थ होता है भाषा का ज्ञान। प्रारंभ में इसका अर्थ था ज्ञानका प्रेम,साहित्य शास्त्रीय दृष्टिसे भाषा का अध्ययन, व्याकरण, आलोचना आदि। बादमें इसका सम्बन्ध उस ज्ञान से हो गया जो शास्त्रीय भाषाओं के भाषा शास्त्रीय अध्ययन का विषय था। आरंभ में तो यह

नाम कम्पेरिटिभ शब्द से युक्त था, किन्तु बाद में कम्पेरेटिभ शब्द नही रहा। मात्र फिलौलाजी ही प्रसिद्ध हुआ।

भाषाा विज्ञान के लिए एक नाम जो भाषाविदों में समादृत हुआ, वह है (Linguistic) लिंग्विस्टिक। फ्रांस में इसे लोग Linguistique तथा जर्मन के लोग स्प्राख विशेन शफ्ट (Sprech Wisomchaft) कहते है। रूसी भाषा में इस विज्ञान को अजिकौज्नाज्नीय (Yazelikoznaxie) कहते है। सायंस आफ लैंग्वेज (Science of Language) का भी सूत्रपात इस विज्ञान के नामकरण के लिए हुआ था। लेकिन इस प्रकार का वृहत् नाम परिभाषा के ऐसा लगने के कारण प्रभावशाली नहीं हो सका। अमेरिका में भाषा विज्ञान की दो शाखायें हो गयी। वहां फिलौलाजी (Philology) शब्द का प्रयोग प्राचीन भाषा साहित्य एवं अभिलेखों की भाषाओं के अध्ययन में किया जाता है। लिंग्विस्टिक Linguistic शब्द का प्रयोग आधुनिक जीवित भाषाओं के अध्ययन के लिए होता है।[35] Linguistic शब्द लैटिन शब्द Linguaa से बना है जिसका अर्थ होता है जिह्वा। भाषा विज्ञान के लिए Linguistique शब्द का प्रयोग फ्रांस में हुआ । बाद में यह शब्द अंग्रेजी में प्रचलित हुआ। लेकिन इसका रूप कुछ बदलकर Linguistic/Linguistics हो गया। आज कल यह नाम सभी नामों से अधिक प्रचलित है।

प्राचीन भारत में भाषा विज्ञान के विभिन्न अंगों पर अलग–अलग कार्य होते थे। भाषा विज्ञान की सर्वांगपूर्ण स्वतंत्र कोई पुस्तक नहीं थी। शिक्षा एवं प्रातिशाख्य के कुछ अंश ध्वनि विज्ञान के रूप में कार्य करते थे। शब्द विवेचक शास्त्र के रूप में व्याकरण एवं प्रातिशाख्य परिगणित थे। निरुक्त अर्थ विज्ञान का प्रतिपादक था। निरुक्त का प्रधान कार्य शब्दों का निर्वचन प्रस्तुत करना है। इस आधार पर इसे शब्द विज्ञान का विषय भी माना जायगा। निरुक्त का मूल उद्देश्य अर्थ विवक्षा है। अर्थ के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी देने के कारण इसे अर्थ विज्ञान से सम्बद्ध माना जा सकता है। निरुक्त का कार्य भाषा विज्ञान के सभी अंगों पर प्रकाश डालना नहीं है। वह केवल निर्वचन की ही प्राथमिकता देता है। फलतः यास्क ने इस विज्ञान के लिए निरुक्त नाम दिया है। निघण्टु शब्द भी भाषा विज्ञान के अंग के रूप में परिगणित हो सकते हैं शब्दों का समाम्नाय ही निघण्टु है[36] तथा इस निघण्टु की व्याख्या निरुक्त।

निघण्टु व्यवस्थित क्रम से युक्त शब्दों का संग्रह है जिसे कोष की प्रथम पुस्तक भी कह सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में भाषा विज्ञान कई इकाइयों में विभाजित थे। निर्वचन शास्त्र या निरुक्त शास्त्र को भाषा विज्ञान की स्वतंत्र शाखा कहा जा सकता है।

संदर्भ संकेत

1. अपिहितस्य अर्थस्य परोक्षवृत्तौ अतिपरोक्षवृत्तौ वा शब्दे निष्कृष्य विगृह्य वचनं निर्वचनम्ष्– नि0 दु0 वृ0 2 ।1, 2.इग्यणः सम्प्रसारणम् – अष्टा0 – 1 ।4 ।45, 3. अर्थाववोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम् –ऋ0भा0भू0 (सायण) 4. भाषा वि0 – (भो0ना0 ति0) 5. Explanation of the Origin and Linguistic changes of a particular word, the derivation of a word; the branch of Philology concerned with the origin and History of words. THE LIVING WEBSTER - (Encyclopedic Dictionaryof the English Language) 6. (क) प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नित्येन कृतकेन वा। पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमिति कथ्यते।। (ख) हला0 – पृ0 659 7. The Science that treats the origin and history of words. (Chamber's Dictionary) 8. यक्ष्मणां सर्वेषां विषं विषं निरवोचमहं त्वत् – अथर्व सं0 9 ।13 ।12 9. अथातो निर्वचनम् – दैव0 ब्रा0 – 3 ।1, 10. तं गर्भिण्या वाचा मिथुनया प्रजनयति यन्निरुक्तं चान्निरुक्तं तन्मिथुनम् –काठक सं0 – 6 ।5 एतद्वै देवानां ब्रह्मानिरुक्तं यच्चतुर्होतारस्तदेनं निरुच्यमानं प्रकाशं गमयति– काठक सं0 9 ।16 अनिरुक्तः प्रातस्तवः, प्रजापतिमेव तेनाप्नोति, वियोनिर्वे वाजपेयः प्राजापत्यः, सनिरुक्तसामा, यदनिरुक्तः प्रातस्सवस्तेन सा योनिरथ्यन्तरं साम भवति। मैत्रा0सं0 1 ।11 ।9 यजुषा हविर्धानं मिनोति, निरुक्ता हि द्यौः, यजुषा सदो निरुक्ताहीयम्, अयजुषाग्नी– ध्रम्, अनिरुक्तमिव ह्यन्तरिक्षम्,अर्धमा ग्नीध्रस्यान्तर्वेदि मिनोति, अर्धं ह्यन्तरिक्षस्यास्मिंल्लोकेऽर्धममुष्मिन्–मैत्रा0 सं0 3 ।8 ।9 11. तैत्ति0 आ0– 1 ।6 ।4 12. उच्चैर्निरुक्तमभिष्टुयात्प्राणा वै स्तुमो निरुक्तोह्येष :– शांखा0 ब्रा0 8 ।3 अथ यदुच्चैः सोम्यस्य यजति चन्द्रमावैसोमोऽनिरुक्तोवैचन्द्रमास्तस्यन परस्तात्पय जेदित्याहुः –शांखा0 ब्रा0 16 ।5 उच्चैर्निरुक्तमनुब्रूयात्! एतद् ह वा एवं वाचो

नन्ववसितं पाप्मनो यन्निरुक्तम्, तस्मान्निरुक्तमनुब्रूयात् यजमानस्यैव पाप्मनोपहत्यै। शांखा0 ब्रा0 11।1, 13. श0 ब्रा0 द्रष्टव्य 14. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते—मु0 उ0 1।5, 15. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदंसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहा सपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्वदेवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि — छा0 उ0 7।1।2, 16. स वा एष आत्मा हृद्यमिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवं वित्स्वर्गं लोकमेति — छा0 उ0 8।3।3, 17. यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ महेश्वरम्।। — ऋ0 भा0 भू0 पृ0 1 —श्लो0 2, 18. वाग्वै पराव्यव्याकृताऽवदत् ते देवा इन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति तामिन्द्रा मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्—तै0 सं0 7।4।7, 19. वचिप्रच्छीति क्विप्—हलायुध — पृ0 598, 20. वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्। रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।। — वा0 रा0 सु0 का0 20।19, 21. विभाषाभाषायाम् —अष्टा0 6।1।181, 22. इवेति भाषायाम्—नि0 1।2 इति विचिकित्सार्थीयो भाषायाम् — नि01।2, 23. चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति। ।ऋ0 1।164।45

वृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रेरत नामधेयं दधाना
यदेषा श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषा निहितं गुहाविः।। ऋ010।71।2

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत। अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाची। ऋ0 10।72।2, 24. शत0 ब्रा0 — 4।1।1।16, 25. व्यक्तवाचकवर्णाः येषां त इमे — महाभाष्य — 1, 26. शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते—नि0 2 ।1, 27. द्र0 पतंजलि कालीन भारतवर्ष — पृ0 6, 28. ऋ0 1।164।45, नि0 13, 29. परावाङ् मूलचक्रस्था, पश्यन्ती नाभिसंस्थिता। हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा।। परमलघु—मंजूषा—(स्फोट विचार), 30. (द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मवि— दो वदन्ति —पराचैवापरा च तत्रापराऋग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते)— मुण्ड0 उ01।5,31. स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो

यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा–(सा0 भा0), 32. शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषि, श्रोत्रमुक्तं निरुक्तंच कल्पः करौ। या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका, पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्वुधैः।। सिद्धान्त शिरोमणि – (गणिताध्याय), 33. अथशब्दानुशासनम् – केषां शब्दानां वैदिकानां लौकिकानांच। महाभाष्य 1।1, 34. अमेरिका आदि, 35. भा0 वि. पृ0 7 – 9, 36. समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः। तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते। – नि0 1।1।

द्वितीय अध्याय

निर्वचनों की ऐतिहासिक परम्परा

(क) वैदिक साहित्यमें निर्वचनों का स्वरूप

निर्वचन जिज्ञासा शान्तिकी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। किसी शब्दमें जो अर्थ सम्पृक्त रहते हैं, उसका क्या आधार हो सकता है, इसका समाधान निर्वचन ही करता है। वेदांग होने के कारण निरुक्त भी वैदिक साहित्यमें परिगणित है। वैदिक साहित्य पर दृष्टिपात करनेसे पता चलता है कि निर्वचनका सूत्रपात निरुक्तसे बहुत पूर्व हो चुका था। वैदिक संहिताओंको इनका उत्स माना जा सकता है। आचार्य यास्कने तो वैदिक ऋषियोंको निरुक्तकारके रूपमें स्वीकार किया है। संहिताओंमें अर्थाभिव्यक्तिके लिए पदोंके धातु एवं धात्वंशोंका संकेत बड़ी सूक्ष्मतासे किया गया है। परिणामतः शब्दार्थोपलब्धिमें धात्वर्थका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकारके शब्दोंके समावेशसे अर्थज्ञानमें तो सुगमता होती ही है, वाक्यों का चारूत्व भी बढ़ जाता है, वाक्य आलंकारिक हो जाते हैं। सभी नाम आख्यातज हैं,[1] इस सिद्धान्तके अनुसार शब्दोंमें धात्वन्वेषण प्रकृति सिद्ध है। संहिताओंमें धातुओंके निर्देशसे निर्वचनका कार्य प्रधानतया सम्पन्न हुआ है।

ऋक् संहितामें निर्वचनोंका स्वरूप

ज्ञान के अगाध स्रोत, सर्वसमृद्ध एवं सर्वप्राचीन ऋग्वेदसंहितामें निर्वचनोंका प्रथम दर्शन होता है। इस संहितामें दो प्रकारके निर्वचन प्राप्त होते हैं :– 1. प्रत्यक्षवृत्ति के निर्वचन एवं 2. परोक्ष वृत्तिके निर्वचन। प्रत्यक्ष वृत्तिके

निर्वचनोंमें ऐसे संज्ञापद आते हैं जिनके धातु एवं धात्वंशोंकी सूचना उसीमें उपलब्ध हो जाती है। फलतः धातु एवं संज्ञापदमें उत्पाद्य उत्पादक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। परोक्षवृत्तिके निर्वचन उन्हें कहेंगे जिनके प्रकृति प्रत्यय सहज स्पष्ट नहीं होते तथा जिनमें कई धातुओंकी संभावनाएं संलक्षित होती रहती हैं। प्रत्यय भी सहज रूपमें दृष्टिगोचर नहीं होते। परिणामस्वरूप इस प्रकारके शब्द विश्लेषणकी अपेक्षा रखते हैं। ऋग्वेद संहिताके निर्वचनोंका उपस्थापन द्रष्टव्य है –

1.वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्"[2]

इस मन्त्रांशमें गीः शब्दको स्पष्ट करनेके लिए गृणन्त क्रिया पद का प्रयोग किया गया है। अन्यत्र भी गीः पद गृणाति क्रिया पदसे स्पष्ट किया गया है।[3] अतः गृणाति क्रिया पदका गीः से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। तदनुसार गीः पदमें गृ निगरणे धातुका योग माना जायेगा। यह प्रत्यक्षवृत्याश्रित है।

2.ऋचां त्वः पौषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ब्रह्मा त्वो वदति जात विद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः।।"[4]

इस मन्त्रमें गायत्रं शब्दको स्पष्ट करनेके लिए गायति क्रियापदका उपस्थापन है। गायति क्रिया का सम्बन्ध उक्त संज्ञा पदसे स्पष्ट है। अन्यत्र भी गायत्री शब्द गायति क्रियापद द्वारा संकेतित है।[5] इस शब्दमें स्तुत्यर्थक गै धातुका योग है। यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है। निरुक्तमें भी गै धातुसे ही इसका निर्वचन किया गया है।[6]

3. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासान् ते ह नाकम्महिमानःसचन्तयत्रपूर्वे साध्याःसन्ति देवाः।।[6]

इस मन्त्रमें यज्ञ शब्दको स्पष्ट करनेके लिए अयजन्त क्रिया प्रयुक्त है। अयजन्त क्रिया यज् धातुसे निष्पन्न है। यह निर्वचन प्रत्यक्षवृत्याश्रित है। निरुक्तमें भी यज्ञ शब्दका निर्वचन यज् धातुसे ही किया गया है।[8] व्याकरणके अनुसार भी यज् धातुसे नङ् प्रत्यय करने पर यज्ञ शब्द निष्पन्न होता है।[9]

4. "तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे"[10]

इस मन्त्रांशमें यज्ञार्थ प्रतिपादक तन्तु शब्दके लिए तन् विस्तारे धातु संकेतित है। तनुष्व क्रियापद तन्तुको स्पष्ट करता है। ऋग्वेदमें तन्तुका तन्

धातुसे सम्बन्ध अन्यत्र भी देखा जा सकता है।।[11] यह प्रत्यक्ष वृत्याश्रित निर्वचनमें परिगणित होगा।

5. "सरथेन रथीतमोऽस्माकेनाभि युग्मना
जेषि जिष्णो हितं धनम्।।"[12]

इस मन्त्रमें जिष्णोः पदके साथ जेषि क्रियापद प्रयुक्त है। अतः उक्त संज्ञापदमें जि धातुका योग माना जायेगा। यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है।

6."चित्रमर्क गृणते तुराय मारूताय स्तवसे भरध्वम्
ये सहांसिसहसा सहन्ते रेजन्ते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः।।"[13]

इस मन्त्रके तृतीय पादमें सहस् संज्ञा पदके साथ सहन्ते क्रिया पद भी प्रयुक्त है। सह् धातुके योगसे सहन्ते क्रिया निष्पन्न होती है। सहस शब्द में भी सह् धातुका योग है। यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है। निर्वचनके चलते ही वाक्य भी आलंकारिक हो गये हैं।

7.सोता हि सोममद्रिभि रेमे नमष्षु धावत
गव्या वस्त्रे वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः।।"[14]
हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते सुन्वन्त एके सवनेषु सोमान्
शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिनेज्जिह्मायन्त्यो नरकंपताम ।।" [15]

प्रथम मन्त्रमें सोतासे सोमका स्पष्ट संकेत प्राप्त हो जाता है। सोता में सु धातुका योग है। सोममें भी सु प्रस्रवणे धातुका योग माना जायेगा। द्वितीय मन्त्रमें सुन्वन्त क्रियापदका सम्बन्ध सोमान्से है। फलतः सुसवने धातु स्पष्ट ही सोम शब्दके लिए परिलक्षित है। यह प्रत्यक्षवृत्याश्रित निर्वचन है। निरुक्त में भी सोमका निर्वचन सुप्रसवे धातू से माना गया है।[16]

ऋग्वेद संहितामें परोक्षवृत्याश्रित निर्वचन के भी दर्शन होते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :–

1. "गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतो उद्वंशमिव येमिरे।।"[17]

इस मंत्रमें अर्कका निर्वचन प्राप्त होता है। अर्क शब्द अनेकार्थक है। यास्कने अर्कको देव (सूर्य) अन्न, मन्त्र एवं अर्क वृक्ष माना है। अर्क शब्द में अर्च्

धातुका संकेत है। अर्किणः अर्कसे निष्पन्न मत्वर्थीय प्रत्ययसे युक्त है। यहां अर्कमें स्तुत्यर्थक एवं पूजार्थक अर्च् धातुका योग माना जायेगा, जो देवविशेष या मन्त्रका वाचक होगा। यास्कने अन्नके अर्थमें अर्कको जीवनार्थक अर्च् धातुसे निष्पन्न माना है।[18] अर्च् धातुसे अर्कका संकेत ऋग्वेदमें अन्यत्र भी प्राप्त होता है।[19] अर्क शब्दमें धातुके अनेकार्थक होने की कल्पना परोक्षवृत्ति को संकेत करती है।

2. "पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न विदस्यन्त्यूतयः
यदिवाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम्।।"[20]

इस मन्त्रमें मघ शब्दके लिए मंह् धातु संकेतित है। मंहते क्रिया पदके द्वारा मंह् दाने धातुका स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण होता है, लेकिन मघ शब्दके लिए मंह् धातु स्वाभाविक रूपमें उपस्थित न होकर परोक्षवृत्याश्रित है। अनुस्वार लोप एवं ह का घ वर्ण परिवर्तन प्रत्यक्षवृत्तिके द्वारा नहीं हो सकता। मघ शब्दके लिए मंह् धातुका संकेत ऋग्वेदमें अन्यत्र भी प्राप्त होता है।[21]

3.इन्द्रा विष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना।
सवामंजन्त्व क्तुभिर्मतीनां स स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः।।"[22]

इस मन्त्रमें अक्तु शब्दकी व्याख्या अंज् धातुसे की जा सकती है। अंजन्तु क्रिया पदका प्रयोग उक्त मन्त्रमें स्पष्ट है। अंज् धातुसे निष्पन्न अक्तु शब्दमें प्रत्यक्ष वृत्तिका दर्शन नहीं होता, क्योंकि क् एवं त वर्ण का परिवर्तन प्रत्यक्ष वृत्तिसे संभव नहीं है।

4. ग्रावाणो न सूरयः सिन्धु मातर ,आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा।।"[23]

इस मन्त्रमें अद्रि शब्दके लिए आदर्दिरासः आख्यातका प्रयोग किया गया है। आ+दृ धातु से अद्रि शब्द निष्पन्न होता है। ऋग्वेदमें अन्यत्र भी अद्रि शब्द दृ धातु से संकेतित है।[24] अतः अद्रि शब्द प्रत्यक्ष वृत्याश्रित न होकर परोक्ष वृत्याश्रित है। यास्क भी अद्रि शब्दको आ+दृ धातु से निष्पन्न मानते हैं।[25]

5.एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे।"[26]

यहां निधि शब्दका स्पष्टीकरण हितः शब्दसे हो जाता है। हितः शब्द

धा+क्त प्रत्ययसे निष्पन्न है। धा धातुका हि आदेश सम्भवतः निधि शब्दमें प्रत्यय के जैसा प्रयुक्त है। फलतः अर्थ स्पष्ट करने मात्र उद्देश्यसे युक्त इस निर्वचन को अर्थ निर्वचन कहा जायेगा।

उपर्युक्त निर्वचनोंके परिदर्शनसे स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेदमें प्रत्यक्ष वृत्याश्रित एवं परोक्ष वृत्याश्रित, दोनों प्रकारके निर्वचन प्राप्त होते हैं। निर्वचन क्रममें ध्वनिपरिवर्तन भी स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। ऋग्वेद संहिताके निर्वचन रूपात्मक दृष्टिसे शब्द निर्वचन एवं अर्थ निर्वचन हैं। ध्वन्यंशकी व्याख्या कर शब्दके मूल को स्पष्ट करना शब्द निर्वचन है। ऋग्वेदके इन प्रदर्शनों में अर्च् धातुसे अर्ककी व्याख्या इसी श्रेणीकी है। निरुक्त सिद्धान्त, वर्णागम, वर्ण विपर्यय, वर्णविकार एवं वर्णनाशका आश्रयण भी इन स्थलोंमें होता है।[27] अर्थ निर्वचनमें ध्वन्यात्मक आधारकी उपेक्षा कर भी अर्थ स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया जाता है। ऐसे शब्दोंके ध्वन्यंशकी व्याख्या न होकर भी अर्थ स्पष्ट मात्र हो जाता है। उदाहरण संख्या पांचसे यह स्पष्ट हो जाता है जिसमें निधि शब्दको स्पष्ट करनेके लिए हितः शब्दका प्रयोग वहीं कर दिया गया है।

यजुर्वेद संहितामें निर्वचनोंका स्वरूप :

यजुर्वेदके दो रूप प्राप्त होते हें, 1 – कृष्ण यजुर्वेद एवं 2 –शुक्ल यजुर्वेद। उत्तर भारतमें शुक्ल यजुर्वेद एवं दक्षिण भारतमें कृष्ण यजुर्वेदकी शाखायें विशिष्ट रूपमें उपलब्ध होती हैं। शुक्ल यजुर्वेद चालीस अध्यायोंमें संहितात्मक रूपमें विद्यमान है। कृष्ण यजुर्वेदमें मन्त्र ब्राह्मणात्मक सम्मिलित रूपका दर्शन होता हैं यजुर्वेदके निर्वचनों का स्वरूप द्रष्टव्य है।

1. "वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।[28]

इसमें प्रयुक्त पवित्र शब्द पुनातु क्रियाके साहचर्यसे स्पष्ट हो जाता है। फलतः पवित्र शब्द पु पवने धातुसे व्याख्यात है। इसे प्रत्यक्षवृत्याश्रित निर्वचन माना जायेगा। निरुक्त में भी पवित्र शब्दको पु पवने धातुसे ही निष्पन्न माना गया है।[29]

2. "धूरसि धूर्वधूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामः।
देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्।।"[30]

इस मन्त्रमें धूः शब्द धूर्व् धातुसे व्याख्यात है। यह निर्वचन परोक्षवृत्याश्रित है। धूर्वणक्रियाके कारण धूः शब्द बना इस तथ्यका स्पष्टीकरण उव्वट भी करते हैं।[31] ऋग्वेदमें धूर्व् धातु हिंसार्थक है।[32] धूः गाड़ीके धूरेका वाचक है। धूर्व धातुसे इसका निर्वचन मानने पर अर्थ होगा कष्ट देने वाली वाहिका। निरुक्त मे भी इसी प्रकारका निर्वचन प्राप्त होता है।[33]

3. "धान्यमसि धिनुहि देवान्प्राणायत्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुसे त्वा महीनां पयोसि।"[34]

इस मंत्रमें धान्य शब्द द्रष्टव्य हैं। धिनुहि क्रिया पदके द्वारा धान्यकी निरुक्तिका संकेत प्राप्त होता है। धिन्व् प्रीणने धातुसे धान्यका निर्वचन करना यहां अभीष्ट है। कृष्ण यजुर्वेदमें भी धान्य शब्दका निर्वचन इसी धातु से किया गया है।[35] यद्यपि ऋग्वेदमें धारणार्थक धा धातुसे इसका निर्वचन माना गया है।[36] यह निर्वचन परोक्ष वृत्याश्रित हैं यास्क इसके समानान्तर शब्द धाना को धा धातुसे ही निष्पन्न मानते हैं।[37]

(4) "अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्योऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वाचक्षुषावपश्यामि।

अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे।।[38]

इस मन्त्रमें विष्णु शब्दकी निरुक्ति प्राप्त होती है। विषलृ व्याप्तौ धातुसे विष्णु शब्दकी व्युत्पत्ति यहांकी गयी है। विष्णोः वेष्योऽसि में वेष्यः स्पष्टही विष् धातुसे निष्पन्न है जो विष्णोः शब्दःसे सम्बन्धित है। यहां विष् धातुसे विष्णुः प्रत्यक्षवृत्याश्रित है। यास्कभी विष्णु शव्दको विष्लृ व्याप्तौ धातुसे निष्पन्न मानते है। यद्यपि यास्कने इसके दो और निर्वचन प्रस्तुत किए हैं जिसमें क्रमशः विश् प्रवेशने तथा वि+अश् व्याप्तौ धातुका योग है।[39]

(5) 'गन्धर्वस्त्वा विश्वाबसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्टये यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः। इन्द्रस्य वाहुरसि दक्षिणो विश्वस्या रिष्टये यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडेईडितः मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेणधर्मणा विश्वस्यारिष्टयै यजमानस्य

परिधिरस्यऽ ग्निरिडईडितः ।।"[40]

इस मंत्रमें इड शब्द ईडित क्त प्रत्ययान्त शब्दसे स्पष्ट हो जाता है इड् स्तुतौ धातुसे इड शब्द की व्युत्पति मानी जायगी। महीधरने इड का अर्थ अग्नि माना है जो ईड् स्तुतौ धातुसे निष्पन्न है।[41] ऋग्वेदमें भी इड अग्निका ही वाचक है।[42] यास्कने भी इडको ईड् स्तुतौ धातुसे ही निष्पन्न माना है।[43] यह परोक्ष वृत्याश्रित निर्वचन है।

6. देवसवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।"[44]

इस मंत्रमें केतपूः शब्द का निर्वचन प्राप्त होता है। केत+पूः पवने धातुके योगसे केतपूः शब्द निष्पन्न होता है। केतं+पुनातु शब्दोंके प्रयोग केतपूः के सम्बन्धको स्पष्ट कर देते हैं। यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है। केतुं उपपदके साथ पू पवने धातुका योग इसमें स्पष्टतः दृष्टिगत है।

यजुर्वेदमें ऋग्वेदके बहुत सारे मंत्र पठित हैं। जिनमें मंत्रस्थ शब्दोंके निर्वचन दोनोंमें प्राप्त हैं। यजुर्वेदकी शाखा कृष्ण यजुर्वेद ब्राह्मण संकुल है। परिणामतः मन्त्रोंमें व्याख्यात शब्द तो दोनों शाखाओंमें प्रायः एक हैं। कृष्ण यजुर्वेदके मन्त्रोंकी व्याख्या भागमें भी कुछ शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं। इन निर्वचनोंमें भारतीय निर्वचन सिद्धांतका अनुकरण हुआ है। स्वर लोप, व्यंजन लोप, ह्रस्वीकरण दीर्घीकरण, अल्पप्राणीकरण, महाप्राणीकरण आदि ध्वनिपरिवर्तनके सिद्धांत इन निर्वचनोंमें भी दृश्य होते हैं। कृष्ण यजुर्वेदके निर्वचनका किंचित् परिदर्शन अपेक्षित है :–

1. "सोऽरोदीत् यदरोदीत् तद्रुस्य रूद्रत्वम्"[45]

यहां अरोदीत् क्रियाका सम्बन्ध रूद्रसे स्पष्ट प्रतिलक्षित है अरोदीत् क्रियामें रूद् अश्रुविमोचने धातुका योग है। रूद्र में भी रूद् धातुका योग है। यहां रूद्रत्वका कारण भी स्पष्ट किया गया है। यह प्रत्यक्ष वृत्याश्रित निर्वचन हैं कृष्ण यजुर्वेदकी अन्य शाखाओंमें भी रूद्रका निर्वचन प्राप्त होता है।[46] यास्क भी रूद्रके इस निर्वचनसे सहमत हैं।[47]

2. "यदप्रथत तत्पृथिवी"[48]

यहां पृथिवी व्याख्यात है। पृथिवी शब्दमें प्रथ् विस्तारे धातुका योग है।

इसका ध्वन्यात्मक आधार संगत है। यास्क भी प्रथ् धातुसे ही पृथिवीका निर्वचन मानते हैं।[49] यह परोक्ष वृत्याश्रित है।

3. "यज्जातः पशूनविन्दत तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम्।"[50]

यहां जातवेदस्शब्द का निर्वचन प्राप्त होता है। जातः+अविन्दत् के योगसे जातवेदस् में जन् तथा विद् धातुका योग है। यह निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखता है। निरुक्तमें भी उद्धरणके रूपमें यह प्राप्त होता है।[51]

इन निर्वचनोंके परिदर्शनसे स्पष्ट है कि यजुर्वेदकी दोनों शाखाओं में निर्वचन प्राप्त हैं। इन निर्वचनोंमें कुछ प्रत्यक्ष वृत्याश्रित हैं तथ कुछ परोक्षवृत्याश्रित। शब्दोंकी ऐतिहासिक प्रसिद्धि कृष्ण यजुर्वेदके निर्वचनोंके आधार हैं।

साम संहितामें निर्वचनोंका स्वरूप :—

सामवेद गान प्रधान संहिता है। यों तो वैदिक संहितायें सभी गेय हैं, लेकिन सामके मन्त्रों की गेयता प्रसिद्ध है। सामवेदमें ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के मंत्र भी पठित हैं। अन्य वेदोंकी भाँति सामवेदमें भी निर्वचन प्राप्त होते हैं। सामवेदके बहुत सारे निर्वचन तो ऋग्वेद एवं यजुर्वेदके निर्वचनोंसे मिलते जुलते हैं, क्योंकि वे मंत्र वहां भी पठित हैं। सामवेदके कुछ निर्वचनों का दर्शन अपेक्षित है :—

1. "येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा"[52]

इस मंत्रांशमें पवित्र शब्द व्याख्यात है। पुनते क्रियापदके प्रयोगसे पवित्र संज्ञापदका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। पवित्र शब्दमें पूञ् पवने धातुका योग है। पुनते क्रिया इसी धातुको संकेत करती है। यह निर्वचन प्रत्यक्षवृत्याश्रित है क्योंकि इसमें धातु एवं प्रत्यय स्पष्ट परिलक्षित हैं। धातु का संकेत भी सम्बद्ध अर्थकी ओर उन्मुख है। पवित्र शब्दका निर्वचन यजुर्वेदमें भी इसी प्रकार प्राप्त होता है।[53] निरुक्तमें भी इसी प्रकारका निर्वचन है।[54]

2. "विप्राय गाथं गायत"[55]

इस मंत्रांशमें गाथं शब्दका सम्बन्ध गायत क्रियासे स्पष्ट परिलक्षित है। गायत क्रियामें गै धातुका योग है। गाथं शब्द भी इसी गै धातुसे निष्पन्न है। यह निर्वचन प्रत्यक्षवृत्याश्रित है। ऋग्वेदमें गाथा शब्द गीत या मंत्रका वाचक है।[56]

3. "संवर्तयति वर्तनिं सुजाता"[57]

इस मंत्रांशमें वर्तनिं शब्द व्याख्यात है। सम्बर्तयति क्रियापदके द्वारा वर्तनिम् शब्दका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। वृत् वर्तने धातुके योगसे संवर्तयति क्रिया निष्पन्न होती है। वर्तनिम् शब्दमें भी वृत् धातुका योग है। यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है।

4. "उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु"[58]

इस मंत्रांशमें वरीय शब्द व्याख्यात है। उरु शब्द वृहत् या महान् का वाचक है। निरुक्तमें वरतर या श्रेष्ठतरको वरीय माना गया है।[59] उरु एवं वर समान अर्थमें प्रतिपादित है। दोनों शब्दोंका वृ धातुसे ही निर्वचन सम्भावित है। व का उ सम्प्रसारणके द्वारा हुआ है। "उरुः से ईयसुन् प्रत्यय के द्वारा वरीयस् या वरीयः बनाया जा सकता है यह निर्वचन परोक्षवृत्याश्रित है।

उपर्युक्त निर्वचनोंके परिदर्शनसे स्पष्ट है कि सामवेद संहितामें निर्वचन अन्य संहिताओंके अनुरूप ही लभ्य हैं। इसमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दो वृत्तियों पर आधारित निर्वचन हैं। ध्वनि परिवर्तनकी विभिन्न दिशाएं निर्वचन क्रममें संलक्षित होती हैं।

अथर्व संहितामें निर्वचनोंका स्वरूप :–

अथर्व वेदमें ऋक्, यजुः एवं सामवेदके बहुतसे मंत्र पठित हैं जिनमें प्राप्त निर्वचन सभी वेदोंमें समान हैं। अथर्ववेदमें कुछ स्वतंत्र निर्वचन भी प्राप्त हैं, जो अन्य वेदोंमें नहीं हैं। अथर्ववेदके निर्वचन दर्शनमें निम्नलिखित मंत्र द्रष्टव्य हैं:–

"यददः सम्प्रमती रहाव नदता ह ते
तस्मादा नद्यो नामस्थ ता वा नामानि सिन्धवः।।"[60]

इस मंत्रमें नदी शब्द व्याख्यात है। नदता शब्दसे नदीका सम्बन्ध स्पष्ट प्रतिलक्षित है। नदता शब्दमें नद् अव्यक्ते धातुका योग है। नदी शब्द भी नद् अव्यक्ते धातुके योगसे निष्पन्न है। नदियां प्रवाहकालमें आबाज करती हैं। यास्कने भी नदी शब्दको नद् अव्यक्ते धातुके योगसे ही निष्पन्न माना है।[61] यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है तथा विकसित निर्वचन प्रक्रिया को द्योतित करता है।

2. "यत्प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्, तस्मादापो अनुष्ठन।।"[62]

इस मंत्र में आपः शब्द व्याख्यात है। आप जलका वाचक है। आप्नोत् क्रियापदका सम्बन्ध आपः से है। प्राप्त करने के कारण आप कहलाया। इन्द्र ने उसे प्राप्त किया। इन्द्रः आप्नोत् से आपःका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। अतः आपः शब्द में आप् प्रापणे धातुका योग है। आप्नोत् क्रिया भी आप् धातुसे ही निष्पन्न है। यास्कने भी आप् प्रापणे धातुसे ही आपः शब्दका निर्वचन माना है।[63] लेकिन ऋग्वेदमें आपः शब्दका सम्बन्ध पी पाने धातु से तथा पिन्व् धातुसे माना गया है।[64] अथर्ववेदका निर्वचन ऋग्वेदके निर्वचनकी अपेक्षा अधिक तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक है।

3. "एघोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय
तेजोऽसि तेजोमयि धेहि।।"[65]

इस मंत्रमें समिद् शब्द व्याख्यात है। समेधिषीय से समिद् का सम्बन्ध स्पष्ट है। आचार्य सायण समेधिषीय की व्याख्या दो रूपों में करते हैं – सम् +एध् वृद्धौ धातुसे तथा सम्+इन्ध् दीप्तौ धातुसे।[66] अतः समिद् शब्द में एध् या इन्ध् धातुका योग माना जायेगा। ऋग्वेदमें समिध शब्द सम् +इन्ध दीप्तौ धातु के योग से ही निष्पन्न माना गया है।[67] यजुर्वेदमें भी इस शब्द का निर्वचन प्राप्त होता है।[68] समिद् अग्निका वाचक है। अथर्ववेद का यह निर्वचन अन्य वेदके निर्वचनोंकी अपेक्षा अधिक विकसित माना जायेगा।

4. "क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे।"[69]

इस मंत्रमें अपामार्ग शब्द व्याख्यात है। अपामार्ग एक पौधा विशेषका नाम है, जिसका प्रयोग धार्मिक कृत्योंमें अनिष्ट निवारणके लिए किया जाता है। कृत्या तथा अभिचार कर्ममें इसका विशेष प्रयोग होता है। अपमृज्महे से अपामार्गका सम्बन्ध स्पष्ट है। यहां अप+मृज् धातुसे अपामार्ग का निर्वचन प्राप्त होता है। अप+मृज् से अपामार्गमें उपसर्गके अन्त्य स्वर का दीर्घ, धातुस्थ उपधा की वृद्धि, सम्प्रसारण एवं ज् का ग् में परिवर्तन हुआ है। यह

निर्वचन विकसित निर्वचन प्रक्रियाका परिणाम है।

5. "अयं देवानामसुरो विराजति वशा हि सत्यावरुणस्य राज्ञः।।"[70]

यहां राजन् शब्द व्याख्यात है। विराजति क्रियापदमें राज् धातुका योग है। राज्ञः शब्द भी राज् धातुके योगसे ही निष्पन्न है। राज् धातु दीप्त्यर्थक न होकर ऐश्वर्यार्थक है। ऋग्वेदमें भी राज् धातुसे ही राजन् शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है।[71] निरुक्त में राजाको राज्दीप्तौ धातु से निष्पन्न माना है।[72]

उपर्युक्त अथर्ववेदीय निर्वचनोंके परिदर्शनसे स्पष्ट होता है कि ये निर्वचन पूर्वके निर्वचनोंकी अपेक्षा अधिक विकसित प्रक्रियाके परिणाम हैं। इन निर्वचनोंमें निर्वचन सिद्धांतका परिपालन तो दीख पड़ता ही है ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी सम्बद्ध प्रक्रियाके अनुरूप है। अर्थात्मक आधारकी रक्षा इन निर्वचनोंका मूलाधार है। ध्वन्यात्मक आधारकी रक्षाके बाद अर्थात्मक अनुसंधान पर आधारित निर्वचन अधिक वैज्ञानिक होते हैं। यास्क के निरुक्तमें इन निर्वचनोंके प्रभाव भी प्रतिलक्षित हैं।

संदर्भ संकेत

1. नामानि आख्यातजानि इति शाकटायनो नैरूक्तसमयश्च –नि 1।4, 2. ऋ0 1।9।9, 3. गीर्भिर्गृणन्तो नमसोपसेदिम" – ऋ05 8।4, गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ऋ0 8।46।3, 4. ऋ0 10।71।11, 5. ऋ0 1।10।1 (गायन्ति त्वा गायत्रिणो), 6. गायत्रं गायतेः स्तुतिकर्मणः नि0 1।3, 7. –ऋ0 1।164।50, 8. नि0 3।4, 9. यजयाचयत विच्छप्रच्छरक्षो नङ् – अष्टा0 3।3।90, 10. ऋ0 1।142।2, 11. नव्यं नव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि–ऋ0 159।4 (2।3।6, 8।13।14, 9।22।6 आदि), 12. ऋ0 6।45।15, 13. ऋ0 6।66।9, 14. ऋ0 8।1।17।15. ऋ0 10।106।1, 16. नि0 11।1, 17. ऋ0 1।10।1, नि0 5।1, 18. नि0 5।1, 19. ऋ0 1।85।2, 1।7।1, 1।66।7, 20.ऋ0 1।11।3, 21. शूरो मघा च मंहते –ऋ0 9।1।10, एवं ऋ0 4।17।8, 6।68।2, 8।1।30, 22. ऋ0 6।69।3, 23. ऋ0 10।78।6, 24. ऋ0 4।1।14, 25. नि0 4।1, 26. ऋ0 7।67।7, 27. वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्ण विकारनाशौ। धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्त दुच्यते पंचविधं निरुक्तम्।।" नि0दु0 वृ0 1।1, 28. शु0 यंजु0 1।3, 29. नि0 5।2, 30. शु0 यजु0 1।8, 31. 'धूर्वण क्रियानिमित्तंहि ते नाम' उव्वट भाष्य

(द्र0) शु0 यजु0 1 ।8, 32.ऋ0 6 ।75 ।9, 33. नि0 3 ।9 34. शु0 यजु0 1 ।20, 35. का0 सं0 1 ।6, 36. "विश्वं स देव, प्रतिवारमग्ने, धत्ते धान्यं प्रत्यते वसव्यैः" ऋ0 6 ।13 ।4, 37.धाना=भाष्ट्रे हिता भवन्ति । फले हिता भवन्तीतिवा – नि0 5 ।12, 38. शु0 यजु0 1 ।30, 39. अथ यद् विषितोभवति, तद्विष्णुर्भवति,=विशतेर्वा, व्यश्नोतेर्वा नि0 12 ।2, 40. शु0 यजुः 2 ।3, 41. द्र0 मही0 भाष्य0–शु0 यजु0 2 ।3, 42. ऋ0 3 ।4 ।3, 10 ।17 ।9, 43. नि0 8 ।2, 44. शु0 यजुः 11 ।7, 45. तै0 सं0 1 ।5 ।1 ।1, 46. यत्समरुजतद्रुद्रस्य रूद्रत्वम् – का0 सं0 25 ।1, 47. नि0 10 ।1, 48. काठ0 सं0 7 ।2, 49. नि0 1 ।4 (प्रथनात् पृथिवीत्याहुः), 50. मैत्रा0 सं0 1 ।8 ।2, 51. नि0 7 ।5, 52. सा0 वे0 5 ।2 ।8 ।5, 53. शु0 यजुः 1 ।3, 54. 'पवित्रं पुनातेः' नि0 5 ।2, 55. सा0 वे0 सं0 446, 56. ऋ0 1 ।7 ।1, 8 ।32 ।1, 8 ।71 ।14, 57. सा0 सं0 451, 58. सा0 सं0 1870, 59. नि0 8 ।2, 60. अथर्व0 सं0, 61. "नद्यः कस्मात् ? नदना इमा भवन्ति शब्दवत्यः" नि0 2 ।7, 62. अथर्व सं0 3 ।13 ।2, 63. आपः आप्नोतेः' नि0 9 ।3, 64. त्वं त्यां न इन्द्रदेव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन्' – ऋ0 1 ।63 ।8, पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयोध ृतवद्विदथेष्वाभुवः – ऋ0 1 ।64 ।6, तस्मा आपः संयतः दीपयन्ति, तस्मिन्क्षत्रममवत्वेषमस्तु – ऋ0 5 ।34 ।9, 65. अथर्व सं0 7 ।89 ।4, 66. द्र0 सा0 भा0 – अथर्व0 7 ।89 ।4, 67. ऋ0 6 ।15 ।7, 68. एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजासि तेजोमयि धेहि समाववर्ति पृथिवी समुषाः समुसूर्यः । समुविश्वमिदं जगत् । वैश्वानर ज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा । । 20 ।23, 69. अथर्व0 4 ।17 ।6, 70. अथर्व0 1 ।10 ।1, 71. विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्रराजथः ईशाना पिप्यतं धियः । । ऋ0 5 ।71 ।2, 72. नि0 2 ।1 ।

(ख) ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निर्वचनोंका स्वरूप

वेदोंकी व्याख्याका समुदाय ब्राह्मण भाग है । प्रत्येक वेदके अलग अलग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं । प्रायः सभी ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निर्वचनकी उपलब्धि होती है । वेदार्थ प्रकाशनके लिए निर्वचन उत्तम प्रक्रिया है । वेदमें निर्वचनके दो प्रकार दृश्य हैं । प्रत्यक्ष वृत्याश्रित एवं परोक्ष वृत्याश्रित । ब्राह्मण ग्रन्थोंमें अतिपरोक्ष वृत्याश्रित निर्वचन भी उपलब्ध होते हैं । यद्यपि अतिपरोक्ष वृत्ति टीकाकारोंकी कल्पना मालूम पड़ती है क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में जिसे परोक्षवृत्ति कहा गया है

उसे टीकाकारोंके अनुसार अतिपरोक्ष वृत्ति कहा गया है।[1] यास्क के निरूक्त में इन तीनों वृत्तियों के दर्शन होते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थोंके निर्वचनोंका स्वरूप दर्शन :–

1. "आज्यजन्ति एतेन इति आज्यम्"।[2]

यहां आज्यम् शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। आ+अञ्ज् धातुके योग से आज्य शब्दका निर्वचन स्पष्ट हो जाता है। यह परोक्षवृत्याश्रित निर्वचन है।

2. "यदब्रुवन्मेदं प्रजापतेरेतो दुषदिति तन्मादुषमभवत्। तन्मादुषस्य मादुषत्वम्। मादुषं ह वै नामैतद् यन्मानुषं सन् मानुषमित्याचक्षते परोक्षेण।"[3]

इस उद्धरणमें मादुष शब्द एवं मादुषसे निष्पन्न मानुष शब्द प्रतिपादित है। मादुषतसे मानुष बना – प्रजापतिका वीर्य दुषित न हो यह मादुषत् शब्द है मादुष, यही मादुषका मादुषत्व है। पुनः परोक्षरूप में मादुष ही मानुष कहा गया। मादुषके द का न में परिवर्तन हुआ। मा–दुषतसे मादुष प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है तथा मादुषसे मानुष परोक्ष वृत्याश्रित। वस्तुतः मादुषत् को प्रत्यक्षवृत्तिका, मादुषको परोक्ष वृत्तिका तथा मानुषको अतिपरोक्षवृत्तिका समझना चाहिए।

3. "स वा एषोऽग्निरेव यदग्निष्टोमः। तं यदुस्तुवंस्तस्मादग्निस्तोमः तमग्निस्तोमं सन्तमग्निष्टोम इत्याचक्षते परोक्षेण।"[4]

यहां अग्निस्तोम तथा अग्निष्टोम विवेचित है। स्तु धातुसे स्तोम तथा अग्नि–स्तोमसे अग्निष्टोम स्पष्ट है, तथा वही अग्नि स्तोम अग्निष्टोम कहलाया। इसमें स्तु धातुसे स्तोम प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है तथा अग्निस्तोमसे अग्निष्टोम परोक्षवृत्याश्रित।

4. "विराजति इति विराट्"।[5]

यहां विराट् शब्द प्रतिपादित है। विराट् शब्दमें वि+राज् धातुका योग है। यह प्रत्यक्षवृत्याश्रित निर्वचन है।

5. "तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः आभूतिरेषा भूतिर्बीजमेतन्निधीयते।।"[6]

इस उद्धरणमें जाया शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। जायाका जायते

क्रियासे सम्बन्ध स्पष्ट प्रतिलक्षित होता है। जायाशब्द में जन्प्रादुर्भावे धातुका योग है। पति ही जिसमें पुत्र रूपमें जन्म लेता है वही जाया है।[7] यह निर्वचन प्रत्यक्षवृत्त्याश्रित है।

6. "वृत्रो ह वा इदं सर्वं वृत्वा शिश्ये यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी। स यदिदं सर्वं वृत्वा शिश्ये, तस्माद् वृत्रो नाम।"[8]

यहां वृत्र शब्द व्याख्यात है। वृत्वासे वृत्रका सम्बन्ध माना गया है। यह निर्वचन कर्माश्रित है। वृत्रनाम पड़नेके कारणको स्पष्ट करना इस निर्वचनका उद्देश्य है। इसे परोक्ष वृत्याश्रित निर्वचन माना जायेगा।

7. "स उ एव मखः स विष्णुः। तत इन्द्रो मखवानभवत्। मखवान्हवैतं मधवानित्याचक्षते परोक्षम्।।"[9]

इसमें मधवान् शब्द विवेचित है। मख ही विष्णु है। फलतः इन्द्र मखवान् कहलाये। पुनः मखवान्ही परोक्ष रूपमें मधवान् हो गया। यहाँ महाप्राणवर्ण ख का महाप्राण ध में परिवर्तन पाया जाता है। यह निर्वचन परोक्षवृत्याश्रित है।

8. "स होवाच इन्धो वै नामैष योऽयन्दक्षिणेऽक्षन्पुरूषः तं वा एतमिन्ध सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेणैव।"[10]

इस उद्धरणमें इन्द्र शब्दका निर्वचन हुआ है। उसने कहा इन्ध नाम ही यह है जो दक्षिण आंखमें पुरूष है, यही इन्ध बादमें इन्द्र कहलाया। इन्धसे इन्द्र शब्द परोक्षवृत्याश्रित है। यहां अल्पप्राणीकरण स्पष्ट है।

9. "एता शक्वर्य एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुं तद्याभिर्वृत्रमशकद्धन्तुं तस्माच्छक्वर्यः।"[11]

यहां शक्वरी शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। इन शक्वरी ऋचाओंसे इन्द्र वृत्रको मारनेमें समर्थ हो सके। अतः जिनसे वृत्रको मारनेमें समर्थ हो सके उसीसे वह शक्वरी कहलाया। इस शब्दमें शक् शक्तौ धातुका योग है। यह निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखता है। यह भी परोक्ष वृत्याश्रित है। निरुक्तमें भी इस निर्वचनका उल्लेख है।[12]

10. "तेनाऽसुनाऽसुरानसृजत। तदसुराणामसुरत्वम्[13]

इस निर्वचनमें असुन् शब्दसे असुरका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

11. "दिवा देवत्राऽभवत्। तदनुदेवानसृजत। तद्देवानां देवत्वम्।"[14]

इस उद्धरणमें देव शब्द व्याख्यात है। देवका सम्बन्ध दिवासे जोड़ कर इसके अर्थको स्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है। देव शब्द में दिव् धातुका योग माना जायेगा।

12. "अमुं स लोकं नक्षते तन्नक्षत्राणां नक्षत्रम्"[15]

यहां नक्षत्र पदका निर्वचन हुआ है। नक्षतसे नक्षत्रका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। निरुक्तमें भी नक्ष् गतिकर्मा धातुसे नक्षत्रका निर्वचन माना गया है।[16]

13. गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः गायतोमुखादुत्पतदिति च ह ब्राह्मणम्"[17]

यहां गायत्री शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। यह स्तुत्यर्थक गै धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि गाते हुए (ब्रह्मा के) मुखसे निकल पड़ी यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है। निरुक्तमें भी इसी प्रकारका निर्वचन प्राप्त होता है।[18]

14. जगति गततमं छन्दो जज्जगतिर्भवति क्षिप्रगतिर्जज्मला कुर्वन्न सृजतेति ह च ब्राह्मणम्।"[19]

इस उद्धरणमें जगती शब्द व्याख्यात है। जगतीमें गम् धातुका योग माना गया है। निरुक्तमें भी इसी प्रकारका निर्वचन प्राप्त होता है।[20]

15. "तद् यत्समवद्रवन्त तस्मात् समुद्रउच्यते"[31] अथ वै समुद्रो योऽयं पर्वत एतस्माद्वै समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि समुद्रवन्ति।[22]

इन उद्धरणोंमें समुद्र शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। समुद्र शब्दमें सम् + उत् + द्रु गतौ धातुका योग है। निरुक्तमें भी इसी प्रकारका निर्वचन प्राप्त होता है।[23] यह निर्वचन प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है।

उपर्युक्त निर्वचनोंके दर्शनसे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थोंमें विषयानुरूप निर्वचन प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के तीन प्रतिपाद्य विषय हैं, अधिभूत, अध्यात्म एवं अधिदैव। प्रायः ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्वचनों का झुकाव इन्हीं तीनों विषयों की ओर है। इन निर्वचनों में कर्मकाण्ड आदि विविध विषयों से सम्बद्ध तत्त्व एवं रूढ़ियां प्रवल हैं। फलतः कुछ निर्वचनों का ध्वन्यात्मक

आधार पूर्ण संगत प्रतीत नहीं होता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इन निर्वचनोंको पूर्ण स्पष्ट नहीं माना जा सकता। इसकी अपेक्षा संहिताओं के निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अधिक स्पष्ट हैं तथापि ब्राह्मण ग्रन्थकी निरुक्तियोंकी ऐतिहासिकता एवं वैज्ञानिकता उपेक्षणीय नहीं। वैदिक संहिता की अपेक्षा ब्राह्मण ग्रन्थोंमें निर्वचनका विकसित रूप दृश्य होता है। आचार्य यास्कने निर्वचन प्रसंगमें ब्राह्मण ग्रन्थके बहुत सारे सम्बद्ध उद्धरणोंको उपस्थापित किया है जो निर्वचन सिद्धान्तके अनुकूल हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. "त्रिविधा हि शब्द व्यवस्था–प्रत्यक्षवृत्तयः परोक्ष वृत्तयोऽति परोक्ष–वृत्तयश्च" – नि0 दु0 वृ0 1।1, 2. ऐ0 ब्रा0 1।2, 3. ऐ0 ब्रा0 3।33, 4. ऐ0 ब्रा0 3।43, 5. ऐ0 ब्रा0 1।6, 6. ऐ0 ब्रा0 33।1।7, 7. "यद् यस्मात्कारणात् अस्यां गर्भधारिण्यामयं पितापुत्ररूपेण पुनर्जायते–ऐ0 ब्रा0 सा0 भा0, 8. श0 ब्रा0 1।1।3।4, 9. श0 ब्रा0 14।1।1।13, 10. श0 ब्रा0 14।6।11।1, 11.कौषी0 ब्रा0 23/2, 12. नि0 1/3 (शक्वर्यः ऋचः शक्नोतेः) 13. तै0 ब्रा0 2।3।8।2, 14. तै0 ब्रा0 2।3।8।4, 15. तै0 ब्रा0 5।2।5।6, 16.नि0 3।4, 17. दै0 ब्रा0 3।2, 3, 18. नि0 7।3, 19. दै0 ब्रा 3।17, 20. नि0 7।3, 21. गो0 ब्रा0 1।1।7, 22. श0 प0 ब्रा0 1।4।2।2।2, 23.नि0 2।3।

(ग) आरण्यकों में निर्वचन का स्वरूप

ब्राह्मण ग्रन्थोंका वह भाग जो अरण्यपठित है तथा वानप्रस्थियोंके कर्मोका विधान करता है, आरण्यकके नामसे अभिहित है। वानप्रस्थियों के लिए यह सर्वाधिक उपयोगी है क्योंकि यह उनके सारे वैदिक कृत्योंका विवरण प्रतिपादन करता है। आरण्यकोंमें भी निर्वचन उपलब्ध होते हैं। पदोंको स्पष्ट करनेके लिए उनकी निरुक्ति दी गयी है। ये निरुक्तियां ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व रखती हैं। कुछ निर्वचनोंका दिग्दर्शन अपेक्षित है :–

(1.) "मधुच्छन्दति इति मधुच्छन्दा"[1]

छन्दति से निष्पन्न मधुच्छन्दामें मधु उपपद एवं छदिरावरणे धातुका योग है। यह प्रत्यक्षवृत्त्याश्रित निर्वचन है तथा कार्मिक आधार रखता है। मधुच्छन्दा एक ऋषि विशेषका नाम है।

(2.) "अशीर्यत इति शरीरम्"[2]

इसमें शरीर शब्दका निर्वचन हुआ है। शरीर शब्दमें शृ हिंसायां धातु का योग है जो अशीर्यत् क्रिया पदसे स्पष्ट हो जाता है। यास्क भी शरीर शब्दके निर्वचनमें शृ हिंसायां धातुका योग मानते हैं।[3] आरण्यकका यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जायेगा।

(3.) "स इरामयो यदिरामयस्तस्माद्धिरण्यमयः"[4]। "उत्थापयति इति उक्थम्"[5]। "छादयति येन तत् छदः"[6]। "अत्रायत इति अत्रिः"[7]

इन उद्धरणोंमें हिरण्मयः, उक्थम्, छदः तथा अत्रिः शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं। हिरण्यमय शब्दको इरामयसे निष्पन्न माना गया है। उक्थम् में उत् उपसर्गपूर्वक स्था धातुका योग है छदः शब्द छदिरावरणे धातुसे निष्पन्न है। अत्रिमें अत् या अद् + त्रि का दर्शन होता है। यद्यपि इन निर्वचनोंमें ध्वन्यात्मक संगति पूर्ण उपयुक्त नही है फिर भी इन सबोंका भाषा वैज्ञानिक महत्त्व है।

(4.) देवानां वामः वामदेवः। "गृत्सः (प्राणः) चासौ मदः (अपानः) गृत्समदः।[8]

यहां वामदेव तथा गृत्समदके निर्वचन प्राप्त होते हैं। इन निर्वचनोंमें समासकी प्रक्रियाका आश्रयण है। शब्दोंके इतिहास अन्वेषणका प्रायः सार्थक प्रयास किया गया है।

(5.) "प्रजा वै वाजस्ता एष विभर्ति भरद्वाजः।[9]

यहां भरद्वाज शब्दका निर्वचन प्राप्त होता हैं। इसमें समासकी प्रक्रिया स्पष्ट है। प्रजा ही वाज कहलाती है तथा प्रजाओंका धारण करने वाला भारद्वाज। यहां भृधारणपोषणयोः धातुके योगसे निष्पन्न विभर्ति क्रियाका भर– भृ–भार पूर्वपदस्थ हैं तथा उत्तर पद बाज प्रजाका वाचक है।

(6) "एभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽर्चते इति ऋक्"[10]

इसमें ऋक् शब्दका निर्वचन हुआ है। इस शब्द में पूजार्थक अर्च् धातुका योग है। यास्क भी ऋक् शब्दको अर्च् पूजायां धातुके योगसे ही निष्पन्न मानते है। यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक महत्त्वसे युक्त है। ऋचाओं की धार्मिक मान्यताका स्पष्टीकरण इससे हो जाता है।

(7) "तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयंम्वभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवन्।
तदृषीणामृषित्वम्"[11]

यहां ऋषि शब्दका निर्वचन प्राप्त है। स्वयंभू ब्रह्माने तपस्या करते हुए स्वयं इन्हें देखा। इसलिए ये ऋषि कहलाये तथा यही ऋषिका ऋषित्व है। ऋषि शब्दमें ऋष् दर्शने धातुका योग स्पष्ट है। निरुक्तमें भी ऋषि शब्दको ऋष् धातुसे ही निष्पन्न माना है।[12]

आरण्यक ग्रन्थोंके उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि इन ग्रंथोंमें भी निर्वचनकी प्रक्रिया वैज्ञानिक रही है। ऐतिहासिक एवं विविध अर्थानुसंधान में निर्वचनगत ध्वन्यात्मक औदासिन्य स्पष्ट है।

सन्दर्भ संकेत

1 – ऐ0आ0 1 ।1 ।3, 2 – ऐ0आ0 2 ।1 ।4, 3 – नि0 2 ।5 (शरीरं शृणातेः) 4 – ऐ0आ0 2 ।1 ।3, 5 – ऐ0 आ0 2 ।1 ।4, 6 – ऐ0 आ0 2 ।1 ।6, 7 – ऐ0 आ0 2 ।2 ।1, 8 – ऐ0 आ0 2 ।2 ।1, 9 – ऐ0 आ0 2 ।2 ।2, 10 – ऐ0 आ0 2 ।2 ।2, 11 – तै0 आ0 2 ।9 13 –"तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयंम्वभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवन् तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।। (ऋषिः दर्शनात्) नि0 2 ।3।

(घ) उपनिषदों में निर्वचनों का स्वरूप

उपनिषद् ब्रह्मवोधक शास्त्र है। इसे वेदान्त भी कहा गया है। प्रत्येक वेदके अलग अलग उपनिषद् मिलते हैं। उपनिषदोंमें भी निर्वचन की उपलब्धि होती है। निर्वचन शास्त्रकी परम्परामें उपनिषदोंके निर्वचन का परिदर्शन भी आवश्यक होगा।

उपनिषदोंसे सम्बद्ध निर्वचनोंके कुछ उदाहरण :–

1. (क) ते होचुः क्वनु सोऽभूद्यो न इत्थमसक्तेत्ययमास्येऽन्त रितिसोऽयास्य आंगिरसोऽङ्गानां हि रसः।।[1]

(ख) तं हांगिरा उद्गीथमुपासां चक्रे एतमुएवांगिरसं मन्यन्ते अंगानां रसः[2]।

इन अंशोंमें अंगिरसका निर्वचन प्राप्त होता है। दोनोंमें अंगिरसको अंगोंका रस माना गया है। द्वितीय उद्धरणके अनुसार अंगिरस प्राण है – अंगिरा ऋषि

ने प्राणके रूपमें ही उद्‌गीथकी उपासना की। अतः इस प्राण को ही अंगिरस मानते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण अंगोंका रस है। यह निर्वचन समासाश्रित है।

2. "एष एव उ वृहस्पतिर्वाग्वै वृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु वृहस्पतिः।।"[3]

यहां वृहस्पति शब्द व्याख्यात है। इसके अनुसार वाक्‌को वृहती माना गया है तथा उसका यह पति वृहस्पति। वृहतां पतिः वृहस्पतिः। यह निर्वचन भी समास पर आधारित है।

3. एष उ एव ब्रह्मणस्पति वाग्वै ब्रह्म तस्य एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः।।[4]

इस उद्धरणमें ब्रह्मणस्पतिः शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। वाग्‌को ब्रह्म कहते हैं अर्थात् ब्रह्म वाक्‌का वाचक है। तथा उस ब्रह्म (वाक्) के पति को ब्रह्मणस्पति कहा जाता है। यह निर्वचनभी समास पर आधारित है।

4. "एष उ एव साम वाग्वैसामैष सा चामश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्।"[5]

यहां साम शब्दका निर्वचन हुआ है। इसके अनुसार वाक् ही साम है तथा यह अम प्राण है। सा + अम > साम कहलाया। यह सामका सामत्व है। यहां प्रतिपद निर्वचन हुआ है। इसे अर्थ निर्वचन माना जायेगा।

5. "एष उ वा उद्‌गीथ प्राणो वा उत्प्राणेन हीदं सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच्च गीथाचेति स उद्‌गीथः।"[6]

यहां उद्‌गीथका निर्वचन प्राप्त है – यह ही उद्‌गीथ है। प्राण ही उत् है, प्राणके द्वारा ही यह सब उतब्ध है। वाक् ही गीथ है, वह उत् है और गीथा भी, इसलिए उद्‌गीथ कहलाया। इसे भी अर्थ निर्वचन माना जायेगा।

6. "तेन तं ह वृहस्पतिरूद्‌गीथमुपासां चक्र एतमु एव वृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्धि वृहती तस्या एष पतिः।।"[7]

यहां भी वृहस्पतिका निर्वचन प्राप्त होता है – वृहस्पतिने उस प्राण के रूप में उद्‌गीथकी उपासना की। लोग इस प्राणको ही वृहस्पति मानते हैं, क्योंकि वाक्‌ही वृहती है और यह उसका पति है। वृहदारण्यकोपनिषद् में भी

इस पदकी व्याख्या हुई है[8] यह निर्वचन समासाश्रित है।

7. "देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशंस्ते
छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयंस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।।"[9]

यहां छन्द शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। मृत्युसे भयभीत देवताओं ने त्रयी विद्यामें प्रवेश किया। उन्होंने अपनेको छन्दोंसे आच्छादित किया। उन्होंने जो उनके द्वारा अपनेको आच्छादित किया वही छन्दोंका छन्दस्त्व है। स्पष्ट है छन्दस् शब्दमें छद् धातुका योग है। छद् धातुसे छन्दः शब्दका निर्वचन निरुक्तमें भी प्राप्त होता है।

उपनिषदोंके इन निर्वचनोंसे स्पष्ट होता है कि अर्थाभिव्यक्तिके लिए यहां निर्वचन किए गए हैं। इन निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे ये निर्वचन पूर्णतः उपयुक्त नहीं माने जायेंगे। इन निर्वचनोंमें इतिहास प्रकट है। अतः इन निर्वचनोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। उपनिषदोंके निर्वचन प्रायः अर्थ निर्वचन हैं तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी महत्त्व रखते हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. वृ0 उ0 1 ।3 ।8, 2. छा0 उ0 1 ।2 ।10, 3. वृ0 उ0 1 ।3 ।20, 4. वृ0 उ0 1 ।3 ।21, 5. वृ0 उ0 1 ।3 ।22, 6. वृ0 उ0 1 ।3 ।21, 7. छा0 उ0 1 ।2 ।11, 8. वृ0 उ0 1 ।3 ।20, 9. छा0 उ0 1 ।4 ।2।

(ङ) वृहद्देवतामें निर्वचनोंका स्वरूप :

शौनकीय वृहद्देवताका वैदिक साहित्यमें बहुत महत्त्व है। ऋग्वेदके देवताओं एवं पुराकथाओंका सारांश इसमें उल्लिखित हैं। देवताज्ञान के लिए यह बड़ा ही उपादेय है। इसमें भी निर्वचन उपलब्ध होते हैं। वृहद्देवता के कुछ निर्वचनोंका परिदर्शन अपेक्षित है :—

1. "वनस्पति तु यं प्राहुरयं सोऽग्निर्वनस्पतिः
अयं वनानां हि पतिः पाता पालयतीति वा।।"[1]

इस पद्यमें वनस्पति शब्द व्याख्यात है। वनस्पति वनके पतिके रूप में अग्निका एक रूप है। वह वन का रक्षक है अथवा पालक। वनस्पति शब्द समासाश्रित है। पतिको पा रक्षणे एवं पा पालने धातुसे निष्पन्न माना गया है। निरुक्तमें भी इसी प्रकारका निर्वचन प्राप्त होता है।[2]

2. "अरोदीदन्तरिक्षे यद् विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्
चक्षुर्भिर्ऋषिभिस्तेन रूद्र इत्यभिसंस्तुतः।।"[3]

यहां रूद्र व्याख्यात है। अरोदीत् क्रिया पदका सम्बन्ध रूद्रसे स्पष्ट परिलक्षित है। अरोदीत्में रूद् धातुका योग है। रूद्रमें भी रूद् धातु है। निरुक्तमें रूद्रके अनेक निर्वचन प्राप्त होते हैं जिनमें एक यह भी है।[4]

3. इरां दृणाति यत्काले मरूद्भिः सहितोऽम्बरे
रवेन महता युक्तस्तेनेन्द्रमृषयोऽब्रुवन्।।"[5]

इस श्लोकमें इन्द्रका निर्वचन प्राप्त होता है। इरां (जल को) दृणाति से इन्द्र माना गया है। इरा + दृ विदारणे धातुका योग इन्द्र शब्दमें स्पष्ट है। इसने गंभीरगर्जनके साथ जलको प्रकट किया। फलतः इन्द्र कहलाये। निरुक्तमें इन्द्रके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं जिनमें प्रथम निर्वचन इससे साम्य रखता है।[6]

4. "यत्तु प्रच्यावयन्नेति घोषेण महता मृतम्
तेन मृत्युमिमंसन्तं स्तौति मृत्युरिति स्वयम्।।"[7]

इस श्लोकमें मृत्युपद व्याख्यात है। मृतम् च्यावयतिसे मृत्यु माना गया है। इसमें मृत + च्यु धातुका योग है। निरुक्तमें यास्क शतवलाक्ष्य मौद्गल्यका मत निर्देश करते हैं जिसके अनुसार भी मृत्यु शब्दमें मृत + च्यु धातु का योग है।[8]

5. विष्णोतेर्विशतेर्वा स्याद् वेवेष्टेर्व्याप्ति कर्मणः
विष्णुर्निरुच्यते सूर्यः सर्वं सर्वान्तरश्च यः।।[9]

इस श्लोकमें विष्णुः पद व्याख्यात है। विष्णुपद में विष् व्याप्तौ या विश् प्रवेशने या व्याप्ति कर्मा वेविश् धातुका योग है। यहां विष्णु सूर्यके वाचक हैं जो सर्वत्र व्याप्त हैं। निरुक्तमें भी इसी प्रकार विष्णु शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है।[10]

6. "सूर्यः सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा
सु ईर्यत्वाय यात्येषु सर्वकार्याणि संदधत्।।"[11]

इस श्लोकमें सूर्य शब्द व्याख्यात है। सूर्य शब्दमें – सृगतौ धातु या सु

+ ईर् धातुका योग हैं। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार रखता है। द्वितीय निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। निरुक्तमें भी सूर्य शब्द को सृ धातुसे निष्पन्न माना गया है।[12]

7. चारू द्रमति वा चायंश्चायनीयो द्रमत्युत
चमेः पूर्वं समेतानि निर्मिमीतेऽथ चन्द्रमा।।[13]

इस श्लोकमें चन्द्रमा शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। चन्द्रमाके निर्वचन में कई कल्पनाएं स्पष्ट हैं – चारू + द्रम् धातु, चायृ धातु + द्रम् धातु, चायनीय + द्रम् धातु आदि। निरुक्तमें भी इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं।[14]

वृहद्देवताके उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि ये विकसित निर्वचन प्रक्रियाके परिणाम हैं। इसके निर्वचन प्रायः निरुक्त पर ही आधारित हैं। ये निर्वचन देवताओंके स्वरूप एवं कर्मका आधार रखते हैं। कहीं कहीं ध्वन्यात्मकताका अभाव भी पाया जाता है।

संदर्भ संकेत :–

1. वृ0 दे0 3 ।26, 2.नि 8 ।1, 3. वृ0 दे0 2 ।34, 4. नि0 10 ।1, 5.वृ0 दे0 2 ।36, 6. नि0 10 ।1, 7. वृ0 दे0 2 ।60, 8. नि0 11 ।1, 9. वृ0 दे0 2 ।69, 10. अथयद्विषितोभवति तद्विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा – नि0 12 ।2, 11. वृ0 दे0 7 ।12, 12. सरतेर्वा सुवतेर्वा – नि0 12 ।2, 13. वृ0 दे0 7 ।129, 14. नि0 11 ।1।

(च) पुराणमें निर्वचनोंका स्वरूप

पुरानवं भवति[1] अर्थात् पहले वह नवीन होता है, इस निर्वचनके अनुसार पुरा + (नव) – ण ही पुराण है। न का ण णत्व का परिणाम है। पुराण भारतीय आख्यानोंका विपुल समूह हैं।[2] सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्वर एवं वंशानुचरितोंका आख्याता पुराण है।[3] पुराणोंकी संख्या 18 है।[4] पुराणोंमें भी निर्वचन प्राप्त होते हैं। प्रायः किसी नाम विशेषके मूलान्वेषण में निर्वचन दिये गये हैं। पुराणोंके कुछ निर्वचन द्रष्टव्य हैं –

1. आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।"[5]

इस श्लोकमें नारायण संज्ञापदका निर्वचन हुआ हैं नरसे उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहते हैं वह नारही उसका प्रथम अयन अर्थात् निवास स्थान है इसलिए विष्णुको नारायण कहते हैं। विष्णुका समुद्रशयन प्रसिद्ध है। नारायणसंबंधी निर्वचनका यह श्लोक अग्नि पुराण एवं मनुस्मृतिमें भी प्राप्त होता है।[6] ब्रह्मवैवर्त पुराणमें भी नारायण शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है।

सारूप्यमुक्तिवचनो नारेति च विदुर्बुधाः
यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणस्मृतः।
नाराश्च कृतपापाश्चाऽप्ययनं गमनं स्मृतम्
यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः।
नारश्च मोक्षणं पुण्यं अयनं ज्ञानमीप्सितम्
तयोर्ज्ञानं भवेद्यस्मात् सोऽयं नारायणः स्मृतः।।

ब्र० वै० पु० (हला० 387)

2. मैवं भो रक्ष्यतामेष यैरुक्तं राक्षसास्तु ते
ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु जक्षणात्।।[7]

इस श्लोकमें राक्षस एवं यक्ष शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं इनकी रक्षा करो—ऐसा कहनेके कारण रक्ष् रक्षणे धातुसे राक्षस कहलाये। जिन लोगोंने कहा हम खायेंगे फलतः ये जक्षण क्रियाके कारण यक्ष कहलाये। राक्षस शब्दमें रक्ष् धातु एवं यक्ष शब्दमें जक्ष् धातुका योग माना गया है। जक्ष् धातुसे यक्षमें ध्वन्यात्मक औदासिन्य है।

3. "प्राण प्रदाता स पृथुर्यस्माद्भूमेरभूत्पिता
ततस्तु पृथिवी संज्ञामवापाखिलधारिणी।"[8]

इस श्लोकमें पृथिवीका विवेचन प्राप्त होता है। पृथु प्राण दान करने के कारण भूमिके पिता हुए। अतः सर्वभूतधारिणीकी पृथिवी संज्ञा हुई। यहां पृथुसे पृथिवी संज्ञाका इतिहास स्पष्ट होता है। इस निर्वचनमें अर्थात्मक संकीर्णता है। पृथुके महत्त्व प्रतिपादनके लिए सम्भवतः ऐसी कल्पनाकी गई है। निरुक्तमें 'प्रथनात् पृथिवीः की प्राप्ति होती है।[9]

4. एवं प्रभावस्स पृथुः पुत्रो वेनस्य वीर्यवान्

यज्ञे महीपतिः पूर्वा राजाभूज्जनरञ्जनात् ।।[10]

यहां राजा शब्दका निर्वचन किया गया है। जनरञ्जनके कारण राजा कहलाता है राजा शब्दमें राज् धातुका योग माना जायेगा। कालिदासने भी राजा प्रकृति रञ्जनात्[11] कह कर इसका समर्थन किया है।

5. तस्यशापभयाद्भीता दाक्षिण्येन च दक्षिणा
प्रोक्ता प्रणय भंगातिर्वेदिनी न जहौ मुनिम् ।।[12]

इसमें दक्षिणा शब्द दाक्षिण्यके कारण बना यह निरुक्ति है। दक्षिणा एक नायिका भेद भी है। अन्य नायकमें आसक्त रहती हुई भी जो अपने पूर्व नायकको गौरव, भय, प्रेम एवं सद्भावके कारण नहीं छोड़ती है उसे दक्षिणा समझना चाहिए। दाक्षिण्य गुणके कारण ही उसे दक्षिणा कहा जाता है।[12]

6. तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः
अपत्यं कृतिकानां तु कार्तिकेय इतिस्मृतः।।[13]

यहां स्पष्ट है – कृतिकाओंका पुत्र कार्तिकेय कहलाया जो तद्धितान्त है।

7. यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः
तस्मात्स प्रोच्यते विष्णुः विशेर्धातोः प्रवेशनात् ।।[14]

इसमें विष्णु पद व्याख्यात है। विश् प्रवेशने धातुके योगसे विष्णु शब्द निष्पन्न हुआ है। निरुक्तमें भी इसका निर्वचन प्राप्त होता है।[15]

8. सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः
राहुप्रभृतयस्तस्यां सैंहिकेयाइति श्रुताः।।"[16]

इसमें सिंहिकासे सैंहिकेयका निर्वचन प्राप्त होता है। यह तद्धितान्त शब्द है। निर्वचनका आधार भी तद्धित है।

9. यस्मिन् फलति श्रीर्गौर्वा कामधेनुर्जलंमही
दृष्टिरम्यादिकं यस्मात् फल्गुर्तीर्थं न फल्गुवत् ।।[17]

इस श्लोकमें फल्गु शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। फल्गु शब्दमें फल निष्पतौ धातुका योग फलति क्रियासे स्पष्ट हो जाता है।

10. यदरोदी सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः

ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रूद्र इति प्रजा।।[18]

इसमें रूद्र शब्द व्याख्यात है। रूद् धातुसे सम्बद्ध अरोदीः क्रिया का सम्बन्ध रूद्रसे स्पष्ट हो जाता है। फलतः रूद्र शब्दमें भी रूद् धातुका योग है। निरुक्तमें भी रुद्धातुसे रूद्र शब्दका निर्वचन माना गया है।[19]

11. विभज्य नवधात्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम्
रामां निरमयन् रेमे वर्षपूर्णान् मुहूर्तवत्।।[20]

यहां रामा शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। रेमे क्रियासे तथा निरमयन् पदसे रामा शब्दका सम्बन्ध स्पष्ट है। दोनोंमें रम् धातुका योग है। रामा शब्द भी रम् धातुसे निष्पन्न होता है। रामा स्त्री विशेषका वाचक है।

निरुक्तमें रामा शूद्राका वाचक है जो रमणके लिए होती है। 'रामा रमणाय उपेयते' अर्थात् रामा स्त्री विषय भोगके लिए ही होती है। यहां रामा शब्दमें रम् धातुका योग माना जायेगा – (नि0 12/2)

12. रा शब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः।।
रमते रमया सार्द्धं तेन रामं विदुर्बुधाः
रामाणां रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः।।
राश्चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वर वाचकः
लक्ष्मीपति गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः।।[21]

इन श्लोकोंमें राम शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। प्रथम एवं तृतीय श्लोकमें अक्षरात्मक निर्वचन है तथा द्वितीयमें रम् धातुसे उसे निष्पन्न माना गया है। रम् धातुसे राम माननेमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति है।

पुराणोंके इन निर्वचनोंसे स्पष्ट होता है कि ये निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ अक्षरात्मक निर्वचनमें वैज्ञानिकताकी कमी रहती है, लेकिन उससे उसका इतिहास स्पष्ट हो जाता है। पुराणके निर्वचनोंमें धार्मिक एवं कार्मिक आधार भी अपनाये गये हैं ये निर्वचन यास्क के निरुक्तसे प्रभावित हैं।

सन्दर्भ संकेत :–

1. नि0 3 ।4, 2. पुराणमाख्यानम् – (प्रसिद्धि) 3. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव भवतो गदितं मया – वि0 पु0 6 ।8 ।2 4. म द्वयं भ द्वयं चैव ब्रत्रयं व चतुष्टयम् । अनापल्लिंग कूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते ।। सं0 सा0 का इति0 गैरोला – पृ0 297, 5. विष्णु पु0 1 ।4 ।6, 6. अ0 पु0 17 ।8 म0 स्मृ0 1 ।10, 7. विष्णु0 1 ।5 ।43, 8. विष्णु पु0 1 ।14 ।89 9. नि0 1 ।4, 10. वि0. पु0 1 ।14 ।93, 11. रघु0 4 ।12, 12. विष्णु पु0 1 ।15 ।22 (पृ0 84 पादटिप्पणी भी द्रष्टव्य), 13. वि0 पु0 1 ।15 ।116, 14. वि0 पु0 3 ।1 ।45, 15. नि0 12 ।2, 16. अ0 पु0 19 ।6, 17. अ0 पु0 115 ।27, 18. भा0 पु0 3 ।12 ।10, 19. नि. 10 ।1, 20. भा0 पु0 3 ।23 ।44, 21. ब्र0 वै0 पु0 (हला0 पृ0 566) ।

(छ) रामायणमें निर्वचनोंका स्वरूप

रामायण आदि काव्य है । वाल्मीकि आदि कवि हैं । लौकिक संस्कृतमें भी यत्र–तत्र निर्वचन उपलब्ध होते हैं । रामायणमें भी कई स्थलों पर निर्वचन हुए हैं । रामायणके निर्वचन द्रष्टव्य हैं :–

1. वाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः
रामस्यलोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ।।
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ।।[1]

इस श्लोकमें लक्ष्मीवर्धनः लक्ष्मणः एवं लोकरामस्य रामस्यमें क्रमशः लक्ष्मण एवं रामका निर्वचन प्राप्त होता है । यहां शब्दोंकी ध्वन्यात्मक सार्थकताके लिए प्रयास हुआ है ।

2. "सपत्ना तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया
सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत् ।।"[2]

इस श्लोकसे स्पष्ट है कि सपत्नीने गर्भनष्टार्थ उसे जो गर दिया था, उसके साथ उत्पन्न होनेके कारण वह सगर कहलाया । अतः सगर शब्दमें स सह का वाचक एवं उत्तर पद गर है । इसमें ऐतिहासिक आधार माना जायेगा ।

3. अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः
सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महावलः ।।"[3]

इस श्लोकमें सुग्रीव शब्दका निर्वचन प्राप्त है। सुग्रीव शब्दमें सु संहतका वाचक है जो पूर्व पदस्थ है तथा उत्तर पदस्थ ग्रीव शब्द है। इस निर्वचनका आधार आकृति है।

4. प्रसीद लंकेश्वर राक्षसेन्द्र लंका प्रसन्नो भव साधु गच्छ
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं रामः सभार्यो रमतां वनेषु।।[4]

इस श्लोकमें राम शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। रमतां क्रिया पद का रामके साथ सम्बन्ध स्पष्ट है। दोनोंमें रम् धातुका योग है। यहां राम शब्दका धात्वर्थ एवं धातु स्पष्ट करना प्रधान उद्देश्य दीख पड़ता है।

5. "ततः सूर्पनखा दीना रावणं लोकरावणम्
अमात्यमध्ये संक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत्।।"[5]
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नो महावलपराक्रमः
किं मया खलु वक्तव्यो रावणो लोकरावणः।।"[6]

इन श्लोकोंमें रावण शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। प्रथम श्लोकमें रावणं लोकरावणम् तथा द्वितीयमें रावणो लोकरावणः शब्दोंके प्रयोगसे रावण शब्द स्पष्ट हो जाता है। समस्त लोकोंको रुलानेके कारण रावण कहा गया। रावयतीति रावणः। यह निर्वचन कर्माश्रित है।

6. यस्मात्तु विश्रुतो वेदस्त्वयेहाध्ययतो मम
तस्मात् स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः।।"[7]

इस श्लोकमें विश्रवा शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। विश्रुतः एवं विश्रवाका सम्बन्ध यहां स्पष्ट प्रतिलक्षित है। विश्रुत शब्दमें वि + श्रु धातु का योग है। विश्रवा शब्दमें भी वि + श्रु धातुका योग है।

7. "यस्माद् विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद् विश्रवा इव
तस्माद् वैश्रवणो नाम भविष्यति न संशयः।।"[8]

यहां वैश्रवण शब्द का निर्वचन प्राप्त होता है। विश्रवाका पुत्र विश्रवा के ही समान उत्पन्न हुआ। अतः वैश्रवण कहलाया। यहां विश्रवाका अपत्य वैश्रवण तथा विश्रवाके सदृश वैश्रवण अर्थ विवक्षित है। यह निर्वचनं तद्धित पर आधारित है। इसमें इतिहास एवं सादृश्य भी आधारके रूप में लिया गया है।

इन निर्वचनोंके परिदर्शनसे स्पष्ट हो जाता है कि लौकिक संस्कृतके आदिकाव्य रामायण में भी निर्वचन हुए हैं। इन निर्वचनोंका मूल उद्देश्य अर्थ स्पष्ट करना रहा है। तथापि अर्थान्वेषणमें सदृश धातुका योग प्रायः सर्वत्र प्राप्त है। कुछ ताद्धित प्रयोग आदिके द्वारा भी निर्वचन हुए हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे या भारतीय–निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार इन निर्वचनोंको पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि ध्वन्यात्मक पक्षकी उपेक्षा दीख पड़ती है। कुछ निर्वचन तो ध्वन्यात्मक दृष्टिसे भी संगत हैं। अतः इसके भाषा वैज्ञानिक महत्त्व उपेक्षणीय नहीं। स्पष्ट है पुराणमें प्रयुक्त इन संज्ञा पदोंके निर्वचन वैदिक साहित्यमें प्राप्त नहीं होते। यास्कने भी अपने निरुक्तमें इन शब्दोंको विवेचित नहीं किया है। राम, रावण, सुग्रीव, विश्रवा आदि शब्द कालान्तर के प्रतीत होते हैं।

सन्दर्भ संकेत :–

1. बा0 का0 18 ।28–29, 2. बा0 का0 70 ।37, 3. कि0 का0 13 ।3, 4. अर0 का0 31 ।39, 5. अर0 का0 33 ।1, 6. युद्ध का0 20 ।21, 7. उत्त0 का0 2 ।31–32, 8. उत्त0 का0 3 ।8।

(ज) महाभारतमें निर्वचनोंका स्वरूप

महाभारत संस्कृतका विपुलकाय ग्रन्थ है। विश्वकी किसी भी भाषामें ऐसा विशाल ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। विषयोंकी विपुलता इसकी अपनी विशेषता है।[1] संस्कृत साहित्यका तो यह उपजीव्य ही है। अनेक विषयोंकी उपलब्धि तो इसमें है ही, निर्वचन भी इसमें प्राप्त होते हैं। महाभारतके निर्वचनोंका परिदर्शन अपेक्षित है –

"यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः
लोके व्यासत्वमापेदे काष्र्णात् कृष्णत्वमेव च।।"[2]

इस श्लोकमें व्यास एवं कृष्ण शब्द विवेचित है। व्यस्यका सम्बन्ध व्याससे दिखलाया गया है। वि + अस् + अण् धातुके योगसे व्यास शब्द निष्पन्न होता है। वि + अस् धातुका योग व्यस्य एवं व्यास दोनों शब्दोंमें प्राप्त होता है। तपस्यासे वेदों का चतुर्धा विभाजन करनेके कारण ही व्यास कहलाये। इसी प्रकार कृष्ण शब्दके निर्वचनमें काष्र्णात् शब्द संकेतित है। कृष् धातुसे नक् प्रत्यय के द्वारा कृष्ण शब्द निष्पन्न होता है। काष्र्णात् शब्द में भी कृष् धातु का

योग है। महाभारतमें अन्यत्र कृष्णका अक्षरात्मक निर्वचन भी प्राप्त होता है।[3]

"रावयामास लोकान् यत् तस्मात् रावण उच्यते।"[4]

यहां रावण शब्दका निर्वचन प्राप्त है। लोकान् रावयामासमें रावयामास का सम्बन्ध रावणसे स्पष्ट हो जाता है जो ध्वन्यात्मक साम्य रखता है। दोनों ही शब्दोंमें रू शब्दे या गतिरेषणयोः धातुका योग है। इस शब्दका संकेतित निर्वचन ध्वन्यात्मक आधारसे युक्त है।

"ज्येष्ठो रामोऽभवत्तेषां रमयामास हि प्रजा।"[5]

यहां राम शब्दका निर्वचन प्राप्त है। रमयामासके रम् धातुके द्वारा राम शब्दको स्पष्ट किया गया है। रमयामासमें रमु क्रीड़ायाम् धातुका योग है। राम शब्दमें भी रम् क्रीडायां धातुका योग हैं व्याकरणके अनुसार भी रम् धातुसे धञ् प्रत्यय कर रामः शब्द सिद्ध होता है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक महत्त्व रखता है।

ततः प्रदध्मौ स करं प्रादुरासीत् ततो बलम्
एतस्मात् कारणाद् राजन् विश्रुतः स करन्धमः।।[6]

इस श्लोकमें करन्धम शब्दकी व्युत्पत्ति प्राप्त है। करं एवं दध्मौ के योग से करंधम शब्द माना गया है। करं + ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः धातुसे करंधम शब्दको व्युत्पन्न माना गया है। इस शब्दमें इतिहास अन्तर्निहित है। करंधम क्यों नाम पड़ा इसका ऐतिहासिक विवरण इसमें स्पष्ट है।

पालनाद्धि पतिस्त्वं मे भर्त्तासि भरणाच्च मे।[7]

यहां पति एवं भर्त्ता दो शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं। पति शब्द पा पालने धातुके योगसे निष्पन्न होता है जिसका संकेत पालनात् शब्दसे कर दिया है। व्याकरणके अनुसार भी पा धातुसे डति प्रत्यय कर पति शब्द निष्पन्न होता है। पुनः भर्त्तु – भर्त्ता शब्द भृ भरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। भृ धातुका संकेत स्पष्ट रूपमें भरणात् शब्दसे कर दिया गया है। दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक आधारसे युक्त हैं। महाभारतमें अन्यत्र भी पालनार्थक पा धातुसे पति तथा भरणार्थक भृ धातुसे भर्ताके निर्वचनका संकेत प्राप्त होता है।[8]

न कुर्यां कर्म बीभत्सं युध्यमानः कथंचन
तेन देवमनुष्येषु वीभत्सुरिति विश्रुतः।।[9]

इस श्लोकमें वीभत्सुः शब्दका निर्वचन प्राप्त होता हैं वीभत्स कर्म न करने वाले वीभत्सु नामसे विश्रुत हुए। वीभत्स एवं वीभत्सु शब्दमें बध् चित्तविकारे धातुका योग है। वीभत्सु शब्द वध् + सन् + उ प्रत्यय से निष्पन्न होता है। यह निर्वचन कर्माश्रित है। इसका ध्वन्यात्मक आधार संगत है। यद्यपि इसमें प्रकृति प्रत्ययको स्पष्ट नहीं किया गया है। वीभत्सु संज्ञापद है।

"मां स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्
एतन्मांसस्य मांसत्वम् अनुवुद्धयस्व भारत।।"[10]

इस श्लोकमें मांस शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है, यह अक्षरात्मक निर्वचन है। मांस शब्दके निर्वचनमें मां + स की कल्पनाकी गई है जो संगत नहीं है। इसे अशुद्ध निर्वचन माना जायेगा। मात्र ध्वन्यात्मक संगतिके लिए इस प्रकारकी कल्पना की गई है।

विष्णु शब्दके निर्वचनमें वृहत्त्वाद्विष्णुरूच्यते कह कर विष्णु शब्दमें वृंह् धातु का योग माना गया है। इसी प्रकार नारायण शब्द के निर्वचन में नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः[12] कहा गया है। इसके अनुसार नर + अयन पद खण्ड प्राप्त होते हैं। नारायण शब्दका निर्वचन भाषा विज्ञान के अनुसार भी उपयुक्त है।

इन निर्वचनोंके परिदर्शनसे स्पष्ट है कि महाभारतमें भी निर्वचन हुए हैं। महाभारतके निर्वचन शब्दोंके अर्थात्मक पक्षको अधिक महत्त्व देते हैं। इसके द्वारा शब्दोंके ऐतिहासिक पक्षका भी उद्घाटन होता है। कहीं–कहीं निर्वचन संगत नहीं हो पाये हैं। कुछ निर्वचन तो भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत हैं। कुछ निर्वचनोंमें भाषा वैज्ञानिक पक्ष उपेक्षित है।

सन्दर्भ संकेत :–

1. धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।। महा0। अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्। कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।। महा0 आ0 पर्व0 2 ।383 2. महा0 1 ।104 ।15, 3. कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। कृष्णस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः।। 5 ।70 ।5 4. 3 ।275 ।40, 5. 3 ।277 ।6, 6, अश्व0 पर्व 4 ।16, 7. अश्व0 पर्व 90 ।52, 8. भार्याया भरणाद्भर्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः।

अहं त्वां भरणं कृत्वा जात्यन्धः ससुतं तदा। नित्यकालं श्रमेणार्ता न भरेयं महातपः। महा0 1।104।28 9. शा0 पर्व 90।15, 10. अनु0 पर्व 116।25, 11. 5।70।3, 12. 5।70।10।

(झ) संस्कृत साहित्यमें निर्वचनोंका स्वरूप

साहित्य सामाजिक चित्रोंको प्रतिविम्बत करनेका प्रधान स्थल है। श्रेयःकामनासे सामाजिक घटनाओंका शब्दात्मक चारूत्वके साथ ग्रथन ही साहित्य है। संस्कृत साहित्यमें भी मूलरूपेण सामाजिक प्रतिविम्ब ही दृश्य हैं। शब्दोंके विन्यासमें यत्र तत्र शब्दमूलको स्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है परिणामतः संस्कृत साहित्यमें भी निर्वचनोंकी उपलब्धि होती है। संस्कृत साहित्यका विशाल भंडार है। प्रकृत शोधका उद्देश्य संस्कृत साहित्यके निर्वचनोंका परिदर्शन करना नहीं है। अतः संस्कृत साहित्यमें निर्वचनोंके स्वरूप दर्शनके लिए कालिदासके ग्रन्थोंसे ही कुछ उद्धरण उपस्थापित किए जाते हैं :–

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरूपक्रोशमलीमसैर्वा।।[1]

इस श्लोकमें क्षत्र शब्दका निर्वचन हुआ है। क्षत एवं त्रैङ् धातुके योगसे क्षत्र शब्दका निर्वचन माना गया है। इस निर्वचनके माध्यमसे क्षत्र में गुणीय अर्थका विवेचन हुआ है। इसका ध्वन्यात्मक आधार भी संगत है। क्षत्र शब्दमें क्षत्र उपपद तथा त्रैङ् पालने धातु है।

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्।।[2]

इस श्लोकमें तीन शब्द विवेचित हुए हैं। चन्द्र शब्दमें चदिराह्लादे धातु, तपन शब्दमें तप् धातु तथा राजा शब्दमें रञ्ज् धातुका संकेत है अर्थात्मक दृष्टिसे तो सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। तृतीय निर्वचनमें ध्वन्यात्मक आधार संगत नहीं है। राजा शब्दको दीप्त्यर्थक राज् धातुसे निष्पन्न मानना ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे अधिक उपयुक्त होगा।

निरुक्तकार यास्क राजा शब्दको राज् धातुसे ही व्युत्पन्न मानते हैं।[3]

रथेनानुद्धातस्तिमित गतिना तीर्णजलधिः

पुरासप्तद्वीपा जयति वसुधामप्रतिरथः।
इहायं सत्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्।।[4]

इस श्लोकमें सर्वदमन एवं भरत शब्दके निर्वचन प्राप्त होते हैं। सर्वदमनमें सर्व + दम् उपशमे धातुका योग है तथा भरत शब्दमें भृ भरणे धातुका। जीवोंके प्रसभदमनके कारण सर्वदमन तथा लोकके भरण करने के कारण भरत विश्रुत हुआ। दोनों ही निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे संगत हैं।

इसी प्रकार रघुवंश महाकाव्यमें रघु[5] कुमार संभव में उमा,[6] गौरी शिखर[7] अपर्णा[8] आदि मेघदूतम्में विशाला[9], नेता[10] आदि शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं।

इन निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि ये निर्वचन भाषा वैज्ञानिक महत्त्व रखते हैं। कुछ निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण भी हैं। इन निर्वचनोंका प्रयोजन शब्दगत अर्थके इतिहासको स्पष्ट करना है। फलतः अर्थात्मक रक्षाके लिए ध्वन्यात्मक औदासिन्य भी यत्र तत्र दृश्य होते हैं। कालिदास के अतिरिक्त अन्य कवियोंने भी अपने काव्योंमें निर्वचन प्रस्तुत किए हैं। संस्कृत साहित्य के निर्वचनोंका परिदर्शन स्थालीपुलाक न्यायसे ही यहां समुद्धृत हुआ है।

सन्दर्भ संकेत :–

1. रघु0 2।53, 2. रघु0 4।12, 3. नि0 2।1, 4. अभि0 7।33, 5.रघु0 3।21, 6. रघु0 1।26, 7. रघु 5।7, 8. रघु0 5।28, 9. रघु0 1।10, 10. रघु 2।6।

निर्वचनोंका तुलनात्मक समीक्षण

निर्वचनकी परम्परा वैदिक कालसे ही चली आ रही है। संहिताओंमें भी निर्वचन प्राप्त हो जाते हैं। किसी शब्दके साथ ही उसकी क्रिया या उसके विशेषण दे दिए गए हैं जिसके चलते स्पष्ट हो जाता है कि उस शब्द में अमुक धातुका योग संभव है। यद्यपि संहिताओंमें शब्दोंका निर्वचन मूल उद्देश्य नहीं रहा है। मन्त्र भागकी व्याख्या हम ब्राह्मण ग्रन्थोंमें पाते हैं। यह कर्मकाण्ड प्रधान है। मन्त्रोंके अर्थ प्रतिपादनमें किसी शब्दके उत्सको स्पष्ट करनेमें कुछ निर्वचन प्राप्त हो जाते हैं। आरण्यक एवं उपनिषद् क्रमशः उपासना एवं ज्ञान

काण्ड कहलाते हैं। इन ग्रन्थोंमें भी कुछ निर्वचन प्राप्त हो जाते हैं।

निरुक्त तो निर्वचन शास्त्र का मूल ग्रन्थ ही है। विविध प्रातिशाख्योंमें भी यत्र तत्र निर्वचनकी उपलब्धि होती है। शौनक रचित वृहद्देवतामें कुछ शब्दोंको स्पष्ट करनेके लिए निरुक्ति दी गयी है। कौटिल्यके अर्थशास्त्र में भी निर्वचन प्राप्त होते हैं। महामाष्य आदि ग्रन्थोंमें भी निर्वचन देखने को मिलते हैं।

लौकिक संस्कृतके रामायण, महाभारत, पुराण तथा लौकिक संस्कृत काव्योंमें भी यत्र तत्र निर्वचनके दर्शन होते हैं।

एक ही शब्द विविध ग्रन्थोंमें व्याख्यात हैं। यहां कुछ शब्दोंके निर्वचनोंका परिशीलन करना अभीष्ट है जो विविध ग्रन्थोंमें आये हैं। शब्दों के निर्वचनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इसीसे स्पष्ट हो जायेगी। हम देखते हैं कुछ शब्द वैदिक कालसे लेकर आज तक अर्थ विवेचनमें प्रयुक्त हैं। बहुत सारे शब्द समानार्थी हैं लेकिन कुछ शब्दोंके अर्थ भिन्न भी हो गये हैं।

तैत्तिरीय संहितामें रूद्र शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है 'सोऽरोदीत्। यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रूद्रत्वम्'[1] यहां अरोदीत् क्रियाका सम्बन्ध रूद्रसे है। अरोदीत् क्रिया रूद् अश्रु विमोचने धातुसे निष्पन्न है। रूद्रमें रूद् धातुका योग है। यह प्रत्यक्ष वृत्याश्रित निर्वचन है। काठक संहितामें कहा गया है – 'यत्समरूदत्तद्रुद्रस्य रूद्रत्वम्'[2] इसके अनुसार भी रूद्र शब्दमें रूद् धातु का योग है। शतपथ ब्राह्मणके अनुसार – 'सोऽरोदीत्तस्य यान्यश्रूणि प्रास्कन्दंस्तान्यस्मिन्मन्यौ प्रत्यतिष्ठन्त्स एवं शतशीर्षा रूद्रः समभवत्।'[3] इसके अनुसार भी रूद्र शब्दमें रूद् धातुका ही योग स्पष्ट है। निरुक्तमें भी रूद्र शब्दका निर्वचन रूद् धातुसे माना गया है।[4] निरुक्तमें ही हारिद्रव का मत उल्लिखित है जिसके अनुसार भी रूद्र शब्दमें रूद् धातुका ही योग है। हारिद्रविक मैत्रायणी संहिता का शाखाभेद है।[4] निरुक्तमें रूद्र शब्द वायुके लिए प्रयुक्त है। शत्रुओं को रूलाने के कारण ही रूद्र कहलाया। परिणाम स्वरूप रूद्र शब्द शिव के एक विशेष रूपका भी वाचक है। काठक संहिता में रूद्रके रोने के कारण को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि उस रूद्रने प्रजापति ब्रह्माको वाणसे वेध दिया तथा बादमें शोक करता हुआ रो पड़ा। यही उस रूद्रका रूद्रत्व है। इन निर्वचनों से स्पष्ट होता है कि रूद्र शब्द में रूद् धातु कर्म पर आधारित था। कालान्तरमें रूद्का ऐतिहासिक कारण भी हो गया जिसे कई

स्थलों पर दिखलाया गया है। रूद्र शब्दमें रूद् धातु की पुष्टि वृहद्देवतासे भी होती है।[5] श्रीमद्भागवत पुराणमें रूद्र शब्दकी व्याख्या प्राप्त होती है –

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः
ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रूद्रइति प्रजा।। 3/12/10

इस श्लोक के अनुसार भी रूद्र शब्द में रूद् धातु का संकेत प्राप्त होता है।

पृथिवी शब्दको स्पष्ट करनेके लिए काठक संहितामें कहा गया है कि 'यदप्रथत तत्पृथिवी'[6] यहां पृथिवी शब्द में प्रथ् विस्तारे धातुका योग स्पष्ट होता है। फैली हुई होनेके कारण पृथिवी कहलायी। इसका आधार दृश्यात्मक माना जा सकता है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा गया है –'तद् भूमिरभवत्। तामप्रथयत्। सा पृथिव्यभवत्।'[7] यहां 'तामप्रथयत्' कह कर प्रथ् विस्तारेको स्पष्ट कर दिया गया। अर्थात् भूमिको ही विस्तार कर देनेके कारण पृथिवी हो गयी। निरुक्तमें भी पृथिवीको प्रथनात् पृथिवीत्याहुः'[8] कहा गया है। पृथिवीके प्रथनका इतिहास भी यहीं स्पष्ट होता है। विष्णु पुराणमें पृथिवी नाम पड़नेके कारणको स्पष्ट किया गया है–

प्राणप्रदाता स पृथुर्यस्माद्भूमेरभूत्पिता
ततस्तु पृथिवी संज्ञामवापाखिलधारिणी।। – वि0 पु0 1/14/89

इस श्लोकसे स्पष्ट है कि प्राणदान करने वाले पृथु भूमिके पिता हुए। अतः सर्वभूतधारिणीकी पृथिवी संज्ञा हुई। यहांसे पृथुसे पृथिवी संज्ञाका इतिहास स्पष्ट है। पृथुके महत्त्वप्रतिपादनके लिए संभवतः ऐसी कल्पना की गई है।

शक्वरी एक छन्द विशेष है। इसके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा गया है –"यदिमांल्लोकान्प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् यदिमंकिंच तच्छक्वर्योऽ– भवंस्तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम्।"[9] शक्वरी शब्दमें शक् धातु का प्रयोग यहां स्पष्ट हो जाता है। अशक्नोत् क्रिया पद के द्वारा शक् धातुका पता चल जाता है जिसकी संभावना शक्वरी शब्द में की जाती है। निरुक्त में भी शक् धातु से ही शक्वरी को निष्पन्न माना गया है –शक्वर्य ऋचः शक्नोतेः।[10] कौषीतकि ब्राह्मण में भी शक्वरीके सम्बन्ध में कहा गया है –'एताः शक्वर्य एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुं तद्याभिर्वृत्रमशकद्धन्तुं तस्माच्छक्वर्यः'[11] इसके अनुसार इन्द्र इन ऋचाओं से वृत्र को मार सकने में समर्थ हुए। फलतः इसका

नाम शक्वरी पड़ गया। स्पष्ट ही शक् धातुकी ओर यहां भी संकेत प्राप्त होता है।

पंक्ति एक छन्द भेद है। यह एक वैदिक छन्द है, जिसमें पांच पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में आठ, आठ अक्षर होते हैं। पंक्तिके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है—'पंचपदा पंक्तिः'[12] अर्थात् पांच पद वाली पंक्ति होती हैं। कौषीतकि ब्राह्मणमें —'अथ वै पंक्तेः पचंपदानि'[13] सामवेदके दैवत ब्राह्मण में —'पंक्तिः पंचिनी पंचपदा—[14] उपर्युक्त स्थलोंमें पंच पदसे युक्तको ही पंक्ति कहा गया है। गोपथब्राह्मण भी पंक्तिके पंच पदत्वको स्वीकार करता है —'अथ या पंक्तिः पंचपदा'[15] निरुक्तमें भी —'पंक्तिः पंचपदा'[16] कहा गया है। पंक्ति शब्दका निर्वचन सर्वत्र एक समान है जो आकृति पर आधारित है।

ऋग्वेदमें गायत्री शब्दके सम्बन्धमें कहा गया है— 'ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु'[17] इस मंत्रमें गायत्र शब्दको स्पष्ट करनेके लिए गायति क्रिया पद उपस्थापित है। गायति क्रियाका सम्बन्ध उक्त गायत्री संज्ञा पदसे स्पष्ट प्रतीत होता है। ऋग्वेद में अन्यत्र भी गायत्री शब्द गायति क्रिया पद द्वारा संकेतित है।[18] इसके अनुसार इस शब्द में स्तुत्यर्थक गै धातुका योग है। सामवेद के दैवत ब्राह्मणमें कहा गया है —'गायत्री गायतेः स्तुति कर्मणः'[19] यहां भी गायत्री शब्दमें गै धातुका योग ही स्पष्ट किया गया है। निरुक्तमें गायत्री शब्दको स्तुत्यर्थक गै धातुसे ही निष्पन्न माना गया है।[20] यहां त्रिगमन — (त्रि + गम्) के कारण भी गायत्री माना गया है। गायत्री छन्दमें तीन पद होते हें। फलतः त्रि + गम् को विपरीत कर भी गायत्री शब्द बनाया गया है। दैवत ब्राह्मण में ही प्राप्त होता है कि गाते हुए ब्रह्माके मुखसे वह गिर पड़ी फलतः गै + पत् के योगसे गायत्र माना गया।[21]

विष्णु वैदिक देवता हैं जो सर्वव्यापी हैं। विष्णु शब्दके सम्बन्धमें यजुर्वेदमें कहा गया है —

'अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्यो .....'[22] इस मन्त्रमें विष्णु शब्दकी निरुक्ति प्राप्त है। यहां विष्णु को विष्लृव्याप्तौ धातुसे निष्पन्न माना गया है। विष् धातुसे निष्पन्न विष्णु शब्द प्रत्यक्ष वृत्याश्रित है। विष्णु शब्दकी निरुक्ति वृहद् देवतामें भी मिलती है —

"विष्णोतेर्विशते वा स्याद् वेवेष्टे व्याप्ति कर्मणः
विष्णुर्निरुच्यते सूर्यः सर्व सर्वान्तरश्च यः।।"[23]

इस श्लोकमें विष्णु पद व्याख्यात है। विष्णु पदमें विष् व्याप्तौ, विश् प्रवेशने या व्याप्ति कर्मा वेविष धातुका योग है। यहां विष्णु सूर्यका वाचक है जो सर्वत्र व्याप्त है। विष्णु पुराणमें भी विष्णु शब्दकी निरुक्ति प्राप्त होती है।

"यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः
तस्मात्स प्रोच्यते विष्णुः विशेर्धातोः प्रवेशनात्।।"[24]

इस श्लोकके अनुसार विष्णु शब्दमें विश् प्रवेशने धातुका योग है। वह सम्पूर्ण विश्वमें प्रविष्ट है। निरुक्तमें भी विष्णु शब्दका निर्वचन प्राप्त है। इसके अनुसार विष्णु शब्द विश् प्रवेशने धातुसे या वि + अश् व्याप्तौ धातुसे निष्पन्न होता है।[25] वह सर्वत्र प्रविष्ट होता है या सर्वत्र व्याप्त रहता है।[26]

महाभारतके अनुशासन पर्व में – विष्णु शब्दके सम्बन्धमें कहा गया है – "वृहत्त्वाद्विष्णुरूच्यते' (5/70/3) इसके अनुसार विष्णु शब्दमें वृह् धातु का योग माना जायेगा।

विष्णु शब्दके इन निर्वचनोंके तुलनात्मक समीक्षणसे पता चलता है कि वेदमें प्रयुक्त विष्णु शब्द विष् व्याप्तौ धातुसे निष्पन्न है। वृहद्देवता, विष्णु पुराण एवं निरुक्तमें विष् धातुके अतिरिक्त विश् प्रवेशने धातुकी भी मान्यता हो गयी है। निरुक्त एवं वृहद्देवतामें सूर्यके लिए विष्णु शब्दका प्रयोग हुआ है। वह अपनी किरणोंसे सर्वत्र व्याप्त है या सर्वत्र प्रविष्ट है। महाभारत में वृह् धातुसे विष्णु शब्दको निष्पन्न माना गया है।

वृत्र एक असुरका वाचक है। इसकी निरुक्ति वैदिक कालसे ही प्राप्त होती है। तैतिरीय संहितामें वृत्रके सम्बन्धमें कहा गया है – 'स इमॉल्लोकानवृणोत् यदिमॉल्लोकानवृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम्'[27] इसके अनुसार वृत्र शब्दमें वृ आवरणे धातुका योग है। उसने इन लोकोंको आवृत कर दिया था इसलिए वह वृत्र कहलाया। शतपथ ब्राह्मणमें वृत्रके संबंधमें कहा गया है – 'वृत्रो ह वा इदं सर्वं वृत्वा शिश्ये यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी। स यदिदं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम।'[28] यहां वृत्वासे वृत्रका सम्बन्ध स्पष्ट है। वृत्र नाम पड़ने का कारण सभीको आवृत कर लेना है। यह निर्वचन कर्माश्रित है।

निरुक्तमें वृत्र शब्दके सम्बन्धमें कहा गया है—'वृत्रो वृणोतेर्वा वर्ततेर्वा वर्धते वा।'[29] अर्थात् वृत्र शब्द वृञ् आच्छादने धातुसे, गत्यर्थक वृत् धातुसे या वृद्धयर्थक वृध् धातुसे निष्पन्न होता है। गत्यर्थक वृत् धातु निघण्टु पठित है। वह आकाशको आच्छादित रखता है, वह सर्वत्र गति करता है, वह खूब वृद्धिको प्राप्त होता है। फलतः वह वृत्र कहलाता है। वेद एवं ब्राह्मणोंके निर्वचनमें वृ आवरणे धातुसे ही वृत्र शब्द निष्पन्न माना गया है जबकि बादके निर्वचनों में कई धातुकी कल्पनाकी गई है। लगता है कि यह विविध कर्मोंका परिणाम है।

समुद्र जलधिका वाचक है। समुद्रका निर्वचन शतपथ ब्राह्मणमें प्राप्त होता है—'अयं वै समुद्रो योऽयं पर्वत एतस्माद्वैसमुद्रात्सर्वे देवा सर्वाणि भूतानि समुद्द्रवन्ति'[30] इस उद्धृतांशके अनुसार सम् + उत् + द्रुगतौ धातुका योग है। सामवेदके दैवत ब्राह्मणमें समुद्रके संबंधमें कहा गया है—'यद् यत्समवद्रवन्त तस्मात्समुद्र उच्यते।'[31] इसके अनुसार समुद्र शब्दमें सम् + अव + द्रु गतौ धातुका योग है। सम् का उत् में आदेश माना जायेगा। निरुक्त में भी समुद्र शब्दका निर्वचन हुआ है[32] —इसके अनुसार सम् + उत् + द्रु धातु, सम् + अभि + द्रु धातु, सम् + मुद् धातु, सम् + उद् (जल) तथा सम् + उन्दीक्लेदेने धातुका योग है। यह तरंगोंसे ऊपरकी ओर उठता है। इसमें जल सब ओरसे इकट्ठे होकर अभिमुख होते हैं, इसमें जलचर प्रसन्न रहते हैं, यह बहुत जलवाला होता है या यह भिगोता रहता है।

इन निर्वचनोंसे स्पष्ट है समुद्र शब्दमें प्रायः जलके तरंगित होनेका आधार प्रधान रूपमें माना गया है। निरुक्तमें समुद्रके अधिक निर्वचन प्राप्त होते हैं जो उसके विविध पक्षोंको उद्भासित करते हैं।

राजन् शब्द अधिपतिका वाचक है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है प्रकाशित होने वाला। वेदोंमें वरूण आदि देवोंके लिए राजा शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेदमें राज् धातु से ही राजन् शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है।[33] अथर्ववेद में कहा गया है— 'अयं देवानामसुरो विराजति वशा हि सत्या वरूणस्य राज्ञः'[34] यहां विराजति क्रियापदमें राज् धातुका योग है राज्ञः पद भी राज् धातु के राजन् शब्द से ही निष्पन्न है। यहां राज् धातु दीप्त्यर्थक न होकर ऐश्वर्यार्थक है। निरुक्त में राजन् शब्दको राज् दीप्तौ धातुसे निष्पन्न माना गया है।[35] कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में 'राजा प्रकृति रंजनात्' कह कर राजन्

शब्द में रंज् धातुको माना।[36] विष्णु पुराणमें भी राजा शब्द में रज् धातुका योग माना गया है – 'राजाभूज्जनरंजनात्'[37]क।

राजन् शब्दके उपर्युक्त निर्वचनोंके परिशीलनसे पता चलता है कि राजन् शब्दमें राज् धातु ही है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे इसमें राज् धातु मानना संगत भी है। पुनः राज् धातु वेदमें ऐश्वर्यार्थक तथा वादमें दीप्त्यर्थक हो गया है। कालिदास एवं विष्णु पुराणका निर्वचन राजाके व्यवहार पक्षको स्पर्श करता है।

सूर्य वैदिक दृश्यमान देव हैं। इन्हें सृष्टिका नियामक भी माना गया है। ऋग्वेदमें कहा गया है कि सूर्य स्थावर एवं जंगमकी आत्मा हैं।[37] सूर्य शब्दका निर्वचन वृहद्देवतामें प्राप्त होता है। वहां सृ गतौ धातुसे तथा सु + ईर् धातुसे सूर्यको निष्पन्न माना गया है।[38] प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है द्वितीय निर्वचनका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। निरुक्तमें सूर्य शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। वहां सृ गतौ धातु से या सु प्रसवे धातुसे सूर्य शब्दको निष्पन्न माना गया है। सृगतौ धातुके अनुसार सूर्यको पूर्वसे पश्चिम गति करते देखा जाता है। यह दृश्यात्मक आधार पर आधारित है। पुनः सु प्रसवे धातुसे सूर्य मानने पर कहा जा सकता है सूर्यही सभी कर्मोंका उत्पादक है।

नक्षत्र शब्दका निर्वचन तैतिरीय ब्राह्मणमें प्राप्त होता है – अमुं स लोकं नक्षते तन्नक्षत्राणां नक्षत्रम्, यहां नक्षत्र शब्दमें न + क्षत का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।[39] निरुक्तमें नक्षत्र शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। इसके अनुसार नक्षत्र शब्दमें गत्यर्थक नक्ष् धातुका योग है।[40] नक्षत्र गति करते हैं। तै0 ब्रा0के निर्वचनमें न + क्षत्र का योग है जिसके चलते कहा जायेगा कि वे अपने प्रकाशसे प्रकाशित नहीं होते।

विश्वामित्र एक ऋषि हैं। विश्वामित्र शब्दका निर्वचन ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होता है। इसके अनुसार विश्वका मित्र विश्वामित्र कहलाता है। इनके लिए सभी मित्र होते हैं।[41] निरुक्तमें भी विश्वामित्रको सभीका मित्र कहा गया है।[42] पाणिनिने भी अपनी अष्टाध्यायीमें विश्वामित्र शब्दकी सिद्धिके लिए 'मित्रेचर्षौ'[43] सूत्रको उपन्यस्त किया। अर्थात् विश्व + मित्र विश्वामित्र। यह विधान मात्र ऋषि अर्थमें ही मान्य है। अन्य अर्थोंमें विश्वमित्र ही होगा। ब्राह्मण ग्रन्थके निर्वचनों से लेकर पाणिनि की अष्टाध्यायी तक विश्वामित्र शब्द का

निर्वचन एक ही प्रकार का है।

दक्षिणा शब्द यज्ञके अन्त में याज्ञिकों को दिए जाने वाले धन का वाचक है। दक्षिणा शब्द का निर्वचन शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है –स एष यज्ञो हतो न ददक्षे। तं देवा दक्षिणाभिरदक्षंस्तद्यदेनं दक्षिणाभिरदक्षयंस्तस्माद् दक्षिणा नाम। अथ समृद्ध एव यज्ञो भवति तस्मात् दक्षिणा ददाति।[44]

उपर्युक्त अंश से पता चलता है कि दक्षिणा शब्दमें समृद्धि अर्थ वाला दक्ष् धातुका योग है। जिस यज्ञ में दक्षिणा नहीं दी जाती वह यज्ञ समृद्ध नहीं होता। निरुक्त में भी दक्षिणा शब्द सम्यक् वृद्धि वाला दक्ष् धातुसे ही निष्पन्न माना गया है। वह दक्षिणा निर्धनको समृद्ध बना देती है।[45] महाभाष्यमें भी दक्षिणा शब्दको वृद्धयर्थक दक्ष् धातुसे ही निष्पन्न माना गया है।[46] उणादिसूत्र से भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि दक्षिणा शब्दमें दक्ष् धातु ही है।[47] इन निर्वचनोंसे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण कालसे बाद तक के निर्वचनोंमें दक्ष् धातु ही मान्य है जो समृद्धिका वाचक है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे इसे उपयुक्त भी माना जायगा।

अक्षर परिमाणको छन्द कहा गया है।[48] छान्दोग्योपनिषद् में छन्द शब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। इसके अनुसार मृत्यु से भयभीत देवताओं ने त्रयी विद्यामें प्रवेश किया। उन्होंने अपनेको छन्दोंसे आच्छादित किया। उन्होंने जो अपनेको उनके द्वारा आच्छादित किया वही छन्दोंका छन्दस्त्व है।[49] इससे स्पष्ट होता है कि छन्दस् शब्द में छद् धातुका योग है। वेदार्थ दीपिकामें भी छन्दको छद् धातुसे ही निष्पन्न माना गया है–'छन्दः पापेभ्यश्छादनात्'[50] निरुक्तमें भी कहा गया है कि छादन करने से ही छन्द कहलाया।[51] उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि छन्द शब्दमें सर्वत्र छदिरावरणे धातुकी ही स्थिति मानी गई है।

वनस्पति शब्दका निर्वचन वृहद्देवतामें प्राप्त होता है। इसके अनुसार यह वनके पतिके रूपमें अग्नि का एक रूप है। वह वनका रक्षक है या पालक।[52] पति शब्दमें पा रक्षणे या पा पालने धातुका योग माना गया है। यह समासाश्रित निर्वचन है। निरुक्तमें–'एष हि वनानां पाता वा पालयिता वा[53] कहा गया है। इसके अनुसार भी वनस्पति शब्द में वन+पति दो पद खण्ड हैं।

मन्त्रद्रष्टा को ऋषि कहा जाता है। तैत्तिरीय आरण्यकमें ऋषि शब्द का निर्वचन प्राप्त होता हे। तपस्या करते हुए स्वयंभू ब्रह्माने इन्हें स्वयं देखा। फलतः ये ऋषि कहलाये। यहां ऋषि शब्दमें ऋष् दर्शने धातुका योग माना गया हैं।[54] निरुक्तमें भी ऋषि शब्दको ऋष् दर्शने धातुसे ही निष्पन्न माना गया है।[55] आरण्यकोक्त निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखता है। ऋषियोंने मन्त्रों को देखा इस आधार पर ऋष् दर्शने धातु अधिक संगत माना जायेगा।

ब्रह्मणस्पति शब्दका निर्वचन वृहदारण्यकोपनिषद्में प्राप्त होता है। इसके अनुसार वाक् को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्मके पतिको ब्रह्मणस्पति कहा जायेगा।[56] वृहद्देवतामें भी इसी प्रकारका निर्वचन प्राप्त होता है।[57] निरुक्तके अनुसार ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा है। इससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्मणः पति दो पद खण्ड हैं तथा पाता पा रक्षणे या पालयिता पा पालने धातु के योग से निष्पन्न है।[58] पति शब्द में दोनों अर्थ सन्निहित हैं। पति शब्दमें पा पालने धातुका योग महाभारतसे भी सिद्ध होता है। 'पालनाद्धि पतिस्त्वं मे।[59] वृहस्पति शब्द भी इसी प्रकार निष्पन्न होता है।[60] निरुक्तमें भी 'वृहस्पतिर्वृहतः पाता वा पालयिता वा'[61] कहा गया है। वृहतांपतिः वृहस्पतिः। वृहत् महत् का वाचक है। वृहदारण्यकोपनिषद् में वृहद् वाक् का द्योतक है। यह शब्द समास पर आधारित है तथा भाषा विज्ञान के अनुसार भी उपयुक्त है।

निर्वचनोंके ऐतिहासिक परिशीलनसे स्पष्ट होता है कि वैदिक निर्वचनोंमें संहिता प्रतिपादित निर्वचनोंका प्रभाव यास्क पर देखा जाता है। यास्कके समयमें निर्वचनोंका विकसित रूप देखने को प्राप्त होता है। लगता है शब्दोंके अर्थात्मक विकासके कारण अनेक निर्वचनों की व्यवस्था यास्कने की है। यहां यह भी ध्यान देनेकी बात है कि यास्कके बाद के निर्वचनों पर अवश्य ही यास्कका प्रभाव स्पष्ट होता है। महाभाष्य आदिमें प्राप्त निर्वचन तो पूर्ण रूपमें निरुक्तसे प्रभावित हैं। रामायण, महाभारत पुराण आदिमें भी निर्वचन प्राप्त होते हैं। इन ग्रन्थोंमें बहुत सारे संज्ञापद ऐसे हैं जिनका निर्वचन निरुक्तमें नहीं प्राप्त होता। नकुल[62], रावण[63], सगर[64], सुग्रीव[65], राम[66] आदि संज्ञापदोंका निर्वचन निरुक्तमें नहीं है। स्वाभाविक है, ये ऐतिहासिक पात्र उस समय नहीं थे। यही कारण है कि रामायणके समयसे ही कुछ निर्वचन जो प्राप्त होते हैं उनमें ऐतिहासिक आख्यानका अधिक योग है।

सन्दर्भ संकेत :–

1. तै0 सं0 1 |5 |1 |1, 2. काठ0 सं0 25 |1, 3. शत0 ब्रा0 9 |1 |1 |6, 4. नि0 10 |1 (नि0 दु0 वृ0 10/1), 5. वृ0दे0 2 |34, 6. काठ0 सं0 8 |2, 7. शत0 ब्रा0 6 |1 |3 |7, 8. नि0 1 |4, 9. ऐत0 ब्रा0 5 |7 |3, 10. नि0 1 |3, 11. कौषी0 ब्रा0 23 |2, 12. ऐत0 ब्रा0 5 |19 |9, 13. कौषी0 11 |2, 14. दैव0 ब्रा0 3 |13, 15. गोप0 ब्रा0 1 |3 |10, 16. नि0 7 |3, 17. ऋ0 सं0 10 |71 |11, 18. ऋ0 सं0 1 |10 |1, 19. दैव0 ब्रा0 3 |2, 20. नि0 1 |3, 21. गायतोमुखादुत्पतत् – दै0 ब्रा0 3 |3, 22. शु0 यजु0 1 |30, 23. वृ0 दे0 2 |69, 24. वि0 पु0 3 |1 |45, 25. नि0 12 |2, 26. नि0 दु0 वृ0 12 |2, 27. तैत्ति0 सं0 11 |4 |12 |2, 28. शत0 ब्रा0 1 |1 |3 |4, 29. नि0 2 |5, 30. शत0 ब्रा0 14 |2 |2 |2, 31. दैव0 ब्रा0 3 |1 |1 |7, 32. नि0 2 |3, 33. ऋ0 5 |71 |2, 34. अथर्व0 1 |10 |1, 35. नि0 2 |1, 36. रघु0 4 |12, 37. ऋ0 1 |115 |1, 37 (क). विष्णु पु0 1 |14 |93, 38. वृ0 दे0 7 |128, 39. तै0 ब्रा0 5 |2 |5 |6, 40. नि0 3 |4, 41. तदु वैश्वामित्रम् | विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस । विश्वं हास्मै मित्रं भवति । ऐ0 ब्रा0 29 |4 |18, 42. नि0 2 |7, 43. अष्टा0 6 |3 |130, 44. शत0 ब्रा0 2 |2 |2 |2, 45. नि0 1 |3, 46. महा0 भा0 5 |1 |2, 47. द्रुदक्षिभ्यामिनन्– उणा–2 |50, 48. सर्वानुक्रमणी 2 |6, 49. छा0 उ0 1 |4 |2, 50. वेदा0 दी0 1 |1, 51. नि0 7 |3, 52. वृ0 दे0 3 |26, 53. नि0 8 |1, 54. तै0 आ0 2 |9, 55. नि0 2 |3, 56. वृ0 उ0 1 |3 |21, 57. वृ0 दे0 2 |40, 58. नि0 10 |1, 59. महा0 भा0 अश्वमे0 90 |52, 60. वृ0 उ0 1 |3 |20, 61. नि0 10 |1, 62. कुलेनास्ति समो रूपे यस्येति नकुलः स्मृतः– महा0 भा0, 63. महा0 वन0 275 |40, 64. वा0 रा0 बाल0 70 |37, 65. वा0 रा0 कि0 13 |3, 66. वा0 रा0 बाल0 18 |29, महा0 भा0 वन0 277 |6 |.

तृतीय अध्याय

(भारतीय निरुक्तकार एवं उनके निर्वचन सिद्धान्त)

(क) निरुक्तमें चर्चित निरुक्तकार

प्राचीन ऋषियों, कवियों, साहित्यिकों एवं विविध ग्रन्थ प्रणेताओंके सम्बन्धमें समयादि एवं स्थानादिका सम्यक् ज्ञान आज हमें इसलिए उपलब्ध

नहीं होता, क्योंकि वे लोग अपना परिचय अपने ग्रन्थोंमें नहीं दे सके। निरुकारोंके संबंधमें भी यही बात है। वे लोग अपना परिचय अपने निरुक्तों या अन्य ग्रन्थोंमें नहीं दे गये हैं। जिनके ग्रन्थोंका पता नहीं, किसी कारणवश नष्ट हो गये, उनके सम्बन्ध में तो बात ही छोड़ दी जाय। जिनके ग्रन्थोंकी उपलब्धि है उन ग्रन्थोंमें भी उनका परिचय नहीं प्राप्त होता। इसका कारण लगता है कि वे अपना परिचय किसी ग्रन्थमें लिखना अपनी योग्यताका विज्ञापन करना समझते होंगे। फलतः वे लोग अपना परिचय नही दे सके। व्यक्तिका भावनात्मक परिवर्तन समय एवं परिस्थिति के अनुसार होता रहता है। शायद उस युगकी भावना उसी रूप में परिपुष्ट हुई हो। आजके व्यक्तियोंमें उस भावनाका ठीक विपरीत रूप प्रतिलक्षित होता है। चाहे उनके ग्रन्थकी उत्तमता न भी हो लेकिन परिचयका गंभीर आड़म्बर उनके ग्रन्थोंमें अवश्य होगा। इसका तात्पर्य यह नहीं कि ग्रन्थकार अपना परिचय दें ही नहीं। परिचयको परिचय की सीमामें व्याप्त होना चाहिए, जो किसी भी समय निरवच्छिन्न उपादेय होगा। ग्रन्थकारोंका परिचय किसी भी ग्रन्थके अध्ययन का अनिवार्य अंग है।

वैदिक ऋषियों द्वारा बोये गये निर्वचनके बीज ब्राह्मण गन्थोंमें पल्लवित हुए हैं। पुनः वे ही निरुक्तकारके समयमें परिपुष्ट एवं विकसित हुए। निर्वचनके विकसित रूपोंका पता निरुक्तके निर्वचनोंसे हो जाता है। पुनः निरुक्तमें चर्चित विभिन्न निरुक्तकारोंके सिद्धान्त और भी इस तथ्य को प्रमाणित कर देते हैं। उन निरुक्तकारोंके सम्बन्ध में जानकारीके लिए आज जो सामग्री उपलब्ध है, वह है निरुक्तकारोंके सिद्धान्तोंका यत्र तत्र उल्लेख। उन उल्लेखोंके आधार पर ही उनका परिचय, कार्य क्षेत्र, समयादि निरूपण किये जा सकते हैं। इनमें अनुमानका सहारा भी लिया जा सकता है, जो प्रमाणका एक भेद है जिसे असत्य नहीं माना जा सकता। निरुक्तकारोंके स्थानादि निरूपणमें उनकी भाषा एवं सिद्धान्तोंका पर्यवेक्षण ही एक मात्र साधन है। उनसे सम्बद्ध अन्यत्र प्राप्त वर्णन भी सहायक हो सकते हैं।

निरूक्त एवं निघण्टु शब्दोंकी संख्या निश्चित रूपमें अभी भी नहीं प्राप्त हो सकी है। लगता है वेदकी विभिन्न शाखाओंसे सम्बद्ध अनेक निघण्टु एवं निरुक्त ग्रन्थ होंगे। इस प्रकारका आभास कुछ प्राप्त निघण्टु एवं निरुक्त ग्रन्थोंके अध्ययन से मिलता है।[2] सभी निघण्टु एवं निरुक्त ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं।

विभिन्न संकेतोंके आधार पर20 निघण्टु ग्रन्थोंका पता लग चुका है। मैकडोनेल के अनुसार यास्कके समयमें ऐसे पांच निघण्टु थे।[3] महर्षि यास्कने अपने निरुक्तमें चौदह निरुक्तकारोंके मत का उल्लेख किया है। निरुक्तके टीकाकार दुर्गाचार्यने भी चौदह निरुक्तकारों की चर्चा अपनी वृत्तिमें की है[4] –

1. औपमन्वयव, 2. औदुम्बरायण, 3. वार्ष्यायणि, 4. गार्ग्य, 5. शाकपूणि,
6. और्णवाभ, 7. गालव, 8. तैटिकी, 9. क्रौष्टुकि, 10. कात्थक्य,
11. स्थौलाष्टीवि, 12. आग्रायण, 13. चर्मशिरा, 14. शतवलाक्ष्य

(ख) आचार्य औपमन्यव

औपमन्यव शब्द "उपमन्योरपत्यमौपमन्यवः" के अनुसार औपमन्यव उपमन्यु के पुत्र थे। नाम शब्द तो रूढ़ माना जाता है, तथापि कुछ नाम अर्थकी दृष्टिसे गुणादि बोधक होते हैं। उपमन्यु शब्दका शाब्दिक अर्थ है जिसका क्रोध समाप्त हो गया है। अर्थात् उपमन्यु जो पहले क्रोधी थे तथा बादमें उनके क्रोध की आत्यन्तिक निवृत्ति हो गयी। औपमन्यव उपमन्यु गोत्रके अगर होंगे तो इनका सूत्र कात्यायन एवं इनकी शाखा माध्यन्दिनी थी। वे यजुर्वेदाध्यायी थे।

निरुक्त में इनके सिद्धान्तोंके उद्धृत होनेके कारण इनके सिद्धान्त तथा समयादि के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है शौनकने भी वृहद्देवता में यास्क के साथ औपमन्यव का नाम लिया है।[5] बौधायन श्रौतसूत्र में गुरू के रूप में एक औपमन्वयवी पुत्र का उल्लेख प्राप्त होता है।[6] यास्क से औपमन्वय प्राचीन है, इसमें कोई संदेह नहीं। यास्क के ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख होना उक्त तथ्य को पुष्ट करता है। किसी के सिद्धान्त की मान्यता अतिशीघ्र नहीं मिलती। साहित्यिक प्रसिद्धि देर से होती है। जब औपमन्यव के सभी मत यास्क द्वारा मान्य ही होते तो यास्क को अलग निरुक्त शास्त्र लिखने की आवश्यकता नहीं होती। वे निर्वचन के लिए पृथक् सिद्धान्त की स्थापना नहीं करते। यास्क द्वारा उल्लिखित औपमन्यव के सिद्धान्तसे पता चलता है कि यास्क इनके सिद्धान्त के समर्थक थें जिन जिन स्थलों पर औपमन्यवके सिद्धान्तों का वर्णन है वे प्रायः यास्क द्वारा स्तुत्य हैं। कई स्थलों पर यास्कका अभिमत औपमन्यव के अभिमत से साम्य नहीं रखता है।[7]औपमन्यवके सिद्धान्त या ग्रन्थ को ख्याति प्राप्त करनेमें लगभग 250 वर्ष लगे होंगे।अतः इनका समय यास्कसे 250 वर्ष

पूर्व यानि 1000 ई0 पूर्व के लगभग माना जा सकता है।

रचनाएँ :– निरुक्तमें उल्लिखित इनके सिद्धान्तोंके अनुसार इन्हें निरुक्तकार कहा जा सकता है। डा0 जी0 ओपर्ट् की अपनी ग्रन्थ सूचीमें औपमन्यव रचित निरुक्तका उल्लेख है।[8] अतः इनका निरुक्त ग्रन्थ भी होगा ही। इनके निरुक्त ग्रन्थकी उपलब्धि आज नहीं होती। यत्र तत्र इनके निर्वचन सिद्धान्त एवं प्रकार उपलब्ध होते हैं। इन उपलब्धियों के आधार पर पता चलता है कि इन्होंने अपने निरुक्त ग्रन्थमें निर्वचनोंको ही मूल रूपमें स्थान दिया होगा। यास्क भी निर्वचनके अवसर पर ही इनका स्मरण करते हैं। निरुक्तकारोंके सम्बन्धमें एक सामान्य धारणा सी बन गयी है कि वे निघण्टु की रचना पहले करनेके बाद इनके ही शब्दोंका निर्वचन निरुक्तमें करते थे। इस आधार पर औपमन्यव भी निघण्टुके रचयिता रहे होंगे।

निर्वचन सिद्धान्त :– यास्कने विभिन्न स्थलों पर औपमन्यवका नाम लिया है। निरुक्तके प्रारम्भमें ही निघण्टु शब्दके निर्वचनमें इनका उल्लेख हुआ है।".....ते निगन्तव एव सन्तो निगमनात् निघण्टव उच्यन्ते इत्यौपमन्यवः।[9] अर्थात् निघण्टु शब्द निगन्तुसे ही बना है। यह निगमन होनेसे निगन्तु होता हुआ निघण्टु बना। इस शब्दमें नि का अर्थ निश्चय ही तथा गन्तु का अर्थ मन्त्रार्थका बोध कराने वाला है। यहां ग के स्थान पर घ तथा त के स्थान पर ट वर्ण हो गया है। स्पष्ट है ये महाप्राणीकरण एवं मूर्धन्यीकरण के सिद्धान्त को मानते हैं। साथ ही साथ इस निर्वचनसे यह भी पता चलता है कि ये निर्वचनकी तीन वृत्तियोंको स्वीकार करते हैं, अतिपरोक्षवृत्ति, परोक्षवृत्ति तथा प्रत्यक्षवृत्ति। उक्त निर्वचनमें निघण्टु अतिपरोक्षवृत्ति है, निगन्तु परोक्षवृत्ति है तथा निगमयितृ प्रत्यक्ष वृत्ति। औपमन्यवकी निर्वचन प्रक्रियासे स्पष्ट है कि निर्वचनके क्षेत्र में इनका दृष्टिकोण अत्यन्त सूक्ष्म है। उपर्युक्त तीन प्रकारकी वृत्तियोंके अन्तर्गत सभी शब्दोंके निर्वचन समाहित हैं। यास्कभी इन वृत्तियोंको स्वीकार करते हैं।

दण्ड शब्दके निर्वचनमें औपमन्यवका विचार है कि दमन करनेके कारण दण्ड कहलाता है– 'दमनादित्यौपमन्वयः'[10]। इसके अनुसार इस शब्दमें दम् उपशमे धातुका योग है – दम्–द–दन्त–दण्ड। परुषे शब्दके निर्वचनमें – पर्ववतिभास्वति इति 'औपमन्यवः'[11] अर्थात् ये प्रकाश वाले हैं। पंचजनके क्रममें इनका विचार द्रष्टव्य है–चत्वारः वर्णा निषादः पंचम इति[12] अर्थात् निषादको

पंचम वर्ण माना गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णोंके अतिरिक्त एक पंचम वर्ण निषाद है। परिणामतः सबोंके समुदायको पंचजन कहते हैं। ऋषि शब्दके निर्वचनमें इनका विचार है कि उन्होंने स्तोमोंका दर्शन किया अतः ऋष् दर्शने धातुसे ऋषि माना जायगा।[१३] कुत्स शब्दके निर्वचनमें औपमन्यव स्तोमोंके कर्त्ता ऋषिको ही कुत्स मानते हैं-'कर्त्तास्तोमानित्यौपमन्यवः'[१४]। यज्ञ शब्दके निर्वचनमें औपमन्यव का मत है कि यज्ञमें कृष्णाजिन बहुत विछाये जाते हैं। इसलिए इसे यज्ञ कहते हैं। अथवा इसे यजुःमन्त्र सफलताको प्राप्त कराते हैं-'बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः। यजूंष्येनं नयन्तीतिवा। काण शब्दके संबंधमें इनका विचार है-'काणो विक्रान्त दर्शनः'[१५] अर्थात् विक्रान्त दर्शन वाला काण कहलाता है। यहां अविक्रान्त दर्शन एवं विक्रान्त दर्शन दोनों ही विग्रह संभावित है। विक्रान्तं विगतं दर्शनं लोचनं यस्य सः-इसके अनुसार एक नेत्र वाला काण कहलाता है। अविक्रान्तमपगतं दर्शनमवलोकनं यस्य सः इसके अनुसार अपगत अवलोकन वाला काण कहलाएगा। क्रम् +घञ्=कामः काणः। विकट शब्दके संबंधमें-विकटः विक्रान्तगतिः इत्यौपमन्यवः[१६] विक्रान्त गति होनेसे विकट कहलाता है। इन्द्र शब्दके संबंधमें-'इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः'[१६] इस इन्द्रने सब कुछ देखा है अतः इन्द्र कहलाता है। 'इन्दते वैश्वर्यकर्मणः। इन्दऽछत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा आदरयिता च यज्वनाम्। ऐश्वर्यार्थक इदि धातु से, इन्द पूर्वपद तथा गत्यर्थक द्रु या विदारणार्थक दृ धातु उत्तरपद हैं। इन्द्र शत्रुओं को विदारण करता है तथा यजनशील लोगों को आदर करता है। काक शब्दके निर्वचनमें-काकोऽपकालयितव्यो भवति[१७] अर्थात् काक निकालने योग्य है। निःसारणार्थक काल धातुसे काक शब्दको निष्पन्न माना है।

अतः औपमन्यवके निर्वचन सम्बन्धी सिद्धान्तके विषयमें निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निर्वचनकी तीन वृत्तियां इन्हें मान्य हैं। महाप्राणीकरण एवं मूर्धन्यीकरणके सिद्धांतको स्वीकार करते हैं। काकके निर्वचनसे स्पष्ट है किये आख्यातज सिद्धान्त के पूर्ण समर्थक हैं। इनके निर्वचनोंका संबंध याज्ञिक अर्थसे अधिक है। यज्ञ विशेषज्ञ के रूपमें भी इन्हें माना जा सकता है।

(ग) औदुम्बरायण

उदुम्बरस्यापत्यमौदुम्बरः, औदुम्बरस्यापत्यमौदुम्बरायणः[१८] इस विग्रह के अनुसार इनके पिता का नाम औदुम्बर तथा इनके पितामहका नाम उदुम्बर था। यास्कने इनके

सिद्धांतोंका उल्लेख अपने निरुक्तमें किया है-'इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः तत्र चतुष्टवं नोपपद्यते।[१९] अर्थात् वचन इन्द्रिय नियत है। अतः नामके चार भेद नहीं हो सकते। उच्चारण एवं श्रवणानन्तर वर्णोंका विनाश हो जाता है। अतः जब तक वक्ता के मुखमें वर्ण है तब तक उसकी सत्ता है, लेकिन उच्चारणके बाद ही उसका विनाश हो जाता है। फलतः उस विनाशी वर्णोंसे निष्पन्न पदके चार भेद कैसे हो सकते हैं।

इस सिद्धांतसे पता चलता है कि औदुम्बरायण निरुक्त दर्शनके प्रणेता एवं विवेचक थे। शब्दोंका नित्यानित्यत्व विचार दार्शनिक आधार रखता है। शब्दोंकी सत्ताका स्थायित्व कहां तक है, इन्द्रियोंका पदोंसे क्या संबंध हैं इत्यादि विषयों पर विचार कोई शब्ददर्शनका ज्ञाता ही कर सकता है। ये शब्दको अनित्य मानते हैं जबकि प्राचीन काल से ही शब्द को नित्य माना गया है।[२०] लगता है कि औदुम्बरायणके निरुक्तमें वाक् से संबंधित विभिन्न इन्द्रियोंका वर्णन होगा। इनका निरुक्त आज उपलब्ध नहीं होता।

यास्कके द्वारा इनके सिद्धान्तोंका उल्लेख करनेसे यह तो निर्विवाद है कि ये यास्कसे पूर्ववर्ती हैं। औदुम्बरायणका शब्दानित्यत्व पक्ष यास्क से पूर्व अवश्य ही प्रबल रहा होगा। यास्कने इनके सिद्धांतको स्वीकार नहीं किया। यास्क शब्दोंके नित्य वादको ही संगत मानते हैं। औदुम्बरायणके सिद्धान्तकी मान्यता यास्कसे काफी पूर्व होगी। अतः यदि यास्क से १०० वर्ष भी पहले इनका समय माना जाय तो ये ई.पू. ८५० के लगभग के होंगे।

रचनाएँ :- इनकी रचनाओंके संबंधमें कहा जा सकता है कि निरुक्तकारके रूप में स्मृत होनेके कारण इनका ग्रन्थ निरुक्त अवश्य होगा। साथ ही इसका आधार ग्रन्थ निघण्टु भी इनकी रचनाओंमें संभावित है। ये दोनों ही ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

निर्वचन सिद्धांत :- यास्कके निरुक्तमें इनके सिद्धांतका एक बार उल्लेख हुआ है जिससे उनकी शब्द विषयक मान्यता स्पष्ट होती है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है ये शब्द को अनित्य मानते हैं। जैसे इन्द्रियां अनित्य है उसी प्रकार इन्द्रिय नियत वचन भी अनित्य होंगे। इनका निर्वचन सिद्धांत स्पष्ट नहीं होता।

(घ) वार्ष्यायणिः

वार्ष्यायणि शब्दके विग्रह करने पर पता चलता है कि ये वार्ष्यायणके पुत्र थे तथा इनके पितामहका नाम वार्ष्य था- वृषस्यापत्यं वार्ष्यः वार्ष्यस्यापत्यं वार्ष्यायणः, वार्ष्यायणस्यापत्यं वार्ष्यायणिः।यास्कने भावविकार विवेचनके प्रसंगमें इनकेमतका उल्लेख

किया है-'षड्भावविकारा: भवन्तीति वार्ष्यायणि:[२१] सामान्य रूप में उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश ही किसी भी भावके प्रति विकासके रूपमें मान्य थे, परन्तु इन्होंने छह भाव विकारोंका प्रतिपादन किया। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरकी मुख्यतया तीन अवस्थाएं होती है - (१) बाल्यावस्था, (२) यौवनावस्था तथा (३) वृद्धावस्था। उसी प्रकार इन्होंने (१) अस्ति, (२) जायते, (३) विपरीणमते, (४) वर्धते, (५) अपक्षीयते तथा (६) विनश्यति की मान्यता प्रदान की।[२२]

भावके संबंधमें इस प्रकार की विवेचना करने वाला कोई दार्शनिक ही हो सकता है। भारतीय दार्शनिकोंने सृष्टि, स्थिति एवं विनाश के अन्तर्गत संसारकी सारी वस्तुओंको समाहित कर लिया है।[२३] वार्ष्यायणि इन दार्शनिकोंसे भी सूक्ष्म विचार उपन्यस्त कर भावके छ विकारोंकी स्वीकृति प्रदान करते हैं। पंतजलि भी अपने महाभाष्यमें इनका नाम बड़े आदरके साथ लेते हैं।[२४] यास्कके निरुक्तसे स्पष्ट है कि यास्कके समय तक इनके सिद्धान्तोंकी मान्यता मिल चुकी थी। उस समय तक ये काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इस आधार पर यास्क एवं वार्ष्यायणिके अन्तरालका समय १०० वर्षका अवश्य होना चाहिए। अत: इनका समय ८५० ई. पू. के लगभग है।

रचनाएँ :- इनकी रचनाओंके सम्बन्धमें निरुक्त एवं निघण्टुका अनुमान लगाया जाता है जो अनुपलब्ध हैं। ये व्याकरण दर्शन या निरुक्त दर्शनके विवेचक हैं। अत: उक्त विषय पर इनके स्वतंत्र ग्रन्थोंका भी अनुमान लगाया जा सकता है।

निर्वचन सिद्धान्त :- निरुक्तमें इनका सिद्धान्त भाव विवेचनके क्रममें ही उपन्यस्त है। निर्वचनके क्रममें न तो इनका कोई सिद्धान्त ही विवेचित हुआ है या न तो किसी शब्दका निर्वचन ही इसके द्वारा प्रतिपादित है। अत: निरुक्तके अनुसार इनके निर्वचन सिद्धांत स्पष्ट नहीं होते।

(ङ) गार्ग्य

गर्गस्यापत्यं गार्ग्य: इस विग्रहके अनुसार इनके पिताका नाम गर्ग प्रतीत होता है। अगर गर्ग गोत्रका माना जाय तो ये यजुर्वेदाध्यायी, धनुर्वेदोपवेदी थे। इनकी शाखा माध्यन्दिनी थी ये कात्यायन सूत्रके थे। इनका वर्णन निरुक्तके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। गार्ग्यकी प्रसिद्धि नैरुक्त एवं वैयाकरणके रूपमें हैं। महर्षि यास्कने अपने निरुक्तमें इनका उल्लेख तीन स्थलों पर किया है- (१) शाकटायनने 'स्वतन्त्र अस्तित्व वाले उपसर्ग अनर्थक हैं'[२५] सिद्धांतको माना। गार्ग्यका कहना हैकि स्वतंत्र

रूपमें स्थित उपसर्ग भी सार्थक हैं, अर्थप्रकाशित करते हैं।[२६] निरुक्तमें ही-नाम आख्यातज है[२७] इस सिद्धान्तके प्रतिपादक शाकटायन एवं विभिन्न नैरुक्तोंके विपक्षमें यास्क गार्ग्यके मतका उल्लेख करते हैं। गार्ग्य एवं कुछ वैयाकरण सभी नामको धातुसे निष्पन्न नहीं मानते।[२८] निरुक्तके तृतीय अध्यायमें उपमा विवेचन प्रसंगमें यास्क गार्ग्यके मतका उल्लेख करते हैं-अथात :उपमा। यदतत्तत्सदृशमिति गार्ग्य :[२९] अर्थात् "जो वस्तु वह न हो और उसके समान लगती हो, उसे उपमा कहते हैं।[३०] यह गार्ग्यका मत है।

निरुक्तके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थोंमें भी गार्ग्यका उल्लेख प्राप्त होता है। गार्ग्यकी जीवनी, समय, रचनाओं तथा सिद्धान्तकी जानकारीके लिए उन ग्रन्थोंका पर्यवेक्षण आवश्यक है।

सामवेदका पदपाठ गार्ग्य द्वारा विरचित माना जाता है। यास्कने मेहना पदका अर्थ प्रथमत: शाकल्यके तदनन्तर गार्ग्यके पदपाठके आधार पर दिया है।[३१] सामवेदके पदपाठमें इन्होंने उपसर्गोंका स्वतंत्र सार्थक प्रदर्शन किया है। आचार्य शाकल्य सामवेदके उसी पद पाठमें उपसर्गोंका उसरूपमें पृथक प्रदर्शन नहीं करते। बृहद्देवतामें यास्क और स्थीतरके साथ गार्ग्यका भी मत उद्धृत है।[३२] ऋक् प्रातिशाख्यमें गार्ग्यका उल्लेख प्राप्त होता है।[३३] आचार्य पाणिनिने भी इनका उल्लेख अपनी अष्टाध्यायीमें किया है।[३४] सुश्रुतके टीकाकार डल्हणने इनको धन्वन्तरिका शिष्य माना है तथा इनकेसाथ गालवका भी निर्देश किया है।[३५]

उपर्युक्त उद्धरणों एवं वर्णनोंसे इनके समयके संबंधमें पता लगायाजा सकता है। युधिष्ठिर मीमांसकने वैयाकरण गार्ग्य तथा निरुक्तकार गार्ग्य दोनोंको एकही माना है एवं उनकासमय ५५०० ई. पू. निर्धारित किया है। आधुनिक विचारक इस समयको सम्यक् नहीं मानते।[३६] पाणिनि एवं यास्क द्वारा इनके मतका उल्लेख होनेके कारण इन दोनोंसे गार्ग्य अवश्य प्राचीन हैं। पुन: धन्वन्तरिके शिष्योंमें गार्ग्य एवं गालवके उल्लेखके आधार पर गार्ग्य यास्कसे लगभग ४०० वर्ष प्राचीन अवश्य लगते हैं। यास्कका समय ७५० ई.पू. है तो इनका समय ११५० ई.पू. मानाजा सकता है। ये शाकटायन तथा औदुम्वरायणसे भी प्राचीन हैं।

रचनाएं :- गार्ग्यकी रचनाओंके संबंधमें निम्नलिखित संभावनाएं उपस्थित हैं-

(१) निरुक्त- यास्कद्वारा गार्ग्यके सिद्धान्तोंके उल्लेख-से पता चलता है कि इनका स्वतंत्र निरुक्त ग्रन्थ होगा जो भाषा वैज्ञानिक तथ्योंसे युक्त होगा।

(२) **पदपाठ-** सामवेदके पदपाठके रचयिताके संबंध में गार्ग्यका ही नाम आता है। इस संबंधमें निरुक्तके टीकाकार दुर्गाचार्य एवं स्कन्ध स्वामीका भी यही मत है। वाजसनेयी प्रातिशाख्यके उव्वट भाष्यमें गार्ग्यके पदपाठ विषयक मतका उल्लेख मिलता है। [३७]

पुनरुक्तानि लुप्यन्ते पदानीत्याह शाकलः
अलोप इति गार्ग्यस्य काण्वस्यार्थवशादिति।।

अर्थात् गार्ग्यके अनुसार पदपाठमें पुनरुक्त पदोंका लोप नहीं होता है।

(३) **तक्षशास्त्र-** आपस्तम्ब शुल्वसूत्रमें उद्धृत एक श्लोकके आधार पर इनके द्वारा विरचित तक्षशास्त्रका भी पता चलता है। उसके टीकाकार करविन्दाधिपका भी यही मत है।[३८]

(४) **शालाक्य तंत्र-** सुश्रुतके टीकाकार डल्हणका कहना है कि धन्वन्तरिके शिष्य गार्ग्यने शालाक्य तन्त्रकी रचना की।

(५) **अलंकार लक्षण ग्रन्थ-** निरुक्तमें इनके उपमा लक्षण[३९] उद्धृत होनेसे स्पष्ट होता हैकि उन्होंने अलंकारोंपर कोई लक्षण ग्रन्थ अवश्य लिखा होगा।

निर्वचन सिद्धान्त :- गार्ग्य उपसर्गोंका स्वतंत्र अर्थ मानते हैं[४०] तथा नाम एवं आख्यातसे पृथक् भी उसका अस्तित्व है इसकी स्वीकृति प्रदान करते हैं। इनका कहना हैकि सभी-नाम धातुज नहीं होते।[४१]

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि ये वहुश्रुत थे। शब्दशास्त्र, निरुक्त, आयुर्वेद, पदपाठ आदिकी इन्हें पूर्ण जानकारी थी। सामवेदके पदपाठका निर्माण कर तो ये निरुक्तकारोंमें अग्रगण्य हो गये, क्योंकि निरुक्तके सूत्रपाठ-या निर्वचन प्रकारका सूत्रपात सामान्य रूपमें पदपाठसे ही माना जाता है।

(च) शाकपूणिः

आचार्य शाकपूणि मूल रूप में निरुक्तकार हैं। यास्क ने इनका स्मरण निरुक्तकार के रूप में किया है। निरुक्त के कुछ वर्णनों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है-शाकपूणिः संकल्पयांचक्रे-सर्वादेवता जानामीति। तस्मै देवतोभयलिंगा प्रादुर्वभूव। तां न यज्ञे। तां पप्रच्छ। विविदिषाणित्वेति। सा अस्मै एतामृचमादि देश। एषा मद्देवतेति।[४२] अर्थात् आचार्य शाकपूणि ने संकल्प किया मैं सभी देवताओं को जानता हूं। उनके समक्ष उभय लिंग देवता प्रकट हुए । उसने उस देवता को न जाना । शाकपूणि ने उससे पूछा- मैं तुझे जानना चाहता हूं। उसने उसे यह ऋचा दी और कहा कि यह ऋचा मद्देवता है । अर्थात् इस ऋचा

का मैं देवता हूं। तुम इस ऋचा के द्वारा मुझे जान सकेगा।

आचार्य यास्कने शाकपूणिका उल्लेख निम्नलिखित स्थलों पर किया है- तडित शब्द के निर्वचन में- विद्युत तडिद्भवतीति शाकपूणिः। स ह्यवताडयति दूराच्च दृश्यते अपि त्विदमन्तिकनामैवाभिप्रेतं स्यात्।[४३] अर्थात् तडित विद्युत होती है क्योंकि वह ताडन करती है और दूर से दिखलायी देती है। किन्तु यह अन्तिक का ही नाम अभिप्राय से हो सकता है। महान् शब्दके निर्वचन में -महान् कस्मात् ? मानेनान्यां जहातीति शाकपूणिः। मंहनीयो भवतीति वा।[४४] अर्थात् मानसे दूसरोंको छोड़ता है। यह महनीय या पूजनीय होता है। ऋत्विक् शब्दके निर्वचनमें ऋग्यष्टा भवतीति शाकपूणिः[४५] अर्थात् ऋचाओंसे यज्ञ कराता है इसलिए ऋत्विक् कहलाया। शिताम शब्दके निर्वचनमें योनि शितामेति शाकपूणिः विषितोभवति।[४६] अर्थात् शिताम योनि वाचक है क्योंकि वह विषित या मलसे व्याप्त रहती है। यहां विषित् से शिताम माना गया। अप्स शब्दके निर्वचनमें स्पष्टं दर्शनाय इति शाकपूणिः।[४७] अर्थात् देखनेके लिए स्पष्ट होता है। अच्छ शब्दके निर्वचन में- अच्छाभेःआप्तुमिति शाकपूणिः।[४८] अर्थात् प्राप्त करनेके लिए ऐसा करते हैं। वैश्वानरके निर्वचनमें- अयमेवाग्निर्वैश्वानरः इति शाकपूणिः अर्थात् यही अग्नि वैश्वानर है। अग्निके संबंधमें- अयमेवाग्निर्द्रविणोदा इति शाकपूणिः।[५०] अर्थात् यह अग्नि ही द्रविणोदा है। इध्म के संबंधमें- अग्निरितिशाकपूणिः[५१] अर्थात् इध्म अग्निका वाचक है। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे। इस मन्त्रकी व्याख्यामें-यदिदं किंच तद्विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधा भावाय, पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि इति शाकपूणिः।[५२] अर्थात् जो कुछभी यह जगत् है उसपर विष्णुपना विक्रम दिखा रहा है। वे तीन प्रकारसे पैर रखे हुए हैं, प्रथम पृथिवी पर, द्वितीय अन्तरिक्षमें और तृतीय द्युलोक में। इसी प्रकार अन्य स्थलों परभी निरुक्तमें इनके सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ है।

निरुक्तकी प्राचीन टीका निरुक्त वार्तिकसे ज्ञात होता है कि शाकपूणिने अपने निघण्टुमें शब्दोंका निश्चित क्रमसे प्रयोजन बताया है।[५३] वृहद्देवतामें भी शाकपूणिका उल्लेख हुआ है।[५४] यास्क अन्य निरुक्तकारोंकी अपेक्षा इनका नाम अधिक लेते हैं। इनके समयके संबंधमें निश्चित रूपसे तो कहा नहीं जा सकता लेकिन उपर्युक्त उल्लेखोंके अनुसार लगता है कि ये ८०० ई.पू. के हैं।

रचनाएं :-

निरुक्त- विष्णु पुराणसे स्पष्ट होता है कि इन्होंने निरुक्तकी रचनाकी।[५५] निरुक्त में

भी देवता विषयक विवेचनमें इनका अधिकांश नामोल्लेख हुआ है। लगता है दैवत काण्ड पर इनका स्वतंत्र ग्रन्थ होगा। वायुपुराणके अनुसार शाकपूणिने तीन संहिताओंका प्रवचन किया।[५६]

निघण्टु- स्कन्द स्वामीका कथन है कि इन्होंने निघण्टु की भी रचना की।[५७]

निर्वचन सिद्धान्त :- ये वर्ण विकारकी स्थितिको,निर्वचनमें-स्वीकार करते हैं। साथही साथ वर्णागमको भी मानते हैं। ऋत्विज् शब्दमें ऋग् + यज्=`ग' का `त्' वर्ण विकार तथा व् वर्णागम है।

(छ) और्णवाभ

और्णवाभका स्मरण निरुक्तमें निरुक्तकारके रूपमें किया गया है. इनके संबंधमें जो कुछभी सामग्री उपलब्ध होती है उनसबोंका उल्लेख यास्कके निरुक्तमें है। निरुक्तमें और्णवाभका मत दर्शनीय है- उर्वी शब्दके निर्वचनमें उर्व्य ऊर्णातेरित्यौर्णवाभ:।[५८] अर्थात् आच्छादनार्थक उर्णुञ् धातुसे उर्वी बनता है तथा आच्छादनार्थक वृञ् धातुसे। अश्विनी शब्दके निर्वचनमें-अश्वेरश्विनावित्यौर्णवाभ:[५९] अर्थात् अश्वोंसे अश्वि कहलाते हैं। त्रेधापदम्के संबंधमें इनका मत हैकि-समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभ:[६०] अर्थात् उदयगिरि पर उदय होता हुआ ये एकपद रखते हैं एकपद अन्तरिक्ष (मध्याह्न) में और अस्त होते समय अस्तंगिरि पर तृतीय पद रखते हैं।

ऊपरके अन्तिम उल्लेखसे इनके स्थानके सम्बन्धमें अनुमान कियाजा सकता है। `इदं विष्णुर्विचक्रमे' की व्याख्यासे पता चलता हैकि ये गयासे पूर्ण परिचित अवश्य होंगे। गया विहार राज्यमें है जोएक धार्मिक एवं ऐतिहासिक नगरी है। वायु पुराण[९१] के वर्णनोंके अनुसार यह नगरी गयासुर राक्षसके शरीर पर अवस्थित है। यहांका विष्णुपदमन्दिर विश्वभरमें अपना धार्मिक अस्तित्व रखती है. और्णवाभ द्वारा प्रतिपादित ये तीनों स्थल गयामें अवस्थित हैं-समारोहण, गयशिर एवं विष्णुपद। समारोहण गयास्थित क्षेत्रीय तीर्थ हैं। ऐसा लगता है और्णवाभ का संकेत इन्हीं तीनों स्थलोंका है। विष्णुपदमें भगवान विष्णुके चरण अंकित है जिनके दर्शनके लिए सम्पूर्ण विश्वके लोग आते हैं। विष्णुपद विष्णुके चरणका ही वाचक है। गयाके प्रति विशेष आकर्षण इनका अपने स्थानके प्रति आसक्तिका कारण है। ये निश्चयही यास्कसे पूर्ववर्ती हैं लेकिन इनका समय निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता।

रचनाएं :- निरुक्तमें प्राप्त निर्वचनोंके आधार पर कहाजा सकता हैकि इन्होंने

निरुक्तकी रचना अवश्यकी होगी। वृहद् देवतामें इनके उल्लेखसे इन्हें वेद व्याख्यानकर्त्ता कहा जा सकता है।[६२]

निर्वचन सिद्धान्त :- ध्वनिपरिवर्तनमें सम्प्रसारणकी मान्यता इन्हें अभीष्ट थी। वृ धातुसे उर्वी इसका स्पष्ट निदर्शन हैं। निरुक्तकार होनेके चलते निर्वचनका सामान्य सिद्धान्त भी इन्हें अभीष्ट होगा।

(ज) आचार्य गालव

आचार्य गालव-का स्मरण यास्क-ने निरुक्तकार-के रूपमें किया है। अष्टाध्यायीसे पता चलता हैकि ये वैयाकरण भी थे।[९३] निरुक्तमें शिताम-शितिमांस शब्दके निर्वचनमें इनके सिद्धांन्तका उल्लेख हुआ है-'शितिमांसतो मेदस्त इति गालवः'[६४] अर्थात् शितिमांस शब्दसे शिताम बनता है। शितिमांस शब्दका अर्थ है श्वेत मांस या मेद। गालव शब्दको अगर तद्धित प्रत्ययान्त माना जायतो इनके पिताका नाम गलव होगा। महाभारतके शान्तिपर्वमें पांचाल वाभ्रव्य गालवको क्रमपाठ और शिक्षापाठका प्रवक्ता कहा गया है।[६५] यदि वे ही गालव निरुक्तकारभी हो तो वे पांचाल देशके रहने वाले होंगे। वाभ्रव्य उनका गोत्र होगा। सुश्रुतके टीकाकारने गालवको धन्वन्तरिका शिष्य कहा है। [६६] इसके अतिरिक्त वृहद्देवता,[६७] ऐतरेय आरण्यक[६८] एवं वायु पुराण[६९] में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनिने भी अपनी अष्टाध्यायीमें इनका स्मरण किया है।[७०] अतः स्पष्ट है कि ये यास्क एवं पाणिनिसे पूर्व के हैं।

रचनाएं :- विश्व विख्यात वैयाकरण पाणिनिने गालवका उल्लेख एक वैयाकरण के रूप में किया है।[७०] फलतः इनका कोई व्याकरण ग्रन्थभी रहा होगा। व्याकरण के नियमों के प्रतिपादन क्रम में ही पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें इनका उल्लेख किया। इन सिद्धान्तों के आधार पर स्पष्ट होता है कि पाणिनि के पूर्व गालव की व्याकरण विषयक मान्यता थी। गालवके सिद्धान्तों ने पाणिनि को भी प्रभावित किया। सुश्रुत की टीका में इन्हें धन्वन्तरिका शिष्य बतलाया गया है।[७१] इनका आयुर्वेद विषयक कोई ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होता तथापि इतना कहा जा सकता हैकि ये आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता थे। क्रम पाठ के प्रर्वतक के रूप में इनका वर्णन प्रातिशाख्यों में मिलता है।[७२] वृहद्देवता ५ में प्राप्त वर्णनों से पता चलता है कि दैवत काण्ड पर इनका निर्वचन स्वतंत्र रूप में हुआ होगा। वृहद्देवता में ही इन्हें पुराणकवि कहा गया है।[७३] वायु पुराण के अनुसार ये ज्योतिषी भी थे। अतः इनके ज्योतिष ग्रन्थकी संभावना भी की जा सकती है। वात्स्यायन के काम सूत्र में भी इनका उल्लेख प्राप्त

होता है। इस उल्लेखके अनुसार पता चलता है, कि इन्होंने सात अध्यायोंमें काम शास्त्रका वर्णन किया है। कामशास्त्र विषयक ग्रन्थभी इनके अवश्य होंगे।[७४] वायु पुराणमें प्राप्त विवरणसे इनके मतका पता चलता है। इनके मतके अनुसार मेरूत्कर्णिका के बढ़ते आकार शराब के ऐसे हैं।[७५] इससे पता चलता है कि इन्होंने भूगोल सम्बन्धी सिद्धान्तोंका भी संग्रह किया है।

निर्वचन सिद्धान्त :- निरुक्तमें प्राप्त उल्लेखके अनुसार इनके निर्वचन सिद्धान्तके संबंध में अंतिम रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता। शितिमांस शब्दसे इन्होंने शिताम शब्दको निष्पन्न माना।[७६] इससे पता चलता हैकि वर्णलोप आदि निर्वचनके मान्य सिद्धान्त इन्हें अभिप्रेत है। वृहद् देवतामें नामके आधार निर्धारणमें इनका सिद्धान्त प्रतिपादित है। इनके सिद्धान्त के अनुसार नामकरणके नौ आधार हैं।[७७] इन आधारोंमें क्रिया या आख्यात भी एक मुख्य आधार है। अत: इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि नामके आख्यातज सिद्धान्तके भी ये समर्थक हैं।

(झ) आचार्य तैटिकि:

निरुक्तमें इनका उल्लेख निरुक्तकारके रूपमें हुआ है यास्क इनके मतोंका उल्लेख दो स्थलों पर करते हैं। शिताम शब्दके निर्वचन-प्रसंगमें-श्यामतो यकृत इति तैटीकि:[७८] अर्थात् श्यामसे शिताम शब्द बना है। श्याम यकृतको कहते हैं क्योंकि वह श्याम वर्णका होता है। पुन: वीरिट शब्दके निवर्चनमें यास्कके द्वारा उपस्थापित किया गया इनका मत-वीरिटं तैटीकिरन्तरिक्षमेवाह। पूर्वं वयतेरूत्तरमिरतेर्वयांसीरन्त्यस्मिन् भांसिवा[७९] अर्थात् तैटीकिके अनुसार वीरिटका अर्थ अन्तरिक्ष होता है। पूर्वपद वी पक्षीका वाचक है तथा उत्तरपद इ्धातु गत्यर्थक या भासनार्थक है। अन्य स्थलोंमें इनका उल्लेख 'निरुक्तमें नहीं प्राप्त होता। निरुक्तके अतिरिक्त अन्य स्थलोंमें भी इनका विशेष उल्लेख नहीं प्राप्त होता। इतना तो निश्चित है कि ये यास्कके पूर्ववर्ती या समकालीन रहे होंगे। पूर्ववर्तीकी संभावना अधिक है क्योंकि किसी व्यक्तिके सिद्धान्तकी मान्यता मिलने परही विशिष्ट लोगोंके द्वारा उसका उल्लेख होता है।

रचनाएं :- यास्क इनका उल्लेख निर्वचनके प्रसंगमें करते हैं। अत: यास्कके समय इनका निर्वचन शास्त्र प्रचलित होगा।

निर्वचन सिद्धान्त :- श्यै धातुसे श्याम तथा शिताम माननेके चलते लगता ये धातुज सिद्धान्तके समर्थक थे। श्यामसे शिताम माननेमें रूग्णात्मक आधारकी उपलब्धि

होती है। फलतः निर्वचनके सिद्धान्तोंमें रूपात्मक आधार इनके द्वारा मान्य होगा। वीरित से वीरिटमें मूर्धन्यीकरणका सिद्धान्तभी स्पष्ट है अतः ये मूर्धन्यीकरणको भी मानते थे।

(ञ) आचार्य क्रौष्टुकिः

आचार्य क्रौष्टुकिका उल्लेख निरुक्तके आठवें अध्यायमें हुआ है। द्रविणोदा के अर्थको स्पष्ट करते हुए यास्क कहते हैं-तत्को द्रविणोदा? इन्द्र इति क्रौष्टुकिः।[८०] अर्थात् यह द्रविणोदा कौन है? इस प्रश्नमें क्रौष्टुकिका मत है कि ये इन्द्र हैं-स बलधनयोर्दातृतमस्तस्य च सर्वबलकृतिः[८१] अर्थात् इन्द्र ही बल और धनका सर्वश्रेष्ठ दाता है तथा उस इन्द्रके ही सम्पूर्ण बलका कार्य यह है। निरुक्तके अतिरिक्त वृहद्देवतामें भी इनका उल्लेख हुआ है।[८३] इनके समयके संबंध में विशेष जानकारी तो प्राप्त नहीं होती फिर भी यास्कके द्वारा उल्लिखित होनेके चलते निश्चयही इन्हें यास्कसे पूर्ववर्ती माना जाएगा।

रचनाएं :- यास्कने अपने निरुक्तमें इन्हें निरुक्तकारके रूपमें स्मरण किया है। अतः निर्वचन शास्त्र पर इनकी रचना अवश्य होगी।

निवर्चन सिद्धान्त :- निरुक्तमें द्रविणोदाके संबंधमें इनका विचार देखनेको मिलता है इससे स्पष्ट होता है कि ये निर्वचनमें अर्थात्मक आधारको अधिक महत्त्व देते हैं। इसी निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि ये इतिहासविद् भी हैं। इन्द्रके इतिहासकी जानकारीके बिना इस प्रकारका अर्थ करना संभव नहीं। देवताओंके संबंधमें विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न होनेकी सूचना भी यहीं प्राप्तहो जाती है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता हैकि इनका निर्वचन सिद्धान्त अर्थात्मक एवं ऐतिहासिक आधारसे युक्त होगा।

(ट) आचार्यकात्थक्य

कात्थक्य शब्दसे स्पष्ट होता हैकि ये आचार्य कत्थकके पुत्र थे। निरुक्तमें निम्नलिखित स्थलों पर इनका उल्लेख हुआ है :-

इध्मके संबंधमें यज्ञेध्म इति कात्थक्यः[८४] इसके संबंधमें दुर्गाचार्य अपनी दुर्गवृत्तिमें लिखते हैं-कत्थकस्यपुत्रः कात्थक्यः आचार्यः एवं मन्यते यत् यःअयम् इध्म आधीयते प्रतिप्रणवमिध्मो यज्ञे स एवायम्[८५] अर्थात् कत्थकके पुत्र आचार्य कात्थक्यका कहना है कि यह यज्ञेध्म यज्ञकाष्ठ है। तनूनपात्के संबंधमें -तनूनपादाज्यमिति कात्थक्यः[८५] अर्थात् तनूनपात् का अर्थ कात्थक्यके अनुसार आज्य होता है।नराशंसके निर्वचन में नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यःनरा अस्मिन्नासीनाःशंसन्ति।[८९] अर्थात् नराशंस यज्ञ

होता है क्योंकि इस यज्ञमें बैठे हुए मनुष्य यज्ञ करते हैं या स्तुति करते हैं। द्वार शब्दके संबंधमें-गृह-द्वार इति कात्थक्य:[८७] अर्थात् इसका अर्थ कात्थक्यके अनुसार घरके द्वारसे है। वनस्पतिके संबंधमें यूपनाम इति कात्थक्य:[८८] अर्थात् यह वनस्पति यूप यज्ञस्तम्भ है। देवयोष्ट्रीके संबंधमें - शस्यं च समाचेति कात्यक्य:[८९] अर्थात् ये दो देवता व्रीहि आदि अन्न और सम्बत्सर हैं। इन स्थलोंके अतिरिक्त इनका उल्लेख नहीं प्राप्त होता। यास्कके द्वारा इनके सिद्धान्तोंके उल्लेखसे स्पष्ट है कि ये यास्कके पूर्ववर्ती हैं।

रचनाएं :- यास्क द्वारा उपस्थापित इनके विचारोंसे अनुमान लगाया जा सकता है कि ये निरुक्तकारके साथ-साथ देवताओं एवं यज्ञोंके स्वरूप प्रतिपादक थे। अत: इन विषयोंसे सम्बद्ध इनका ग्रन्थ रहा होगा। सम्प्रति इनके कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते।

निर्वचन सिद्धान्त :- इनके निर्वचन सिद्धान्त यज्ञपरक अर्थ पर आश्रित हैं। निरुक्तमें इनके जितने भी निर्वचन प्राप्त होते हैं सभी यज्ञ परक अर्थसे युक्त हैं। इनके निर्वचन जो निरुक्त में उपलब्ध हैं निर्वचन प्रक्रिया तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अपूर्ण हैं।

(ठ) आचार्य स्थौलाष्ठीवि

इनके नामको अगर तद्धितान्त माना जायतो इससे स्पष्ट होता है कि ये स्थूलाष्ठीके पुत्र थे। यास्कने इनका स्मरण अग्नि एवं वायुके निर्वचन प्रसंगमें कियाहै। अग्नि: अक्नोपनो भक्तीति स्थौलाष्ठीवि: न क्नोपयति न स्नेहयति।[९०] अर्थात् अग्नि अस्नेहन है। न+क्नु=अग्नि। वायु- वायुर्वातेर्वेते वा स्याद्गतिकर्मण: एतेरिति स्थौलाष्ठीवि: अनर्थकोवकार:[९१] अर्थात् वायु शब्द गत्यर्थक वा या गत्यर्थक वी धातुसे निष्पन्न होता है। आयुही वायु है। वायुमें वकार का आगम निरर्थक है। इस शब्दमें आदि व्यंजनागम माना जाएगा। इनके समयके संबंधमें स्पष्ट रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन यास्क द्वारा इनके सिद्धान्तोंके उपस्थापनसे स्पष्ट हैकि ये यास्कके पूर्ववर्ती हैं।

रचनाएं :-यास्क ने निर्वचनके प्रसंगमें इनका स्मरण किया है। इससे लगता है कि इनका कोई निरुक्त शास्त्र या निर्वचन शास्त्र नामक ग्रन्थ होगा। सम्प्रति इनके कोईभी ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते।

निर्वचन सिद्धान्त :- निरुक्तमें प्राप्त इनके विवेचनसे स्पष्ट होता है कि निर्वचनके वर्णागम आदि सिद्धान्त इन्हें मान्य हैं। वायु शब्दके संबंधमें प्रयुक्त स्थौष्ठीविका मत यास्कको भी मान्य है। इनके अनुसार वायु शब्दमें व व्यंजनागम हैं।

(ङ) आचार्य आग्रायण

आग्रायण शब्दको तद्धितान्त मानने पर आग्रायण आचार्यको अग्र नामक ऋषिका गोत्रापत्य माना जाएगा। यास्कने अपने निरुक्तमें कई स्थलों पर इनके विचारोंको उपन्यस्त किया है। अक्षि-अनक्तेरित्याग्रायण:[९२] अर्थात् अक्षि शब्द अञ्ज व्यक्तौ धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि अन्य अंगों की अपेक्षा ये आंखें व्यक्ततर हैं। कर्ण-ऋच्छतेरित्याग्रायण: अर्थात् कर्णशब्द गत्यर्थक ऋच्छ् धातु से निष्पन्न होता है। क्योंकि आकाशमें व्यक्त शब्द इन्हें प्राप्त होते हैं। इन्द्र:इंदकरणादित्याग्रायण:[९३] अर्थात् इस इन्द्रने यह सब कुछ किया इसलिए इदं पूर्वक कृ धातुसे इन्द्र शब्द निष्पन्न हुआ। यास्कने निरुक्तमें इन्हें स्मरण किया है। अत: इससे स्पष्ट होता हैकि ये यास्क के पूर्ववर्ती हैं।

रचनाएं :- निर्वचनोंके प्रसंगमें यास्क इनका स्मरण करते हैं इससे लगता हैकि ये निरुक्त ग्रन्थ के प्रणेता होंगे। सम्प्रति इनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता.

निर्वचन सिद्धान्त : अञ्ज् धातुसे अक्षि, ऋच्छ् धातुसे कर्ण तथा इदं+कृ धातुसे इन्द्र मानने वाले आग्रायणके निर्वचन सिद्धान्तके सम्बन्धमें इतनाही कहा जा सकता हैकि इनका निर्वचन सिद्धान्त ध्वन्यात्मक आधारको अधिक महत्त्व नहीं देता। इनके निर्वचन अर्थात्मक महत्त्वसे युक्त हैं।

(ढ) चर्मशिरा

चर्मशिराको यास्कने निरुक्तकारके रूपमें उल्लिखित किया है। चर्मशिरा शब्दसे पता चलता हैकि ये आचार्य चमड़ेकी टोपी पहनते थे। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि ये शीत प्रधान देशके निवासी होंगे। शीतसे बचाव के लिए जितना उपयुक्त चमड़ा होता है उतना वस्त्रादि नहीं। यास्क विधवा शब्दके निर्वचन में इनके मतका उल्लेख करते हैं-विधावनाद्वेति चर्मशिरा[९४] अर्थात् इधर उधर भागनेके कारण विधवा कहलाती है- वि + धाव् धातु से। निरुक्तमें मात्र इनका एक वार ही उल्लेख हुआ है। अन्यत्रभी इनका उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। यास्क द्वारा इनके सिद्धान्तोंके उल्लेख करनेसे पता चलता है कि ये यास्कसे पूर्ववर्ती होंगे।

रचनाएं :- इनके कोई ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते लेकिन यास्कके निरुक्तमें निरुक्तकारके रूपमें स्मृत होनेसे लगता है इनका कोई निरुक्त नामक ग्रन्थभी होगा।

निर्वचन सिद्धान्त :- विधवा शब्दके निर्वचन प्रसंगमें प्राप्त इनके विचारसे पता चलता है कि निर्वचनके क्रममें आख्यातज सिद्धान्तको वे अधिक महत्त्व देते थे।

(ण) शतवलाक्ष

शतवलाक्ष शब्द सामासिक शब्द है। इसके आधार पर शतवलानि बहुबलानि अक्षीणि इन्द्रियाणि यस्य सः इससे पता चलता है कि इनके अंग काफी मजबूत थे तथा गठे हुए थे। निरुक्तमें ही शतवलाक्षको मौद्गल्य कहा गया है। मौद्गल्य शब्द तद्धितान्त है इससे पता चलता है कि ये मुद्गलके पुत्र थे। निरुक्तमें मृत्यु शब्दके निर्वचन प्रसंगमें यास्कने इनके नामका स्मरण किया है-मृत्युःमृतं च्यावयतीति वा शतलाक्षोमौद्गल्यः[९५] अर्थात् मृतको यह इस लोकसे प्रच्युत कर देती है या लोकान्तरमें चला देती है। इनका उल्लेख वृहद्देवता में भी हुआ है।[९६] यास्क द्वारा उल्लिखित होने से स्पष्ट है कि ये यास्कके पूर्ववर्ती हैं।

रचनाएं :- इनकी रचना के संबंधमें निश्चित रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि सम्प्रति इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है। निरुक्तमें ही निरुक्तकार के रूप में स्मृत होने के चलते अनुमान होता है कि इनका भी निरुक्त नामक ग्रन्थ होगा।

निर्वचन सिद्धान्त :- निरुक्तमें मात्र एक जगह ही इनके विचारका उल्लेख हुआ है इससे इनके निर्वचन सिद्धान्त स्पष्ट नहीं होते।

-:संन्दर्भ संकेत:-

१. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाःप्रमाणानि-सि.मुक्ता. प्रत्यक्ष खण्ड २।५१ का., २. अथोतामिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति। इन्द्राय वृत्रघ्ने। इन्द्राय वृत्रतुरे इन्द्रायांहोमुचइति-नि. ७।३ (मै.सं. ३।१५।११), ३. भा.वि. पृ. ५२९, ४. नि.दु.वृ. १।४।२, ५. वृ.दे. ७।६९, ६. बौ.श्रौ.सू. २२।१ ७. द्र. (कक शब्द) नि. ३।४, ८. द्र. कैटलाग् आफ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स-खण्ड-२ पृ.५१०, ९. नि. १।१, १०. नि. २।१, ११. नि. २।२, १२. नि. ३।२, १३. ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः नि. २।३, १४. नि. ३।४, १५. नि. ६।६, १६. नि. १०।१, १७. नि. ३।४, १८. नडादिभ्यो फक्-अष्टा. ४।१।९९, १९. नि. १।१, २०. तस्मै नूनमधिद्यवे वाचाविरूपनित्यया वृष्णे चोदस्व सुष्टितिम् १।१ ऋ. ८।७५।६, २१. नि. १।१, २२. जायतेऽस्तिविपरीणमते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति-निः १।१, २३. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति-तै. उप.-२।१ जन्माद्यस्य यतः-ब्र.सू.१।१।२,द्र.-ब्र.सू. शा.भा.-१।१।२,२४.म.भाष्य-१।३।१, २५. न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुरिति शाकटायनः-नि. १।१, २६. उच्चावचाः पदार्था

भवन्तीति गार्ग्यः नि. १।१, २७. नामानि आख्यातजानिइति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च-नि. १।१, २८. न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके- नि. १।१, २९. नि. ३।३, ३०. द्र.-यत्किंचिदर्थजातमतद्भवदपि तत्सरूपं भवति। यथा-अग्निरिव खद्योतः। तद्भिन्नत्वेसति तद्गत भूयोधर्मवत्वं सदृशत्वम्-नि दु. वृ. ३।३, ३१. वह्वृचानां मेहना इत्येकं पदम्, छन्दोगानां त्रीण्येतानि पदानि मे इह नास्ति। तदुभयं पश्यता भाष्यकारेणोभयोः शाकल्यगार्ग्ययारेभिप्रायावाप्तानुविहितौ। नि.दु.वृ. ४।१, मेहना एकमिति शाकल्यः त्रीणीति गार्ग्यः स्क. टी. ४।१ (नि.), ३२. चतुर्भ्य इति तत्राहुर्यास्क गार्ग्यस्थीतसः। आशिषोऽथार्थ वैरूप्याद् वाचः कर्मण एव च।। बृ.दे. १।२६, ३३. व्याडिशाकल्यगार्ग्याः- ऋ प्रा. १३।३१, ३४. अङ्गार्ग्य गालवयोः- अष्टा. ७।३।९९ ओतो गार्ग्यस्य-अष्टा. ८।३।२० नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्य काश्यप गालवानाम्-अष्टा. ८।४।६७, ३५. प्रभृति ग्रहणान्निमिकांकायणगार्ग्य गालवाः-नि. १।३, ३६. व्या.शा. का इति. भाग-१, पृ.१४७, ३७. वाजसनेयी प्रातिशाख्य ४।१७७, ३८. वेदार्थावगमस्य बहुविद्यान्तराश्रयत्वात् तक्षशास्त्रे गार्ग्यागस्त्या दिभिरंगुलिसंख्योक्तम्। स्थपरिमाण श्लोकमुदाहरति। आपस्तम्ब शुल्व सूत्र मैसूर संस्करण पृ. ९६, ३९. यदत्तत्सदृशमिति गार्ग्यः- नि. ३।३, ४०. उच्चावचाः पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः। तद् य एषु पदार्थः, प्राहुरिमे तं नामाख्यातयोरर्थविकरणम्- नि. १।१, ४१. न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके- नि. १।४, ४२. नि. २।२, ४३. नि. ३।२, ४४. नि. ३।३, ४५. नि. ३।४, ४६. नि. ४।१, ४७. नि. ५।३, ४८. नि. ५।४, ४९. नि. ७।६, ५०. नि. ८।१, ५१. नि. ८।२, ५२. नि. १२।२, ५३. नि. दुर्गभाष्य- ८।५, ५४. वृ.दे. १।२३-२६, ५।८, ५।३९, ६।७०, ५५. संहिता त्रितयं तत्रै शाकपूणिस्तथेतरः निरुक्तमकरोत्तद्वच्चतुर्थं मुनि सत्तमा ३।४।२३, ५६. वा.पु. ६१।२, ५७. नि. १।४। भा. १ पृ. ४९, ५८. नि. २।६, ५९. नि. १२।१, ६०. नि. १२।२, ६१. वायु पुराण श्वेतवाराह कल्प ७।५१, ५२,५६, ६२. बृहद्देवत्ता- ७।१२५, ६३. अष्टा ६।३।३१, ७।१।७४, ७।३।९९, ८।४।६७, ६४. नि. ४।१, ६५. पांचालेन क्रमः प्राप्तस्तस्माद् भूतात् सनातनम्। वाभ्रव्यगोत्रः स बभूव प्रथमं क्रमपारगः।।नारायणाद् वरं लब्ध्वा प्राप्तं च योगमुत्तमम्। क्रमं प्रणीय शिक्षां च प्रणयित्वा स गालवः।। म.शा.प., ६६ प्रभृतिग्रहणान्निमिकांकायणगार्ग्यगालवाःसुश्रुत टीका १।३, ६७.बृ.दे. ५।३९, ७।३८, ६८.वेदमेकस्मिन्नहनि समापयेदिति जातूकर्ण्यः। समापयेदिति गालवः- ऐ.आ. ५।३।३,

६९. शरावं चैवगालवः- वा.पु. ३४।६३, ७०. इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य-अष्टा. ६।३।३१ अष्टा.- ७।१।७४, ७।३।९९, ८।४।६७, ७१. सुश्रुत टीका - १।३, ७२. ऋ.प्रा.- ११।६५, ७३. नवभ्य इति नैरुक्ताः पुराणाः कवयश्च ये। मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते।। १।२४, ७४. सप्तभिरधिकरणैर्वाभ्रव्यः पांचालः संचिक्षेप-वा.का. सू. १।१।१०, ७५. शरावं चैवगालवः- वायु पुराण- ३४।६३, ७६. शितिमांसतोमेदस्त इति गालवःनि. ४।१, ७७. नवभ्य इति नैरुक्ताः पुराणाः कवयश्च ये। मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते।। निवासात् कर्मणो रूपान् मंगलाद् वाच आशिषः। यदृच्छ्योपवसनात् तथाऽऽमुष्यायणाच्च यत्।। वृ.दे. १।२४-२५, ७८. नि. ४।१, ७९. नि. ५।४, ८०. नि. ८।१, ८१. नि, ८।१, ८३. सौमप्रधानमेतां तु क्रौष्टुकिः मन्यते स्तुतिम् वृ.दे. ४।१३७, ८४. नि. ८।२, ८५. नि. ८।२ (दु.वृ.द्र.), ८६. नि. ८।२, ८७. नि. ८।२, ८८. नि. ९।३, ८९. नि. ९।४, ९०. नि. १।३, ९१. नि. १०।१, ९२. नि. १।३, ९३. नि. १०।१, ९४. नि. ३।३, ९५. नि. ११।१, ९६. वृ.दे. ६।४६, ८।९०.

चतुर्थ अध्याय

-: यास्क एवं निरुक्त :-

(क) यास्क का परिचय

चतुर्दश विद्याओं में षडंगकी भी गणना होती है।[१] षडंगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष परिगणित हैं। वर्तमान समय में उपलब्ध षडंगों में प्रधानभूत निरुक्त, जो निघण्टु के शब्दों का निर्वचन करता है, के रचयिताके रूपमें महर्षि यास्क भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा समादृत हैं। यास्कके निरुक्तसे पता चलता है कि यास्कके समय तक अनेक निरुक्त थे तथा अनेक निरुक्तकार हो चुके थे। सम्प्रति निरुक्तके रूपमें किसी दूसरे निरुक्तकार का ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। फलतः यास्कका ग्रन्थ निरुक्तके रूपमें आदृत है।

निरुक्तके अन्तमें -'नमो ब्रह्मपे। नमो महते भूताय। नमः पारस्कराय। नमो यास्काय। ब्रह्म शुक्त्र मसीय। ब्रह्म शुक्त्रमसीय।' इस प्रकारका उल्लेख प्राप्त होताहै। यद्यपि यह लेख लिपिकारोंका होगा फिरभी इस उल्लेख से पता चलताहै कि पारस्कर और यास्क एक ही व्यक्ति हैं। वृहद्देवताके प्रणेता आचार्य शौनक ने यास्क कृत निरुक्तके अनेक स्थलोंको अपने ग्रन्थमें उद्धृत किया है। आचार्य शौनक पाणिनि से भी प्राचीन हैं।

अत: निरुक्तकारके रूपमें यास्कको मानना सर्वथा संगत है। महाभारत,[२] महाभाष्य[३] आदि ग्रन्थोंमें भी निरुक्तकारके रूपमें यास्कको ही स्मरण किया गया है।

निरुक्तके अन्त में उल्लिखित 'नमो यास्काय' के आधार पर यास्क नाम गोत्रापत्य मान लिया जाय तो ये यस्क के गोत्रापत्थ थे ऐसा प्रतीत होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायीसे भी यस्क गोत्रापत्यके बारेमें पता चलता है।[४] शतपथ ब्राह्मणसे भी यस्क के गोत्रापत्य की ही पुष्टि होती है।[५]

'नम: पारस्कराय' में पारस्कर शब्दके उल्लेख से पता चलता है कि यास्क पारस्कर देशके रहने वाले थे। 'पारस्कर प्रभृतीनि च संज्ञायाम्'[६] इस सूत्रके भाष्यमें महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि 'पारस्करो देश:' अर्थात् पारस्कर देश- विशेषका नाम है। इसे भारतका ही एक प्रदेश विशेष कह सकते हैं। आचार्य जिनेन्द्रबुद्धिने अपनी न्यास टीकामें पारस्करकी व्युत्पत्ति- 'पारं करोतीति ऐसा कहा है।[७] इस विश्लेषणसे पता चलता है कि पारस्कर नामका कोई ऐसा प्रदेश है जिसे कठिनाईसे पार किया जाता है। कठिनाई से पार करनेके कारण ही उस प्रदेशका नाम पारस्कर पड़ गया। भारतमें मरूस्थल की दक्षिणी छोर पर थर पारकर नामका स्थल है जिसे पार करने का मतलब सम्पूर्ण मरूस्थल ही पार करना पड़ता है। संभवत: यही यास्कका स्थान रहा होगा। देशके नामके आधार पर व्यक्तियों का सम्बोधन भी होता रहा है। आज भी ऐसी प्रथा प्रचलित है। जहानावादी, लखनवी, वनारसी, बिहारी, बंगाली, मद्रासी, अमेरिकन, यूरोपीयन आदि स्थान विशेष पर या देश विशेष पर ही अभिहित हैं।

व्यक्तित्व :- निरुक्त में आये उद्धरणों से पता चलता है कि यास्क वैदिक भाषा के पण्डित थे। भाषागत क्षेत्रीय वैशिष्ट्य का भी इन्हें पूर्ण ज्ञान था। इन्हें भाषा वैज्ञानिक भी कहा जा सकता है। लौकिक संस्कृत में सरल व्याख्यान शैली का प्रादुर्भाव यास्कसे ही माना जा सकता है, जिसका विकसित रूप हम महाभाष्यमें पाते हैं। चारों वेदों का तो इन्होंने पूर्ण परिशीलन किया ही था साथ ही पदपाठ, तत्तरीय, मैत्रायणी आदि संहिताओं का भी इन्हें पूर्ण ज्ञान था। ब्राह्मण ग्रन्थों में एतरेय, शतपथ, कौषीतकि गोपथ आदि से ये पूर्ण परिचित थे। इन सबों के अतिरिक्त प्रातिशाख्यों, उपनिषदों, आरण्यकों के भी विद्वान थे। निरुक्त में विभिन्न सम्प्रदायों की चर्चा होती है-'वैयाकरणा:,[९] हारिद्रविकम्[१०]। आख्यानसमय:[११] ऐतिहासिका:[१२], नैदाना:[१३], नैरुक्ता:[१४] परिव्राजका:[१५], पूर्वेयाज्ञिका:[१६]याज्ञि का:[१७] आदि। 'इन सम्प्रदायों के उल्लेख से पता चलता है कि यास्क इन सम्प्रदायों

से पूर्ण अभिज्ञ थे। विभिन्न वैयाकरणों एवं निरुक्तकारोंके सिद्धांतों का उल्लेख भी इन्होंने अपने निरुक्तमें किया है। फलतः उन वैयाकरणों एवं निरुक्तकारोंके सिद्धान्तोंसे भी वे पूर्ण परिचित थे। निरुक्तमें प्राप्त व्याख्यानों एवं विवेचनोंके अनुसार इनको वैज्ञानिक, भूगोलवेत्ता, दार्शनिक, कामशास्त्री आदि भी कहा जा सकता है।

आचार्य यास्कने विभिन्न आचार्योंके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन कर उस सिद्धान्त से अपनी सहमति या असहमति प्रकट की है। पूर्वाचार्यों के द्वारा प्रतिपादित कुछ सिद्धान्त निरुक्तमें तर्कपूर्ण ढंगसे प्रतिष्ठित किए गए हैं। जैसे- उपसर्गोंकी वाचकता, आख्यातज सिद्धान्त आदि। इन सिद्धान्तोंकी स्थापनामें ये पूर्ववर्ती आचार्योंके नाम ही प्रथम लेते हैं, लेकिन उसकी स्वीकृतिसे पता चलता है कि ये इनकी ही स्थापना है। इन्द्र, अग्नि आदि कुछ शब्दोंकी सिद्धिमें तो वे अपनी अमित प्रतिभाका परिचय देते हैं। निरुक्तमें ही प्राप्त वर्णनोंके अनुसार पता चलता है कि कहीं-कहीं इनकी दृष्टि व्यवहारपरक हो गयी है। फलतः इनका सिद्धांत प्रत्यक्ष की ओर ज्यादा अग्रसर दीख पड़ता है। देवताओंके आकार चिन्तनमें भी वे मौलिक दृष्टि अपनाते हैं। देवताओंका विभाजन इनकी मौलिक दृष्टिका ही परिणाम है।

शब्दोंके प्रयोगमें यास्क सूक्ष्म दृष्टि अपनाते हैं। इनका शब्द कौशल निश्चित ही हृदयावर्जक है। किसी तथ्य को सरस एवं सरल शैलीमें प्रतिपादित करना इनकी अपनी विशेषता है।[१५] निरुक्तमें सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा विधिसम्बन्धी विषयोंका यत्र-त्रत्र विन्यास भी श्लाघ्य है। इन विषयोंके समुचित विन्याससे पता चलता है कि यास्क व्यवहारवादी, कुशल एवं यथार्थ द्रष्टा हैं। इन्हें बहुमुखी प्रतिभा से समन्वित युग पुरुष कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ संकेत

१. पुराणन्याय मीमांसा-धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥ -याज्ञ.स्मृ., २. यास्को मामृषिरव्यग्रोऽनेकयज्ञेषु गीतवान्। शिपिविष्ट इति ह्यस्माद् गुह्यनामधरोह्यहम्॥ स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधीः। मत्प्रसादादधो नष्टं निरुक्तमधिजग्मिवान्॥' - महा. शा. पर्व. अध्या. ३२४।७०-७१, ३. महाभाष्य-प्रथमाह्निक, ४. यस्कादिभ्यो गोत्रे - अष्टा. २।४।६३, ५. शतपथ ब्राह्मण- १४।५।५।२१, ६. अष्टा. ६।१।१५७, ७. काशिका - ६।१।१५७ पर न्यास- द्र., ८. इवेति भाषायाम्'- नि. १।२ शवतिगतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते विकारमस्यार्येषु शव इति।'-

नि. २।१, ९. नि. १।४, १०. नि. १०।१, ११. नि.५।४, १२. नि. २।५, १३. नि. ६।२, १४. नि. २।५, २।२, १५. नि. २।२, १६. नि. ७।६, १७. नि. ५।२, १८. 'तद् यान्येतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च, तानीमानि भवन्ति।' -नि १।१.

(ख) यास्क का समय निर्धारण

लौकिक संस्कृतकी जैसी स्थिति पाणिनिके समयमें थी, वैसी ही स्थिति वैदिक भाषा और उसके अर्थ निर्धारणके विषयमें यास्कके समय थी। भाषाका विकास होता है, यह सर्वथा सत्य है। विकासका परिणाम रूप में विकृति लाना होता है। आज की भाषा ध्वन्यात्मक या अन्य आधार ग्रहण कर किंचित् परिवर्तित हो जायेगी। भाषा को स्थिर रखने का माध्यम शब्दों को नियमबद्ध करना है। नियमबद्ध शब्दों के साथ किसी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं क्योंकि उसके स्वरूप को इस प्रकार नियमों के पाश में जकड़ दिया जाता है जिससे उसकी गतिशीलता नष्ट हो जाती है। लौकिक संस्कृत का रूपान्तर ५०० ई.पू. सामाजिक एवं रूपान्तर के अन्य कारणों से आरम्भ हुआ। उस समय महर्षि पाणिनि का आविर्भाव इन रूपान्तरोंको प्रतिबन्धित कर उनको स्थायी रूप देनेके लिए हुआ। इन्होंने तत्कालीन प्रचलित संस्कृत के शब्दोंको नियम से आबद्ध कर दिया जिससे देश, काल, पात्र आदिका प्रभाव इसके स्वरूप को परिवर्तित करने में सक्षम नहीं हो सका। परिणामत: आज तक संस्कृतके वे ही रूप हमारे सामने हैं जो ई.पू. ५०० वर्ष पहले थे।

वैदिक काल में मन्त्रोंका लेखन सर्वथा त्याज्य था। साधनके अभाव में तथा असीम आस्था के फलस्वरूप लोगों ने श्रुतिपरम्परा का आश्रय लिया। उस समय मंत्रों की रक्षा श्रुतिपरम्परा से ही होती थी। यह वेदाध्ययन की तत्कालीन परम्परा बन गयी थी। उस समयमें भी मन्त्रार्थावगति एवं अर्थवाद की प्रामाणिकता अपेक्षित थी। श्रुतिपरम्परा के विकसित सिद्धांतों में विकृति पाठों[१] का प्रयोग होनेसे मंत्रोंके स्वरूपकी रक्षा तो हो जाती थी लेकिन देश काल पात्रानुसार शब्द परिवर्तनकी आशंका थी। अत: पदभेद का ज्ञान, यज्ञोंमें देवताओंके नामसे निर्दिष्ट विधियों का ज्ञान, तत्कालीन सामाजिक नास्तिकता के फलस्वरूप मंत्रोंमें अर्थ विवक्षा का समाधान आदि के लिए महर्षि यास्क का अविर्भाव हुआ। इन्होंने शब्दों में अर्थाधान प्रदर्शन के लिए निरुक्तकी रचना की तथा वैदिक शब्दोंके अर्थ

विकारको स्पष्ट किया। ज्ञातव्य है पाणिनिने लौकिक एवं वैदिक शब्दोंके स्वरूपको स्थायित्व प्रदान करनेके लिए नियमबद्ध कर दिया। दोनोंका कार्य प्रकारमें भेद रखते हुए भी एक दूसरेसे महत्त्वमें कम नहीं।

लौकिक संस्कृतके अभ्युदय कालमें तथा वैदिक संस्कृतके अवसान काल में यास्कका समय माना जा सकता है, क्योंकि इनका कार्यक्षेत्र इसी कालकी ओर संकेत करता है। पाणिनिका समय लौकिक संस्कृतके समृद्धि काल का है। व्यापक साहित्यके आधार पर ही शब्दोंका व्युत्पादन पाणिनिके शब्द कौशलका प्रतीक है। फलतः पाणिनिसे यास्क पूर्व के हैं। दोनों आचार्योंकी भाषा एवं सिद्धान्तोंका अनुसंधान दोनोंके काल पार्थक्यको स्पष्ट कर देता है। दुर्भाग्यकी बात है कि अभी तक पाणिनिके समयका यथावत् निर्धारण नहीं हों पाया है।

कुछ विद्वान् पाणिनिको यास्कसे प्राचीन मानते हैं। इन विद्वानोंमें मैक्समूलर, वोथलिंग, सत्यव्रत सामश्रमी आदि उल्लेख्य हैं। मैक्समूलरका कहना है कि यास्कका 'नामानि आख्यातजानि' (सभी नाम आख्यातज हैं) नवीन सिद्धांत वाजसनेय प्रातिशाख्यकार के पदविभाग, नाम पदों के तद्धित कृदन्त प्रकार आदि को अपर्याप्त समझनेका परिणाम है। इनके आधार पर यास्क प्रातिशाख्यकार कात्यायनसे अर्वाचीन हैं। प्रातिशाख्यकार कात्यायन और वार्तिककार कात्यायन को ये एक ही मानते हैं। फलतः यास्क पाणिनिसे तो अर्वाचीन हैं ही वार्तिककार कात्यायन से भी अर्वाचीन हैं।

मैक्समूलरका उपर्युक्त मत कथमपि संगत नहीं है। ज्ञातव्य है कि जिस 'नामानि आख्यातजानि' सिद्धांतके आधार पर मैक्समूलर यास्कको कात्यायनसे अर्वाचीन मानते हैं, वह सिद्धांत यास्कसे भी पूर्व शाकटायन का है।[२] शाकटायन का उल्लेख स्वयं पाणिनिने भी अपनी अष्टाध्यायीमें किया है।[३] अतः शाकटायन निश्चय ही पाणिनिसे भी पूर्व के हैं। अगर यास्कका उपर्युक्त सिद्धान्त कात्यायन का माना जाय तो स्वयं पाणिनिभी कात्यायनसे पीछेके सिद्ध होंगे। निर्विवाद रूप से पाणिनि कात्यायनसे पूर्ववर्ती हैं। अतः निष्कर्ष रूपमें कहा जा सकता है कि मैक्समूलरका मत प्रलापमात्र है।

मैक्समूलर, वोथलिंग आदि विद्वानोंके मतसे प्रभावित सत्यव्रतसामश्रमीजी भी पाणिनिको यास्कसे प्राचीन मानते हैं। इनकी मान्यताके अनुसार वार्तिककार कात्यायनसे तो यास्क प्राचीन हैं लेकिन पाणिनीसे अर्वाचीन। अपने सिद्धान्त की पुष्टि में इनका कहना है कि पाणिनि ही आदि व्याकरण प्रणेता हैं।निरुक्तमें आये व्याकरणके पारिभाषिक

शब्द पाणिनि व्याकरणसे ही लिए गए हैं।[४] क्योंकि पाणिनि व्याकरण ही आदि व्याकरण है। सामश्रमी जी पुनः अपने मतकी पुष्टिमें निरुक्तमें प्रयुक्त 'अपार्ण' शब्द पर बल देते हैं तथा कहते हैं कि पाणिनिके सूत्रों में 'ऋण' शब्दके रहने पर कोई वृद्धि विधायक सूत्र नहीं प्राप्त होता। फलतः पाणिनिके समयमें प्रर्णम्, अपर्णम् ही प्रयोग होता था, जो कि वृद्धिरहित प्रयोग था। वार्तिककारके काल में- 'प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे'[५] वार्तिक का निर्माण हुआ जिससे-प्रार्णम्, वत्सरार्णम् आदि पदों की सिद्धि हुई। इन्होंने भी 'प्र' के स्थान पर या 'प्र' के सदृश कोई अप उपसर्गका सन्निवेश अपने सूत्रोंमें नहीं किया। अतः पाणिनि यास्कसे पहले थे, क्योंकि अगर ये यास्कके बाद होते तो यास्कके अपार्णम् प्रयोगकी सिद्धिके लिए अपना मतंव्य अवश्य प्रकट करते। इसके अतिरिक्त निरुक्तमें प्रयुक्त 'परः सन्निकर्षः संहिता'[७] इस सूत्र को भी वे पाणिनिका ही सूत्र समझते हैं। इन्हीं आधारों पर पाणिनिको यास्क से प्राचीन मानते हैं।

मैक्समूलर, बोथलिंग आदि विद्वानोंका मत सर्वथा खंडित हो चुका है। सामश्रमीजी के मत को भी संगत नहीं माना जा सकता। इनकी उक्त स्थापना को तर्कों के आधार पर मूल्यांकित किया जाय तो पता चलेगा कि यास्क ही पाणिनिसे प्राचीन है।

सामश्रमीजी का यह कहना, कि पाणिनि ही आदि वैयाकरण है और इनकी अष्टाध्यायी ही आदि व्याकरण है, एकदम निराधार है। स्वयं पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें अपने पूर्ववर्ती कई वैयाकरणोंके नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिए हैं।[८] पाणिनिसे पूर्ववर्ती प्रातिशाख्य ग्रन्थ हैं, जो वैदिक व्याकरण हैं। व्याकरण शास्त्र लोक प्रयुक्त शब्दोंका अन्वाख्यान मात्र है। इसका काम शब्दोंका गढ़ना नहीं है।[९] शब्दोंका प्रयोग तो देश काल पात्रानुसार प्रचलित एवं अप्रचलित होता रहता है। कुछ नये शब्दोंका प्रचलन होने लग जा सकता है। कुछ प्रचलित शब्दों का प्रचलन रुक भी सकता है। इस आधार पर सत्यव्रत सामश्रमी जी के सिद्धान्तके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यास्क के काल में 'अपार्ण' शब्दका प्रयोग होता था, कुछ काल बाद यह अव्यवहृत हो गया। फलतः पाणिनिने 'अपार्णम्' शब्दकी सिद्धिके लिए कोई सूत्र का विधान नहीं किया। वार्तिककारके समय में 'प्रार्णम्' का प्रयोग होने लगा होगा। फलतः प्रार्णम् शब्द की सिद्धि के लिए इन्होंने वार्तिक का निर्माण किया। उनके समय में भी 'अपार्णम्' शब्द का प्रयोग होता होगा। पुनः केवल 'अपार्णम्' ही ऐसा प्रयोग नहीं है जो पाणिनीय व्याकरण से सिद्ध नहीं होते, बल्कि विचिकित्सार्थीय आदि बहुतसे प्रयोग पाणिनि व्याकरण से सिद्ध नहीं होते हैं। इन

शब्दोंके लिए भी यहीं तर्क उपयुक्त होगा कि सारे शब्द यास्कके समय तो प्रचलित होंगे लेकिन पाणिनिके समय लुप्त हो गये होंगे।

निरुक्तमें सूर्याको 'सूर्यस्य पत्नी' कहा है।[१०] सामश्रमी जी का कहना है कि पाणिनीय व्याकरणके आधार पर सूर्य शब्दसे उक्त अर्थमें सूरी शब्द बनता है। यदि पाणिनि यास्कसे अर्वाचीन होते तो सूर्या शब्दके लिए अवश्य ही कोई सूत्र का विधान करते। बादमें वार्तिककारने ऐसा किया भी है।[११] इस मतके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उक्त अर्थमें सूर्या का प्रयोग वैदिक प्रयोग है जो यास्कसे बहुत पूर्व का है[१२] यास्क उस शब्दको मात्र पूर्ण स्पष्ट करते हैं। इससे यास्क की अर्वाचीनता प्रमाणित नहीं होती।

'परः सन्निकर्षः संहिता' के सम्बन्ध में भी सामश्रमी जी का कहना एकदम निराधार है कि यास्कने इसे पाणिनिसे ग्रहण किया। ज्ञातव्य है व्याकरण का प्रादुर्भाव पाणिनिसे बहुत पूर्व ही हुआ है।[१३] स्वयं आचार्य पाणिनिने ही अपनी अष्टाध्यायीमें अपने से पूर्ववर्ती कई वैयाकरणोंके नामका उल्लेख किया, जो पूर्व प्रतिपादित है। यास्कके पहले भी वैयाकरणोंके सम्प्रदाय थे जैसा कि निरुक्तमें भी उल्लेख प्राप्त होता है। अतः यह सूत्र क्या यास्क के पूर्ववर्ती वैयाकरणोंका नहीं हो सकता, जिनका नाम स्वयं पाणिनि भी लेते रहे हैं। पुनः यह सोचा जाय कि पाणिनि पर ही यास्कके इस सूत्र का प्रभाव है, तो कौन सा अनौचित्य होगा।

अगर पाणिनि यास्कसे पहले होते तो यास्क पाणिनिका भी नाम अपने निरुक्तमें अवश्य लेते। वे पूर्व के वैयाकरणोंमें गार्ग्य आदि का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लेते हैं।[१४] 'आस्यदध्नाः' शब्द पाणिनि के 'प्रमाणेद्व्यसज् दघ्नञ्मात्रचः'[१५] इस सूत्रसे दघ्नच् प्रत्यय करने पर सिद्ध हो जाता है। ज्ञातव्य है, यास्कने 'दघ्न' को प्रत्यय नहीं मानकर 'दघ्न' शब्दका निर्वचन किया है- 'दघ्नं दध्यतेः स्रवति कर्मणः'।[१६] अगर पाणिनि यास्कसे पहले होते तो निश्चिय ही यास्कको पाणिनिके उपर्युक्त सूत्रकी आवश्यकता पड़ती और उस पर पाणिनि कालीन प्रत्ययको शब्द मानकर निर्वचन नहीं करते।

यास्कने पदको चार भागोंमें विभक्त किया है, नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। पाणिनि पदके दो ही भेद मानते हैं, सुबन्त, तथा तिङन्त[१७] पाणिनिने अव्यय को सुबन्तका ही एक भेद माना है जबकि यास्क ऐसा नहीं करते। अगर यास्क पाणिनिसे बाद होते तो पाणिनिके इस प्रभावसे अवश्य प्रभावित होते।

पाणिनिको यास्कसे प्राचीन माना जायतो पाणिनिके लगभगचार हजारसूत्रों एवं

धातु पाठोंका ज्ञान यास्कको अवश्य होना चाहिए था। साथ ही वे अपने निरुक्तमें पाणिनीय नियमों एवं प्रयोगोंका उल्लेख अवश्य करते, जैसा कि अन्य वैयाकरणोंके नियमों एवं प्रयोगोंका उल्लेख इन्होंने किया है। सम्पूर्ण निरुक्तमें कहीं भी पाणिनीय नियमों एवं प्रयोगोंका उल्लेख नहीं प्राप्त होता। अतः पाणिनि यास्कसे पीछे हुए। पाणिनिके समय तक बहुत सारे नये-नये शब्द प्रयोगमें आ गये थे, तथा बहुतसे वैदिक शब्द केवल साहित्य मात्र की ही शोभा बढ़ा रहे थे। यास्कसे पाणिनिके बीच के समयमें प्रयुक्त शब्दोंका प्रदर्शन पाणिनीय व्याकरण में होता है। पुनः यास्कका पाणिनि पर प्रभाव देखा जा सकता है। 'यस्कादिभ्योगोत्रे'[१८] सूत्रसे पाणिनि यास्क शब्द की सिद्धि करते हैं। 'नामानि आख्यातजानि'[१९] सिद्धांतके अनुसार यास्क अतिपरोक्षवृत्तिके द्वारा भी निर्वचन प्रस्तुत करते हैं। पाणिनिने यास्कसे प्रभावित होकर ही इस प्रकारके शब्दोंकी सिद्धिके लिए 'उणादयो बहुलम्'[२०] सूत्रका निर्माण किया जिससे (अतिपरोक्षवृत्ति) अव्युत्पन्न शब्दोंकी सिद्धि हो सकी।

यास्कने अपने निरुक्तमें कुछ व्याकरण परक शब्दोंका प्रयोग किया है,[२१] जो स्वतः व्याख्या योग्य है तथा अन्वर्थक एवं वर्णनार्थक हैं। पाणिनिने कुछ यादृच्छिक संज्ञा की कल्पना की है, टि, भ, घु आदि। यास्क इस प्रकारकी संज्ञाका प्रयोग नहीं करते हैं। इन्होंने उपधा, अभ्यास, गुण आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। लेकिन इन शब्दोंको पारिभाषित नहीं किया। इससे पता चलता है कि उस समय तक ये सारे शब्द इतने व्याप्त हो गये होंगे कि इन शब्दोंको बिना परिभाषाके भी समझा जा सकता था। बादमें पाणिनिने इन शब्दोंको पारिभाषित किया है। पाणिनिका उद्देश्य वैज्ञानिक तथ्यपूर्ण व्याकरण बनाना था, जिसमें स्वार्थोपलब्धि के लिए अनुकूल परिभाषा देना आवश्यक था। इन परिभाषाओं के बिना व्याकरणके सूत्रोंका स्पष्टीकरण संभव नहीं है। अतः इससे पाणिनिको यास्कसे प्राचीन नहीं माना जा सकता। पाणिनिसे पूर्व सम्प्रदाय वालोंने भी तो उन शब्दोंको पारिभाषित किया है। ऐसी बात नहीं कि उन शब्दोंकी परिभाषा पाणिनिसे ही आरंभ होती है। उन परिभाषाओंमें किंचित् स्वरूप भेद होते हैं लेकिन विषय भेद नहीं होते। इस विषयमें एक समाधान उपस्थापित किया जा सकता है। ये सारे शब्द यास्कके कालमें अधिक प्रचलित होनेके कारण परिभाषाकी अपेक्षा नहीं रखते होंगे। यास्कसे पाणिनिके अन्तरालमें इन सारे शब्दोंका प्रचलन कम गया होगा। फलतः पाणिनिको इन शब्दोंकी परिभाषा देनी पडी। अतः इससे सिद्ध होता है कि पाणिनिसे यास्क प्राचीन हैं।

यास्क एवं पाणिनिके ग्रन्थोंका भाषा वैज्ञानिक आधार पर परीक्षण किया जाय तो यास्कके ग्रन्थकी प्राचीनता स्पष्ट प्रतिलक्षित होगी। यास्कने अपने निरुक्तमें अनेक ऐसे धातुओंका प्रयोग किया है, जो पाणिनीय धातु पाठमें उपलब्ध नहीं होते। जैसे- `अतिदंही'[२२] शब्दमें यास्क दानार्थक दंह् धातुका प्रयोग करते हैं, जो पाणिनि व्याकरणमें नहीं है। इसी प्रकार `जू' नक्ष्' आदि धातुएं भी केवल यास्क के निरुक्तमें प्राप्त होते हैं, पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें नहीं। यास्कने जिन अर्थोंमें कुछ धातुओंका प्रयोग किया है, वे पाणिनिसे भिन्न हैं। यास्क `शप्' धातुका स्पर्श अर्थमें प्रयोग करते है तो पाणिनि इसका प्रयोग आक्रोश अर्थ में करते हैं। इसी प्रकार यास्क ने कल्, नम् एवं मृग् धातुओंका गति, क्रुश् का शब्द, विस् का भेदन, ह्लाद् का शीतीभाव, मंह् का वृद्धि एवं दान, ध्वृ का हिंसा, दद् का धारण, दध् का स्रवण एवं वक्ष् का समृद्धि अर्थमें प्रयोग किया है। लेकिन पाणिनिने कल् का क्षेप, नम् का भाषण, मृज् का शुद्धि, क्रुश् का आह्वान एवं रूदन, विस् का प्रेरणा, ह्लाद का अव्यक्त शब्द या सुख, मंह् का वृद्धि, ध्वृ का हूर्च्छन् अर्थात् वंचक वृत्ति करना, दद् का दान, दध् का घातन या पालन एवं चक्ष् का गति एवं हिंसा अर्थ में प्रयोग किया है। यास्क के समय चक्ष् तथा ख्या धातु स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त थे।[२३] लेकिन पाणिनीय व्याकरणमें चक्ष् तथा ख्या स्वतंत्र धातु नहीं हैं। कुछ प्रयोगोंमें चक्ष् धातुका प्रयोग मिलता है तथा कुछ में ख्या का।[२४] पाणिनि के आधार पर ख्या चक्ष् का समानार्थक है चक्ष् धातुका अदेश नहीं। यास्कके समय दोनों समानार्थी थे। अत: चक्षु: शब्दकी व्याख्यामें वे दोनों धातुओंका प्रदर्शन करते हैं। अगर यास्कके समय इन दोनों धातुओंमें कोई सम्बन्ध हुआ होता तो चक्षु: शब्दके निर्वचन में भी यास्क एक ही धातुका प्रयोग दिखलाते। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रयोगान्तरमें समयान्तर भी अवश्य होगा। अत: पाणिनि यास्कसे अर्वाचीन हैं।

यास्क द्वारा प्रयुक्त तद्धितके कुछ प्रत्यय भी पाणिनिके तद्धित प्रत्ययोंसे भिन्न हैं। यथा-अध्वरयु[२५] एवं कक्ष्या में यास्क क्रमश: `यु' तथा या प्रत्ययका प्रयोग करते हैं। यास्कने अध्वरयु में `यु' उपबन्ध (प्रत्यय) माना है, जो युज् धातु या तत्कामयते अथवा तदधीयते अर्थमें प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार `इंदयु'[२६] में यास्क ने `यु' के दो अर्थ बतलाये हैं,कामयमान: तथा तद्वान्।'यु'का व्यवहार `तद्वत्' अर्थमें भी उस समय प्रचलित था।[२७] यास्कके समय में `यु'केप्राय:तीन अर्थ देखनेको मिलतेहैं, तद्वान्, कामयमान:तथा तदधीते। इनमें यथोत्तर उस समय कम प्रचलितथे।पाणिनि व्याकरणसे

ज्ञात होता है कि 'यु' प्रत्यय सामान्य व्यवहार में नहीं था। कामयमानः अर्थमें वैदिक पदोंमें क्यच् प्रत्ययान्त नाम धातुसे ताच्छीलिक 'उ' प्रत्यय से 'यु' रूप बनता था।[२८] तद्वान् अर्थमें 'यु' प्रत्यय लौकिक संस्कृत में ही सीमित था। जैसे- कंयु, शंयु, शुभंयु आदि।[२९] 'ऊर्णायु'[३०] का प्रयोग छान्दस था। यास्कके समयमें इस प्रत्यय के जहां तीन अर्थ थे वहां पाणिनिके समय में मात्र एक ही अर्थ (तद्वान्) रह गया। अतः भाषामें इस प्रकारका अर्थ संकोच निश्चय ही अत्यधिक समयका परिणाम है।

यास्कने उपमार्थीय, प्रतिषेधार्थीय, विनिग्रहार्थीय, विचिकित्सार्थीय, परिग्रहार्थीय आदि शब्दों के लिए 'ईय' प्रत्यय का तथा एकपदिक, सांयोगिक, भाषिक, आदि शब्दोंके लिए 'इक' प्रत्ययका प्रयोग किया है, जो अष्टाध्यायीमें उपलब्ध नहीं होते। अष्टाध्यायी में इसका दूसरा ही रूप मिलता है। इस विकासमें भी समयका पर्याप्त अन्तर माना जा सकता है।

निरुक्त में, 'तेभिष्ट्वा' की व्याख्या तैष्ट्वा से करते हैं।[३१] पाणिनि ऐसी स्थिति में षत्व का विधान ही नहीं करते। आचार्य यास्कके कुछ बाद तक इस प्रकार की सन्धियां प्रचलित थी। गविष्ठिर, युधिष्ठिर आदि शब्दोंका प्रयोग उसी के उदाहरण हैं। पाणिनिके समय तक इसे अपवाद माना जाने लगा। युधिष्ठिर शब्द प्रयोग प्रथमतः अष्टाध्यायी एवं गणपाठमें ही प्राप्त होता है।[३२] यास्कके समय की अनेक सन्धियां पाणिनिके समय अप्रचलित हो गयी। इससे भी स्पष्ट होता है कि यास्क पाणिनिसे प्राचीन हैं।

पाणिनिके समयका निर्धारण हो जाय तो यास्कके समय निर्धारणमें आसानी हो सकती है। पाणिनिके समय निर्धारणमें भी मतैक्य नहीं है। उस सम्बन्धमें कुछ विचारोंको देखना अपेक्षित होगा।

सत्यव्रत सामश्रमीके अनुसार-पाणिनिके 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्'[३३] सूत्रमें वासुदेव तथा अर्जुनकी चर्चा है। अतः इससे पता चलता है कि पाणिनि वासुदेव कृष्ण तथा अर्जुनसे बादमें हैं। कल्हणने पाण्डवों के काल का उल्लेख इस प्रकार किया है-

'शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरू पाण्डवाः।।[३४]

अर्थात् कलियुग के ६५३ वर्ष बीत जाने पर पाण्डव वर्तमान थे। अर्जुनके पौत्र जनमेजयको कलियुगके सातवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध का माना जा सकता है। पाणिनिने जनमेजय पदकी सिद्धिके लिए 'एजेः खश्'[३५] सूत्रका प्रयोग किया है। अतः पाणिनि

जनमेजयके बाद के हैं। इन्हीं आधारों पर सत्यव्रत सामश्रमी जी ने ई.पू. २४०० वर्ष पाणिनि का काल माना।

मंजुश्री मूलकल्प में लिखा है कि पाणिनि नामका माणव महापद्म नन्दका मित्र था।[३६] बौद्ध भिक्षुओंके लिए प्रयुक्त होने वाले श्रमण शब्द का निर्देश पाणिनि के- `कुमार श्रमणादिभि:'[३७] सूत्रमें प्राप्त होता है। बुद्धके समयमें मंखालिगोसाल नामक आचार्यके लिए प्रयुक्त `मस्करी' शब्दकी सिद्धिमें पाणिनिने `मस्कर मस्करिणो वेणुपरिबाजकयो:'[३८] सूत्रका प्रयोग किया है। बेवर[३९] का कथन है कि सिकन्दरके साथ युद्ध करने वाली क्षुद्रक मालवोंकी सेनाका उल्लेख पाणिनिने खण्डिकादिगणमें पठित `क्षुद्रक मालवात् सेना संज्ञायाम्'[४०] गणसूत्र में किया है। कीथ[४१] का कहना है कि अष्टाध्यायीमें यवन[४२] शब्द पठित है। अत: सिकन्दरके आक्रमणके बाद ही पाणिनि हुए। राजशेखरकी काव्य मीमांसामें एक अनुश्रुति का उल्लेख है। उस अनुश्रुतिके अनुसार पाटलिपुत्रमें होने वाली शास्त्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण होकर पाणिनिने यशप्राप्त किया।[४३] पाटलिपुत्रकी स्थापना कुसुमपुर या पुष्पपुरके नामसे महाराज उदयीने की थी।[४४]

उपर्युक्त आधार पर ही मैक्समूलर,[४५] वैवर, कीथ[४६] आदि विद्वान, पाणिनिका समय ३५० ई.पू. मानते हैं। विण्टर नित्स[४७] भण्डारकर आदि विद्वान् पाणिनि का काल ५०० ई.पू. निर्धारित करते हैं। डा. वैल्भल्कर[४८] इनको ७०० ई. पू. तक पहुंचाते हैं। सत्यव्रत सामश्रमी जी २४०० ई. पू. इनका समय निर्धारण करते हैं। युधिष्ठिर मीमांसक अन्य प्राप्त वर्णनों के आधार पर इनका समय लगभग २९०० ई.पू. मानते हैं।[४९]

यास्क पाणिनिसे प्राचीन हैं, जैसा कि पूर्व हीं अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया गया है। पाणिनिके समय में संस्कृत भाषामें अधिक ह्रास होने लगा था। लोग निरुक्त द्वारा प्रदत्त वैदिक विज्ञानको भूलते जा रहे थे। भाषा की बढ़ती हुई विकृतिको देखकर पाणिनिने सोचा कि यह प्रवाह शिक्षामें ह्रासके कारण स्वाभाविक है।अगर इसी प्रकारकी स्थिति रही तो भाषाका वर्तमान रूप एकदम बदल जाएगा। एक जगहकी भाषाको दूसरी जगहके लोगनहीं समझ सकेंगे।फलत:उसने स्वरूपकी स्थिरता केलिए व्याकरण शास्त्र की रचना की। अष्टाध्यायी इसीका परिणाम है। भाषाकी ऐसी स्थिति आनेमें यास्कसे पाणिनिके बीच लगभग२५०वर्ष लगे होंगे।अत:यास्कका समय पाणिनि से२५०वर्ष पहले माना जा सकता है।आज पाणिनि के समय को५००ई.पू. लोगों ने

प्राय: मान लिया है। इस आधार पर यास्क का समय ७५० ई. पूर्व होगा।

महाभारत में भी यास्क का उल्लेख प्राप्त होता है-

'यास्को मामृषिरव्यग्रोऽनेक यज्ञेषु गीतवान्
शिपिविष्ट इति ह्यस्मात् गुह्यनामधरोह्यहम्।
स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधी:
मत्प्रसादादघो नष्टं निरुक्तमधिजग्मिवान्।।'[५०]

इस वर्णनसे पता चलता है कि यास्क महाभारतके निर्माणसे पूर्वके होंगे। निरुक्तमें देवापि तथा शन्तनु दो भाइयोंका उल्लेख प्राप्त होता है।[५१] प्राप्त वर्णनके अनुसार शन्तनु देवापिकी उपेक्षा करके स्वयं राज्यका अधिकारी बन गया। देवापिने ऐसी स्थितिमें जंगलका मार्ग अपनाया। वे जंगलमें रहने लगे। इधर राज्यमें बहुत दिनों तक अवर्षण रहा। ब्राह्मणोंने इसका कारण बतलाया-'अधर्मपूर्वक राज्यकी प्राप्ति'।[५२] ऐतिहासिक प्रमाणोंसे ज्ञात होता है कि देवापि तथा शन्तनु कौरवों एवं पाण्डवोंके पूर्व पुरुष थे। अत: यास्क देवापि एवं शन्तनु के बाद के हैं। यह यास्कके समयकी ऊपरी सीमा है। निरुक्तमें यास्कने अक्रूर शब्दका उल्लेख किया है-'अक्रूरो ददते मणिम्'[५३] 'इत्यभिभाषन्ते।' अक्रूरके पास स्यमन्तक मणि रहनेकी पुष्टि श्रीमद्भागवतसे भी होती है।[५४] अक्रूरको देश छोड़कर भाग जाना पड़ा था क्योंकि भेद खुल जाने पर लोग कहा करते थे, 'मणि' अक्रूरके पास है। यह भी यास्कके समयकी ऊपरी सीमा है। इससे पूर्ण स्पष्ट हो जाता है कि यास्क अक्रूरके बाद के हैं। निरुक्तसे ज्ञात होता है कि यास्कके काल में ऋषियोंका उच्छेद होना प्रारम्भ हो गया था।[५५] पुराणोंके अनुसार अन्तिम दीर्घ सत्र महाराज अधिसीमके राज्यकालमें हुआ था।[५६] महाभारत युद्धके बाद धीरे-धीरे ऋषियोंका उच्छेद अरंभ हो गया था। शौनकने अपने ऋक् प्रातिशाख्य और वृहद्देवतामें यास्कका उल्लेख किया है।[५७] फलत: महाभारत, ऋक्प्रातिशाख्य, वृहद्देवता आदिके अन्त: साक्ष्यसे पता चलता है कि यास्कका काल महाभारत के पूर्व का था।

शतपथ ब्राह्मणमें वर्णित आचार्य परम्परासे पता चलता है कि यास्क पाराशर्य के वृद्ध गुरु थें। पाराशर्य के जातूकर्ण्य, जातूकर्ण्य के भारद्वाज, भारद्वाज के आसुरायण तथा यास्क आचार्य हैं। 'पाराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्यो भारद्वाजाद्, भारद्वाजश्चासुरायणाच्च यास्काच्च।'[५८] इस वर्णनसे स्पष्ट होता है कि यास्क पाराशर्यसे पूर्व के हैं तथा आसुरायणके समकालीन हैं।

वृहदारण्यकोपनिषद्में वर्णित मधु विद्याकी आचार्यपरम्परामें भी यास्कका वर्णन प्राप्त होता है।[५९] सभी पदार्थों में श्रेष्ठ आत्मा की स्थिति ही मधुविद्या का सार है। उक्त ग्रन्थमें प्राप्त मधु विद्याका सिद्धान्त यास्कके सिद्धान्तसे मिलता जुलता है। आचार्य यास्कने भी सभी पदार्थोंमें एक आत्माको ही स्थित माना है।[६०] ये आत्मा को ही ब्रह्म मानते हैं। यह सभी भूतों एवं पदार्थों में व्याप्त हैं। अहं के रूप में प्रतीत होने वाला शरीरमें भी यही द्रष्टा एवं स्रष्टाके रूप में विद्यमान हैं।[६१] इस प्रकार मधु विद्याकी आचार्य परम्परामें यास्कका नाम परिगणित होने से यास्ककी प्राचीनता दार्शनिक दृष्टिकोणसे भी सिद्ध है।

निष्कर्षत: भाषावैज्ञानिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक आदि दृष्टियोंसे यास्क पाणिनि से काफी प्राचीन हैं। निरुक्तके अन्त:साक्ष्यसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। महाभारत, वृहद्देवता, ऋक् प्रातिशाख्य, शतपथ ब्राह्मण आदिके आधार पर भी इनकी प्राचीनता प्रमाणित है। अत: यास्कका समय ७५० ई.पू. ही सम्यक् है।

सन्दर्भ संकेत -:

१. 'जटामाला शिखारेखा स्थोदण्डोध्वजोघन:

अष्टौ विकृतय: प्रोक्ता: स्वयमेव स्वयंभुवा।।'- नि भाग-१ (देवराज यज्वा) प्राक्कथन १५ २. 'तत्रनामानि आख्यातजाति इति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च।'- नि. १।४, ३. लङ: शाकटायनस्यैव-अष्टा. ३।४।१११ त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य- अष्टा. ८।४।५०, ४. निरुक्तालोचन- (द्र.) पृ. १०३-१०५, ५. 'तदेतत् एकमेवपदं यास्कसमय निर्धारणे बहुमन्यतेऽस्माभि: अपार्णम्, अपार्णम् अपार्णमिति- (निरुक्तालोचन), ६. अष्टा ६।१।८९ का वार्तिक, ७. नि. १।६ अष्टा १।४।१०९, ८. लोप: शाकल्यस्य अष्टा. ८।३।१९, अवंगस्फोटायनस्य-अष्टा. ६।१।१२३ ओतो गार्ग्यस्य- अष्टा. ८।३।२०, ९. लक्ष्य लक्ष्ये व्याकरणम्-महाभाष्य- १।१।१ घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह-कुरूघटं कार्यमनेन कारिष्यामीति। न तद्वच्छब्दप्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वाह-कुरू शब्दम् प्रयोक्ष्य इति-महाभाष्य. १।१।१। पृ.-६०, १०. नि. १२।७, ११. सूर्याद्देवतायां चाव्वाच्य:- वा. १०७- (अष्टा. ४।१।४८), १२. वृषाकपायी सूर्योषा सूर्यस्यैव तु पत्न: (वृहद्देवता -२।८) १३.ब्रह्मा वृहस्पतये प्रोवाच, वृहस्पति: इन्द्राय, इन्द्रो भारद्वजाय भारद्वाज ऋषिभ्य: ऋषयोब्राह्मणेभ्य:।,१४गोल्डस्टूकर: पाणिनि पृ.२४३ -२४५ (तुल.) (महाभा. प्रथमांह्निक),१५.अष्टा.५।२।३७,१६. नि. १।३।४, १७.

सुप्तिङन्तं पदम्- अष्टा. १।४।१४, १८. अष्टा. २।४।६३, ४।१।११२, १९. नि. १।३।४, २०. अष्टा. ३।३।१, २१. पदजात, नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, भाव, सत्व, वचन, कर्मोपसंग्रह, उपबन्ध, प्रथमा, द्वितीया, चतुर्थी, पंचमी, सर्वनाम, अनुदात्त आदि। (द्र. हि.नि.पृ. ६१), २२. नि. १।३, २३. चक्षुः ख्यातेर्वा चष्टेर्वा - नि. ४।३, २४. अष्टा. २।४।५४-५५, २५. नि. १।८, २६. नि. ६।३१, २७. अथापि तद्वदर्थे भाष्यते-वसूयुरिन्द्रो-वसुमानित्यर्थः नि. ६।३१, २८. अष्टा. ३।२।१७०, २९. अष्टा. ५।२।१३८-१४०, ३०. अष्टा. ५।२।१२३, ३१. नि. ६।३०, ३२. अष्टा. ८।३।९५ गणपाठ- ४।१।९६, ३३. अष्टा. ४।३।९८, ३४. राज. त. १।५१, ३५. अष्टा. ३।२।२८, ३६. तस्याध्वन्यतमः सख्यः पाणिनिर्नाममानवः मंजु. ४३३-३७, ३७. अष्टा. २।१।७०, ३८. अष्टा. ६।१।१५४, ३९. हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर द्र., ४०. अष्टा. ४।२।४५, ४१. सं. सा. का. इति. पृ. ५०४, ४२. अष्टा ४।१।४९, ४३. श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा-अत्र वर्षोपवर्षाविह पाणिनि पिंगलाविह व्याडिः वररुचि पतंजली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः- का.मी. अध्या.-१०, ४४. वायु पु. ९९-३१८, ४५. हिस्ट्री आफ एनसीयंट संस्कृत लिटरेचर पृ. २१५-१७, ४६. संस्कृत साहित्य का इतिहास-पृ. ५०४-५०५, ४७. हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर मौल्यूम ३, पार्ट-२, पृष्ट-४२३, ४८. सिस्टम आफ संस्कृत ग्रामर पृ. १५, ४९. सं. व्याकरण शास्त्र का इति. प्र.भा. पृ. १९७, ५०. महा भा. शा. पर्व- अध्या. ३४२।७०-७१, ५१. नि. २।१०, ५२. तत्रेतिहासमाचक्षते- देवापिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः स शन्तनुः कनीयानऽभिषेचयांचक्रे। देवापिः तपः प्रपेदे। ततः शान्तनो राज्ये द्वादशवर्षाणि देवो नक वर्ष। तमूचुर्ब्राह्मणाः अधर्मस्त्वयाचरितः ज्येष्ठ भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितम्- नि २।१०, ५३. नि. २।२, ५४. श्रीमद्भागवत १०।५७।३-६, १०-१५, १८-२३, २९, ३४-३८, ५५. मनुष्या वा ऋषिणूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति। नि. १३।१२, ५६. वायु पु. १।१२-१३, ५७. ऋ प्रा. १७।४२, वृ.दे. १।१२६, २।१११, ५८. शत. ब्रा. १४।५।५।२१, ७।३।२७, ५९. बृहदारण्यकोपनिषद् २।५।१-१५, ६०.आत्माब्रह्मेति। स ब्रह्मभूतो भवति। साक्षिमात्रो व्यवतिष्ठते। नि. १४।१०, ६१.स्रष्टा द्रष्टा विमक्तातिमात्रोऽहमिति गम्यते।...सोऽयं पुरुषः सर्वमयः सर्वज्ञानोऽपि क्लृप्तः।।नि. १४।५

(ग) यास्ककी रचनाएं

प्राचीन भारतीय, महान् विभूतियों के समय, स्थान आदिके सम्बन्धमें जैसे आज भी ऐकमत्य प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार उनकी रचनाओंके सम्बन्धमें भी प्राय: देखने को मिलता है। कुछ रचनाएं आज भी मतान्तरोंके चक्रमें पड़ी हुई हैं। प्राचीन इतिहासकी समृद्धिका अभाव ही इसका कारण है। महर्षि यास्ककी दो रचनाएं उपलब्ध होती हैं, निघण्टु तथा निरुक्त। निरुक्त निर्विवाद रूपसे यास्ककी रचना मान ली गयी है। निघण्टुके सम्बन्धमें मत मतान्तर आज भी प्रचलित हैं।

निघण्टु :- निघण्टुके सम्बन्धमें आज दो मत प्रचलित हैं प्रथमके अनुसार निघण्टु यास्कसे पूर्ववर्ती आचार्योंकी कृति है या अनेक आचार्योंकी कृति है। द्वितीय मत के आधार पर निघण्टु यास्ककी कृति है। निघण्टुके रचयिताके निर्णयमें कुछ सिद्धान्तोंकी उपस्थिति आवश्यक है।

निरुक्तके प्रमुख टीकाकार दुर्गाचार्य जी निरुक्त भाष्यकी भूमिकामें कहते हैं कि पांच अध्याय वाले निघण्टुका निर्माण श्रुतर्षियों ने किया[१] पुन: निरुक्तके प्रथम अध्यायके भाष्यमें लिखते हैं कि निघण्टुकी रचना श्रुतर्षियों ने की।[२] इस मत की पुष्टिमें वे कहते हैं कि निघण्टुमें पहले 'दावने' शब्द आया है तदन्तर 'अकूपारस्य' शब्द।[३] वेदमें इसका क्रम विपरीत हो गया है। पहले 'अकूपारस्य' शब्द आया है इसके बाद 'दावने' शब्द। अगर यास्क ही निघण्टुके रचयिता होते तो इस प्रकार क्रमका उल्लंघन नहीं करते। पुन: इसी प्रकार 'वाजस्पत्यम्' तथा 'वाजगन्ध्यम्' शब्द क्रमश: निघण्टुमें आये हैं जबकि वेदमें इसके विपरीत क्रम प्राप्त होते हैं।

प्रो. कर्मकर भी निघण्टुको किसी एक व्यक्तिकी रचना नहीं मानते। इनका कहना है कि निघण्टुके आरंभिक तीन अध्यायोंके रचयितासे चतुर्थ अध्यायके द्वितीयपादके रचयिता भिन्न मालूम पड़ते हैं। चतुर्थ अध्यायके द्वितीय पादमें कुछ ऐसे शब्द आये हैं जो प्रारंभ के तीन अध्यायों में आ चुके हैं। यथा- स्क्सराणि[४] अन्ध:,[५] वराह:,[६] वयुनम्,[७] आदि। शब्दोंके प्रयोगके आधार पर ही इनका कहना है कि चतुर्थ अध्यायके प्रथम खण्ड तथा तृतीय खण्डके रचयिता भिन्न हैं। प्रो. राजवाड़े भी निघण्टुको यास्ककी कृति नहीं मानते। स्कन्द स्वामी तथा जर्मन विद्वान् रॉथ भी इसी मतके समर्थक हैं।[८]

सत्यव्रत सामश्रमी 'समाम्नाय' शब्दको आधार मानकर ही निघण्टुको यास्क की कृतिनहीं मानते। इनके अनुसार समाम्नाय अनादि वाङ्मय वाचकशब्द है जो यास्कके

निघण्टु में नहीं आ सकते। इसी आधार पर निघण्टुको ब्राह्मण ग्रन्थोंसे भी प्राचीन मानते हैं।

उपर्युक्त मतोंकी समीक्षाकी जाय तो पता चलेगा कि इन मतोंमें कितनी उपयुक्तता है। दुर्गाचार्यके द्वारा उपस्थापित -'इमं ग्रन्थं गवादि देव पर्यन्तं समाम्नातवन्तः' का तात्पर्य निघण्टु जाति से है। यास्कका अभिप्राय है कि इस प्रकारके अनेक निघण्टु ग्रन्थोंका समाम्नान विभिन्न आचार्योंने किया तथा अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार उसका निर्वचन भी किया। यास्कके समयमें ही अनेक निघण्टु ग्रन्थ थे। स्वयं महर्षि यास्क अपने निरुक्तमें अन्य महर्षियोंके निघण्टु ग्रन्थोंसे अपने निघण्टुका अन्तर बतलाते हैं। यास्कका कहना है कि 'इन्द्राय वृत्रघ्ने' इन्द्रायवृत्रतुरे, इन्द्रायांहोमुचइति'[९] इस कथनमें वृत्रघ्न, वृत्रतुर और अंहोमुच ये तीनों शब्द इन्द्रके सार्थक विशेषण हैं। कुछ निरुक्तकार इन गुणपदोंको भी देवतापद समाम्नायमें अलग-अलग पढ़ते हैं। यास्क उसे देवता कोटिमें गिनते हैं जिसकी प्रधानतया स्तुतिकी गयी हो। संज्ञा वाची शब्द भी उसीसे माना जा सकता है। अतः यास्क विशेष्यको देवता मानते हैं, विशेषणको नहीं। वेद भी कर्मोंका नाम लेकर देवताओंकी स्तुति करता है यथा- वृत्रहा, पुरन्दर आदि। कुछ नैरुक्त उन कर्मनामों को भी देवता समाम्नायमें गिनते हैं। इस प्रकारके कर्मनामोंके ग्रहण करनेसे बहुत अधिक देवता हो जायेंगे।[१०] इन कथनोंसे स्पष्ट होता है कि निघण्टुके कर्त्ता यास्क हैं। यास्कने ही निघण्टुके शब्दोंका संग्रह किया। दावने, अकूपारस्य के संबंध में यह कहा जा सकता है कि इन दोनों शब्दोंको स्वतंत्र रूप से निघण्टु में लाया गया है। दोनों शब्द अलग प्रयुक्त हैं। यह भी आवश्यक हो सकता है कि पूर्वाचार्योंके अनुकरणके आधार पर यास्कने वाजस्पत्यम् तथा वाजगन्ध्यम् का क्रम मन्त्रसे भिन्न मान लिया हो। प्रो. कर्मकरके तर्कों के संबंधमें भी यही बात कही जा सकती है किसी प्रभाव के कारण वे शब्द इनके निघण्टु में आ गये हैं। पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें भी इस प्रकार की बात पायी जाती है।

सामश्रमी जी का यह मत कि समाम्नाय अनादि वाङ्मय का वाचक है, एकदम निराधार है। निरुक्त में स्वयं महर्षि यास्क ने समाम्नाय शब्द का प्रयोग नाम एवं आख्यात के लिए ग्यारह बार किया है।[११] 'समाम्नायः समाम्नातः, स व्याख्यातव्यः'[१२] इस वाक्य में समाम्नाय को समाम्नान किया गया यह उपयुक्त नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि समाम्नाय उसे कहेंगे जिसका समाम्नान किया गया है। स्वयं यास्क के द्वारा यह कहना पुनरुक्त

लगता है। अतः यास्क ही निघण्टुके कर्त्ता हैं। इस आधार पर 'मया समाम्नायः समाम्नातः' ऐसा समझना उपयुक्त होगा।

ऋग्वेदके प्रसिद्ध भाष्यकार वेंकटमाधव निघण्टुको यास्ककृत मानते हैं। वे ऋग्वेद की मंत्र संख्या ७।८४।४ की व्याख्यामें लिखते हैं कि पृथ्वीके २१ नाम यास्कने पढ़ा है।[१३] मधुसूदन सरस्वतीने भी शिवमहिम्न स्तोत्रकी व्याख्यामें लिखा है कि आचार्योंके निघण्टु उनके निरुक्तके अन्तर्गत है तथा वर्तमान समय में जिस निघण्टुकी उपलब्धि है उसके कर्त्ता भगवान यास्क हैं।[१४]

महाभारतके मोक्षपर्वमें वर्णित श्लोकोंसे पता चलता है कि निघण्टुके कर्त्ता यास्क न होकर प्रजापति कश्यप हैं।[१५] इस वर्णनमें वृषाकपि शब्द आया है। वृषाकपि शब्दका उल्लेख निघण्टुके पांचवें अध्यायमें है। मोक्षपर्वमें वर्णित श्लोकोंसे पता चलता है कि निघण्टु के व्याख्यानकर्त्ता यास्क हैं-

'शिपि विष्टेति चाख्यायां हीनरोमा च योऽभवत्
तेनाविष्टं च यत्किंचित् शिपिविष्टेति चस्मृतः।।
यास्को मामृषिरव्यग्रोऽनेक यज्ञेषु गीतवान्
शिपिविष्ट इतिह्यस्मात् गुह्यनामधरोप्यहम्।।
स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधीः
मत्प्रसादादधोनष्टं निरुक्तमधिजग्मिवान्।।[१६]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि निघण्टुके कर्त्ता प्रजापति कश्यप हैं तथा यास्क इसके व्याख्याकार हैं। डा. सिद्धेश्वर वर्मा भी इसी मतको मानते हैं।[१७] डा. लक्ष्मणस्वरूपका विचार है कि निघण्टु अनेक आचार्यों के परिश्रमका फल है।[१८]

उपर्युक्त विवेचनोंमें दोनों प्रकारके मत प्राप्त होते हैं लेकिन निघण्टुके व्याख्याता महर्षि यास्क हैं, इसे सभी लोग मानते हैं। अनेक निघण्टु ग्रन्थोंका संकेत यास्कके निरुक्त से ही प्राप्त हो जाता है। निरुक्तके सप्तमाध्यायके अनुसार स्पष्ट हो जाता है कि अनेक निघण्टु थे।[१९] वेदकी प्रत्येक शाखासे सम्बद्ध अलग-अलग निघण्टु ग्रन्थ थे इसकी भी चर्चा यत्रतत्र प्राप्त होती है।[२०] विभिन्न संकेतों के आधार पर लगभग २० निघण्टु ग्रन्थोंका पता लगता है। इनमें कुछ तो ग्रन्थ रूपमें उपलब्ध होते हैं तथा कुछ का संकेत मात्र मिलता है। प्रकृत निघण्टुके रचयिता यास्क ही हैं क्योंकि समाम्नायः समाम्नातः के द्वारा कार्यकी क्रमिक अनुवृत्तिका बोध होता है। वृषाकपि शब्द जो इस

निघण्टुमें हैं, के संबंध में यह कहा गया है कि प्रजापति कश्यपने इसे निघण्टुमें पढ़ा था। अत: निघण्टुके प्रणेता प्रजापति कश्यप हीं हैं, सर्वथा उपयुक्त नहीं है। यहां यह भी संभव है कि कश्यपके निघण्टुमें यह शब्द पठित हो तथा यास्क ने इससे प्रभावित होकर अपने निघण्टु में संग्रह कर लिया हो। अत: यास्कने पहले निघण्टुका निर्माण किया तदन्तर उन शब्दोंके निर्वचनमें वे प्रयत्नशील हुए। इस प्रकार पता चलता है कि जितने भी निरुक्तकार हुए सब निघण्टुकार भी थे। संभवत: इसी प्रकार की परम्परा रही होगी। इसके अतिरिक्त स्वतंत्र निघण्टुकार भी हो सकते हैं जिनके ग्रन्थ पर निरुक्तकी रचना किसी कारण विशेषसे नहीं हो सकी होगी।

अत: निष्कर्ष रूपमें कहा जा सकता है कि निघण्टु भी यास्ककी कृति है।

निघण्टु की रुपरेखा :- निघण्टु संस्कृत भाषा का प्रथम शब्द कोष है। इसे विश्वका प्रथम शब्द कोष भी कहा जा सकता है। इससे प्राचीन कोष ग्रन्थ किसी भी भाषामें उपलब्ध नहीं होता। यह वैदिक शब्दोंका संग्रह है।[२१] इसके दो पाठ प्राप्त होते हैं, लघु पाठ तथा वृहत्पाठ।[२२] वृहत्पाठमें कुल शब्दोंकी संख्या १७६८ है। लघु पाठ तथा वृहत्पाठ में संख्या तथा शैलीकी दृष्टिसे अन्तर पाया जाता है। वृहत्पाठके कुछ शब्द लघुपाठमें उपलब्ध नहीं होते। इसी प्रकार लघुपाठमें उपलब्ध कुछ शब्द भी वृहत्पाठमें उपलब्ध नहीं होते हैं।

निघण्टु पांच अध्यायोंमें विभाजित है। विषयकी दृष्टि से यह त्रिकाण्डात्मक है। फलत: इसमें तीन काण्ड प्राप्त हैं, नैघण्टुक, नैगम एवं दैवतकाण्ड। प्रथम से तीन अध्याय तक के शब्दोंका संकलन नैघण्टुक काण्ड कहलाता है, चतुर्थ अध्याय में संकलित पद नैगमकाण्डके अन्तर्गत आते हैं। इस काण्डको एकपदिक काण्ड भी कहा जाता है। निघण्टुका अन्तिम अध्याय दैवतकाण्डके नाम से प्रसिद्ध है।

नैघण्टुक काण्डमें एकार्थक शब्द संकलित हैं। इसे अवगत संस्कार वाला पद कहा जा सकता है। शब्दोंके संकलनमें सुनियोजित व्यवस्था क्रम दीख पड़ता है। शब्द परिदर्शन के बाद प्रसिद्ध पर्यायके द्वारा अभिहित शब्द खण्डका अवसान होता है तथा वहीं उसकी संख्या भी दी जाती है।

सम्पूर्ण ग्रन्थका नाम निघण्टु होने पर भी प्रथम काण्डका नाम नैघण्टुक काण्ड क्यों ? इस प्रकारकी जिज्ञासामें यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सभी शब्दोंके संग्रह निघण्टुके अन्तर्गत ही आते हैं लेकिन संग्रहकी दृष्टिसे शब्दोंका विभाजन सरल एवं

विषय निर्दिष्ट हैं। इसी तरहकी बात अन्य स्थलोंमें भी देखनेको मिलती है। ब्राह्मण ग्रन्थ कर्मकाण्ड, . उपासना काण्ड एवं ज्ञान काण्डमें विभाजित है जिसमें कर्मकाण्ड ब्राह्मण, उपासना काण्ड आरण्यक तथा ज्ञान काण्ड उपनिषद् कहलाता है। तीनोंका सम्मिलित रूप ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाता है। उसमें कर्मकाण्डका अलग विधान किया गया है। इसी प्रकार निघण्टुके तीनों काण्डोंके विषयान्तर होने पर भी प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ति इस नियमके अनुसार निघण्टु नामकरण यथार्थ है। फलतः तीन अध्यायों में व्याप्त नैघण्टुक काण्ड प्राधान्यव्यपदेश के कारण ही अपना नैघण्टुकत्व स्थापित करता है।

नैघण्टुक काण्डके प्रथम अध्यायमें १७ खण्ड हैं। इन खण्डोंमें संकलित शब्द भौतिक एवं प्राकृतिक वस्तुओंके नाम हैं। पृथ्वी, हिरण्य, अन्तरिक्ष, नभ, रश्मि, दिक्, रात्रि आदि शब्द प्रधान रूपमें पर्यायके साथ संकलित हैं। इसके अतिरिक्त उनसे सम्बद्ध क्रियाओंको द्योतित करने वाले शब्द भी उपलब्ध होते हैं। प्रथम अध्यायके कुल शब्दोंकी संख्या खण्डानुसार निम्नलिखित हैं-

१ पृथिवीनाम २१, २. हिरण्यनाम १५, ३. अन्तरिक्षनाम १६, ४. नभनाम ६, ५. रश्मिनाम १५, ६. दिङ्नाम ८, ७. रात्रिनाम २३, ८. उषस् नाम १६, ९. अहर्नाम १२, १०. मेघनाम ३०, ११. वाङ्नाम ५७, १२. उदकनाम १००, १३. नदीनाम ३७, १४. अश्वनाम २६, १५. आदिष्टोपयोजन १०, १६. ज्वलतिकर्मा ११, १७. ज्वलतः नाम ११, कुल संख्या ४१४.

निघण्टुका द्वितीय अध्याय २२ खंडोंमें विभाजित है। इस अध्यायमें मनुष्य, मनुष्यके कर्म, उसके विभिन्न अंग, अपत्य आदिके अतिरिक्त अनेक प्रकार की क्रियाओंके द्योतक शब्द संकलित हैं। इस अध्यायके कुल शब्दोंकी संख्या खण्डानुक्रम से निम्नलिखित है :-

१. कर्मनाम २६, २. अपत्य नाम १५, ३. मनुष्य नाम १५, ४. वाहुनाम १२, ५. अंगुलिनाम २२, ६. कान्तिकर्मा १८, ७. अन्ननाम २८, ८. अत्तिकर्मा १०, ९. बलनाम २८, १०. धननाम २८, ११. गो नाम ९, १२. क्रुध्यतिकर्मा १०, १३. क्रोधनाम ११, १४. गतिकर्मा १२२, १५. क्षिप्रनाम २६, १६. अन्तिकनाम ११, १७. संग्राम नाम ४६, १८. व्याप्तिकर्मा १०, १९. वध कर्मा ३३, २०. वज्रनाम १८, २१. ऐश्वर्यकर्मा ४, २२. ईश्वरनाम ४, कुल योग ५१६.

निघण्टुका तृतीय अध्याय ३० खण्डों में विभाजित है। इस अध्यायमें प्रायः

विशेषण संकलित हैं। इसके अतिरिक्त भाववाचक शब्द प्रशस्य प्रजा आदि शब्द पर्याय तथा उनसे सम्बद्ध क्रियायें भी संकलित हैं। इस अध्यायकी संख्या खण्डानुसार निम्नलिखित हैं :-

१. बहुनाम १२, २. ह्रस्वनाम ११, ३. महन्नाम २५, ४. गृहनाम २२, ५. परिचरणकर्मा १०, ६. सुखनाम २०, ७. रूपनाम १६, ८. प्रशस्यनाम १०, ९. प्रज्ञानाम ११, १०. सत्यनाम ६, ११. पश्यतिकर्मा ८, १२. सर्वपदसमाम्नाय ९, १३. उपमावाचक ११, १४. अर्चतिकर्मा ४४, १५. मेधाविनाम २४, १६. स्तोतृनाम १३, १७. यज्ञनाम १५, १८. ऋत्विक्नाम ८, १९. याच्ञाकर्मा १७, २०. दानकर्मा १०, २१. अध्येषणाकर्मा ४, २२. स्वपितिकर्मा २, २३. कूपनाम १४, २४. स्तेननाम १४, २५. निर्णीतान्तर्हित ६, २६. दूरनाम ५, २७. पुराणनाम ६, २८. नव नाम ६, २९. द्विषदुत्तरनाम २६, ३० द्यावापृथिवीनाम २४, कुल ४०८.

नैघण्टु काण्ड के तीनों अध्यायों के शब्दोंकी कुल संख्या निम्नलिखित हुई :-

शब्द		संख्या
प्रथम अध्याय	-	४१४
द्वितीय अध्याय	-	५१६
तृतीय अध्याय	-	४०८
कुल शब्द संख्या	-	१३३८

निघण्टु का चौथा अध्याय ऐकपदिक काण्ड या नैगम काण्ड कहलाता है जैसा कि पूर्व प्रतिपादित है। इसमें संकलित शब्द नैघण्टुक काण्डके शब्दोंकी अपेक्षा अधिक कठिन है। इसे अनवगत संस्कार वाला कहा जा सकता है। सम्पूर्ण अध्याय तीन खण्डोंमें विभाजित है। इसके शब्दोंका क्रम पूर्ण स्पष्ट नहीं मालूम पड़ता। चतुर्थ अध्यायके कुल शब्दोंकी संख्या खण्डानुसार निम्नलिखित हैं :-

प्रथम खंड		६२
द्वितीय खण्ड	-	८४
तृतीय खण्ड		१३३
कुल शब्द		२७९

निघण्टुका पांचवा अर्थात् अंतिम अध्याय दैवतकाण्ड कहलाता है। इस अध्यायमें देवताओं के नाम संकलित हैं। देवताओंका त्रिधा विभाजन इसी से स्पष्ट हो जाता है। प्रकृत

अध्यायमें संकलित देवताओंके नाम पृथिवी स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय एवं द्युस्थानीय हैं। यह अध्याय ६ खण्डोंमें विभाजित है। इस अध्यायके कुल शब्दोंकी संख्या खण्डानुसार निम्नलिखित हैं :-

१.	पृथ्वीस्थानीय देवता नाम		३
२.	ठ	ठ	१३
३.	ठ	ठ	३६
४.	अन्तरिक्षस्थानीय देवतानाम		३२
५.	अन्तरिक्षस्थानीय देवस्त्री नाम		३६
६.	द्यु स्थानीय देव नाम		३१
	कुल शब्द संख्या :		१५१

निघण्टुके शब्दोंकी संख्या काण्डानुसार इस प्रकार है :-

१.	नैघण्टु काण्ड	१३३८
२.	नैगमकाण्ड	२७९
३.	दैवतकाण्ड	१५१
	निघण्टुके कुल शब्दोंकी संख्या -	१७६८

यास्कके निरुक्तकी रूपरेखा

यास्कका निरुक्त निघण्टुका व्याख्यान ग्रन्थ है। महर्षि यास्कने उक्त विषय का स्पष्टीकरण निरुक्तके प्रारंभमें ही कर दिया है।[२३] जिस निघण्टुका व्याख्यान यह निरुक्त है, वह पंचाध्यायी है। पांच अध्याय होने पर भी विषयों की पृथक्ता के कारण इसमें काण्डत्रयात्मकता का आधान किया गया है।[२४] प्रथम नैघण्टुक काण्ड में पर्याय शब्द, एकार्थक अनेक शब्द एवं एकार्थक अनेक धातुओंका संग्रह हुआ है। इन शब्दोंकी व्याख्या निरुक्तके प्रथमसे लेकर तीन अध्यायोंमें समाप्त होती है। शब्दोंका निर्वचन निरुक्तके द्वितीय अध्यायमें है। प्रो. राजवाड़े का कहना है कि नैघण्टुक काण्डमें कुछ ऐसे शब्द आ गये हैं जो वैदिक साहित्यमें उपलब्ध नहीं होते। कुछ शब्द जिनका अर्थ यहां प्रयुक्त है इन अर्थोंमें वहां वे शब्द नहीं मिलते।[२५] प्रो. स्कोल्ड का कहना है कि पहले निघण्टु नाम केवल तीन अध्यायों के लिए हुआ था जिसे नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। ज्ञातव्य है नैघण्टुक शब्द निघण्टु शब्दसे निर्मित है। बादमें चलकर नैगम तथा दैवत काण्डोंके लिए भी निघण्टु शब्दका प्रयोग होने लगा।[२६] प्रो. स्कोल्ड का विचार बहुत अंशोंमें

उपयुक्त लगता है क्योंकि 'प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ति' के आधार पर नैघण्टुक काण्डकी प्रधानता प्रतिलक्षित है। दूसरे काण्डका नाम नैगम काण्ड या ऐकपदिक काण्ड है। इस काण्डमें ऐसे शब्द संकलित हैं जिनके धातु एवं प्रत्ययोंका स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। यास्कने ऐसे शब्दोंको अनवगत संस्कारवाला शब्द माना है। अनेकार्थक शब्दोंके निर्वचन इसी काण्डमें प्राप्त होते हैं। निघण्टुका चौथा अध्याय नैगम या ऐकपदिक काण्ड कहलाता है। अनेकार्थक एवं अनवगत संस्कार युक्त शब्दोंकी संख्या २७९ है।[२७] इन शब्दोंकी व्याख्या निरुक्तके चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्यायोंमें की गयी है। निघण्टुका अंतिम काण्ड दैवत काण्ड है। यह निघण्टुका पांचवा अध्याय है। इसमें देवताओंके नाम प्रधान रूपमें संकलित हैं। वे ही नाम यहां उपलब्ध होते हैं जो वेदमें प्रधान रूपमें संस्तुत देवताओं के नाम हैं।[२८] अग्नि से लेकर देवपत्नी पर्यन्त १५१ शब्द हैं।[२९] निरुक्त के ७ से १२ अध्यायोंमें इन सभी शब्दोंकी व्याख्या की गयी है।

निरुक्तकी बहुत सी प्रतियां विभिन्न रूपोंमें प्राप्त होती हैं जिनमें रूपकी विभिन्नताके साथ-साथ आकारमें भी विभिन्नता है।[३०] आज तक उपलब्ध संस्करणोंके अनुसार कुछ संस्करण में १२ अध्याय, कुछ में १३ अध्याय तथा कुछ में १४ अध्याय प्राप्त होते हैं। सम्प्रति उपलब्ध संस्करणोंके समीक्षणसे स्पष्ट होता है कि निरुक्तमें चौदह अध्याय हैं। आज चतुर्दश अध्यायात्मक निरुक्त ही सर्वमान्य हैं।

निरुक्तका प्रथम अध्याय सम्पूर्ण निरुक्तकी भूमिका है। जिस प्रकार महा भाष्यकी भूमिकाके रूप में पस्पशाह्निक का दर्शन होता है उसी प्रकार निरुक्तकी भूमिकाके रूपमें इस प्रथम अध्यायको माना जाता है। संस्कृत साहित्यके अन्य भाष्य ग्रन्थोंमें भी इसी प्रकारकी रीति दीख पड़ती है। निरुक्तके प्रथम अध्यायके प्रारंभमें ही निघण्टुके शब्दोंकी व्याख्याकी जाएगी, इस प्रकारका प्रतिज्ञा वाक्य उपलब्ध होता है। इस अध्यायमें पदके चार भेद, नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात तथा इनके लक्षणोदाहरणका समुचित विवेचन प्राप्त होता है। शब्दोंके नित्यानित्यत्व पर विभिन्न आचार्योंके मंतव्योंका समुपस्थापन तथा यास्कका स्वाभिमत इस अध्यायके विषय हैं। भाव विवेचन के साथ भाव विकार का इतना सूक्ष्म वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता, जितना निरुक्तके इस अध्यायमें वर्णित है। इन सबोंके अतिरिक्त इस अध्यायमें निरुक्त प्रयोजन, मन्त्रोंकी सार्थकता, काण्ड त्रयात्मकता आदिका भी विवेचन किया गया है। यत्र तत्र कुछ शब्दोंकी निरुक्ति भी दी गयी है जो निर्वचनकी पूर्वपीठिका है।

द्वितीय अध्यायके प्रथम पादमें निर्वचनकी प्रक्रिया पर विचार हुआ है। इसमें निर्वचनके सिद्धान्त वैज्ञानिक दृष्टिसे विवेचित हैं। इसी पादमें शिष्य लक्षणमें शिष्योंके गुणावगुण पर विचार हुआ है। द्वितीय अध्यायके द्वितीय पादके आरम्भ में अथ निर्वचनम् का उल्लेख मिलता है। इस उल्लेखसे लगता है कि यह निर्वचन का प्रारंभिक स्थल है। यद्यपि निरुक्तके प्रथम अध्यायमें ही पृथिवी आदि कुछ प्रसिद्ध शब्दोंका निर्वचन प्राप्त होता है लेकिन निर्वचनकी प्रचुरता यहींसे प्रारम्भ होती है। इस अध्यायमें नैघण्टुक काण्डके प्रथम अध्यायकी व्याख्या प्रस्तुतकी गयी है। व्याख्या क्रममें सम्बद्ध इतिहास एवं सम्बादोंका भी उपस्थापन हुआ है।

तृतीय अध्यायमें निघण्टुके द्वितीय एवं तृतीय अध्यायमें आये हुए शब्दों का निर्वचन प्रस्तुत किया गया है। औरस पुत्रकी श्रेष्ठता एवं अन्य पुत्रोंके ग्रहण की निन्दा, पुत्र एवं पुत्रीके अधिकारका चिन्तन, भ्रातृहीन नारीका उत्तराधिकार, उपमा विवेचन एवं उसके प्रकार भी इसी अध्यायमें वर्णित हैं। इस अध्यायमें प्रसंगत: कुछ उपाख्यानों का भी उल्लेख हुआ है। इन उपाख्यानोंसे तत्कालीन समाज का चित्र बहुत सुन्दर रूपमें उपस्थित होता है.

निरुक्तके चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्यायोंमें निघण्टुके चतुर्थ अध्यायकी व्याख्या है। इसे नैगम काण्ड कहा जाता है। निघण्टुके चतुर्थ अध्यायमें स्वतंत्र पदों के संग्रह है जो अनवगत संस्कार वाले हैं, तथा इसे ऐकपदिक काण्ड भी कहा जाता है।

निरुक्तके सप्तम अध्यायसे दैवत काण्ड प्रारम्भ हो जाता है। ज्ञातव्य है निघण्टुका पंचम अध्याय दैवत काण्ड है। इस सप्तम अध्यायमें ऋचाओंकी विविधता प्रधानभूत तीन देवताओंकी पुष्टि एवं देवताओंका आकार चिन्तन आदि वर्णित है। अष्टम अध्यायमें भी निघण्टुके दैवत काण्डके ही शब्द विवेचित हैं। इसमें इन्द्र, अग्नि, वनस्पति आदिके निर्वचन हुए हैं। नवम अध्यायमें पृथ्वी स्थानीय देवताओंके निर्वचन एवं वर्णन प्राप्त होते हैं। दशम एवं एकादश अध्याय में मध्यम स्थानीय देवताओंका वर्णन है। द्वादश अध्याय द्युस्थानीय देवताओंका निर्वचन एवं वर्णन प्रस्तुत करता है। त्रयोदश अध्यायमें देवताओंकी स्तुतियां, यज्ञ का वर्णन, ऊर्ध्व मार्गगति, आत्मा, महत् आदिका वर्णन उपलब्ध होता है। चतुर्दश अध्यायमें पदार्थ विवेचनके साथ मानव सृष्टिका क्रम वर्णित है। गर्भाधान प्रकारसे लेकर उत्पत्तिके क्रमिक स्वरूपोंका वर्णन वैज्ञानिक ढंगसे किया गया है।

-: संदर्भ संकेत :-

१. `स च (समाम्नाय:) ऋषिभिर्मन्त्रार्थपरिज्ञानायोदाहरणभूत: पंचाध्यायी शास्त्र संग्रेहभावेनैकस्मिन्नाम्नाये ग्रन्थीकृत इत्यर्थ:।' - नि.दु.वृ. १।१, २. `.....इमं ग्रन्थं गवादिदेव पर्यन्तं समाम्नातवन्त:'-नि.भाष्य-१।२०, ३. नि. ४।१८, ४. निघ. ४।२।२२ नि.- २।७।८, ५. निघ. ४।२।६ निरु. २।७।१, ६. निघ. ४।२।२१ निरु. १।१०।१३, ७. निघ. ४।२।४८ निरु. ३।१।१०, ८. निरुक्त मीमांसा-पृष्ठ- २५-२७, ९. नि. ७।३, १०. `तान्यप्येके समामनन्ति । भूयांसि तु समाम्नानात् । यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात् प्राधान्यस्तुति तत्समामने। अथोतकर्मभिर्ऋषिर्देवता: स्तौति वृत्रहा, पुरन्दर इति। तान्येके समामनन्ति भूयांसि तु समाम्नानात्।' नि. ७।३, ११. नि. ७।१३, १२. नि. १।१, १३. `तस्या हि यास्कपठितानि एक विशंति नामानि', (ऋ० ७।८४।४ की व्याख्या), १४. `एवं निघण्ट्वादयोऽपि...निरुक्तान्तर्भूता एव। तत्रापि निघण्टु संज्ञक: पंचाध्यायात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केनैव कृत:।' (शिवमहिम्नस्तोत्र व्याख्या), १५. वृषो हि भगवान् धर्म: ख्यातो लोकेषु भारत। निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्। कपिर्वराह: श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते, तस्मात् वृषाकपिं प्राह काश्यपो मां प्रजापति:।।' महा.मो. प.-अध्या. ३४२।८६-८७, १६. महा.मो. प. अध्या. ३४२।६९-७१, १७. The Etymologies of Yaska, १८. निघण्टु तथा निरुक्त -भूमिका-पृ. १४, १९. `अथातोभिधानै: संयुज्य हविश्चोदयति इन्द्राय वृत्रघ्ने, इन्द्राय वृत्रतुरे इन्द्रायांहोमुचे इति। तान्यप्येके समामनन्ति। भूयांसि तु समाम्नानात्। यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात् प्राधान्यस्तुति तत्समामने।' - नि. ७।३, २०. `तं च योऽसमाम्नात: छन्दस्यैवावस्थितोऽगवादिरन्यै र्वा नैरुक्तै: समाम्नातास्तम् इमं च निघण्टव इत्याचक्षते। अन्येऽप्याचार्या इति वाक्य शेष:'- दुर्ग. भा. १।१।१, २१. `समाम्नाय: समाम्नात...तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते।' `छन्दोभ्य: समाहृत्य समाहृत्य समाम्नाता: - नि. १।१, २२. निघण्टु तथा निरुक्त- भूमिका पृ. ९-१०, २३. `समाम्नाय: समाम्नात: स व्याख्यातव्य: तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते।'- नि. १।१, २४. `आद्यं नैघण्टुकं काण्डं द्वितीयं नैगमं तथा। तृतीयं दैवतंचेति समाम्नायस्त्रिधास्थित:।।' अनुक्रमणिका भाष्य- (ऋ.भा.भू. में उद्धृत) पृ. ४५, २५. Yaska's Nirukta- P.२०५, २६. The Nirukta - by Skold., २७. निघण्टु- अध्याय-४, २८. नि. ७।१, २९. द्र.प्रकृत अध्याय- निघण्टु की रूप रेखा, ३०. निघण्टु तथा निरुक्त - लक्ष्मण स्वरूप - (द्र.)

पंचम अध्याय

(निर्वचनके आधार एवं यास्कके निर्वचन)

(क) ध्वन्यात्मक आधार एवं यास्क के निर्वचन

ध्वनि :- ध्वनि शब्द ध्वन् शब्दे धातुसे इ प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।[१] संस्कृत में ध्वनि शब्दका प्रयोग व्यापक रूपमें हुआ है। इसे भारतीय दार्शनिकों एवं वैयाकरणोंने इतना महत्त्व दिया है कि यह भाषा तथा साहित्यमें एक विशिष्ट अंग के रूपमें प्रचलित है। महर्षि पतंजलि, भर्तृहरि आदि मनीषियोंने तो सृष्टिकी सम्पूर्ण प्रक्रियाका अर्थ सम्पादक इसी ध्वनिको स्वीकार किया है।[२] वैयाकरणोंने ध्वनिके लिए स्फोट तत्त्वका प्रतिपादन किया और कहाकि पदोंका अर्थ बोध तो स्फोटसे होता है-

यः संयोग वियोगाभ्यां करणैरुपजन्यते
स स्फोटः शब्दजाः शब्दाः ध्वनयोन्यैरुदाहृताः।।[३]

इन्द्रियोंके संयोग एवं वियोगसे जो उत्पन्न होता है वही शब्दज शब्द स्फोट है इसे ही ध्वनि भी कहा जाता है। भाषा विज्ञानमें ध्वनिका तात्पर्य वर्णोंसे है। ध्वनि भाषाकी एक इकाई एवं आधार है जिस पर सम्पूर्ण वाङ्मय आधारित है।

अंग्रेजीका फोन (झ्दहा) शब्द ध्वनिका प्रतीक है। संस्कृतका भण् अंग्रेजी के फोन का समानान्तर है। संस्कृत भाषामें ध्वनिका सम्बन्ध उस वैखरी वाक् से है जिसका प्रयोग मानव करता है। यह वैखरी वाक् ही भाषाका विषय है। ध्वनिके लिए वर्ण, अक्षर आदिका भी प्रयोग होता है। अक्षरके निर्वचनमें यास्क कहते हैं- 'न क्षरति' अर्थात् उसका विनाश नहीं होता, 'न् क्षीयते' वह क्षीण नहीं होता तथा 'अक्षयो भवति' अर्थात् वह अक्षय होता है।[४] अक्षरके ये निर्वचन सम्पूर्ण वाङ्मयके ध्वनि सिद्धान्तके प्रदर्शक हैं। अक्षर या ध्वनिके प्रस्फुटनमें वायुका योग रहता है। हृदय स्थित वायुको अर्थाभिव्यक्तिके लिए उत्प्रेरित किया जाता है। वायु स्वर-नलिकासे होकर कण्ठ भागमें आती है यहां उसे विभिन्न उच्चरणांगोंसे टकराना पड़ता है। परिणामतः ध्वनिकी उत्पत्ति हो जाती है।[५]

ध्वनि जिसे अक्षर भी कहा जाता है अविनाशी एवं नित्य है। अक्षर को वर्ण भी कहा जाता है। वर्ण दो प्रकार के होते हैं-स्वर तथा व्यंजन। स्वर,जो बिना किसी अन्य ध्वनियों की सहायता से बोला जाता है- श्वृ धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है ध्वनि करना। व्यंजन के उच्चारण में स्वर की सहायता अपेक्षित होती है। व्यंजन शब्द वि + अंज् प्रकट करना धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है प्रकट होना । व्यंजन

स्वरयोगसे प्रकट होता है तथा स्वर स्वयं प्रकाशित होता है।[५] स्वर शब्दका प्रथम प्रयोग ऋग्वेदमें प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें स्वरका अर्थ वलाघात या सुर हो गया है।[७] ऐतरेय आरण्यकमें स्वरकेलिए घोष शब्दका प्रयोग हुआ है।[८]

ध्वनि परिवर्तन का स्वरूप :- विभिन्न कारणोंसे ध्वनियोंमें परिवर्तन हो जाता है, यह भाषा वैज्ञानिक सत्य है तथा इसे यास्क भी स्वीकार करते हैं। प्राय: एक परिवारकी भाषाओंमें एक भाषासे दूसरी भाषाकी ध्वनियोंमें परिवर्तन लक्षित होता है। एक भाषामें भी समय, स्थान, पात्र एवं स्थितिके आधार पर ध्वनिगत परिवर्तन हो जाता है। भारतीय निरुक्तकारोंने ध्वनि परिवर्तनके कुछ सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है ये सिद्धान्त ध्वनिकी परिवर्तित अवस्थाओंके द्योतक हैं। ध्वनि परिवर्तनकी अवस्थाओंमें वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्ण विकार, वर्णनाश आदि प्रसिद्ध हैं। इन्हें ही निरुक्तके प्रकार भी कहते हैं। वैयाकरणोंने भी इन्हीं सिद्धान्तोंको स्वीकार किया है। हंस शब्द में स वर्णका आगम, सिंह शब्दमें मूल हिंस् धातुसे निष्पन्न होनेके कारण वर्ण विपर्यय, गूढ़-आत्मासे वर्ण विकारके चलते गूढोत्मा तथा पृषत्कउदरम्से त का लोप होकर पृषोदरम् शब्द निष्पन्न होता है पृषोदरमें वर्ण नाश स्पष्ट है।[९]

ध्वनि परिवर्तन एवं यास्क :- ध्वनिपरिवर्तनका सिद्धान्त निरुक्त एवं भाषा विज्ञानके अनुसार मान्य है। व्याकरण सम्प्रदायमें भी इस सिद्धान्तको स्वीकार किया गया है। ध्वनियां स्वर एवं व्यंजन दो रूपोंमें प्राधान्येन विभाजित हैं। स्वर एवं व्यंजनको वर्ण भी कहा जाता है। विभिन्न प्रकारके वर्णोंके परिवर्तन ही ध्वनि परिवर्तनके अन्तर्गत द्रष्टव्य हैं-

(१) वर्णागम :- किसी पदमें कोई नयी ध्वनिका आ जाना वर्णागम कहलाता है। इसका भाषावैज्ञानिक प्रधान कारण उच्चारणकी सुविधा है। यास्क शब्दोंके निर्वचन क्रम में ध्वनि परिवर्तनका प्रदर्शन करते हैं। वर्णागम दो प्रकारके होते हैं :- स्वर वर्णागम एवं व्यंजन वर्णागम। स्वर वर्णागम पुन: तीन प्रकारके होंगे :-

(क) आदिस्वरागम:- किसी शब्दके पूर्व स्वरका आगमहो जाना आदि स्वरागम है। एक भाषा से विकसित दूसरी भाषामें तथा संयुक्त व्यंजनोंसे आरम्भ होने वाले शब्दोंके पूर्व स्वरका आगम देखा जाता है। संयुक्त व्यंजनसे प्रारम्भ होने वाले शब्दोंके उच्चारणमें काठिन्यके चलते स्वरका आगम स्वाभाविक रूपमें हो जाता है। यद्यपि यास्कने आदिस्वरागमका प्रासंगिक उदाहरण निरुक्तमें प्रस्तुत नहीं किया है, तथापि

निरुक्तमें प्रयुक्त एवं संकेतित अभूत् अभवत्[१०] आदि शब्द स्वरागम से युक्त हैं।

(ख) मध्यस्वरागम :- किसी पदके मध्यमें स्वर वर्णके आगमको मध्यस्वरागम कहा जाता है। पृथ्वी पदके मध्य में 'इ' वर्णके आगम होनेसे पृथिवी शब्द बनता है। यास्क मध्यस्वरागमके उदाहरणमें भरुज:[११] शब्दको उपस्थापित करते हैं। भ्रस्ज् पाके धातुसे अङ् प्रत्यय करने पर 'भ' वर्णके आगे अ स्वरके बाद 'र' के आगे 'उ' वर्ण का आगम मध्यस्वरागम है। मध्य स्वरका आगम स्वर भक्तिके नामसे भी जाना जाता है जिसका वैदिक प्रयोग प्राय: देखा जाता है।

(ग) अन्तस्वरागम :- पदके अन्तमें स्वर वर्णके आगमको अन्तस्वरागम कहा जाता है। मिह् सेचने धातुसे निष्पन्न मेघ[१२] शब्दमें घ स्थित 'अ' अन्तस्वरागम है। इसी प्रकार 'णह्' बन्धने धातुसे निष्पन्न नाध:[१३] शब्दमें ध स्थित 'अ' भी अन्तस्वरागम है।

वर्णागमोंमें स्वरवर्णागमकी भांति व्यंजनवर्णागम भी तीन प्रकारके हैं :-

(क) आदि व्यंजनागम :- पदके आदिमें व्यंजन वर्णके आगमको आदि व्यंजनागम कहा जाता है। इसमें प्राय: पदके आदिमें स्वरके स्थानमें व्यंजन वर्णका आगम होता है। तद्भव शब्दोंमें आदि व्यंजनागमके प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा-ओष्ठ-होठ में अ के स्थान में ह का आ जाना। निरुक्त में आदि व्यंजनागमका प्रासंगिक उदाहरण अल्प प्राप्त होता है। अद् भक्षणे धातुसे निष्पन्न जग्धम्[१४] (अद्+क्त) आदि पद आदि व्यंजनागमके उदाहरणमें देखे जा सकते हैं। वृङ् सम्भक्तौ से वार में द् आदि व्यंजनागम होकर द्वार शब्द बना है।[१५] अंगल शब्दसे मंगल एवं आयु से वायु, असुरसे वसुरको निष्पन्न मानना आदि व्यंजनागमका उदाहरण है।[१६]

(ख) मध्य व्यंजनागम :- पदके मध्यमें व्यंजन वर्णके आगमको मध्यव्यंजनागम कहा जाता है आस्थत्[१७] शब्द अस् भुवि धातुसे निष्पन्न हुआ है इसमें अस्यतेस्थुक्[१८] से थुक् का आगम होता है। यह थ का आगम शब्दके मध्य आकर मध्यव्यंजनागम कहलाता है।

(ग) अन्तव्यंजनागम :- पदके अन्तमें व्यंजन वर्णका आगम अन्त व्यंजनागम कहलाता है। पत्नी[१९] शब्दमें नुक् का आगम अन्त व्यंजनागम है।

(२) वर्णविपर्यय :- वर्णविपर्यय ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी निरुक्तका पृथक् सिद्धान्त है। इसमें पद के एक वर्णके स्थानमें दूसरे वर्णका परिवर्तन देखा जाता है। इसे भी तीन रूपों में देखा जाता है :-

(क) आदिविपर्यय :- आदि विपर्ययमें पदके आदि वर्णका परिवर्तन हो जाता

है। ज्योति:[२०] शब्द जो द्युत् दीप्तौ धातुसे इस् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है इसमें द के स्थान पर ज वर्ण का परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन वर्ण विपर्यय के नामसे प्रसिद्ध है। पुन: यह परिर्वतन आदि वर्णका होता है इसलिए इसे आदि विपर्यय कहा जाता है। अन्य उदाहरणोंमें घन, बिन्दु एवं वाट्य शब्दोंको देखा जा सकता है। हन् हिंसागत्यो: धातुमें ह के स्थान पर घ, भिदिर् विदारणे धातुमें भ के स्थान पर व एवं भट् भृत्तौ धातुमें भवर्ण के स्थान पर व वर्णका परिवर्तन होनेसे क्रमश: घन, विन्दु एवं वाट्य शब्द निष्पन्न होते हैं।

(ख) अन्तविपर्यय :- पदोंमें अन्तिम वर्णका भी विपर्यय देखा जाता है। निरुक्त शास्त्रमें अन्तविपर्यय अन्तव्यापत्ति शब्दसे प्रकट होता है।[२१] वह् प्रापणे धातु में अन्त्य ह वर्णके स्थान पर घ करने पर ओघ:, मिह् सेचने धातुमें ह के स्थान पर घ करनेसे मेघ:, णह् बन्धने धातुमें ह के स्थान पर घ करनेसे नाध:, वह् प्रापणे धातुमें ह के स्थान पर ध करनेसे बधू:, मद् तृप्तौ धातुमें अंतिम द् वर्ण के स्थान पर ध करनेसे मधु आदि शब्द निष्पन्न होते हैं।[२२]

(ग) आद्यन्त विपर्यय :- शब्दके आदि एवं अंतमें वर्णोंका विपर्यय आद्यन्त विपर्यय है। श्च्युतिर् क्षरणे धातुसे निष्पन्न स्तोक शब्दमें आदि एवं अन्त वर्णका विपर्यय देखा जाता है। इसी प्रकार सृज् विसर्गे धातुसे निष्पन्न रज्जु, कस् विकसने धातुसे निष्पन्न सिकता तथा कृती छेदने धातुसे निष्पन्न तर्कु शब्दमें भी आद्यन्त विपर्यय है।[२३]

वर्ण विपर्ययके अन्तर्गत अल्पप्राणीकरण महाप्राणीकरण आदि ध्वनि परिवर्तनों को देखा जा सकता है जो निरुक्त-आधृत है तथा भाषा वैज्ञानिक महत्वसे मण्डित भी है।

अल्पप्राणीकरण :- इस वर्णविपर्ययमें महाप्राण वर्णके स्थानमें अल्पप्राण[२४] वर्ण हो जाता है। भिदिर् विदारणे धातुसे निष्पन्न बिन्दु तथा भट्भृत्तौ धातुसे निष्पन्न बाट्यमें भ महाप्राण वर्णके स्थान पर ब अल्प प्राण हो गया है।[२५] इसी अल्पप्राणीकरणके फलस्वरूप क्रियाओंके द्वित्व होने पर महाप्राण अल्पप्राणमें परिवर्तित हो जाता है। हु धातुसे निष्पन्न जुहोति एवं जहार क्रिया अल्पप्राणीकरण का ही परिणाम है। यदि अल्पप्राणीकरण न हो तो हु धातुसे द्वित्व होने पर हुहोति एवं हहार क्रियापद ही बनेगा लेकिन इस प्रकारके रूप संस्कृत भाषामें प्राप्त नहीं होते।

महाप्राणीकरण :- पदोंमें अल्पप्राण वर्णोंके स्थानमें महाप्राण वर्णोंके परिवर्तन

को महाप्राणीकरण कहा जाता है। मद् तृप्तौ धातुसे निष्पन्न मधु,[२५] स्यन्द् प्रस्रवणे धातुसे निष्पन्न सिन्धु शब्द[२६] में द अल्पप्राण की जगह ध महाप्राणमें परिवर्तन देखा जाता है। इसी प्रकार ग्रस् धातुसे निष्पन्न घ्रंस[२७] तथा स्कन्द से निष्पन्न स्कन्ध[२८] शब्दमें भी महाप्राणीकरण ही है।

महाप्राण वर्णके स्थानमें महाप्राण वर्णका तथा अल्पप्राण वर्णके स्थान में अल्पप्राण वर्णका भी परिवर्तन होता है। जैसे ओधः मेधः में ह महाप्राणके स्थान पर महाप्राण ध का तथा वाधः, गाधः, वधूः शब्दों में महाप्राण ह के स्थान में महाप्राण ध का वर्ण परिवर्तन स्पष्ट है।[२९] इसी प्रकार वच् धातुसे निष्पन्न वाक् शब्दमें च अल्पप्राण की जगह क अल्पप्राण का परिवर्तन यास्कको भी मान्य है।[३०]

रलयोरभेदः के अनुसार र वर्णके स्थानमें ल तथा ल वर्ण के स्थान में र का परिवर्तन वैदिक कालसे ही देखा जाता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी यह सिद्धान्त मान्य है तथा क्षेत्रीय भाषाओंमें इस प्रकारके परिवर्तन बहुत देखे जाते हैं। निरुक्त में भी यास्कने इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग किया है। उरूकर शब्दसे निष्पन्न उलूखल,[३१] कपिरिव जीर्णः कपिंजीर्ण से कपिंजल,[३२] पुरूकामसे पुलुकाम,[३३] भृ भरणे धातुसे विल्व,[३४] अश्रिमत् से अश्लील[३५] आदि शब्दोंमें र वर्णके स्थान पर ल वर्णका परिवर्तन तथा बालवन्तम् से वारवन्तम्[३६] एवं लिहन्ति से रिहन्ति[३७] आदि शब्दोंमें ल के स्थान में र वर्णका परिवर्तन देखा जाता है।

यास्क द्वारा ढ वर्ण से र वर्णकी उद्भावना भी स्वीकृत है। अमूढः एवं मूढः शब्दों के क्रमशः अमूरः एवं मूर[३८] शब्दोंका प्रदर्शन कर ढ वर्ण से र वर्णके विकासको यास्क ने स्पष्ट किया है।

मूर्धन्योष्म वर्ण ष का तालंयोष्म वर्ण श में परिवर्तन प्रायः देखा जाता है। क्षेत्रीय भाषाओंमें तो इसके प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते हैं। निरुक्तमें भी कृष् धातु से निष्पन्न कशा[३९] तथा कुष् धातुसे निष्पन्न कोश[४०] शब्दका प्रयोग प्राप्त होता है जिनमें मूर्धन्योष्म वर्ण की तालव्योष्मवर्णता देखी जाती है।

वर्ण भी ध्वन्यन्तरता को प्राप्त करता है। ऋ वर्ण भारतके विभिन्न भागोंमें ध्वन्यन्तरता को प्राप्त है।संस्कृतका उच्चारण मध्यभारतमें संस्क्रित उत्तर भारत में संस्क्रत तथा दक्षिण भारत में संस्कुत के ऐसा है।स्पष्टहै ऋ का उच्चारणकहीं अ,कहीं इ तथा कहीं उ ध्वनिसे समन्वित है। निरुक्त शास्त्रमें भी ऋ वर्णका विकास मूलरूपमें

तीन प्रकारसे प्राप्त होता है। सृतः शब्द से शतः[४१] तथा कृष् धातुसे कशा[४२] आदि शब्दोंमें ऋ वर्णकी ध्वनि 'अ' सुनायी पड़ती है। पुनः सृप्र शब्द से शिप्र[४३] ऋष् धातु से ईष्मिणः[४४] कृतवान् से कितव[४५] आदि शब्दोंमें ऋ वर्ण की इ ध्वनि तथा कृन्त् धातुसे कुत्स,[४६] निऋचम्ऋपृसे निचुम्पुण,[७७] आऋदृ से आदुरि[४८] आदि शब्दोंमें ऋ वर्णकी उ ध्वनि प्राप्त होती है।

(३) वर्ण विकार :- पदोंमें एक वर्णके स्थानमें दूसरे वर्णका विकार वर्ण विकार कहलाता है। वर्ण विकार स्वर एवं व्यंजन दोनों वर्णोंमें संभव है। यास्कने वर्ण विकारमें उपधा विकारका प्रदर्शन किया है। पदोंके अन्तिम वर्णके पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।[४९] राजन् एवं दण्डिन् शब्दोंमें क्रमशः अ एवं इ उपधा है। इन्हीं उपधा वर्णों के दीर्घीकरणका परिणाम राजा एवं दण्डी पद है।[५०] दीर्घीकरण ही यहां वर्ण विकार हैं।

(४) वर्णनाश या वर्णलोप :- पदोंमें किसी वर्णका अदर्शन या अनुपस्थिति वर्णनाश या वर्णलोप कहलाता है। वर्ण लोप स्वर एवं व्यंजन दोनोंका ही हो सकता है। स्वरवर्ण लोपकी भी तीन स्थितियां संभव हैं- (१) आदि स्वर लोप, (२) मध्यस्वर लोप तथा (३) अन्तस्वर लोप। पद या धातुके आदिमें स्थित स्वरका लोप आदि स्वर लोप कहलाता है। अस् भुवि धातुसे निष्पन्न स्तः, सन्ति[५१] आदि पदोंमें धातु स्थित आदि स्वरका लोप हो गया है। धातु या पदके मध्यस्थित स्वरका लोप मध्यस्वर लोप कहलाता है। गम् धातुसे निष्पन्न जग्मतुः एवं जग्मुः[५२] शब्दों में गम् धातुस्थ मध्यस्थ गकार स्थित अकार का लोप हो गया है। निरुक्तमें उपधा लोपके प्रसंगमें इन्हें उपस्थापित किया गया है। इसी प्रकार ऋिऋचः से निष्पन्न तृच[५३] शब्दमें त्रिस्थित इ स्वरका लोप हो गया है। पदके अन्तस्थ स्वरका लोप अन्तस्वर लोप कहलाता है। इसका प्रासंगिक उदाहरण निरुक्तमें प्राप्त नहीं होता।

व्यंजन वर्ण लोपकी भी तीन स्थितियां होती हैं- (१) आदि व्यंजन लोप, मध्य व्यंजन लोप तथा अन्तव्यंजन लोप। आदि व्यंजन लोपमें पदादि या धात्वादिस्थित व्यंजनका लोप हो जाता है आदि व्यंजन लोपमें पाणिनिका- आदिर्ञिटुडवः[५४] सूत्र द्रष्टव्य है। इसका अर्थ होता है- धातुके आदि स्थित ञि,टु तथा डु का लोप हो जाता है, जो अनुबन्ध है। टुवेपृकम्पने धातुसे वेपथुः शब्द निष्पन्न होता है। यहां धातु स्थित आदिव्यंजनका लोप हो गया है। यास्कने आदि व्यंजन लोपका प्रासंगिक उदाहरण नहींदिया हैलेकिन पुष्कर शब्द को वपुष्कर[५५] शब्दसे निष्पन्न माना है।निश्चय ही यहां

आदि व्यंजन लोप है। धातु या पद स्थित मध्य व्यंजनका लोप मध्य व्यंजन लोप कहलाता है। इसके उदाहरणमें यास्क ने वैदिक प्रयोगका प्रदर्शन किया है। तत्त्वायामि[५६] पद तत् त्वा याचामि पदोंका समुदाय है। याचामि स्थित च का लोप मध्य व्यंजन लोप है। इसी प्रकार त्रि-ऋचः से निष्पन्न तृच[५७] शब्द में त्रि स्थित मध्य र व्यंजन का भी लोप हो गया है। पदस्थ एवं धातुस्थ अन्तिम व्यंजनका लोप अन्त व्यंजन लोप कहलाता है। गम् धातुसे क्त्वा प्रत्ययकरने पर गत्वा तथा क्त प्रत्यय करने पर गतम्[५८] शब्द निष्पन्न होते हैं। यहां गम् धातुके अन्त स्थित व्यंजन म् वर्णका लोप हो जाता है। इसी प्रकार कीकट शब्दमें (किम्+कृ) किम् स्थित अन्त म् का लोप हो जाता है।[५९]

अपश्रुति :- कभी-कभी पदोंमें व्यंजन वर्णोंकी यथावत् स्थिति रहने पर भी आन्तरिक स्वर परिवर्तनसे अर्थमें परिवर्तन हो जाता है। यह स्थिति भाषा विज्ञानमें अपश्रुति कही जाती है। अपश्रुतिके लिए स्वर विकार, स्वर वर्णक्रमावस्थान वर्णश्रेणीकरण, सम्प्रसारण आदि शब्दोंका भी प्रयोग किया जा सकता है। अंग्रेजी भाषामें भावल ग्रेडेशन, अब्लाउट आदि शब्द इसके लिए प्रचलित हैं। भरद्वाजसे भारद्वाज, शिव से शैव तथा यस्क से यास्क शब्दोंको उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। इन पदों में व्यंजन वर्णोंकी स्थिति यथावत् है तथा आदि स्वरमें परिवर्तन हो गया है। परिणामतः भारद्वाज शब्द भरद्वाजके पुत्रका, शैव शब्द शिवधर्मोपासकका तथा यास्क शब्द यस्क गोत्रापत्य या पुत्र का अर्थ धारण करता है जो प्रकृत अर्थसे भिन्न है।

अपश्रुति दो प्रकार की होती है- मात्रासम्बद्धा एवं गुणसम्बद्धा।[६०] मात्रा सम्बद्धा अपश्रुति ह्रस्व दीर्घात्मिकाके नामसे भी अभिहित है। ह्स्व दीर्घ एवंप्लुप्त से सम्बद्ध मात्रा होती है।[६१] गुणवृद्धिपरिवर्तन भी स्वर से सम्बद्ध है। मात्रा सम्बन्धी शब्दोंमें परिवर्तन परिमाणात्मक होता है। यह परिवर्तन गुण वृद्धि एवं सम्प्रसारण से सम्बद्ध होता है। स्वरसे उत्पन्न ए, ओ एवं अर् विकारको गुण कहते हैं।[६२] इसके प्रदर्शनमें यास्कने शेव शब्दको प्रस्तुत किया है- शेव इतिसुख नाम शिष्यतेर्वकारो नामकरणोऽन्तस्थान्तरोपलिंगी विभाषित गुणः।[६३]शिष् हिंसायाम् धातुसे व प्रत्यय करने पर ष् का लोप तथा विकल्पसे गुण होकर शेव शब्द बनता है अन्यथा शिव ही रहता।

गुणीय परिवर्तनके यास्कसम्मत उदाहरण

इ-ए एवैः[६४]इण् धातु,उ औ घोषः[६५] धुष्धातु धुष्यते,ऋ अर् कर्मन्[६६]कृ धातु, कर्म कस्मात् क्रियते इति सतः,अनर्वन्न-अन्+ऋ गतौ। वृद्धिजन्य परिवर्तन में आ,ऐ,

औ एवं आर् विकार परिगणित हैं। वैश्वानर शब्दमें (विश्व-वैश्व-वैश्वानर) वैश्व वृद्धिका परिणाम है।[६७] वृद्धिजन्य परिवर्तन के यास्क सम्मत उदाहरण-

अ-आ-अदितिः आदित्यः आदितेयः[६८], अ- आ- भग भागानि[६९], अ- आ सवितृ सावित्राणि[७०], अ-आ अग्नि आग्नेय[७१], इ-ऐ विद्युत् वैद्युत्[७२], उ-औ उत्तम औत्तमिकानि[७३], उ-औ पूषम् पौष्णाणि[७४], उ-औ उशिजः पुत्रः औशिजः[७५], ऋ आर ऋष्टिषेणस्यपुत्रः आर्ष्टिषेणः[७६]

सम्प्रसारण- यण् का इक् वर्णोंमें परिवर्तन सम्प्रसारण कहलाता है[७७] य व र ल का क्रमशः इ उ ऋ तथा लृ हो जाना सम्प्रसारण है। सम्प्रसारणकी प्रक्रियासे यास्क पूर्णपरिचित हैं। य र ल व को अर्ध स्वर माना गया है। यही कारण है इन वर्णोंका स्वरोंमें परिवर्तन देखा जाता है तथा ये सभी स्वरवत् कार्यसम्पादन करते हैं। यास्क सम्मत इसके उदाहरणोंको देखा जा सकता है-

य इ यज् यजने इष्टम्, इष्ट्वा[७८], व उ अव् रक्षणे ऊतिः[७९], व उ क्वण् अव्यक्त शब्दे कुणारुः[८०], व उ वश्- कान्तौ उशिजः[८१], र ऋ म्रद्-मर्दने मृदः[८२], र ऋ प्रथ् प्रख्यापने पृथुः,[८३] पृथक्[८४], र ऋ प्रुष्-दाहे पृषतः[८५]

ध्वनिपरिवर्तनसे शब्दोंमें रूपात्मक परिवर्तन हो जाता है। रूपात्मक परिवर्तन के चलते अर्थात्मक परिवर्तन भी संभव है। व्याकरणमें ध्वनिपरिवर्तनके सिद्धान्त मान्य है। स्त्री प्रत्यय, तद्धित प्रत्यय आदिके विधानमें ध्वनिपरिवर्तन स्पष्ट हो जाते हैं। तद्धित आदि शब्दोंके निर्वचनमें यास्क भी ध्वनिविकार सम्बन्धी इन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

यास्कके निर्वचनोंके ध्वन्यात्मक आधार-निर्वचन व्युत्पत्तिकी वह प्रक्रिया है जो शब्दोंके अर्थावबोधके लिए उसके उत्स का अन्वेषण करता है। शब्दोंमें एक अथवा एकसे अधिक अर्थ विद्यमान रहते हैं। अर्थोंके चलते ही शब्द प्राणवान माना जाता है, अन्यथा उसे निरर्थक मानकर साहित्यसे वहिष्कृत कर दिया जाता। अनर्थक शब्दोंके प्रयोगसे साहित्य की श्रीवृद्धि नहीं हो सकती।

ध्वनि शब्दकी लघु इकाई है। ध्वनियोंका समन्वित रूप शब्द हैं। शब्द किसी भी भाषाका आधार होता है। शब्दोंके बिना न तो अर्थकी कल्पनाकी जा सकती है और न ही साहित्यकी।[८६] संकेतादिकाअर्थबोध के कारण होतेहुए भी साहित्यमें उसका शब्दोंसे ही प्रतिपादन संभव है।ध्वनिके बिना शब्दोंकी कल्पनाभी संभव नहीं। ध्वनि और शब्दमें

अविनाभाव सम्बन्ध हैं। ध्वनिको शब्दका वह भौतिक रूप माना गया है जिसमें अर्थ रूप प्राणको आश्रय मिलता है।

ध्वन्यात्मक आधार निर्वचनका सर्वाधिक सशक्त आधार है आधुनिक भाषा विज्ञानमें तो ध्वनिकी ही प्राथमिकता प्राप्त है। अर्थात् निर्वचनकी प्रक्रियामें ध्वन्यात्मक आधारकी उपेक्षा युक्तिसंगत नहीं मानी जाती। यास्कके निर्वचनोंमें भी ध्वनिको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है लेकिन शब्दोंके अर्थान्वेषण तथा अर्थ विनिश्चयमें यास्कने ध्वनिकी उपेक्षा भी की है। इन्होंने अर्थको ही प्रधान माना है, शब्दको गौण। इनके अनुसार निर्वचन क्रममें जहां अर्थकी संगति न हो वहां पर भी अर्थकी प्रधानताके अनुसार किसी क्रियाकी समानतासे निर्वचन कर लेना चाहिए।[८७] जहां किसी क्रियाकी भी समानता न रहे वहां किसी स्वर व्यंजनकी समानताके आधार पर भी निर्वचन कर लेना चाहिए। निर्वचनमें व्याकरणकी प्रक्रिया की अवहेलना भी हो तो यास्क को इसकी चिन्ता नहीं।[८८] अर्थकी प्रधानताके चलते ही यास्कके निर्वचनोंका सर्वत्र ध्वन्यात्मक औचित्य दृश्य नहीं होता।

यास्कके निर्वचनोंके परिशीलनसे स्पष्ट होता है कि इनके कुछ निर्वचन ध्वन्यात्मक आधारसे पूर्ण संगत हैं। जिन शब्दोंके अर्थ शब्द निहित क्रियाके अर्थसे पूर्ण साम्य रखते हैं उन निर्वचनोंमें ध्वनिकी पूर्ण रक्षा हुई है तथा उनका ध्वन्यात्मक आधार सर्वथा संगत है।

निरुक्त सम्प्रदाय निर्वचन प्रक्रियाको अधिक महत्त्व देता है निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार वर्णागम, वर्ण विपर्यय, वर्णविकार, वर्ण नाश तथा धातुओंका अर्थातिशय योग[८९] पांच सिद्धान्त मान्य हैं। यद्यपि निर्वचनके ये पांच प्रकार मूल रूपमें ध्वनि को ही आधार मानते हैं। ये सभी प्रकार ध्वनिसे साक्षात् सम्बन्ध रखते हैं फिर भी किसी भी शब्दके अर्थानुसन्धानमें विविध निर्वचनोंका उपस्थापन ध्वन्यात्मक रक्षा में सर्वत्र सफल नहीं होता। निर्वचनके पांच प्रकार ध्वनिपरिवर्तनकी अवस्थाको संकेत करते हैं। भाषा विज्ञानतो ध्वनि परिवर्तनकी सीमाओंसे आबद्ध होकर चलता है जबकि निरुक्तानुमोदित ध्वनिपरिवर्तन निर्वचन सिद्धान्तके दीर्घ आयोमोंमें आबद्ध है।

ध्वन्यात्मक महत्त्व वाले निवर्चनोंको यथा स्थान निर्वचनके क्रममें दिखलाया जाएगा।

-:संदर्भ संकेत:-१.खनिकष्यज्यसिवसिवनिसनिध्वनिग्रन्थचलिभ्यश्च-उणा.४।१३८,२.

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ।। वा.प. १।१, ३. वाक्यपदीयम् - १।१०२, ४. नि. १३, ५. पा.शि. ६,७,९, ६. स्वयं राजन्ते स्वराः, अन्वग् भवति व्यंजनमिति स्वयं राजन्त इतिस्वराः- महाभाष्य १।२।३०, ७. भाषा विज्ञान- (भोलानाथ) पृ ३०८, ८. तस्य यानि व्यंजनानि तच्छरीरम् यो घोषः स आत्मा-ऐ.आ., ९. वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यतेपंचविधं निरुक्तम्।. (नि.दु. वृ. १।१।१।पृ. ५), भवेद्वर्णागमाद्ध्वंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् गूढोत्मा वर्णाविकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरम्।। (अष्टा. ६।३।१०९ की व्याख्या-सि.कौ. पृ. १०१), १०. नि. ६।३, क. ४।३४।३, ११. नि. २।१, १२. नि. २।१, १३. नि. २।१, १४. नि. ४।१, १५. नि. २।१, १६. नि. ९।१, १०।१, १०।३, १७. नि. २।१, १८. अष्टा. ७।४।१७, १९. नि. २।५, ९।३, २०. नि. २।१, २१. अथापि अन्तव्यापत्तिः भवति नि. २।१, २२. नि. २।२, २३. अथापि आद्यन्तविपर्ययो भवति-स्तोकः, रज्जुःसिकता तर्कुरिति (नि. २।१), २४. वर्गाणां प्रथमतृतीयपंचमाः प्रथमतृतीय यमौ यरलवाश्चाल्पप्राणाः अन्ये महाप्राणाः (सि.कौ. संज्ञाप्रकरण), २५. नि. २।१, २६. नि. ९।२, २७. नि. ६।४, २८. नि. ६।४, २९. नि. २।१, ३०. नि. २।७, ३१. नि. ६।५, ३२. नि. ३।४, ३३. नि. ६।१, ३४. नि. १।४, ३५. नि. ६।५, ३६. नि. १।६, ३७. नि. १०।४, ३८. नि. ६।२, ३९. नि. ९।२, ४०. नि. ५।४, ४१. नि. ३।४, ४२. नि. ९।२, ४३. नि. ६।४, ४४. नि. ४।२, ४५. नि. ५।४, ४६. नि. ३।२, ४७. नि. ५।३, ४८. नि. ६।६, ४९. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा-अष्टा १।१।६५, ५०. अथाप्युपधाविकारोभवति राजादण्डीति- नि. २।१, ५१. अथाप्यस्तेर्निवृतिस्थानेषु आदिलोपो भवति-स्तः सन्तीति-नि.२।१, ५२. अथाप्युपधालोपो भवति-जग्मतुः जग्मुरिति- नि. २।१, ५३. नि. २।१, ५४. अष्टा. १।३।५, ५५. नि. ५।३, ५६. नि. २।१, ५७. नि. २।१, ५८. अथाप्यन्तलोपोभवति-गत्वा गतमिति-नि. २।१, ५९. कीकटाः किंकृता- नि. ६।६, ६०. भाषा विज्ञान (भोना.ति.) पृ. ४०५, ६१. याज्ञवल्क्य शिक्षा -श्लोक-१५, ६२. अदेङ्गुणः अष्टा. १।१।२, ६३. नि. १०।२, ६४. नि. १२।३, ६५. नि. ९।१, ६६. नि. १।६, ४।४, ६७. नि. २।४, ६८. नि. ७।६, ६९. नि. ७।६, ७०. नि. ७।६, ७१. नि. १।६, ७२. नि. १४, ७।३, ७३. नि. ७।६, ७४. नि. ६।३, ७५. नि. ६।३, ७६. नि. २।३, ७७. इग्यणः सम्प्रसारणम्- अष्टा. १।१।४४, ७८.

नि. २।१, ७९. नि. २।१, ८०. नि. ६।३, ८१. नि. २।१, ८२. नि. २।१, ८३. नि. ५।४, ८४. नि. २।१, ८५. नि. २।१, ८६. शब्दार्थौ काव्यम्-भामह, ८७. नि. २।१, ८८. नि. २।१, ८९. नि.दु.वृ. १।१।१ पृ. ५

(ख) अर्थात्मक आधार एवं यास्कके निर्वचन

अर्थ :- अर्थ शब्द ऋ गतौ धातु से थन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है[१] या अर्थ उपयांचायाम् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर बनाया जा सकता है।[२] यास्कने अर्थ शब्दका निर्वचन प्रस्तुत करते हुए कहा है- अर्थोऽर्तेऽरणस्थो वा[३] अर्थात् अर्थ शब्द ऋ गतौ धातुसे या अरस्था धातुओं से निष्पन्न है। ऋ गतौ धातुसे निष्पन्न मानने पर याचकोंके द्वारा उसके पास जाया जाता है तथा अरस्थासे निष्पन्न मानने पर मरनेके बाद यह यहीं रह जाता है, ऐसा अर्थ करना होगा। धन के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। समानताके आधार पर पदार्थ भी इसी प्रकार माने जायेंगे।[४] मुण्डकोपनिषद् रूपको अर्थ मानता है। वहां नाम पदसे शब्दात्मक तथा रूप पदसे अर्थात्मक जगत् का ग्रहण होता है।[५] शब्दोच्चारण कालमें जिस अर्थकी प्रतीति होती है वही उसका शब्दार्थ होता है।[६] अग्नि शब्दके उच्चारण करने पर दहनकर्माग्नि का सम्प्रत्यय होता है। अतः अग्निका अर्थ दहन कर्म माना जाएगा।

यदि शब्द भाषाका वाह्य रूप है तो अर्थ उससे उद्भासित होने वाला लावण्य, शब्द भाषाका शरीर है तो अर्थ उस शरीरमें रहने वाली आत्मा, शब्दको अगर पुष्प माने तो उसमें रहने वाला सुगन्ध उसका अर्थ है। शब्दका महत्त्व उसके अर्थके कारण ही है। शब्दका वाह्य रूप जो उपस्थित होता है वह न तो सत्य है और न उपयोगी ही। जिस प्रकार आत्माके बिना शरीर एवं सुगन्धके बिना पुष्प महत्त्वहीन हैं उसी प्रकार अर्थके बिना शब्द भी महत्त्वहीन है। शब्दमें रहने वाली भावना सत्य एवं उपयोगी है। इस भावनाको भावित करनेके लिए ही किसी शब्दको प्रयोगमें लाया जाता है। अनर्थज्ञ वाणीको देखता हुआ भी नहीं देखता तथा सुनता हुआ भी नहीं सुनता।[७] अर्थात् अर्थज्ञानके अभावमें वह शब्दोंसे लाभ नहीं उठा पाता। शब्दकी नित्यताका कारण उसकी अर्थात्मकता है प्रयोगात्मकता या चिरस्थायित्व नहीं। यदि शब्दकी अर्थगत उपयोगिताको निकाल दिया जाए तो उस शब्द और शोर में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्[८] के द्वारा पाणिनिने भी शब्दकी अर्थवत्ताको स्वीकार किया है। विभक्तियोंका योग भी उसकी अर्थात्मक शक्तियोंको नहीं बदलता।

ये विभक्तियां तो एक संस्कार मात्र होती हैं जिसके चलते शब्द प्रयोगार्ह बन जाते हैं, पद बन जाते हैं। भर्तृहरि भी अर्थको ही मूल मानते हैं तथा शब्दको अर्थका आश्रय मात्र स्वीकार करते हैं। प्रयोक्ता अपने अभिधेयार्थकी स्पष्टताके लिए एवं ग्रहीता उसके द्वारा प्रयुक्त अर्थ की उपलब्धिके लिए शब्दका आश्रय ग्रहण करता है।[९] शब्दकी व्यापकता उसकी आकृतिके कारण नहीं होती बल्कि अर्थविस्तारके कारण होती है। जेस्पर्सनकी मान्यता है कि प्रयोक्ता एवं ग्रहीताके मध्य स्थित व्यापारको समझनेके लिए उन दोनोंकी गतिविधि एवं औत्सुक्यका ध्यान रखना आवश्यक है।[१०]

यास्कने अर्थको मूल माना है। अर्थ नित्यः परीक्षेत[११] के द्वारा अर्थकी ओर स्पष्ट संकेत किया है। शब्दका वाह्य रूप भ्रमावह हो सकता है या उसके साथ सम्बद्ध होनेसे प्रत्ययादि संस्कार भी इसी प्रकार हमारे समक्ष आ सकते हैं। शब्द रूप को केवल माध्यम कहा जा सकता है। निर्वचनका उद्देश्य शब्द स्थित अर्थका उद्घाटन करना होता है जिसको यास्कने भी प्रधानता दी है। मन्त्रोंमें अर्थवत्ता निर्धारण के अवसर पर अर्थवन्तः शब्द सामान्यात्[१२] कह कर इन्होंने समग्र वैदिक एवं लौकिक शब्दोंको अर्थवान् माना। वे उस शब्दज्ञको जो अर्थज्ञ नहीं है, व्यर्थ भार ठोने वाला स्थाणुकी संज्ञा देते हैं।[१३] अर्थ शून्य शब्दज्ञको अग्निसे रहित शुष्क इन्धनकी भांति मानते हैं जो कभी जलता नहीं, कभी प्रकाशित नहीं होता।[१४]

भाषा विज्ञानमें अर्थ विज्ञानका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यास्क अर्थ विज्ञानके क्षेत्रमें प्रधान आचार्य हैं। प्राचीन कालमें भारतमें ही अर्थ विज्ञानका विवेचन प्रस्तुत करते हुए आचार्य यास्कने अपना स्थान स्थिर किया।[१५]

शब्दोंके अर्थमें परिवर्तन होते हैं यह भाषा विज्ञानका भी मान्य सिद्धान्त हैं। किसी शब्दका प्रारम्भिक अर्थ कालान्तरमें कारण विशेषके चलते परिवर्तित हो जाता है, यह अर्थ परिवर्तनका सिद्धान्त है। जैसे-वैदिक कालमें मृगशब्द सामान्य पशुके अर्थमें प्रयुक्त था। मृग्यते अन्विष्यते इतिमृगःअर्थात् आखेटमें पशुओंका अन्वेषण होता था यही कारण है कि आखेटके लिए मृगयाशब्दका प्रयोग होने लगा। कालान्तरमें यज्ञ आदिके लिए हरिण पशु के चर्मका विशेष उपयोग होनेके चलते सामान्य पशुओंकी अपेक्षा हरिणका आखेट अधिक होने लगा होगा तथा यह शब्द सामान्य पशु वाचक न रहकर हरिणके लिए रूढ़ हो गया। आज मृगका अर्थ हरिण लिया जाता है न कि सामान्यपशु।यद्यपि सामान्य पशुवाचक अर्थ मृगेन्द्र, मृगराज, मृगया आदिशब्दोंमें अभीभी

सुरक्षित है।भाषा विज्ञानमें अर्थ परिवर्तन अर्थ विकासके नामसे भी जाना जाता है। सामान्य रूपमें अर्थ विकासकी तीन स्थितियां हैं-अर्थविस्तार, अर्थसंकोच तथा अर्थादेश।

अर्थ विस्तार :- शब्दके अर्थ विस्तारमें प्रारंभिक अर्थ या सामान्य अर्थ अन्य अर्थको भी अभिव्यक्त करता है। अन्य अर्थोंका प्रकाशन गुणसादृश्य, कर्मसादृश्य आदि के आधार पर होता है। जैसे-निरुक्तमें प्राप्त होता है कि पय: शब्द पान सम्बद्ध होने के चलते या पीये जाने के कारण दुग्धका वाचक है लेकिन जलमें पीयमानता होने के कारण जलको भी पय: कहा जाने लगा।[१६] पयोधि शब्दमें जल अर्थ अभी सुरक्षित है। पुन: मेघका पर्याय पयोधर शब्द है जिसमें जल अर्थ स्पष्ट है। इसी प्रकार क्षीर[१७] शब्द क्षरण क्रियाके चलते दुग्धका अर्थ रखता है। लेकिन क्षरण समानताके कारण कालान्तरमें क्षीर शब्द जलका भी वाचक हो गया। इसी प्रकार अर्थ विस्तारके उदाहरण में निरुक्त से अहि:[१८], रश्मि[१९] आदि शब्दोंको लिया जा सकता है।

अर्थ संकोच :- इसके अनुसार प्रकृत अर्थ किसी कारण विशेषके चलते किसी एक क्षेत्रमें संकुचित हो जाता है। यथा-नाक[२०] शब्दका अर्थ था न दुःअक: अर्थात् जहां दु:ख नहीं हो लेकिन यह शब्द स्वर्गके अर्थमें संकुचित हो गया है। दु:ख से रहित स्थान अनेक थे लेकिन उनमें स्वर्गकी प्रधानताके चलते नाक शब्द स्वर्गके लिए ही रूढ़ हो गया है। इसी प्रकार राजन्[२१] शब्द राजत्व विशिष्ट गुण के चलते विविध पदार्थों या संज्ञाके राजत्व रहने पर भी भूपालके लिए संकुचित हो गया है। वेदमें वरूण आदि देवताओंके लिए भी राजन् शब्दका प्रयोग हुआ है।[२२] जबकि आज भूपालके अर्थमें रूढ़ है। इसी प्रकार निरुक्तमें इनके अतिरिक्त हिरण्यं, मृग:, गौ, पति, कल्याण आदि शब्द अर्थ संकोचके उदाहरण में देखे जा सकते हैं। इमं मे गंगे यमुने[२३]...इस निरुक्तोधृत वैदिक मन्त्र में गंगा शब्द गमन विशेष के कारण सामान्य रूपमें प्रवाहयुक्त नदीका वाचक है लेकिन यह शब्द कालान्तरमें मन्दाकिनीके लिए रूढ़ हो गया।

अर्थादेश:-अर्थादेशमें शब्दका अर्थ परिवर्तित होकर किसी दूसरे अर्थ में रूढ़ हो जाता है।जैसे ग्राममें उत्पन्न होनेवाले या रहने वालेको ग्राम्य कहा जा सकता है जो ग्रामीण का वाचक है लेकिन ग्राम्य शब्द मूर्खके अर्थ में रूढ़ हो गया है। गांवमें रहनेवाले व्यक्तियों की शिक्षा दीक्षा समुचित रूप में नहीं होती। वे लोग शहर के व्यक्तियों की अपेक्षा अल्पज्ञान वाले होते हैं।प्रधानता अल्पज्ञों की ही होती है, अत:वे लोग ग्राम्य कहे जाते

हैं। ग्राम्य शब्दमें मूर्खता अर्थकी अभिव्यंजना है। कर्म शब्दका अर्थ होता है जो किया जाए लेकिन निरुक्तमें यह शब्द अर्थके लिए प्रयुक्त हुआ है। गति कर्माधातु का अर्थ होगा गत्यर्थक धातु। पुनः एतावन्तः समान कर्माणो धातवः[२४] में समानार्थक धातवः का अर्थ अभिप्रेत है। एवमेवोपेक्षितव्यम्[२५] का प्रयोग निरुक्तमें देखा जाता है जिसका अर्थ होता है- इस प्रकार इसकी परीक्षा करनी चाहिए या इसे देखना चाहिए। लेकिन आज उपेक्षितव्यम् का अर्थ हो गया है उपेक्षा करनी चाहिए। यह अर्थादेश है। असुर शब्दका प्रयोग ऋग्वेदमें ही राजा वरुणके लिए हुआ है।[२६] सायण भाष्यमें असुर शब्दका अर्थ अनिष्ट क्षेपणशील किया गया है। कालान्तरमें यह शब्द सुरविरोधी दैत्यका वाचक हो गया है जो अर्थादेश है। यास्कने निरुक्तमें असुर शब्दका निर्वचन दो प्रकारसे किया है। देववाचक असुरके लिए-असुरत्वं प्रज्ञावत्वं वा अनवत्वं वा। अपि वाऽसुरिति प्रज्ञानाम् अस्त्यनर्थान्, अस्ताश्चास्यामर्थाः वसुरत्वमादिलुप्तम्।[२७] इस प्रसंगमें दुर्गवृत्तिमें कहा गया है कि देवताओंका महान् असुरत्व है प्रज्ञावत्व हैं।[२८] पुनः सुरविरोधी दैत्यके अर्थमें-असुरा-असुरताः स्थानेषु अस्ताः स्थानेभ्य इति वा अपि वाऽसुरिति प्राण नाम तेन तद्वन्तः[२९] अर्थात् असुर वह है जो किसी स्थान पर न ठहरे या जो सभी स्थानों से भगाये जाएं। असु प्राणका भी नाम है इससे वह युक्तहोता है।

अर्थ परिवर्तनमें अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष नामक दो प्रकार की स्थितियां देखी जाती हैं। अर्थोत्कर्षमें देव आदि शब्दोंको तथा अर्थापकर्षमें असुर आदि शब्दोंको देखा जा सकता है। देव शब्द आरम्भमें द्योतन गुण विशिष्टके कारण सूर्यादि द्युतिशीलका वाचक था जो कालान्तरमें अर्थोत्कर्षको प्राप्त होकर सभी देवताओंके लिए प्रयुक्त होने लगा। इसी प्रकार असुर शब्द पहले देवका भी वाचक था जो कालान्तरमें अर्थापकर्षके चलते सुरविरोधी दैत्यका वाचक हो गया।

साहित्य शास्त्र में अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना वृत्तियां क्रमशः अभिधेयार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ को द्योतित करती हैं। निरुक्त में अभिधेयार्थ का प्रयोग अधिक हुआ है। लक्ष्यार्थ के उदाहरणों में कम्बोजाः[३०] शब्द को देखा जा सकता है जो कम्बोज देशवासी पुरुषों के लिए रूढ़ हो गया है। पुनः गौ[३१] शब्दका अर्थ गोदुग्ध, गोचर्म आदि लक्षणा के चलते ही माना जाएगा। निरुक्त में लक्षणा के लिए भक्ति शब्द का प्रयोग देखा जाता है।[३२] भक्ति शब्द का प्रयोग यास्कने अमुख्यार्थमें किया है। इन्द्रपान[३३] शब्दका अभिधेयार्थ है इन्द्रके पानार्थ दिया गया पात्र। यह पात्र अन्य देवताओंके लिए भी प्रयुक्त होता है इसी

अमुख्यार्थ ही कहा जाएगा।

वाक्य, प्रकरण, औचित्य, देश, काल आदि से भी शब्दार्थ विभाजित होते हैं। पुनः संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ (प्रयोजन), प्रकरण, लिंग, अन्य शब्दसन्निधि, सारूप्य आदि भी अर्थ नियमन करते हैं।[३४] व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, सन्निधि तथा पदसिद्धि भी अर्थ नियमनमें सहायक हैं।[३५] निरुक्तमें ये सारे अर्थनियामक तत्त्व यथाक्रम वर्णित नहीं हैं। लेकिन निम्नलिखित अर्थ नियामक तत्त्वोंको अर्थ नियमन के प्रसंग में विवेचित किया गया है।

व्याकरण :- व्याकरणकी दृष्टिसे शब्द दो प्रकार के होते हैं- व्युत्पन्न एवं अव्युत्पन्न। निरुक्तकारयास्कका विचार है कि व्युत्पन्न शब्दोंका निर्वचन व्याकरण पद्धतिके अनुसार ही कर लेना चाहिए। फलतः व्याकरण पद्धतिके अनुसार अर्थका प्रकाश यास्कानुमोदित है।[३६]

कोष :- यास्कके समयमें कोष शास्त्र नामक स्वतंत्र शास्त्र नहीं था, क्योंकि उस समय के किसी भी कोषग्रन्थकी उपलब्धि नहीं होती। कोषशास्त्रका आरंभिक रूप निघण्टु नामक ग्रंथ ही था। यद्यपि निघण्टु ग्रन्थोंकी संख्या अनेक हो सकती है। यास्कका निरुक्त भी निघण्टु ग्रन्थकी व्याख्या है। निघण्टुमें [illegible]क शब्दोंका संग्रह है। इसमें शब्दोंका संग्रह प्रकरणानुरूप एवं विषयानुरूप हुआ है। प्रकरणानुरूप एवं विषयानुरूप शब्दोंके संग्रहसे अर्थप्रकाशन भी होता है। जैसे-गौ आदि पृथिवी के इक्कीस नाम हैं।[३७] जातरूप आदि हिरण्य के पन्द्रह नाम हैं।[३८] इस प्रकार गौ प्रभृति शब्द पृथिवीके अर्थको प्रकट करते हैं तथा जातरूप प्रभृति शब्द हिरण्यके अर्थको प्रकट करते हैं।

आप्तवाक्य :- अर्थनियामक तत्त्वोंमें आप्तवाक्यके महत्त्व का स्पष्टीकरण यास्कके पुरुष विद्या नित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मंत्रो वेदे[३९] के द्वारा हो जाता है। पुनः असक्षात्कृतधर्मा व्यक्तियोंने साक्षात्कृत धर्मा ऋषियोंसे मन्त्रोंका उपदेश ग्रहण किया।[४०] स्पष्ट है आप्तवाक्यका अर्थ विनियमनमें महत्त्वपूर्ण योग है। साम्प्रतिक शब्दोंके अर्थ आप्तानुमोदित होनेके चलते ही प्रयोगार्ह हैं।

सादृश्यः-नामके आधार निर्धारणमें सादृश्य भी कारणहैं।निर्वचनके क्रममें सादृश्यको भी यास्क महत्त्व देते हैं। अश्वके बाहुमूलको कक्ष कहा जाता है। अश्वके बाहुमूलकी समानताके आधार पर मनुष्यके बाहुमूलको भी कक्ष कहा जाता है।[४१] इसी प्रकार क्षीर शब्द दुग्ध का वाचक है क्योंकि इस में क्षरण क्रिया की समानता है।[४२] इस प्रकार

निरुक्तमें अनेक शब्द सादृश्यके आधार पर विवेचित हैं।

प्रकरण :- अर्थविनिश्चयमें प्रकरणकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हैं। निर्वचनके क्रममें भी प्रकरणका ध्यान रखना पड़ता है। देवताओंका निर्वचन यास्क प्रकरणानुरूप करते हैं क्योंकि देवतागण अपने गुणकर्मादिके कारण अनेक नाम धारण करते हैं।[४३] विभिन्न देवताओंके विशेषणमें कर्म सादृश्यके आधार पर समानता रहती है। वहां अर्थका विनिश्चय प्रकरणके अनुरूप होता है।

उपमा :- निरुक्तमें उपमाके प्रसंगमें गार्ग्यका मत उद्धृत है- यदतत्तत्सदृशमिति गार्ग्य:[४४] अर्थात् जो वह नहीं है उसके सदृश है, को उपमा कहा जाता है। वर्णोपमा के उदाहरणमें निरुक्तमें प्रयुक्त हिरण्य-रूप[४५] शब्दको देखा जा सकता है। उपमा के द्वारा अर्थ प्रकाशन शब्द शास्त्र एवं दर्शनशास्त्रमें भी मान्य है। लुप्तोपमा के प्रसंगमें यास्क निरुक्तमें कहते हैं-अथ लुप्तोपमान्यर्थोपमानीत्याचक्षते। सिंहोव्याघ्र इतिपूजायाम्। श्वा काक इति कुत्सायाम्।[४६] उपमाके लिए प्रयुक्त सिंह एवं व्याघ्र शब्द पूजा या प्रतिष्ठाके अर्थको द्योतित करते हैं यथा-पुरुषसिंह, पुरुषव्याघ्र आदि। इसी प्रकार श्वा एवं काक शब्द निन्दा अर्थको द्योतित करते हैं। यथा नर श्वा एवं नर काक आदि।

व्यवहार :- अर्थ विनिश्चयका महत्त्वपूर्ण आधार व्यवहार भी है। यास्कका कहना है कि शब्द जब व्यवहारमें आते हैं तभी विचारके योग्य होते हैं।[४७] लोकमें प्रयुक्त नाम व्यवहारके लिए ही होते हैं।[४८] शब्दोंके अर्थ प्रचलनमें व्यवहार इसी प्रकार अपना स्थान रखता है।

देशभेद :- अर्थ विनिश्चयमें देश भेदका भी प्रभाव देखा जाता है। एक ही शब्द एक देशमें किसी अर्थमें प्रयुक्त होता है तो दूसरे देशमें भिन्न अर्थमें। यास्कने निरुक्तमें स्पष्ट किया है कि प्रकृति एक स्थानमें बोली जाती है तथा विकृति दूसरे स्थानमें। गति अर्थ वाला शव धातुका प्रयोग कम्बोज देशमें होता है तथा इससे बने शब्द शवका प्रयोग आर्य देशमें होता है। कम्बोजमें शव जाना अर्थमें प्रयुक्त होता है लेकिन आर्यदेशमें शव मृतदेहके अर्थमें। इसी प्रकार दा धातु काटना अर्थमें प्राच्य देश तथा इससे बना शब्द दात्र का प्रयोग उदीच्य देशमें होता है।[४९]

यास्क के निर्वचनों का अर्थात्मक आधार :- अर्थ शब्दका आत्मिक रूप है। निर्वचन शास्त्र का मूल प्रयोजन है शाब्दिक अर्थों का विनिश्चय। शब्द के विविध अर्थों के उत्सका अन्वेषण ही इसका उद्देश्य है। किसी शब्द के

प्रचलित अर्थके आधारकी पुष्टिमें ही विविध धातुओंकी कल्पनाकी जाती है चाहे इस कल्पनाका ध्वन्यात्मक आधार सुरक्षित रहें या नहीं। आचार्य सायणने भी निरुक्तको स्पष्टकरते हुए कहाकि-अर्थके अवबोधमें निरपेक्ष रूपसे कथित पदजात निरुक्त है।[५०]

यास्कने वैदिक शब्दोंके संग्रह निघण्टुके शब्दोंका निर्वचन किया है। शब्द सामान्यके अनुसार इसके अधिसंख्य शब्द लौकिक संस्कृतमें भी प्रयुक्त होते हैं। शब्दोंके निर्वचनमें अर्थकी प्रधानता दी गयी है। उस निर्वचनसे क्या लाभ जिससे शब्द स्थित अर्थका प्रकाशन नहीं होता। फलतः शब्दोंके निर्वचनमें अर्थात्मक आधार महत्त्वपूर्ण है यास्क ध्वन्यात्मक आधारकी अपेक्षा अर्थात्मक आधारको अधिक महत्त्व देते हैं। यही कारण है कि वे सभी प्रयुक्त शब्दोंके अर्थको विनिश्चय कर पाते हैं। यद्यपि आजके परिप्रेक्ष्यमें शब्दोंके अर्थोंमें परिवर्तन भी हो गया है। इसके चलते यास्कके कुछ निर्वचन अर्थात्मक आधार से भी पूर्ण संगत प्रतीत नहीं होते। लेकिन लगता है यास्कके समयमें वे ही अर्थ होंगे जिसका आधार मानकर उन्होंने निर्वचन किया है। अर्थात्मक महत्त्वसे सम्बद्ध प्रचुर उदाहरण निर्वचन क्रममें प्रदर्शित होंगे।

-: संदर्भ संकेत :-

१. उणा.-२।४, २. अष्टा.३।३।१९, ३. नि.१।६, ४. तत्सामान्यादितरोऽपि शब्दार्थोऽर्थ उच्यते-नि.दु.वृ.१।६, ५. तस्मादेतद् ब्रह्मनाम रूपमन्नं च जायते - मुण्ड. १।१।९, ६. यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते। तमाहुरर्थः तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्।। वा. २।३२७-३२८, ७. ऋ.सं. १०।७१।४, ८. अष्टा. १।२।४५, ९. यथा प्रयोक्तुः प्राग्बुद्धिः शब्देष्वेव प्रवर्तते। व्यवसायो ग्रहीतृणामेवं तेष्वेव जायते।। वा. १।५३, १०. फिलसाफी आफ लैग्वेज- पृ १७, ११. नि. २।१, १२. नि. २।१, १३. नि. १।५, १४. नि. १।६, १५. एसे द सिमान्तिक-माइकेल ब्रील महोदय का अर्थ विज्ञान पर भाषा विज्ञानमें प्रथम पुस्तक १८९८ इ. में प्रकाशित हुई है।- हि.नि.भू. (ऋषि) पृ. ४५, १६. पयः पिवतेर्वा प्यायतेर्वा-नि. २।२, १७. क्षीरं क्षरणात्- नि. २।२, १८. नि. २।५, १९. नि. २।२,५, २०. नि. २।४, २१. नि. २।१, २२. ऋ. १।२४।१४, २३. नि. १।६, ऋ. १०।७५।५, २४. नि. १।६, २५. नि. १।५, २६. अव ते हेलो वरुण नमोभिः...ऋ. १।२४।१४, ऋ. १।३५।१०, ऋ. १।३५।७ आदिमें भी असुर शब्द देवताका वाचक है।, २७. नि. १०।३, २८. नि.दु.वृ. १०।३, २९. नि. ३।२, ३०. नि. २।१, ३१. ऋ. ९।४६।४, ३२. नि.

८।१, ३३. नि. ८।१, ३४. वाक्यात् प्रकरणादर्थादौचित्याद् देशकालतः। शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात्।। संयोगो विप्रयोगश्च साहश्चर्यं विरोधिता। अर्थप्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।। भेदपक्षेऽपि सारूप्यादिभन्नार्थाः प्रतिपत्तिषु नियतायान्त्यभिव्यक्तिं शब्दाः प्रकरणादिभिः।। (वा. प. ३१४-१६), ३५. शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान कोषाप्तवाक्यात् व्यवहारतश्च। वाक्यस्य शेषात् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदश्च वृद्धाः।। (सिद्धा. मु. शब्द खण्ड का. ८१ (व्या प्र.), ३६. तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेन अन्वितौ स्याताम्, तथा तानि निर्ब्रूयात्। (नि. २।१), ३७. निघण्टु- १।१, ३९. नि. १।१, ४०. नि. १।६, ४१. नि. २।१, ४२. क्षीरं क्षरतेः...नि. २।२, ४३. महाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते। नि. ७।१, ४४. नि. ३।३, ४५. नि. ३।३, ४६. नि. ३।४, ४७. अथापि निष्पन्ने अभिव्याहारे अभिविचारयन्ति- नि. २।१, ४८. नि. १।१, ४९. नि. २।१, ५०. अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम् -(ऋ.भा.मू.)- सायण ।

(ग) दृश्यात्मक आधार और यास्कके निर्वचन

समग्र साहित्य शब्द एवं अर्थके ऊपर आधारित है। निर्वचन शास्त्र भी मूल रूपमें शब्द एवं अर्थ पर ही आधारित है जिसमें शब्दोंके अर्थकी खोज प्राधान्येन विविक्षित होती है। अर्थ खोजकी दिशामें विभिन्न आधार अपनाए जाते हैं क्योंकि किसी भी शब्दमें अर्थ निहित होनेके कारण अवश्य होते हैं। किसी भी भाषाके शब्द देश कालकी स्थितियोंसे प्रभावित रहते हैं। इन स्थितियोंका परिदर्शन उस शब्दके अर्थानुसन्धानमें भी अपेक्षित होता है।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका आधार रूपात्मक या दृश्यात्मक होता है। किसी शब्दसे किसी खास रूपकी झलक मिलती है। यह दृश्यात्मक आधारके अंतर्गत भी माना जा सकता हैं। यास्क निर्वचनके प्रसंगमें यदा-कदा उल्लेख करते हैं कि इस शब्दमें दृश्यात्मक आधार है। पृथिवी शब्दके निर्वचनमें कहते हैं-अथ वै दर्शनेनपृथुः[१] अर्थात् पृथिवी प्रस्तृत देखी जाती है। देखनेमें पृथिवी फैली लगती है इसलिए वह पृथिवी कहलायी।

आचार्य शौनकने नाम पड़नेके आधारोंमें रूपको एक आधार माना है।[२] वस्तुतः किसी पदार्थका नाम उसके रूपके आधार पर भी होता है। अगर कोई शब्द रूप पर आधारित है तो निश्चित ही उस शब्दके निर्वचनमें रूपात्मक आधारको अपनाया

जाएगा। रूपात्मक आधार उस वस्तुका द्योतक है जिससे उस वस्तुके आकार प्रकार का परिदर्शन होता है। दृश्य शब्द दर्शनार्थक दृश् धातु से बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है जो देखा जा सके। नेत्रेन्द्रियसे सम्बन्ध प्राधान्यके चलते चाक्षुष विम्ब ग्राहिता ही दृश्यके अन्तर्गत समाविष्ट है।

दृश्य चाक्षुष प्रत्यक्षका परिणाम है। सभी ज्ञानेन्द्रियोंके पृथक्-पृथक् विषय हैं। इन्द्रियके सन्निकर्षसे उत्पन्न पदार्थके ज्ञानको हम प्रत्यक्ष कहते हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष शब्दमें प्राधान्य व्यपदेशके चलते मात्र अक्ष इन्द्रिय का संकेत है लेकिन इसे समग्र इन्द्रियका वाचक माना जाता है। यही कारण है कि विभिन्न इन्द्रियोका पदार्थोंके साथ सन्निकर्ष होता है, सन्निकर्षके फलस्वरूप जिस अर्थका ज्ञान होता है वही प्रत्यक्ष है। इस प्रकार चाक्षुष, रासन, घ्राणज, श्रावण, त्वाचिक आदि प्रत्यक्ष क्रमशः चक्षु, रसना, घ्राण, श्रवण एवं त्वचा के पदार्थों के साथ सन्निकर्ष के ही परिणाम हैं।[३] इन प्रत्यक्षोंमें चाक्षुष प्रत्यक्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि चक्षु के साथ पदार्थों का सम्पर्क अपेक्षाकृत अधिक होता है। शब्दोंमें अर्थका अभिनिवेश दृश्यात्मक प्रत्यक्ष की भी अपेक्षा रखता है। फलतः निर्वचनके क्रममें दृश्यात्मक आधार भी प्रभावित होते हैं।

यास्कने निरुक्तमें निर्वचन प्रसंगमें दृश्यात्मक आधारका भी सहारा लिया है। निरुक्तके प्रथम अध्यायमें ही अक्षि, कर्ण आदि शब्द आते हैं। अक्षिके सम्बन्धमें कहा गया है कि ये अन्य अंगोंकी अपेक्षा व्यक्ततर होती है तथा कर्णके सम्बन्धमें कहा गया है कि इसका द्वार कटा होता है।[४] निश्चय ही ये दोनों निर्वचन दृश्यात्मक आधार रखते हैं तथा इससे उसके स्वरूपका भी पता चलता है। पृथिवी[५] खम्[६] तित्तिरि[७], कपिंजल[८], ऋक्ष[९], सुपर्ण[१०], हरिः[११], स्वसराणि[१२], उरु[१३], नक्ता[१४], कला[१५], उषा[१६], केशी[१७], आदि शब्दोंके निर्वचन भी दृश्यात्मक आधार रखते हैं।

उपर्युक्त परिशीलन से स्पष्ट होता है कि यास्कके निर्वचनोंमें दृश्यात्मक आधारको भी अपनाया गया है। भले ही इस प्रकारके निर्वचनोंकी संख्या कम है।

-: संदर्भ संकेत :-

१. नि. १।४, २. निवासात् कर्मणो रूपात् मंगलाद्वाच आशिषः। यदृच्छयोपवशनात्तथा मुष्यायनाच्च यत्।। वृ.दे. -१।२५, ३. इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं प्रत्यक्षम्-न्या शा. (प्रत्यक्ष खण्ड), ४. नि. १।३, ५. नि. १।४, ६. नि. ३।३, ७. नि. ३।४, ८. नि. ३।४, ९. नि. ३।४, १०. नि. ४।१, ११. नि. ४।३, १२.

नि. ५।१, १३. नि. ८।२, १४. नि. ८।२, १५. नि. ११।१, १६. नि. १२।१, १७. नि. १२।३.

(घ) शब्दानुकरण एवं यास्कके निर्वचन

निर्वचनके विभिन्न आधारोंमें शब्दानुकरण भी एक प्रमुख आधार है। शब्दानुकरणको निरुक्तमें शब्दानुकृति कहा गया है। अनुकरण एवं अनुकृतिमें कोई अर्थगत विशेष पार्थक्य नहीं है। दोनों ही पदोंमें अनु + कृ का योग है। शब्दानुकृतिका अर्थ होता है शब्दका अनुकरण। हम देखते हैं कि लोक प्रयुक्त कुछ शब्द उसकी वाणीके आधार पर ही आधारित हैं। उदाहरण स्वरूप काक शब्दको लिया जा सकता है। काक एक पक्षी विशेष है जिसकी ध्वनि का, का होती है। इसी का, का ध्वनि विशेषके अनुसार इसका नाम काक पड़ गया। वृहद्देवतामें आचार्य शौनक भी किसी वस्तुके नाम पड़नेके कारणोंमें उसकी वाणीको भी एक आधार मानते हैं।[१]

यास्कने शब्दानुकृतिके आधार पर कुछ निर्वचनोंको प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट होता है कि यास्क निर्वचनके आधारोंमें शब्दानुकृतिको भी एक आधार स्वीकार करते हैं। निरुक्तके तृतीय अध्यायमें यास्क कहते हैं- काक इति शब्दानुकृतिः, तदिदं शकुनिषु बहुलम्।[२] अर्थात् काक शब्द शब्दानुकृतिका परिणाम है तथा पक्षियोंमें इस तरह की बात अधिक देखी जाती है। दुर्गाचार्यने भी इसे ही स्पष्ट किया है।[३]

आचार्य औपमन्यव पक्षियोंके नाममें शब्दानुकृतिको स्वीकार नहीं करते हैं। इनके अनुसार पक्षियों के नाममें शब्दानुकृति आधार न होकर अन्य आधार हैं। उदाहरण स्वरूप-काकको काक इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अपकालयितव्य अर्थात् निकालने योग्य होता है। यहां निकालना अर्थ वाला काल् धातुसे काक शब्द माना गया। यद्यपि यह निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण है। इसी प्रकार औपमन्यव तित्तिरिः शब्दमें तृ धातुकी कल्पना करते हैं क्योंकि वह उछल कर चलता है या उसमें तिलके समान चित्र होते हैं। यहां इन निर्वचनोंके आधार पर तित्तिरि शब्दमें क्रमशः गति एवं रूपको आधार माना गया है। कपिंजल एक मर्कट विशेष है जिसके निर्वचनमें औपमन्यव-कपिंजलः कपिरिव जीर्णः, कपिरिव जवते, ईषत्पिंगलो वा कमनीयं शब्दं पिंजयतीति वा[५] मानते हैं। अर्थात्, कपिके समान वेगसे गमन करता है- कपि-जु गतौ +कपिंजलः,थोड़ा पीला वर्णका होता है इषत्- क +पिंगलः= कपिंजलः, मधुर शब्दका उच्चारण करता है- क-पिंज् धातुसे कपिंजल शब्द माना गया है। अन्तिम निर्वचनमें पाठान्तर भी मिलता है।

कहीं कमनीयं के स्थान पर गमनीयम् शब्द भी देखा जाता है। इसके अनुसार वह गमनीय अर्थात् प्रार्थनीय शब्दका उच्चारण करता है।

औपमन्यवका यह विचार कि शकुनिके नाम शब्दानुकृति पर आधारित नहीं, आंशिक सत्य है। कुछ पक्षियों के नाम शब्दानुकृति पर आधारित न होकर अन्य आधारसे युक्त हैं। वे आधार कर्म, रूप, गुण, सादृश्य आदि हो सकते हैं। स्वयं यास्कने ही पक्षियोंके नाम निर्वचनमें शब्दानुकृतिको स्वीकार किया है। इस प्रसंग में काक शब्दके निर्वचनको पूर्व ही प्रदर्शित किया जा चुका है।

अन्य भाषाओंमें भी पक्षियोंके नाम शब्दानुकृति पर आधारित प्राप्त होते हैं। अंग्रेजीका पिदै चीनी भाषाका मिआऊ, अंग्रेजीका कक्कु आदि शब्दोंमें शब्दानुकृति ही है।[६] कृक्, कृक् शब्द करनेके कारण कृकवाकु तथा तित् तित् शब्द करनेके कारण तितिरि शब्दमें शब्दानुकृति स्पष्ट है।

यास्कने कितव शब्दके निर्वचनमें कहा है- कितवः किं तव अस्तीति शब्दानुकृतिः[७] कितवका अर्थ होता है जुआ। इसमें जुआरी आपसमें पूछते हैं-किं तव अस्ति किं तव अस्ति (तेरे पास क्या है, तेरे पास क्या है) यही किंतव कितव हो गया। जज्झतीः शब्दके निर्वचनमें - जज्झतीरापो भवन्ति शब्दकारिण्यः जज्झती जलका वाचक है तथा यह शब्दानुकृति पर आधारित है। जब जल बरसता है तब जज्झ जज्झ शब्द होता है इस शब्दानुकरण पर ही जज्झतीः शब्द बना।[८] दुन्दुभिः एक वाद्यका नाम है। यास्क इसके सम्बन्ध में कहते हैं - दुन्दुभिरिति शब्दानुकरणम्, दुन्दुभ्यतेर्वा स्याच्छन्दकर्मणः[९] अर्थात् दुम्, दुम् शब्द करनेके कारण दुन्दुभि नाम पड़ा। दुन्दुभि बजाने पर इससे दुम् दुम् की ध्वनि निकलती है अथवा शब्दार्थक दुन्दुभ्य धातुसे दुन्दुभि शब्द बना है।

उपर्युक्त विवेचनोंसे स्पष्ट है कि यास्क कुछ शब्दोंके निर्वचनमें स्पष्ट ही शब्दानुकरणके आधारको अपनाते हैं। संस्कृत साहित्यमें बहुत सारी क्रियाएं प्रचलित हैं जो ध्वन्यनुकरण पर ही आधारित हैं। खट्खटायते आदि क्रिया पदमें खट्-खट् ध्वनि करनेकी प्रधानता स्पष्ट है।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. निवासात् कर्मणो रूपान् मंगलाद्वाच आशिषः।। यदृच्छयोपवसनात् तथाऽऽमुष्यायणाच्च यत्।।- वृ.दे. १।२५, २. नि. ३।४, ३. स हि काकु काक्विति वाश्यते तस्मात्स काक इत्युच्यते- नि.दु.वृ. ३।४, ४. नि. ३।४, ५. नि. ३।४, ६.

भाषा विज्ञान (भो.ना. ति.) पृ. ३३, ७. नि. ५।४, ८. नि. ६।३, ९. नि. ९।२

(ड.) सादृश्य एवं यास्कके निर्वचन

सादृश्य शब्द समानका द्योतक है। सदृशका भाव सादृश्य कहलायेगा। सदृश होनेके कई आधार हैं जिनमें गुण, कर्म, रूप, ध्वनि आदि सादृश्य प्रधान रूपमें आते हैं। यास्कने उपमा शब्दके विवेचनमें आचार्य गार्ग्यके मतका उल्लेख किया है। पुनः गार्ग्यने उपमा शब्दके प्रसंगमें सदृश शब्दका उल्लेख किया है- अथात उपमाः। यदतत्तत्सदृशमिति गार्ग्यः।[१] अर्थात् उपमा वह है जो वह न हो लेकिन उसके समान मालूम पड़ता हो।[२]

संस्कृत साहित्यमें धर्मकी समानताको सादृश्य कहा गया है। उपमामें चार तत्त्व होते हैं- उपमान, उपमेय, साधारण धर्म एवं उपमा वाचक शब्द। हम किसी वस्तुकी उपमामें साधारण धर्मकी समानता अवश्य देखते हैं। अगर साधारण धर्म में समानता न हो तो वह उपमाके योग्य नहीं। पुरुष सिंहकी तरह शूर है। इस वाक्यमें पुरुष तथा सिंहकी शूरतामें सादृश्य होता है दोनोंकी एक सी स्थिति नहीं होती मात्र धर्मकी समानता होती है। उपमानके चयनमें हम ध्यान रखते हैं कि साधारण धर्ममें समानता हो। यह साधारण धर्म उपमान एवं उपमेयमें सामान्य रूप से स्थित रहे। यास्क धर्मकी समानताको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सिंह एवं व्याघ्र पूजा परक अर्थ रखते हैं। यथा-सिंहो देवदत्तः से देवदत्त सिंह सदृश वीरता गुणसे युक्त है, की प्रतीति होती है। इसी प्रकार पुरुषव्याघ्रका तात्पर्य पुरुष व्याघ्र के समान वीर है, द्योतित होता है। निन्दा परक अर्थमें श्वा एवं काकका प्रयोग सादृश्यके लिए चुना जाता है। लौल्य आदि दोषसे युक्त व्यक्तिको अयं श्वा तथा धृष्टता आदि दोषके चलते-अयं काकः कहते हैं।[३] श्वा में लौल्य दोष हैं तथा काक में धृष्टता आदि। इन दोषोंका सादृश्य यहां प्रतिविम्बित करनेके लिए पशु एवं पक्षियोंका सहारा लेते हैं जिससे स्थिति अत्यधिक स्पष्ट होती है।

निर्वचनमें भी यास्क सादृश्यको आधार मानते हैं।किसी शब्दके निर्वचनमें किसी प्रकारकी समानत हो सकती है। यह समानता गुण कर्म,रूप,ध्वनि आदिसे सम्बद्ध हो सकती है।यास्कविलक्षण अर्थको द्योतित करनेवाला अद्भुत शब्दका निर्वचन अभूत के सादृश्य पर करते हैं। अभूत् का अर्थ होता है जो नहीं हुआ है तथा अद्भुतमें भी कुछ इसी प्रकारकी बात होती है जिसके चलते हम उसे विलक्षण मानते हैं।[४] खल शब्दके

निर्वचनमें यास्क कहते हैं कि खल संग्रामका भी वाचक है तथा खलिहानका भी। खलते र्वा स्खलतेर्वा।[५] अर्थात् खल शब्द मथनार्थक खल् धातु से या हिंसार्थक स्खल् धातुसे निष्पन्न होता है संग्राममें शत्रु मथे जाते हैं या शत्रुओं की हिंसा होती है इसी प्रकार खलिहानमें भी अन्न मथे जाते हैं या चूर-चूर किए जाते हैं। यहां अर्थ सादृश्य स्पष्ट है। कपिंजल शब्दके निर्वचनमें - कपिरिव जीर्णः तथा कपिरिव जवते[६] कहा गया है। इसके अनुसार कपिंजल शब्दमें रंगसादृश्य एवं गति सादृश्य स्पष्ट है। कपिंजलका वर्ण वृद्ध कपिके तुल्य होता है तथा उसकी गति भी कपिके समान होती है। अकूपारका अर्थ सूर्य एवं समुद्र होता है। निरुक्तके अनुसार अकूपारो भवति दूरपारः, अकूपारो भवति महापारः।[७] सूर्य बड़े रास्तेको पार करने वाला होता है समुद्र भी बड़ा पार वाला होता है। यहां समुद्र अर्थ सूर्यके सादृश्य पर आधारित है। हर शब्द हृ धातुसे निष्पन्न होता है जिसका अर्थ होता है हरण करना। ज्योति, उदक, लोक तथा रुधिरको हर कहा जाता है। ज्योति अन्धकारको हरण करती है जलको मनुष्यादि आहरण करता है, लोक पुण्य क्षीण होने वाले मनुष्योंको स्वर्गसे हरण करता है तथा रुधिर क्षीणताको हरण करता है। दिनको भी हर कहा जाता है क्योंकि यह अन्धकारको हरण करता है।[८] यहां कर्म सादृश्य स्पष्ट है।

स्कन्ध शब्दके निर्वचनमें -स्कन्धो वृक्षस्य समास्कन्नो भवति। अयमपीतरः स्कन्ध एतस्मादेव आस्कन्नं काये।[९] वृक्षका स्कन्ध (डाल) वृक्षसे लगा होता है। शरीरका कन्धा भी इसी सादृश्यके कारण कन्धा कहलाता है क्योंकि वह शरीर पर लगा हुआ होता है। ऊधः का अर्थ गौ का थन तथा रात्रि दोनों होता है। गो का थन दूध देता है तथा रात्रि ओसको देती है। रसके देनेकी समानताके चलते रात्रिको ऊधः कहा जाने लगा।[१०] शाखा वृक्ष की डाल एवं वंश दोनो का वाचक है जिस प्रकार शाखायें फैलती हैं, उसी प्रकार संतान आदि रूप वंशभी फैलता है। नैचाशाख शब्दके निर्वचन प्रसंगमें यास्क इसे स्पष्ट करते हैं।[११] यहां भी सादृश्य स्पष्ट है।

ककुप् उष्णिक् छन्दका एक भेद है। इस छन्दके मध्य स्थित पादोंमें कुछ वर्ण अधिक होते हैं परिणाम स्वरूप यहछन्द मध्यसे ऊपर कुछ उभरासा होता है।बैल या सांढके पीठके ऊपरके भागको भी ककुप् कहतेहैं क्योंकिउसका भी बीचकाभाग उभरा होता है। यहां दोनोंमें सादृश्य स्पष्ट है।[१२] दस्युका अर्थ अवर्षण है। अवर्षणमें रस नष्ट हो जाते हैं। पुनः दस्यु शब्दके सम्बन्धमें कहा गयाहै कि अवर्षण सभीशुभ कर्मोंकोनष्ट

कर देता है।[१३] अर्थात् अवर्षणके चलते शुभ कर्म करनेकी क्षमता नष्ट हो जाती है। इसी नष्ट करनेकी क्षमताके कारण दस्यु शब्द शत्रु, मेघ तथा वृत्रके लिए प्रयुक्त हुआ है।[१४] सम्प्रति दस्यु डाकू अर्थको अभिव्यक्त करता है। डाकूमें भी नष्ट करना गुण सादृश्य है। सिनीवालीका अर्थ देवपत्नी तथा अमावास्याका पूर्व भाग है। सिनीवालीका शाब्दिक अर्थ प्रशस्त अन्न वाली या प्रशस्त पर्व वाली है। सिनीवालीके दो अर्थ सादृश्यके ही परिणाम हैं।[१५] किंशुकका अर्थ पलाश पुष्प होता है। निरुक्तमें किंशुक चमकीलाके अर्थ में भी प्रयुक्त है। किंशुक शब्दका निर्वचन प्रकाशनार्थक कुंश् धातुसे माना गया है। सूर्य रश्मिके विशेषणके रूपमें भी किंशुक शब्दका प्रयोग हुआ है।[१६] निश्चय ही यहां रूप सादृश्य है।

इस प्रकार यास्कके निरुक्तमें अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके निर्वचनमें सादृश्य का सहारा लिया गया है। वस्तुतः अर्थ बोधके कारणोंमें सादृश्यकी भी मान्यता है। अर्थ प्रकाशनार्थ ही निर्वचन किए जाते हैं।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि. ३।३, २. यत्किंश्चिदर्थजातंतदपि तत् सरूपं भवति- नि.दु.वृ. ३।३, ३. नि. ३।४, ४. नि. १।२, ५. नि. ३।२, ६. नि. ३।४, ७. नि. ४।३, ८. नि. ४।३, ९. नि.६।४, १०. नि.६।४, ११. नि. ६।६, १२. नि. ७।३, १३. नि. ७।६, १४. नि. ५।२, १५. नि. ११।३, १६. नि. १२।१.

(च) इतिहास आदि आधार एवं यास्कके निर्वचन

इतिहास व्यतीत वृत्तोंका अन्वाख्यान है। निश्चय ही आजकी बातें भविष्य के लिए पुरानी हो जाती हैं। भूतकालके इतिवृत्तोंका भी अपना महत्त्व है। वे इतिवृत्त मानवके साथ किसी न किसी रूपमें सम्पृक्त रहते हैं। शब्दोंके प्रयोगमें मानव की ही मुख्य भूमिका होती है। अर्थाववोधके लिए मानव शब्दोंका आश्रय ग्रहण करता है। मानव द्वारा प्रयुक्त शब्द किसी न किसी रूपमें आधारान्वित होते हैं। उन आधारोंमें इतिहासका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। शब्दोंके निर्वचनके समय उसके अर्थको ध्यानमें रखना निर्वचनकारका प्रधान उद्देश्य होता है। कुछ शब्दोंके निर्वचनमें इतिहासका भी सहारा लेना पड़ता है। यास्कने निर्वचनके क्रममें इतिहासका सहारा लिया है।

निरुक्तके प्रथम अध्यायमें शक्वरी शब्दके निर्वचन क्रममें यास्क इतिहासका भी सहारा लेते हैं- शक्वर्यः ऋचः शक्नोतेः तद्यद् आभिर्वृत्रमशकद् हन्तुं तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वमिति विज्ञायते।[१] अर्थात् शक्वरी ऋचा को कहते हैं क्योंकियह शक् धातुसे

निष्पन्न है। इन्द्रने इन ऋचाओंसे ही वृत्रको मारा था। मार सकने के कारण ही इन ऋचाओंका नाम शक्वरी पड़ा। स्पष्ट है कि शक्वरी शब्दमें शक् धातुकी विद्यमानता ऐतिहासिक आधारसे युक्त है। इन्द्रके द्वारा वृत्रके वध की कथा सर्वविदित एवं आगमोक्त है। यह आजके लिए भी ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। यास्कके कालमें भी यह कथा ऐतिहासिक थी। फलतः यास्कने इस निर्वचन में ऐतिहासिक आधार को अपनाया।

द्वितीय अध्यायमें शन्तनु शब्दके निर्वचन प्रसंगमें इतिहासकी चर्चा है।[१] वृत्र शब्दके निर्वचनमें यास्क कहते हैं तत्त्वृत्रः ?...त्वाष्ट्रोऽसुर इतीतिहासिकाः[२] अर्थात् ऐतिहासिकोंका कहना है कि त्वष्टाका अपत्य असुर ही वृत्र है। निश्चय ही ऐतिहासिकोंका कथन ऐतिहासिक आधारसे अन्वित होता है। यहां वृत्रको त्वष्टाका अपत्य माननेमें पूर्ण ऐतिहासिकता है। विश्वामित्र शब्दका भी इतिहास प्राप्त होता है। वे गिजवनके अपत्य राजा सुदासके पुरोहित थे।[३] पुनः यहीं पर गिजवनको गैजवनका पुत्र बताकर इतिहासके महत्त्वको स्थिर रखा है। कुशिक शब्दके संबंध में कहा गया है कि कुशिक नामके एक राजा हुए जो अच्छे कार्योंके सम्पादनार्थ चिल्लाते रहते थे। फलतः कुश (चिल्लाना) से कुशिक शब्द माना गया। पुनः उनमें धनोंके प्रकाशन करनेके कारण प्रकाशित करने अर्थवाले कुश् धातुसे कुशिक शब्द माना गया। अथवा वह धनों का प्रचुर दाता था।[४]

मनुष्यको मनु या मनुष का अपत्य कहा गया है।[५] भृगु को ज्वालामें उत्पन्न होने वाला कहा गया है। भृगुका अर्थ है जो भुना हुआ शरीर वाला न हो। ज्वालामें उत्पन्न होनेके बाद भी उनका शरीर भुना नहीं था। अंगारोंके शान्त होने पर अंगिरा ऋषि उत्पन्न हुए।[६] वैखानस शब्द विशेष रूपमें स्थानको खोदनेके कारण प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार भरण क्रियाके चलते भारद्वाज शब्द प्रसिद्ध है। ये सभी शब्द ऋषि वाचक हैं जिनमें किसी न किसी रूपमें इतिहास छिपा है।[७]

चतुर्थ अध्यायमें अदितिशब्दके सम्बन्धमें कहा गया- अदितिरदीना देवमाता[८] अर्थात् दीन न हुई देवोंकी माता अदिति है। यह अर्थ ऐतिहासिकोंका है। अदिति शब्दमें देवमाताके अदीन होनेका इतिहास स्पष्ट होता है।[९]

षष्ठ अध्याय के नासत्यौ,[१०] कुरुंग,[११], शिरिम्बिठः,[१२] पराशर[१३] आदि शब्द ऐतिहासिक आधार रखते हैं।

सप्तम अध्यायमें त्रिष्टुप्[१४] तीन वार स्तवन किया गया है के आधार पर तथा

जगती[१५] को प्रजापतिने हर्षक्षीण होते हुए बनाया, कहा गया है जो शब्दके अर्थानुसंधानमें ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

नवम अध्यायमें वितस्ताके सम्बन्धमें कहा गया है कि वैदेहक नामकी अग्निने सबोंको जला दिया, केवल वितस्ता ही नहीं जली। फलतः इसका नाम अविदग्धा पड़ गया। यह अविदग्धा ही कालान्तरमें वितस्ताके नामसे विख्यात हो गयी। पुनः विपाशाके सम्बन्धमें कहा गया है कि विपाट नदीमें वशिष्ट ऋषि जब पाशोंसे जकड़ कर डूब रहे थे तो इसने उनके पाश खोल डाले थे इसी विपाशनके चलते उसका नाम विपाशा हो गया।[१६] वितस्ता एवं विपाशाके इन निर्वचनोंके पीछे निश्चित ही ऐतिहासिक आधार है।

दशम अध्यायमें रूद्र शब्दके सम्बन्धमें यास्क ऐतिहासिक आधारको उपस्थापित करते हैं। रूद्रने प्रजापति ब्रह्माको वाणसे बींध दिया, बादमें वह उसका शोक करता हुआ रो पड़ा। फलतः रूद्र नाम सार्थक हुआ। रूद्र शब्द में रूद् रोदने धातु का योग एतदर्थ भी सार्थक है।[१७] रूद्रके सम्बन्धमें उपर्युक्त इतिहास कठशाखासे उद्धृत किया गया है। मैत्रायणी शाखासे भी इसका समर्थन प्राप्त होता है।[१८]

एकादश अध्यायमें सरमाशब्दका निर्वचन प्राप्त होता है। निरुक्तकार सरमाको माध्यमिक वाणी मानते हैं तथा ऐतिहासिक लोग इसका अर्थ देवशुनी करते हैं।[१९] सृ गतौ के कारण सरमा शब्द बना। देवशुनी सरमाने पणियोंके द्वारा पर्वतकी गुफाओंमें छिपाकर रखी गयी वृहस्पतिकी गायोंको वहां जाकर पता लगाया।[२०] फलतः सरमा शब्दमें यह ऐतिहासिक आधार स्पष्ट होता है। देवों एवं ऋषियों ने चतुर्दशी से मिले हुए पूर्णमासी के पूर्वभागको अनुमति कहा है। देवों एवं ऋषियोंकी इस अनुमतिके कारण ही इसका नाम अनुमति पड़ा।[२१] इसकी ऐतिहासिकता स्पष्ट है।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि यास्कने कुछ शब्दोंके निर्वचनमें ऐतिहासिक आधारको अपनाया है।

निरुक्तमें निर्वचनके प्रसंगमें भौगोलिक एवं व्यावहारिक आधारको भी अपनाया गया है। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य आधार अपनाये गये हैं। कम्बोजा,[२२] शव,[२३] दात्र,[२४]नाकः,[२५]नमः,[२६]पाणि[२७]आदि शब्दोंमें भौगोलिक एवं व्यावहारिक आधार हैं। श्मशान,[२८] अंगुलिः[२९],आदि शब्द सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक आधार पर आधारित हैं।शकुनि शब्दमेंभी सांस्कृतिक आधार है।वृहस्पति,[३०]ब्रह्मणस्पति,हिरण्यगर्भ,विश्वकर्मा,[३१] हिरण्यस्तूप,प्रजापति[३२] आदिशब्दोंमें सामासिक आधार प्रधान है।कलि[३३] शब्द में

धार्मिक आधारका सहारा लिया गया है। इस प्रकार देखा जाता है कि यास्कके निर्वचन विविध आधारों से सम्बद्ध हैं।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि. १।३, २. नि. २।३, ३. नि. २।५, ४. नि. २।७, ५. नि. २।६, ६. नि. ३।२, ७. नि. ३।३, ८. नि.४।४, ९. नि.दु.वृ.४।४, १०. नि. ६।३, ११. नि. ६।४, १२. नि.६।६, १३. नि.६।६, १४. नि. ७।३, १५. नि. ७।३, १६. नि. ९।३, १७. नि. १०।१, १८. नि.दु.वृ. १०।१, १९. नि. ११।३, २०. ऋ. १०।१०८।१, २१. नि.११।३, २२. नि.२।१, २३. नि.२।१, २४.नि.२।१, २५. नि.२।४, २६. नि. २।४, २७. नि. २।७, २८. नि. ३।१, २९. नि. ३।२, ३०. नि. १०।१, ३१. नि. १०।३, ३२. नि.१०।४ ३३. नि.११।१.

षष्ट अध्याय

निघण्टु वैदिक शब्दोंका समाम्नाय है। यह एक सर्व प्राचीन वैदिक शब्दकोष है[१] जो तीन काण्डोंमें विभाजित है :-

(१) नैघण्टुक काण्ड, (२) नैगम काण्ड तथा (३) दैवत काण्ड।

निघण्टुका नैघण्टुक काण्ड तीन अध्यायोंमें विभाजित है निघण्टुके प्रथम अध्यायमें ४१४,द्वितीय अध्याय में ५१६तथा तृतीय अध्याय में ४१० नाम परिगणित हैं। इस प्रकार नैघण्टुक काण्डके कुल परिगणित नामोंकी संख्या ४१४ ₹ ५१६ ₹ ४१०$_{८}$ १३४० है।

निघण्टुके प्रथम अध्यायके अन्तर्गत परिगणित पदोंकी व्याख्या निरुक्तके द्वितीय अध्यायमें की गयी है। निघण्टुके प्रथम अध्यायमें यद्यपि ४१४ पद परिगणित हैं लेकिन इन सारे पदोंकी व्याख्या निरुक्तमें नहीं हुई है। निरुक्तके द्वितीय अध्यायमें कुल १५० शब्द व्याख्यात हैं जिनमें कुछ प्रसंगतः प्राप्त भी हैं।

निघण्टुके द्वितीय अध्यायमें ५१६ नाम परिगणित हैं, जिनकी व्याख्या निरुक्तके तृतीय अध्यायके प्रथम एवं द्वितीय पादमें की गयी है। प्रथम एवं द्वितीय पादमें मात्र ५४ शब्दोंकी व्याख्या हुई है। इनमें कुछ शब्द प्रसंगतः प्राप्त भी हैं।

निघण्टुके तृतीय अध्यायकी व्याख्या निरुक्तके तृतीय अध्यायके तृतीय एवं चतुर्थ पादोंमें की गयी है। निघण्टुके ४१० शब्द निरुक्तमें व्याख्यात न होकर कुछ ही शब्द व्याख्यात हैं। तृतीय एवं चतुर्थ पादोंमें कुल ७५ शब्द व्याख्यात हैं जिनमें कुछ प्रसंगतः प्राप्त भी हैं।

(क) निरुक्त के प्रथम अध्याय के निर्वचनों का मूल्यांकन

निरुक्तका प्रथम अध्याय निरुक्तकी भूमिका है। निघण्टुके शब्दोंकी व्याख्या तो द्वितीय अध्यायसे आरंभ होती है। प्रथम अध्यायमें प्रसंगतः आये कुछ शब्दोंकी व्याख्याकी गयी है।-इस अध्यायमें कुल ५३ शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं। प्रसंगतः आये शब्दोंकी व्याख्या करना यास्ककी निर्वचन प्रियताका प्रमाण है। यास्क मूल रूपमें निर्वचनकार हैं परिणामतः वे अर्थोंकी खोजमें निर्वचनको ही आधार मानते हैं। यहीं कारण है कि इनके निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिसे प्रायः उपयुक्त हैं। यद्यपि इनके कुछ निर्वचन अर्थकी दृष्टिसे आज असंगत लगते हैं इसका कारण उन शब्दोंके अर्थोंमें किंचित् या पूर्ण परिवर्तन हैं। अर्थ परिवर्तनभी भाषा विज्ञान के द्वारा मान्य है। यास्कके समयमें कुछ शब्दोंके जो अर्थ थे वे या तो आज गौण हो गये हैं या पूर्णतः बदल गये हैं।

प्रथम अध्यायमें परिगणित निर्वचनोंको भाषा वैज्ञानिक आधार पर निम्नलिखित रूपमें देखा जा सकता है:-ध्वन्यात्मक आधार पर पूर्णतः आधारित निर्वचनोंमें - राजा, आचार्य; वयाः, शाखा, द्युः, दक्षिणा, शक्वरी, ब्रह्मा, आस्यम् दध्न, दंश आदि परिगणित हैं। आंशिकं ध्वन्यात्मकतासे युक्त स्तोक सिकता आदि है। अर्थात्मक महत्त्व रखने वाले निर्वचनों में ध्वन्यात्मक महत्त्व वाले निर्वचनों के अतिरिक्त निघण्टु, कुल्माष, श्वः, ह्य, गायत्री, अध्वर्यु, अक्षि, कर्ण आदि आते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे चित्तम्, वरः, मघः, भगः, वृहत्, ब्रह्मा, अध्वर्यु, हृदः, गिरः, सुरा, पृथिवी, स्थाणु, अर्थ, धातु दंश, भीम, भीष्म, वारवन्तम्, गिरि, गिरष्ठा, पर्व, पर्वत आदि सर्वथा संगत है। अक्षि एवं कर्ममें दृश्यात्मक आधार अपनाये गये हैं। इन निर्वचनोंको आकृति प्रधान निर्वचन भी कहा जा सकता है। अद्भुतमें सादृश्य तथा शक्वरीमें ऐतिहासिक आधार हैं। अश्व आख्यातज सिद्धान्त पर पूर्णतः आधारित है। नरक शब्द में कल्पना की प्रधानता तथा अतिप्राकृत तत्त्वकी ओर संकेत है। अन्यः अर्थ परिवर्तनको स्पष्ट करता है। भाषा विज्ञानके अनुसार अन्यः हस्तः, वीरः, सीमा, अवसम्, त्विषि एवं शिशिरको पूर्ण संगत नहीं माना जा सकता।

प्रथम अध्यायके निर्वचनोंका समीक्षण :-

(१) निघण्टुः- निघण्टु शब्दके निर्वचनमें आचार्य औपमन्यवका कहना है कि यह शब्द निगम् धातुसे बना है।नि का अर्थ होता है निश्चयेनतथा गम् गतौ धातु है।

नि निश्चयेन गमाः निगूढ़ार्था एते परिज्ञाताः सन्तो मन्त्रार्थान् गमयन्ति।[२] अर्थात् ये निश्चित रूपमें मन्त्रोंके अर्थोंको बोध कराने वाले होते हैं। मंत्रार्थ बोधकी सिद्धि में उनका कहना है कि वे शब्द वेद मंत्रोंसे चुन-चुन कर संग्रह किए गए हैं।[३] वे ही निःगम् धातुसे निष्पन्न निगमनके कारण निगन्तु होते हुए निघण्टु कहलाये।
निगमयितृ-निगन्तृ- निगन्तु-निघन्तु०ग के स्थान में घ
निगन्तु-निघन्टु-निघण्टु- त के स्थान में ट एवं णत्व।

आचार्य यास्कके अनुसार यह शब्द आहनन क्रिया योग से निष्पन्न होता है- 'आहननादेव स्युः समाहता भवन्ति'[४] आहनन क्रियाके योगसे निष्पन्न होने में इनका तर्क है कि वे शब्द भली प्रकार क्रम पूर्वक कहे गये हैं। सम् + आ+ हन्, समाहन्तृ-समाहन्तु-नि+ आ+ हन्तु (सम् उपसर्ग के स्थान पर नि उपसर्ग का व्यत्यय आ की अविद्यमानता का अध्याहार), निहन्तु-निघण्टु (ह के स्थान में घ तथा त के स्थान में ट का परिवर्तन एवं णत्व)

यास्क निघण्टु शब्दके निर्वचनमें एक और विकल्प देते हैं। जिसके अनुसार इसका अर्थ होता है कि ये शब्द वेद मन्त्रोंसे एकत्र किए गये हैं। वेद मन्त्रों से शब्दों का चयन औपमन्यवके विचारसे मेल खाता है। 'यद्वा समाहृता भवन्ति'[४] इस विकल्प में सम+ आ+ हृ प्राप्त होता है। समाहर्तु-समाहर्तृ-नि+ आ+ हर्तृ- (सम् उपसर्ग के स्थान पर नि उपसर्ग व्यत्यय) समाहर्तृ (आ की अविद्यमानताका अध्याहार (आ का लोप) निघण्टु (ह एवं त का क्रमशः घ एवं ट में परिवर्तन णत्व)। निघण्टु शब्दके निर्वचनमें तीन प्रकारकी वृत्तियां प्राप्त होती हैं, अति परोक्ष वृत्ति, परोक्षवृत्ति एवं प्रत्यक्षवृत्ति। प्रत्यक्षवृत्तिमें धातु स्पष्ट रहता है, परोक्षवृत्तिमें वह सामान्य प्रयोगसे भिन्न हो जाता है तथा अतिपरोक्षवृत्तिमें धातु का पता नहीं चलता। यहां निगमयितृ प्रत्यक्षवृत्ति, निगन्तु परोक्षवृत्ति तथा निघण्टु अतिपरोक्ष वृत्ति है[५] आचार्य औपमन्यवके सिद्धांतसे स्पष्ट होता है कि शब्दोंके विकासकी कुछ दशाएं होती हैं। परिणामतः उच्चारण सम्बन्धी व्यवधान एवं आदतोंके चलते शब्दोंका मूल रूप कभी स्पष्ट होता है कभी अर्ध स्पष्ट एवं कभी अस्पष्ट। निर्वचनकी उपर्युक्त तीनों वृत्तियां इसी ओर संकेत करती है कि निगमयितृ से निगन्तु शब्द ही परिस्थितियों के परिणामस्वरूप निघण्टुमें परिणत हो गया। व्याकरणके अनुसार इसे नि+घण्ट्+कु = निघण्टु शब्द बनाया जा सकता है।

(२) आचार्य :- आचार्य इसलिए कहा जाता है, क्योंकि वह आचार (उपदेश)

को ग्रहण कराता है। छात्रोंको सदाचारकी शिक्षा देने वाला आचार्य कहलाता है- 'आचार्यः आचारं ग्राहयति'[७]। पुनः आचार्यके संबंधमें यास्कका कहना है कि वह अर्थोंका चयन करता है। छात्रोंको पदार्थोंसे अवगत कराने वाला आचार्य है :- आचिनोत्यर्थान्''[३]। अन्तिम निर्वचन प्रस्तुत करते हुए आचार्य यास्क स्पष्ट करते हैं कि आचार्य छात्रोंमें बुद्धिका संचय करता है अर्थात् छात्रोंकी बुद्धिमें अभिवृद्धि करता है:-'आचिनोति बुद्धिमितिवा'[८]।

यास्कके उपर्युक्त प्रथम निर्वचनमें आ+चर् धातु तथा शेष दोनों में आ+चि धातु है। इनका प्रथमनिर्वचन व्याकरणकी दृष्टिसे भी उपयुक्त है क्योंकि इसमें चर् धातुका योग है। शेष दोनों निर्वचन अर्थात्मक आधार रखते हैं। आचार्यका अर्थ मंत्रोंकी व्याख्या करने वाला भी होता है। मनुस्मृतिके अनुसार उपनीत शिष्योंको सांग एवं सरहस्य वेदाध्यापन करने वाला आचार्य कहलाता है।[९]

निरुक्त प्रतिपादित आचार्यकी व्याख्या वायु पुराणके वर्णन से साम्य रखता है।[१०] व्याकरणके अनुसार आ+चर+ण्यत् से आचार्य बनाया जा सकता है। भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे यास्कका प्रथम निर्वचन उपयुक्त है क्योंकि इसमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति है। शेष दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है।

(३) कुल्माष :- कुल्माषका अर्थ निम्न श्रेणीका अन्न होता है, जिसे लोकभाषामें कुलथी कहते हैं। माष का अर्थ उरद भी होता है। इस आधार पर इसका अर्थ होगा खराब उरद। यास्कके अनुसार कुल्माष अपने कुलों (अन्न समुदायों) में निम्न श्रेणीका होता है-'कुलेषु सीदन्ति'[११] इस निर्वचनमें मात्र अर्थात्मक आधार है। यास्कका यह निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण है। कोष ग्रन्थोंमें कुल्माषको यावक भी कहा गया है।[१२] इसी आधार पर कुल्माषका अर्थ होगा अधसूखा जौ। इसे कुत्सितो माषः + कुल्माषः भी किया जा सकता है। व्याकरण के आधार पर कुलं मस्यति-कुल + मसी परिमाणे+ अर्च् =कुल्माषः। कुल्माष का अर्थ कांजी भी होता है।[१२] कुलं मषतीति कुल्माषम्। कुल + मष् हिंसायाम् +अण्।[१३] कुल्माष शब्दमें आज अर्थ संकोच हो गया है। खराब अन्नके लिए प्रयुक्त कुल्माष शब्द आज उरद, कुलथी तक ही सीमित हो गया है। पाणिनिके कालमें भी कुल्माष अन्नका ही वाचक था।[१४] यास्कके समय इसका अर्थ कांजी नहीं था।

(४) वयाः-इसका अर्थ शाखा होता है।इसके निर्वचनमें यास्क 'वी'धातुकासंकेत करते हैं-'वेतेः'वातायना भवन्ति'[१५] अर्थात् गत्यर्थक'वी' धातु से यह शब्द बना है क्योंकि यह वातायन (हवा का स्थान) होता है। शाखा हवासे डोलती रहती है। वी

गतौ धातुसे वयः माना जा सकता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृत में वयः शब्द पक्षीका वाचक है।[१६] व्याकरणके अनुसार इसे वीगतौ + असुन्[१७] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। वैदिक संस्कृतसे लौकिक संस्कृत तक वयः शब्दमें अर्थादेश पाया जाता है।

(५) शाखा :- शाखा वृक्षकी डालको कहते हैं। यास्कके अनुसार यह आकाशमें शयन करने वाली होती है- `खशया भवन्ति'[१८] ख = आकाश, शया = शयन करने वाली। खशया से शाखा मानना वर्ण विपर्ययका परिणाम है ख+शीङ् = शीङ् +ख`=शाखा।`यास्क उसके लिए पुनः एक निर्वचन प्रस्तुत करते हैं- `शक्नोतेर्वा'[१९] अर्थात् सम्यक् योगवाली शक् धातुसे यह शब्द बनता है। शक्-शख् -शाखा। आकाशस्थ शाखा जड़से भोजन ग्रहण करनेमें समर्थ होती है या शाखायें फैलने वाली होती है। शक् धातुसे शाख शब्द ध्वन्यात्मक आधार रखता है। अर्थात्मक दृष्टिकोण से `खशया' से शाखा मानना अधिक उपयुक्त है। शाखाके कई अर्थ अभिप्रेत हैं। यह वृक्षकी डाल के अतिरिक्त वेदांश, भुजा, पक्षान्तर एवं अन्तिकके लिए भी प्रयुक्त होता है।[२०] व्याकरणके अनुसार शाखृ व्याप्तौ + अच् + टाप् = शाखा बनाया जा सकता है। शाख्यते वृक्षोऽनया।

(६) द्यु :- दिनके नामको द्युः कहते हैं[२१] यास्कके अनुसार दिन प्रकाशित होता है इसलिए इसे द्युः कहते हैं- `द्योतते इति सतः'[२२]। द्यु शब्दमें द्युत् द्योतने धातुका योग है। फलतः इसका अर्थ होगा चमकने वाला। द्युत् धातु से द्युः शब्द ध्वन्यात्मक आधार रखता है। अर्थ विज्ञानकी दृष्टिसे भी यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे द्यु + क्विप् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यास्कके अनुसार `द्यु' एक लोकका भी वाचक है। तीन प्रकारके देवताओंमें द्यु स्थानीय देवता भी आते हैं। लोक वाचक द्यु शब्द भी इसी द्युत् धातुसे बनेगा। क्योंकि यह लोक भी प्रकाशमान है। द्यु धातुसे द्युः शब्द मानना अधिक संगत होता क्योंकि यास्क दिद्युत् शब्दमें द्यु धातुकी स्थिति मानते हैं। निर्वचन प्रक्रियासे यास्कका यह निर्वचन पूर्णतः ठीक है। अंग्रेजी भाषा का Day शब्द इसके निकट है जिसमें अर्थात्मक एकता भी है।

(७) श्वः- इसका अर्थ होता है `आने वाला कल'। इसे परेद्युः भी कह सकते हैं। यास्क ने इसे उपाशंसनीय काल कहा है अर्थात् यह आशा करने लायक समय होता है-`श्वःउपाशंसनीयः कालः'[२२]इस शब्दमें शंस् धातुका योग मानागया हैशंस्-श्वःऐसेशब्दोंका निर्वचन प्रस्तुत करना यास्ककी अपनी विशेषता है.पाणिनीय व्याकरणके

अनुसार इसे अव्यय माना गया है। इस निर्वचनमें आंशिक ध्वन्यात्मकता है। आर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जाएगा।

(८) ह्य :- इसका अर्थ है व्यतीत कल।[२३] इसे पूर्वेद्युः भी कहा जा सकता है। यास्कने भी इसे बीता हुआ समय माना है।- `ह्यः हीनः कालः'[२४]। ह्यः शब्द में `हा' परित्यागे धातुका योग है-हा-ह्यः। इस निर्वचनका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार यह अव्यय शब्द है।

(९) अद्भुतम् :- अद्भुतका अर्थ आश्चर्य या विचित्र होता है। यास्कके अनुसार उसका अर्थ होगा जो नहीं हुआ है- `अभूतमिव'[२५] अभूतके समान ही अद्भुत भी अर्थ रखता है। अद्भुत शब्दमें अ + भू का योग है। व्याकरणकी दृष्टिसे अत् आश्चर्य अर्थ प्रकट करने वाला अव्यय है। भू धातु तथा डुतञ् प्रत्ययके योगसे अत् + भू + डुतञ् = अद्भुतम् शब्द बनता है।[२६] भाषा विज्ञानके अनुसार इसमें व्यंजनगत औदासिन्य है। यह निर्वचन अर्थसादृश्यका परिणाम है।

(१०) अन्य :- यास्कके अनुसार इसका अर्थ होता है अनेक विचारवाला, या अस्थिर बुद्धिवाला-`नानेयः'[२५] न + आनेय=नानेयः के अनुसार इसका अर्थ होगा जो लाने योग्य नहीं हो[२७] अर्थात् नीच। वर्तमान समयमें अन्यका अर्थ दूसरा, भिन्न, इतर आदि होता है। वैदिक कालीन अर्थसे निश्चय ही ये अर्थ भिन्न हैं। इस शब्दमें आज अर्थ परिवर्तन हो गया है। यास्कके अनुसार अन्यः शब्दमें `नी' धातुका योग है- न-अ + नी धातु = अन्यः। इसका ध्वन्यात्मक आधारपूर्ण संगत नहीं है। व्याकरण के आधार पर अन् प्राणने धातुसे यः ष्ट्रप्रत्यय[२८] करने पर अन्यः शब्द बनता है। जिसका वर्तमान कालीन अर्थ अलग, दूसरा या भिन्न आदि होता है। यास्कके उपर्युक्त निर्वचनमें अर्थात्मकता भी पूर्ण स्पष्ट नहीं है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह निर्वचन अपूर्ण माना जायेगा।

(११) चित्तम् :- चित्त का अर्थ मन होता है। यास्कके अनुसार जिससे वस्तुको जाना जाता है वह चित्त कहलाता है। `चित्तं चेतते:'[२९] अर्थात् चित्त शब्दमें चित्संज्ञाने धातुका योग है। चित् से चित्तं शब्द ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे संगत है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे चितिसंज्ञाने धातुसे क्त प्रत्यय करने पर बनाया जा सकता है।

(१२) वरः:- इसका अर्थ होता है,अच्छा,कल्याण कारक आदि। निरुक्तके अनुसार इसका अर्थवरण करनेलायक होता है।`वरो वरयितव्यो भवति'[३०]इस शब्दमें

वृ, वरणे धातु स्पष्ट है।[३१] यास्कके इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे इसे संगत माना जा सकता है। व्याकरणके अनुसार इसे वृञ् वरणे + अप् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यास्कने निरुक्तमें ही वरम् का अर्थ श्रेष्ठ तथा जलभी किया है। मेघ वाचक वराह: के लिए इनका कहना है कि वराहार: अर्थात् 'वरम् उदकम् आहारो यस्य'[३२]। इसके अनुसार वरम् का अर्थ जल होता है। वर: का प्रयोग विवाह योग्य पुरुषके अर्थमें भी पाया जाता है[३३] क्योंकि वह भी वरयितव्य होता है।

(१३) मघम् :- मघ का अर्थ धन होता है।[३४] यास्कके अनुसार मघम् का अर्थ है जो दान किया जाय- 'मंहते दानकर्मा'[३०] अर्थात् मघम् शब्दमें दानार्थक मंह् धातुका योग है। इसमें धातु स्थित ह का घ में वर्ण परिवर्तन हो गया है जो भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त है संस्कृत भाषाकी ख, घ, थ, ध एवं भ ध्वनियां प्राकृत भाषामें नित्य ह में परिवर्तित हो जाती है।[३५] इस प्रकार का ध्वनि परिवर्तन वैदिक भाषामें भी होता रहा है। अहन्-अघा,[३६] हन्-जघनम्, दुह्-दुघा, हन्-घन आदि इसी प्रकार के उदाहरण है। वैदिक भाषामें ह ध्वनि का ही घ में परिवर्तन देखा जाता है जबकि संस्कृत की घ ध्वनि प्राकृत में ह के रूप में परिवर्तित होती है। व्याकरणके अनुसार इसे मघि अच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(१४) दक्षिणा :- इसका अर्थ होता है जो समृद्ध करे। यास्क के अनुसार यह कर्म को समृद्ध करता है-'दक्षिणा दक्षते: समर्द्धयतिकर्मण:'[३७] यह शब्द समृद्धयर्थक दक्ष् धातु से निष्पन्न होता है। दक्षिणा ऋद्धिहीन को समृद्ध करती है-'व्यृद्धं समर्द्धयति'[३८] अपिवा प्रदक्षिणा गमनादिदशमभिप्रेत्य[३७] अर्थात् प्रदक्षिणा गमनसे दक्षिण दिशा को अभिप्रेत कर दक्षिणा बना। प्रदक्षिण में वायें से दायें जाया जाता है। दक्षिण हस्त के लिए उत्साहार्थक दक्ष् धातु यादानार्थक दाश् धातु यास्कको अभिप्रेत है।[३९] उत्साहार्थक-दक्ष् धातुके अनुसार प्रत्येक कर्ममें दक्षिण हाथ ही अधिक क्रियाशील होता है, ऐसा कहा जा सकता है। पुन: दाश् धातु के अनुसार दान दाहिने हाथ से दिया जाता है इसलिए दक्षिण शब्दमें दाश् धातुका योग है। दक्षिणा शब्दमें दक्ष् धातुका योग ध्वन्यात्मक दृष्टिसे सर्वथा उपयुक्त है। अर्थात्मक दृष्टिसे भी यह निर्वचन संगत है। सम्प्रति भी दक्षिणा यज्ञादि के अन्तमें यज्ञ सम्पादकों को यज्ञ सम्पादनार्थ दिए गए पुरस्कार या पारिश्रमिकका नामहै। व्याकरणके आधार पर दक्ष् धातु+ इनन् प्रत्यय[४०]+टाप् प्रत्यय= दक्षिणा शब्द बनाया

जा सकता है। अनेक निर्वचनोंकी उपस्थिति विविध अर्थके परिणाम हैं।

(१५) हस्त :- हस्त का अर्थ हाथ होता है। यास्कका कहना है कि हनन् क्रियामें शीघ्रता करने के कारण ही हस्त कहा जाता है-'हस्तोहन्तेः प्राशुर्हनने'[४१] हस्त शब्द हिंसार्थक हन् धातु से बना है। इस निर्वचनमें ध्वन्यात्मक संगति पूर्ण स्पष्ट नहीं है। संभवतः वैदिक कालमें हाथका प्रयोग हिंसाके लिए अधिक होता होगा। व्याकरणके अनुसार हस् विकासे धातुसे तन् प्रत्यय कर हस्त शब्द बनाया जा सकता[४२]है।

(१६) बृहत् :- इसका अर्थ होता है महान्, बड़ा। यास्कके अनुसार यह दृढ़ या मजबूत है इसलिए इसे बृहत् कहते हैं-'परिवृढं भवति'[४३] इस निर्वचनके अनुसार बृहत् शब्द में बृह् वृद्धौ धातुका योग है। क्योंकि बृह्+ क्त = बृढः होता है। यद्यपि यास्कने बृहत् शब्दके धातुका निर्देश स्वतंत्र रूपमें नहीं किया है, मात्र वे इसके अर्थको ही स्पष्ट करते हैं। तथापि परिबृढः शब्द बृह् धातुकी ओर संकेत करता है। इस आधार पर इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मक औचित्य भी स्पष्ट है। बृहत् का अर्थ आज भी सुरक्षित है। व्याकरणके अनुसार भी यह शब्द बृह् वृद्धौ धातुसे निपातनके द्वारा सिद्ध होता है।[४५]

(१७) वीर :- इसका अर्थ बलवान होता है। इसके संबंधमें यास्कका कहना है कि वह अमित्रों (शत्रुओं) को नष्ट करता है-'वीरो वीरयति अमित्रान्' वेते वा स्याद्गतिकर्मणः, 'वीरयतेर्वा'[४६]। वीरयति शब्दसे स्पष्ट है कि इसमें वि + ईर् गतौ धातु है। वि + ईर् = वीर। वेतेर्वा इत्यादि गत्यर्थक वी धातु की ओर संकेत करता है क्योंकि वीर शत्रुओं के सम्मुख अभिगमन करता है। अन्तिम निर्वचन वीरयते से वीर् विक्रान्तौ धातु स्पष्ट है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा- वीर पुरुष वीरता का आचरण करता है। वीर शब्दके लिए निरुक्तमें तीन निर्वचन उपलब्ध होते हैं। १- वि+ ईर,२- वी गतौ,३- वीर् विक्रान्तौ। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इन्हें संगत माना जाएगा। व्याकरणके आधार पर वीर शब्द वीर् विक्रान्तौ धातुसे अच्[४७] प्रत्यय लगाकर या वि + ईर् गतौ +कः प्रत्यय[४८] से या वी +रक्[४९] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यास्कके तीनों निर्वचन व्याकरण प्रक्रियाके अनुकूल हैं।

(१८) सीमाः- सीम् एक निपात है जो परिग्रह (सर्वत्र) अर्थ में या पदपूर्ति के लिए प्रयुक्त होता है। सीम शब्द में अ (सीम् + अ = सीम) अनर्थक है। सीमन् शब्द से सीम-सीमा शब्द बनता है। यास्कने सीमाका अर्थ मर्यादा किया है-'सीमा मर्यादा,

विषीव्यति देशाविति'[५०] इस शब्दमें षिञ् बन्धने धातुका योग है। यह दो स्थानोंको जोड़ने वाली होती है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। अत: भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। आज भी सीमाका अर्थ सरहद ही है। व्याकरणके अनुसार इसे षिञ् बन्धने धातुसे निपातन के[५१] द्वारा या अप्[५२] प्रत्यय कर सिद्ध किया जा सकता है।

(१९) गायत्री :- गायत्री वैदिक छन्दका नाम है। मंत्र विशेष भी गायत्रीके नामसे अभिहित होता है। निरुक्तके अनुसार यह स्तुति कर्ममें प्रयुक्त मंत्र विशेष है- 'गायत्रं गायते: स्तुति कर्मण:'[५०] गायत्र शब्दमें स्तुत्यर्थक गै धातुका योग है। यास्क गायत्रीके स्वरूपको आधार मानकर कहते हैं कि इसमें तीन चरण होते हैं[५३] 'त्रिगमना वा विपरीता'[५४]। गायत्री शब्द त्रिगमना- (त्रीणि गमनानि: यस्या सा) के कारण प्रसिद्ध हुआ। अथवा त्रि एवं गम् को विपरीत कर देने पर गम् + त्रि = गायत्री बना। प्रथम निर्वचन में गै धातु तथा द्वितीय एवं तृतीय में गम् धातु प्राप्त होते हैं। प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है द्वितीय एवं तृतीय निर्वचनोंमें गम् धातु मानने पर ध्वन्यात्मक औदासिन्य स्पष्ट होता है। अन्तिम दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यास्क ब्राह्मण ग्रन्थके निर्वचनको प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि वह गाते हुए ब्रह्माके मुखसे गिर पड़ी- गायतो मुखादुदपतत् इति च ब्राह्मणम्।'[५५] इस निर्वचनमें ऐतिहासिक महत्त्व सुरक्षित है। व्याकरण के अनुसार इसे गा+ त्रैङ् + क:[५६] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(२०) शक्वरी :- शक्वरी ऋचाको कहते है -'शक्वर्य: ऋच:, शक्नोते:'[५७] यह शब्द शक् धातुसे निष्पन्न होता है। अर्थ संगतिकरणमें यास्क ब्राह्मण वाक्यको उद्धृत करते हैं- 'तद् यद् आभि: वृत्रम् अशकद् हन्तुम् तत् शक्वरीणां शक्वरीत्वम्'[५७] अर्थात् जिन ऋचाओंसे वृत्र मारा जा सका, यही शक्वरियोंका शक्वरित्व है। अर्थात् इसी कार्य विशेषके चलते उसे शक्वरी कहा गया। उपर्युक्त निर्वचनमें शक् शक्तौ धातुका योग है। फलत: ध्वन्यात्मक दृष्टिकोण से यह उपयुक्त है। इस निर्वचनका अर्थात्मक आधार ऐतिहासिक है। व्याकरणके अनुसार इसे शक् शक्तौ + वनिप्[५८] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(२१) ब्रह्मा :- यज्ञ सम्पादनार्थ ब्रह्मानामका एक ऋत्विक्होता है,जो यज्ञकी सभीक्रियाओं एवं मंत्रोंका निरीक्षण करता है।वह चारों वेदोंका ज्ञाताहोता है।वह यज्ञमें

होने वाली कमीके लिए प्रायश्चित्का विधान करता है। वह सभी शास्त्रोंके अध्ययन से खूब बढ़ा रहता है।'[५९] `ब्रह्मा परिवृढ़ं भवति सर्वत:'[५७] इसमें बृह् वृद्धौ धातुका योग है, क्योंकि ब्रह्मा सभी ओर बढ़ा रहता है। बृढ़: शब्दमें बृह्+क्त प्रत्यय है। बृह् धातुसे ब्रह्मा शब्दमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक औचित्य है। फलत: भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार बृहि वृद्धौ + मनिन्[६०] = ब्रह्मन् ब्रह्मा शब्द बनेगा। (बृंहतिवर्धयति प्रजाइति)

(२२) अध्वर्यु :- अध्वर्यु का अर्थ होता है यज्ञकी मात्रा (स्वरूप) को निर्धारित करने वाला या यज्ञका नेता। ध्वरका अर्थ हिंसा होता है जिसमें हिंसा नहीं हो उसे अध्वर कहेंगे -(अ-ध्वर = अध्वर) यह यज्ञका पर्याय है। अध्वर्यु: एवं अध्वरयु: दोनों शब्द प्रचलित हैं। लोकमें अध्वरयु तथा वेदमें अध्वर्यु शब्दका प्रयोग प्राय: पाया जाता है। यास्कने इसके कई निर्वचन प्रस्तुत किए हैं :-

(क) `अध्वरं युनक्ति'[६१] इस आधार पर अध्वर्युका अर्थ होगा यज्ञको जोड़ने वाला। अध्वर (यज्ञ) +यु (बन्धने) = अध्वर्यु। इसमें अध्वर नाम पद है तथा यु तद्धित प्रत्यय। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। (ख) `अध्वरस्यनेता'[६१] इसके आधार पर इसका अर्थ होता है अध्वरका नेता। यज्ञ सम्पादनमें इसका प्रधान हाथ होता है। इसे यज्ञकी प्रक्रियाका संचालक भी कहा जा सकता है। इसमें अध्वरू नी प्राप्त होता है। नी प्रापणे धातु यु का अर्थापन्न है। अर्थात्मक दृष्टिसे ही इस निर्वचनका महत्त्व है। इसका ध्वन्यात्मक आधार संगत नहीं है। यहां अर्थात्मक संगतिके लिए यास्क ध्वन्यात्मक आधारकी उपेक्षा कर देते हैं। (ग) `अध्वरं कामयते इति'[६१] वह अध्वरकी कामना करता है इसलिए अध्वर्यु कहलाता है। यहां अध्वरू तत्कामते अर्थ में यु तद्धित प्रत्यय है। (घ) `अपिवा अधीयाने यु:'[६१] अध्ययन अर्थमें भी यु प्रत्यय होता है[६२]जो अध्वर्युमें लगाहै अध्वर + यु:= अध्वर्यु:यहांभी यु प्रत्यय है।

उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि यास्कने अध्वर + यु: में यु: को प्रथम निर्वचन में युज् धातुसे तृतीयमें तत्कामयते से तथा चतुर्थ में अधीयाने (तदधीते) के अर्थसे युक्त माना है। यु एक तद्धित प्रत्ययके रूपमें प्रचलित उपवन्ध है। इस आधार पर यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे (अध्वरमिच्छति) अध्वर + क्यष्- लोप[६३] +यु:[६४] = अध्वर्यु: या न + ध्वर+ अध्वर, ध्व = कौटिल्ये + विच्=ध्वर - ध्वरं याति यौतिवा मितद्रवादित्वात् डु:[६५]= अध्वर्यु: बनाया जा सकता है।

(२३) अक्षि :- इसका अर्थ आंख होता है। यास्कका कहना है कि इससे रूप देखा जाता है या रूपका भक्षण किया जाता है-`अक्षि चष्टे:'[६६] इसमें चक्षिङ् दर्शने या चक्ष् भक्षणे धातुका योग है। इस निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। अक्षि शब्दके निर्वचन में यास्क आचार्य आग्रायणके सिद्धांतका प्रतिपादन करते हैं। तदनुसार अक्षि शब्द अंज् (प्रकाशित होना अर्थ में) धातुसे बना है क्योंकि आंख शरीरके अन्य अंगोंकी अपेक्षा अधिक व्यक्त होती है। अन्य अंगोंकी अपेक्षा अधिक व्यक्त होनेकी पुष्टि ब्राह्मण वचनोंसे भी होती है।[६७] आग्रायणने अक्षि `अनक्ते:[४] कहकर अक्षि शब्द में अंज् धातुको स्पष्ट कर दिया है। आचार्य आग्रायणका निर्वचन यास्कके निर्वचनकी अपेक्षा ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अधिक संगत है। भारोपीय भाषाओं में देखना अर्थ में Oqu प्राप्त होता है इससे बना शब्द `ओस्से' (दोनों आंखके लिए) ग्रीक भाषामें प्रचलित है। व्याकरणके अनुसार-(अश्नुते अनेनेति अक्षि)- अशू व्याप्तौ धातुसे क्सि[६८] या अक्षू व्याप्तौ + इन् से अक्षि शब्द बनाया जा सकता है।[६९]

(२४) कर्ण :- कर्ण: का अर्थ कान (श्रवणेन्द्रिय) होता है। यास्कका कहना है कि इसका द्वार कटा रहता है इसलिए इसे कान कहा जाता है- कर्ण: कृन्तते:, निकृत्तद्वारो भवति'[७०] कर्ण शब्दमें कृती छेदने धातुका योग है। इस निर्वचनमें आकृतिसे ही मूल आधार स्पष्ट होता है। अत: इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। कर्णके निर्वचनमें आचार्य आग्रायणके मतका भी उल्लेख होता है-ऋच्छतेरित्याग्रायण:[७०] इसके अनुसार कर्ण शब्दमें गत्यर्थक ऋच्छ् धातुका योग है। ब्राह्मण वचनसे भी इसकी पुष्टि होती है- `ऋच्छन्तीव खे उद्गन्तामिति ह विज्ञायते'[७०] आकाशमें गये शब्द इन्हें प्राप्त होते हैं। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह निर्वचन अपूर्ण है। अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। आग्रायणके निर्वचनमें ख + ऋच्छ् धातु है। डा. वर्मा कर्ण शब्द में पकड़ना अर्थ वाले भारोपीय क्वैर् शब्दको मूल मानते है। प्राचीन वुल्गेरियन भाषामें पकड़ना अर्थमें क्रेन (Cren) का प्रयोग होता है। कान भी ध्वनि पकड़ता है इसलिए Qur से इसे माना जा सकता है।[७१] व्याकरणके अनुसार कर्ण शब्द कृ विक्षपे धातु से न[७२] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। कृ + न:= कर्ण या कर्ण् भेदने धातु से अच्[७४] प्रत्यय कर कर्ण शब्द बनाया जा सकता है -कर्ण + अच्=कर्ण:।

(२५) आस्यम् :- इसका अर्थ मुख होता है। निरुक्त के अनुसार इसमें अन्न फेंका जाता है इसलिए आस्य कहलाया। यह अन्न को आर्द्र कर देता है-

'आस्यम् अस्यते:, आस्यन्दते एतदन्नमितिवा'[७४] यास्कके इन दो निर्वचनोंमें प्रथम निर्वचनके अनुसार इसमें अस् क्षेपणे धातु का योग तथा द्वितीय निर्वचन में आङ्+स्यन्द् प्रस्रवणे धातु का योग है।अस्-आस्यम्। आङ् + स्यन्द् = आस्यम्। यास्कका प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार पर उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचनमें अर्थात्मकता संगत है। महर्षि पंतजलि भी आस्यम्में अस् क्षेपणे धातुका योग मानते हैं। इनके अनुसार इसमें वर्णोंका प्रक्षेपण होता है या उसमें अन्न गीला होता है।[७५] व्याकरणके अनुसार अस्क्षेपणे धातुसे ण्यत्[७६] प्रत्यय करने पर आस्यम् शब्द बनता है (अस्यन्ते वर्णा: येन) अथवा अस्यते अस्मिन् ग्रासोवा) पुन: आ+ स्यन्द् प्रस्रवणे से ड:[७७] प्रत्यय करने पर भी आस्यम् शब्द बन सकता है। (आस्यन्दते अम्लादिना प्रस्रवति, अन्नादिना द्रवीक्रियते वा)

(२६) दघ्नम् :- दघ्न का अर्थ पर्यन्त (मात्र) होता है। इस शब्दको स्पष्ट करनेके लिए आस्यदघ्न तथा उपकक्षदघ्न शब्द ध्यातव्य है।[७८] क्रमश: इनका अर्थ होता है मुख तक पानी वाला (ह्रद) एवं कमर तक पानी वाला (ह्रद)। दघ्न शब्दके निर्वचनमें यास्क स्रवत्यर्थक दध् धातुका योग मानते हैं- 'दघ्नं दध्यते: स्रवतिकर्मण:'[७९] द्वितीय निर्वचन प्रस्तुत करते हुए वे इसमें दसु उपक्षये धातुका योग मानते हैं- दस्यतेर्वास्याद्वितस्ततरं भवति'[८०] दसु उपक्षये धातुसे मानने के कारण में वे कहते हैं कि वह क्रमश: दस्ततर न्यूनतर होता जाता है। यास्कका प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरण के अनुसार इसे दघ् धातुसे न: प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। पाणिनिने दघ्न को शब्द नहीं मानकर दघ्नच् प्रत्यय माना है।[८०] प्रत्ययोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि प्राचीन कालमें वे प्रत्यय स्वतंत्र प्रकृतिके रूपमें थे बादमें घिसते-घिसते प्रत्ययके रूपमें रह गये।[८१] इससे स्पष्ट है कि यास्कके समयमें दघ्न प्रकृति के रूपमें प्रयुक्त होता था।

(२७) ह्रद :- इसका अर्थ तालाब होता है। यास्क इसके लिए दो निर्वचन प्रस्तुत करते हैं- 'ह्रदो ह्रादते: शब्द कर्मण: ह्लादतेर्वा स्यात् शीतीभाव कर्मण:'[८२] प्रथम निर्वचनमें ह्राद् शब्दे धातुका योग है। ह्रदसे शब्द होता रहता है। द्वितीय निर्वचनमें शीतीभाव अर्थवाले ह्लाद् धातु है। वह जलके कारण शीतल बना रहता है।[८३] यास्कके इन दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार ह्राद् अव्यक्ते शब्दे से अच्[८४] प्रत्यय कर (ह्राद्+अच् = ह्रद:) बनाया जा सकता है।

भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे भी यह सर्वथा संगत है।

(२८) शिशिरम् :- शिशिर ऋतु विशेषका नाम है। भारतीय पद्धतिके अनुसार माघ एवं फाल्गुन महीनेसे होने वाली ऋतुको शिशिर ऋतु कहते हैं। यास्कके अनुसार यह शब्द हिंसार्थक शृ धातुसे अथवा हिंसार्थक शम् धातुसे निष्पन्न माना गया है- `शृणातेः शम्नातेर्वा'[८२] शिशिर ऋतुमें प्रायः वृक्ष आदि म्लान हो जाते है। यास्कके निर्वचनोंमें अर्थात्मक आधार संगत है। इसमें ध्वन्यात्मकताकी रक्षा पूर्ण रूपमें नहीं हो पायी है। व्याकरणके अनुसार इसे शश् प्लुतगत्यौ धातुसे किरच् प्रत्यय[८५] (उपधायां इत्वंच निपात्यते) कर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जा सकता।

(२९) गिर :- वर्तमान समयमें गिरः का अर्थ वाणी होता है। लेकिन वैदिक संस्कृतमें गिर उसी वाणीको रहा जाता है जो स्तुतिके लिए प्रयुक्त होती है। यास्क इसके निर्वचनमें स्तुत्यर्थक गृ धातुका योग मानते हैं- `गिरोगृणातेः[८९] गृ-गिरः। वैदिक कालमें स्तुत्यर्थक गिर शब्द बादमें वाणीके अर्थमें प्रयुक्त होने लगा। यह इस शब्दकी अर्थोत्कर्षता है। यास्क का यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे गृ शब्दे धातुसे क्विप्[८७] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(३०) नरकम् :- नरक सर्वाधिक खराब, अशोभन एवं यातना पूर्ण स्थानका नाम है, जहां दुराचारी लोग तथा पुण्यहीन लोग निवास करते हैं। यास्कका कहना है कि जिसमें निम्न गमन होता है[८८] तथा जहां रमणीय स्थान थोड़ा भी नहीं होता- `न्यरकम् नीचैर्गमनम् नाऽस्मिन् रमणं स्थानम् अल्पमपि अस्तीतिवा'[८६] प्रथम निर्वचनमें नि उपसर्ग तथा ऋगतौ धातु + क प्रत्यय है। नि+ऋ+कम् नि+अर्+कम् = न्+ अर + कम्=नरकम्। द्वितीय निर्वचन में न + रम् + क = नरक शब्द है। यास्कका नरक संबंधी दोनों निर्वचन अर्थात्मक आधारसे पुष्ट है। ध्वन्यात्मक आधार आंशिक संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे नृ + कन् [८९] - नर्+ अक = नरक बनाया जा सकता है।

(३१) सुराः-सुराका अर्थ मदिरा होता है। इसके पान करनेसे बुद्धिका सन्तुलन बिगड़ जाता है। यास्ककेअनुसार यह अनेक द्रव्योंसे चुलायाजाता है[९०]- `सुरा सुनोतेः[८९] इस शब्दमें षुञ् अभिषवे धातु का योग है इस निर्वचन का अर्थात्मक एवं ध्वन्यात्मक आधार संगत है। फलतः यह भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार यह सु+रा दाने = सुरा ,या सु + रै शब्दे+अड्[९१] प्रत्यय करने पर बनता है।

(३२) अश्व :- अश्वका अर्थ घोड़ा होता है। निरुक्तके अनुसार अश्व मार्गका अशन (व्याप्त) करने वाला है या अधिक भोजन करने वाला होता है- `अश्नुते अध्वानम्, महाशनो भवतीतिवा'[९२] प्रथम निर्वचन में अशूङ् व्याप्तौ धातु है तथा द्वितीय निर्वचनमें अश् भोजने धातु। यास्कके ये निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त हैं। यास्क अपने पूर्व पक्षियोंके इस प्रश्नका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। यदि सभी नाम आख्यातसे उत्पन्न होंगे तो मार्गको व्याप्त करने वाले सभी अश्व कहे जायेंगे ? इसके समाधानमें वे कहते हैं कि यह तो लोक व्यवहारके आधार पर आधारित है। लोक प्रसिद्धि जिस शब्दकी जिस अर्थमें होगी उससे वही अर्थ ज्ञात करायगा। व्याकरणके अनुसार इसे अशू व्याप्तौ + क्वन्[९३] = अश्व, अश्भोजने + क्वन्= अश्वः बनाया जाएगा। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे आख्यातज सिद्धान्त पर आधरित माना जायगा।

(३३) तृणम् :- इसका अर्थ तिनका होता है। धातुज सिद्धांतके विरोधियोंका तर्क है कि जो वस्तु चुभ जाय उसे इस आधार पर तृण कहा जायगा। यत् किंचित् तृन्द्यात् तृणं तत्'[९४] तृद्धातु से तृण शब्द माना जाता है। इसके समाधानमें यास्कका कहना है कि सभी छेद करने वाले पदार्थ तृण नहीं कहे जाते अपितु लोक व्यवहारके कारण तृण विशेष ही उसका वाचक होता है। तृण शब्द आख्यातज होने पर भी अस्पष्ट व्युत्पत्ति वाला है। फलतः यास्कने इसके लिए निर्वचन नहीं प्रस्तुत किया। व्याकरणके अनुसार तृण् अदने + घञ् प्रत्यय कर बनाया जाता है।[९५]

(३४) पुरुष :- पुरुष मनुष्य का वाचक है। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते हैं १-शरीर या बुद्धिमें विषयोपलब्धिके लिए रहता है इसलिए पुरुष कहलाता है- `पुरुषः पुरुषादः'[९६] इसके अनुसार पुरुष शब्द में पुरु+सद् (षदलृ विषरणगत्यवसादनेषु) पुरिषादः- पुरुषः। २- विशेष कर शरीरमें शयन करनेके कारण पुरुष कहलाता है- `पुरिशयः'[९७] इसमें पुर + शीङ् स्वप्ने धातुका योग है। पुर +शीङ् = पुरिशय पुरुषः (पुरि शरीरे शेते इति पुरिशयः पुरुषः) इन निर्वचनों से पता चलता है कि पुरुष जीवात्माका वाचक है।[९८] ३- पुरुषके व्यापक होनेके कारण सम्पूर्ण जगत् पूर्ण है। `पूरयतेर्वा'[९९] इसके आधार पर पुरुष शब्दमें पुरी आप्यायने धातुका योग है। यह निर्वचन परमात्माके अर्थको द्योतित करता है।

उपर्युक्त सभी निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त हैं। (पूर्य्यते अष्टभिर्धातुभिरिति पुःशरीरं तस्मिन् पुरि शुभाशुभकर्मफलभोगाय शेते अथवा सीदतीति पुरिशयः पुरिषदोवा)

पुर+षद् = पुरुष में र में उ का आगम माना जाता है। डा. वर्मा इस निर्वचनको अस्पष्ट मानते हैं।[९९] भाषा विज्ञानके अनुसार पृ धातु में उस् प्रत्यय करने पर पुरुष शब्द बनता है। मध्यकालीन भारतीय भाषाओंमें पुरिश शब्द मिलता है जो पृ + इस से बने हैं। अत: प्रत्यय भेदसे उसको भी प्रत्यय होना सिद्ध होता है। अमर कोषके प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामीने पुरुष[१००] को शरीर में शयन करने से या शरीर में पूर्ण होने से या शरीरमें पलनेके कारण ही पुरुष कहा है। व्याकरण के अनुसार इसे पुरी आप्यायने धातुसे कुषन्[१०१] प्रत्यय करने पर बनाया जा सकता है। आज कल स्त्रीत्व भिन्नके लिए प्रयुक्त पुरुष शब्दमें अर्थ संकोच हो गया है। दर्शन ग्रन्थोंमें पुरुष प्राय: ब्रह्मका ही वाचक है। लोकमें उसके लिए परमादि विशेषणका प्रयोग होता है- परम पुरुष आदि। यास्कका यह निर्वचन आध्यात्मिक अर्थका प्रतिपादक है।

(३५) पृथिवी :- पृथ्वीका अर्थ धरित्री होता है। यास्कके अनुसार फैली हुई होनेके कारण पृथिवी नाम पड़ा- 'प्रथनात् पृथिवी इति आहु:'[१०२] इसमें प्रथ् विस्तारे धातुका योग है। इस निर्वचनमें दृश्यात्मक आधार अपनाया गया है।[१०३] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है इसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत माना जायेगा। व्याकरणके अनुसार यह प्रथ् विस्तारे धातु से षिवन्[१०४] + ङीष् प्रत्यय करने पर बनाया जा सकता है। डा. वर्मा इसे अविकसित तत्कालीन भाषा विज्ञानका परिणाम मानते हैं।[१०५] ग्रीक एवं लिथुआनियन का प्लातु (Platue) शब्द यास्कके निर्वचनके निकट का है।

(३६) बिल्वम् :- इसका अर्थ बेल होता है। निरुक्तके अनुसार इसे खाने पर लोगोंका भरण पोषण होता है या खाने के समय इसे फोड़ कर ही खाना पड़ता है इसलिए इसे बिल्व कहते हैं- 'बिल्वं भरणात् भेदनाद्वा'[१०६] प्रथम निर्वचन में भृञ् भरणे धातु का योग है तथा द्वितीयमें भिद् विदारणे धातुका। भृ- बिल्व, भिद्-भिल्व-बिल्व। दोनों निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त हैं लेकिन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे दोनों अपूर्ण हैं। यास्कके निर्वचनोंसे स्पष्ट होता है कि उनके समयमें बिल्व भरण पोषण के मुख्य साधनोंमें एक था। व्याकरणके अनुसार इसे बिल् भेदने धातुसे बनाया जा सकता है। भ ध्वनिका अल्पप्राणीकरण रूप ब यहां प्राप्त होता है।

(३७) अवसम्:- पथ्यदन।[१०७]पथ्यदन पाथेयको कहते हैं।अवस शब्दमें गत्यर्थक अव् धातु एवं अस् प्रत्ययका योग है। ध्वन्यात्मक आधार इसका संगत है लेकिन अर्थात्मकता अस्पष्ट है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा।

(३८) त्विषि :- यह दीप्ति या कान्तिका वाचक है।[१०७] त्विष् कान्तौ धातुसे यह शब्द निष्पन्न है। यास्कने इसे अस्पष्ट ही छोड़ दिया है। अर्थका निर्देश ध्वन्यात्मक संगतिसे युक्त है।

(३९) स्थाणु :- स्थाणुका अर्थ शिव एवं ठूठ वृक्ष दोनों होता है। प्रसंगत: निरुक्तमें स्थाणु का प्रयोग ठूंठ वृक्षके लिए हुआ है। यास्कका कहना है कि यह नित्य ठहरा रहता है इसलिए इसे स्थाणुकी संज्ञा दी गयी है :- `स्थाणुस्तिष्ठते'[१०८] इस शब्दमें स्था धातुका योग है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार इसे स्था + नु: प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। कालान्तर में स्थाणु शब्दके अन्य अर्थ भी प्राप्त हैं। यह शिवका वाचक भी माना जाता है। लेकिन निरुक्तमें शिवके लिए स्थाणु शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है।

(४०) अर्थ :- अर्थके धन, प्रयोजन, वस्तु, निवृत्ति, अभिधेय आदि कई अर्थ होते हैं।[१०९] निरुक्तमें इसके लिए दो निर्वचन प्राप्त होते हैं। :-(१) `अर्ते:'[११०] इसमें ऋ गतौ धातुका योग है क्योंकि इसके पास याचक जाते हैं।[१११] ऋ का अर् (गुण होकर) +थ प्रत्यय से यह शब्द बनता है। यह गतिमान होता है एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिके पास जाता रहता है। (२) `अरणस्थो वा'[११०] इसमें अर् +स्था धातुका योग है। मालिक की मृत्यु होने पर यह यहीं रह जाता है- [११२] अरु स्था का थ् अर्थ:। दोनों निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त हैं क्योंकि दोनों निर्वचनोंमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक मूल्य सुरक्षित हैं। निरुक्तका अर्थ शब्द धन वाचक है। इसकी समानताके आधार पर ही शब्दार्थको भी अर्थ कह सकते हैं। व्याकरणके अनुसार इसे ऋगतौ धातु से स्थन्[११३] प्रत्यय करके बनाया जा सकता है- ऋ-अर् + स्थन्-थ = अर्थ:। अर्थ उपयाञ्चायाम्+घञ्[११४] प्रत्यय = अर्थ: बनाया जा सकता है।

(४१) बिल्मम्:- बिल्मका अर्थ वर्गीकरण या विभाग होता है। निरुक्तमें विल्मम्के लिए दो निर्वचन प्राप्त होते हैं:-(१)`भिल्मम्'[११३] यह भेदन अर्थको व्यक्त करता है। भेदनसे तात्पर्य वेदोंके भेदसे है।भिल्मम्- बिल्मम् भ का ब में वर्ण-परिवर्तन है। ध्वन्यात्मक आधार पर यह निर्वचन उपयुक्त नहीं है। (२) `बिल्मं भासनमितिवा'[११५] इसमें भास् दीप्तौ धातुका योग है। प्रकाशित होनेके कारण ही बिल्म हुआ। वेदांग विज्ञानसे वेदार्थ प्रकाशित होता है।[११६] यह निर्वचन भी ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण है।

यास्कके दोनों निर्वचन अर्थात्मक आधार पर आधारित हैं। भिद् से भिल्मम्- बिल्मम् तथा भास्- बिल्मम् में ध्वन्यात्मकताका अभाव है। व्याकरण के अनुसार इसे बिल्+मन् कर बनाया जा सकता है।

(४२) धातु :- धातुका सामान्य अर्थ होता है क्रियाका मूल रूप। जो अर्थको धारण करे वह धातु कहलाता है। निरुक्तमें प्राप्त निर्वचनोंसे भी अर्थ धारण करने वाला ही स्पष्ट होता है-`धातु: दधाते:'[११७] इसमें धा धातुका योग है। अर्थको धारण करने वाला धातु है। धातुसे यहां तात्पर्य है भू, एध्, पठ् आदि शब्दोत्पत्तिके कारण भूत मूल रूप से। यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे सर्वथा उपयुक्त है। व्याकरणके आधार पर यह डुधाञ् धारण पोषणयो: + तुन्[११८] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। कोष ग्रन्थों में धातुके अनेक अर्थ प्राप्त हैं- [११९] कफ आदि, रस आदि, रक्त आदि, पृथ्वी आदि, पंचमहाभूत एवं गंधरूप आदि उसके गुण, इन्द्रिय, मैनसिल पत्थर, पत्थर के विकार से उत्पन्न पदार्थ, भू, पठ् आदि मूल रूप, सोना चांदी आदि धातु के अर्थमें परिगणित हैं। इसे आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित माना जा सकता है।

(४३) वारवन्तम् :- केश से युक्त। वार-वाल-घोड़े के वाल का प्रतीक। यास्कने वारवन्तम् शब्द को वालवन्तम्[११७] कह कर स्पष्ट किया है बार एवं वाल में र तथा ल की समानता का आधार अपनाया गया है। निरुक्तमें र एवं ल की समानताके उदाहरण अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं। अश्रीमत् -अश्लील आदि। यह निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टि से उपयुक्त माना जाएगा।

(४४) दंश:- इसका अर्थ होता है डसने वाला, मच्छर, कीट विशेष आदि।[१२०] निरुक्तके अनुसार यह दंशन क्रियाके कारण दंश कहलाता है। यह संज्ञापद है- `दंशो दंशते'[११७] इसमें दंश् दंशने धातुका योग है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे पुष्ट है। हिन्दी भाषामें इसका तद्भव रूप डंस या डासा शब्द का प्रयोग अभी भी होता है। आज यह सामान्य मच्छर आदिसे हट कर मच्छर विशेषका अर्थ द्योतित करता है जो जानवरोंको वरसातमें अधिक तंग करता है। व्याकरणके अनुसार दंश् धातुसे अच्[१२१] प्रत्यय करने पर दंश बनता है।

(४५) मृग:- मृगका अर्थ यहां पशु है। निरुक्तके अनुसार नित्य गमन करनेके कारण मृग कहलाता है -`मृग: मार्ष्टेगतिकर्मण:'[१२२] मृग शब्द गति अर्थ वाले मृज् धातुसे बनता है। गत्यर्थक मृज् धातु नैघण्टुक पठित है। इसका ध्वन्यात्मक एवं

अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। मृग का प्राचीन अर्थ जानवर ही है जो मृगेन्द्र, मृगराज, मृगाधिप आदि शब्दोंसे स्पष्ट हो जाता है। यास्कके समय भी मृग पशुका ही वाचक था। आज कल मृग पशु विशेष हरिणके लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द में अर्थापकर्ष पाया जाता है। डा. लक्ष्मण सरूपने भी मृगका अर्थ पशु ही किया है। व्याकरणके अनुसार इसे मृग् अन्वेषणे धातुसे कः प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। कालान्तर में हरिणका आखेट विशेष रूपमें होता था। फलतः मृगका अर्थ हरिण हो गया। इसमें अर्थ संकोच भी माना जा सकता है।

(४६) भीम :- इसका अर्थ भयंकर होता है। निरुक्तके अनुसार इसका अर्थ होगा जिससे लोग डरते हैं वह भीम कहलाता है- `विभ्यति अस्मात्' [१२३] इस शब्द में भी भये धातुका योग है। यह विशेषण पद है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे भी धातु + मक्[१३४] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। भीम शब्द शिव एवं पाण्डु पुत्रके लिए भी प्रयुक्त होता है। भीषणता या भयोत्पादकताका सादृश्य ही इसका कारण है।

(४७) भीष्म :- भीष्मका अर्थ भी भयंकर होता है। इस शब्दके निर्वचनमें यास्कका कहना है कि भीमके सदृशही भीष्मका भी निर्वचन होता है- `भीष्मः अपि एतस्मादेव'[१२३] अर्थात् भीष्म शब्द भी भीम शब्दकी तरह भी भये धातुसे ही बनता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे भी भये+मक्+षुगागम[१२५]=भीष्मः बनाया जा सकता है। यह भी विशेषण पद है। यास्क ने संज्ञापदके रूपमें भीम या भीष्मका प्रयोग नहीं किया है।

(४८) कुचर :- इसका अर्थ होता है कुत्सित कर्मका आचरण करने वाला। `चरति कर्म कुत्सित'[१२९] अर्थात् निन्दनीय कार्य करने वाला। इस निर्वचन में कु एवं चर दो खण्ड हैं। कु कुत्सित कर्मका वाचक है तथा चर् गतौ धातु है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। `क्वायं न चरतीति'[१२६] अर्थात् ये कहां नहीं विचरण करते हैं। इस निर्वचनमें कु क्व का वाचक है तथा चर् गतौ धातु। क्व+चर्=कुचरः। यास्कका यह द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरण के अनुसार इसे कु+चर्+[१२७] अच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यास्कका द्वितीय निर्वचन देवता अर्थमें प्रयुक्त है। यह देवताओंके सर्वत्रगमन रूप स्थिति को स्पष्ट करता है। प्रथम निर्वचन व्यवहार परक हैं।

(४९) गिरिष्ठा :- पर्वत पर बैठने वाला।[१२६] यास्कने गिरिस्थायी कह कर गिरिष्ठा शब्दको स्पष्ट किया है। गिरि+स्था। स्था का ष्ठा में परिवर्तन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी उपयुक्त है। व्याकरण की प्रक्रिया के अनुसार भी यह शब्द इसी प्रकार बनेगा। गिरि+स्था+ड=गिरिस्थ-गिरिष्ठ-गिरिष्ठा।

(५०) गिरि :- गिरिका अर्थ पर्वत होता है। यास्कके अनुसार यह ऊपर उठा होता है या पृथ्वीसे निकला होता है, इसलिए इसे गिरि कहते हैं- 'गिरिःसमुद्गीर्णो भवति' इस शब्दमें गृ धातुका योग है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे गृ+वाहुलकात्किः[१२८] कर बनाया जा सकता है।

(५१) पर्वत :- पर्वतका अर्थ पहाड़ होता है। निरुक्तमें पर्ववान् को पर्वत कहा गया है। पर्वका अर्थ सन्धि होता है। पर्वके लिए दो निर्वचन यहां किए गए हैं :- (१) पृणातिः[१२९] इसके अनुसार पर्व शब्दमें पूरणार्थक पृ धातुका योग है। (२) 'प्रीणातेः'[१२९] इसके अनुसार पर्व शब्द में प्रशंसार्थक प्रीञ् धातुका योग है। प्रसंशार्थक प्रीञ् धातु से पर्व मानने पर यह अर्धमास पर्व (अमावाश्या) पूर्णिमाके लिए प्रयुक्त होगा क्योंकि इसमें देवता आदि प्रसन्न किए जाते हैं। सन्धि वाचक पर्व शब्द भी इसी शब्द सामान्य के अनुसार सिद्ध हो जायेगा। [१३०] कृष्णपक्ष एवं शुक्ल पक्षकी सन्धि पर आनेके कारण दर्शपौर्णमास पर्व कहलाता है। अतः सन्धिके कारण पर्वसे पर्वत बना। यास्कके निर्वचनमें पृ धातु + मत्वर्थीय प्रत्यय है। अर्थात्मक दृष्टि से दोनों निर्वचन पर्वके लिए उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार पर्व् पूरणे धातुसे अतच्[१३१] प्रत्यय कर पर्वत शब्द बनाया जाएगा।

(५२) पर्व :- सन्धि या त्योहारका वाचक है। इसका विशेष उल्लेख पर्वतमें किया जा चुका है।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१.दि निघण्टु एण्ड दि निरुक्त-लक्ष्मण स्वरूप-पृ१४,२.नि.दु.वृ.१।१, ३. 'छन्दोभ्यःसमाहृत्य समाहृत्य समाम्नाताः'नि.१।१,४.नि.१।१,५. निघण्टव इत्यतिपरोक्षवृत्तिः निगन्तव इति परोक्षवृत्तिः निगमयितारः इतिप्रत्यक्षवृत्तिः' नि,दुवृ.१।१।१ पृ.५,६.उणा-१।३८,७.नि. १।२, ८. ''मन्त्र व्याख्याकृदाचार्यः'' अमरकोष-२।७।७, ९-' उपनीय तु यःशिष्यं वेदमध्यापयेद्विजः, सांगंच सरहस्यंच तमाचार्यं प्रचक्षते।।''- मनु २।१४०, १०. स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि, आचिनोति च शास्त्रार्थान् यमः सन्नियमैर्युतः ।।' -वा. पु. ५९।३०, ११. 'यावकस्तु कुल्माष :' अम.

को.- २।९।१८ 'कुल्माषोयावके प्रोक्तः कुल्माषं कांजिकेऽपि च'- (विश्वकोष-१०२।१२), १२. अम को. २।८।३९, १३. कर्मण्यण्- अष्टा. ३।२।१, १४. तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम्- अष्टा. २।५।८२ कुल्माषादञ् अष्टा. २।५।८३, १५. नि. १।२, १६. अम.को. ३।३।२३०, १७. उणा. ४।१८९, १८. नि. १।२, १९. नि. १।२, ६।६, २०. 'शाखा द्रुमांशे वेदांशे भुजे पक्षान्तरेऽन्तिके-हैमः- २।२७, २१. नि. १।२-'द्युः इतिअह्नः नामधेयम्', २२. नि. १।२, २३. अम. को. ३।४.२२, २४. नि. १।२, २५. नि. १।२, २६. अदिभुवोडुतञ्-उणा. ५।१, २७. न सतामानेयः- नि.दु.वृ. १।३, २८. 'अघ्न्यादित्वात् यः' उणा. ४।११२, २९. नि. १।३, ३०. नि. १।३, ३१. व्रियते ह्यसौ- नि.दु.वृ.१।३।२, ३२. नि.दु.वृ. ५।१, ३३. नि. ६।२, ३४. मघमिति धननामधेयम्- नि.१।३, ३५. खघथधभांहः- प्राकृ.प्रका., ३६. नि. २।१७ (आहन्तीति), ३७. नि.१।३, ३८. यज्ञं हि यत्किंचिद्विगतर्द्रिकं भवति तदियं समर्द्धयति-नि.दु.वृ. १।३।२, ३९. दक्षतेरुत्साहकर्मणः दाशते वा स्याद्दान कर्मणः-नि १।३, ४०. द्रुदक्षिभ्यामिनन्- उणा. २।५०, ४१. नि. १।३, ४२. हसे हसने-मृगृ. तन्-उणा. ३।८६, ४५. पृषद्वृहन्महत्.-उणा. २।८४, ४६. नि. १।३, ४७. पचाद्यच्- अष्टा. ३।१।१३४, ४८. अष्टा. ३।१।१३५, ४९. उणा. २।१३, ५०. नि. १।३, ५१. नामन्सीमन्-उणा. ४।१५१, ५२. डाबुभाभ्याम्-अष्टा. ४।१।१३, ५३. नि.७।३, ५४. गायत्रीमें तीन चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरणमें आठ-आठ अक्षर होते हैं। त्रिगमनसे तात्पर्य तीन चरणोंसे ही है।, ५५. नि. ७।३, ५६. अष्टा. ३।२।३, ५७. नि. १।३, ५८. उणा. ४।११२, वनोरच- अष्टा. ४।१।७, ५९. ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्व वेदितुमर्हति-नि. १।३, ६०. उणा.४।१४६,६१. नि.१।३,६२.उध्वरमधीते यःसोऽध्वर्युःनि.दु.वृ.१।३।३, ६३ कव्यध्वरपृतनस्य-अष्टा.७।४।३९,६४.क्याच्छन्दसि-अष्टा३।२।७०,६५.वा. ३।२।१८०,६६.नि.१।३,६७.तस्मादेते व्यक्ततरेइव भवन्ति इति ह विज्ञायते नि. १।३,६८.अशेर्नित-उणा. ३।१५६, ६९. उणा. ४।११८, ७०. नि. १।३, ७१.The **Etymologies of Yaska, P**.८९,७२.कृ. वृजृसिइतिनः उणा. ३।१०, ७३. अष्टा. ३।३।१३४, ७४. नि.१।३, ७५. अस्यत्यनेन वर्णानित्यास्यम्, अन्नमेतदास्यन्दत इतिवाऽऽस्यम्-महा.मा.१।१।९,७६. अष्टा. ३।३।११३, ७७.अन्येभ्योऽपि.-वा. ३।२ ।१०१,७८.ऋ.८।३४।२,७९. नि.१।३,८०. प्रमाणे द्वयसज् दघ्नञ्मात्रचः अष्टा.

५।१।११८, ८१. Linguistic Introduction to Sanskrit-Bat Krishna Chosh, ८२. नि. १।३, ८३. ग्रीश्मेऽपि ह्यसौ शीतल एव भवति -नि.दु.वृ.१।३, ८४. पचाद्यच्- अष्टा. ३।१.१३४, पृषादरादित्वात्-ह्रस्वः अष्टा. ६।३।१०९, ८५. अजिरशिशिर. उणा. १।५३, ८६. नि. १।३, ८७. वा. ३।३।१०८, ८८. नीचैरस्मिन्नयते गम्यते इतिनरकम्- नि.दु.वृ.१।३।६, ८९. कृत्रादिभ्यः संज्ञायां बुन्-उणा. ५।३५, ९०. साह्यमिष्यते अनेकैर्द्रव्यैः पिष्टादिभिः-नि.दु.वृ. १।३.६, ९१. आतश्चोपसर्गे-अष्टा. ३।३।१९६, ९२. नि. २।७, ९३. अशूप्रुषिलटि-उणा. १।१५१ इतिक्वण्, ९४. नि. १।४, ९५. अष्टा. ३।३।१९, ९६. नि. २।१, ९७. 'पुः शरीरं वुद्धिर्वा तयोरसौ विषयोपलब्ध्यर्थं सीदतीति पुरिषादः पुरुषः। तयोरसौशेते विशेषेणास्ते इति पुरिशयः सन् पुरुष इत्युच्यते।' (नि.दु.वृ. २।१।५), ९८. 'पूर्णमनेन पुरुषेण सर्वगतत्वात् जगदितिपुरुषः' (नि.दु.वृ. २।१।५), ९९. The Etymologies of Yaska, P. १३९, १००. पुरिशयनात् पूरणात् वा पालनात् च परुष' (अम. को. ३।३।२१ (क्षी.स्वा.), १०१. उणा. ४।७४, १०२. नि. १।४, १०३. 'अथवै दर्शने पृथुरप्रथिता चेदप्यन्यैः' नि. १।४, १०४. प्रथेः षिवन् सम्प्रसारणंच-उणा. १।१४९, १०५. The Etymologies of Yaska, १०६. नि. १।४, १०७. नि. १।६, १०८. उणा. ३।३७, १०९. अर्थो विषयार्थनयोर्धन कारण वस्तुषु। अभिधेये च शब्दानां निवृत्तौ च प्रयोजने।।- मैदि. को. ७२।२, ११०. नि. १।६, १११. अर्थ्यते ह्यसावर्थिभिः नि.दु.वृ. १।६।३, ११२. यदास्य स्वामी अरति गच्छति इतो लोकादमुं लोकं तदायमिहैव तिष्ठति' नि.दु.वृ. १।६।३, ११३. उषिकुषिगार्तिभ्यस्थन्-उणा. २।४, ११४. अष्टा. ३।३।१९, ११५. नि. १।६, ११६. भासनमेव बिल्म शब्देनोच्यते वेदांग विज्ञानेन भासते, प्रकाशते वेदार्थ इति- नि.दु.वृ. १।६।६, ११७. नि. १।६, ११८. सित निगमि.-उणा. १।६९, ११९. श्लेष्मादि रसरक्तादि महाभूतानि तद्गुणाः इन्द्रियाण्यश्मविकृतिःशब्दयोनिश्च धातवः।।' -अम. को ३।३।६५, १२०. दंशस्तु वनमक्षिका- अम. को २।५।२७, १२१. अष्टा. ३।१।१३४, १२२. नि. १।६ नित्यं ह्यसौगच्छति- नि.दु.वृ. १।६, १२३. नि. १।६, १२४. मिय. षुक् वा उणा. (१।१४८) इति मक् प्रत्ययः षुगभावे।, १२५. मियः षुग्वा- उणा. १।१४५ इतिमक् षुगागमश्च।, १२६. नि. १।६, १२७. अष्टा. ३।१।१३४, १२८. ऋत इद्धातोः अष्टा. ७।१।१००, १२९. नि. १।७, १३०. अर्धमासपर्व-देवान् अस्मिन् प्रीणन्ति इति। तत्प्रकृति इतरत् सन्धि सामान्यात्- नि.१।६,१३१. मृमृदृशिवजिपर्विपचिऊमितमिन मिहर्म्येभ्योऽतच्-उणा. ३।११०.

(ख) निरूक्तके द्वितीय अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निरुक्त के द्वितीय अध्यायका मूल प्रतिपाद्य निर्वचन है। द्वितीय अध्यायके प्रथम पादमें निर्वचनकी प्रक्रियाका प्रतिपादन किया गया है। निर्वचन सिद्धान्तोंकी स्थापनामें लगभग 59 शब्द विवेचित है। इनमें कुछ शब्द तो प्रसंगतः प्राप्त हैं तथा कुछ विभिन्न सिद्धान्तोंके दर्शनार्थ।

द्वितीय अध्यायका द्वितीय पाद निघण्टुके शब्दोंकी व्याख्यासे आरंभ होता है। निघण्टुका प्रथम अध्याय जिसमें कुल 17 खण्ड एवं 414 शब्द हैं, के निर्वचनका प्रारंभिक स्थल द्वितीय पाद ही है। निघण्टुके प्रथम अध्याय के प्रथम खण्डमें पृथिवी के 21 नाम संकलित हैं। निरुक्तके द्वितीय पादमें इन नामोंका निर्वचन हुआ है। यास्कने यहां पृथिवीके इक्कीस नामोंका निर्वचन प्रस्तुत नहीं कर इनके कुछ शब्दोंको समताके आधार पर ही निर्वचन कर लेना चाहिए—यह कहकर छुट्टी ले ली है। इन शब्दों के निर्वचन क्रममें प्रसंगतः प्राप्त अन्य शब्द भी निर्वचनके प्रकाशसे अलग नहीं रहे। द्वितीय पादमें मात्र उन्नीस शब्द विवेचित हैं।

निघण्टुके प्रथम अध्यायके कुल 414 शब्दोंके निर्वचनकी प्रक्रिया यास्क इस अध्यायके द्वितीय पादसे लेकर सप्तम पाद तक सम्पन्न कर लेते हैं। ६ यातव्य हैं वे सारे शब्द विवेचित नहीं होते। निघण्टुके प्रत्येक खण्डसे कुछ शब्दोंको उपस्थापित कर उस खण्डकी समाप्ति कर देते हैं। इतना अवश्य हैकि इस प्रसंग में अन्य प्राप्त शब्दोंकी व्याख्या भी हो जाती है। निघण्टुके प्रथम अध्यायमें 17 खण्ड हैं जिनमें 17 शब्दोंके पर्यायवाची शब्द संग्रहित है।

निरुक्तके द्वितीय अध्यायमें कुल निर्वचनोंकी संख्या 151 है। कुल सात पदोंमें क्रमशः 56, 19, 15, 9, 13, 22, एवं 17 शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं। द्वितीय पादसे सप्तम पाद तक जिनमें नैघण्टुक शब्दोंकी व्याख्या हुई है, कुल 94 शब्द है। ये सारे शब्द निघण्टुके प्रथम अध्यायमें पठित नहीं है बल्कि कुछ प्रसंगतः प्राप्त भी है।

इस अध्यायमें प्राप्त निर्वचन जो भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे तथा निर्वचन प्रक्रियासे पूर्ण है, निम्नलिखित है : प्रत्तम्, अवत्तम्, स्तः, सन्ति, गत्वा, गतम्, जग्मतुः जग्मुः, राजा, दण्डी, तत्त्वायामि, तृचः, ज्योतिः, घनः, विन्दु, वाट्यः,

रज्जुः, तर्कु, ओघः, मेघ, नाधः, गाधः वधू, मधु, आस्थत्, द्वार, भरुजा, ऊति, मृदुः, पृथु, पृषतः, कुणारु, दमूनस्, क्षेत्रसाधा, उष्णम्, धृतम्, कम्बोजाः, दाति, दात्रम्, दण्ड्यः, राजपुरुषः, पुरूषः, कल्याणवर्णरूपः, वर्णः, रूपम्, गो, मत्सरः, पयः, क्षीरम्, चर्म, वृक्षः, क्षा, अमीमयत्, वयः, भूरि, पादः, माता, योनि, समुद्रः, आर्ष्टिषेणः, पुत्रः, ऋषिः, उत्तरः, अधरः, पुरोहितः, रराण, व्रतम्, पृश्निः, विष्टप्, नभः, दिशः, काष्ठा, शरीरम्, दीर्घम्, आशयत्, इन्द्रशत्रुः, पणिः, रात्रिः, उषस् रुशत्, श्वेत्या, कृष्णः, उपर, प्रथम, वृवूकम्, पुरीष, वाक्, शुष्मम्, विसम्, उदकम्, नदी, विश्वामित्रः, सर्वम्, पैजवन, ऋतम्, एव, ऋतु, अभीक्ष्णम्, क्षणः, कालः, पाणिः, उर्वी, ग्रीवा, पन्था, अंकः।

अर्थात्मक आधार पर पूर्णतः आधारित निर्वचनोंमें राजा, तृच, ऊति, कम्बल, कक्ष्या, कल्याण, अंशु, शृंग, निऋति, वव्रिः, अन्तरिक्ष, आदित्य, स्वः, नाक, रश्मि तम, अहिः, वृत्रः, अहः, सानु पिजवन आदि परिगणित किए जा सकते हैं। व्यावहारिक एवं भौगोलिक आधार रखने वाले निर्वचन हैं :— कम्बोजाः, शवति, शव, दात्र, नाक, नभः, पाणिः आदि। ऐतिहासिक महत्त्व से सम्पन्न निर्वचनोंमें शन्तनुः, वृत्रशत्रुः, वृत्रः, विश्वामित्रः, पैजवनः, कुशिकः आदि समाविष्ट हैं। आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित हिरण्य शब्द विवेचित हैं। असंगत सारूप्यके रूपमें अनूप शब्द को देखा जा सकता है। भाषा विज्ञानकी दृष्टि से स्तोकः, सिकता, दासः परूषः, अघः, कम्बलः, दण्डः, विश्चकद्राकर्षः, कल्याणं, निधि, वव्रि, अन्तरिक्षम्, सेना, रश्मि विलम् मुहुः एवं दधिक्रा आदि पूर्णसंमत नहीं है।

द्वितीय अध्याय में ही गौ, द्यौ, मेघः राजा एवं योनि शब्दोंको दो बार विवेचित किया गया है। इस अध्यायके प्रत्येक निर्वचनोंका पृथक् समीक्षण द्रष्टव्य है:—

(1) प्रत्तम् :— इसका अर्थ होता है दिया गया। निर्वचनमें धात्वादिशेष ही [illegible] कहीं कहीं रहता है इसके उदाहरण स्वरूप यास्क प्रत्तम् को उपस्थापित [illegible] है ' प्रत्तमवत्तमिति धात्वादी एव शिष्येते'[1] प्रत्तम् शब्दमें प्र+दा+क्त — [illegible]। प्रदत्तम् शब्द स्थित दा धातु का आदि द् ही शेष रहता है प्र+(दा) [illegible] — प्रत्तम्। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरण

के अनुसार इसे प्र+दा[3] (दद्)+ क्त, प्र+द्+क्त प्र+त्[4] + त – प्रत्तम् बनाया जा सकता है। इसे प्रदत्तम् का ह्रस्व रूप माना जा सकता है। भाषा वैज्ञानिक मान्यता है कि कुछ शब्द कालान्तरमें घिस कर छोटे हो जाते हैं। लगता है प्रत्तम् शब्द इसी का परिणाम है।

(2) अवत्तम् :– अवत्तम् का अर्थ होता है दिया गया। यह निर्वचन क्रममें धात्वादि शेषका उदाहरण है। यह अव+दो अवखण्डने धातुसे क्त प्रत्यय करने पर बनता है। अव+दो+क्त – अवदत्तम्–अवत्तम् यहां दो धातु का आदि भाग द् ही शेष रहता है तथा द् का त् होकर अवत्तम् रूप बनता है। यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे अव+दो+क्त, अव–दो[5]– दा+क्त –अवदात्त, अव–द[3]+ (त्) +क्त –अव+त्+त् – अवत्तम् माना जा सकता है। अवदत्तम् से अवत्तम् की संभावना अधिक है। यद्यपि यास्कने इस शब्दमें दो अवखण्डने धातुका योग माना है।

(3) स्तः– यह अस् भुवि धातुके प्रथमपुरूष द्विवचन का रूप है। स्तः में अस् धातुके आद्यक्षर अ का लोप हो गया है। निर्वचन क्रममें यास्क अपना सिद्वान्त देते हैकि निवृत्ति स्थान 9 में अर्थात् गुण वृद्धिसे रहित स्थान में अर्थात् धातु की मूलावस्थामें रहने पर धातुके अक्षरका लोप हो जाता है। निवृत्ति स्थान को भाषाविज्ञानके शब्दों में मां ज्मतउपदंजपवद कहते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह निर्वचन उपयुक्त है तथा निर्वचन सिद्वान्त के अनुकूल है। व्याकरणके अनुसार अस् भुवि+तस् प्रत्यय– अकार लोप 7 – स्तः बनाया जा सकता है।

(4) सन्ति :– यह अस् भुवि धातुके प्रथमपुरूष बहुवचनका रूप है। इस शब्दमें भी अस् भुवि धातुके आद्यक्षर अ का लोप हो गया है। अस्+झि, अस्–स्+झि– अन्ति – सन्ति। अक्षर लोप निर्वचन सिद्धान्तोंमें एक है। 8 यह लोप कई रूपोंमें हो सकता है, आदिलोप, मध्यलोप, अन्त्यलोप आदि। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह सर्वथा उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार अस् भुवि धातु के अ का लोप हो जाता है फलतः अस् स्+झि – अन्ति – सन्ति रूप बनता है। यहां भी निवृत्ति स्थानमें गुण वृद्धि निषेध है।[9]

(5) गत्वा :– गत्वाका अर्थ होता है जाकर। यह पूर्वकालिक क्रिया है।

गम् धातुसे क्त्वा प्रत्यय करने पर गत्वा रूप बनता है। वर्ण लोप सिद्धान्त के अनुसार धातुका अन्त्याक्षर भी लोप होता है। यह अन्त्याक्षर लोपका ही उदाहरण है। गम् धातुका अन्त्याक्षर् म् का लोप हो गया है फलतः गम् –ग+क्त्वा–त्वा–गत्वा। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह सर्वथा उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार भी इसमें धातुके म्[10] का लोप हो जाता है गम्–क्त्वा–गत्वा।

(6) गतम् :– इसका अर्थ होता है गया। यह गम् धातु+निष्ठा[11] (क्त) प्रत्ययसे निष्पन्न रूप है। यहां भी धातु स्थित अन्तिम अक्षरका लोप हो गया है गम्–ग+क्त – (त)– गतम्। यास्क इसे धातुके अन्त्याक्षर लोपके उदाहरणमें प्रस्तुत करते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार भी यह सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि यहां भी गम् धातु स्थित अन्त्याक्षर का लोप[12] हो जाता है ।

(7) जग्मतु :– यह शब्द गम् धातुके लिट् लकार प्रथमपुरूष द्विवचनका रूप है। इसका अर्थ होता है(दो) गये। यास्क धातु स्थित उपधालोप के उदाहरणमें इसे प्रस्तुत करते हैं।[13] किसी शब्दके अन्तिम वर्णसे पूर्व वर्णको उपधा कहा जाता है।[14]

यहां गम् धातुमें ग स्थित अ उपधा है। अतः इस शब्दमें ज+गम्+ग्म् +अतुस् प्रत्यय है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार भी इसे गम्–गम् ज+गम् – ज+गम्+अतुस्– जग्मतुः बनाया जा सकता है।

(8) जग्मु :– इसका अर्थ होता है गये। यह गम् धातुके लिट् लकार प्रथम पुरूष वहुवचनका रूप है। यह भी उपधा लोपका उदाहरण है। इसमें गम् धातुके ग स्थित अ उपधाका लोप हो गया है। ज+गम्+उस् –जग्मुः। व्याकरण एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उपयुक्त है।

(9) राजा :– राजाका अर्थ, अधिपति, चन्द्रमा, क्षत्रिय, स्वामी, यक्ष, इन्द्र आदि होता है।[15] यह राजन् शब्दके प्रथमा एकवचनका रूप है। यास्कके अनुसार यह शब्द राज् दीप्तौ धातुसे बनता है। राजा राजतेः 20 वह पांच लोकपालोंके शरीरसे दीप्त होता है।[19] उपधा विकारमें राजा शब्दको उद्धृत किया गया है। राजन्में ज स्थित अ का आ में परिवर्तन उपधा विकार है

राजन्–अ –आ–राजा। उपधा विकारको भाषा विज्ञानके शब्दोंमें स्वर दीर्घीकरण भी कह सकते हैं। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक महत्त्वसे युक्त है। प्रकृति रंजनसे भी राजा कहलाता है।[17] राजृ, रंज् एवं रज् इन तीनों धातुओंसे राजा शब्द बन सकता है क्योंकि इन तीनों धातुओंमें कोई विशिष्ट भेद नहीं है। रज् धातुका ही वृद्धिगत रूप राज् धातु है जिससे राजा शब्द बनता है। व्याकरणके अनुसार इसे राजृ दीप्तौ धातुसे कनिन्[18] प्रत्यय करने पर बनाया जा सकता है। लैटिन की त्पहव शब्द इसीके समान है जिसका अर्थ होता है निर्देश करना।

(10) दण्डी :– इसका अर्थ संन्यासी होता है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है दण्ड धारण करने वाला। यह शब्द दण्डिन् शब्दके प्रथमा एक वचनका रूप है दण्डिन् शब्दके उपधामें परिवर्तन हो जानेसे दण्डी शब्द बनता है। उपधा विकार प्रदर्शनमें ही इस शब्दको भी उपस्थापित किया गया है।[19] दण्डिन् शब्दमें डि स्थित 'इ' उपधा है। इस उपधा इ का दीर्घीकरण परिवर्तन कहा जयगा। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे यह उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसारभी दण्डिन् शब्दमें इ का ई उपयुक्त है।[21] भारतीय सस्कृतिमें संन्यास ग्रहण करने वालाको दण्ड धारण करना पड़ता है।

(11) तत्त्वायामि :– इसका पूर्ण रूप 'तत् त्वां याचामि' है। मै तुझसे उसकी याचना करता हूँ, इस अर्थमें तत्त्वायामि का प्रयोग होता है। तत्त्वा याचामि–चलोप–यामि–। याचामि वैदिक प्रयोग है। लौकिक संस्कृतमें याच् धातुका रूप याचे होता है। वर्णलोप भाषा विज्ञानके अनुकूल है।[22] इसमें वन्यातमकता सुरक्षित है। तत् एवं त्वाम्के क्रमशः त् एवं म् वर्णका भी लोप देखा जाता है वर्ण लोपके प्रसंगमें इस शब्दको उपस्थापित किया गया है। यास्क यहां याचामिके च का लोप दिखलानाही अभीष्ट समझते हैं। याचामिसे यामिमें दो वर्णोंका लोप देखा जाता है च एवं आ का। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसे प्रयत्न लाघवका परिणाम कहा जायगा। प्रयत्न लाघव की प्रवृत्ति प्रायः भाषाओंमें देखी जाती है। यामि शब्दको या धातुसे भी निष्पन्न माना जा सकता है।[23] प्रयोग में धात्वर्थ भिन्न हो गये है।

(12) तृच :– इसका अर्थ होता है तीन ऋचाएं। यह शब्द त्रि+ऋच् शब्दोंके योगसे बना है (तिस्रः ऋचः तृचः) त्रि स्थित र् एवं इ का लोप हो गया

है।[24] त् र् इ –त+ऋचः–तृचः। दुर्गाचार्य ने अपने दुर्गभाष्यमें त्रि का तृ सम्प्रसारण के द्वारा माना है और ऋ का लोप बतलाया है। ऋ में रेफ भी समाविष्ट है।[25] अतः दो वर्णोंके लोप का उदाहरण इस रूप में सम्मत है। महाभाष्य में भी त्रि के तृ सम्प्रसारणकी पुष्टि होती है।[26] यास्कने दो वर्णो के लोप के उदाहरणमें तृच को उपस्थित किया है अतः अगर त्रि के ही र् एवं इ का लोप मान लिया जाय तो दो वर्णोंका लोप हो जाता है तथा त्+ऋच –तृच शब्द अवशिष्ट रहता है। व्याकरणकी दृष्टि से सम्प्रसारण कर भले ही ऋ का लोप मान लें लेकिन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे र् एवं इ का लोप करना ही ज्यादा तर्क संगत होगा। यास्ककी इस व्याख्यामें ध्वन्यात्मकता एवं अर्थात्मकता सुरक्षित है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(13) ज्योति :– इसका अर्थ प्रकाश, नक्षत्र, दृष्टि आदि होता है। यास्क आदि वर्ण विपर्यय[27] के उदाहरणमें ज्योति शब्दको उपस्थापित करते हैं। द्युत् दीप्तौ धातुके आद्यक्षर द् का ज हो गया है द् यु त् ज् –यु–त् –ज्युत्–ज्योतिः। भाषा विज्ञानमें भी वर्ण विपर्ययकी मान्यता है। वर्ण विपर्ययको भाषा विज्ञानके शब्दोंमें डमजंजीमेपे कहा जाता है। अतः भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे द्युत् दीप्तौ+औणादिक इस् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(14) घन :– घनका अर्थ घना, बादल, लौहमुद्गर, काठिन्य आदि होता है।[28] यह शब्द हन् धातुसे बना है। हन् धातु स्थित ह का घ वर्ण विपर्यय होकर घ+न्+अप् – घनः शब्द बनेगा। (हन्यते हननमिति वा घनः) जिससे मारा जाय उसे घन कहते हैं। हन्से घन शब्दमें आदि विपर्यय है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे हन् हिंसागत्यौः+अप्[29] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। ह का घ परिवर्तन अन्य शब्दोंमें भी पाया जाता है– हन् –जघनम्। घनका प्रयोग सम्प्रति लौहमुद्गर एवं बादलके अर्थमें अधिक होता है।

(15) बिन्दु :– इसका अर्थ बूंद होता है। यह शब्द भिद् विदारणे धातु से बनता है। यास्क इसे आद्यक्षर विपर्ययके रूपमें प्रस्तुत करते हैं। भिद् में आद्यक्षर भ का ब होकर बिद् –उ– बिन्दुः। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह निर्वचन

उपयुक्त है। महाप्राण वर्णका अल्पप्राण वर्णमें परिवर्त्तन यहां हुआ है। इसे आद्यक्षर विपर्यय या अल्पप्राणीकरण कहा जा सकता है। व्याकरण के अनुसार इसे विदि अवयवे धातुसे उः प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।[29]

(16) बाट्य :— इसका अर्थ होता है भरण करने योग्य। यह भट् भृत्तौ धातु से बना है। यह भी आद्यक्षर विपर्ययका उदाहरण है। भट् धातुके आद्यक्षर भ का ब वर्ण विपर्यय हो गया है। यहां भी आद्यक्षर का अल्पप्राणीकरण हुआ है। भट् धातु वेतन पाना या पालन करना अर्थ में होता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे वट् +ण्यत् – बाट्य बनाया जा सकता है।

(17) स्तोकाः :— स्तोकका अर्थ थोड़ा, अल्प होता है। यह शब्द च्युतिर् क्षरणे धातुसे बनता है। यास्कने आद्यन्त वर्ण विपर्ययके रूपमें इसे उद्धृत किया है।[30] श्चुत् धातुके श्+च्+उ+त् में स् क् उ त् विपर्यय हो गया है। पुनः स्+त+उ+क स्तुक–स्तुक–स्तोकाः। भारतीय निर्वचन सिद्धान्तके अनुकूल यह निर्वचन है। भाषा वैज्ञानिक आधार पर इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे स्तुच् प्रसादे धातुसे घञ् 31 प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यास्कके आद्यन्त विपर्ययका यह उपयुक्त उदाहरण नहीं प्रतीत होता क्योंकि श्चुत्का आदि वर्ण श् है जिसका कोई परिवर्तन नहीं होता मध्यवर्ती च एवं अन्त वर्ण त का विपर्यय होता है आद्यक्षर श् का स् हो गया है जो तालव्यका दन्त्य है इसे वर्ण परिवर्त्तन कहेंगे विपर्यय नहीं। इसी प्रकार मध्यवर्ती च का क भी हो गया है जो तालव्य का कण्ठ्य वर्ण परिवर्त्तन है।

(18) रज्जु :— रज्जुका अर्थ रस्सी होता है।[32] यह शब्द सृज् विसर्गे धातुसे बना है। यह भी आद्यन्त विपर्ययका उदाहरण है। सृज् धातुका आद्यन्त विपर्यय होनेसे रज्जु शब्द बना है सृज्–सर्ज्+उ–रस्जु–रज्जुः। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जा सकता है। सृज–सर्ज–रस्ज में आद्यन्त विपर्यय नहीं है, आदि मध्य विपर्यय यहां स्पष्ट है। अतः आद्यन्त विपर्ययके उदाहरणमें इसका परिगणन उपयुक्त नही। व्याकरणके अनुसार इसे सृज् विसर्गे+उ[33] प्रत्यय करने पर बनाया जा सकता है। इसमें असुक् का आगम एवं धातुस्थ सकारका लोप भी होगा।

(19) सिकता :– इसका अर्थ बालु, चीनी आदि होता है। यह शब्द कस् विकसने धातुसे बनता है। कस् के आद्यन्त विपर्यय होने पर सिकता बना है। यह निर्वचन प्रक्रियाके अनुकूल है। इसका अर्थात्मक महत्त्व अधिक है। इसमें ध्वन्यात्मकता आंशिक है। व्याकरणके अनुसार षिच् क्षरणे+अतच् प्रत्यय करने पर सिकता शब्द बनता है।[34]

(20) तर्कु :– तर्कुका अर्थ चाकू होता है। यह कृती छेदने धातुसे बनता है चाकूमें कर्तन कर्म सुरक्षित है । कृत् धातुको आद्यन्त विपर्यय करने पर कृत्+उ, कर+त+उ तर क्+उ – इसका अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त है। निर्वचन प्रक्रियाके अनुकूल होनेसे इसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी उपयुक्त माना जायगा। यद्यपि इसमें ध्वन्यात्मकता की पूर्ण रक्षा नहीं है। भारोपीय अन्य भाषाओंमें भी इस प्रकारका परिवर्तन देखा जाता है। व्याकरणके अनुसार इसे कृत्+उः प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। कृत् धातु से कट अंग्रेजी में भी सुरक्षित है।

(21) ओध :– ओधका अर्थ समूह या बाढ़ होता है। यह शब्द वह् प्रापणे धातुसे बनता है। इसमें वह् धातुके अन्त्याक्षर ह का ध में परिवर्तन हो गया है[35] साथ ही साथ इसका आद्यक्षर व का सम्प्रसारण होकर उ हो गया है वह्–उ–अ–घ, अ– उ–घ – ओघः। अंतिम अक्षर ह का घ में परिवर्तन अन्य शब्दों में भी पाया जाता है–मिह्–मेघः। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे उच् समवाये+धञ् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(22) मेघ :– मेघका अर्थ बादल होता है। मेहतीति सतः[36] यह शब्द मिह् सेचन धातुके योग से बना है क्योंकि यह वर्षा कर सींचता रहता है। इस धातुके अन्त्याक्षर ह का घ में परिवर्तन हो गया है। यास्क इस शब्दको अन्त्यवर्ण परिवर्तन (व्यापत्ति) के उदाहारण में उपस्थापित करते हैं। अन्य शब्दोंमें भी धातु स्थित ह का घ देखने में आता है ह्न–घन, तथा वह् से ओधः इसी प्रकार के उदाहरण हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार मिह् सेचने धातु से अच्[37] प्रत्यय एवं कुत्व[38] कर मेघः बनाया जा सकता है।

(23) नाधः :— इसका अर्थ होता है बन्धन रस्सी। हल बांधने वाली रस्सी को अभी भी मगही, भोजपुरी आदि क्षेत्रीय भाषाओं में नाधा कहा जाता है। इसमें वैदिक शब्दका मूल सुरक्षित है। यह शब्द णह् बन्धने धातुसे बना है क्योकि इससे बांधा जाता है। णह् धातु स्थित अन्ताक्षर ह का ध वर्ण में परिवर्तन हो गया है। ह का ध में परिवर्तन अन्य शब्दों में भी द्रष्टव्य है— वह् धातु से वधू गाह्—गाधः आदि। यह निर्वचन सिद्धान्तके अनुकूल है। इसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं पाया जाता।

(24) गाध :— इसका अर्थ होता है विलोडन करने योग्य। यह शब्द गाह् विलोडने धातुसे निष्पन्न हुआ है। यहां गाह् धातुके अन्तिम अक्षर ह् का ध में परिवर्तन हो गया है। यास्कने इस शब्द को अन्त व्यापत्ति के उदाहरणमें उपस्थापित किया है। गाह्—गाध। निर्वचन सिद्धान्तके अनुकूल यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे गाध्+घञ् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(25) वधू :— वधूके पत्नी, नवोढा स्त्री आदि अर्थ होते है।[39] यह शब्द वह् प्रापणे धातुसे बना है। वह् धातुका अन्तिम वर्ण ह का ध में परिवर्तन होकर वह वध ऊ वधू। वधूका शाब्दिक अर्थ होगा जिसे प्राप्त किया गया हो या जो प्राप्त करने योग्य हो। यास्क इस शब्दका उपस्थापन अंतिम वर्ण व्यापत्ति के उदाहारण में करते है। ह् वर्ण का ध् में परिवर्तन वैदिक धातुओं में पाया जाता है। संस्कृतसे प्राकृतमें पुनः ध ध्वनि अपने मूल ह के रूपमें देखी जाती है यथा—वधू—वहू, मेघ—मेह आदि। इसके लिए प्राकृतमें एक सामान्य नियम हो गया है— ख, घ, थ, ध एवं भ संस्कृत की ध्वनियां प्राकृतमें ह हो जाती हैं।[40] यास्कका यह निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे वह् प्रापणे+ ऊः[41] प्रत्यय कर वधू बनाया जा सकता है।

(26) मधु :— मधुका अर्थ शहद, पुष्परस, बसन्त ऋतु आदि होता है।[42] निरुक्त में मधु शब्दका प्रयोग सोमके अर्थमें हुआ है। 'माद्यते'[43] यह शब्द मदि हर्षे धातुसे बनता है। इसके पान करनेसे हर्ष उत्पन्न होता है। मद् धातुके अंतिम वर्ण द् का ध् में परिवर्तन हो जाता है। इसे भाषा वैज्ञानिक शब्दों में महा

प्राणीकरण कहेंगे् । अल्प प्राण वर्ण द् का महाप्राणवर्ण ध् में परिवर्तन हुआ है। मद् मध्+उ–मधुः । मधुका शाब्दिक अर्थ होगा जिसके पान करने से हर्ष उत्पन्न हो या जो पीने पर तृप्ति प्रदान करे । मधु सामान्य रूप में मदिरा का वाचक है। इसका सोभ अर्थ उपमा पर आधारित है। जिस प्रकार शराब पीनेसे मस्ती आती है उसी प्रकार सोमपान करनेसे विजयके लिए स्फूर्ति आती है।[44] भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है क्योंकि इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। द् वर्ण का ध् में परिवर्तन अन्य शब्दोंमें भी देखा जा सकता है–स्यन्द्–सिन्धु आदि । यास्क मधु शब्दका एक और निर्वचन प्रस्तुत करते हैं– 'धमतेर्विपरीतस्य[45] अर्थात् धम को विपरीत करके गत्यर्थक धम् धातुसे मधु शब्द बनता है। धम–मध+उः–मधुः । इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं। शहद वाचक मधुका भी निर्वचन प्रथम निर्वचनके आधार पर होगा।[46] मधु शब्दके अंतिम निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि यहां मधु जलका वाचक है।[47] व्याकरणके अनुसार इसे मन् ज्ञाने धातु से निष्पन्न माना जा सकता है – मन्+उः – घ का अन्तादेश – मधुः ।[48]

(27) आस्थत् :– यह अस् धातुके लुङ् लकारका रूप है। इसका अर्थ होता है–बैठाया या क्षेपण किया। यह असु क्षेपणे धातु से बना है। अस् धातुमें थ वर्णका आगम हो गया है। यास्कने वर्णागमके क्रममें इस शब्द का उपस्थापन किया है।[49] वर्णागम निर्वचन सिद्धान्तके प्रमुख अंगोंमें है। अस्–थ+त–आस्थत्। यह निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार भी उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार यह अस् धातुके लुङ् लकार प्रथम पुरूष एक वचनका रूप है। इस धातुमें थुक्का आगम होकर अस्+थ+त – आस्थत् शब्द बना है।[50]

(28) द्वार :– द्वारका अर्थ दरवाजा होता है। यह शब्द वृङ् सम्भक्तौ धातुके योग से बनता है। वृङ् धातुसे वार बनता है, जिसमें द का आगम होकर द्वार हो जाता है। यह आगम धातुसे पूर्व हुआ द्वार द्वार। यास्कने इस शब्दको वर्णोपजनके उदाहरणमें उपस्थित किया है।[51] निर्वचन सिद्धांतके अनुकूल यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी उपयुक्त है। यास्क इसके निर्वचनमें तीन धातुओं की सम्भावना मानते हैं – द्वारः – जवतेर्वा, द्रवतेर्वा, वारयतेर्वा [52]

अर्थात् द्वार शब्द गत्यर्थक जु या द्रु धातुसे या निवारणार्थक वारि धातु से बनता है। जु धातुसे जव् तथा द्रु धातु से द्रव् होकर वर्ण विपर्यय आदिके द्वारा यह शब्द बनता है इन दोनों निर्वचनोंका मात्र अर्थात्मक आधार ही उपयुक्त है क्योंकि दोनों गत्यर्थक धातु हैं। फलतः इसका अर्थ होगा जिससे आगमन या प्रत्यागमन होता हो। तृतीय निर्वचनमें निवारणार्थक वारि धातुका योग है इसके अनुसार इसका अर्थ होगा– प्रवेश एवं निर्गम के व्यवधान को रोकने वाला। यास्कने वृ – वार् – द्वारका उपस्थापन वर्णोपजनमें करते हुए निर्वचनकी प्रक्रियाका समर्थन किया है। फलतः ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे यही अंतिम निर्वचन उपयुक्त माना जायगा। प्रथम दो में तो ध्वन्यात्मकताका अभाव स्पष्ट होता है।

आचार्य काथक्यके अनुसार द्वारका अर्थ यज्ञशाला द्वार है[53] क्योंकि इसी द्वारसे यज्ञ सम्पादनार्थ आगमन प्रत्यागमन होता रहता है या इसी से वहां प्रवेश एवं निर्गम व्यवधान वारित होते हैं। आचार्य शाकपूणि द्वारका अर्थ अग्नि मानते है[54] क्योंकि अग्नि ही हविके जानेका साधन है या देवताओं तक हवि पहुंचानेके लिए अग्निमें ही उसका निक्षेप होता है। वारि धातुके अनुसार यज्ञाग्निसे रोगका निवारण होता है। काथक्य एवं शाकपूणिके अनुसार द्वारके अर्थमें संकोच पाया जाता है। इनलोगोंने प्रकरणके अनुसार अर्थ किया है। वैदिक कालमें भी द्वार सामान्य द्वारका वाचक था, इन्हीं निर्वचनोंसे स्पष्ट हो जाता है। व्याकरणके अनुसार इसे दृवृ धातु + घञ् प्रत्यय कर–द्वर–द्वारः बनाया जा सकता है दृवृ धातुसे संभवतः यास्कका परिचय नहीं होगा अन्यथा दृ धातु वैदिक धातु कोषमें उपलब्ध होता है।[55] अंग्रेजीका क्ववत शब्द इसीका क्रमिक विकास है। ग्रीक भाषा में द्वारके लिए जेनतं का प्रयोग होता है।

(29) भरूजा :– इसका अर्थ होता है भूजा। यह भ्रस्ज् पाके धातुसे बनता है। क्योंकि वह पकाया हुआ (भूना हुआ) होता है। भ्रस्ज् धातु के भ् र् स ज् में भ वर्ण के बाद अ का आगम एवं र् के बाद ऊ का आगम होकर भरूज्का ही स्त्रीलिंग रूप भरूजा है। यह निर्वचन सिद्धान्तके अनुकूल है। अतः इसे भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरण के अनुसार भ्रस्ज् पाके धातुसे अङ् प्रत्यय + टाप् कर भरूजा शब्द बनाया जायगा। यहां भी भ् के बाद अ एवं र् के बाद ऊ का आगम होता है। भरूजासे बना भूंजा शब्दका

प्रचलन मगही आदि क्षेत्रीय भाषाओंमें भी होता है। हिन्दीमें भी इस शब्दका प्रचलन देखा जाता है।

(30) ऊति :– इसका अर्थ रक्षा होता है। यह अव्[56] रक्षणे धातुसे निष्पन्न है। व का उ सम्प्रसारणसे हो जाता है।[57] अव– ऊ– क्तिन्– ऊतिः। सम्प्रसारण भाषा विज्ञानके मान्य सिद्धान्तोंमें है। भाषा विज्ञानके शब्दोंमें इसे टवूमस ळतंकंजपवद या इसंनज या स्वर विकार कहा जाता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त माना जायगा। ऐतरेय ब्राह्मण में ह्वेञ् आह्वाने धातुसे हूति तथा वर्ण विकारके द्वारा हू को ऊ आदेश कर ऊतिः का संकेत प्राप्त होता है।[58] हुतिः से ऊतिः में मात्र अर्थात्मक आधार है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह उपयुक्त नहीं है।

(31) मृदु :– मृदुका अर्थ कोमल होता है।[59] यह शब्द म्रद् धातुसे निष्पन्न होता है। म्रद् धातु स्थित र् का ऋ सम्प्रसारणके चलते हुआ है। अतः म् र् – ऋ – मृद् + उः – मृदु। म्रद् धातुसे मृदुका निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार संगत है तथा निर्वचनकी सूक्ष्म प्रक्रियाका संकेतक है। व्याकरणके अनुसार इसे म्रद् धातुसे कुः प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(32) पृथु :– इसका अर्थ विपुल या विस्तृत होता है। यह शब्द प्रथ् प्रख्याने धातुसे निषन्न हुआ है। प्रथ् धातुके र का ऋ सम्प्रसारणके द्वारा हो गया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे प्रथ् धातुसे कुः[60] प्रत्यय करने पर सम्प्रसारणके द्वारा बनाया जा सकता है।

(33) पृषत :– पृषतका अर्थ बूँद होता है।[61] यह प्रुष् सेचने धातुसे निष्पन्न होता है। प्रुष् धातुके र का ऋ होकर पृ बन जाता है। यह र का ऋ सम्प्रसारणके द्वारा होता है। यास्कने इस शब्दको सम्प्रसारणके द्वारा निष्पादित निर्वचनोंके उदाहरणमें उद्धृत किया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार पृष् सेचने धातुसे अतच्[62] प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है।

(34) कुणारू :– इसका अर्थ होता है अव्यक्त शब्द करना। यह शब्द क्वण् अव्यक्ते शब्दे धातुसे निष्पन्न होता है। क्वण् धातु स्थित व का उ सम्प्रसारणके द्वारा हुआ है क्वण् क् उ–ण् + आरूः – कुणारूः। यास्क का

यह निर्वचन, निर्वचन सिद्धांतके अनुकूल है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार इसे क्वण् अव्यक्ते शब्दे + कारू प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। इसमें भी व का उ सम्प्रसारणसे ही हुआ है।

(35) दमूना :— दमूनाका अर्थ होता है अग्नि। यह दम् उपशमे धातुसे निष्पन्न होता है। यास्कका कहना है कि कुछ वैदिक कृदन्त नामोंका निर्वचन लौकिक संस्कृत धातुओंसे किया जाता है।[63] इसीके उदाहरणमें इन्होंने दमूना शब्द को उपस्थापित किया है। दम् उपशमे धातु लौकिक संस्कृतकी है और दमूना शब्द वैदिक कृदन्त है। दम् धातुसे लौकिक प्रयोग दाम्यति, ददाम, दमिता, दमिष्यति आदि रूप बनते है। पुनः वेदमें दमूनस — दमूनाका प्रयोग दम् + ऊनस् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। वेदमें दमूनाका प्रयोग अग्नि एवं अतिथि[64] के लिए पाया जाता है। यास्क दमूनाके निर्वचन कई प्रकारसे प्रस्तुत करते हैं (1) दममनाः[65] जिसका मन जीत लिया गया हो। जीत लिया गया है मन जिसका उसे दममना तथा दममनासे दमूना शब्द बनेगा। इसका अर्थ होगा दयावान व्यक्ति। दममना दमूना। (2) दानमना अर्थात् जिसका मन दान देने में रत हो। दान मनासे दमूना। इसका अर्थ दानशील है। (3) दान्तमना वा अर्थात् जिसका मन अच्छे लोगोंके प्रति आसक्त हो दान्तमना — दमूना। (4) दम इति गृह नाम तन्मना स्यात् अर्थात् दमका अर्थ घर होता है तथा उस घरके प्रति जिसका मन लगा हो उसे दमूना कहा जायगा दम — मना — दमूना। इसका अर्थ गृहस्थ होगा।

उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि दमूना, अग्नि, अतिथि, दयावान् दानशील, गृहस्थ आदि अर्थ व्यक्त करता है। यास्कका प्रथम एवं अन्तिम निर्वचन दममना, एवं दम इति गृहनाम तन्मना—दमूनो में ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। इसे ही भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। दम शब्द अन्य भारोपीय परिवारकी भाषाओंमें भी साम्य रखता है — लै0— दोमुस्, फा0 दम, अंग्रे0 —होम आदि। व्याकरणके अनुसार इसे दम + ऊनसि प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(36) क्षेत्रसाधा :— इसका अर्थ होता है खेतोंको विभक्त करने वाला। क्षेत्र साधा में क्षेत्र उपपद है तथा साधाः, क्षेत्र + साधाः — क्षेत्रसाधाः शब्द

बनता है। इस शब्दका प्रयोग वेदोंमें पाया जाता है।[66] लौकिक संस्कृतमें क्षेत्रसाधा प्रयोग नहीं प्राप्त होता है। लौकिक संस्कृतमें साध् धातुसे निष्पन्न रूप – साध्नोति, ससाध, साद्धा, सात्स्यति आदिका प्रयोग होता है। यास्कके निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे क्षेत्र + साध् + असुन् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(37) उष्णम् :– इसका अर्थ गर्म होता है। उष्ण शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें होता है जबकि यह शब्द वेदमें प्रसिद्ध उष् दाहे धातुसे निष्पन्न होता है। यह शब्द उष् दाहे धातुसे औणदिक् नक् प्रत्यय करने पर बनता है उष् + नक्[67] – उष्णम्। यास्कके निरुक्तमें वैदिक धातुसे निष्पन्न लौकिक प्रयोग भी प्राप्त होते हैं, इसके उदाहरणमें उष्ण शब्द को उपस्थापित किया गया है।[68] प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पुराने धातुओंके आख्यात रूपका प्रचलन बन्द हो जाता है तथा उससे निष्पन्न नाम रूप प्रचलित रहता है। उष्णम् इसका प्रबल उदाहरण है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है।

(38) घृतम् :– घृतम्का अर्थ घी होता है। घृतका प्रयोग लौकिक संस्कृत में बाहुल्येन होता है। यह शब्द वैदिक धातु घृ क्षरण दीप्तयोः से निष्पन्न होता है। वैदिक धातुसे निष्पन्न लौकिक नाम पदके उदाहरणमें यास्क इस शब्दको उपस्थापित करते हैं। घृ धातुसे निष्पन्न वैदिक क्रिया पदका प्रयोग वेदोंमें प्राप्त होता है।[69] वेदोंमें घृत शब्द जलका भी वाचक है – घृतमित्युदक नाम जिघर्तेः सिंचति कर्मणः[70] अर्थात् घृत शब्द घृ सिंचने धातुसे बनता है। घीका वाचक घृतका निर्वचन भी इसी प्रकार होगा। यास्कके निर्वचनका भाषा वैज्ञानिक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार यह घृ क्षरणदीप्त्योः धातुसे क्त[71] प्रत्यय करने पर बनता है।

(39) कम्बोजा :– कम्बोज एक देश विशेषका नाम है।[72] यास्क इसके लिए दो निर्वचन प्रस्तुत करते है – (1) कम्बल भोजाः[73] इसमें कम्बल + भुज् – कम्बोज हुआ है। शैत्य प्रधान होनेसे कम्बलका अधिक उपयोग होनेके कारण कम्बोज नामकरण हुआ। कम् कम्बलका द्योतक है तथा भुज् धातुसे निष्पन्न भोजाः उसका उत्तर पद है कम + भोजा – कम्भोजा – कम्बोजाः।

कम्बल शब्दके वलका लोप होकर ही कम् वचा है। इस निर्वचन का आधार भौगोलिक एवं व्यवहार परक है। कम्बल भोजसे निष्पन्न कम्बोज शब्दके लिए एक अनुश्रुति प्रचलित है जिसके अनुसार वहांके निवासियोंका जीवन कम्बलमय दीख पड़ता है।[74] (2) कमनीयभोजा वा[73] इसके अनुसार कम् कमनीयका वाचक है तथा उत्तर पद स्थित भोजा भुज् धातुसे निष्पन्न। कमनीय–कम् –भुज्–भोजाः, कम्–भोजाः कम्बोजाः। इस निर्वचनसे स्पष्ट होता हैकि वह देश प्रचुररत्नसे युक्त था तथा वहां कमनीय वस्तुओंका अधिक उपयोग होता था।[75] डा0 वर्मा कम्बोजके इस निर्वचनमें व्यंजन वर्णोंका समुचित विन्यास स्वीकार नहीं करते।[76] कम् + भुज – भोज– कम्बोजमें अल्पप्राणीकरण स्पष्ट है भ का ब में परिवर्तन हुआ है। यास्कने अर्थात्मक दृष्टिाकोणकी प्रधानता दी है फिर भी भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे महत्त्वपूर्ण माना जायगा।

(40) कम्बल :– ऊर्णासे निर्मित वस्त्र विशेषको कम्बल कहते है। यास्कने इसके निर्वचनमें कहा है कि यह सुन्दर होता है या शीतार्त व्यक्तियोंका प्रार्थनीय होता है इसलिए इसे कम्बल कहा जाता है – कम्बलः कमनीयो भवति[77] कमनीय गुण विशिष्टके चलते कम्बल वना। कम्के बाद बल का आगम पद विकास माना जा सकता है डा0 वर्मा इसमें व्यंजनगत औदासिन्य मानते है।[78] वस्तुतः कमु कान्तौसे कम्बल मानने पर भी व्यंजन वर्णोंका उचित विन्यास प्रतीत नहीं होता। फलतः ध्वन्यात्मक दृष्टि से इसे उपयुक्त नहीं माना जायगा। इस निर्वचनका आधार अर्थात्मक एवं दृश्यात्मक है। व्याकरणके अनुसार इसे कम्ब् गतौ धातुसे कलच्[79] प्रत्यय करने पर कम्वति कम्व्यते वा कम्बलः बनाया जा सकता है।

(41) शवति :– यह एक क्रियापद है। यह गत्यर्थक शव् धातुसे निष्पन्न होता है तथा इस क्रियाका प्रयोग गमन अर्थमें कम्बोज आदि देशों में होता है।[80] मूल धातु रूप प्रकृति कहलाता है तथा उस धातुसे निष्पन्न शब्द विकृतिके नाम से अभिहित होता है। कुछ स्थानोंमें प्रकृति का प्रयोग होता है तथा कुछ स्थानों में विकृति का। शवति क्रियाका प्रयोग(गमन अर्थ) आर्य देशों में नहीं पाया जाता। यह शब्द प्रयोग गत वैशिष्टय स्थान विशेष पर आधारित होनेके कारण भौगोलिक महत्त्वको स्पष्ट करता है। व्याकरणके अनुसार इसे शव् गतौ + लट् तिप् – शवति बनाया जा सकता है।

(42) शव :– शवका अर्थ मुर्दा या मृतक होता है। शवका प्रयोग मुर्दाके अर्थमें आर्य देशोंमें ही होता है। यह शब्द गत्यर्थक शवति क्रियाकी विकृति है–शवतीति शवः। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे स्थानीय प्रभाव कहा जा सकता है। इस शब्दमें भौगोलिक आधार स्पष्ट है। शवको शु गतौसे भी बनाया जा सकता है क्योंकि शूर शब्दके निर्वचनमें यास्क इसी शु गतौ धातुका संकेत करते है– शूरः शवतेर्गतिकर्मणः।[81] शब्दोंके प्रयोग विशेष को स्पष्ट करनेके लिए यास्कने इस शब्दको उपस्थापित किया है। व्याकरणके अनुसार इसे शव् धातुसे अच्[82] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(43) दाति :– यह एक क्रियापद है। यह दाप् लवणे धातुके प्रथम पुरूष एक वचनका रूप है। काटना अर्थमें इसका प्रयोग प्राच्य देशोंमें होता है।[83] यह प्रकृति है अर्थात् धातुसे निष्पन्न क्रिया रूप। दाप् + लट् तिप् – दाति। शब्दोंके अर्थ की प्रसिद्धिमें भौगोलिक आधारको स्पष्ट करनेके लिए यास्कने इसे उपस्थापित किया है। भाषा वैज्ञानिक एवं व्याकरणकी दृष्टिसे यह उपयुक्त है।

(44) दात्रम् :– इसका अर्थ होता है लकड़ी आदि काटनेके लिए प्रयोगमें लाया जाने वाला औजार। लोक भाषामें इसे दांवी कहा जाता है। दात्र शब्द दाप् धातुसे निष्पन्न होता है। इसे हसुआ भी कहा जा सकता है। दात्र शब्दका प्रयोग दांवीके अर्थमें उत्तर देशमें भी होता है।[84] यह दात्र शब्द दाति प्रकृतिकी विकृति है। दाति प्रकृतिका प्रयोग उत्तरी प्रदेशोंमें नहीं देखा जाता। दात्र शब्दको दाप् धातुसे मानने पर भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी उपयुक्त होगा। यास्कका उद्देश्य देश विशेषमें विकृतिका प्रयोग दिखलाना है। व्याकरणके अनुसार इसे दाप् लवणे धातुसे ष्ट्रन[85] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(45) दण्ड्यः– यह तद्धित शब्द है। इसका अर्थ होता है जो दण्डके योग्य हो (दण्डमर्हतीति दण्ड्यः)[86] अथवा जो दण्डसे युक्त हो (दण्डेन सम्पद्यते इति वा) यास्क इस शब्दका उपस्थापन तद्धित एवं समास शब्दोंके निर्वचन सिद्धान्त प्रदर्शनमें करते हैं। इनके अनुसार इस प्रकारके शब्दोंके निर्वचनमें पूर्व खण्डका पहले निर्वचन करना चाहिए तथा उत्तर खण्डका तदनन्तर। दण्डयः पुरूषःमें दण्डयः पूर्व खण्ड है। दण्ड्य शब्द दण्ड् निपातने

धातुसे ण्यत् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यह भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है।

(46) दण्डः :– दण्डका अर्थ लाठी या सजा होता है।[87] यास्कके अनुसार दण्डसे ही विश्वकी व्यवस्था स्थिर है इसकेलिए दण्ड शब्द धारणार्थक दद् धातुसे निष्पन्न हुआ है– "दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः" यास्क आचार्य औपमन्यवके विचारको भी उपस्थापित करते हैं। उनके अनुसार दण्ड शब्द दम् उपशमे धातुसे निष्पन्न होता है– "दमनात् दण्डः"[86] जिससे दुष्टोंको उपशमन किया जाय, या दवाया जाय उसे दण्ड कहते हैं। इसे (अदान्तं दमयति येन असौ दण्डः) ऐसा विग्रह किया जा सकता है। गौतम धर्म सूत्रमें भी दमनके कारणही दण्ड कहा गया है।[88] आचार्य औपमन्यवका निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है।[89] दम् उपशमे धातुसे दण्ड शब्द मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त ठहरता है। यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे उपयुक्त नहीं है। व्याकरणके अनुसार इसे दण्ड् निपातने धातुसे अच्[90] प्रत्यय कर या दमु उपशमे धातुसे डः[91] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(47) कक्ष्या :– इसेका अर्थ होता है घोड़ेको कसनेकी रस्सी जिसे लोक भाषामें पेटारा कहा जाता है। यास्क इसके कई निर्वचन प्रस्तुत करते हैं– (1) कक्षं सेवते[92] यह कक्षका सेवन करती है। इसमें कक्ष–कक्ष्या (2) कक्षो गाहते क्स इति नामकरणः[92] यह शब्द विलोडनार्थक गाहू धातुसे क्स प्रत्यय करने पर बनाता है। यह वगलमें किसी वस्तुको विलोडन करता है या दवाता है। गाह् + क्स आद्यन्त विपर्यय करने पर कक्ष्या शब्द बनता है। (3) ख्यातेर्वानर्थकोऽभ्यासः। प्रकथनार्थक ख्या धातुका ही अनर्थक अभ्यास बनकर कक्ष्या शब्द बनता है–ख्य + ख्य–कख्य–कक्ष्य। (4) किमस्मिन् ख्यानमितिवा अर्थात् बगलमें क्या ख्यापनीय है इसके चलते कक्ष्या कहलायी– किम् + ख्या कक्ष्या। (5) कर्षतेर्वा यह शब्द कष् घर्षणे (खुजलाना अर्थ वाले) धातुसे बना है। नित्य–कालं ह्यसौ नखैः कष्यते यतः कक्ष्यः[93] अर्थात् नित्य यह नखों से खुजलाया जाता है इसीलिए इसका नाम कक्ष्य पड़ा। कक्ष्ये भवा कक्ष्या तत्सेवते इस प्रकार का सूत्र यास्क के समय में रहा

होगा। कक्ष्यका अर्थ होता है कुक्षि तथा उसमें होने वालेको कक्ष्या कहेंगे।

कक्ष्या शब्दके निर्वचनमें यास्ककी कल्पना शक्तिका पता चलता है जिसे उच्च कल्पनाकी श्रेणीमें नहीं ला सकते।[94] समानताके कारण ही मनुष्यके कक्ष्यका भी नाम पड़ा तत्सामान्यान्मनुष्य कक्षो बाहुमूल सामान्यादश्वस्य अर्थात् इस समानताके कारण ही मनुष्यकी कांख है तथा बाहुमूलके सादृश्यके कारण अश्वकी कांखको भी कक्ष्य कहा जाता है। कक्ष्या तद्धित शब्द है। इसे कष् घर्षणे धातुसे मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत होता है। शेषनिर्वचनों का अर्थात्मक महत्त्व है। कक्ष्यमें सादृश्यको आधार माना गया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे कष् घर्षणे धातुसे कक्ष्या उपयुक्त है।

कक्ष्या अंगुलिका भी वाचक है– प्रकाशयन्ति कर्माणि[96] इसके अनुसार यह शब्द काश् दीप्तौ धातुसे बनता है, क्योंकि यह कर्मोको प्रकाशित करती है। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। मात्र इसका अर्थात्मक महत्त्व है। लौकिक संस्कृतमें कक्ष्यका प्रयोग अंगुलिके लिए नहीं पाया जाता। यह शब्द वाहुमूल आदिका वाचक है।[97] व्याकरणके अनुसार इसे कक्ष् + यत्[98] कर कक्ष्यः बनाया जा सकता है। कक्षायां मध्ये भवा कक्ष्या[99] कक्षके मध्यमें होने वाली कक्ष्या कहलाती है। कक्ष्यः– कक्ष्याः।

(48) राजपुरूष :– केवल समासका प्रदर्शन करते हैं। राज्ञः पुरूषः राजाका पुरूष। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार भी यह षष्ठी तत्पुरूषका परिणाम ही माना जायगा।

(49) विश्चकद्राकर्ष :– यह एक सामासिक शब्द है। वि तथा चकद्र कुतेकी चाल के लिए प्रयुक्त होता है द्रा धातु कुत्सा एवं गति अर्थ में होता है। कुत्तो के सदृश जीवन यापन करने वाला पुरूष विश्चकद्र कहलाता है तथा उस पुरूषको दण्डके लिए न्यायालयमें ले जाने वाला विश्चकद्राकर्ष कहलाता है। चकद्राति कद्रातीति सतोऽनर्थकोऽभ्यासः तदस्मिन्नस्तीति विश्चकद्राकर्षः[100] डा0 वर्मा के अनुसार यह निर्वचन अस्पष्ट है।[101] वस्तुतः यास्क के इस निर्वचन में धातु एवं प्रत्यय का स्पष्टतः निर्देश नहीं प्राप्त है। विश् का अर्थ मनुष्य होता है तथा कद् का अभ्यास चकद्र होगा। अतः विश् + चकद्र –

विश्चकद्र तमाकर्षतीति विश्चकद्राकर्षः शब्द बनाया जा सकता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त नहीं है।

(50) कल्याणवर्णरूप :— यह सामासिक शब्द है— कल्याण वर्णस्येवास्य रूपम्। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त है।

(51) कल्याणम् :— कल्याणका अर्थ सोना होता है। यास्कका कहना है कि यह कमनीय होता है या सबसे प्रार्थनीय होता है इसलिए इसे कल्याण कहते है। कल्याणं कमनीयं भवति[102] इस शब्दमें कमु कान्तौ धातुका योग है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे तो यह उपयुक्त है लेकिन इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसमें कल् धातु मालूम पड़ता है जिसका अर्थ सुन्दर आदि होता है। कल्याण मंगलका भी वाचक है[103] निरुजत्वकी प्राप्ति होना भी इसका अर्थ होता है जो मंगलके अर्थमें समाहित है। कल्यं नीरुजत्वमानयतीति कल्याणम्[104] व्याकरणके अनुसार इसे कल् + अण् + शब्दे + घञ्[105] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(52) वर्ण :— इसका अर्थ रंग, द्विजादि जाति, अक्षर आदि होता है।[106] वर्णके निर्वचनमें यास्कका कहना है कि यह अपने आश्रितोंको आवृत कर लेता है— वर्णः वृणोतेः[102] इस शब्दमें वृञ् वरणे धातुका योग है— वृञ् + नः। नैयायिकों ने इसे गुण माना है— पराश्रितत्वं गुणत्वम्। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार यह शब्द वर्ण् (वर्ण क्रिया विस्तार गुणवचनेषु प्रेरणेच) धातुसे घञ् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। वर्ण् + घञ् — वर्णः

(53) रूपम् :— इसका अर्थ सौन्दर्य, स्वरूप, आदि होता है। यास्कके अनुसार यह सबोंको रूचता है, अच्छा, लगता है इसलिए इसे रूप कहा जाता है— रूपं रोचतेः[107] इस शब्दमें रूच् दीप्तौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे रूपु विमोहने धातुसे अच् प्रत्यय कर रूप् + अच् — रूपम्। या रूच् + अम् कर भी इसे बनाया जा सकता है।

(54) निधि :— राशि। इसे शेवधिः कहकर स्पष्ट किया है। सुखकी

राशिको निधि कहते हैं। निधि सेवनीय है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह अस्पष्ट है। व्याकरणके अनुसार नि + धा + कि से निधि शब्द बनता है।

(55) गौ :— इसका अर्थ पृथिवी, पशु (गाय, वैल) सूर्य रश्मि आदि होता है।[108] यास्क इसका निर्वचन कई अर्थोमें कई प्रकारसे उपस्थापित करते हैं — (1) यद्दूरं गता भवति[109] पृथिवीके अर्थमें निर्वचन प्रस्तुत करते हुए कहते हैंकि जो बहुत दूर तक गयी होती है या जहां मनुष्य जाते है वहां सब जगह यह मिलती है इसलिए इसे गो कहा जाता है। (2) यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति अर्थात् इस पृथिवी पर सभी प्राणी गमन करते हैं या सभी प्राणियोंका यह आधार स्थल है। (3) गातेर्विकारो नामकरणः इसे गाङ् गतौ धातुसे ओ प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। इन्हीं निर्वचनोंसे पशु वाचक गोकी भी सिद्धि हो जायगी।[110] पशु वाचक शब्द गम् धातुसे या गाङ् गतौसे माना जा सकता है। आदित्यके अर्थमें गो शब्दके निर्वचन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यह रसोंको अपनी ओर ले जाने वाला होता है (4) गमयति रसान्[111] इसके आधार पर गो शब्दमें गम् धातुका योग है। (5) गच्छति अन्तरिक्षे[111] यह अन्तरिक्षमें गमन करता है। इसमें भी गम् धातुका योग है। गोका अर्थ द्यु लोक भी होता है (6) यत् पृथिव्याः अधिदूरं गता भवति[111] यह पृथिवी पर दूर तक गयी होती है। (7) यच्चास्यां ज्योतींषि गच्छन्ति[110] अर्थात् इस द्यु लोकमें ज्यौतिषगण (नक्षत्रगण) गमन करते है।

यास्कके उपर्युक्त निर्वचनोंमें गम् धातु या गाङ् गतौ धातुका योग पाया जाता है। गम् धातुसे गो शब्द मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत होता है। इस निर्वचनको आख्यातजसिद्धान्त पर आधारित माना जायगा।[112] यास्कका यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त है। गो का अर्थ ज्या (धनुष की डोरी) भी होता है। अगर गायकी तांतसे यह बनी हो तो इसे ताद्धित प्रयोग कहेंगे।[113] अगर ज्या गायकी तांतसे नहीं बनी है तो (गमयति इषून् वाणान् इति गो) जो वाणोंको चलाती है उसे गो कहते हैं ऐसा करना होगा। उसे सादृश्यके द्वारा निर्मित भी माना जा सकता है। यद्यपि इसमें भी यास्क गम् धातुका भी योग मानते हैं। व्याकरणके अनुसार इसे गम् धातु + डो[114] प्रत्यय कर बनाया जायगा।

(56) मत्सर :– इसके सोम, द्वेषी, लोभ, कृपण आदि कई अर्थ होते है।[115] यास्कने भी विभिन्न अर्थोमें इसके कई निर्वचन प्रस्तुत किए हैं। सोमके अर्थ में इसका निर्वचन प्रस्तुत करते हुए कहते हैंकि यह तृप्ति दायक होता है– मन्दतेस्तृप्ति कर्मणः[111] इसके आधार पर मत्सर शब्दमें तृप्त्यर्थक मदि धातुका योग है–मद् – सृ –मत्सरः। मत्सर लोभका भी नाम है[116] क्योंकि इस लोभके चलते मनुष्य धनके प्रति मत्त वना रहता है– अभिमत्त एनेन धनं भवति[117] इसके अनुसार भी इस शब्दमें मद् धातुका योग है मद् – मत्त – मत्सरः। द्वेषीके अर्थमें भी मद् + सृ – मत्सर होगा इसके अनुसार मादयति जनम् या मदाय सरति धावति असौ मत्सरः। यास्कके उपर्युक्त दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दुष्टिकोणसे उपर्युक्त हैं। डा0 वर्मा इसके अर्थगत आधार को स्वीकार नहीं करते हैं।[118] आजकल मत्सर द्वेष, लोभ, मच्छड आदिके अर्थमें विशेषतया प्रचलित है। मत्सरसे वना मच्छड शब्द ध्वन्यात्मक संगतिसे युक्त है। इसके अर्थमें गुण सादृश्य या लक्षणाका योग माना जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें इसके अर्थका विस्तार पाया जाता है। व्याकरणके अनुसार इसे मदि हर्षे धातुसे + सरः[119] कर बनाया जा सकता है।

(57) पय :– पयःका अर्थ दूध एवं पानी होता है।[120] यास्क पयःके दो निर्वचन प्रस्तुत करते हैं। (1) पयः पिवतेर्वा[117] यह पीया जाता है। इसमें पा पाने धातु का योग है। पा धातुके कर्मके रूपमें इस शब्दका प्रयोग प्राप्त होता है। (2) पयः प्यायतेर्वा[117] इसके पान करनेसे ओज वुद्धि तथा बलकी वृद्धि होती है। पीतं सत् यत् ओजो वुद्धि वलादिकं वर्धयति तत् पयः। इसके अनुसार पयस् शब्दमें प्यायी वृद्धौ धातुका योग है। इसमें पोषकताके कारणही प्याय् धातुका प्रयोग पाया जाता है। सभी निर्वचन दूध एवं पानी, दोनों अर्थोमें उपयुक्त हैं। इन सभी निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे पा पाने+असुन्[121] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(58) क्षीरम् :– इसका अर्थ होता है, दूध, जल।[122] निरुक्तमें इसके निर्वचनमें कहा गया है। (1) क्षीरं क्षरतेः[123] इसके अनुसार क्षीर शब्दमें क्षरश्चोतने धातुका योग है। गाय आदिके स्तनोंसे जो क्षरण होता है उसे क्षीर दूध कहते है। (गवादीनां स्तनेभ्यः यत्क्षरति पतति तत् क्षीरम्।) (2) घसेर्वा ईरो नामकरणः[123] इसके अनुसार इसमें घस् धातु एवं ईर प्रत्यय है। घस् धातु भक्षण अर्थ में

होता है इसके अनुसार इसका अर्थ होता है जिसका भक्षण किया जाय, जो खाया जाय। इस निर्वचनमें घस् धातुका ही ह्रस्वीभूत रूप क्ष प्राप्त होता है—घस्—क्स्—क्ष + ईर्—क्षीरम्। यास्कके दोनों निर्वचनोंमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक उपयुक्तता है। पानी एवं दूध, दोनों अर्थोमें यह उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन सर्वथा संगत है। व्याकरण्के अनुसार इसे धस्लृ अदने धातुसे ईरन् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।[124] घस् धातु स्थित अ लोप तथा षत्व[125] करने पर क्षीरम् शब्द बनेगा।

(59) उशीर :— इसके निर्वचनमें यास्कने कहा है क्षीरके जैसा उशीर शब्द भी बनेगा वश् कान्तौ + ईरन्से सम्प्रसारण करने पर उशीर बनेगा।[126] इसका भाषा वैज्ञानिक आधार उपयुक्त है। व का उ सम्प्रसारणका परिणाम है। व्याकरणके अनुसार वश् कान्तौ + ईरन् प्रत्यय कर उशीर शब्द बनाया जा सकता है।[126]

(60) अंशु :— इसका अर्थ होता है सोम रस। निरुक्तमें इसके दो निर्वचन प्राप्त होते हैं (1) अंशुः शमष्टमात्रोभवति[123] इसके अनुसार अंशु शब्दमें शम् अव्यय + अशु व्याप्तौ धातुका योग है। शम् अव्यय सुखका वाचक है। इसके अनुसाार इसका अर्थ होगा— यजमानसे पीया गया वह सुखप्रद होता है। शम् + अश् — अश + शम् — अंशुः (2) अमनाय शं भवतीति वा इसके अनुसार इसका अर्थ होगा जीवनके लिए यह कल्याण कारक होता है। अंशु शब्दमें अम् + शु पदखण्ड अष्ट मात्रका वाचक हैं। इससे पता चलता है कि अम्का शम्में तथा शुका अश्में विकास हुआ है। उ प्रत्यय है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। इसकी अर्थात्मकता धार्मिक आस्था पर आधारित है। व्याकरणके अनुसार इसे अंश् + उ प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(61) चर्म :— चर्मका अर्थ चमड़ा होता है। यास्क इसके लिए दो निर्वचन प्रस्तुत करते हैं। 1— चर्म चरतेर्वा[127] इसके अनुसार इसमें चर् गतिभक्षणयोः धातुका योग है — चर + मन् — चर्म। चर् धातुसे निष्पन्न मानने पर इसका अर्थ होगा जो सारे शरीरमें फैला हुआ हो। (2) उच्चृतं भवतीति वा इसके अनुसार चर्म शब्दमें चृतीहिंसा ग्रन्थनयोः धातुका योग है — चृत् + मन्

– चर्मन् – चर्म। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा जो सम्पूर्ण शरीरसे उधेड़ा जाता है। मृग चर्म, व्याघ्रचर्म, गजचर्म आदि इसी आधार पर संगत हैं। यास्कका प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचनमें अर्थात्मक आधार है। चृत् + मन् से ध्वन्यात्मक आधार पर चर्त्मन् होना चाहिए था।[128] भाषा विज्ञानके अनुसार प्रथम निर्वचन सर्वथा उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार यह चर् गतौ धातुसे मनिन्[129] प्रत्यय करने पर बनता है।

(62) वृक्ष :– इसका अर्थ पेड़ होता है। यास्क इसके लिए दो निर्वचन प्रस्तुत करते है (1) वृक्षोव्रश्चनात्[127] इसके अनुसार वृक्ष शब्दमें व्रश्च छेदने धातुका योग है। छेदन क्रिया होनेके कारण वृक्ष कहलाता है क्योंकि वृक्षको काटा जाता है – व्रश्च + सः – वृक्षः वृक् + सः – वृक्षः। (2) वृत्वा क्षां तिष्ठतीतिवा अर्थात् वृक्ष पृथिवीको घेर कर ठहरता है। इसमें वृ + (क्षां)[130] का क्ष है। द्वादश अध्यायमें वृत क्षमः से वृक्षः माना गया है – पुण्यात्माओंके द्वारा जो निवास वरण किया जाए वह वृक्ष है। वृक्षोंके नीचे ऋषियोंका निवास रहता होगा।[130] यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है।[131] दोनों निर्वचनोमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति है। व्याकरणके अनुसार इसे वृक्ष् वरणे धातुसे अच्[132] प्रत्यय करने पर बनाया जा सकता है। वृक्ष् + अच् – वृक्षः। या आव्रश्चू छेदने धातु + सक्[133] कर वृक्षः बनायाजा सकता है।

(63) क्षा :– इसका अर्थ पृथ्वी होता है। क्षा शब्द क्षि निवासे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इस पर सभी निवास करते है – क्षा क्षियन्ते निवास कर्मणः[134] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे सर्वथा संगत माना जायगा।

(64) अमीमयत् :– अमीमयत् शब्द करता है। इसे यास्क मीमयति शब्द कर्मा[134] कह कर स्पष्ट करते है। इसमें शब्द करना अर्थवाले मी धातुका योग है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह उपयुक्त है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है।

(65) वय :– वि का अर्थ पक्षी होता हे। वयः शब्द वि का ही वहुवचन रूप है। निरुक्तके अनुसार – वेतेर्गतिकर्मणः[134] अर्थात् वि शब्द गत्यर्थक वी धातुके योगसे निष्पन्न होता है। पक्षी गमन क्रियासे युक्त है। भाषा विज्ञान के

अनुसार यह निर्वचन सर्वथा उपयुक्त है। इसमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक औचित्य है। व्याकरणके अनुसार इसे वी गतौ धातु + डित्[134] –वि बनाया जा सकता है। यास्क वि का अर्थ वाण भी करते हैं – अथापीषु नामेह भवति एतस्मादेव अर्थात् गत्यर्थक साम्यके आधार पर वि वाण का भी प्रतीक है क्योंकि वाणमें भी गति है।

(66) परुष :– इसका अर्थ होता है पर्ववाला या भास्वान्। आचार्य यास्क इसके निर्वचनमें औपमन्यवके सिद्वान्तको प्रस्तुत करते है – पर्ववती भास्वतीत्यौपमन्यवः[136] अहोरात्रादिको पर्व कहा जाता है उससे युक्तको परुष कहा जायगा।[137] लौकिक संस्कृतमें परुष कठोरका वाचक है।[138] यास्कने इसके लिए स्वयं कोई निर्वचन प्रस्तुत नहीं किया है। औपमन्यवका सिद्वान्त भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे पूर्ण उपयुक्त नहीं है। इसमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति पूर्ण उपयुक्त नहीं है। व्याकरणके अनुसार इसे पृ पालन पूरणयोः ६ ाातुसे उषच्[139] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(67) भूरि :– भूरिका अर्थ अत्यधिक होता है। निरुक्तके अनुसार भूरीति वहुनः नामधेयम्। प्रभवतीतिसतः[140] भूरि बहुतका नाम है क्योंकि वह समर्थ होता है। इस निर्वचनके अनुसार भूरि शब्दमें भू धातुका योग माना गया है जो सर्वथा उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे भी यह निर्वचन सर्वथा संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे भू सत्तायाम् प्राप्तौ + क्रिन्[141] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(68) शृंगम् :– इसके कई अर्थ होते है – सींग, शिखर आदि।[142] यास्क इसके लिए कई निर्वचन प्रस्तुत करते है – (1) शृंग श्रयतेर्वा[140] यह शब्द श्रिञ् सेवायां धातुके योगसे बनता है। क्योंकि शृंग सिरके आश्रयमें रहता है। (2) शृणातेर्वा इसके अनुसार शृंग शब्दमें हिंसार्थक शृ धातुका योग है क्योंकि पशु सींगसे हिंसा करता है या मारता है। (3) शम्नातेर्वा[140] इसके अनुसार शृंगमें उपशमनार्थक शम् धातुका योग है क्योंकि पशु सिंगसे मारकर दूसरोंको शान्त कर देते है। (4) शरणाय उद्गमतीति इसके अनुसार इसका अर्थ होता है – रक्षाके लिए ऊपर निकले रहते है इसमें शृ + गम् धातुका योग है। (5) शिरसो निर्गतमितिवा[140] इसके अनुसार इसमें शिर + गम्का योग हैं

क्योंकि वे शिरके ऊपर निकले रहते है। उपर्युक्त निर्वचन सींगके विभिन्न अर्थमें किए गए है। यास्कके इन निर्वचनोंमें चार धातुओंका योग देखा जाता है – प्रथम निर्वचनमें श्रिञ् सेवायाम् धातुका, द्वितीयमें हिंसार्थक शृ का, तृतीयमें उप शमनार्थक शम्, का एवं चतुर्थ तथा पंचममें गम् धातुका। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपर्युक्त सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। शृ धातुसे निष्पन्न शृंगम् शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टिसे समीचीन मालूम पड़ता है। शृंग शब्दके शिखर आदि अर्थ सादृश्य आदिके आधार पर होते है। व्याकरणके अनुसार इसे शृ हिंसायाम् धातुसे गन्[143] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यास्कका द्वितीय निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे पूर्ण उपयुक्त है।

(69) पाद :– पादके अर्थ पैर आदि होते है।[144] यास्क इस शब्दमें पद् गतौ धातुका योग मानते है – पद्यतेः[145] ।पद् गतौ का योग होनेके कारण कहा जा सकता है – शरीर धारी इससे चलते है इसलिए पाद कहा जाता है यह निर्वचन आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह सर्वथा उपयुक्त है। पशुपाद प्रकृतिके कारण सिक्के आदिके भाग भी पाद कहलाते है। सिक्केके भागकी समानताके कारण श्लोक आदिके भागको भी पाद कहा जाता है – पशुपादप्रकृतिः प्रभागपादः। प्रभागपादसामान्यादितराणि पदानि[145]। सादृश्यके आधार पर विभिन्न नामकरण हुए हैं इस सिद्धान्तकी पुष्टि इसके माध्यमसे होती है। व्याकरणके अनुसार इसे पद् गतौ धातुसे धञ्[146] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(70) निऋति :– इसका अर्थ निरुक्तमें पृथिवी है। निरमणात्[145] इसके अनुसार निर्ऋतिः शब्दमें रमु क्रीडायाम् धातुका योग है – नि + रम् – निर्ऋतिः। क्योंकि इसमें रहते हुए प्राणी रमण करते है। निर्ऋतिका अर्थ दुःख भी होता है – ऋच्छतेः कृच्छापत्तिरितरा[147] इसके अनुसार यह शब्द दुःखवाचक ऋच्छ् धातुसे बनता है। ऋ गतौ धातुसे ऋति बनाया जा सकता है जिसका अर्थ होता है सन्मार्ग। इसमें निर् उपसर्ग मानना भाषा विज्ञानके अनुकूल होगा। निर्को भाषा विज्ञानके शब्दोंमें पूर्व प्रत्यय कहा जायगा। रमु क्रीडायाम् धातुसे भी इसका निर्वचन माना जा सकता है। लेकिन इससे ध्वन्यात्मक संगति पूर्ण नहीं होगी। डा0 वर्माके अनुसार व्यंजनगत उदासीनताके कारण यह निर्वचन पूर्ण उपयुक्त नहीं है।[148] यास्क द्वारा दिए गए निर्वचनों में प्रथम

पृथ्वी वाचक है तथा द्वितीय दुःख वाचक। अर्थात्मक संगतिके लिए ही ये निर्वचन किये गये हैं। प्रथममें निः + रम् एवं द्वितीयमें निः + ऋच्छ् धातु का योग है। लौकिक संस्कृतमें निर्ऋतिः दुःख या नरकका वाचक है – (निष्क्राता ऋतेः सन्मार्गात् निर्ऋतिः) अर्थात् सन्मार्गसे रिक्त निकल जाना निर्ऋतिः है।[149] व्याकरणके अनुसार इसे निर् + ऋ गतौ + क्तिन् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(71) माता :– माताका अर्थ यहां अन्तरिक्ष है – निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि[147] अर्थात् इसमें प्राणी बनाये जाते हैं। इस आधार पर माता शब्दमें मा धातुका योग है। मा धातुसे मातामें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति उपयुक्त है। इसी निर्माणके आधार पर जननीको भी माता कहा जाता है। अन्तरिक्षमें निर्माणका आधार अल्प प्रसिद्ध है। व्याकरणके अनुसार माता शब्दको मान् पूजायाम् + तृच् प्रत्यय कर मातृ – माता बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके आधार पर यह सर्वथा संगत है। मातृका ही रूपान्तरण डवजीमत अंग्रेजीमें प्राप्त होता है।

(72) वव्रि :– इसका अर्थ रूप होता है।[150] यास्क इसमें वृञ् आच्छादने धातुका योग मानते है – वृणोतीतिसतः[147] यह रूप आश्रितोंको आच्छादित कर लेता हे। वव्रि शब्दका लौकिक प्रयोग प्रायः नहीं प्राप्त होता। वैदिक भाषामें इसका प्रयोग पाया जाता है। वृञ् धातुसे वव्रि शब्द मानने पर अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं है।

(73) हिरण्यम् :– हिरण्यका अर्थ सोना होता है। यास्क हिरण्य शब्दके कई निर्वचन प्रस्तुत करते हैं – (1) ह्रियत आयम्यमानमिति वा[151] अर्थात् आभूषणके रूपमें विस्तृत करनेके लिए इसे हरण करते है। इसके अनुसार इसमें हृ हरणे धातुका योग सिद्ध होता है। (3) हितरमणं भवतीतिवा[151] अर्थात् यह हितकारक एवं रमणीय होता है। इसके अनुसार हिरण्य शब्दमें हित + रम् धातुका योग माना गया है हित + रम्–हिरण्यम्। (4) हृदय रमणं भवतीति वा[151] अर्थात् इसे रखनेकी इच्छा प्रत्येक व्यक्ति को होती है। इसके अनुसार हिरण्य शब्दमें हर्य् धातुका योग है डा0 वर्माके अनुसार यह निर्वचन आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है।[121] हृ धातु से हिरण्य शब्द मानने में आख्यातज

सिद्धान्तकी अनुकूलता प्रतिलक्षित होती है। यास्कके अन्य निर्वचन लोकप्रिय व्युत्पत्ति पर आधारित हैं। इन निर्वचनोंसे पता चलता है कि यास्कके समयमें

स्वर्णका व्यापक प्रयोग होता था तथा उस समय भी यह महार्घ था। यास्कके अन्तिम निर्वचन, सोनेके प्रति व्यक्तियोंकी असक्तिका सूचक है। व्याकरणके अनुसाार इसे हर्य् गतिकान्त्योः धातुसे कन्यन्[153] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(74) अन्तरिक्षम् :– इसका अर्थ आकाश होता है। (1) अन्तराक्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा अर्थात् यह द्युलोक तथा पृथ्वी लोकके मध्यमें है एवं पृथ्वी तक अवस्थित है। इसके अनुसाार अन्तर् + क्षाका योग इस शब्दमें प्राप्त होता है। (2) शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा[154] अर्थात् शरीरके अन्दर यहीं एक अविनश्वर है। इसके अनुसार अन्तर + क्षि धातुका योग इसमें प्राप्त होता है। अन्तरिक्षका प्रयोग वैदिक भाषामें वाहुल्येन हुआ है। अन्तर, ध्वर, प्रातर् आदि अव्ययमें परिगणित हैं इसलिए अन्तर निपातपूर्वक ईक्ष् धातुसे यह शब्द बनाना अच्छा होगा। डा0 वर्मा इस निर्वचनको पूर्ण स्पष्ट नहीं मानते हैं।[155] यास्कके प्रथम निर्वचनमें ध्वन्यात्मक संगति है अर्थात्मकता दृश्यानुकूल है। द्वितीय निर्वचन पूर्ण संगत नहीं है। व्याकरणके अनुसार इसे ईक्ष् दर्शने धातुसे कर्मणि घञ् प्रत्यय कर अन्तर + ईक्ष् + घञ् – अन्तरीक्षम् बनाया जा सकता है। (धावापृथिव्योरन्तरीक्ष्यते)[156]

(75) समुद्र :– समुद्रका अर्थ सागर होता है। यास्क इसके कई निर्वचन प्रस्तुत करते हैं – (1) समुद्रवन्त्यस्मादापः[157] अर्थात् इससे जल समुद्रवित होते हैं। इसके अनुसार समुद्र शब्दमें सम् + उ + द्रु गतौ धातुका योग है। (2) समभिद्रवन्ति एनामापः[157] अर्थात् जल एकत्र होकर इसे प्राप्त करते है। छोटी छोटी नदियां बड़ी नदीमें तथा बड़ी नदी समुद्रमें मिलती है। इसके अनुसार इसमें सम् + अभि + द्रु धातुका योग है (3) सम्मोदन्तेऽस्मिन्भूतानि अर्थात् इसमें सभी जलचर प्राणी प्रसन्न रहते है। इसके अनुसार समुद्रशब्दमें सम् + मुद् हर्षे धातुका योग है। (4) समुदको भवति अर्थात् यह प्रचुरजलसे सम्पन्न होता है। इसके अनुसार सम् + उदकसे समुद्र बना है। (5) समुनत्तीतिवा[157] अर्थात् यह आर्द्र करता रहता है। इसके अनुसार इसमें सम् + उन्दी क्लेदने

धातुका योग है। डा0 वर्माके अनुसार यह निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुकूल है।[158] ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंमें उपयुक्त है। इसके निर्वचनमें मुद्रया सहितः समुद्रःभी कहाजा सकता है क्योंकि इसमें रत्नभरे पड़े है। समुद्रसे ही रत्न निकाले जानेका पौराणिक आख्यान उपलब्ध होता है या इसका एक नाम रत्नाकर है। मुद्राका अर्थ मर्यादाभी होता है तदनुसार सह मुद्रया मर्यादया वर्तते इतिवा अर्थात् मुद्रा या मर्यादाके साथ रहने वाला समुद्र कहलाता है।[159] व्याकरणके अनुसार इसे सम् उपसर्ग पूर्वक उन्द् धातुसे रक्[160] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(76) आर्ष्टिषेणः— यह एक ऋषिका नाम है। यह शब्द तद्धितान्त है। निरुक्तमें इसके दो निर्वचन प्राप्त है — (1) ऋष्टिषेणस्य पुत्रः[161] अर्थात् ऋष्टिषेणके पुत्र होनेके कारण आर्ष्टिषेण कहलाया। (2) इषितसेनस्येतिवा अर्थात् इषितषेणके पुत्र होनेके कारण आर्ष्टिषेण कहलाया। यास्कका प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे संगत है। ऋष्टिषेणका अर्थ ऋष्टियों अर्थात् शस्त्रोंसे सम्पन्न सेना वाला तथा इषितसेनका अर्थ कार्यरत सेनावाला होता है।[162] द्वितीय निर्वचनका आधार अर्थात्मक है। भाषा विज्ञानके अनुसार इस शब्दमें अपश्रुति मानी जायगी। व्याकरणके शब्दोंमें इसे सम्प्रसारण कहा जा सकता है। तद्धितके अनुसार ऋष्टिषेण + अण् — आर्ष्टिषेणः होगा।

(77) सेना :— सेनाका अर्थ होता है सैनिकोंका दल। निरुक्तके अनुसार — सेना सेश्वरा (2) समानगतिर्वा[161] अर्थात् स्वामीके साथ जो हो उसे सेना कहा जायगा या जो समान गति वाला हो। प्रथम निर्वचनमें सह — स + इन — सेना। इनका अर्थ स्वामी होता है इनेन सहिता सेना। द्वितीय निर्वचनके अनुसार समान + गम् — धातु है। दोनोंही निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण है। डा0 वर्मा इसे भाषा विज्ञानकी अविकसित स्थितिका निर्वचन मानते है।[163] अमर कोषके प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामीने इसे सह इनेन वर्तते इति — सेना माना है। इसके अनुसार स + इनासे सेना बना।[164] यास्कके निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक आधार तो अपूर्ण है ही अर्थात्मक आधार भी आंशिक ही संगत है। (सिनोति शत्रुमिति सेना)

(78) पुत्र :– इसका अर्थ आत्मज[166] होता है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते है– (1) पुरु त्रायते[167] अर्थात् बहुत अधिक किए गए पापोंसे पिताकी रक्षा करता है।[168] इसके अनुसार पुरु + त्रै पालनें धातुका योग है। पुरुका अर्थ होता है बहुत अधिक। पुरुका अवशिष्ट पु + त्र – पुत्र। (2) निरपणात् वा अर्थात् वह निरपन पिण्ड दान क्रियासे पितरोंको तृप्त करने वाला होता है। इसके अनुसार इसमें पृ धातुका योग है। (3) पुन्नरकं ततस्त्रायत इतिवा[167] अर्थात् पुम् नरकसे यह पिताको वचाने वाला होता है। इसके अनुसार इसमें पुम् + त्रै पालने धातुका योग है। पुत् + त्र। यास्कका प्रथम एवं द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। प्रथम निर्वचन – पुरु + त्रायतेसे पुत्र द्वारा सम्पादित वृद्धावस्थामें माता पिताकी सेवा द्योतित होती है। द्वितीय निर्वचन सांस्कृतिक आधारसे युक्त है। वैदिक संस्कृतिमें पिण्डदानादिसे पितरोंकी तृप्ति सर्वमान्य एवं धर्मशास्त्रानुमोदित है। यास्कके अंतिम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अतः भाषा विज्ञानके अनुसार यही निर्वचन संगत है। अमर कोषकी रामाश्रमी टीका एवं मनुस्मृतिमें भी इसी प्रकारके निर्वचन प्राप्त होते है।[169] व्याकरणके अनुसार इसे पुम् + त्रै + कः [170] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(79) ऋषि :– इसका अर्थ होता है – मन्त्र द्रष्टा। निरुक्तमें मन्त्रदर्शन अर्थसे सम्बद्ध इसका निर्वचन प्राप्त होता है – ऋषिः दर्शनात्[171] अर्थात् दर्शन करनेके कारण ऋषि कहा जाता है क्योंकि उसने मन्त्रोंका दर्शन किया या वे सूक्ष्म अर्थोको भी देखते है।[172] यास्क आचार्य औपमन्यवके सिद्धान्तका भी उल्लेख इस अवसर पर करते है। स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः अर्थात् औपमन्यवके अनुसार ऋषियोंने मंत्रोंका दर्शन किया इसलिए ऋषि कहलाये। इसके अनुसार ऋषि शब्दमें दृश् दर्शने धातुका योग है। दृशि शब्द ही घिसतेघिसते ऋषि बन गया ऐसा प्रतीत होता है। मन्त्र दर्शनसे ऋषि बननेका प्रमाण ब्राह्मण ग्रन्थसे प्राप्त होता है –तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवस्तदृषीणामृषित्वम् इति विज्ञायते।[173] अर्थात् तपस्या करते हुए इन ऋषियोंको वेदप्रकट हुआ इसीलिए ऋषि कहलाये, यही ऋषियोंका ऋषित्व है। डा0 वर्माके अनुसार ध्वन्यात्मक आधार पर तो यह उपयुक्त है लेकिन अर्थात्मक आधार से–अनुपयुक्त है।[174] लेकिन डा0

वर्माका यह कथन संगत नहीं है क्योंकि इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यास्कका निर्वचन ऋषियोंकी विश्रुत विशेषता पर आधारित है। इस निर्वचनसे ही ऋषि शब्दमें दर्शनार्थक ऋष् धातुका अनुमान लगाया जा सकता है जो दृश्का ही कालान्तरवर्तीरूप है। व्याकरणके अनुसार इसे ऋष् गतौ धातुसे इन् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।[175] औपमन्यवका मत यास्क समर्थित है।

(80) उत्तर :– इसका अर्थ होता है.उच्चतर। निरुक्तके अनुसार – उत्तरः उद्धततरो भवति[176] अर्थात् उत्तर (उद्धततर) ऊपरकी ओर उठा हुआ होता है। इसके अनुसार उत्तर शब्दमें उत् + तरप्का योग है उद्धतका अवशिष्ट उत् + तर – उत्तर। भाषा विज्ञानके अनुसार उच्चतरको ही प्रयत्नलाघव सिद्धान्तके अनुसार उत्तरमें परिणत हो जाना कहा जा सकता है – उच्च + तर, उत् + तर – उत्तरः। उत्के बाद तर् को तृ धातुका तर माना जायगा। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे तृ प्लवन तरणयोः धातुसे अच्[177] प्रत्यय करने पर अतिशयेनोद्गतः उत्तरः बनाया जा सकता है। उत् + तृ – तर् + अच् – उत्तरः। उत्तरः के ऊपर, उत्तर दिशा, श्रेष्ठ तथा उत्तरम्का जवाव भी अर्थ होता है।[178]

(81) अधर :– अधरका अर्थ अधोगति, निम्नतर या नीचे होता है। निरुक्तके अधरोऽधोरः[179] अर्थात् नीचे गया हुआ होता है। इसके अनुसारअधरः शब्दमें अधः + अरः का योग है अधः का अर्थ होता है नीचे तथा अरः गया हुआ। निरुक्तके अनुसार अधःका अर्थ होता है जो ऊपर न जा सके – धावतीत्यूर्ध्वगति प्रतिषिद्ध[180] ऊर्ध्वगतिप्रतिषिद्ध होनेसे ही अधः कहलाया। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। अधः + ऋ गतौका अर अधः अरति गच्छतीति अधरः। ओष्ठका वाचक अधर शब्द भी उसी निर्वचनसे माना जायगा व्याकरणके अनुसार इसे धृञ् धारणे धातुसे[181] अच् प्रत्यय कर धरः तथा न धरः अधरः बनाया जा सकता है।

(82) अधः :– अधर शब्दमें ही यह विवेचित है।

(83) शन्तनु :– यह संज्ञा पद है। ऋष्टिषेणके छोटे पुत्रका नाम शन्तुन था[182] निरुक्त के अनुसार – शन्तनुः शं तनोऽस्त्विति वा शमस्मै

तन्वाअस्त्विति वा अर्थात् हे शरीर तुम्हारा कल्याणहो या इस शरीरके लिए सुखहो इस आधार पर शन्तनु बना। इसके अनुसार शम् (शान्तिका वाचक) + तनु – शन्तनु शब्द है। भाषावैज्ञानिक आधार पर यह निर्वचन उपयुक्त है।

नामोंकी सार्थकताके लिए यास्कने उपर्युक्त प्रयास किया है। शान्तनु शब्द महाभारतमें शन्तनुके रूपमें उपलब्ध होता है[183] इसे ध्वनिपरिवर्तनका परिणाम माना जा सकता है। महाभारत कालीन शन्तनु यास्क चर्चित शन्तनुसे भिन्न है। शन्तनु शब्दमें मंगल अर्थको आधार माना गया है।

(84) पुरोहित :– इसका अर्थ होता है यज्ञ सम्पादन करने वाला। निरुक्तके अनुसार पुरोहितः पुर एनं दधति[180] अर्थात् राजा लोग अनुष्ठानमें इन्हें आगे करते है। इसके अनुसार पुरोहित शब्द में पुरः + धा धातुका योग है। शान्तिक पौष्टिकाभिचारिकेषु कर्मसु पुरः एनं दधति पुरस्कुर्वन्ति राजानः[184] यास्कके इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है – पुरः + धा – हित पुरोहित। यह शब्द अपेक्षाकृत बाद का बना मालूम पड़ता है क्योंकि धा धातुसे ही बना पुरोधा शब्द वेदोंमें भी प्राप्त होता है जिसमें धा धातुका मूल रूप सुरक्षित है। व्याकरणके अनुसार इसे पुरः + धा (दधातेर्हिः)[185] + क्त–पुरोहित बनाया जा सकता है–पुरोऽग्रे धीयते इति पुरोहितः। आज भी अनुष्ठानके सम्पादनमें पुरोहितको अग्रगामी होना पड़ता है।

(85) देवश्रुतम् :– यह सामासिक शब्द है। इसका अर्थ होता है – देवताओंके द्वारा सुना गया। निरुक्तमें मात्र इसका अर्थ स्पष्ट किया गया है – देवा एनं शृण्वन्ति[186] अर्थात् जब स्तुतियोंको उच्चारण करता है तो देवता इसे सुनते है। इसके अनुसार इसमें देव + श्रु + क्त प्रत्यय हैं। देव श्रुतम् में पर्याप्त ध्वन्यात्मकता है। व्याकरणके अनुसार भी इसे देव + श्रु + क्त – देवश्रुतम् बनाया जायगा। यह नाम मंगल आधारसे युक्त है।

(86) रराण :– इसका अर्थ होता है देता हुआ या दानशील। निरुक्तके अनुसार रराणः रातिः अभ्यस्तः[186] अर्थात् रराणमें रा दाने धातुका योग है एवं रा के अभ्यास (द्वित्व) हो जानेसे रराण शब्द बनता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे रा दाने धातुसे कानच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(87) आदित्य :– इसका अर्थ सूर्य होता है।[187] निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते हैं – (1) आदत्ते रसान् अर्थात् यह रसोंको ग्रहण करता है। सूर्य की किरणोंसे जल सोख लिए जाते हैं इसके अनुसार आदित्य शब्दमें आ + दा धातुका योग है। (2) आदत्ते भासं ज्योतिषाम्[188] अर्थात् यह नक्षत्रोंकी दीप्तिको ले लेता है। इसके अनुसार भी आदित्य शब्दमें आ + दा धातुका योग है। (3) आदिप्तो भासा + इतिवा[188] अर्थात् यह प्रकाशसे आवृत्त है। इसके अनुसार आदित्य शब्दमें आ + दीप् दीप्तौ धातुका योग है। (4) अदितेः पुत्र इति वा[186] अर्थात् यह अदितिका पुत्र है। यह निर्वचन ऐतिहासिक आधार पर आधारित है एवं तद्धित प्रयोगसे निष्पन्न है। तृतीय निर्वचन आकृतिमूलक है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे आदित्य सर्ग है तथा दि धातु। इसमें त्य प्रत्यय लगकर आदित्य शब्द बना है। दि धातुकी प्राप्ति दिन शब्दमें हो जाती है। अर्थात्मक आधार पर सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार इसे अदिति + ण्यः प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। अदितिके सात पुत्र है – सूर्य, मित्र, वरूण, अर्यमा, दक्ष, भग एवं अंश। इन सबोंकी आदित्य संज्ञा है। निरुक्तका चतुर्थ निर्वचन इसी ऐतिहासिकतासे सम्बद्ध है।

(88) व्रतम् :– व्रत कर्मका नाम है। निरुक्तमें कई अर्थोमें इसका निर्वचन हुआ है। (1) व्रतमितिकर्मनाम वृणोतीतिसतः[188] अर्थात् कर्म अर्थमें व्रत वृञ् आच्छादने धातुसे माना जायगा क्योंकि यह कर्म मनुष्यों को शुभाशुभ फलोंसे आच्छादित कर देता है। व्रतका दूसरा अर्थ निवृत्तिपरक होता है–यम नियमादि (2) इदमपीतरद् व्रतमेतस्मादेव निवृत्तिकर्मवारय– तीतिसतः[188] अर्थात् यह दूसरा निवृत्तिपरक यम नियमादि अर्थ वाला व्रत भी वृ धातुसे ही बनता है यह मनुष्योंको अकर्मसे हटाता है। (3) अन्नमपि व्रतमुच्यते यदावृणोत्तिशरीरम्[188] अर्थात् अन्नको भी व्रत कहा जाता है क्योंकि वह शरीरको आच्छादित करता है। इसके अनुसार भी व्रतमें वृञ् आच्छादने धातु का योग है क्योंकि अन्नसे व्यक्ति का शरीर पुष्ट होता है। वृञ् आच्छादन से व्रत शब्दमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त प्रतीत होता है भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार वृञ् धातुसे अतच् प्रत्यय करने पर या वृङ् धातुसे अतच् प्रत्यय करने पर व्रत शब्द बनेगा।[190]

(89) स्व :– इसका अर्थ आदित्य होता है। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते है – (1) स्वरादित्यो भवति सुअरणः[191] अर्थात् आदित्य अर्थमें स्वः शब्द सु + ऋ गतौके योगसे निष्पन्न है सु + ऋ – अर् – स्वर् – इसके अनुसार इसका अर्थ होगा सुन्दर गमन करता है। (2) सु ईरणः[191] अर्थात् अन्धकारको भगाने वाला या कर्मोको प्रेरित करने वाला होता है। इसके अनुसार इसमें सु + ईर् धातुका योग है। (3) स्वृतो रसान्[191] अर्थात् यह सभी रसोंको ग्रहण करनेके लिए गया होता है। सूर्य अपनी किरणोंसे रस (जल आदि) ग्रहण कर लेता है। इसके अनुसार इसमें स्वृ धातुका योग है। (4) स्वृतो भासं ज्योतिषाम्[191] अर्थात् यह सभी नक्षत्रोंके प्रकाशके प्रति गया होता है। इसके अनुसार भी इसमें स्वृ धातुका योग है। (5) स्वृतो भाषा इति वा[191] अर्थात् यह प्रकाशसे घिरा होता है। इसके अनुसार भी इसमें स्वृ धातुका योग है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। शेष सभी निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते है। अंतिम निर्वचन आकृति मूलक है। भाषा विज्ञानके अनुसार प्रथम निर्वचनको ही उपयुक्त माना जायगा। भाषा विज्ञानके अनुसार स्वःमें सु धातु तथा अर् प्रत्यय मालूम पड़ता है। सूर्य शब्दमें यह धातु हमें प्राप्त होता है। व्याकरणकी दृष्टिसे स्वर अव्यय है। इसे स्वृ + विच् – स्वः बनाया जा सकता है। स्वः द्युलोकका भी वाचक है।

(90) पृश्नि :– इसका अर्थ आदित्य होता है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्रस्तुत हैं – (1) पृश्निरादित्यो भवति प्राश्नुत एनं वर्ण इति नैरुक्ताः[192] अर्थात् निरुक्तकारोंके अनुसार इसे वर्ण व्याप्त किए रहते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें प्र + अशु व्याप्तौ धातुका योग है (2) संस्प्रष्टा रसान्[192] अर्थात् यह रसोंको अच्छी तरह स्पर्श करने वाला होता है। इसके अनुसार पृश्नि शब्दमें स्पृश् धातुका योग है। (3) संस्प्रष्टा भासं ज्योतिषाम्[192] अर्थात् नक्षत्रोंको वह अच्छी तरह स्पर्श करने वाला है। इसके अनुसार भी इस शब्दमें स्पृश् धातुका योग है। (4) संस्पृष्टाभासेतिवा[192] अथवा यह दीप्ति प्रकाशसे संस्पृष्ट हैं। इसके अनुसारभी इस शब्दमें स्पृश् धातुका योग है। पृश्निका अर्थ द्युलोक भी होता है (5) अथ द्यौः संस्पृष्टा ज्योतिभिः पुण्यकृद्भिश्च[192] अर्थात् यह द्युलोक ज्योतियों एवं पुण्यवानोंसे स्पृष्ट है। यास्कके प्रथम एवं तृतीय निर्वचनको आकृतिमूलक कहा जा सकता है। स्पृश् धातु से नि प्रत्यय मानकर पृश्नि

शब्दके निर्वचन करनेमें ध्वन्यात्मक आधार ज्यादा समीचीन मालूम पड़ता है। शेष निर्वचनों का अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार स्पृश् धातुसे[193] नि प्रत्यय कर पृश्निः बनाया जा सकता है।

(91) नाक :– नाकका अर्थ आदित्य होता है। निरुक्तके अनुसार (1) नेता रसानाम् अर्थात् वह रसोंको ले जाने वाला होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें नी धातुका योग है। (2) नेता भासाम् अर्थात् यह प्रकाशको ले जाने वाला होता है। (3) इसके अनुसार भी इसे नी प्राषणे धातुका योग है। (3) ज्योतिषां प्रणयः अर्थात् यह ग्रह मण्डलोंको घुमाने वाला है। इसके अनुसार भी इसमें नी धातुका योग है। द्वितीय निर्वचन आकृति मूलक है। अंतिम निर्वचन भौगोलिक महत्त्व रखता है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे ये निर्वचन उपयुक्त नहीं हैं। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंके उपयुक्त हैं। नाकका अर्थ स्वर्गभी होता है।[194] लौकिक संस्कृतमें नाकका अर्थ स्वर्ग ही प्राप्त होता है। नाकका अर्थ अन्तरिक्ष भी होता है।[195] स्वर्गके अर्थमें नाकः न अकम् अस्मिन्निति नाकः[196] अर्थात् अकका अर्थ दुःख होता है। जहां दुःख नहीं हो, सुख ही सुखहो उसे नाक कहा जाता है। नाकका अर्थ द्यु लोक भी होता है – कमिति सुखनाम तत् प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्येत।[197] अर्थात् कम्का अर्थ सुख होता है। इसके विपरीत अकम्का अर्थ दुःख होगा। न + अक –नाक, जहां दुःखका अभाव हो। द्युलोकमें थोड़ाभी दुःख नहीं होता। (न वा अमूं लोक गतवते किंच नासुखम् पुण्यकृतौ ह्येव तत्र गच्छन्ति।)[197] न + अक–नाकः ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे इसे ही संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे न + अकः–नाकः बनाया जायगा। व्याकरण सम्मत व्याख्यामें यास्कके निर्वचनही आधार हैं।

(92) विष्टप् :– इसका अर्थ आदित्य होता है। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते है – (1) आविष्टो रसान्[197] अर्थात् वह रसोंमें आविष्ट है। इसके अनुसार इस शब्दमें विश् प्रवेशने धातुका योग है। (2) आविष्टो भासं ज्योतिषाम्[197] अर्थात् ग्रहोंके प्रकाशके प्रति लगा हुआ है। इसके अनुसार भी इसमें विश् धातुका योग है। (3) आविष्टो भोसेति[197] अर्थात् यह दीप्तिसे आविष्ट होता है। इसके अनुसार भी विष्टप् शब्दमें विश् धातुका योग है। विश् धातु से विष्टप शब्द माननेमें ध्वन्यात्मक आधार संगत है। विश + क्त करना

अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि क्त का ही विस्तार तप् में हुआ है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। द्वितीय एवं तृतीय निर्वचन आकृति मूलक है। व्याकरणके अनुसार विश् + कपन् (तृट्च) से बनाया जा सकता है।

(93) नभ :– नभका अर्थ आदित्य होता है। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते हैं– (1) नेता भासाम्[199] अर्थात् यह प्रकाशको ले जाने वाला है। इसके अनुसार इसमें नी धातुका न तथा भासका भ अवशिष्ट रह कर नभ हुआ ऐसा प्रतीत होता है। (2) ज्योतिषां प्रणयः[199] अर्थात् यह ग्रहोंको गति देनेवाला है। इसके अनुसार इसमें नी धातुका योग है। (3) अपि वा भन एव स्याद्विपरीतस्य[199] अर्थात् भन शब्द ही विपरीत होकर वर्ण विपर्ययके द्वारा नभ हो गया है (4) न न भातीतिवा[199] अर्थात् वह नहीं प्रकाशित होता ऐसी बात नहीं प्रत्युत् वह प्रकाशित होता है। इसके अनुसार इसमें भा दीप्तौ धातुका योग है। इन्हीं निर्वचनोंसे द्यु लोकभी व्याख्यात हैं। प्रथम एवं चतुर्थ निर्वचन आकृति मूलक आधार पर आधारित हैं। द्वितीय निर्वचनका आधार भौगोलिक है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। डा0 वर्माके अनुसार इन निर्वचनोंमें यास्ककी अनुन्नत कल्पनाका दर्शन होता है।[200] नभका अर्थ आकाशभी होता है[201] जो द्युलोकके साम्यके आधार पर माना जा सकता है। यास्कके तृतीय निर्वचनमें भनको विपरीत कर नभ माना गया है। इस निर्वचनमें भन शब्दमें भा धातुका योग रहनेसे भनका अर्थ प्रकाशक माना जायगा तथा वही भन शब्द वर्ण विपर्ययके द्वारा नभके रूपमें स्वार्थमें ग्रहण किया गया जो आदित्यके अर्थमें सर्वथा उपयुक्त है। निर्वचन सिद्धान्तके अनुसार यह सर्वथा उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार णभ् हिंसायाम् धातुसे असुन्[202] प्रत्यय करने पर नभस् शब्द बनता है।

(94) रश्मि :– रश्मि किरण एवं घोड़ेकी रास (लगाम) को कहते है।[203] निरुक्तके अनुसार रश्मिर्यमनात्[204] अर्थात् नियमन करनेके कारण रश्मि कहा जाता है। रास एवं किरण दोनों अर्थोमें यह युक्त है। घोड़ेको रास एवं जलको किरण नियमन करती है। इस निर्वचनमें धातुके साथ शब्दका ध्वन्यात्मक सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। अतः अर्थ की संगति के लिए ही यास्क ने इस प्रकार का निर्वचन प्रस्तुत किया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे

उपयुक्त नहीं माना जायगा। राजवाड़ेके अनुसार रश् धातुसे रश्मि शब्द मानना ज्यादा अच्छा है जिसका अर्थ बांधना होता है। यह वैदिक कालीन प्रारंभिक धातु है।[205] व्याकरणके अनुसार अशु व्याप्तौ धातुसे अश्नोतेरश्च[206] से मिः प्रत्यय कर र + अश् + मिः – रश्मिः माना जा सकता है।

(95) दिश :– यह दिशा (काष्ठा) का वाचक है। इसके कई निर्वचन प्राप्त होते है (1) दिशतेः अर्थात् यह दिश् अतिसर्जने धातुसे बना है। इसके अनुसार अर्थ होगा देवताओंके लिए वलि इन्हीं दिशाओंमें दी जाती है। अतः इसी अतिसर्जन क्रियाके कारण दिशः शब्द बना (2) आसदनात्[207] अर्थात् ये दिशायें प्रत्येक वस्तुओंके समीप तक रहती है। इसके अनुसार इसमें सद् + क्विप् + इकार – धातुके वर्ण परिवर्तनके द्वारा दस–इ–दिशः। (3) अपि वाभ्यशनात्[207] अर्थात् वह सभी पदार्थोको व्याप्त कर लेती है। इसके अनुसार इसमें अश् व्यापने धातु है। डा0 वर्माके अनुसार यह निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुकूल है।[208] प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। इसकी अर्थात्मकता सांस्कृतिक आधार रखती है। शेष दोनों निर्वचनोंमें आंशिक ध्वन्यात्मकता है। अर्थात्मक दृष्टिसे अन्तिम दो भी उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार इसे दिश् अतिसर्जने धातुसे क्विन्[209]प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(96) काष्ठा :– काष्ठाका अर्थ दिशा होता है। इसके अतिरिक्त भी इसके कई अर्थ होते है।[210] दिशाके अर्थमें 1 – क्रान्त्वा स्थिता भवति[207] अर्थात् यह दूसरेको घेर कर अवस्थित है।[211] इसके अनुसार इस शब्दमें क्रम् धातु एवं स्था धातुका योग है – क्रम् + स्था – काष्ठा। उपदिशाके अर्थमें इतरेतरं क्रान्त्वा स्थिता भवति[207] अर्थात् आपसमें एक दूसरेको घेर कर अवस्थित है। इसके अनुसारभी क्रम् + स्थाका योग स्पष्ट है। आदित्यके अर्थ में – 'क्रान्त्वा स्थितो भवति' अर्थात् अपने स्थान को अतिक्रमणकर अवस्थित है। क्रम + स्था – काष्ठा। संग्राम भूमिके अर्थमें – आज्यन्तोऽपि काष्ठोच्यते क्रान्त्वा स्थितो भवति अर्थात् युद्धभूमि अपने प्रदेशमें जाकर स्थित है। क्रम + स्था। आप अर्थात् जलके अर्थमें क्रान्त्वा स्थिता भवन्तीति स्थावराणाम्[212] अर्थात् वे जलाशयमें जाकर स्थित हो जाते है। यह निर्वचन स्थावर ज़लके लिए है गतिमान जलके लिए नहीं। यास्कके उपयुक्त निर्वचनोंमें क्रम + स्थाका योग

है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह उपयुक्त है यास्क अर्थ भिन्नताके प्रदर्शनमें ही कई निर्वचन प्रस्तुत करते है। व्याकरणके अनुसार काशृ दीप्तौ धातुसे क्थन्[213] प्रत्यय कर काष्ठा बनाया जा सकता है। काशन्ते दीप्यन्ते इति काष्ठा काशते इति काष्ठा अन्यत्र भी प्राप्त होता है।[214]

(97) शरीरम् :– शरीरका अर्थ देह होता है। निरुक्तमें इसके दो निर्वचन प्राप्त होते हैं 1 – शरीरं शृणातेः[212] अर्थात् शरीर शब्द शृञ् हिंसायाम् धातुसे बनता है क्योंकि शरीरकी हिंसा होती है। शृ – श्र + ईरम् – शरीरम्। 2) शम्नातेर्वा[212] अर्थात् शरीर शम् उपशमे धातुसे बनता है क्योंकि शरीरका उपशमन (मरण) होता है। ध्वन्यात्मक आधार पर प्रथम निर्वचन उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार दोनोंका संगत है शरीरकी हिंसासे तात्पर्य प्राचीन कालकी वलिसे है। प्रथम निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार शृञ् हिंसायाम् धातुसे ईरन्[215] प्रत्यय कर शरीरम् शब्द बनाया जा सकता है।

(98) दीर्घम् :– दीर्घका अर्थ आयत या बड़ा होता है। निरुक्तमें – दीर्घं द्राघतेः अर्थात् दीर्घ शब्द द्राघ् आयामे धातुसे निषन्न होता है, क्योंकि यह आयामसे युक्त होता है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे दृ विदारणे धातुसे क्त[216] प्रत्यय करने पर दृ (वाहुलकाद्धक) + क्त–दीर्घ बनाया जा सकता है। यास्क निर्दिष्ट द्राघ् वैदिक एवं प्राचीन है।

(99) तमस् :– तमःका अर्थ अंधकार होता है।[217] यास्कके अनुसार तमस्तनोतेः[218] अर्थात् यह शब्द तनु विस्तारे धातुसे बनता है क्योंकि वह विस्तृत होता है। ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं। व्याकरणके अनुसार इसे तमु ग्लानौ धातुसे असुन्[219] प्रत्यय कर तमस् बनाया जा सकता है – तम् + अस् – तमस्।

(100) आशयत् :– यह एक क्रिया पद है। इसका अर्थ होता है बैठाया या फैलाया। निरुक्तके अनुसार आशेतेः[218] अर्थात् यह शब्द आङ् पूर्वक शीङ् स्वप्ने धातुसे बनता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार आङ् + शीङ् + लङ् प्रथम पुरुष एक वचनमें आशयत्

शब्द होगा।

(101) इन्द्रशत्रु :– यह सामासिक शब्द है। निरुक्तके अनुसार इन्द्र शत्रुः इन्द्रोऽस्य शमयिता शातयिता वा[218] अर्थात् इन्द्र इसको (वृत्रको) शान्त (मारने वाला) करने वाला है या इन्द्र शत्रुः वृत्रके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इसमें दो प्रकारके विग्रह हो सकते है–इन्द्रस्य शत्रुः–वृत्रः। अथवा इन्द्रः शत्रुर्यस्य स इन्द्रशत्रुः। इन्द्रस्य शत्रुः–इन्द्रशत्रुः इस तत्पुरूष समासमें अन्तोदात्त होगा तथा इन्द्रः शत्रुः शमयिताशातयिता वा यस्य सः इन्द्रशत्रुः इस वहुव्रीहि समासमें पूर्व पद आद्युदात्त होगा।[220] यास्कका यह निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखता है। इन्द्र वृत्रका शत्रु है यह ऐतिहासिक आधार रखता है। ऐतिहासिक आख्यानोंमें भी यह प्राप्त है। अतः इन्द्र शत्रुका अर्थ वृत्र है। निरुक्तकारोंके अनुसार वृत्र मेघ है। ऐतिहासिकोंके अनुसार यह त्वष्टाका अपत्य असुर है। इसे त्वाष्ट्र भी कहा जाता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इन्द्रशत्रुः शब्दके निर्वचनमें यास्क द्वारा ध ातुओंकी उपस्थापना उपयुक्त है। इसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत माना जायगा।

(102) दास :– इसका अर्थ कर्मकर या नौकर होता है। निरुक्तके अनुसार – दासो दस्यतेः[222] अर्थात् यह शब्द दसु उपक्षये धातुसे बनता है। क्योंकि वह कृषि आदि कार्य सम्पन्न करता है।[223] डा0 वर्माके अनुसार इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। लेकिन अर्थात्मकता पूर्ण रूपमें उपयुक्त नहीं।[224] वस्तुतः दसु उपक्षये धातुसे दास शब्द मानने पर इसका अर्थ होगा कार्योका विनाशक। विशेष अर्थमें कार्य सम्पादन करने वाला भी माना जायगा। तत्कालीन नौकरके व्यावहारके अनुसारही यह नामकरण प्रतीत होता है। व्याकरणके अनुसार दासृ दाने धातुसे घञ्[225] प्रत्यय करने पर दासः शब्द बनता है।

(103) अहि :– इसका अर्थ मेघ, सर्प आदि होता है। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते है – 1– अयनात्[222] अर्थात् गमन करनेके कारण अहिः कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें अय् गतौ धातुका योग है (2) एति अन्तरिक्षे अर्थात् मेघ अन्तरिक्षमें गमन करता है। इसके अनुसार इसमें इण् गतौ धातु का योग है। सर्पका वाचक अहि : भी इन्हीं निर्वचनों से माना

जायगा। क्योंकि सांप भी गमन करता है। निर्ह्रसितोपसर्गः आहन्तीति[226] आ + हन् धातुसे आ उपसर्ग को ह्रस्व कर अ + हन् – अहिः होगा। वह अपने दंशसे मार डालता है।[227] अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। आङ् + हन् धातुसे अहिःमें उपयुक्त ध्वन्यात्मकता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अंतिम निर्वचन संगत है। व्याकरणके अनुसार आ + हन् हिंसागत्यो[229] इण् – अहिः बनाया जा सकता है।

(104) पणि :– इसका अर्थ वणिक् होता है। निरुक्तके अनुसार पणेः पणनात् [226] अर्थात् पणन् या व्यापार क्रिया करनेसे पणि कहलाता है। इसके अनुसार पणिः शब्दमें पण् व्यवहारे धातुका योग है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। पण्से निष्पन्न आपण – बाजार, पण्य वीथी, पण्य आदि शब्द प्रचलित हैं।

(105) विलम् :– विलका अर्थ विवर होता है। निरुक्तके अनुसार – बिलं भरं भवति[226] अर्थात् विल भर होता है। भर शब्द डुभृञ् भरणे धातुसे बनता है। विल जल आदिसे भर जाता है इसलिए विल कहलाता है। भरव ही भल होकर विलहो गया है। डुभृञ् धारण पोषणयोः धातुसे भिलं विलं शब्द बनाना उपयुक्त होगा। यास्कके इस निर्वचनमें स्वरगत एवं व्यंजनगत औदासिन्य है[229] अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। व्याकरणके अनुसार विल् भेदने धातुसे[230] कः प्रत्यय कर विलम् शब्द बनाया जा सकता है।

(106) वृत्र :– इसका अर्थ मेघ होता है।[231] ऐतिहासिकोंके अनुसार त्वष्टाके पुत्र असुरका भी नाम वृत्र है।[232] निरुक्तके अनुसार वृत्रः वृणोतेर्वा [233] अर्थात् वृत्र शब्द वृञ् आच्छादने धातुसे बनता है। मेघ आकाशको आच्छादित कर लेता है।[224] (2) वर्ततेर्वा[223] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक वृतु धातुसे बनता है क्योंकि वृत्र गमन करता है। (3) वर्द्धतेर्वा[233] अर्थात् यह शब्द वृधु धातुसे बनता है क्योंकि यह वृत्र वर्षा ऋतुमें काफी बढ़ता है। वह आकाशको ढक लेता है इसलिए वृत्रका वृत्रत्व है। वह नीचेकी ओर अग्रसर रहता है यही वृत्रका वृत्रत्व है तथा वह वृद्धिको प्राप्त करता है यही वृत्रका वृत्रत्व है।[235] यास्कके प्रथम दो निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार रखते हैं। अंतिम निर्वचन में मात्र

अर्थात्मक संगति है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे प्रथम दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। त्वाट्र असुरके पक्षमें भी ये ही निर्वचन उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार वृत्र शब्द वृत् वरणे धातुसे रक् प्रत्यय करने पर बनता है।

(107) रात्रि :– रात्रिका अर्थ रात होता है। इसके लिए निरुक्तमें कई निर्वचन प्राप्त होते है (1) प्ररमयति भूतानिनक्तंचारीणि[236] अर्थात् रात्रिमें विचरण करने वाले प्राणीको यह प्रसन्न करती है। पिशाच, चौर आदि रात्रिमें विचरण करते है इसीलिए उन्हें रात्रिंचर कहा जाता है। इसके अनुसार रात्रि शब्दमें रम् धातुका योग है – रम् + त्रि – रात्रिः (2) उपरमयतीतराणि ध्रुवी करोति[236] अर्थात् दूसरे प्रणियोंको कार्यसे उपरत कर देती है तथा उन्हें ध्रुव करती है या स्थिर करती है। दिनमें कार्य करनेके बाद प्राणी रात्रिमें विश्राम कर अपनी खोयी हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर लेते है फलतः वह स्वस्थ या दीर्घायु होता है। इसके अनुसार भी इसमें रम् धातुका योग है। (3) रातेर्वास्याद्दान कर्मणः[237] अर्थात् रात्रि शब्द रा दाने धातुसे बना है क्योंकि इसमें ओसका दान किया जाता है–प्रदीयन्तेऽस्यामवश्यायाः[237]। यास्कके इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार रा दाने धातुसे त्रिप्[238] प्रत्यय कर रात्रिः बनाया जा सकता है।

(108) उषस् :– रात्रिके अंतिम कालको उषा कहते है। निरुक्तके अनुसार उच्छतीति सत्या रात्रेरपरः कालः[237] यह रात्रिका पश्चात् भाग है यह अन्धकारको हटाती है। इसके अनुसार उष् शब्दमें उच्छी विवासे धातुका योग है। भाषा विज्ञानके अनुसार उष्का ही विस्तार रूप उच्छ् है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे उष् दाहे धातुसे अस् [239] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है –उष् + अस्–उषस्।

(109) योनि :– इसका अर्थ स्थान होता है। निरुक्तके अनुसार अभियुतो[240] भवति अर्थात् जिसमें विधान होता है उसके साथ मिला रहता है। स्त्री योनिः भी इसी निर्वचनसे हो जायगा। अभियुत एनां गर्भः[240] अर्थात् स्त्री योनि गर्भसे मिश्रीभूत है। योनिः अन्तरिक्षको भी कहा गया है– परिवीत वायुना[240] अर्थात् यह वायुसे परिवेष्टित है। स्त्री योनिके अर्थमें स्नावा मांसेन च परियुतो भवति[241] अर्थात् स्त्री योनि स्नायु एवं मांससे परिवृत होती है।

उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि योनिः शब्दमें यु मिश्रणे धातुका योग है—यु + निः—योनिः। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार यु मिश्रणे धातुसे निः[242] प्रत्यय कर योनिः बनाया जा सकता है।

(110) रूशत् :— यह वर्णका नाम है तथा सूर्यके लिए प्रयुक्त हुआ है।[243] निरुक्तके अनुसार रोचतेर्ज्वजति कर्मणः[244] अर्थात् यह ज्वलत्यर्थक रूच् धातुके योगसे बना है। यह प्रदीप्त दीख पड़ता है। रूच् धातुसे रूशत् शब्दका निर्वचन दृश्यात्मक आधार पर आधारित है। इसका ध्वन्यात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार रूश् धातु ज्यादा उपयुक्त होगा।

(111) श्वेत्या :— इसका अर्थ होता है शुभ्र वर्ण वाली। यह उषाका विशेषण है।[243] निरुक्तके अनुसार श्वेत्या श्वेततेः[244] अर्थात् श्वितावर्णे धातुसे श्वेत्या शब्द बनता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार श्वित् धातुसे अच्[245] प्रत्यय करने पर श्वेत शब्द बनता है।

(112) कृष्णम् :— इसका अर्थ काला वर्ण होता है। यहां कृष्ण रात्रि के विशेषणके रूपमें प्रयुक्त हुआ है।[243] निरुक्तके अनुसार—कृष्णं कृष्यते र्निकृष्टो वर्णः[244] अर्थात् कृष्ण शब्द कृष् धातुसे बनता है। कृष्ण वर्ण सभी वर्णोंसे निकृष्ट होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार कृष् वर्णे धातुसे नक[246] प्रत्यय करने पर कृष्ण शब्द बनता है।

(113) द्यौ :— इसका अर्थ होता है द्युतिसे युक्त। निरुक्तमें उषा एवं रात्रिके लिए द्विवचनमें धावौ शब्दका प्रयोग हुआ है। द्यौ की व्युत्पत्ति द्योतनात्[247] अर्थात् इसमें द्युत् दीप्तौ धातुका योग ह क्योंकि ये प्रकाशित होते है। यह ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार द्युत् दीप्तौ धातुसे डो[248] प्रत्यय करने पर द्यौ शब्द बनता है। द्यौतन्तेऽस्यां द्यौः, गोवत्।

(114) अह :— अहन्का अर्थ दिन होता है। निरुक्तके अनुसार उपाहरन्त्यस्मिन् कर्माणि[247] अर्थात् इसमें कर्मोका सम्पादन किया जाता है। इसके अनुसार इसमें हृञ् हरणे धातुका योग है। हृ का ही गुणगत रूप अहः

है। अहः में ह और र का योग है – हृ – अह् – अहर् – अहः। इसमें धातुका निर्देश उपयुक्त है। अर्थात्मक दृष्टिसे भी यह संगत है। इसका ध्वन्यात्मक आधार शिथिल है। व्याकरणके अनुसार इसे अव्यय माना गया है। इसे अह + अच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(115) उपर या उपल :– यह मेघका वाचक है। निरुक्तके अनुसार उपरमन्तेऽस्मिन् अभ्राणि अर्थात् इसमें अभ्र (वादल) उपरमण करते हैं या मिलते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें उप + रम् धातुका योग है। (2) उपरता आपः इतिवा[249] अर्थात् इसमें जल उपरत होते है या मिलते है। इसके अनुसारभी इस शब्दमें उप + रम् धातुका योग है। रम् धातुका केवल र ही अवशिष्ट रहा है उप + रम्–र–उपर। र एवं ल में अभेद माननेसे उपर एवं उपल दोनों होगा उपलका निर्वचनभी इसी प्रकार होगा। प्रथम निर्वचन अर्थात्मक एवं ध्वन्यात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचनभी भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत है। प्रथम निर्वचनमें अभ्रके मिलनेसे तात्पर्य मेघके पूर्व रूप धूमवत् भाग के मिलनेसे है।

(116) प्रथम :– यह मुख्यका वाचक है। प्रतमः भवति[249] अर्थात् यह सबसे उत्कृष्टतम होता है। इसके अनुसार इसमें प्र प्रकृष्टका वाचक है तथा तमप् प्रत्ययसे प्रतमः–प्रथमः बना है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे प्रतमःको प्रथमः मान लेने पर उक्त शब्दमें त का महाप्राणी करणमाना जायगा। भाषा विज्ञानके अनुसार यह उपयुक्त है। प्रथमका अर्थ आदिभी होता है।[250] व्याकरणके अनुसार प्रथ् विस्तारे धातुसे अमच्[251] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(117) अनूपा :– इसका अर्थ होता है अनुगृहीत करने वाले। अनूपकी संख्या निरुक्तके अनुसार तीन है–पर्जन्य, वायु एवं आदित्य। ये तीनों औषधियोंको पकाते है। कई अर्थोमें इसके निर्वचन उपलब्ध होते हैं– अनुवपन्ति लोकान् स्वेन स्वेन कर्मणा[249] अर्थात् ये सभी अपने कर्मोसे लोकों पर अनुग्रह करते है। इसके अनुसार इस शब्दमें अनु + वप् धातुका योग है। अनु + वप् (व–उ–अनु + उप्–अनूप। अनूपका अर्थ जलसे भरा क्षेत्रभी होता है इस अर्थमें भी इसका निर्वचन इसी प्रकार होगा – अनूप्यते उदकेन अर्थात् यह उदकसे युक्त रहता है – अनु + वप् – अनूप। अपि वा अन्वाप् इतिस्यात्[252] अर्थात् जो जलसे घिरा हो। इसके अनुसार इस शब्दमें अनु + आपका योग

है। आप जलका वाचक है – अनाप – अनु – आप –अनूप। अंतिम निर्वचनमें यास्कका कहना है कि प्राक्के स्थान पर जैसे प्राचीन कहा जाता है वैसे ही अन्वाप के स्थान पर अनूप कहा जाता है यहां यास्कका उद्देश्य शब्दसादृश्यका प्रदर्शन करना भी है। इस निर्वचनमें शब्दगत सादृश्य पूर्ण उपयुक्त नहीं है क्योंकि अन्वापसे अनूपमें आ का ऊ हो गया है जबकि प्राक्से प्राचीनमें इस प्रकारका परिवर्तन नहीं देखा जाता। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एव अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। अन्य सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार इसे अनु + अप् + अच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता हैं।

(118) वृवूकम् :– यह जलका वाचक है। निरुक्तमें इसके लिए दो निर्वचन प्राप्त होते है। (1) व्रवीतेर्वा शब्द कर्मणः[252] अर्थात् यह वृञ् व्यक्तायांवाचि धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह शब्द करता है। (2) भ्रंशतेर्वा अर्थात् यह भ्रंश् अवसंस्त्रणे धातुसे बनता है क्योंकि यह स्खलित होता रहता है। प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है।

(119) पुरीषम् :– निरुक्तमें यह जलके विशेषणके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। इसके लिए दो निर्वचन प्राप्त होते है। (1) पुरीष पृणातेः[253] अर्थात् यह प्रीञ् तर्पणे धातुसे निष्पन्न होता है क्योकि यह तृप्त करता है। (2) पूरयतेर्वा[253] अर्थात् यह शब्द पूरी आप्यायने धातुसे निषन्न होता है क्योंकि यह बढ़ता रहता है। पूरी अप्यायने धातुसे पुरीषम् शब्द माननेमें ध्वन्यात्मक संगति उपयुक्त हैं। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। लौकिक संस्कृतमें पुरीषका अर्थ विष्ठा होता है। व्याकरणके अनुसार इसे पृ पालन पूरणयोः धातु से ईषन्[254] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। इस शब्दमें अर्थपरिर्वतन स्पष्ट है।

(120) वाक् :– यह वाणीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार–वचेः[253] अर्थात् यह वच् परिभाषणे धातुसे बनता है। जो वोला जाय उसे वाक् कहते है। इस में वच् धातु स्थित च का क् हो गया है भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन सर्वथा उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे वच् परिभाषणे धातु से

क्विप्[255] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। वच् + क्विप्—वाच्—वाक्। दीर्घः

(121) शुष्मम् :— इसका अर्थ बल होता है। निरुक्तके अनुसार — शोषयतीति सत्:[253] अर्थात् यह शुष् शोषणे धातुसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह शत्रुओंको सुखाता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त है लेकिन अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। व्याकरणके अनुसार शुष् शोषणे धातुसे मन्[256] प्रत्यय कर शुष्म बनाया जा सकता है। (शुष्यत्येनारिः) अर्थात् इससे शत्रुओंको सुखाया जाता है।

(122) विसम् :— इसका अर्थ होता है कमलनाल। निरुक्तके अनुसार — बिसं विस्यतेर्भेदन कर्मणो वृद्धिकर्मणो वा[257] अर्थात् यह भेदनार्थक या वृद्धयर्थक विस् धातुसे निष्पन्न होता है। विस् धातु भेदनार्थक मानने पर यह कहाजा सकता है कि यह आसानीसे टूट जाता है तथा वृद्धयर्थक मानने पर कहाजा सकता है कि यह अत्यधिक बढ़ता है या यह पौष्टिक होता है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार पर उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे विस् प्रेरणे धातुसे कः[258] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(123) सानु :— इसका अर्थ होता है, शिखर, चोटी। निरुक्तके अनुसार (1) सानु समुच्छितं भवति[257] अर्थात् यह (चोटी) उठी हुई होती है। इसके अनुसार इसमें सम् + उत् + श्रि धातुका योग है। (2) समुन्नुन्नम् — अर्थात् यह (चोटी) अच्छी तरह ऊपर गयी होती है। इसके अनुसार सानु शब्दमें सम् + उत् नुद् धातुका योग है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधारसे दोनों युक्त हैं। द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार संगत है। व्याकरणके अनुसार षणु दाने धातुसे युण्[259] प्रत्यय कर सानु शब्द बनाया जा सकता है।

(124) उदकम् :— उदकका अर्थ जल होता है। निरुक्तके अनुसार उनत्तीति सतः अर्थात् उन्दी क्लेदने धातुसे उदक शब्द बनता है क्योंकि यह आर्द्र कर देता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार उन्दी क्लेदने धातुसे क्वुन्[260] प्रत्यय करने पर उदकम् शब्द बनता है।

(125) नदी :— नदी सरका वाचक है। निरुक्तके अनुसार — नदना

इमा भवन्ति शब्दवत्यः[261] अर्थात् यह शब्द करने वाली होती है। इसके अनुसार नदी शब्दमें णद् अव्यक्ते शब्दे धातुका योग है। नदी अव्यक्त शब्द करती हुई प्रवाहित होती है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है।[262] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। व्याकरणके अनुसार भी इसे णद् अव्यक्तेसे अट्[263] प्रत्यय कर णद् + अट् – नद +[264] ङीष् नदी बनाया जा सकता है।

(126) विश्वामित्र :– यह एक ऋषिका नाम है। इसका अर्थ होता हैं सबका मित्र। निरुक्तके अनुसार विश्वामित्रः सर्वमित्र.[261] इसके अनुसार विश्वामित्रमें विश्व + मित्रका योग है। विश्व सबका वाचक है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह उपयुक्त है। प्रातिशाख्यके अनुसार मित्र शब्द अगर उत्तर पदमें हो तो विश्वके अकार का दीर्घ हो जाता है।[265] व्याकरणके अनुसार भी विश्व + मित्र – विश्वामित्र माना जायगा। यह सामासिक शब्द है।[266] पाणिनिके अनुसार ऋषि बोध होने पर विश्व + मित्रका विश्वामित्र होगा।

(127) सर्वम् :– इसका अर्थ होता है -- सभी। निरुक्तके अनुसार – सर्वं संसृतम्[261] अर्थात् सर्व शब्द सृ गतौ से निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा संसृत अर्थात् फैला हुआ है। यह एक सर्वनाम है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन सर्वथा उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार सृगतौ + वः[267] प्रत्यय कर अथवा षर्व् गतौ धातुसे अच्[268] प्रत्यय कर सर्वम् बनाया जा सकता है।

(128) पैजवन :– यह एक संज्ञा पद है। इसका अर्थ होता है पिजवनका पुत्र। पिजवनस्यपुत्रः[269] पिजवन एक राजाका नाम था उसका पुत्र पैजवन कहलाया। यह तद्धित प्रयोग है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे यह उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार पिजवन + अण् प्रत्यय कर पैजवन बनाया जा सकता हैं। यास्कका निर्वचन ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

(129) पिजवन :– यह एक संज्ञा पद है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है स्पृहाके योग्य गतिवाला। निरुक्तके अनुसार – पिजवन पुनः स्पर्द्धनीय जवो वाऽमिश्रीभावगतिर्वा[269] अर्थात् पिजवन स्पर्धनीयगतिवाला या अमिश्री भाव गति वाला होता है। अमिश्री भाव गति से तात्पर्य है जिसकी गति दूसरों में

नहीं मिल सके। यह कर्त्तव्यनिष्ठके अर्थमें प्रयुक्त होता है। उपर्युक्त निर्वचनके अनुसार पिं स्पर्धाका वाचक है तथा जव गति वाचक है – पि + जु गतौ – पिजवन। इसमें अन प्रत्यय है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसमें पूर्ण ध्वन्यात्मकताका अभाव है। अर्थात्मक दृष्किोणसे यह उपयुक्त है।

(130) ऋतम् :– इसका अर्थ होता है जल। निरुक्तके अनुसार– प्रत्यृतं भवति[269] अर्थात् यह सभी जगह गया हुआ या सभी जगह उपलब्ध होता है। इसके अनुसार ऋतम् शब्दमें ऋ गतौ धातुका योग है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे यह उपयुक्त है। ऋतम्के जलके अतिरिक्त सत्य आदि कई अर्थ होते हैं।[270] व्याकरणके अनुसार इसे ऋगतौ धातुसे क्त[271] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(131) एव :– इसका अर्थ रक्षण या गमन होता है – एवैः अयनैरवनैर्वा[272] अर्थात् यह शब्द इण् गतौ या अव् रक्षणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे इण् गतौसे वन्[273] इण् + वन् प्रत्यय – एव बनाया जा सकता है। कोष ग्रन्थोंसे इसके उपमा, परिभव, ईषदर्थ, अवधारण आदि अर्थोंका संकेत प्राप्त होता है।[274]

(132) ऋतु :– इसका अर्थ समय होता है। निरुक्तके अनुसार – ऋतुः अर्तेः गति[272] कर्मणः अर्थात् ऋतु शब्दऋ गतौ धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसका गमन होता रहता है, समय व्यतीत होता जाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह संगत है। लौकिक संस्कृतमें ऋतु वसन्तादि छः ऋतुओंका द्योतक है जो वैदिक ऋतुका अर्थ संकोच माना जा सकता है। इसका निर्वचन भी इसी तरह होगा क्योंकि यह भी व्यतीत होता रहता है। स्त्रियोंके मासिक धर्मके लिए भी ऋतु शब्दका प्रयोग होता है।[275] निर्धारित समयसे सम्बद्ध होनेके कारण इसके लिए भी उपर्युक्त निर्वचन ही उपयुक्त होगा। व्याकरणके अनुसार ऋ गतौ + तुः प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है।[276]

(133) मुहु :– इसका अर्थ होता है – थोड़ा समय। निरुक्तके अनुसार – मुहुः मूढ इव कालः अर्थात् मूढके समान समय। इतना कम समय जिसका

पता न चल सके अर्थात् अल्प समय। मुहुः शब्द अव्यय है तथापि यास्क इसका निर्वचन करते नही चुकते। इस निर्वचनमें धातु स्पष्ट नहीं है। मात्र अर्थ स्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह पूर्ण संगत नहीं है। व्याकरणके अनुसार मुह् + उस् प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें पुनःके अर्थमें भी इसका प्रयोग पाया जाता है।

(134) अभीक्ष्णम् :– अभीक्ष्णम्का अर्थ होता है क्षणमात्र। निरुक्तके अनुसार अभिक्षणं भवति[277] अर्थात् यह शब्द अभि + क्षण् धातुके योगसे बनता है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे यह उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें यह पुनः पुनःके अर्थमें प्रयुक्त होता है। इस आधार पर इस शब्दमें अर्थादेश माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अभि + क्षणु तेजने धातु + डम् प्रत्यय कर अभीक्ष्णम् शब्द बनाया जा सकता है।

(135) क्षण :– इसका अर्थ होता है – थोड़ा समय। निरुक्तके अनुसार – क्षणः क्षणोतेः[277] अर्थात् यह शब्द क्षण हिंसायाम् धातुसे निष्पन्न होता है। प्रक्षणुतः कालः अर्थात् अल्प समय। डा० वर्माके अनुसार यह निर्वचन भाषा विज्ञानके अल्प विकासका परिणाम है।[278] हिंसार्थक होनेके कारण क्षणु धातु से क्षण शब्द मानना भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे क्षणु हिंसायाम् धातुसे अच् प्रत्यय कर क्षण् + अच्[279] – क्षणः शब्द बनाया जा सकता है।

(136) काल :– इसका अर्थ होता है समय। निरुक्तके अनुसार कालः कालयतेर्गतिकर्मणः[277] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थ कल् धातुके योगसे बनता है क्योंकि यह व्यतीत होता रहता है या सभी प्राणियोंको समाप्त कर देता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार कल् धातुसे अच्[280] प्रत्यय कर अथवा घञ्[281] प्रत्यय कर कालः बनाया जा सकता है। श्री मद्भगवद्गीतामें भी कल्से ही काल शब्दका संकेत प्राप्त होता है।[282] सभी प्राणियोंको नष्ट कर देता है इस अर्थके चलते काल यमराज तथा मृत्युका भी वाचक है।

(137) कुशिक :– कुशिक वैदिक राजाका नाम है। ये विश्वामित्रके पिता थे। निरुक्तके अनुसार (1) क्रोशतेः शब्दकर्मणः[283] अर्थात् यह शब्द कुश्

शब्दे धातुके योगसे बना है। वे प्रायः शब्द करते रहते थे या चिल्लाते रहते थे (2) क्रंशतेर्वास्यात् प्रकाशयति कर्मणः अर्थात् यह शब्द प्रकाश अर्थ वाले क्रंश् धातुके योगसे बनता है ये उत्तम कर्मोको प्रकाशित करते हैं अतः क्रंश – कुशिक। (3) साधु निक्रोशयितानामर्थानामितिवा[283] अर्थात् धनके लिए वचन देने वाला। इसके अनुसार भी इसमें क्रुश् धातुका योग है। प्रथम निर्वचन पुरूषकी प्रकृतिका आधार मानकर किया गया है द्वितीयमें उसके कर्मोको आधार माना गया है। अर्थात्मक दृष्टिसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। प्रथम एवं तृतीय निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक आधार भी संगत है। लौकिक संस्कृतमें प्रथम निर्वचनके आधार पर ही कुशिकका अर्थ उल्लू माना गया है। व्याकरणके अनुसार – कुश् + ठन् प्रत्यय कर कुशिक: शब्द बनाया जा सकता है।

(138) पाणि :– पाणिका अर्थ हाथ होता है। निरुक्तके अनुसार – पणायतेः पूजाकर्मणः[284] अर्थात् यह शब्द पूजार्थक पण् धातुसे बनता है। पण् धातु व्यवहार परक है। उस समय हाथका उपयोग प्रायः पूजा कर्मके लिए अधिक होता होगा।[286] कालान्तरमें इस शब्दका अर्थ विस्तार हो गया है। आज भी हाथका व्यवहार कार्योके लिए अधिक होता है। इसके ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन सर्वथा संगत है। व्याकरणके आधार पर भी पण् व्यवहारे धातुसे इण्[285] प्रत्यय कर पाणिः शब्द बनाया जाता है।

(139) उर्वी :– उर्वीका अर्थ होता है – विस्तृत। उर्व्यः ऊर्णोतेः[284] अर्थात् यह शब्द ऊर्णुञ् आच्छादने धातुसे बनता है क्योंकि वह अत्यधिक आच्छादन किए रहता है – इस निर्वचनके प्रसंगमें यास्क आचार्य और्णवाभके सिद्धान्त का उपस्थापन करते हैं – वृणोतेंरित्यौर्णनाभः अर्थात् और्णवाभके अनुसार यह शब्द वृञ् आच्छादने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। वृञ् धातुके व का उ सम्प्रसारणके द्वारा हो जाता है तथा उर्वी शब्द बनता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। लौकिक संस्कृतमें उर्वी पृथ्वीका वाचक है। व्याकरणके अनुसार–ऊर्णुञ् आच्छादने धातुसे उः[287] ङीष्[288] प्रत्यय कर उर्वी शब्द बनाया जा सकता है इस शब्दका अर्थ विकास हुआ है।

(140) अश्व :– इसका अर्थ घोड़ा होता है। यास्कने इसके लिए दो

निर्वचन प्रस्तुत किये है – अश्वः अश्नुते अध्वानम् अर्थात् वह मार्गको शीघ्र व्याप्त कर लेता है। इस आधार पर अश्वशब्दमें अश् व्याप्तौ धातुका योग माना जायगा। महाशनो भवति अर्थात् वह अधिक खाने वाला होता है। इस आधार पर अश्व शब्दमें अश् भोजने धातुका योग माना जायगा। यह आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एव अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषाविज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अशूव्याप्तौ धातुसे क्वनिप् प्रत्ययके द्वारा अश्व शब्द बनाया जा सकता है।

(141) दधिक्रा :– इसका अर्थ होता है – घोड़ा। निरुक्तके अनुसार (1) दधत् क्रामतीतिवा[284] अर्थात् वह बैठते ही चल पड़ता है। इनके अनुसार इस शब्दमें धा + क्रा धातुका योग है। धा – दध् + क्रा – दधिक्रा। (2) दधत् क्रन्दतीतिवा[289] अर्थात् धारण करते (चढ़ते) ही वह हिनहिनाता रहता है। इसके अनुसार धा + क्रन्द् धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न माना जाता है। (3) दधत् आकारी भवतीति वा[289] अर्थात् धारण करतेही वह आकार ग्रहण कर लेता है। ये निर्वचन पूर्ण स्पष्ट नही हैं। दधिक्रा शब्दका अंतिम खण्ड क्रा क्रमशः क्रन्दति तथा आकारी भवतिका द्योतक है। इस शब्दके निर्वचनमें ध्वन्यात्मक औद्रासिन्य है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार यह पूर्ण संगत है।

(142) ग्रीवा :– ग्रीवाका अर्थ होता है – गला। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते है –(1) गिरतेर्वा अर्थात् यह गृ निगरणे धातुके योगसे बना है। इससे अन्नका निगरण होता है। (2) गृणातेर्वा अर्थात[289] यह शब्द गृ शब्दे धातुके योगसे बना है क्योंकि इससे शब्द किया जाता है। (3) गृह्णातेर्वा अर्थात् यह शब्द ग्रह् ग्रहणे धातुके योगसे बना है क्योंकि इससे जल आदि ग्रहण किया जाता है। डा0 वर्माके अनुसार गृ धातुसे ग्रीवाका निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त है।[290] अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंका उपयुक्त है। प्रथम एव द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार भी संगत है। व्याकरणके अनुसार गृ निगरणे धातुसे वन्[291] प्रत्यय कर ग्रीवा शब्द बनाया जा सकता है। ग्रीवा शब्दके निर्वचनमें यास्क उसकी क्रियाको ही अर्थात्मकता का आधार

मानते है।

(143) पन्था :– पन्थाका अर्थ मार्ग होता है। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते हैं – (1) पततेर्वा अर्थात् यह पत् धातुके योगसे बनता है। (2) पद्यतेर्वा[289] अर्थात् इसमें पद्गतौ धातुका योग है। (3) पन्थतेर्वा[292] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक पन्थ् धातुके योगसे बना है। तीनोंही गत्यर्थक धातु है अतः सभीका अर्थ होगा जिससे चला जाय। भाषा विज्ञानके अनुसार पन्थ् गतौ धातुसे इसका निर्वचन मानना अच्छा होगा। व्याकरणके अनुसार पत् गतौ + इनि[293] पथिन् – पन्था बनाया जा सकता है।

(144) अंक :– अंकका अर्थ मोड़ होता है। निरुक्तके अनुसार अंकः अंचतेः[292] अर्थात् यह शब्द अंचु गतिपूजनयोः धातुसे निष्पन्न होता है। मोड़ या कुटिल अर्थमें अंककी उपर्युक्त व्युत्पत्ति ध्वन्यात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें अंकका अर्थ गोद एवं चिह्न होता है।[294] चिह्नार्थक अंक शब्द अकि लक्षणे धातुसे घञ्[295] प्रत्यय करने पर बनता है। यास्कके निर्वचनसे ज्ञात होता है कि अंकके अर्थमें काफी परिवर्तन हुआ है।

सन्दर्भ संकेत

1 – नि0 2 ।1, 2 – खरि च – अष्टा0 8 ।4 ।55 , 3 – दो दद्दो – अष्टा0 –7 ।4 ।46, 4 – अच् उपसर्गात्तः – अष्टा0 6 ।4 ।47, 5 – आदेच् उपदेशेऽशिति – अष्टा0 6 ।1 ।45, 6 – अथाप्येते निवृत्ति स्थानेष्वादिलोपो भवति'' नि0 2 ।1, 7 – श्नसोरल्लोपः – अष्टा0 6 ।4 ।111, 8 – वर्णागमो वर्णविपर्यश्च द्वौचापरौ वर्णविकार नाशौ। धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविधं निरुक्तम् ।।9 – कङितिच – अष्टा0 1 ।1 ।5, 10 – अनुदात्तोपदेशे0 – अष्टा0 6 ।4 ।37, 11 – क्तक्तवतू निष्ठा – अष्टा0 1 ।1 ।26, 12 – अनुदात्तोपदेशे – अष्टा0 6 ।4 ।37, 13 – अथाप्युपधालोपो भवति – नि0 2 ।1, 14 – अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा – अष्टा0 1 ।1 ।65, 15 – राजा प्रभौचनृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ। यक्षे शक्रे च पुंसि स्यात् – मेदि0 91 ।125, 16 – राजतेदीप्यते ह्यसौ पंचानां लोकपालानां वपुषा – नि0 दु0 वृ0 2 ।1, 17 – राजा प्रकृति रंजनात् – रघु0 4 ।12, 18 – युवृषि् इति कनिन् – उणा0 1 ।156, 19 – अथाप्युपधा विकारो

भवति – नि0 2 ।1, 20 – नि0 2 ।1, 21 – इन्हन्पूषार्यम्णांशौ – अष्टा0 6 ।4 ।12, 22 – अथापि वर्णलोपो भवति – नि0 2 ।1, 23 – राजवाडे या यांचायां धातुसे निष्पन्न मानते है – (दी न्यू वैदिक सेलेक्सन, पेज 35 (नोट्स) वाई तैलेंग एण्ड चौबे), 24 – अथापि द्विवर्ण लोपः – नि0 2 ।1, 25 – अत्र ऋवर्णरेफयो लोपः । स लुप्यते लृवर्णेन साकम् नि0 दु0 वृ0 2 ।1 ।2, 26 – ऋचि त्रेः सम्प्रसारणं वक्तव्यम् । उत्तस्पदादिलोपः छन्दसि वक्तव्यः । तृचं सूक्तं तृचं तिस्रः ऋचः साम । छन्दसिइति किम् त्रयृचानि – महाभाष्या – भा0 3, पेज 33, 27 – अथाप्यादि विपर्ययो भवति – नि0 2 ।1, 28 – घनं सान्द्रं घनं वाद्यं घनोमुस्तो घनोऽम्बुदः घनः काठिन्यसंघातो विस्तारो लोहमुद्गरौ । । अम0 को0 रामाश्रमी – पृ0 578 3 ।3 ।111, 29 – अष्टा0 – 3 ।3 ।77, 29 – क – हलायुध – पृ0 614, 30 – अथाप्याद्यन्त विपर्ययो भवति – नि0 2 ।1, 31 – अष्टा0 3 ।3 ।19, 32 – रज्जुर्वेण्यां गुणे योषित् – विश्व0 को0 33 ।14, 33 – सृजेरसुश्च – उणा0 1 ।15, हला0 – पृ0 558, 34 – वाहुलकादतच् – पृषोदरादि0 – अष्टा0 6 ।3 ।109, 35 – अथापि अन्त व्यापत्तिः भवति नि0 2 ।1, 36 – नि0 2 ।6, 37 – अष्टा0 3 ।1 ।134, 38 – न्यङ् क्वादित्वात् कुत्वम् – अष्टा0 7 ।3 ।53, 39 – वधूः स्नुषा नवोढास्त्री भार्या पृक्कागंनासु च । शट्या च शारिवायां च ण्ण्ण्ण्'' विश्व को0 83 ।20 (अम0 को0 रामा0 3 ।3 ।102), 40 – खघथधभांहः – प्राकृ0 प्रका0, 41 – वहो धश्च – उणा0 1 ।83, 42 – मधु क्षौद्रे जले क्षीरे मद्ये पुषरसे मधुः । दैत्ये चैत्रे वसन्ते च जीवकोशे मधुद्रुमे । । (विश्व को0 – 82 ।11), 43 – नि0 4 ।1, 44 – (सोम एवं शराबमे काफी अन्तर है, शराब पीनेसे उन्मान्द होता है जबकि सोम पानसे विजयके लिए जोश बढ़ता है । देवताओंके लिए सोम याग इसी पर आधारित है ।), 45 – नि0 10 ।3, 46 – इदमपीतरन्मधवेतस्मादेव – नि0 4 ।1, 47 – द्र0 – ऋ 4 ।38 ।10, 48 – फलिपाहि0 – उणा0 1 ।18, 49 – अथापि वर्णोपजनः – नि0 2 ।1, 50 – अस्यतेस्थुक – अष्टा0 7 ।4 ।17, 51 – अथापि वर्णोपजनः – नि0 2 ।1, 52 – नि0 8 ।2, 53 – गृहद्वारति कात्थक्यः – नि0 8 ।2, 54 – अग्निरिति शाकपूणिः – नि0 8 ।2, 55 – वैदिकपदानुक्रमकोष – (संहिता भाग, तृतीय खण्ड पं0 विश्ववन्धु – 1956 ई0 संस्करण), 56 – ऊतिः अवनात् – नि0 5 । 1, 57 – इग्यणः सम्प्रसारणम्

– अष्टा0 1 ।1 ।45, 58 – ऊतयः खलु वै ता नाम याभिर्देवाः यजमानस्य हवमायान्ति ये वै पन्थानो याः स्रुतयस्ता वा ऊतयस्त उ एवैत्स्वर्गयाना यजमानस्य भवन्ति – (ऐ0 ब्रा0 1 ।1), 59 – मृदुःस्यात् – कोमलेऽतीक्ष्णे – मेदि0 को0 75 ।14, 60 – प्रथिम्रदि0 – उणा0 1 ।28, 61 – पृषतस्तु मृगे विन्दौ खरोहिते । श्वेत विन्दुयुतेऽपि स्यात् – हैम0 3 ।300, 62 – पृषिरंजिभ्यां कित् – उणा0 3 ।111 इत्यतच् प्रत्ययः, 63 – अथापि भाषिकेभ्यः धातुभ्यः नैगमाः कृतः भाष्यन्ते – नि0 2 ।1, 64 – दमूना दममना अग्निरतिथिर्वा – नि0 दु0 वृ0 1 ।4, 65 – नि0 – 4 ।1, 66 – मित्रं न क्षेत्रसाधसम् – (ऋ सं0 3 ।2 ।4), 67 – इण् सिञ् जिदीव्यविभ्योनक् – उणा0 3 ।2, 68 – नि0 दु0 वृ0 2 ।1, 69 – आत्वा जिघर्मि – य0सं0 – 11 ।13, 70 – नि0 7 ।7, 71 – अंजिघृसिभ्यःक्तः – उणा0 3 ।89, 72 मनु0 – 10/44–45 यवनाश्चीनकाम्बोजाः दारुणाम्लेक्षजातयः महा0 भार0 भीष्म पर्व 9 ।65, 73 – नि0 2 ।1, 74 – कम्बल ओढ़ना कम्बल बिछौना कम्बलका सिरहना । कम्बलकी ही अंगा टोपी कम्बल पर नित सोना – अनुश्रुति, 75 – कमनीयानि प्रार्थनीयानि चैते हि द्रव्यानि उपभुज्यन्ते, प्रचुर रत्नो हि स देशः इति – नि0 दु0 वृ0 2 ।1, 76 क– दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 108, 76 – नि0 2 ।1, 77 – दी इटीमौलोजीज औफयास्क, पेज 108, 78 – वृषादित्वात् – कलच् – उणा0 1 ।106, 79 – शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते – नि0 2 ।1, 80 – विकारमस्यार्येषु भाष्यन्ते शवइति – नि0 2 ।1, 81 – नि0 4 ।13, 82 – अष्टा0 3 ।1 ।134, 83 – दाति लवणार्थे प्राच्येषु – नि0 2 ।1, 84 – दात्रमुदीच्येषु – नि0 2 ।1, 85 – दाम्नी0– अष्टा0 3 ।2 ।182, 86 – नि0 2/1, 87 – दण्डोऽस्त्री लगुडेऽपि स्यात् – अम0 3/4/42, 88 – दण्डः दमना दितिआहुः, तेन अदान्तान् दमयेत ।। – गौ0 धर्म0सू0 – 2 ।28, 89 – दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 45, 90 – पचाद्यच् – अष्टा0 3 ।1 ।134, 91 –उणा0–1 ।114,92 –नि0 2 ।1,93 – नि0 दु0 वृ0 2 ।1, 94 – दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 37, 95 – नि0 2 ।1, 96 – नि0 3 ।2, 97 – कक्ष्या वृहतिकायां स्यात्कांच्यां मध्येभबन्धने । हर्म्यादीनां प्रकोष्ठे च । मेदिनी0 – 113 ।10, 98 – शरीरावयवाच्च इति यत् – अष्टा0 4 ।3 ।55, 99 – अम0 को0 2 ।8 ।42

(क्षीरस्वामी), 100 — नि0 2 ।1, 101 — दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पेज 144, 102 — नि0 2 ।1, 103 — कल्याणं हेम्नि मंगले — हैम0 3 ।202, नि0 12 ।4, ऋ 1 ।89 ।2, 104 — अम0 को0 — 1 ।4 ।25 (रामाश्रमी टी0), 105 — अकर्तरि — अष्ट0 3 ।3 ।19, 106 — वर्णो द्विजादिशुक्लादियशोगुण कथासु च स्तुतौ ना स्त्रियां भेद रूपाक्षर विलेखने ।। — मेदि0 46 ।26, 107 — नि0 2 ।1, 108— गौः स्वर्गे च वलिवर्दे रश्मौच कुलिशे पुमान् । स्त्री सौरभेयीदृग्दा— णंदिग्वाग्मूच्वप्सु भूम्निच ।। — (मेदिनी0 को0 21 ।1), 109 — नि0 2 ।2, 110 — अथापि पशुनामेह भवत्येतस्मादेव — नि0 2 ।2, 111 — नि0 2 ।4, 112 — दी इटीमौलौजीज ऑफ यास्क, पेज 87, 113 — नि0 2 ।2, 114 — गोमेर्डो — उणा0 2 ।67, 115 — मत्सरा मक्षिकायां स्यान्मात्सर्य क्रोधयोः पुमान् । असद्व्यापारसंपत्तौ कृपणे चाभिधेयवत् ।। — मेदिनी0 को0 136 ।193 — 194, 116 — मत्सर इति लोभ नाम — नि0 2 ।2, 117 — नि0 2 ।2, 118 — दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 57, 119 — कृवृमदिभ्यः कित् — उणा0 3 ।73, 120—पयः स्यात् क्षीरनीरयोः तिश्वको0 — 176 ।32, 121— सर्वधातुभ्योऽसुन् — उणा0 4 ।228, 122 — क्षीरं दुग्धे जले — मेदि0 को0 — 124 ।16, 123 — नि0 2 ।2, 124 — घसेः किच्च — उणा0 4 ।34, 125 — गमहन0 — अष्ट0 6 ।4 ।98, 126 — शासि वसि0 — अष्ट0 8 ।3 ।60, हलन्त0 — 151 पृष्ठ, 127 — नि0 2 ।2, 128 — दो देयर इज एन इलीमेन्ट आफ इरर इन दीस इटीमौलोजी मैंर त इन चृत् हैज नो कोरेसपोन्डेन्स इन चर्मन् — (डा0 वर्मा) दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 5, 129 — उणा0 4 ।145, 130—नि0 12 ।3, 131 — दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 66, 132 — पचाद्यच् अष्ट0 3 ।1 ।134, 133 — उणा0 3 ।66, 134 — नि0 2 ।2, 135 — ऋतेर्डिच्च ? उणा0 4 ।134, 136 —नि0 2 ।2, 137 — अहोरात्रादिषर्व तद्वतीत्यौपन्यात — नि0 दु0 कृ0 2 ।2, 138—अम0 को0 1 ।6 ।19, 139 — पृनहि0 सगा0 4 ।75, 140 — नि0 2 ।2, 141 — अदिशदि — उणा0 4 ।65, 142 — शृंगं प्रभुत्वे शिखरे चिह्ने क्रीडाम्बुयन्त्रके । विषांणोत्कर्षयोश्चाथ शृंगंस्यात् कूर्चशीर्षके स्त्री विषायां स्वर्णमीनभेदयोऋषभौषधौ — मेदिनी0 23 ।25 — 26, 143 — शृणातेर्ह्रस्वश्च — उणा 0 1 ।1 26, 144 — पादो बुध्ने तुरीयांशे शैले प्रत्यन्त पर्वते । चरणे च

मयूखे च0 । मेदि0को 75 ।9—10, 145 — नि0 2 ।2, 146 — पदरूजविशस्पृशो घञ् — अष्टा0 3 ।3 ।16, 147 — नि0 2 ।2, 148 — दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पे0 110, 149 — अम0 को0 1 ।9 ।2, 150 — वव्रिरिति रूप नाम — नि0 2 ।2, 151 — नि0 2 ।3, 152 — दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पे0 94, 153 — हर्यतेः कन्यन् हिरच् — उणा0 5 ।44, 154 — नि0 2 ।3, 155 — दी इटीमोलौजीज ऑफ यास्क, पेज 124, 156 — अम0 को0 1 ।2 ।1 (रामाश्रमी टी0), 157 — नि0 2 ।3, 158 — दी इटीमौलौजीज ऑफ यास्क, पेज 53, 159 — अम0 को0 1 ।10 ।1 (रामा0 टी0), 160 — स्फायि0 — उणा0 2 ।13, 161 — नि0 2 ।3, 162 — ऋष्टिरायुधविशेषः तद् बहुला सेना यस्य सोऽयमृष्टिषेणः । इषितसेनो वा प्रेषित सेनः । । — नि0 दु0 वृ0 2 ।3, 163 — दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पे0 84, 164 — अम0 को0 2 ।8 ।79 (क्षीर स्वामी), 165 — कृवृजृषीति — उणा0 3 ।10, 166 — अगांदगांत्संभवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् । । — श0 ब्रा0 14 ।9 ।4 ।26, 167 — नि0 2 ।3, 168 — वह्वपि यत्पित्रा कृतं पापं भवति, ततोऽयं त्रायति — नि0 दु0 वृ0 2 ।3, 169 — अम0 को0 रामा0टी0 2 ।6 ।27, पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा । । (मनु0 स्मृ0 — 9 । 138), 170 — अष्टा0 3 ।2 ।4, 171 — नि0 2 ।3, 172 — पश्यति ह्यसौ सूक्ष्मानप्यर्थान् — नि0 दु0 वृ0 2 ।3, 173 — तै0 आ0 2 ।9, 174 — दी इटीमौलौजीज ऑफ यास्क, पेज 55, 175 — इगुपधात् कित् — उणा0 4 ।120, 176 — नि0 2 ।3, 177 — पचाद्यच् —अष्टा0 3 ।1 ।134, 178 — उत्तरं प्रतिवाक्ये स्यादूर्ध्वोदीच्योत्तमेऽन्यवत् । उत्तरस्तु विराटस्य तनये दिशि चोत्तरा । । — विश्व0 को0 133 ।99, 179 — नि0 2 ।3, 180 — नि0 2 ।3, 181 — पचाद्यच् — अष्टा0 3 ।1 ।134, 182 — देवापि चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ वभूवतुः — नि0 2 ।3, 183 — महा0 आ0 प0 97—98, 184 — नि0 दु वृ0 2 ।3, 185 — अष्टा0 7 ।4 ।42, 186 — नि0 2 ।3, 187 — सूर्यमादितेयम् — नि0 2 ।4, 188 — नि0 2 ।4, 189 — रसशोणित मांसमेदोमज्जास्थि भावेन विपरिणममानम् — नि0 दु वृ0 2 ।4, 190 —पृषिरंजिभ्यां कित् — उणा — 3 ।111 इत्यतच् ।, 191 — नि0 2 ।4, 192 — नि0 2 ।4, 193 — घृणिपृश्नीति0 उणा0 4 ।52, 194 —न वै

अमूं लोकं जग्मुषे किंचन् अक्म् – काठ0 सं0 36।13, 195 – नाकः स्वर्गान्तरिक्षयोः – विश्व0को 5।35, 196 –अष्टा0 6।3।75 की वृत्तिके लिए द्र0 सि0 कौ0, 197 – नि0 2।4, 198 – नि0 2।4, 199 – नि0 2।4, 200 – दी इटमोलोजीज ऑफ यास्क, पेज 38, 201 – नभो व्योम्नि विश्व0 को0 177।37, 202 – उणा0 4।189, 203 – किरण प्रग्रहौरश्मी – अम0 को0 3।3।138, 204 – नि0 2।5, 205 – यास्क्स् निरुक्त – 23, 206 – उणा0 4।46, 207 – नि0 2।5, 208 – दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 46, 209 – ऋत्विग्दधृक् – अष्टा0 3।2।59, 210 – काष्टा दारूहरिद्रायां, कालमान प्रकर्षयोः। स्थानमात्रे दिशि च स्त्री, दार्वणि स्यान्नपुंसकम्।। मेदि0 को0 38।2–3, 211 – क्रान्त्वाह्येतास्तं तमर्थं प्रति गत्वा स्थिताः भवन्ति –नि0 दु वृ0 2।5, 212 – नि0 2।5, 213 – हनिकुशि0 – उणा0 2।2, 214 – अम0 को0 1।2।2, 215 – कृशृ दृकटि – उणा0 4।30, 216 – अष्टा0 2।2।102, 217 – तमो ध्वान्ते गुणे शोके क्लीवं वा ना विधुन्तुदे – मेदि0 – 171।24, 218 – नि0 2।5, 219 – उणा0 4।109, 220 – मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाहा। स वागवज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्।। – पा0 शि0 52, 221 – मेघइतिनैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकताः – नि0 2।5, 222 – नि0 2।5, 223 –स हि उपदासयति उपक्षयतिकृष्यादीनि कर्माणि– नि0 दु0 वृ0 2।5, 224 – दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पेज 57, 225 – अष्टा0 3।3।18, 226 – नि0 2।5, 227 – आहन्ति असौ भोगेन – नि0 दु0 वृ0 2।5, 228 – आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च – उणा0 4।138, 229 – दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पेज 114, 230 – इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः – अष्टा0 3।1।135, 231 – मेघ इति नैरुक्ताः –नि0 2।5, 232 – त्वाष्ट्र असुरः इति ऐतिहासिकाः – नि0 2।5, 233 – नि0 2।5, 234 – यदावृणोत् अन्तरिक्षम् उदकं वा – नि0 दु0वृ0, 235 – यदवृणोतद्वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते। यदवर्तत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते। यदवर्द्धत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते। – नि0 2।5, 236 – नि0 2।6, 237 – नि0 2।6, 238 – राशदिभ्यां त्रिप् – उणा0 4।67, 239 –उषः किच्च – उणा0 4।234, 240 –

नि0 2 ।2, 241 – नि0दु0 2 ।2, 242 – वहिश्रि0 उणा0 4 ।51, 243 – ऋ0 1 ।113 ।2, 244 –नि0 2 ।6, 245 –अष्टा0 3 ।1 ।134, 246 – उणा0 3 ।4, 247 – नि0 2 ।6, 248 – अष्टा0 3 ।3 ।1 (बाहुलकात्), 249 – नि0 2 ।6, 250 – प्रथमस्तु भवेदादौ प्रधानेऽपि च वाच्यवत् – मेदि0 को0 111 ।47, 251 – प्रथेरमच् – उणा0 5 ।68, 252 – नि0 2 ।6, 253 – नि0 2 ।6, 254 – शृपृभ्यांकिच्च – उणा0 4 ।27 कृतृभ्यामीषन् – उणा0 4 ।26, 255 – क्विव्वचि – वा0 3 ।2 ।178, 256 – अविसिविसिशुषिभ्यः कित् – उणा0 1 ।144, इतिमन् 257 – नि0 2 ।6, 258 – इगुपधाज्ञाप्रीकिरः कः – अष्टा0 3 ।1 ।136, 259 –दृसनिजनि0 उणा0 1 ।3, 260 – उणा0 2 ।32, 261 – नि0 2 ।6, 262 – दी इटीमौलोजीज ऑफ यास्क, पेज 64, 263 – अष्टा0 4 ।1 ।15, 264 –अष्टा0 3 ।1 ।134, 265 – नरहामित्रेषु च – वा0 प्रा0 3 ।102, 266– मित्रेचर्षौ – अष्टा0 6 ।3 ।130, 267 – सर्वनिघृष्व0 उणा0 1 ।153, 268 – अष्टा0 3 ।1 ।134, 269 – नि0 2 ।7, 270 – ऋतं शिलोञ्छे पानीये पूजिते दीप्तसत्त्ययोः – हैम को0 2 ।161, 271 – अष्टा0 3 ।2 ।102, 272 – नि0 2 ।7, 273 – इण्शीभ्यां वन् – उणा0 1 ।152, 274 – एवौपम्ये परिभवे ईषदर्थेऽवधारणे – हैम0 को0 परि0 का0 55, 275 – अम0 को0 3 ।3 ।61, 276 –अर्तेश्च तुः उणा0 1 ।72, 277 –नि0 2 ।7, 278 'दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पेज 76, 279 – पचाद्यच् – अष्टा0 3 ।1 ।134, 280 –पचाद्यच् – अष्टा0 3 ।1 ।134, 281 – कर्मणि घञ् – अष्टा0 3 ।3 ।19 282 – प्रहलाद्श्चास्मिदैत्यानांकालः कलयतामहम् । मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।। गी0 10 ।30, 283 – नि0 2 ।7, 284 – नि0 2 ।7, 285 – अशिपणाय्योरुडायलुकौ च – उणा0 4 ।133, 286 – प्रगृह्य पाणी देवान् पूजयन्ति – नि0 2 ।7, 287 – महति ह्रस्वश्च – उणा0 1 ।37, 288 – वोतोगुणवचनात् – अष्टा0 4 ।1 ।44, 289 – नि0 2 ।7, 290 – दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क, पेज 44, 291 – उणा0 1 ।154, 292 – नि0 2 ।7, 293 –उणा0 4 ।12, 294 –उत्संग चिह्नयोरंकः –अम0 को0 3 ।3 ।4, 295 – हलश्च – अष्टा0 3 ।3 ।121 ।

(ग) निरुक्तके तृतीय अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निरुक्तका तृतीय अध्याय मूलरूपमें निर्वचनके लिए प्रयुक्त हुआ है। इन निर्वचनोंमें नैघण्टुक काण्डके शब्दोंके दर्शन होते हैं। ज्ञातव्य है नैघण्टुक काण्ड तीन अध्यायोंमें विभाजित है। प्रथम अध्यायके अन्तर्गत परिगणित शब्दोंके निर्वचन निरुक्तके द्वितीय अध्यायमें किए गए हैं निघण्टुके प्रथम अध्यायमें परिगणित कुल ४१४ शब्दोंकी व्याख्या यद्यपि नहीं हुई है तथापि निरुक्तके द्वितीय अध्यायके सात पादोंमें उनके निर्वचनकी प्रक्रिया पूरी कर ली गयी है।

निघण्टुके द्वितीय अध्यायमें भी नैघण्टुक शब्द ही है। इसमें कुल बाइस खण्ड हैं जिनमें कुल शब्दोंकी संख्या ५१६ है। पुनः निघण्टुके तृतीय अध्यायमें तीस खण्ड हैं जिसमें शब्दोंकी कुल संख्या ४०८ है। इस प्रकार निघण्टुके द्वितीय एवं तृतीय अध्यायके कुल खण्डोंकी संख्या ५२ तथा शब्दोंकी संख्या ९२४ हो जाती है। इन शब्दोंकी व्याख्या निरुक्तके तृतीय अध्यायमें हुई है।

निरुक्तके तृतीय अध्यायमें कुल चार पाद हैं। प्रथम दो पादोंमें निघण्टुके द्वितीय अध्यायके शब्दोंके निर्वचन हुए हैं तथा अन्तिम दो पादोंमें निघण्टुके तृतीय अध्यायके कुल ४०८ शब्द व्याख्यात हैं। यद्यपि निरुक्तके तृतीय अध्यायके चारों पादोंमें क्रमशः १३, ४१, ३४ एवं ४२ शब्दोंकी ही व्याख्याकी गयी है। इससे स्पष्ट है कि निघण्टुके द्वितीय एवं तृतीय अध्यायके सारे शब्दोंकी व्याख्या नहीं की गयी है। निघण्टुके द्वितीय एवं तृतीय अध्यायमें परिगणित शब्दोंकी कुल संख्या ९२४ है तथा निरुक्तके तृतीय अध्यायके चारों पादोंमें निर्वचनोंकी कुल संख्या १२९ है। इस प्रकार यास्कने निघण्टुके अन्तिम दो अध्यायोंके मात्र १४ प्रतिशत शब्दोंकी ही विवेचना की है। निघण्टुके द्वितीय एवं तृतीय अध्यायके बहुत से खण्डोंके नामोंका मात्र संकेत करके ही यास्क आगे बढ़ जाते हैं। १३० शब्दोंमें वैसे शब्द भी परिगणित हैं जो प्रसंगतः प्राप्त हैं। निघण्टु पठित खण्डोंमें मात्र संख्याका निर्देश कर कहीं तो उसके एक शब्दका ही निर्वचन प्रस्तुत किया गया है। कुछ खण्डके तो एक भी शब्द विवेचित नहीं हुए हैं केवल उसका संकेत भर किया है।

निरुक्तके तृतीय अध्यायमें निर्वचनके लिए प्रयुक्त शब्दोंकी संख्या १२९ हैं इसमें भाषाविज्ञान एवं भारतीय निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार निम्नलिखित निर्वचनोंको उपयुक्त माना जा सकता है- कर्म, अपत्य, अरण, रेक्ण, शेषः, गर्तः, श्मशान,

श्मश्रु, असुर, लोभ, जामिः, निषादः, वाहुः, अवनय, अभीशवः, द्यूः, अन्नम्, बलम्, क्षिप्रम्, संग्रामः, एकम्, त्रयः अष्टौ, दश, विंशतिः, सहस्रम्, खलः, आपानः खण्डः, आखण्डलः, तडित्, अरातयः, अप्नः, कुत्सः, पाकः, ह्रस्वः, महान्, ववक्षिथ, विवक्षसे, गृहम्, सुखम्, खम्, रूपम्, देवरः, योषा, आत्मा, ज़ारः, भगः, मेषः, पशुः, अयम् असौ, वृषलः, अंगारः, काकः, तित्तिरिः, सिंहः, व्याघ्रः, मेधा, मेधावी, स्तोता, यज्ञः, ऋत्विक्, स्तेन, निर्णीतम्, दूरम्, पुराण, नवम्, दभ्रम्, तिरस्, नेमः, अर्धः, नक्षत्राणि, स्तृभिः, वग्री, सीमिका, उपजिह्विका, ऊर्दरम्, कृदरम्, रम्भः, पिनाकम्, स्त्री, मेना, ग्ना, शेपः वेतस और स्वस्ति।

आंशिक ध्वन्यात्मकताकी कमी वाले निर्वचनोंमें मनुष्यः, पंच, धनम्, अन्तिकम्, द्वौ, चत्वारः, शतम्, आक्षाणः, वज्रः, सत्यम्, तस्करः विधवा, स्वसा, प्रियमेध, शब्द परिगणित हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से ओकः, अर्क्, अंगुली, इनः सम्पूर्णः मर्यः, प्रस्कण्वः विरूपः महिव्रतः, कूपः, अपित्वे, अभिके, अर्भकम्, सतः आदि शब्दों के निर्वचन अपूर्ण एवं पूर्ण संगत नहीं हैं।

अर्थात्मक अपूर्णता वाले निर्वचनोंमें वियात शब्द द्रष्टव्य है। श्मशान, अंगुली तथा देवर शब्दके निर्वचन व्यावहारिक एवं सांस्कृतिक आधार पर आश्रित हैं। ऐतिहासिक आधार पर आश्रित निर्वचनोंमें मनुष्यः, भृगु, अंगिरा वैखानसः, भारद्वाजः, आदि शब्द आते हैं। यास्कके समय नव (९) संख्या अशुभ मानी जाती होगी। अतः न वननीयाः न सेवनीया कह कर यास्कने नवका निर्वचन प्रस्तुत किया है। सादृश्यके आधार पर आश्रित निर्वचन खल, खलिहान तथा संग्राम हैं। इसी प्रकार रंग सादृश्य एवं गति सादृश्यके आधार पर कपंजिल शब्दका निर्वचन आधारित है। आकृतिको आधार मानकर खम्, तित्तिरि एवं कपिंजल शब्द यास्क द्वारा विवेचित हैं। तस्कर, तित्तिरिः एवं श्वा शब्दके निर्वचनोंमें कर्मको, पशु एंव सिंह शब्दके निर्वचनोंमें आख्यातको काक शब्दके निर्वचनमें शब्दानुकृतिको, ऋक्षा शब्दके निर्वचन में दृश्यात्मक आधार को तथा स्त्री शब्दके निर्वचनमें यास्कने गुणको आधार माना है।

यास्कके निर्वचनोंके परिशीलनसे पता चलता है कि किसी शब्दके निर्वचनमें विविध अर्थोंकी उपस्थितिके चलते एक से अधिक निर्वचन भी किए गये हैं। एक से अधिक निर्वचनोंमें कुछ तो यास्कके समकालिक या पूर्ववर्ती निरुक्तकारों के निर्वचन हैंया ब्राह्मणादि ग्रन्थोंमें प्राप्तनिर्वचन हैं।यास्क कृत एकशब्दके अनेकनिर्वचनोंमें सभी

निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे संगत नही हैं यही कारण है कि भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इनके सभी निर्वचनोंको पूर्ण संगत नहीं माना जा सकता।

निरुक्तके तृतीय अध्यायके निर्वचनोंका पृथक् परिशीलन द्रष्टव्य है :-

(१) कर्म :- कर्म का अर्थ होता है काम। निरुक्तके अनुसार-क्रियत इति सत:[१] अर्थात् यह किया जाता है। इस निर्वचनके अनुसार कर्म शब्दमें कृञ् करणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार सर्वथा संगत है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे यह उपयुक्त है एवं भाषा वैज्ञानिक नियमोंके अनुकूल है।[२] व्याकरणके अनुसार कृञ् करणे धातुसे मनिन्[३] प्रत्यय कर कर्मन् कर्म शब्द बनाया जा सकता है।

(२) अपत्यम् :- इसका अर्थ सन्तान होता है। निरुक्तमें इसके दो निर्वचन प्राप्त होते हैं।- (१) अपततं भवति[१] अर्थात् जो नीचे फैली होती है। इसके अनुसार इसमें अपतत का योग है। अप का अर्थ होता है नीचे की ओर तथा तत का फैलना। इस आधार पर अपत्यका अन्तिम खण्ड त्य तत का वाचक है। पिता एवं मातासे आकर अलग विस्तृत होता है। उसके भी वंश चलते हैं। (२) नानेन पततीति वा[१] अर्थात् इससे पितर नरकमें नहीं जाते। इसके अनुसार इसमें न-ऋपद् गतौ धातुका योग है ऋपत्ऋय अपत्य। पुरुषके नहीं गिरनेका तात्पर्य धार्मिक दृष्टिकोण पर आधारित है। पुत्रके होने से व्यक्तिको पुन्नामक नरकमें गिरने का भय नहीं रहता।[४] यह निर्वचन प्रसिद्ध, संगत एवं प्राचीन कालसे ही प्रचलित है। लौकिक संस्कृतमें भी यह इसी अर्थमें प्रचलित है। इसे अविद्यमानं पतनं येन तदपत्यम् ऐसा भी किया जा सकता है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे भी यह निर्वचन सर्वथा संगत है। व्याकरणके अनुसार पत्लृ गतौ धातु से य:[५] प्रत्यय कर अ+पत्+य: = अपत्य: शब्द बनाया जा सकता है।

(३) अरण :- इसका अर्थ होता है जो पिताके ऋण का भागी न हो, पुत्र विशेष। निरुक्तके अनुसार-अरण: अपार्णो भवति[१] अर्थात् अरण अपार्ण होता है। अपार्ण का अर्थ होता है- अपगत ऋण। अरण का अर्थ उपजलोदक सम्बन्ध या पर कुलज भी किया जा सकता है।[६] तर्पण आदि का अधिकार ऐसे पुत्रको नहीं रहता। अरण शब्दमें अ+ऋण शब्द खण्ड हैं। अ अपगत का वाचक नञ् अर्थ वाला है तथा ऋण पितृ ऋण आदि का वाचक है। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग प्राय: नहीं प्राप्त होता। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है।

(४) रेक्ण :- रेक्ण शब्द धनका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - रिच्यतेप्रयत:[१]

इस शब्दमें रिच् वियोजने धातुका योग है क्योंकि मरने पर धन यहीं रह जाता है। मृत्युके बाद व्यक्तिसे धनका वियोग हो जाता है। रिच् + नस् रिच् + घञ् =रेक्थः। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं प्राप्त होता। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(५) शेव :- यह अपत्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-शेव इत्यपत्य नाम शिष्यते प्रयतः इसके अनुसार शेव शब्दमें शिष विशेषणे धातु का योग है क्योंकि मृत्यु के बाद यही शेव रहता है। शिष्-शेवः। यह ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग अप्राप्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(६) ओक :- इसका अर्थ होता है निवास स्थान। यास्क इसका निर्वचन न कर मात्र इसके अर्थ का प्रदर्शन करते हैं-ओक इति निवास नामोच्यते[७] व्याकरणके अनुसार इसे (वच्) उच् + असुन्-कुच्च से बनाया जा सकता है।[८]

(७) दुहिता :- इसका अर्थ होता है- लड़की। निरुक्तमें इसके लिए कई निर्वचन प्राप्त होते हैं- (१) दुहिता दुर्हिता[९] इसके अनुसार दुहिता शब्दमें दुः एवं धा धातुका योग है क्योंकि धारण करनेमें यह अहितकारक होती है-दुः +धा-हित+आ-दुर्हिता-दुहिता। (२) दूरे हिता[१०] अर्थात् पिता से दूर रहनेमें ही वह हितकारक होती है। इसके अनुसार इसमें दूर+धा धातु का योग है। दु दूर का वाचक है। (३) दोग्धेवा[११] अर्थात् वह अपने पितृ कुलसे धन सदा दूहती रहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें दुह् प्रपूरणे धातुका योग है। इसके अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि प्रारंभिक कालमें पशुओं के दोहन कर्म में लड़कियां नियुक्त हुआ करती थी। यास्क के उपर्युक्त निर्वचनोंकी अर्थात्मक पुष्टि ऐतरेय ब्राह्मणके प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य सायण ने भी की है।[१२] यह निर्वचन धातुज सिद्धान्त पर आधारित हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार यास्कका अन्तिम निर्वचन सर्वथा संगत है। दुहितृ शब्द ध्वन्यात्मक अन्तर के साथ भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें भी प्राप्त होता है- संस्कृत-दुहितृ अवेस्ता-Dughcter (दुघतर) पह्लव-दुख्तर, ग्रीक-Thugather (घुग्तर) जर्मन्-Tochter (टाक्टर) अंग्रेजी- Daughter (डाउटर) गोथिक -Dauchter डाऽच्टर लिथुआनियन Dukter (दक्तर) स्लैवोनिक-Dushi (दस्ती) व्याकरणके अनुसार इसे दुह् प्रपूरणे + तृच् प्रत्यय कर दुहितृ- दुहिता शब्द बनाया जा सकता है।

(८) गर्त्त :- इसका अर्थ सभास्थाणु या सभामंच होता है। यास्कने कई अर्थोंमें इसका निर्वचन प्रस्तुत किया है- गर्तः सभास्थाणुः सत्यसंगरो भवति[१] अर्थात् गर्त का अर्थ सभामंच होता है जहां आने पर सत्य बोलना पड़ता है। इसके अनुसार गर्त शब्द में गृ निगरणे धातुका योग है। यह निर्वचन दाक्षिणात्योंकी संस्कृति पर आधारित है। दक्षिण देशोंमें आश्रयहीन स्त्रियोंको राजाकी ओरसे वित्तीय सहायता प्राप्त होती थी इसके लिए उस स्त्रीको सभामंच पर चढ़ कर सत्य बोलना पड़ता था कि वह आश्रयहीन है या वह पुत्र एवं पतिसे रहित है। उस गर्त पर ही उसे वाणियों से तर्क किए जाते थे तथा अन्तमें वह धन पा लेती थी।[१०] गर्तका अर्थ श्मशान भूमि भी होता है- स्मशानसंचयोऽपि गर्त उच्यते। गुरते:। अपगूर्णो भवति[११] इसके अनुसार गर्त शब्द गुरी उद्यमने धातुसे बनता है क्योंकि श्मशान लोक विनाशके लिए सतत उद्यत रहता है। गर्त का अर्थ रथ भी होता है-रथोऽपिगर्त उच्यते गृणाते:। स्तुत तमं यानम् अर्थात् गर्त शब्द स्तुत्यर्थक गृ धातुसे बनता है क्योंकि रथ यान होता है। गृ+त= गर्त। विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त किसी शब्दकी सार्थकता प्रमाणित करनेके लिए यास्क कई धातुओंसे निर्वचन प्रस्तुत करते हैं। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार गृ धातुसे गर्त शब्द मानना संगत है। व्याकरणके अनुसार गृ +तन्[११] प्रत्यय कर गर्त शब्द बनाया जा सकता है।[१२]

(९) श्मशानम् :- इसका अर्थ होता है वह स्थान जहां शरीरका अन्तिम संस्कार किया जाता है। इसे पितृभूमि भी कहा जाता है। निरुक्तके अनुसार-श्मशानं श्मशयनम्[१] श्म का अर्थ शरीर होता है उसका शयन अर्थात् जहां पर शरीरों का शयन हो उसे श्मशान कहते हैं। इसमें दो पदखण्ड हैं- प्रथम श्म= शरीर, द्वितीय शानम्। शानम् शयन का वाचक है इस निर्वचनका आधार सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार शद शब्दका श्म आदेश कर तथा शयन शब्दका शान आदेश कर श्म+शान=श्मशान बनाया जा सकता है।[१२] श्मशान शब्दके उपर्युक्त निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि यास्कके समय शवको श्मशान भूमिमें गाड़ा भी जाता था। श्मशानका वाचक गर्त शब्द भी अपगूर्णो भवति[१३] इस निर्वचनसे गड्ढाका ही वाचक स्पष्ट होता है। जिसमें शव का शयन कराया जाता होगा।

(१०) श्मश्रु:- इसका अर्थ लोम या बाल होता है लेकिन यह मूंछ के अर्थ में

रूढ़ है। निरुक्त के अनुसार-श्मनि श्रितं भवति[१] अर्थात् यह शरीर पर आश्रित होता है। इस निर्वचन के अनुसार इसमें श्म + श्रि सेवायां धातु का योग है। श्म शरीरका वाचक है तथा श्रु श्रिञ् सेवायां धातुका वाचक। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे यह निर्वचन युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। डा. वर्माका कहना है कि श्रि धातु स्थित इ का उ में परिवर्तन भाषा वैज्ञानिक आधार पर उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।[१४] आज कल श्मश्रुका प्रयोग केवल मूंछ के लिए होता है। यह रूढ्यर्थक है। व्याकरणके अनुसार श्म +श्रिञ् सेवायां धातु से डु:[१५] प्रत्यय कर श्मश्रु शब्द बनाया जा सकता है। श्मश्रु शब्दके अर्थ में आज अर्थसंकोच हो गया है।

(११) लोम :- इसका अर्थ रोम होता है। निरुक्त के अनुसार लुनातेर्वा[१] अर्थात् इसका छेदन किया जाता है। इसके अनुसार लोम शब्द लुञ् छेदन से निष्पन्न होता है। (२) लीयतेर्वा[१] अर्थात् यह शरीर पर लगा रहता है। इसके अनुसार इस शब्द में लीङ् आश्लेषे धातुका योग है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक आधारसे युक्त है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपर्युक्त नहीं। भाषा विज्ञानके अनुसार प्रथम निर्वचन ही उपयुक्त है। लोम शब्दके उपर्युक्त निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि यास्कके समयमें लोग केश कटवाते थे। व्याकरण के अनुसार लुञ् छेदने धातु से मनिन्[१६] प्रत्यय कर लोमन् लोम बनाया जा सकता है।

(१२) जामि :- इसका अर्थ कन्या होता है। निरुक्तके अनुसार (१) जामिरन्येऽस्यां जनयन्ति[१] अर्थात् इसमें दूसरे व्यक्ति सन्तान पैदा करते हैं। इसके अनुसार जामि: शब्द में जन् धातुका योग है। (२) जमतेर्वा स्याद्गति कर्मण: निर्गमन प्राया भवति[१] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक जम् धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह प्राय: निकलने वाली या पितृ कुलसे अपने पतिकुलमें जाने वाली होती है। यास्कका द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। प्रथम निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। डा. वर्मा इसे अविकसित भाषा विज्ञानका परिणाम मानते हैं।[१७] व्याकरणके अनुसार यह जै क्षये+मि:[१८] प्रत्यय या जमु अदने + इण् प्रत्यय या इञ्[१९] प्रत्यय करने पर बनता है। लौकिक संस्कृतमें जामि शब्द बहन तथा कुलस्त्रीके अर्थमें प्रयुक्त होता है।[२०] वैदिक जामि शब्दका लौकिक संस्कृतमें अर्थान्तर की उपलब्धि होती है।

(१३) मनुष्य :- मनुष्य मानवका वाचक है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं। (१) मत्वा कर्माणि सीव्यति[२१] अर्थात् वह सोंच समझ कर काम

करता है। इसके आधार पर मनुष्य शब्द में मन् एवं सिव् धातुका योग है। (२) मनस्यमानेन सृष्टा:[२१] अर्थात् वह सोचसमझकर काम करता है। इसके अधार पर मनुष्यय शब्दमें मन् एवं सिव् धातु का योग है। (३) मनस्यति: पुनर्मनस्वी भावे[२१] अर्थात् यह प्रहृष्ट मन का होता है। इसके अनुसार मनुष्य शब्द में मन् धातुका योग है। (४) मनोरपत्यं मनुषो वा[२१] अर्थात् मनुका अपत्य मानव कहलाया। द्वितीय एवं अन्तिम निर्वचन ऐतिहासिक आधार पर आधारित है। अर्थात्मक दृष्टिसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। मन् धातुसे इसका निर्वचन मानना संगत होगा। व्याकरणके अनुसार मनुः यत्-सुक्च[२२] मनुष्य बनायाजा सकता है।

(१४) असुर :- इसका अर्थ होता है-राक्षस। निरुक्तके अनुसार (१) असुरता: स्थानेषु वा[२१] अर्थात् किसी भी स्थान पर अच्छी तरह नहीं ठहरो। इसके अनुसार इसमें अ+सु + रम् धातुका योग है। अ नञर्थ है।[२३] सु सुष्ठु का वाचक है तथा रम् धातुका अवशिष्ट र है। (२) अस्ता: स्थानेभ्य: इतिवा[२१] अर्थात् वे स्थानोंसे च्युत हैं। देवताओं के द्वारा गिराये गये हैं। इसके अनुसार इसमें अस् क्षेपणे धातुका योग है। (३) स्थानेषु अस्ता:[२१] इसके अनुसार भी इसमें अस् धातुका योग है। इसका अर्थ द्वितीय निर्वचन के तुल्य है। (४) अपि वा असुरिति-प्राणनाम अस्त: शरीरे भवति तेन तद्वन्त: अर्थात् असु प्राण वायुका नाम है क्योंकि वह शरीरमें रहता है। इससे वह युक्त है इसलिए असुर कहलाया। शारीरिक बलकी उत्कृष्टताके कारण असुर कहलाया। देवताओं एवं असुरोंके युद्धमें असुरोंका पराक्रम सदा वर्णित है। असु+र (तद्वान् अर्थ में र प्रत्यय) असुर। उपर्युक्त निर्वचन राक्षसके अर्थमें प्राप्त होते हैं। असु कुत्सित स्थानका वाचक है। कुत्सित स्थान से असुरों को बनाया- असोरसुरानसृजत्।[२१] इसकी पुष्टि ब्राह्मण ग्रन्थोंसे भी हो जाती है।[२४] यह ऐतिहासिक आधार रखता है।

असुर शब्द प्राचीन ऋचाओंमें देवताका वाचक प्राप्त होता है।[२५] यास्क ने भी इस अर्थ में इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है- (१) असुरत्वम् प्रज्ञावत्त्वं वान्नवत्वम्[२६] वा अर्थात् असुर प्रज्ञावान को कहते हैं या प्राणवान को कहते हैं। असु के दो अर्थ है- प्रज्ञा एवं प्राण।[२७] (२) आपे वाऽसुरिति प्रज्ञा नाम, अस्त्यनर्थान् अस्ताश्चास्यामर्था:[२६] असु प्रज्ञा का नाम है क्योंकि वह अनर्थों को दूर करती है या इसमें सभी पदार्थ उपस्थित हो जाते हैं अत: असु + मत्वर्थीय र = असुर: बनाया गया। (३)- वसुरत्वमादिलुप्तम्[२६] अर्थात् वसुरत्व के आदि अक्षर व का लोप होकर वसुरत्व - असुरत्व हो गया है। इसका अर्थ

होगा धनवत्ता। देवता अर्थ में असुरके निर्वचनसे तीन अर्थ स्पष्ट होते हैं- प्रज्ञावत्ता, प्राणवता एवं वसुमत्ता। इन निर्वचनोंमें असु + र का योग है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

राक्षसके अर्थमें असुर शब्दके निर्वचनोंमें अ + सु + रम्, अस्-धातु एवं असु+ र का योग पाया जाता है। अ+ सु+ रम् = असुरः, अस्- असुरः तथा असु+ रः असुरः। इस सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अस् धातुसे अ असु + रः = असुरः ध्वन्यात्मक दृष्टिसे भी उपयुक्त है। असुर शब्द सुरका उलटा नहीं है[२८] जो उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट हो जाता है। (वेदकी प्राचीन ऋचाओंमें) प्रारंभिक अवस्थामें असुर शब्द दैवताके अर्थमें प्रयुक्त था तथा इसके अच्छे अर्थ मान्य थे कालान्तर में (वाद की ऋचाओं में) इसके अर्थोंमें भी अपकर्ष हुआ तथा विकृत अर्थ होकर यह सुर विरोधी राक्षसों का वाचक बन गया। अवेस्तामें भी असुर शब्द श्रेष्ठका ही वाचक है।[२९] आज कल असुर शब्दका प्रयोग उसके विकृत अर्थमें ही होता है। व्याकरणके अनुसार अस् धातुसे उरन्[३०] प्रत्ययकर असुरः शब्द बनायाजा सकताहै।

(१५) ऊर्क :- यह अन्न का वाचक है। निरुक्त के अनुसार (१) ऊर्गित्यन्न नाम। ऊर्जयतीतिसतः[३१] अर्थात् यह शब्द ऊर्ज् वलप्राणयोः धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह बल एवं प्राणको देने वाला है।[३२] (२) पक्वं वा[३१] अर्थात् पक्व शब्दसे ऊर्क हुआ है। पका हुआ अन्न भी बल एवं प्राणको देने वाला होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें पच् धातुका योग है। पक्व शब्दके प का लोप, अवशिष्ट क्व का वर्ण विपर्यय व-क, व का उ सम्प्रसारणके द्वारा तथा रुक् का आगम होकर पक्व-क्व-वक्, ऊ क्, ऊ क्-रुक् = ऊर्क्। (३) सुप्रवृक्णम् इतिवा[३१] अर्थात् यह अन्न आसानीसे काटा जाता है इसके अनुसार इस शब्द में व्रश्च्, धातु का योग है। व्रश्च् के र एवं संयोगादिका लोप व का उ तथा रुक् का आगम कर एवं कुत्व करने पर ऊर्क शब्द सिद्ध होता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टि से उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसें उपयुक्त माना जाएगा। द्वितीय एवं तृतीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार ऊर्ज् बल प्राणयोः+ अच्[३३] कर ऊर्जः ऊर्क बनाया जा सकता है।

(१६) निषादः-इसका अर्थ होता है वर्ण विशेष। वर्ण व्यवस्थाके अनुसार चार वर्णोंके अतिरिक्त पंचमवर्ण निषाद कहलाता था। ये पांचों वर्ण एक साथ पंचजन

कहलाते थे।[३४] निरुक्तके अनुसार (१) निषादः निशदनो भवति[३५] अर्थात् वह प्राणियोंको मारने वाला होता है। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्द में नि + षद् का योग है। (२) निषन्नमस्मिष्पापकमितिनैरुक्ताः[३५] निरुक्त सम्प्रदायके अनुसार इसमें पापकर्म बैठा रहता है इसलिए निषाद कहलाया। इसके आधार पर निषाद शब्दमें नि : सद् विशरणगत्यवसादनेषु धातुका योग है। इन निर्वचनों से निषाद वर्णके तत्कालीन निन्द्य कर्मका पता चलता है। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं यास्कके समयमें अर्थात्मक औचित्य भी संभावित है। फलतः इसे भाषा विज्ञानके अनुसार उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार नि + षद्लृ निशरणादौ धातुसे घञ्[३६] प्रत्यय कर निषाद शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें निषाद शब्द संगीत शास्त्रका स्वर विशेष, धीवर जातिवेशेष, चाण्डाल आदि अर्थोंमें प्रयुक्त होता है।

(१७) पंच :- यह पांच संख्याका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -पंच पृक्ता संख्या अर्थात् पंच पृक्त (मिली हुई) संख्या है। पंच में एक से लेकर पांच तक की संख्यायें मिली होती हैं। इसके अनुसार पंच शब्दमें पृची सम्पर्के धातुका योग है। स्त्री पुंनपुंसकेषु अविशिष्टा अर्थात् यह स्त्रीलिंग पुलिंग एवं नपुंसक में एक समान रहता है। लिंग के अनुसार इसका रूप परिवर्तन नहीं होता। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। पृच् से पंच में स्वरगत औदासिन्य है। किंचित् ध्वनि परिवर्तनके साथ भारोपीय भाषाओंमें इसे देखा जा सकता है-सं.- पंचन्-अवे. पंचन, ग्रीक Penta अंग्रे. Five.

(१८) बाहु :- इसका अर्थ होता है-भुजा। निरुक्तके अनुसार-प्रवाधत आभ्यां कर्माणि[३५] अर्थात् इनसे कार्य सम्पन्न होते हैं। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें वाधृ विलोडने धातुका योग है। धातु स्थित ध का ह में परिवर्तन हो गया है। यह परिवर्तन धातुज नियमानुकूल है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। महाप्राण ध्वनियोंका ह में परिवर्तन भारतीय अन्य भाषाओं में भी प्राप्त है।[३७] व्याकरण के अनुसार वाधृ + उः[३८] प्रत्यय कर वाहुः शब्द बनाया जा सकता है। या वाह प्रयत्ने धातु से अच्[३९] प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है।

(१९) अंगुलय :- यह अंगुलि के बहुबचनका रूप है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं- (१) अग्रगामिन्यो भवन्तीतिवा अर्थात् किसी भी कार्य सम्पादनमें यह आगे जाने वाली होती है। इसके अनुसार इसमें अग्र + गम् धातु का योग है। (२) अग्रगालिन्यो भवन्तीति वा अर्थात् यह अग्रभागमें पानी गिराने वाली होती है। इसके

अनुसार इसमें अग्र + गल् धातु का योग है। (३) अग्रकारिण्यो भवन्तीतिवा अर्थात् सर्वप्रथम यह कार्य करने वाली होती है या अग्रकारिणी होती है। इसके अनुसार इसमें अग्र + कृ धातु का योग है। (४) अग्र सारिण्यो भवन्तीतिवा अर्थात् यह अग्रसारिणी होती है, प्रत्येक कर्ममें आगे आने वाली होती है। इसके अनुसार इसमें अग्र + सृ धातु का योग है। (५) अंकना भवन्तीति वा अर्थात् यह अंकन करने वाली होती है। इसके अनुसार इस शब्दमें अंक लक्षणे धातुका योग है। (६) अंचना भवन्तीतिवा अर्थात् यह पूजन करने वाली होती है। इसके अनुसार इस शब्दमें अंच् गति पूजनयो: धातुका योग है। (७) अपि वाभ्यंचनादेवस्यु:[३५] अर्थात् प्रत्येक कार्यों के प्रति अभिमुखहोकर जाती है। इस निर्वचनके अनुसार इसमें अंच् गतौ धातुका योग है। यास्क अंगुलि शब्दके निर्वचनमें अनेक मार्ग अपनाते हैं। इसका कारण विभिन्न अर्थों का बोध कराना है। यास्कके निर्वचनसे हाथ द्वारा सम्पादित विविध कार्य स्पष्ट हो जाते हैं द्वितीय निर्वचनके अनुसार हाथ द्वारा सम्पादित अर्घ्य या तर्पण द्योतित होता है जिसमें अंगुलियोंके अग्रभागसे जल गिराया जाता है। यह सांस्कृतिक आधार रखता है। पंचम निर्वचनके अनुसार इससे लेखन कार्यका संकेत प्राप्त होता है। षष्ठ निर्वचनके अनुसार अंगुलिसे पूजन कार्यका द्योतन होता है। शेष निर्वचन विविध कार्य सम्पादन अर्थको अभिव्यक्त करते हैं। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। ये निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं है। पूर्ण रूपमें धातुओंका संकेत भी इनमें नहीं प्राप्त होता है। इसे अंगयो: पाणयो: लीयन्ते तिष्ठन्तीति अंगुलय: बनाया जा सकता है या अगि लक्षणे धातु से माना जा सकता है। व्याकरण के अनुसार अगि गतौ धातुसे उलि:[४०] प्रत्यय कर अंगुलि: शब्द बनाया जा सकता है।

(२०) अवनय:- अवनि अंगुलि का वाचक है। अवनिका ही बहुबचन रूप अवनय: होता है। निरुक्तके अनुसार-अवन्ति कर्माणि[३५] अर्थात् यह कर्मोंकी रक्षा करती है। इसके अनुसार अवनि शब्द में अव् रक्षणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें अवनि: का अर्थ पृथ्वी होता है। पृथ्वी वाचक अवनिमें भी अव् धातुका ही योग माना जाएगा। कालान्तर में अवनि शब्दमें अर्थ परिवर्तन हो गया है। यह लौकिक संस्कृतके पृथ्वी वाचक अवनि शब्द से स्पष्ट हो जाता है। व्याकरणके अनुसार-अव् + अनि प्रत्यय (अव प्रीणने कर्तरि अनि) कर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार यास्कका निर्वचन संगत माना जाएगा।

(२१) अभीशव :- यह अंगुलिका वाचक है। अमीशु: का बहुबचन रूप अभीशव: है। निरुक्त के अनुसार-अभ्यश्नुवते कर्माणि[३५] यह सभी कार्योंमें व्याप्त रहती है। इसके अनुसार इसमें अभि + अश् व्याप्तौ धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। लौकिक संस्कृतमें इसके किरण आदि अर्थ प्राप्त होते हैं। अंगुलिके अर्थमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता। इस आधार पर कालान्तरमें इस शब्दमें अर्थादेश प्रतीत होता है। व्याकरणके अनुसार-अभि+इष्+कु प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है।

(२२) धू :- इसका अर्थ अंगुलि होता है। निरुक्तके अनुसार -धूर्वतेर्वधकर्मण:[३५] अर्थात् यह शब्द वधार्थक धुर्व् धातुसे बनता है क्योंकि इन अंगुलियोंसे हिंसा भी होती है। इसका ध्वन्यात्मक आधार संगत है। धू: गाड़ी के जुए (जोतने का डण्डा) का भी नाम है। जुए का वाचक धू: शब्द भी इसी धुर्वी धातुसे निष्पन्न माना जाएगा।[४१] धारयतेर्वा[३५] अर्थात् यह गाड़ी खींचने वाले जानवरको धारण करता है। इसके अनुसार इसमें धृ धातुका योग माना जाएगा। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे भी यह निर्वचन उपयुक्त हैं। यास्क विभिन्न अर्थोंके प्रकाशनमें ही कई धातुओं कल्पना करते हैं। इस शब्दमें अर्थ परिवर्तन माना जाएगा। क्योंकि अंगुलिके अर्थमें प्रयुक्त यह शब्द गाड़ीके जुएका वाचक बन गया। लौकिक संस्कृतमें धू: का प्रयोग अंगुलि के अर्थमें प्राय: नहीं देखा जाता। धृ धातु से धू: माननेमें ध्वन्यात्मक संगति उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे धुर्व् + क्विप्[४२] प्रत्यय कर बना जा सकता है।

(२३) अन्नम् :- इसका अर्थ होता है अनाज जो खाया जाय (खाद्य पदार्थ)। निरुक्त के अनुसार (१) आनतं भूतेभ्य:[३५] अर्थात् वह प्राणियों के प्रति नत रहता है। इसके अनुसार इस शब्द में आ + नम् धातु का योग है। (२) अत्तेर्वा[३५] अर्थात् खाया जाने के कारण इसका नाम अन्न पड़ा। इसके अनुसार इसमें अद् भक्षणे धातुका योग है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। अत: भाषा विज्ञानके अनुसार इसे ही संगत माना जाएगा। अद् भक्षणे धातु का ही भारोपीय परिवारकी अंग्रेजी भाषा में खाना अर्थ में प्राप्त होता है। व्याकरणके अनुसार अद्भक्षणे धातु से क्त[४३] प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है। इसका धातु प्रत्ययार्थ होगा जो खाया गया हो।[४४] अद्यते इति अन्नम् यास्क के अनुसार माना जा सकता है।[४५]

(२४) बलम् :- इसका अर्थ ताकत या शक्ति होता है। निरुक्तके अनुसार बलं भरं भवति विभर्ते:[३५] अर्थात् यह भरण एवं पोषण करता है। इसके अनुसार इसमें डुभञ् धारण पोषणयो: धातु का योग हैं। भृ धातुसे भर तथा भर का ही बल माना गया। भ का ब में परिवर्तन अल्प प्राणीकरण तथा र एवं ल का अभेद होकर भरम्-बलम् हो गया। यह निर्वचन धातुज सिद्धान्तसे सीधा सम्बद्ध है।[४६] भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरण के अनुसार बल् + क प्रत्यय कर बलम् शब्द बनाया जा सकता है।

(२५) धनम् :- धन अर्थ का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- धीनोतीतिसत: अर्थात् यह तृप्त करता है। इस निर्वचनके अनुसार यह शब्द तृप्त्यर्थक धिंवि धातु के योगसे निष्पन्न होता है। यह निर्वचन अर्थात्मक आधार पर आधारित है। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे यह पूर्ण संगत नहीं है। धा धातु से न प्रत्यय कर धनम् शब्द बनाना भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयुक्त होगा। व्याकरणके अनुसार धन् धान्ये धातु से अच्[४७] प्रत्यय कर धनम् बनाया जा सकता है।

(२६) क्षिप्रम् :- यह शीघ्र का वाचक है। निरुक्तके अनुसार - संक्षिप्तो विकर्ष:[३५] अर्थात् विक्षिप्त कार्य संक्षिप्त हो जाता है। कार्य शीघ्र सम्पादित हो जाते हैं। इस निर्वचन के अनुसार क्षिप्र शब्दमें क्षिप् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे सर्वथा संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार क्षिप् प्रेरणे धातु से रक्[४८] प्रत्यय कर क्षिप्र शब्द बनाया जा सकता है।

(२७) अन्तिकम् :- इसका अर्थ होता है निकट, नजदीक। निरुक्त के अनुसार आनीतं भवति अर्थात् यह दूर से निकट लाया होता है। इसके अनुसार अन्तिक शब्द में अहनी धातुका योग है। अर्थात्मक महत्त्व से यह निर्वचन उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक आधार इसका उपयुक्त नहीं है। व्याकरणके अनुसार यह तद्धितान्त शब्द है। अन्तिक शब्दको अन्तकठन्[४९] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। अन्त + ठन् = अन्तिक (ठ का इक)।

(२८) संग्राम:-इसका अर्थ होता है युद्ध। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते है-(१) संगमनद्वा[३५] अर्थात् (युद्ध के लिए) एकत्र होते हैं। इसके अनुसार संग्राम शब्द में सम् +गम् धातुका योग है।(२)संगरणद्वा अर्थात्(युद्ध में) परस्पर ध्वनि करते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें सम्गृ शब्दे धातुका योग है। (३) संगतौ ग्रामाविविवा[३५] अर्थात् दो समूह युद्ध के लिए एकत्र होते हैं।इसके अनुसार संग्राम शब्दमें सम्+ग्राम्

धातुका योग है। उपर्युक्त निर्वचनोंमें संग्रामके स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। युद्धके लिए दो दल एकत्र होते थे तथा दोनों परस्पर में काफी हल्ला मचाते थे। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे द्वितीय निर्वचन उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार सम् + ग्राम + णिच् +घञ् प्रत्यय कर संग्राम शब्द बनाया जा सकता है।[५०]

(२९) एकम् :- यह संख्या वाचक शब्द है। यह प्रथम अंक (पहला) का वाचक है। निरुक्तमें इसके निर्वचनमें-एक इता संख्या[३५] अर्थात् एक संख्या दूसरी संख्या तक पहुंची रहती है। इता संख्याका अर्थ है गयी हुई संख्या। इसके अनुसार एक शब्द में इण् गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें भी किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ यह शब्द इसी अर्थमें प्राप्त होता है। संस्कृत- एकम्, अवेस्ता-अएव, ग्रीक-eis, लैटिन-unus, अंग्रेजी- one व्याकरण के अनुसार इण् गतौ धातुसे कन्[५१] प्रत्यय कर एकम् शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(३०) द्वौ :- यह दो संख्याका वाचक है। इसका प्रयोग नित्य द्विबचनमें ही होता है। निरुक्तके अनुसार -द्वौ द्वुततरा संख्या[३५] अर्थात् यह एक संख्याकी अपेक्षा द्वुततर होती है। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें द्रु गतौ धातुका योग है। इस निर्वचनमें आंशिक ध्वन्यात्मकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे द्वृ धातुसे निष्पन्न मानना ज्यादा संगत है। गत्यर्थक होनेके कारण इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें भी किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ यह उपलब्ध होता है- संस्कृत द्वि, अवे. द्व, ग्रीक-duo, लैटिन- duo, अंग्रेजी- two.

(३१) त्रय : यह तीन संख्याका वाचक है। यह नित्य बहुवचनान्त है। निरुक्तके अनुसार त्रयस्तीर्णतमा संख्या[३५] अर्थात् यह दो की अपेक्षा अधिक तरने वाली संख्या है। इसके अनुसार इस शब्दमें तृ तरणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह संगत है। भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ यह शब्द उपलब्ध होता है-संस्कृत-त्रि, अवे.-थि, ग्रीक-Truis, लैटिन-Tres, अंग्रेजी- Three. व्याकरण के अनुसार त्रि-जस् कर त्रयः बनाया जा सकता है।

(३२) चत्वारः- यह संख्या वाचक शब्द है। इसका अर्थ होता है-चार। निरुक्तके

अनुसार इस शब्दमें चल् कम्पने, चर् गतौ या चल् विलसने धातुका योग है। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। ध्वत्यात्मक आधार इसका पूर्ण उपयुक्त नहीं है। भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें इसे किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ देखा जा सकता है- संस्कृत चतुर अवे-चथु, ग्रीक- Tettares, लैटिन- Quattuor, अंग्रेजी-Four.

(३३) अष्टौ :- यह संख्या वाचक शब्द है। इसका अर्थ होता है-आठ। निरुक्तके अनुसार- अष्टावश्नोते:[३५] अर्थात् यह संख्याओंमें व्याप्त रहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें अशु व्याप्तौ धातुका योग है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उपयुक्त है। भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें भी किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ इसे देखा जाता है- संस्कृत-अष्टन्, अवे.-अश्तन्, ग्रीक-Okto, लैटिन- Octo, अंग्रेजी-Eight. व्याकरणके अनुसार इसे अस् + तन= अष्टन् बनाया जा सकता है।

(३४) नव :- यह नौ संख्या का वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) नव न वननीया: अर्थात् यह सेवन के योग्य नहीं है। इसके अनुसार इस शब्दमें न + वन् धातुका योग है- न+वन्- नवन्। (२) न अवाप्ता वा[३५] अर्थात् वह दस संख्या तक प्राप्त नहीं है। इसके अनुसार नव शब्द में न + आप् धातुका योग है। प्रथम निर्वचन से स्पष्ट होता है कि यास्कके समय नव संख्या अशुभका द्योतक थी। द्वितीय निर्वचन का अर्थात्मक आधार उपयुक्त है लेकिन यह ध्वन्यात्मक महत्त्वसे पूर्ण नहीं है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक महत्त्व रखता है। भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें भी किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ यह शब्द प्राप्त होता है-संस्कृत-नवन्, अवेस्ता- नवन्, ग्रीक-Enuea, लैटिन- Noven, अंग्रेजी-Nine.

(३५) दश :- यह दश संख्याका वाचक है। निरुक्तके अनुसार इसके दो निर्वचन प्राप्त होते हैं- (१) दश दस्ता अर्थात् यह क्षीण होती है। इसके अनुसार इस शब्द में दसु उपक्षये धातु का योग है। (२) दृष्टार्था वा[३५] इसका प्रयोजन अगली संख्या में देखा जाता है। इसके अनुसार इसमें दश् धातुका योग है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टि से उपयुक्त है। अर्थात्मक आधार पर यह कहा जा सकता है कि अगली संख्या की अपेक्षा यह क्षीण संख्या है, तो इसका अर्थात्मक आधार भी संगत है। द्वितीय निर्वचन मात्र अर्थात्मक महत्त्व रखता है। प्रथम निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त है। यह आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों द्वारा भी समादृत है। भारोपीय परिवार की अन्य भाषाओं में भी इसे देखा जा सकता है- संस्कृत- दशन्, अवेस्ता- दसन्, ग्रीक-Deka, लैटिन-Decem,

अंग्रेजी-Ten. व्याकरणके अनुसार इसे दस् + अन् दशन् बनाया जा सकता है।

(३६) विंशति :- यह शब्द बीस संख्याका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-विंशति द्विर्दशत:[३५] अर्थात् दो दशसे विंशति शब्द बना। इसके अनुसार इस शब्द में द्वि: + दशत् का योग है। द्वि का अवशिष्ट वि प्राप्त है इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भारोपीय परिवारकी हीं अंग्रेजी भाषामें इसके लिए प्राप्त Twenty शब्द में Two-Ten की ध्वनि विदित होती है। जो यास्कीय आधारसे सम्बलित है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है।

(३७) शतम् :- यह सौ संख्याका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -शतं दशदशत:[३५] अर्थात् दशकी दश वार आवृत्ति करनेसे शतम् शब्द बनता है। (१० X १० - १००) दशकी दश संख्यायोंका योग सौ होता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। यह निर्वचन पूर्ण स्पष्ट नहीं है। अर्थात्मक आधार इसका संगत है। व्याकरण के अनुसार इसे शो + डतच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। शतम् शब्द भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओं-में भी किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ उपलब्ध है। केन्तुम् परिवार की भाषाओं में श के स्थान पर क ध्वनि प्राप्त होती है- श ध्वनि शतम् परिवार की है- शतम् वर्गमें-संस्कृत-शतम्, अवे.-सतम्, फारसी सद् हिन्दी-सौ रूसी-स्तो, वल्गेरियन-स्जिम्नास। केन्तुम् वर्ग में शतम्-लैटिन- केन्तुम, ग्रीक-हेक्टोन, इटेलियन-केन्तो, फ्रेन्च-केन्त, ब्रीटन-केन्ट, गोलिक- क्युड, तोखारी-कन्ध।

(३८) सहस्रम् :- यह संख्या वाचक है। इसका अर्थ होता है एक हजार। निरुक्तके अनुसार-सहस्वत्[३५] अर्थात् वलयुक्त संख्या। इस शब्दमें सहस् + रम् दो पद विभाग है। रम् वत् के समान प्रत्यय मालूम पड़ते है। भाषाविज्ञानके अनुसार यह निर्वचन उपयुक्त है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार स + हस् + र प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(३९) अर्बुद :- यह संख्या वाचक करोड़के अर्थ को प्रकट करता है तथा यह मेघका भी वाचक भी है। निरुक्तमें मेघ एवं करोड़ दोनों अर्थोंमें इसके निर्वचन प्राप्त होते है-अर्वुद: मेघो भवति-अरणम् अम्बु तद्द: अर्थात् गमनशील जलको देने वाला होता है। इसके अनुसार इसमें ऋ गतौ का अर् +उ अर्वु+दा-द=अर्बुद:। संख्या के अर्थमें अर्वुद शब्द अम्बुमद्भातीतिवा अर्थात् वह बादल के समान सुशोभित होती है। इसके अनुसार अम्बुमद् अर्बुद माना गया है।अम्बुमद् भवतीतिवा[३५] अर्थात् वह बादलके

तुल्य होती है। करोड़ का वाचक अर्बुद शब्द मेघवाचक अर्बुदके सादृश्य पर ही माना गया है। वर्षाके समय बादल बहुत वृहत् होता है उसी प्रकार अर्बुद (करोड़) संख्या बड़ी होती है।[५२] यह निर्वचन अस्पष्ट है।[५३] इन निर्वचनोंका अर्थगत साम्य कल्पना पर आधारित है। कोष ग्रन्थोंमें अर्बुद दस करोड़का वाचक है।[५४] व्याकरणके अनुसार अरं वुन्दति-अर् + उबुन्दिर् निशामने धातुसे बनाया जा सकता है।[५५] या अर्व् हिंसायाम् + उदच् = अर्बुदः भी बनाया जा सकता है।

(४०) खल :- इसके अर्थ होते हैं-संग्राम, खलिहान आदि। निरुक्तमें भी कई अर्थोंमें इसके निर्वचन प्राप्त होते हैं। संग्रामके अर्थमें (१) खलतेर्वा अर्थात् इसमें शत्रु मथे जाते हैं। इस निर्वचनके अनुसार खलः शब्दमें मथनार्थक खल् धातुका योग है। (२) स्खलतेर्वा अर्थात् इसमें शत्रु मारे जाते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें हिंसार्थक स्खल् धातुका योग है। खलिहान वाचक खल शब्द भी इन्हीं निर्वचनोंसे माना जाएगा।[५६] खलिहानमें भी अन्न मथे जाते हैं या चूर्ण किए जाते हैं। खलिहानमें अन्नकी दौनी होती है। अन्न चूर्ण करनेके पात्र भी खल कहलाते हैं। तथा यह भी इन्हीं निर्वचनोंसे माना जाएगा। इस खलमें भी अन्न मथे जाते हैं। या चूर्ण किए जाते हैं। समास्कन्नो भवति[३५] खलिहानका वाचक खल शब्दका अर्थ होगा जो धान्यों से दबाया गया हो। स्कन्द् अः कद् + अः खलः। खलिहान या दवा कूटने का पात्र वाचक खल शब्द सादृश्यके आधार पर माना गया है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार इसे खल् + अच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(४१) आक्षाणः :- इसका अर्थ होता है व्यापक। निरुक्तके अनुसार -आक्षाण आश्नुवाणः[३५] अर्थात् जो व्याप्त हो। इसके अनुसार इस शब्दमें अशुव्याप्तौ धातुका योग है। जो व्याप्त होता है उसे आक्षाण कहते हैं।[५७] इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं हैं। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह उपयुक्त है।

(४२) आपान :- इसका अर्थ होता है- व्यापक । निरुक्त के अनुसार- आपान आप्नुवानः[३५] अर्थात् जो व्याप्त हो उसे आपान कहते हैं। इसके अनुसार इस में आप्लृ व्याप्तौ धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृत में आपान शराब आदि के पीने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। व्याकरण के अनुसार आ + पा + ल्युट् प्रत्यय कर आपान शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे

उपयुक्त माना जाएगा।

(४३) वियात :- इसका अर्थ होता है शत्रुओं को पीड़ा पहुंचाने वाला। वियात शब्द वधार्थक वि इ या धातुसे निष्पन्न है। निरुक्तके अनुसार - वियातयत इतिवा अर्थात् जो शत्रुओं को यन्त्रणा देता है। वियातयेति वा[३५] अर्थात् शत्रुओं को विविध प्रकार से यातना दे, इस प्रकारकी बात जिसे कही जाए उसे वियात कहते हैं। इसमें वि+ यत् धातु का योग है। यत् से णिच् कर यातय- वि + यातय् = वियात। वि + या = वियात। ध्वन्यात्मक आधार इसका उपयुक्त है। अर्थात्मक आधार अप्रसिद्ध है। व्याकरण के अनुसार इसे वि +यत् + क्त प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(४४) खण्ड :- खण्डका अर्थ भेद होता है। निरुक्तके अनुसार - खण्डं खण्डयते:[३५] अर्थात् जो भेदन किया जाय। इसके अनुसार इसमें भेदनार्थक खडि धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे खंडि भेदने धातुसे घञ् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(४५) आखण्डल :- यह इन्द्रका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- आखण्डयति[३५] अर्थात् जो मेघ को खण्डखण्ड कर दें। (आभिमुख्येन अवस्थित यः खण्डयति मेघान् स आखण्डल:) इसके अनुसार आखण्डल शब्दमें आ + खडि भेदने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे आ + खडि, भेदने + अलच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(४६) तडित् :- यह अन्तिक (नजदीक) एवं वध का वाचक है। निरुक्त के अनुसार- ताडयतीति सत: अर्थात् यह शब्द तड् धातुसे निष्पन्न होता है तड् धातु समीप एवं वध दोनों अर्थोंको प्रकाशित करता है। इस आधार पर तडित् का अर्थ होगा जो निकट हो या जो आघात पहुंचाता हो। आचार्य शाकपूणि के अनुसार तडित् का अर्थ विद्युत् होता है सा[५९] ह्यवताडयति अर्थात् वह अवताड न करती है। इसके अनुसार यह शब्द तड् आघाते धातु से निष्पन्न होता है। दूराच्च दृश्यते [३५] अर्थात् वह दूर से ही दिखलायी पड़ती है। इससे अन्तिक का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। यह मात्र अर्थात्मक संगति के लिए प्रस्तुत हुआ है। यास्क का निर्वचन तथा शाकपूणि का निर्वचन जो तड् धातु से माना गया है ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञान के

अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरण के अनुसार तड्+इत् प्रत्यय कर तडित् शब्द बनाया जा सकता है।

(४७) अरातय :- अराति शत्रुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) अरातयोऽदान कर्माणोवा अर्थात् अदान कर्मा को अराति कहा जाएगा, अराति दान कर्म के विपरीत आचरण करने वाला होता है। इसके अनुसार न ऽ रा दाने धातुसे अराति शब्द निष्पन्न होता है। (२) अदान प्रज्ञा वा[३५] अर्थात् वह दान देनेकी सम्मतिसे रहित होता है। शत्रु दान नहीं करते। इसके अनुसार इसमें रा दाने धातुका योग है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह निर्वचन उपयुक्त है।[५९] इस निर्वचनका ध्वान्यात्मक एवं अर्थात्मक अधार संगत है। व्याकरणके अनुसार अ + रा + क्तिच् प्रत्यय कर न राति अराति अरातय: शब्द बनाया जा सकता है। (न राति ददाति सुखम्)

(४८) अप्न :- इसका अर्थ रूप होता है। निरुक्तके अनुसार अप्न इति रूप नाम आप्नोतीतिसत:[३५] यह सम्पूर्ण शरीरको व्याप्त करता है। अत: यह अप्न कहलाता है। इस निर्वचनके अनुसार इसमें आप् धातुका योग है। आप् + नस् = अप्न:। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(४९) वज्र :- यह इन्द्रास्त्रका वाचक है। आंगल भाषामें इसे Thunderbolt. कहा जाता है। निरुक्तके अनुसार वर्जयतीतिसत:[३५] अर्थात यह जीवों के प्राणोंको छुड़ाता है। इस निर्वचनके आधार पर वज्र शब्दमें वृजी वर्जने धातुका योग है। - वृज्+अ: वर्ज् +अ: = वज्र:। इसे वर्जयति वियोजयति प्राणी प्राणिन: इति[६०] कहा जा सकता है। यह निर्वचन अर्थात्मक महत्त्वसे युक्त है। इन्द्र अपने अस्त्र वज्र से शत्रुओं को संहार करता है। वज्र जहां गिरता है वहांके जीवोंको नष्ट कर देता है ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे यह पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें धातु स्थित व्यंजन गत औदासिन्य स्पष्ट है।[६१] व्याकरणके अनुसार वज् गतौ से रन्[६२] प्रत्यय कर वज्र बनाया जा सकता है।

(५०) कुत्स:- निरुक्तके अनुसार इसके दो अर्थ प्राप्त होते हैं, (१) वज्र, (२) ऋषि। वज्र के अर्थ में कुत्स शब्दका निर्वचन कृती छेदने धातुसे किया गया है- कुत्स:कृन्तते:अर्थात् यह छेदने वाला होता है। ऋषिके अर्थमें कुत्स शब्द विषयक निर्वचन आचार्य औपमान्यवके अनुसार प्राप्त होता है। कर्तास्तोमानाम्[३५] अर्थात् वह स्तोमोंका कर्ता होता है।इसके अनुसार कुत्स:शब्दमें कृ+स्तु धातुओंका योग है।आचार्य

औपमन्यव द्वारा उपस्थापित कुत्सका निर्वचन यास्कको मान्य है। ध्वन्यात्मक एवँ अर्थात्मक दृष्टिकोणसे दोनों निर्वचचन उपयुक्त हैं। कृत् से कुत्स तथा कृ + स्तु से कुत्स के अनुसार पता चलता है कि वैदिक कालमें ऋ ध्वनि का उ में विकास हुआ है। इस प्रकारके और भी उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं यथा अप्रतिष्कुत:-कृत, क्रूर-कृन्त आदि। कुत्स का अर्थ वज्र लक्षणा के आधार पर हुआ है।[६३] भाषा विज्ञानके अनुसार दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं।

(५१) सुपर्ण :- इसका अर्थ होता है किरण। निरुक्त में इसे सूर्यकी किरण माना गया है। इसके निर्वचनमें सुपर्णा: सुपतना[३५] अर्थात् अच्छी तरह गिरने वाली। इसके अनुसार सुपर्ण शब्द सु + पत् धातुसे माना जाएगा। पत्से पर्ण ध्वन्यात्मक विसंगति का परिणाम है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जाएगा।

(५२) पाक :- इसका अर्थ होता है पका हुआ। निरुक्तमें इसके निर्वचनमें कहा गया है-पाक: पक्तव्यो भवति[३५] इसके अनुसार पाक् शब्दमें पच् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार इसे पच् + धञ् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(५३) इन :- यह ईश्वर का वाचक है। निरुक्तके अनुसार -सनिति ऐश्वर्येण अर्थात् यह ऐश्वर्य से संयुक्त है। इसके अनुसार इसमें सन् सम्भक्तौ धातुका योग है। सनितमनेनैश्वर्यमिति वा[३५] या इससे ऐश्वर्य युक्त है। इसके अनुसार भी इसमें सन् सम्भक्तौ धातुका योग है। ये निर्वचन ध्वन्यात्मक आधारसे रहित हैं। इनका अर्थात्मक महत्त्व है। यास्क मात्र यहां अर्थ स्पष्ट करना अपना उद्देश्य समझते हैं। व्याकरणके अनुसार इण् गतौ + नक्[६४] प्रत्यय कर इन: शब्द बनाया जा सकता है।

(५४) बहु :- बहु: का अर्थ होता है-अधिक। निरुक्त के अनुसार -प्रभवतीति सत:[६५] अर्थात् समर्थ होने के कारण यह बहु कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्द में भू धातु का योग है। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे इसमें व्यंजन गत औदासिन्य है।[६६] भू-भ + उ, भ-ब ह् + बहु:। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे वहि वृद्धौ धातुसे निष्पन्न माना जा सकता है। व्याकरण के अनुसार भी वहि वृद्धौ धातु से उ:[६७] प्रत्यय कर बहु: शब्द बनाया जा सकता है।

(५५) ह्रस्व:- ह्रस्वका अर्थ छोटा है।निरुक्तके अनुसार ह्रस्वो ह्रसते:[६५] अर्थात् वह छोटा या अल्प होता है। इसके अनुसार ह्रस्व शब्दमें न्यूनार्थक ह्रस्, धातुका

योग है। ह्रस् + व = ह्रस्वः। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार ह्रस् शब्दे धातु से वः प्रत्यय कर ह्रस्वः शब्द बनाया जा सकता है।

(५६) महान् :- यह बड़ा का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- मानेनान्यांजहातीति शाकपूणिः अर्थात् मानके कारण दूसरोंको छोड़ देता है। यह विचार आचार्य शाकपूणि का है। इसके अनुसार महान् शब्दमें म-मान का तथा हा परित्यागे धातुका योग है। अन्य ह्रस्वोंको छोड़कर यह अधिक सम्मान वाला हो जाता है। महनीयो भवतीतिवा[६५] अर्थात् यह महनीय होता है। इसके अनुसार इस शब्द में महि वृद्धौ या महि पूजायां धातुका योग है। आचार्य शाकूपणिका निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। उसका ध्वन्यात्मक आधार संगत नहीं है। यास्क प्रतिपादित निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। इसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत माना जाएगा।

(५७) ववक्षिथ-विवक्षसे :- ये आख्यातज शब्द हैं। निरुक्तके अनुसार - वक्तेर्वा, वहतेर्वा साभ्यासात्[६५] अर्थात् वच् या वह् धातुके अभ्यास (द्वित्व) करने से ये शब्द-निष्पन्न होते हैं। वच् या वह् धातुसे सन्-कर के पद बनाये जा सकते हैं। यास्कने दोनों शब्दोंको एक साथ ही विवेचित किया है। भाषा विज्ञानके अनुसार वच् धातुसे इसका निर्वचन संगत माना जाएगा। वह् धातुमें अर्थात्मकता संगत है।

(५८) गृहम् :- यह घरका वाचक है। निरुक्तके अनुसार गृह्णन्तीति सताम्[६५] अर्थात् यह सज्जनोंको (भले आदमियों को) ग्रहण करता है। इस निर्वचनके अनुसार गृह शब्द में ग्रह्, ग्रहणे धातु का योग है। ग्रह्+अम् = गृहम् इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार ग्रह् उपादाने + कः[६८] प्रत्यय कर या गृह् ग्रहणे धातु से कः[६९] प्रत्यय कर गृहम् शब्द बनाया जा सकता है।

(५९) सुखम् :- सुख का अर्थ प्रसन्नता है। यास्कके अनुसार -सुहितं खेभ्यः[६५] अर्थात् यह इन्द्रियोंके लिए हित कारक है। इस निर्वचनके अनुसार सुखम् शब्दमें दो पद विभाग हैं- सु + खम् = सुखम्। सु सुहित का वाचक है तथा खम् का अर्थ होता है इन्द्रिय। जो इन्द्रियों को अच्छा लगे उसे सुखं कहते हैं। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे सुख् +अच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(६०) खम् :- यह इन्द्रियका वाचक है। यास्कके अनुसार - खं खनते:[६५] अर्थात् खम् शब्द अवदारणार्थक खन् धातुसे बनता है क्योंकि मुख आदि इन्द्रियोंके स्थान खुदे होते हैं। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मकता आकृति पर आश्रित है। व्याकरणके अनुसार इसे खर्व् गतौ या खन् दारणे धातुसे ड: प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा।

(६१) रूपम् : इसका अर्थ सौंदर्य होता है। यास्कके अनुसार-रूपं रोचते:[६६] अर्थात् यह शब्द रूच् दीप्तौ धातुसे निष्पादित होता है क्योंकि यह दीप्त होता है, सुन्दर लगता है या चमकता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे यह निर्वचन सर्वथा संगत है। व्याकरणके अनुसार इसे रू + प: (दीर्घश्च) रूपम्[७०] या रूप् + अच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(६२) सत्यम् :- इसका अर्थ होता है-सच या यथार्थ-कथन।[७१] यास्कने इसके लिए दो निर्वचन प्रस्तुत किए हैं- (१) सत्सु तायते अर्थात् यह सज्जनोंमें विस्तृत होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें दो पद खण्ड हैं स + त्य। स सज्जन का वाचक है तथा अंतिम पद त्य ताय् सन्तान पालनयो: धातु से निष्पन्न रूप। (२) सत्प्रभवं भवतीति वा अर्थात् इसकी उत्पत्ति सज्जनोंसे होती है। इसके अनुसार इसमें सत् + य पद खण्ड हैं। सत् सज्जन का वाचक है तथा य प्रत्यय। यास्क के समय में लगता है त्य तद्धित प्रत्यय रहा है। वे त्य प्रत्यय को भी तन् विस्तारे धातु से निष्पन्न मानते हैं। अपत्य शब्द में भी इसी प्रकार त्य प्रत्यय होता है। अप + त्य अपत्य।[७२] अर्थात्मक दृष्टिकोणसे दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। प्रथम निर्वचनको ध्वन्यात्मक दृष्टिसे भी संगत माना जा सकता है। यद्यपि यह दीर्घ कल्पना का परिणाम है। व्याकरणके अनुसार सत् + यत् = सत्यम् शब्द बनाया जा सकता है।

(६३) वनर्गू :- इसका अर्थ होता है वन में विचरण करने वाला। निरुक्तके अनुसार वनर्गू वन गामिनौ अर्थात् वनर्गू वनगामी होते हैं। इसके आधार पर वनर्गू शब्दमें वनगम् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक आधार किंचित् शिथिल है। इसे भाषा विज्ञानके अनुसार पूर्ण संगत नहीं माना जाएगा।

(६४) तस्कर:-तस्करका अर्थ चोर होता है। नैरुक्तके अनुसार तत्करो भवति यत्पापकमिति नैरुक्ता: अर्थात् जो निन्दित कार्य को करनेवाला होता है उसे तस्कर कहते हैं। इसके अनुसार तत्+कृ कर = तस्कर:शब्द हैतत् पापकम् का वाचक है

तत्कर शब्द ही तस्कर हो गया है। यास्कके अनुसार तनोतेर्वा स्यात् सन्तत कर्मा भवति। अहोरात्र: कर्मावा[६५] अर्थात् तस्कर शब्द तनु विस्तारे धातुसे बना है। क्योंकि तस्कर लगातार दुष्कर्ममें निरत रहता है। यह रात दिन दुष्कर्म करता रहता है। यास्कका निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है लेकिन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त नहीं। यह निर्वचन कर्म पर आधारित है तथा इसमें लक्षणा का योग है। लोक में भी यह इसी अर्थमें प्रयुक्त होता है। नैरुक्तोंका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है-तत्-कर:तत्-कृ-कर् + अ: तत्कर: तस्कर:। व्याकरणके अनुसर तत् + कर (कृ) + अच्[७३] प्रत्यय कर तस्कर शब्द बनाया जा सकता है। तत्कर से तस्कर शब्द में वर्ण विकार माना जाएगा।

(६५) देवर :- यह एक सम्बन्ध वाचक शब्द है। इसका अर्थ है पतिका छोटा भाई। निरुक्तके अनुसार देवर: द्वितीयो वर उच्यते अर्थात् द्वितीय वर को देवर कहा जाता है। इसके अनुसार देवर शब्दमें दो पद खण्ड हैं-दे+वर। दे द्वि का वाचक है तथा वृ धातु का वर गुण होकर देवर: हो गया है। यास्कके इस निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि पतिकी मृत्यु होने पर या पति के अभाव में देवर ही पति का कार्य करता था जो द्वितीय वरके रूपमें अभिहित होता था।[७४] दिव्यति कर्मा वा[६५] अर्थात् देवर शब्द स्तुत्यर्थक दिव् धातुसे बना है क्योंकि वह अपनी भ्रातृजाया को आदर, सम्मान करता है यह निर्वचन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आधार पर आधारित है। दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों निर्वचनोंको संगत माना जाएगा। देवर शब्दका निर्वचन दिव् क्रीडायां धातु से भी माना जा सकता है। इसके अनुसार देवरका अर्थ होगा - भ्रातृजायाके साथ क्रीड़ा करने वाला या हंसी मजाक करने वाला। व्याकरणके अनुसार देवृ धातुसे अच् प्रत्यय कर देवर: शब्द बनाया जा सकता है। द्वितीय वर ही वर्ण लोप होकर एवं ह्रस्वीभूत होकर देवरके रूपमें अवशिष्ट है। देवर शब्द वैदिक भाषामें प्रयुक्त है। लगता है प्रारंभिक कालका द्वितीयवर कालान्तरमें वैदिक भाषामें ही अल्पायासके कारण देवर के रूपमें व्यवहृत होने लगा।देवर शब्द आज भी इसी अर्थ में प्रयुक्त है।

(६६)विधवा:-इसंका अर्थ होताहै पतिहीना स्त्री ,वहस्त्री जिसका पति मर गया हो।[७५] यास्क इसके कई निर्वचन प्रस्तुत करते हैं तथा इस क्रममें दूसरे आचार्योंके सिद्धान्तोंका भी उल्लेख करते हैं।(१) विधातृकाभवति[६५] अर्थात् वह धारण करने

वाला या पोषण करने वाला से रहित हो जाती है। इस निर्वचनके अनुसार विधवा शब्द में दो पद खण्ड हैं वि + धव, वि-विगत का वाचक है तथा धव धा धारणार्थे धातुसे निष्पन्न शब्द। (२) विधवनाद्वा अर्थात् पतिकी मृत्युसे वह कम्पित हो जाती है। इसके अनुसार इसमें वि + धूञ् कम्पने धातुका योग है। (३) विधावनाद्वेतिचर्मशिराः अर्थात् आचार्य चर्मशिरा के अनुसार विधवा शब्द में वि + धाव् धातुका योग है। पति की मृत्यु के बाद वह विशेष रूप से इधर-उधर दौड़ने वाली (जाने वाली) हो जाती है। पतिके अभावमें पति कुलसे पितृ कुल तथा पितृ कुलसे पति कुलमें जाने आने लगती है। पतिके अभावमें अपने भरणपोषण के लिए इधर उधर जाने वाली होती है। (४) धव इति मनुष्य नाम तद्वियोगात्[६५] अर्थात् धव (मनुष्य) पति का वाचक है तथा उससे वियुक्त होने के कारण विधवा कहलाती है। इसके अनुसार वि-वियुक्त + धव = विधवा। डा. वर्मा के अनुसार यह निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे शिथिल है लेकिन प्रसिद्ध निर्वचन है।[६६] वे विधवा शब्दको वियुक्त अर्थोंवाली भारोपीय वि + धे धातु से सम्बद्ध मानते हैं।[६७] अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यास्कके सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। चर्मशिराका मत भी अर्थात्मक दृष्टिसे संगत है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यास्कका द्वितीय निर्वचन जिसमें धुञ् कम्पने धातुका योग है, उपयुक्त माना जाएगा। धव शब्दका प्रयोग वेद में पतिके अर्थमें प्रायः नहीं देखा जाता लेकिन कोष ग्रन्थोंमें धव शब्द पतिके अर्थ में पठित है।[६८] यास्कके समय में धव शब्दका प्रचलन पतिके अर्थ हो गया होगा। अतः वि + धव, विधवा माना गया। रोथ, ग्रासमान आदि विधवा शब्दको वियोगार्थक विध् धातुसे निष्पन्न मानते हैं।[६९] भारोपीय भाषा परिवारकी अन्य शाखाओंमें भी विधवा शब्द किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ देखा जा सकता है-ग्रीक-Vithees लैटि.-Viduo, Viduees अवे.-विधवा, जर्मनी withwe, अंग्रेजी-Widow संस्कृत विधवाका ही अन्तर्राष्ट्रीय रूप अन्य भाषाओंमें देखा जाता है। व्याकरण के अनुसार वि + धूञ् कम्पने + अच् (घञ्) + टाप् प्रत्यय कर विधवा शब्द बनाया जा सकता है।[७०] यास्कके निर्वचनसे पता चलता है कि यास्कके कालमें विधवाओंकी स्थिति अच्छी नहीं थी।

(६७) मर्य :- मर्य का अर्थ मनुष्य होता है। निरुक्त के अनुसार मर्यो मनुष्यो मरण धर्मा[६५] अर्थात् वह मरनेके स्वभाव वाला होता है। यह शब्द मृङ् प्राणत्यागे धातु से बना है। यह निर्वचन अर्थात्मक आधार रखता है। यहां मात्र अर्थ स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह निर्वचन उपयुक्त नहीं है। व्याकरण के अनुसार मृ

+ यत् प्रत्यय कर मर्य: शब्द बनाया जा सकता है।

(६८) योषा :- यह स्त्री का वाचक है।[८१] निरुक्तके अनुसार योषा यौते:[६५] अर्थात् यह शब्द यु मिश्रणेऽमिश्रणे च धातुसे निष्पन्न होता है वह पुरुषको अपनेसे मिलाती है।[८२] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार युष् धातु से अच्[८३] +टाप् कर योषा शब्द बनाया जा सकता है।

(६९) आत्मा :- यह जीवात्मा या शरीरके अधिष्ठातृ देवका वाचक है। निरुक्तके अनुसार(१)आत्मा ततेर्वा अर्थात् यह शब्द अत् सातत्यगमने धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह सर्वगत होता है।(२)आप्तेर्वा अर्थात् आत्मन् शब्द आप्लृ व्याप्तौ धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह व्याप्त किएहुए है।(३)अपिवाप्तइव स्यात् अर्थात् यह आत्मा आप्तके समान होती है। आप्तसे आत्मा शब्द सादृश्य पर आधारित है। इसके अनुसार आप्लृ व्याप्तौ धातुसे ही आत्मा शब्द माना जाएगा। (४) यावत् व्याप्ति भूत इति[६५] अर्थात् यह सभी वस्तुओं को व्याप्त करती है। इसके अनुसार भी आत्मन् शब्दमें आप्लृ धातुका ही योग माना जाएगा। सभी निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। विभिन्न अर्थोंकी उपलब्धिके लिए इतने निर्वचन प्रस्तुत किए गए हैं। इन निर्वचनोंके आधार पर आत्मन् शब्दमें दो धातुका संकेत पाया जाता है प्रथम निर्वचनके आधार पर अत् सातत्यगमने धातुका तथा शेष निर्वचनों के आधार पर आप्लृव्याप्तौ धातुका। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे ये निर्वचन उपयुक्त हैं। यास्कने आत्माकी व्याप्तता तथा व्यापकताका निर्देश कई स्थलों पर किया है।[८४] उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थोंमें भी आत्माकी व्यापकताका वर्णन प्राप्त होता है।[८५] यास्कका एक देवता बाद आत्माकी व्यापकता एवं सर्वक्रियाशीलताका द्योतक है। यह शब्द भारतीय दर्शन साहित्यमें प्रसिद्ध एवं व्यापक है। व्याकरणके अनुसार अत् +मनिन् प्रत्ययकर आत्मन्- आत्मा शब्द बनाया जा सकता है।

(७०) जार :- जार: शब्द आदित्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-(१) जार:आदित्य:रात्रे:जरयिता[६५] अर्थात् वह रात्रिको जीर्ण करने वाला होता है। इसके अनुसार जार: शब्द में जृ वयौहानौ धातुका योग है।(२) स एवं भासाम् जरयिता[६५] अर्थात् वह नक्षत्रों एवं चंद्रमा आदिके प्रकाशका विनाशक है।सूर्यके उदय होने पर चन्द्रमा एवं नक्षत्रोंका प्रकाश नष्ट हो जाता है। इसके अनुसार भी इस शब्दमें जृ वयो

हानौ धातुका योग स्पष्ट होता है। इस शब्दका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह संगत माना जाएगा। लोकमें जार का अर्थ सम्प्रति उपपति होता है। निरुक्तमें भी जार उपपति का वाचक है।[८६] उपपति अर्थ प्राकृतिक सादृश्य के आधार पर हुआ होगा। भाषा विज्ञानके अनुसार इस शब्दमें अर्थापकर्ष माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार जृ वयोहानौ धातु से घञ् प्रत्यय करने पर जार: शब्द बनाया जा सकता है।

(७१) स्वसा :- इसका अर्थ होता है वहन।[८७] निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं(१) साहचर्याद्वा अर्थात् साथ-साथ रहनेके कारण स्वसा कहलाती है। उषा सूर्यकी स्वसा मानी गयी है क्योंकि वे दोनों साथ-साथ रहते हैं। सामान्य वहन के अर्थ में भी इसी साहचर्य का आधान होगा। क्योंकि भाई एवं बहन का बचपन में साथ-साथ रहना होता है।[८८] (२) रसहरणाद्वा अर्थात् रस हरण करनेके कारण भी स्वसा कहलाती है। सूर्य एवं उषा साथ रहनेके कारण प्रात:काल ओसकण को हरण करते हैं। ये दोनों निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे इन्हें उपयुक्त नहीं माना जाएगा। आगे चलकर यास्क स्वसा का निर्वचन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-सुअसा[८९] स्वसा अर्थात् अच्छी तरह मर्यादासे रहने वाली। सु +असा = स्वसा शब्द के असामें अस् धातुका योग है। स्वेषु सीदतीतिवा[९०] अर्थात् अपने लोगोंमें (पितृ कुल के लोगों में) प्रसन्न रहती है। विवाहोपरान्त भी पितृ कुलसे सम्बन्ध बनाये रखती है। इसके अनुसार इसमें स्व ए सद् विशरण गत्यवसादनेषु धातुका योग है। यास्कके अन्तिम दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार सु + असु क्षेपणे + ऋन्[९१] प्रत्यय कर स्वसृ-स्वसा शब्द बनाया जा सकता है। स्वसृ का ही किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ Sister शब्द आंगल भाषामें उक्त अर्थ में उपलब्ध होता है। यास्कके अन्तिम दोनों निर्वचनोंको भाषा विज्ञानके अनुसार संगत माना जाएगा।

(७२) भग :- भग कई अर्थों का वाचक है। स्त्री योनि के अर्थ में यास्क निर्वचन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- भगो भजते:[९५] अर्थात् यह भज् सेवायाम् धातु से निष्पन्न होता है क्योंकि इसका सेवन किया जाता है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। निरुक्त में भग के तीन अर्थों में निर्वचन प्राप्त होते हैं- (१) भद्र के पर्याय के रूप में भज् धातु से ही माना गया है। यह भज् धातु सेवा एवं प्राप्ति अर्थ में अभिप्रेत है। इन धातुओं से निष्पन्न मानने पर इसका अर्थ होगा श्रेष्ठ, पाने योग्य एवं सेवनीय- भद्रं भगेन

व्याख्यातम् भजनीयं भूतानाम् अर्थात् भद्रकी व्याख्या भग शब्दकी व्याख्यासे ही हो गयी। भग भज् धातु से निष्पन्न होता है क्योंकि यह प्राणियों के लिए प्राप्तव्य है।[९२] यह कल्याण का वाचक भग है।(२) स्त्री योनि के अर्थ में भग का निर्वचन भज् सेवायाम् धातुसे ही माना जाएगा जिसका प्रदर्शन ऊपर हो चुका है। (३) भग का अर्थ भाग या अंश होगा। यास्क इसके लिए स्पष्ट कोई निर्वचन नहीं प्रस्तुत करते लेकिन ऋग्वेदके मंत्रकी व्याख्या में अपना उक्त अभिमत प्रस्तुत करते हैं :-

श्रद्धयाग्निः समिध्यते, श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।[९३]

इस मंत्र की व्याख्या में भगस्यका अर्थ भागधेयस्य किया गया है।[९४] स्पष्ट है यहां भग भागके अर्थमें प्रयुक्त है। विभाग आदि शब्दोंसे भी स्पष्ट हो जाता है कि भज् धातु प्रारंभिक अवस्थामें भागके अर्थमें प्रयुक्त होता होगा। कालान्तर में यह सेवा या प्राप्ति अर्थमें भी प्रयुक्त होने लगा अथवा प्रारंभसे ही इसके तीनों अर्थ प्रचलित हैं। कोष ग्रन्थके अनुसार भगके शोभा, योनि, वीर्य, वैराग्य, इच्छा, माहात्म्य, सामर्थ्य, यत्न, यश, धर्म आदि अर्थ होते हैं।[९५] भज् धातुसे भग शब्द मानना भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार भज् सेवायाम् धातु से घ[९६] प्रत्यय कर भगः शब्द बनाया जा सकता है।

(७३) मेष :- मेष शब्द भेड़ाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार मेषो मिषतेः अर्थात् वह पोषक को देखता रहता है। इसके अनुसार इस शब्दमें मिष् दर्शने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। मेष शब्द भेड़ाके लिए रूढ़ हो गया है। क्योंकि अन्य पालतु पशु भी अपने पोषकको देखता रहता है। व्याकरण के अनुसार इसे मिष् स्पर्धायां धातुसे अच् प्रत्ययकर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(७४) पशुः- इसका अर्थ होता है जानवर। निरुक्तके अनुसार पशुः पश्यतेः[९५] अर्थात् वह केवल देखता है। अतः देखनेकी क्रिया की विशेषताके कारण पशु कहा जाता है। इसके अनुसार पशु शब्दमें पश् धातुका योग है।यास्कके समयमें लगता है पश् धातुका रूप प्रचलित था।पाणिनीयतन्त्र[९७]तथा शतपथब्राह्मण[९८]में भी इसी प्रकार का निर्वचन प्राप्त होता है।इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारउपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।व्याकरणके अनुसार दृश्+कः दृश्- पश् +

कु: = पशु: शब्द बनाया जा सकता है।[९९] व्याकरण की प्रक्रिया में दृश् का पश्य् आदेश हो जाता है। इसके अनुसार सर्वानविशेषण पश्यतीति पशु: माना जाएगा। वैदिक संहिताओंमें पशु उन प्राणियोंके लिए प्रयुक्त हुआ है जो सुख दु:ख अनुभव करने वाली विशिष्ट इन्द्रिय शक्ति से युक्त है इस क्षेत्र के अन्तर्गत सम्पूर्ण मनुष्य, पशु पक्षी आदि आ जाते हैं-

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते
तवे मे पंच पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः।[१००]

इसके अनुसार गौ, अश्व, पुरुष, अज एवं पक्षी आदि पशुकी श्रेणीमें आते हैं। संहिता कालसे ही पशु शब्दमें अर्थ संकोच हुआ है। सभी प्राणियों के लिए प्रयुक्त होने वाला पशु शब्द गवादि पशु जाति के लिए ही सीमित हो गया। भाषा प्रवाह के चलते इस प्रकार का अर्थ संकोच संभव है एवं मान्य है। सम्प्रति पशु शब्द गवादि पशुजाति विशेषके लिए ही प्रचलित है।[१००क]

(७५) अयम् :- यह एक सर्वनाम है। इसका अर्थ होता है यह। यह निकटतर बतलाने वाला है। निरुक्त के अनुसार अयम् एतत्तरोऽमुष्मात्[६५] अर्थात् जो उससे निकटतर है। इसके अनुसार इसमें इण्गतौ धातु का योग है। आ + इ = अयम् यह निर्वचन की पराकाष्ठा है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टि से इसे उपयुक्त माना जाएगा।। व्याकरण के अनुसार इदम् शब्द का पुलिंग प्रथमा एकवचन में अयम् रूप होता है। भाषा विज्ञान के अनुसार भी यह संगत है।

(७६) असौ :- यह भी एक सर्वनाम है। इसका अर्थ होता है-वह। निरुक्त के अनुसार-असौ अस्ततर: अस्मात्[६५] अर्थात् जो इससे दूरतर है वह असौ कहलाता है। यह अयम् की अपेक्षा दूरवर्ती के लिए प्रयुक्त होने वाला सर्वनाम है। इसके अनुसार इसमें अस् क्षेपणे धातुका योग है। इसका भी ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार अदस् शब्दके स्त्रीलिंग या पुलिंग के प्रथमा एक वचन में असौ शब्द होता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(७७) वृषल :- इसका अर्थ होता है निन्दाका पात्र मनुष्य, घृणित मनुष्य या नीच मनुष्य। निरुक्तमें इसके दो निर्वचन प्राप्त होते हैं (१) वृषलो वृषशीलो भवति[६५] अर्थात् वृषल वृष या बैलके स्वभाव वाला होता है। इसके अनुसार इस शब्द में दो पद खण्ड हैं-वृष + ल:। वृष शब्द वृषभ का वाचक है तथा ल: शील अर्थ द्योतित करने वाला प्रत्यय।

(२) वृषाशीलो वा[६५] अर्थात् वह वृष के अशील वाला होता है। यहां अशील का अर्थ शीलसे रहित माना जाए तो प्रथम निर्वचन से विरोध प्रतीत होगा। अत: नञर्थ सादृश्यमें मानकर इसका अर्थ पशु के स्वभाव वाला मानना उपयुक्त होगा।[१०१] वृष + ल: (अशील) = वृषल:। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। गुण साम्यके आधार पर यह निर्वचन किया गया है। इसमें लक्षणाका आधार माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार वृषु सेचने धातुसे कलच्[१०२] प्रत्यय कर या वृष् + लुञ् छेदने धातु से ड:[१०३] प्रत्यय कर या वृष + ला + क:[१०४] प्रत्यय कर वृषल:शब्द बनाया जा सकता है।भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें उपयुक्तमाना जाएगा।

(७८) प्रियमेध: :- यह संज्ञा शब्द सामासिक है। निरुक्तके अनुसार प्रिया:अस्य मेधा:[६५] अर्थात् जिसको मेधा प्रिय है उसे प्रियमेध: कहा जाएगा। मेध का अर्थ यज्ञ भी होता है इसके आधार पर इसका अर्थ होता है यज्ञप्रिय। इस निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। सभी नाम सार्थक हैं इस दिशा में यह उदाहरण देखा जा सकता है। यों तो यास्क ने इस शब्दमें धातु आदिका निर्देश नहीं किया है।

(७९) प्रस्कण्व :- यह भी एक संज्ञापद है। इसका अर्थ होता है कण्वका पुत्र। निरुक्तके अनुसार-प्रस्कण्व: कण्व प्रभव:[६५] अर्थात् प्रस्कण्व कण्वसे उत्पन्नको कहते हैं। प्रस्कण्व शब्द प्राग्र के सादृश्य पर बना है। जैसे अग्र के पूर्व प्र रखने से प्राग्र = अग्र प्रभव अर्थ हो जाता है उसी प्रकार कण्व से पहले प्र रखने पर प्रस्कण्व का अर्थ होगा कण्व प्रभव। प्रस्कण्व में स् निपातित है। प्रस्कण्व शब्द में वर्णागम माना जाएगा। प्र +कण्व में स् का आगम होकर प्रस्कण्व हो गया है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार ऋषि अर्थ में (प्र-कण्व) ककार के पूर्व सुट् का आगम हो जाता है।[१०५] इस प्रकार प्रकण्व ही प्रस्कण्व होजाता है।प्रस्कण्व कण्वसे उत्पन्न ऋषिको ही द्योतित करता है।

(८०) भृगु :- भृगु एक ऋषि का नाम है। निरुक्त के अनुसार- अर्चिषि भृगु: सम्वभूव अर्थात् भृगु ऋषि ज्वाला में उत्पन्न हुए। भृज्यमानो न देहे[६५] अर्थात् जो देह में भुना हुआ न हो। ज्वाला में उत्पन्न होने पर भी इनका शरीर अदग्ध था। ये देह से उत्पन्न नहीं हुए। ये दिव्य सृष्टि हैं। यह निर्वचन ऐतिहासिक आधार पर आधारित है।[१०६] यास्क के निर्वचन से स्पष्ट है कि भृगु शब्दमें भ्रस्ज् पाके धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। कोष ग्रन्थों में भृगु: के शिखर से गिरने वाला प्रपात, ऋषि आदि कई अर्थ[१०८] है। व्याकरण के अनुसार भ्रस्ज् पाके धातु से उ: प्रत्यय कर भ्रस्ज्

+ उः, भृज्ज + उ, भृग् + उः = भृगुः बनाया जा सकता है।[१०७] भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा।

(८१) अंगिरा :- यह एक ऋषिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-अंगारेष्वंगिरा[६५] अर्थात् अंगार से अंगिरा ऋषि की उत्पत्ति हुई। इस निर्वचनका ऐतिहासिक महत्त्व है। ऐतिहासिक आधार पर यह निर्वचन आधारित है। अंगिरा ऋषिकी उत्पत्तिके इतिहासके आधार पर ही यह निर्वचन किया गया है। ज्वालाकी शान्तिके बाद शेष अंगारे से अंगिरा ऋषिकी उत्पत्ति हुई।[१०९] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार अगि गतौ धातु से इरस् प्रत्यय कर अंगिरस् शब्द बनाया जा सकता है। (अंगति ब्रह्मणोमुखान्निः सरतीति अंगिरा।)

उत्पत्ति की दृष्टि से अंगिरस्, का सम्बन्ध अग्नि से माना जा सकता है। पार्थिव अग्नि के उद्भावक अंगिरस् ही थे। काष्ठ मन्थन कर अग्नि प्राप्त करनेमें प्रथम सफलता इन्हें ही प्राप्त हुई।[११०] बाद में अंगिरस् गोत्र ही प्रचलित हुआ जिसका सम्बन्ध अग्नि से भी था। ऋग्वेदमें इन्हें पूर्वोअंगिराः कहकर इनकी प्राचीनता को स्पष्ट किया गया है।[१११] अंगिरस् ब्रह्माके मानसपुत्र सप्तर्षियों में गिने जाते हैं।[११३]

(८२) अंगारा :- इसका अर्थ होता है प्रज्वलित, दीप्त खण्ड (जलता कोयला) निरुक्तके अनुसार-अंगारा, अंकना अंचना भवन्ति[६५] अर्थात् अंगार इसलिए कहे जाते हैं क्योंकि वे चिह्न छोड़ते हैं या जहां गिरते हैं उसी स्थान को चिह्नित कर देते हैं। या वे चमकीले होते हैं। इसके अनुसार अंगार शब्दमें अकि लक्षणे या अंच् धातु का योग है- अंक् + आरः = अंगारः. अंच् + आरः = अंगारः। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार अगि गतौ धातुसे आरन्[११२] प्रत्यय कर अंगार शब्द बनाया जाता है।

(८३) अत्रि :- यह एक ऋषि का नाम है। महर्षि अत्रि की गणना सप्तर्षियों में होती है।[११३] निरुक्त के अनुसार- अत्रैव तृतीयमृच्छतेत्यूचुः।[६५] अर्थात् यहीं पर तृतीय को भी प्राप्त करो इस प्रकार ऋषियों ने कहा।[११४] इस आधार पर अत्रिः शब्द में अत्र + तृतीय (त्रि) का योग स्पष्ट होता है। न त्रयः इति अत्रिः[६५] अर्थात् जिनको तीनों नहीं हो अर्थात् जिसको आध्यात्मिक, आधिभौतिक, तथा आधिदैविक ये तीनों प्रकार के दुःख नहीं हो उसे अत्रिः कहते हैं। इसके अनुसार न-अ + त्रिः-अत्रिः है। इस निर्वचन का आधार ऐतिहासिक है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण

के अनुसार अद्+ तृन् प्रत्यय कर अत्रि: शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा।

(८४) वैखानस :- यह एक ऋषि का नाम है। निरुक्तके अनुसार-विखन नाद्वैखानस: अर्थात् (उस स्थान को) खोदने से वे पैदा हुए इसलिए उन्हें वैखानस कहा जाता है। इसके आधार पर वैखानस शब्दमें वि + खन् धातुका योग है-वि + खन् + अस्=वैखानस: यह निर्वचन ऐतिहासिक आधार पर आधारित है।[११५] लौकिक संस्कृत में वैखानस का अर्थ वानप्रस्थ भी होता है।[११६] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार विखनस् +अण् प्रत्यय कर वैखानस:शब्द बनायाजा सकता है।वैखानस शब्दमें अर्थ विस्तार पायाजाता है।प्रारंभिक अवस्थामें वैखानस ऋषि विशेषका वाचक था। लौकिक संस्कृतमें यह सामान्य तपस्वीके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(८५) भारद्वाज:- यह एक ऋषिका नाम है। भरद्वाजके पुत्रको भारद्वाज कहते हैं। यह तद्धितान्त शब्द है। निरुक्तके अनुसार-भरणाद्भारद्वाज:[६५] अर्थात् भरण क्रिया के योगसे भारद्वाज शब्द बना। जो अन्नको धारण करे उसे भारद्वाज कहते हैं। भरति विभर्ति वाजं असौ भरद्वाज: तस्य पुत्र: भारद्वाज:। भरद्वाज से ही भारद्वाज शब्द बन गया है। भृ भरणे धातुका भरत् + वाज (अन्न का वाचक) भरद्वाज :- भारद्वाज:। भाषा विज्ञानके अनुसार इस शब्दमें अपश्रुति मानी जाएगी। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। इसका अर्थात्मक आधार ऐतिहासिक है।[११७] व्याकरणके अनुसार भरद्वाज + अण् प्रत्यय कर भारद्वाज: शब्द बनाया जा सकता है।

(८६) विरूप :- इसका अर्थ होता है विविध रूपों वाला। निरुक्तके अनुसार-विरूप: नानारूप:[६५] अर्थात् अनेक रूप होनेके कारण विरूप कहलाता है। वि + रूप: में वि नाना का वाचक है। यास्क इसके अर्थको ही मात्र स्पष्ट करते हैं। इसका निर्वचन प्रस्तुत नहीं करते। भाषा विज्ञानकी प्रक्रियामें इसे निर्वचन की संज्ञा नही दी जायगी। लौकिक संस्कृतमें विरूप:का अर्थ विकृत रूप वाला होता है। वि उपसर्ग प्राय: विकृतका ही वाचक है। व्याकरणके अनुसार वि + रूच् + क: प्रत्यय कर विरूप: शब्द बनाया जा सकता है।

(८७) महिव्रत:- इसका अर्थ कर्मवीर होता है। निरुक्तके अनुसार -महिव्रतो महाव्रत इति[६५] व्रत कर्म का वाचक है। इसके अनुसार अर्थ होगा महान् व्रत वाला।

महाव्रतं यस्य सः महिव्रतः। यह शब्द सामासिक है। यास्क ऐसे शब्दोंको मात्र अर्थ स्पष्ट कर ही छुट्टी पा लेते हैं। अर्थात्मक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जाएगा।

(८८) काक :- इसका अर्थ काक पक्षी विशेष है। निरुक्तके अनुसार -काक इति शब्दानुकृतिः[११८] अर्थात् काक नाम उसके शब्दानुकरणके आधार पर पड़ा है। यह का का शब्द विशेष करता है अतः उसके इस ध्वनि के आधार पर काक नाम पड़ा। पक्षियोंके नाम प्रायः शब्दानुकृति पर ही आधारित होते हैं।[११९] यह सिद्धान्त अंग्रेजी, मराठी आदि भाषाओं में भी देखा जाता है।[१२०] यास्क इस निर्वचनके क्रम में आचार्य औपमन्यवके सिद्धान्त का भी उपस्थापन करते हैं :- न शब्दानुकृतिर्विद्यत इत्यौपमन्यवः[११८] अर्थात् आचार्य औपमन्यवके अनुसार पक्षियोंका नामकरण उसके शब्दानुकरण पर नहीं हुआ है। काकोऽपकालयितव्यो भवति[११८] अर्थात् काक निकालने योग्य होता है। इसके अनुसार काकः शब्दमें निकालना अर्थ वाली कल् धातुका योग है। कल् धातुसे ही काकः शब्द बना। यास्कका निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। औपमन्यवका निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है जो ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त नहीं है। शब्दानुकृति के अनुसार ककते वा लौल्यात् काकः।[१२१] व्याकरणके अनुसार कै शब्दे धातुसे कन्[१२२] प्रत्यय कर काकः शब्द बनाया जा सकता है। धृष्टतादि दोष के कारण काक शब्द कालान्तर में निन्दा परक अर्थ का वाचक हो गया है यथा-तीर्थकाकः[१२३क]

(८९) तित्तिरि :- यह तीतर पक्षी विशेष का वाचक है। निरुक्त के अनुसार- (१) तित्तिरिस्तरणात्[११८] अर्थात् तरण क्रियाके कारण तित्तिरि कहा जाता है क्योंकि वह उछल-उछल कर चलता है। तित्तिरिः शब्द-में तृप्लव्नतरणयोः धातुका योग है। (२) तिलमात्रं चित्रं इतिवा[११८] अर्थात् इसमें तिल मात्र चित्र होता है। इस पक्षी का शरीर तिल मात्र चित्रित होता है। यह तित्तिरिः के स्वरूप पर आधारित है। इन निर्वचनों में चाल एवं कर्म का अनुकरण पाया जाता है। यास्क के शब्दानुकृति सिद्धान्त के आधार पर भी इसका निर्वचन किया जा सकता है-तित्ति शब्दं रातीति तित्तिरिः।[१२३] यास्कके प्रथम निर्वचनमें तृ प्लवनतरणयोः धातुका द्वित्व रूप होकर तित्तिरिः बन गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं-अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचम आकृति मूलक है इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं। व्याकरणके अनुसार तृ धातु का द्वित्व + (इः) प्रत्यय कर तित्तिरिः शब्द बनाया जा सकता है।[१२४] यास्कका प्रथम निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार भी उपयुक्त है।

(९०) कपिंजल :- इसका अर्थ होता है जानवर विशेष। निरुक्तके अनुसार- (१) कपिंजलः कपिरिव जीर्णः अर्थात् यह पुराने वन्दरकी तरह रंगवाला होता है। इस शब्दमें कपि + जृ-(जीर्णः) का योग है। (२) कपिरिवजवते अर्थात् यह वन्दर की तरह गति वाला है इसके अनुसार इस शब्दमें कपि + जु गतौ धातुका योग है। (३) इषत्पिंगलो वा अर्थात् वह थोड़ा पिंगल वर्ण का होता है। इसके अनुसार क-(इषत्) पिंगल-(पिंगलः)= कपिंजल है (४) कमनीय शब्दं पिंजयतीतिवा[१९] अर्थात् यह मधुर शब्द करता है इसके अनुसार (क) कमनीय का वाचक है तथा पिंज् धातुका पिंजल ही पिंगल हो गया है। प्रथम निर्वचन में ध्वन्यात्मक संगति है। प्रथम एवं द्वितीय निर्वचनका आधार क्रमशः रंगसादृश्य एवं गतिसादृश्य है। तृतीय आकृतिमूलक तथा चतुर्थ गुणात्मक है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। प्रथम निर्वचन में र ध्वनि का ल में परिवर्तन हुआ है। व्याकरणके अनुसार पिंज् शब्दे धातुसे कलच् कर बनाया जा सकता है।

(९१) श्वा :- यह कुत्ता का वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) श्वा शु यायी अर्थात् यह शीघ्र गमन करने वाला होता है। इसके अनुसार इसमें शु + अय् गतौ धातु का योग है। (२) शवतेर्वा स्याद्गति कर्मणः अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक शव् धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह गति करता है। (३) श्वसितेर्वा[११८] अर्थात् यह शब्द वधार्थक श्वस् धातुसे निष्पन्न होता है। क्योंकि यह हिंसक होता है या काटने वाला होता है। श्वस-श्वन-श्वा। ये निर्वचन भ्रमात्मक हैं। सभी निर्वचनों का अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे शु + इण् गतौ से श्वा शब्द माना जा सकता है।[११५] प्रथम एवं द्वितीय निर्वचनका अर्थात्मक आधार गति है। तृतीय निर्वचन उसके गुण पर आधारित है। व्याकरणके अनुसार इसे श्वि गतौ + कनिन्[११६] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। लौल्यादि दोषके कारण श्वा का अर्थ कालान्तर में निन्दोपेरक हो गया है। यथा-अयं श्वा एव।[११६क]

(९२) सिंह :- इसका अर्थ होता है मृगराज। निरुक्त के अनुसार-(१) सहनात् अर्थात् वह दूसरे को दवाता है अतः सिंह शब्दमें सह् अभिभवे धातुका योग है। सह्+अ:सिह्+अः ,सिंह+अः=सिंह।(२)हिंसेर्वास्याद्विपरीतस्य[११९]अर्थात् हिंसका ही विपरीत होकर सिंह बना है। इसके अनुसार हिंस् हिंसायाम् धातुसे हिंस बन कर वर्ण विपर्यय[१२७] के द्वारा सिंह बन गया है वह्अन्य पशुओंकी हिंसा करता है।(३)सम्पूर्वस्य वा हन्तेः अर्थात् यह शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक हन् धातुके योगसे बना है। इससे

भी सिंहके हिंसा की प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। (४) संहाय हन्ति[११८] अर्थात् वह अपने को संकुचित करके दूसरों को मारता है. उसके अनुसार भी सिंह शब्द में सम् + हन् धातुका योग है। सभी निर्वचनोंमें धातु की स्थिति वर्तमान रहती है। डा. वर्मा के अनुसार यह निर्वचन आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है।[१२८] निरुक्तकी प्रक्रियाके अनुसार द्वितीय निर्वचन उपयुक्त है जिसमें वर्ण व्यत्यय का सहारा लिया गया है।[१२९] शेष निर्वचनों का भी ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। अर्थात्मक आधार सिंह की हिंसात्मक प्रकृतिको स्पष्ट करता है। व्याकरणके अनुसार सिच् +कः (सिच् +ह +कः = सिंह) प्रत्यय कर यह शब्द बनाया जा सकता है।[१३०] सिंह शब्द वीरत्व गुणके चलते कालान्तरमें श्रेष्ठका वाचक हो गया है।[१३०क] यथा पुरुष सिंहः

(९३) व्याघ्र :- व्याघः पशु विशेष का वाचक है। हिन्दी भाषा में उसे वाघ कहा जाता है। निरुक्तके अनुसार व्याघो व्याघ्राणात्[११८] अर्थात् विशिष्ट घ्राण ग्रहण करने के कारण व्याघ्र कहलाता है। व्याघ्र में घ्राण शक्ति अधिक होती है इसके अनुसार व्याघ्र शब्द में वि +आ +घ्रा धातु का योग है। व्याघ्र को मनुष्य या पशुओं की गंध दूर से ही मिल जाती है। (२) व्यादाय हन्तीति वा[११८] अर्थात् वह अपने शिकार को पकड़ कर मारता है। इसके अनुसार इस शब्द में वि+आ + हन् धातुका योग है। प्रथम दो उपसर्ग हैं वि .+आ- आदाय का वाचक है। दोनों निर्वचनों से व्याघ्र के हिंसक प्रवृति का स्पष्ट पता चल जाता है। व्याघ्रकी गणना हिंसक पशुओंमें होती है। दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें सर्वथा संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार वि + आ+ घ्रा +कः[१३१] प्रत्यय कर व्याघ्र शब्द बनाया जा सकता है। व्याघ्र शब्द वीरत्वगुण विशिष्टके चलते श्रेष्ठ अर्थका वाचक हो गया है- नरव्याघ्रः, पुरुष व्याघ्रः आदि।[१३१क]

(९४) मेधा :- यह एक धारणात्मिका शक्ति है। इसे कुछ अंश में बुद्धिकी भी संज्ञा दी जा सकती है। निरुक्तके अनुसार-मेधा मतौ धीयते[११८] अर्थात् जिसे मति में धारण किया जाय उसे मेधा कहते हैं। इस निर्वचनके अनुसार मेधा शब्द में मति+धा धातुका योग है। मति+धा -मइधा-मेधा। मति+धा में मति का त वर्ण लोप तथा अ +इ मिलकर मे + धा-मेधा। यास्कके समय में अ + इ =ए सन्ध्यक्षर होगा। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। संहिताओंमें मेधा शब्दका व्यापक प्रयोग प्राप्त होता है। मेधाकी उपासना[१३२] कर ऋषिगण अपनी धारणा शक्तिको बढ़ाते थे।

जिससे विपुल विषयों को धारण करनेमें वे समर्थ होते थे।[१३३] व्याकरणके अनुसार मेधृ धातुसे असुन् प्रत्यय कर मेधा शब्द व्युत्पन्न किया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार यास्कके निर्वचनको संगत माना जाएगा।

(९५) मेधावी:- इसका अर्थ होता है मेधा शक्तिसे युक्त। निरुक्तके अनुसार-मेधया तद्वान भवति[१३४] अर्थात् मेधासे जो युक्त होता है उसे मेधावी कहते हैं। इसके अनुसार मेधा +तद्वान् अर्थ में वी मेधावी है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार मेधा +विनि प्रत्यय कर मेधाविन्-मेधावी शब्द बनाया जा सकता है।[१३५]भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(९६) स्तोता :- इसका अर्थ होता है स्तुति सम्पादन करने वाला। निरुक्तके अनुसार स्तोता स्तवनात् अर्थात् स्तवन क्रियाके कारण स्तोता कहलाता है। इसके अनुसार स्तोता शब्दमें स्तु स्तुतौ धातुका योग है। स्तु-तृच्-स्तोतृ-स्तोता। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे स्तु +तृच्[१२५] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(९७) यज्ञ :- इसका अर्थ होता है यजन कर्म। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं-(१) प्रख्यातं यजतिं कर्मेति नैरुक्ता: अर्थात् नैरुक्त सम्प्रदायके अनुसार प्रख्यात यजन कर्मको यज्ञ कहते हैं। इसके अनुसार यज्ञ शब्दमें यज् धातुका योग है। याच्ञो भवतीति वा अर्थात् इसमें याचना होती है। इसके अनुसार यज्ञ शब्द में याच् धातु का योग है। (३) यजुरुन्नो भवति अर्थात् यह यजुर्वेदके मंत्रोंसे क्लिन्न होता है। इसके अनुसार भी यज्ञ शब्दमें यज् धातुका योग है। (४) बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यव: अर्थात् आचार्य औपमन्यव का मत है कि इसमें बहुत कृष्णाजिनका उपयोग होता है। (५) यजूंष्येनं नयन्तीति वा[१३६] अर्थात् यजु: मन्त्र इसे सफलता प्राप्त कराते हैं। इसके अनुसार यजु: से सम्बन्ध होने के कारण यज्ञ माना गया। सभी निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त हैं। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचनमें ध्वनिगत शैथिल्य है। आचार्य औपमन्यवके निर्वचनमें अजिनसे यज्ञ माना गया है। तै. संहिता में भी इसी प्रकार अजिन से यज्ञकी उपलब्धि होती है।[१३६] व्याकरणके अनुसार यज् + नङ्[१३७] प्रत्यय कर यज्ञ शब्द बनाया जा सकता है। निरुक्त के इन निर्वचनोंसे यज्ञमें कृष्णाजिन का प्रयोग, यजुर्वेद के मन्त्रों से इसका सम्पादन, फलावाप्ति के लिए यज्ञ कर्म आदि का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है।

(९८) ऋत्विक् :- इसका अर्थ होता है-यज्ञ सम्पादन करने वाला पुरोहित। निरुक्त में इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं-(१) ईरण:[११८] अर्थात् यह यज्ञका प्रेरक होता है। इसके अनुसार ऋत्विक् शब्द में ईर् या ऋ धातु का योग है।[१२८] ईर् धातु प्रेरणार्थक है। (२) ऋग्यष्टा भवतीति शाकपूणि: अर्थात् शाकपूणि: के अनुसार यह ऋचाओं से यज्ञ करने वाला होता है। इसके अनुसार ऋत्विक् शब्द में ऋच् +यज् धातुका योग है। (३) ऋतुयाजी भवतीति वा अर्थात्[११८] वह ऋतुओंमें यज्ञ करता है। इसके अनुसार ऋत्विक् शब्दमें ऋतु + यज् धातुका योग है। प्रथम निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। शेष दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त हैं। ऋतु +यज् से ऋत्विक् शब्द मानने में आचार्य सायणकी भी सहमति है। व्याकरणके अनुसार ऋतु + यज् धातुसे ही ऋत्विक् माना जायगा। व्याकरण के अनुसार ऋतु +यज् के तीन पक्ष प्राप्त होते हैं (क) ऋतौ यजति - ऋतु में यज्ञ करता है। (ख) ऋतुं वा यजति - ऋतु का यजन करता है। (ग) ऋतु-प्रयुक्तो वा यजति- ऋतु के अनुसार यजन-करता है।[१३९]

(९९) कूप :- इसका अर्थ होता है कुआं। निरुक्तके अनुसार-कुपानं भवति साधन आदि की अपेक्षा होने से पानी पीना कष्ट कर होता है।[१४०] अत: कु-कुत्सित +पानं से कूप: माना जायगा। (२) कुप्यतेर्वा अर्थात् यह शब्द क्रोधार्थक कुप् धातुसे बना है। पिपासित व्यक्तिको कूपसे जल की प्राप्ति नहीं होने पर क्रोध हो जाता है।[१४१] द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मक औचित्य संगत नहीं प्रतीत होता। प्रथम निर्वचन में कु +पा = कूप में ध्वन्यात्मकता उपयुक्त है लेकिन अर्थात्मक दृष्टि शिथिल है। व्याकरण के अनुसार कु शब्दे धातु से प: करने पर कूप: शब्द बनता है।[१४२]

(१००) स्तेन :- इसका अर्थ चोर होता है। निरुक्तके अनुसार - संस्त्यानमस्मिन्पापकमिति नैरुक्ता:[११८] अर्थात् नैरुक्त सम्प्रदायके अनुसार इस (चोरी कर्म) में पाप एकत्र हो जाते हैं।[१४३] इसके अनुसार स्तेन: शब्द में स्त्यौ संघाते धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार स्तेन चौर्ये धातुसे अच्[१४४] प्रत्यय कर स्तेन: शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१०१) निर्णीतम् :- इसका अर्थ होता है- जिसका निर्णय हो गया है। निरुक्तके अनुसार निर्णिक्तं भवति[११८] अर्थात् यह शुद्ध होता है, विचार से परिमार्जित होता है।

इसके अनुसार इस शब्द में नि +निज् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार निः + नी +क्त प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१०२) दूरम् :- इसका अर्थ विप्रकृष्ट होता है। निरुक्त के अनुसार-द्रुतं भवति[११८] अर्थात् वह द्रुत या काफी दूर तक गया होता है। इसके अनुसार द्रुत शब्द में द्रुगतौ धातुका योग है। (२) दूरयं वा[११८] अर्थात् कठिनाई से पहुंचा जाता है। इसके अनुसार इसमें दुः +इण् गतौ धातुका योग है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार दुर् +इन्, दुर् +इण्- रक् उणोलोपश्च[१४५] = दूरम् बनाया जा सकता है। दूरम् शब्द को दूङ् परितापे धातुसे भी बनाया जा सकता है।[१४६] भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे यास्कका प्रथम निर्वचन उपयुक्त है।

(१०३) पुराणम् :- इसका अर्थ होता है- पुराना। निरुक्तके अनुसार पुराणं पुरा नवं भवति[११८] अर्थात् पुराण पहले नवीन होता है। पहले का नवीन ही बाद में पुराना कहलाता है। इसके अनुसार पुराण शब्दमें पुरा एवं नव दो पद खण्ड है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। पुरा प्राचीनका वाचक है तथा नव का अवशिष्ट न। न को प्रत्यय भी माना जा सकता है। प्राचीन अर्थ में पुराण का प्रयोग लौकिक संस्कृत में भी होता है।[१४७] व्याकरणके अनुसार पुरा +अण्+अच्[१४८] प्रत्यय कर पुराण शब्द बनाया जाता है। भाषा विज्ञान के अनुसार यास्क का निर्वचन उपयुक्त है।

(१०४) नवम् :- इसका अर्थ होता है नवीन। निरुक्तके अनुसार -आनीतं भवति[११८] अर्थात् अभी लाया हुआ होता है। इसके अनुसार नवम् शब्दमें नी प्रापणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार णु स्तुतौ धातुसे अप्[१४९] प्रत्यय कर नवम् शब्द बनाया जा सकता है। आग्ल भाषा में भी किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ इसी अर्थ में निउ (New) शब्द की उपलब्धि होती है।

(१०५) प्रपित्वे :- इसका अर्थ होता है प्राप्त। यास्क ने इसके निर्वचन में प्रपत्वे प्राप्ते मात्र कहा है।[११८] ये सोपसर्ग सप्तम्यन्त पद हैं। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसे अपूर्ण माना जाएगा। त्व प्रत्यय माना जा सकता है।

(१०६) अमीके:-इसका अर्थ होता हैअभ्यागत। यास्कने इसके लिए अमीकेऽभ्यक्ते

ही[११८] कहा है। अभीक शब्द में अभि-इण् धातु का योग है। यह निर्वचन अस्पष्ट है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी इसे उपयुक्त नहीं माना जाएगा।

(१०७) दभ्रम् :- इसका अर्थ होता है-अल्प। निरुक्तके अनुसार-दभ्रम् दम्नातेः सुदम्भं भवति[११८] अर्थात् दभ्र शब्द दभ् दम्भने धातु से बनता है क्योंकि यह आसानी से नष्ट हो जाता है। दभ् धातु +रक्-= दभ्रम्। ध्वन्यात्मक दृष्टि से यह निर्वचन उपयुक्त है। अर्थात्मकता भी उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार दम्भ् दम्भे धातुसे रक्[११०] प्रत्यय कर दभ्रम् शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी यह उपयुक्त है।

(१०८) अर्भकम् :- अर्भकम् का अर्थ अल्प होता है। निरुक्तके अनुसार - अर्भकमवहृतं भवति[११८] अर्थात् अर्भक छोटा होता है। इसके अनुसार अर्भकम् शब्द में अव + हृ धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक दृष्टि से यह उपयुक्त है। लोकमें अर्भक का अर्थ बच्चा भी होता।[११९] इसे अर्थ संकोच कहा जा सकता है छोटे के अर्थ में प्रयुक्त अर्भक लौकिक संस्कृत में बालक आदि के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। यह अर्थ संकोच का परिणाम है। व्याकरण के अनुसार ऋ गतौ[१५२] +भ +कन्[१५३] प्रत्यय कर अर्भकः शब्द बनाया जा सकता है।

(१०९) तिरस् :- इसका अर्थ होता है प्राप्त। निरुक्तके अनुसार तिरस्तीर्णं भवति[११८] अर्थात् वह दूर तक पार कर चुका रहता है।[१५४] इसके अनुसार तिरस् शब्द में तॄ प्लवन संतरणयोः धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृत में तिरस् का अर्थ छिपना एवं तिर्यक् होता है।[१५५] व्याकरणके अनुसार तॄ प्लवनतरणयोः धातुसे असुन्[१५६] प्रत्यय कर तिरस् शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी यह संगत है।

(११०) सतः :- सतः का अर्थ होता है-प्राप्त। निरुक्तके अनुसार-सतः संसृतं भवति[११८] अर्थात् सत एक साथ गया हुआ होता है।[१५०] इसके अनुसार सतः शब्द में सृ गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक दृष्टिकोण से यह पूर्ण उपयुक्त है।

(१११) त्व :- यह अर्द्ध का वाचक है। निरुक्त के अनुसार - त्वोऽपतत:[११८] अर्थात् यह पूर्णतया फैला नहीं होता है,आधा होता है। सम्पूर्णसे अलग होकर फैला होता है।[१५८]इसकेअनुसार इसमें तन् धातुका योग है।अर्थात्मक दृष्टिसे यह संगत है।ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं।व्याकरणके अनुसार तन्+व:प्रत्ययकर त्वः

शब्द बनाया जा सकता है। निरुक्त में त्व निपात भी माना गया है तथा नाम भी। इसके विकार का प्रदर्शन भी निरुक्तमें हुआ है।[१५८क]

(११२) नेम :- यह अर्द्ध का वाचक है। निरुक्त के अनुसार -नेमोऽपनीत:[११८] अर्थात् यह पूरे में से विभाजित करके लाया गया होता है। इसके अनुसार नेम: शब्द में नी धातु का योग है। यह ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे संगत है। व्याकरणके अनुसार नी +मन् प्रत्यय कर नेम: शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(११३) अर्ध: :- इसका अर्थ आधा होता है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं। (१) हरतेर्विपरीतस्य[११८] अर्थात् हृ धातु को विपरीत कर अर्ध शब्द बनाया जा सकता है-हृ-ह् + ऋ = ह्+ऋ-अर् = ऋ-अर्+ ह्-ध =अर्ध:। ह वर्ण का घोष महाप्राण वर्ण ध में भी परिवर्तन हो गया है। (वीरुध् आदि) शब्दों में भी ह का ही ध हुआ है-वीरुध्-वि+रुह्।) (२) धारयतेर्वास्यात्। उद्धृतं भवति[११८] अर्थात् यह धारि धातु से बना है क्योंकि यह सम्पूर्ण में से ही उद्धृत होता है। (३) ऋध्नोतेर्वा स्यात्। ऋद्धतमो विभाग:[११८] अर्थात् यह शब्द ऋध् वृद्धौ धातु से बनता है क्योंकि यह ऋद्धतम भाग होता है, बड़ा भाग होता है, प्रभूत विभाग होता है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे प्रथम एवं तृतीय निर्वचन उपयुक्त हैं। तृतीय निर्वचनमें ऋध् वृद्धौ धातुका योग है जो पूर्ण ध्वन्यात्मकता रखता है। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार ऋघ् वृद्धौ धातु से घञ्[१५९] प्रत्यय कर अर्ध: शब्द बनाया जा सकता है।

(११४) नक्षत्राणि :- इसका अर्थ होता है-तारेगण। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं-(१) नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मण:[११८] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक नक्ष् धातुसे बनता है क्योंकि वे गमन करते हैं।[१६०] (२) नेमानि क्षत्राणि इति च ब्राह्मणम्[११८] अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार नक्षत्राणि शब्द न + क्षत्राणि से बना है। क्षत्राणि धनका वाचक है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा ये अपने प्रकाश रूप धनसे प्रकाशित नहीं होते या ये क्षत्र धन नहीं हैं। इस प्रकार के निर्वचन तैतिरीय ब्राह्मण में भी प्राप्त होते हैं।[१६१] प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। डा. वर्मा के अनुसार यह निर्वचन अस्पष्ट है।[१६२] ब्राह्मण ग्रन्थका निर्वचन भी न +क्षत्र ध्वन्यात्मक आधार रखता है। व्याकरण के अनुसार न + क्षद्+ष्ट्रन्[१६३] प्रत्यय कर नक्षत्र शब्द बनाया जा सकता है।

(११५) ऋक्षा :- इसका अर्थ होता है तारेगण। निरुक्तके अनुसार ऋक्षा

उदीर्णानीव ख्यायन्ते[११८] अर्थात् (किसी के द्वारा)ऊपर ले जाये गये से दीखते हैं। यह निर्वचन दृश्यानुकरण पर आधारित है। यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे पूर्ण संगत नहीं है। पाली भाषा में भी ऋक्ष शब्दकी उपलब्धि नक्षत्र के अर्थमें होती है। व्याकरणके अनुसार ऋषी गतौ +सः +कः[११४] प्रत्यय कर ऋक्षः शब्द बनाया जा सकता है- (ऋषति गच्छति या ऋक्ष्णोति तमः इति ऋक्षम्)।

(११६) स्तृभि :- स्तृ का अर्थ नक्षत्र होता है। यह स्तृ शब्दके तृतीया बहुबचन का रूप है। इसका अर्थ होगा तारों से। स्तृ के निर्वचनमें यास्कका अभिमत है-स्तृभिस्तीर्णानीव ख्यायन्ते[११८] अर्थात् ये आकाश में फैलाये हुए से दीख पड़ते हैं। इसके अनुसार इस शब्द में स्तृ आस्तरणे धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(११७) वम्री :- इसका अर्थ होता है-दीमक। निरुक्तके अनुसार-वम्रयो वमनात्[११८] अर्थात् वम्री शब्द वम् उद्गीर्णे धातुसे निष्पन्न होता है। क्योंकि ये जल वमन करते रहते हैं जिससे मिट्टी आर्द्र हो जाती है[११५] या मिट्टी उगलती रहती है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। इसे आख्यातज सिद्धान्त पर निष्पन्न माना जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है।

(११८) सीमिका :- सीमिकाका अर्थ होता है-दीमक। निरुक्तके अनुसार-सीमिका स्यमनात्[११८] अर्थात् सीमिका शब्द गत्यर्थक स्यम् धातुसे बनता है क्योंकि वह लगातार गमन करती रहती है।[११६] स्यम्-सीम् +किकन् = सीमिकन् सीमिका। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार स्यम् शब्दे धातुसे किकन्[११७] प्रत्यय कर सीमिका शब्द बनाया जाता है।

(११९) उपजिह्विका :- उपजिह्विका का अर्थ होता है-दीमक। निरुक्तके अनुसार- उपजिह्विका उपजिघ्रयः[११८] उपजिघ्रन्ति अर्थात् इसमें घ्राण शक्ति अधिक होती है।[११६] इसके अनुसार उपजिह्विका शब्द में उप + घ्रा धातु का योग है। उप + घ्रा = उपजिघ्री - उपजिह्विवी +कन् +टाप् = उपजिह्विका। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार उपगता जिह्वा यस्याः सा उपजिह्वा +कन् = उपजिह्विकन् +टाप् = उपजिह्विका शब्द बनाया जा सकता है।

(१२०) ऊर्दरम् :- इसका अर्थ होता है- अन्नरखने का मृतिका पात्र, कोठी। निरुक्त के अनुसार -(१) ऊर्दरमुद्दीर्णं भवति[१६८] अर्थात् यह ऊपर की ओर खुला रहता है। इसके अनुसार इस शब्द में उत् +दृ विदारणे धातु का योग है (२) ऊर्जे दीर्णं वा[१६९] अर्थात् वह अन्नके लिए रहता है। कोठीमें अन्न रखनेके लिए छिद्र होते हैं। इसके अनुसार भी इस शब्दमें ऊर्ज् + दृ धातुका योग है। डा. वर्मा इन निर्वचनों को असंगत मानते हैं।[१६९] लेकिन दोनों ही निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। अतः भाषा विज्ञानके अनुसार भी इन्हें संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार ऊर्ज +दृ + अल् (अत् वा)[१७०] कर ऊर्दरम् शब्द बनाया जा सकता है।

(१२१) कृदरम् :- इसका अर्थ होता है-अन्न रखने का मृत्तिका पात्र, कोठी। निरुक्तके अनुसार-कृदरं कृतदरं भवति[१७१] अर्थात् वह छिद्र किया हुआ होता है। इसके अनुसार इस शब्द में कृत् +दृ विदारणे धातु का योग है। कृत् +दृ-दरम् = कृदरम्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार कृ-दृ-अच्[१७१] प्रत्यय कर कृदरम् शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह निर्वचन संगत है।

(१२२) रम्भ :- यह दण्ड का वाचक है। निरुक्तके अनुसार-रम्भ आरभन्त एनम्[१७२] अर्थात् वृद्ध आदि इसका सहारा लेते हैं।[१७२] इसके अनुसार इस शब्द में रभ् धातु का योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार रभ् धातु से अच्[१७३] प्रत्यय (नुम्) कर रम्भः शब्द बनाया जा सकता है।[१७४] भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है।

(१२३) पिनाकम् :- निरुक्तके अनुसार इसका अर्थ होता है दण्ड। इसके निर्वचनमें यास्कका कहना है-एनेन प्रतिपिनष्टि[१७५] अर्थात् इससे मारा जाता है या संचूर्ण किया जाता है। इस निर्वचनके अनुसार पिनाक शब्दमें-पिष् संचूर्णने धातुका योग है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। कालान्तरमें पिनाक शब्द शिवधनुषके अर्थ में रूढ़ हो गया है।[१७५] भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह अर्थादेश का परिणाम है। पिनह्यते इति पिनाकः।[१७६] पिनाक शब्द शिव धनुष के अतिरिक्त पांशु, वृष्टि तथा त्रिशूल को भी कहते हैं।[१७७] लौकिक संस्कृत में पिनाक शब्द अर्थविस्तार को द्योतित करता है। व्याकरणके अनुसार पन् स्तुतौ धातु से आक् इत्व कर पिनाकः शब्द बनाया जा सकता है।[१७८]

(१२४) स्त्री :- यह नारी का वाचक है। निरुक्त के अनुसार-स्त्रियः स्त्यायतेरपत्रपण कर्मणः[१७८] अर्थात् यह शब्द लज्जार्थक स्त्यै धातुके योग से बना है क्योंकि स्त्रियां स्वभाव से ही लज्जाशील हुआ करती हैं।[१७६] यह ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। इस निर्वचन में गुण (शील) का आधार माना गया है। व्याकरण के अनुसार स्त्यै+ड्रट्[१८०] ह ङीप्[१८१] प्रत्यय कर स्त्री शब्द बनाया जा सकता है। स्त्यायतेऽस्यां गर्भः इति स्त्रीः। भाषा विज्ञान के अनुसार भी इसे संगत माना जाएगा।

(१२५) मेना :- मेना शब्द स्त्री का वाचक है। निरुक्त के अनुसार-मेना मानयन्त्येना:[१७८] अर्थात् इन स्त्रियों को पुरूष वर्ग सम्मान देते हैं। इसके अनुसार मेना शब्द में मान् पूजायां धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है व्याकरण के अनुसार भी मान् पूजायां धातु से इनच् प्रत्यय कर मेना शब्द बनाया जा सकता है-मान्यते पूज्यते इति मेना। भाषा विज्ञान के अनुसार इस निर्वचन को संगत माना जाएगा।

(१२६) ग्ना :- ग्ना शब्द स्त्री का वाचक है। निरुक्त के अनुसार-ग्ना गच्छन्त्येना:[१७८] अर्थात् पुरुष इनके पास (मैथुन धर्म से) जाते हैं।[१८२] इसके अनुसार ग्ना शब्द में गम् धातु का योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(१२७) शेप :- इसका अर्थ होता है-पुंस्प्रजननांग। निरुक्तके अनुसार-शेपः शपतेः स्पृशति-कर्मणः[१७८] अर्थात् शेपः शब्द शप् स्पर्शने धातु से बनता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा-इससे स्त्री स्पर्श की जाती है।[१८३] इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अमर कोष के प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामी ने स्त्री योनि के घर्षण करने वाले को शेपः कहा है।[१८४] व्याकरणके अनुसार शी +पः प्रत्यय कर शेपः शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(१२८) वैतस :- वैतस का अर्थ भी होता है-पुंस्प्रजनन। निरुक्तके अनुसार वैतसो वितस्तं भवति[१७८]अर्थात् स्त्री स्मरणके पूर्व वह उपक्षीण रहता है।[१८५] इसके अनुसार वैतसः शब्द में वि+तसु उपक्षये धातु का योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार वेतस + अण् प्रत्यय कर वैतसः शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१२९) स्वस्ति :- यह कल्याण का वाचक है- स्वस्तीत्यविनाशिनाम।[१९८] इस शब्द के निर्वचन में यास्क का कहना है- अस्तिरभिपूजितः सु अस्तीति[१९८] अर्थात् अस् सत्तायां धातु से अस्ति शब्द बनता है। अस्ति अभिपूजित का द्योतक है सु + अस्ति = स्वस्ति का अर्थ होगा अच्छी सत्तात्मकता। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। इसके आशीर्वाद, मंगल, पुण्य आदि कई अर्थ होते हैं।[१८६] व्याकरणके अनुसार सु + अस् + क्तिच्[१८७] प्रत्यय कर यह शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

-: संदर्भ संकेत :-

१. नि.३।२, २. The Elymologies of Yaska, P.४३, ३. कृञो भावे कर्मणि च मनिन् - उणा.-४।१४५, ४. पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रायते पितरं सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वमेव स्वयंभुवा।। -मनु.स्मृ. ९।१३८, नि. २।११-द्र., ५. अध्न्यादिः - उणा.४।११२ (वाहुलकाद्यः), ६. अपार्णस्य अपगतार्णस्य अपगतोदक सम्बन्धस्य परकुलजस्य-नि. दु.वृ-.३।१, ७. हला. पृ.१८९, ८. संभवे स्वजनदुः खकारिका सम्प्रदानसमयेऽर्थहारिका। योवनेऽपि व्हुदोषकारिका हारिका हृदयाहारिका पितुः।। ऐ.ब्रा. १३।१।५ (सा.भा.), ९. नप्तृ नेष्टृत्व-उणा. २।९५, १०. तं तत्र यापुत्रा यापतिका सारोहति। तांतत्राक्षेराघ्नन्ति सा रिक्थं लभते। नि ३।१, ११. उणा. - ३।८६, १२. पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि-अष्टा. ६।३।१०९, १३. नि. ३।१, १४. The correspondence between F in G is not philologically possible (the Etymologies of Yaska), १५. मितद्रवादित्वात् डुः-वा. ३।२।१८० सम्पदादिक्विप्-वा.३।३।१०८, १६. अष्टा. ३।२।७५, १७. The Etymologies of Yaska, P.७७, १८. वाहुलकान्निः, १९. इञजादिभ्यः वा. ३।३।१०८, २०. अम. को.३।३।१४२ हलायुध कोशः पृ. ३१६,२१.नि.३।२,२२.अष्टा ४।१ ।१६१, २३.तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता। अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षड् प्रकीर्तिताः।।कलेहायर संस्कृत ग्रामर -पृ.२३८,२४.तेनासुनाऽसुरानसृजत् तदसुराणाम सुरत्वम् -तै.ब्रा.-३।८।२,२५.ऋ.-३।५५।१९,२६.नि.-१०।३,२७. असुरत्वम् प्रज्ञावत्वम्,अनवत्वम्प्राणवत्वंवा-नि.दु.वृ.,२८.यास्कस् निरुक्त-पृ.३५(राजवाड़े)२९. अवेस्ता में(असुरमहत्)अहुरमज्दा वरुण के लिए प्रयुक्त होता है।वरुण ही उसमें श्रेष्ठ देव माने गये हैं। असुर शब्द ही अवेस्तामें अहुर हो गया है। संस्कृतकी स ध्वनि

अवेस्ता में ह हो गयी है।, ३०. असेरूरन्-उणा. १।४२, ३१. नि. ३।१, ३२. क्लावन्नगतप्राणा:-स्क. पुरा. रेवा. ख. १।९, ३३. पचाद्यच्- अष्टा. ३।१।१३४, ३४. चत्वार: वर्णा: पंचम: निषादइति औपमन्यव: नि. ३।२, ३५. नि. ३।२, ३६. हलश्च अष्टा. ३।३।१२१, ३७. ख घ थ ध भां ह :- प्राकृत प्रका., ३८. उणा. १।२८ (तुल.), ३९. अष्ट्रा. ३।१।१३४, ४०. ऋतन्यजि. -उणा. ४।२, ४१. इयमपीतरा द्यूरेतस्मादेव-नि. ३।२, ४२. भ्राजभास धुर्वि द्युतोर्जि-फृजुग्रावस्तुव: क्विप्-अष्टा. ३।२।१७७, ४३. अष्टा. ३।२।१०२, ४४. अन्नं भक्ते त भुक्ते स्यात्-मेदि. ८२।२, ४५. अत्तेर्वा अद्यते अत्ति च भूतानि तस्मादन्नम्-नि. दु. वृ. ३।२, ४६. The Etomologies of Yaska, p.९०, ४७. अष्टा. ३।१।१३४, ४८. स्फायितंचि- उणा. २।१३, ४९. अष्टा. ५।२।११५, ५०. हला. - ६८५ पृष्ठ, ५१. उणा.-३।४३, ५२. स यथा महान्बहुर्भवति वर्षस्तदिवार्बुदम्-नि. ३।२, स यथा उदकभावमापद्यमान: वहुर्भवति तद्वत् अर्वुदमपि द्रव्यं वर्षद् बहु भवति। नि. दु. वृ. ३।२, ५३. The Etymologies of Yaska, p.१२६, ५४. अर्बुदो गांसकीलेऽस्त्री पुरूषे दशकोटिषु-मेदि. ७५।१९, ५५. मूल विभुजादि: वा. ३।२।५, पृषोदरादि: अष्टा ६।३।१०९, ५६. अयमपीतर: खल एतस्मादेव-नि. ३।२, ५७. यो ह्यश्नोति व्याप्नोति स आक्षाण इत्यच्युते-नि.दु.वृ. ३।२, ५८. विद्युत्तडिद्भवतीति शाकपूणि: -नि.३।२, ५९. The Elymologies of Yaska, P.४०, ६०. नि. दु. वृ. ३।२, ६१. The Etomologies of Yaska, p.१११, ६२. ऋज्रेन्द्र उणा. २।२८, ६३. यास्क्स निरुक्त पृ.-३३, ६४. उणिसजि. उणा.-३।२, ६५. नि. ३।३, ६६. The Etymologies of Yaska, p.११०, ६७. लङ्घिवह्योर्नलोपश्च-उणा. १।२९, ६८. मेहे क:- अष्टा ३।१।१४४, ६९. इगुपधज्ञाप्रीकिर: क:-अष्टा. ३।१।१३५, ७०. शप्पशिल्पशव्येति- उणा ३।२८, ७१. यथार्थकथनं यश्च सर्वलोकसुखप्रदम्। तत् सत्यमिति विज्ञेयमसत्यं तद्विपर्ययम्।। पद्म पु.- अ. १६, ७२. अपत्यम्-अपततं भवति, नानेनपतीति वा-नि. ३।१, ७३. कियंत्तद्वहुषु - वा. ३।२।२१, ७४. यथा विधवा मृतभर्तृका कचित्स्त्री दवेरमुपचरति -नि. दु.वृ. ३।३, ७५. मेदिनी. ६५।१५६ अम. को. २।६।११, ७६. Phonetically this etymology is very loose but popular. The etymologies of Yaska, p.२७, ७७. The Etymologies of Yaska, p.66 and ८३, ७८. धव: प्रिय: पतिर्भर्ता-अ.को. २।६।३५, ७९. द्र.-जर्मन संस्कृत

-शब्दकोष (रोथ एवं ग्रासमान), ८०. अष्टा. ३।१।१३४, अष्टा. ३।३।१९, ८१. अम. को. २।६।२, ८२. सा हि मिश्रयत्यात्मानं पुरुषेणसाकम्-नि दु.वृ. ३।३, ८३. अष्टा. ३।१।१३४, ८४. (क) महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति...नि. ७।१, (ख) इन्द्रं मित्रं वरुण मग्निमाहुरथोदिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। ऋ. १।१६४।४६, (ग) नि. १४।१, ८५. अच्छेद्योऽयम दाह्योऽय मक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। श्रीमद्भ. २।२४, ८६. अपि स्वयं मनुष्यजार एवाभिप्रेतः स्यात्-नि ३।३, ८७. अम.को. २।६।२९, ८८. भ्राता स्वस्रासाकं वाल्ये नित्यमेव चरति नि.दु.वृ. ३।३, ८९. नि. ११।३, ९०. नि. ११।३, ९१. सावसेः उणा. २।९६, ९२. नि. ४।२, ९३. ऋ. १०।१५१।१, ९४. नि. ९।३, ९५. भगं श्रीयोनिवीर्येच्छा ज्ञानवैराग्य कीर्तिषु। माहात्म्यैश्वर्य यत्नेषु धर्मे मोक्षेऽथ ना रवौ।। मेदि. को. २२।१२, ९६. पुंसि.-अष्टा. ३।३।११८, खनोघच-अष्टा. ३।३।१२५, ९७. ते रात्र्यां भूतायां प्रशून्नापश्यन्। सावेन्न वै पश्यन्तीति-पा. तन्त्र. ५।९, ९८. स (अग्निकुमारः) एतान्पंच पशूनपश्यत्-पुरुषम्, अश्वं, गाम् अविम्, अजम्। यदपश्यत्तस्मादेते पशवः- श.ब्रा. ६।२।१।२, ९९. उणा. १।२८, १००. अ.सं. ११।२।९, १०१ क. आहार निद्रा भय मैथुनंच समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्-हितो., १०१. तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट्प्रकीर्तिताः का.हा.सं.ग्रा.पृ.-२३८, १०२. वृषादिभ्यश्च-उणा. १।१०६, १०३ अन्येभ्योऽपि-वा.३।२।१०, १०४. अष्टा. ३।२।३, १०५. प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी-अष्टा. ६।१।१५३, १०६. प्रजापतिना किल शुक्र मात्मीयमादायाग्नौ हुतं ततोऽर्चिषि ज्वालायां भृगुर्नाममहर्षिः सम्बभूव-नि.दु.वृ. ३।३, १०७. प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च-उणा. १।२८ न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम्-अष्टा. ७।३।५३, १०८. भृगुः सानो जमदग्निप्रपातयोः। शुक्रेरुद्रे च....हैमः-२।४१, १०९. व्यपगतेऽर्चिषि अंगारेषु यः सम्वूभव सोऽगिंरानामाभवत्-नि. दु.वृ. ३।३, ११०. ऋ. ५।११।६ (द्र.), १११. ऋ. १।१३९।९ (द्र.), ११२. अंगि मदिमन्दिभ्यः आरन्-उणा. ३।१३४, ११३. मरीचिरत्र्यंगिरसो पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा वशिष्टश्चेति सप्त तै।। अ.को. १।३।२७ (रामाश्रामी टी.) द्र., ११४. उत्पन्ने द्वितीयेऽत्रेव कुण्डे तृतीयमृच्छतेति यमुद्दिश्यो चुर्भृग्वादयः सोऽत्रिः नि. दु. वृ. ३।३, ११५. खन्यतामेतदग्निस्थानं चतुर्थोऽप्यत्र

तु= सक्तु। विकसितो भवति[६५] अर्थात् सक्तु में जल मिलाने पर उसका अधिक विकास होता है। शच् समवाये धातुसे सक्तु मानना ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टि से उपयुक्त है। भाषा विज्ञान की दृष्टिसे प्रथम निर्वचन उपयुक्त है। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। व्याकरणके अनुसार संज् धातुसे तुन् प्रत्यय कर (किच्च) सक्तु शब्द बनाया जा सकता है।

(३९) भद्रम् :- यह कल्याणका वाचक है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं। (१) भद्रं भगेन व्याख्यातम्। भजनीयं भूतानामभिद्रवणीयम्[६६] अर्थात् भद्रम् शब्दकी व्याख्या भगके ही समान है। भद्र शब्दमें भज् धातुका योग है क्योंकि यह सभी प्राणियों के द्वारा प्रापणीय है। (२) भवद्रमयतीतिवा अर्थात् यह स्वयं होता हुआ सभी को आनन्दित करता है। इसके अनुसार इस शब्द में भू + रम् धातु का योग है। (३) भाजनवद्वा[६५] अर्थात् यह सुपात्र युक्त होता है। इसके अनुसार इस शब्द में भज् +वत् का र प्रत्यय भज् +र =भज् भद्र प्राप्त होता है। यास्क के प्रथम निर्वचन में भज् एवं भू + द्रु धातु का संकेत है। द्वितीय में भू + रम् एवं तृतीय में भज् +(वत्) र् का संकेत है। उपर्युक्त सभी निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण है। सबोंका अर्थात्मक महत्व है। यास्क निरुक्तके एकादश अध्यायके द्वितीय पादमें यजुर्वेद के १९/५० मन्त्र की व्याख्या में भद्र का अर्थ भन्दनीय करते हैं।[६९] इस आधार पर भद्र शब्दमें भदि कल्याणे धातुका योग स्पष्ट होता है। यास्ककी यह व्याख्या ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार भदि कल्याणे धातु से रन्[७०] प्रत्यय कर इसे निष्पादित किया जा सकता है।

(४०) लक्ष्मी :- इसका अर्थ श्री: होता है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं :- (१) लक्ष्मीर्लाभाद्वा अर्थात् लक्ष्मीके आगमनसे लाभ होता है या सभी चीज प्राप्त हो जाती है। लक्ष्मी प्राप्त की जाती है। इसके अनुसार लक्ष्मी: शब्द में लभ् प्रापणे धातु का योग है। (२) लक्षणाद्वा[६५] अर्थात् यह सबसे लक्षित है, दृश्य है। इसके अनुसार लक्ष्मी: शब्दमें लक्ष् धातु का योग है। (३) लाञ्छनाद्वा अर्थात् वह दृश्य होती है। इसके अनुसार इसमें लांछ् धातु का योग है। (४) लषतेर्वास्यात् प्रेप्साकर्मण: अर्थात् यह सबों की इच्छाका विषय है या सभी इसे चाहते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें इच्छार्थक लष् धातु का योग है। (५) लग्यतेर्वा स्यादाश्लेष कर्मण: अर्थात् यह सभी को आलिंगन करती है। इसके अनुसार इस शब्द में आश्लेषार्थक लग् धातु का योग है। (६) लज्जतेर्वा

स्यादश्लाघाकर्मण:[६५] अर्थात् लक्ष्मीवान अश्लाघी होते हैं, लज्जाशील होते हैं।[६१] इसके अनुसार इस शब्दमें अश्लाघार्थक (लज्जार्थक) लस्ज् धातुका योग है। उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि यास्कने लक्ष्मी: शब्दमें लभ, लक्ष:, लांछि, लष्, लग्, एवं लस्ज छ धातुओं की संभावना की है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। विभिन्न अर्थोपलब्धि के लिए इतने प्रकार के निर्वचन किए गए हैं। इन निर्वचनोंसे लक्ष्मी एवं लक्ष्मीवान् का प्रकृतिगत या गुणगत स्वरूप स्पष्ट होता है। ध्वन्यात्मक आधार पर लक्ष, लग् या लष् धातुसे लक्ष्मी: शब्द उपयुक्त है। फलत: भाषा विज्ञान के अनुसार यास्क का द्वितीय, चतुर्थ एवं पंचम निर्वचन संगत माना जाएगा। व्याकरण के अनुसार लक्ष् दर्शनाशंक्यो: धातु से मुट्+ ई प्रत्यय[७२] कर लक्ष्मी: शब्द बनाया जा सकता है।

(४१) मन्दू :- यह प्रथमा द्विवचन का रूप है। यह शब्द इन्द्र तथा मरुद्गण के विशेषणके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। निरुक्तके अनुसार -मन्दू मदिष्णू[६५] अर्थात् सदा प्रसन्न रहने वाला या हर्षित रहने वाला इन्द्र एवं मरुद्गण। इसके अनुसार मन्दू शब्द में मद् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।

(४२) ईर्मान्त :- इसका अर्थ होता है विस्तृत अन्तवाला दिव्याश्व। निरुक्तके अनुसार (१) इर्मान्ता: समीरतान्ता:, सुसमीरितान्ता: अर्थात् समीरित या सुसमीरित अन्त वाला। इसके अनुसार इस शब्दमें ईर् क्षेपे धातुका योग है। (२) पृथवन्तावा[६५] अर्थात् जिसका अन्त भाग स्थूल या पृथु हो। अश्वका अन्त भाग स्थूल होता है। अन्तिम निर्वचन में मात्र अर्थ स्पष्ट किया गया है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। व्याकरणके अनुसार ईर् धातुसे मक् प्रत्यय कर इर्मान्त शब्द बनाया जा सकता है।

(४३) सिलिकमध्यम :- इसका अर्थ होता है जिसका मध्य भाग संश्लिष्ट है। यास्कने इसके दो निर्वचन प्रस्तुत किए -(१) संसृत मध्यमा[६५] अर्थात् परस्पर संश्लिष्ट मध्यभाग वाला। इसके अनुसार इसमें सम्-सृगतौ धातुका योग है। (२) शीर्षमध्यमा अर्थात् जिसका मध्यम ही मुख्य हो। यह सूर्यके अश्वका विशेषण है। दोनों निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। द्वितीय निर्वचन अधिक स्पष्ट है।

(४४) शिर :- यह आदित्य एवं मस्तकका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -शिर आदित्यो भवति। यदनुशेते सर्वाणि भूतानि।मध्ये चैषां तिष्ठति[६५] अर्थात् आदित्य वाचक शिरका अर्थ होगा जो सभी प्राणियोंमें अनु शयन करता है तथासभीके बीचमें स्थित है।

मस्तकका वाचक शिर भी इसी प्रकार बनता है- इदमपीतरच्छिर एतस्मादेव, समाश्रितान्येतदिन्द्रियाणि भवन्ति। अर्थात् मस्तक वाचक शिर पर सभी इन्द्रियां आश्रित रहती है। सभी इन्द्रियों का संचालन केन्द्र मस्तिष्कमें ही होता है। आदित्य वाचक शिरः शब्दके निर्वचनमें शीङ् शयने धातुका योग है तथा मस्तक वाचक शिरः में श्रिञ् सेवायाम् धातुका योग है। मस्तक अर्थमें प्रतिपादित निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। इसे भाषा विज्ञानके अनुसार संगत माना जाएगा। आदित्यके अर्थमें प्रतिपादित निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे शिथिल है। अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार श्रिञ् सेवायाम् धातुसे असुन्[७३] प्रत्यय कर शिरः शब्द बनाया जा सकता है। (श्रीयते उष्णीषादिना) लौकिक संस्कृत में शिरः शब्द प्रधान, समग्र, शिखर तथा मस्तक के अर्थमें प्रयुक्त होता है।[७४]

(४५) शूर :- शूरः का अर्थ होता है वीर। निरुक्तके अनुसार -शूरः शवते र्गतिकर्मणः[६५] अर्थात् शूरः शब्द गत्यर्थक शु धातु से निष्पन्न होता है। प्रकृत में शूर आदित्यका वाचक है। इस निर्वचनके अनुसार शूरः का अर्थ होगा गतियुक्त। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। शु धातुसे निष्पन्न शवति क्रिया का प्रयोग गमन के अर्थ में कम्बोज देशमें प्रयुक्त होता है। शवति क्रिया में शव् गतौका योग भी माना जा सकता है। लेकिन शूरः शब्दमें शु गतौ धातुका योग है। शव् क्रियासे बना संज्ञा पद आर्य देशोंमें प्रयुक्त होता है।[७५] शूरः शब्दका प्रयोग वीरके अर्थ में सर्वत्र होता है। व्याकरणके अनुसार शूर् विक्रान्तौ धातुसे अच्[७६] प्रत्यय कर शूरः बनाया जा सकता है। शूरः शब्दको शु धातुसे क्रन्[७७] प्रत्यय कर भी बनाया जा सकता है। गमन से युक्त होने के कारण आदित्य के लिए शूरः शब्द का प्रयोग हुआ है।

(४६) दिव्या :- इसका अर्थ होता है दिव्य लोकमें उत्पन्न। निरुक्तके अनुसार दिव्या दिविजाः[६५] अर्थात् दिन में उत्पन्न होने वाला दिव्या कहलाता है। इसके अनुसार दिव्या शब्द में दिव् +ण्यत् प्रत्ययका योग है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार दिव् +यत्दिव्यः दिव्याः शब्द बनाया जा सकता है।

(४७) अत्या :- इसका अर्थ होता है गमन शील। यह बहुबचन का रूप है। निरुक्तके अनुसार-अत्या अतनाः[६५] अर्थात् अत्या शब्दमें अत् सातत्यगमने धातुका योग है।प्रकृतमें हंसके विशेषणके रूपमें अत्या प्रयुक्त हुआ है क्योंकि ये गमनशील होते

हैं। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार अत् + ण्यत् प्रत्ययकर अत्य: अत्या: शब्द बनाया जा सकता है।

(४८) हंस :- हंस शब्द सूर्य एवं पक्षी विशेषका वाचक है। निरुक्तके अनुसार हंसो हन्तेर्घ्नन्त्यध्वानम्[६५] अर्थात् हंस शब्द में हन् गतौ धातुका योग है क्योंकि यह मार्ग गमन करता है। सूर्य एवं हंस पक्षी दोनों मार्ग गमन करते हैं। हन् धातुसे हंस मानने में स वर्ण का आगम माना गया है जो निर्वचन प्रक्रिया के अनुकूल है।[७८] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यह आख्यातज सिद्धान्त पर पूर्ण रूप से आधारित है।[७९] व्याकरणके अनुसार हन् हिंसागत्यौ धातु से अच्[८०] प्रत्यय कर हंस: शब्द बनाया जा सकता है। भारोपीय परिवार की अन्य भाषाओं में भी किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ यह शब्द सुरक्षित है-ग्रीक-Khen, गाथिक-gans, अंग्रेजी goose. भाषा विज्ञानके अनुसार यास्कका निर्वचन उपयुक्त है।

(४९) श्रेणि :- यह पंक्ति या कतारका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -श्रेणि: श्रयते:[६५] अर्थात् श्रेणि: शब्द श्रिञ् सेवायां धातुसे निष्पन्न होता है। समाश्रिता भवन्ति। अर्थात् एक दूसरे के आश्रय लिए होते हैं या एक दूसरे के आश्रित होते हैं। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार श्रिञ् सेवाया धातुसे नि: प्रत्यय कर श्रेणि शब्द बनाया जा सकता है।[८१]

(५०) कायमान :- इसका अर्थ होता है देखता हुआ या चाहता हुआ। निरुक्तके अनुसार- कायमानश्चायमान: कामयमान[६५] इति। कायमान शब्द को चायमान के द्वारा स्पष्ट किया गया है इसके अनुसार इसमें चाय् दर्शने धातुका योग है। कामयमान: के अनुसार कायमान शब्द में कामय् धातुका योग माना जाएगा। कामय् धातु इच्छार्थक है। यह निर्वचन भाषा विज्ञान की दृष्टिसे पूर्ण संगत नहीं है।

(५१) लोधम् :- इसका अर्थ होता है लुब्ध। निरुक्तके अनुसार-लोधं लुब्धमृषिं[६५] अर्थात् लुब्ध ऋषि को। इसे किसी ऋषिका नाम भी माना जा सकता है। दुर्गवृत्तिके अनुसार-तपस्या का लय नहीं हो इस लोभ में स्थित ऋषि को लोध कहा गया है।[८२] यह निर्वचन अनवगत संस्कारका है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जाएगा।

(५२) शीरम् :- यह अग्निका वाचक है जो व्यापक है। निरुक्तके अनुसार (१) शीरम् अनुशायिनमितिवा[६५] अर्थात् जो सभी प्राणियोंमें (जठरानल में) व्याप्त है। या

शयन करता है। इसके अनुसार शीरम् शब्दमें शीङ् स्वप्ने धातुका योग है। (२) आशिनमिति वा अर्थात् जो सभी में व्याप्त हो। इसके अनुसार इस शब्द में अशु व्याप्तौ धातुका योग है। दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। प्रथम निर्वचनको ध्वन्यात्मक दृष्टिसे भी उपयुक्त माना जा सकता है। द्वितीय निर्वचन का ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। व्याकरण के अनुसार शीङ् + रक् प्रत्यय कर शीरम् शब्द बनाया जा सकता है।

(५३) कन्या :- इसका अर्थ होता है- कुमारी लड़की। निरुक्त में इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं- (१) कन्या कमनीया भवति अर्थात् कन्या कमनीय होती है। सुन्दर होती है। इसके अनुसार कन्या शब्द में कमु कान्तौ धातुका योग है। (२) क्वेयं नेतव्येतिवा अर्थात् इसे कहां ले जाना चाहिए (इसका विवाह कहां करना चाहिए इसकी चिन्ता माता पिता को सदा बनी रहती है।) इसके अनुसार कन्या शब्दमें क्व +णीञ् प्रापणे धातुका योग है। (३) कमनेनानीयत इति वा अर्थात् वह वरके द्वारा लायी जाती है या चाहने वालेके द्वारा लायी जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें कम् +आ +णीञ् धातुका योग है। कम् +णीञ् = कन्या। (४) कनतेर्वा स्यात् कान्तिकर्मण:[६५] अर्थात् कान्त्यर्थक कन् धातुसे यह शब्द बनता है क्योंकि वह सुन्दरी होती है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे अंतिम निर्वचन सर्वथा संगत है। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। वेदमें कन्या शब्दके लिए कनीनका[६३] तथा कनी[६४] शब्द की भी उपलब्धि होती है इसमें कनी शब्द कन्या शब्द की प्रकृति मालूम पड़ता है कन् - कन्या। व्याकरणके अनुसार कन् + यत् +टाप् = कन्या शब्द बनाया जा सकता है।[६५]

(५४) दारु :- यह काष्ठ या लकड़ी का वाचक है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं। (१) दारु दृणाते: अर्थात् दारु शब्द दृ विदारणे धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह विदारित होता है या फाड़ा जाता है। (२) द्रुणातेर्वा अथवा दारु शब्द द्रु हिंसायां धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसे काटा जाता है। (३) तस्मादेव द्रु[६५] अर्थात् द्रु भी उसी धातुसे निष्पन्न होता है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार प्रथम निर्वचन उपयुक्त माना जाएगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। व्याकरणके अनुसार दृ विदारणे धातुसे ऋण्[६६] प्रत्यय कर दारु शब्द बनाया जा सकता है।

(५५) तुग्व :- यह तीर्थ का वाचक है। निरुक्तके अनुसार तुग्व तीर्थं भवति।

तूर्णमेतदायान्ति[६५] अर्थात् इस पर मनुष्य जल्दी-जल्दी आते रहते हैं। इसके अनुसार तुग्व शब्द में तुर् गतौ धातुका योग है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह निर्वचन पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधार इसका संगत है।

(५६) नंसन्ते :- यास्क इसका अर्थ ही प्रस्तुत करते हैं। इसका अर्थ होता है प्रणाम करते हैं। इसका निर्वचन प्रस्तुत नहीं किया गया है।

(५७) आहनस :- इसका अर्थ होता है वंचक या सम्मोहक। निरुक्तके अनुसार आहनसः आहनवन्तः वंचनवन्तः[६५] अर्थात् आहनवन्तः शब्द में आ +हन् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता है।

(५८) शुन्ध्यु :- यह आदित्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) शुन्ध्युरादित्यो भवति। शोधनात्[६५] अर्थात् शुन्ध्युः शब्दमें शुन्ध् शुद्धौ धातुका योग है। इसके अनुसार सुन्ध्युः जगत् को शुद्ध करने वाला है। (२) शकुनिरपि शुन्ध्युरूच्यते शोधनादेव[६५] अर्थात् पक्षीको भी शुन्ध्यु कहते हैं। शुद्ध करने के कारण ही पक्षी को शुन्ध्यु कहा जाता है। इसके अनुसार भी इसमें शुन्ध् शुद्धौ धातुका योग है। उदकचरोभवति अर्थात् उदक्में चलने वाला या उदकके ऊपर चलने वाला होता है। उदकचर पक्षी से जलमें रहने वाले पक्षीका बोध होता है। (३) आपोऽपि शुन्ध्यव उच्यन्ते शोधनादेव[६५] अर्थात् जलको भी सुन्ध्यु कहते हैं क्योंकि यह भी शुद्ध करता है या पवित्र कर देता है। सूर्य, पक्षी एवं जल तीनोंके लिए शुन्ध्यु शब्दका प्रयोग होता है। ये तीनों ही पवित्र करने वाले या शुद्ध करने वाले हैं। इन निर्वचनोंसे स्पष्ट है कि तीनों ही से वातावरण शुद्ध एवं पवित्र बनता है। ये निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त हैं। कर्म सादृश्यके आधार पर ही यह शब्द तीन अर्थों का वाचक है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे उपयुक्त माना जायगा।

(५९) वक्ष :- इसका अर्थ होता है छाती। निरुक्तके अनुसार अध्यूढं कायेऽ[६५] अर्थात् वह शरीर पर अध्यूढ़ होता है या चढ़ा होता है। इसके अनुसार वक्षस् शब्दमें वह् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे वक्ष् संघाते +असुन्[८७] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जाएगा।

(६०) नोधा :- यह ऋषि का वाचक है। निरुक्तके अनुसार नोधा ऋषि-र्भवति।

नवनं दधातीति[६४] अर्थात् वह स्तुति धारण करता है। इसके अनुसार नोधा शब्द में नव +धा धारणे धातुका योग है नव + धा - नोधा। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार नु + धुट् - अस् प्रत्यय कर नोधस् शब्द बनाया जा सकता है।

(६१) अद्यसत् :- इसका अर्थ होता है- अन्नसाधिका स्त्री, अन्न प्राप्त करने वाली माता या स्त्री। निरुक्त के अनुसार - अद्यान्नं भवति - अद्यसादिनीति वा अद्य अन्नका वाचक है। जो अन्न पर बैठे उसे अद्य सादिनी कहा जाएगा। इसके अनुसार अद्यसत् शब्द में अद्य + सद् धातुका योग है। अद्यसानिनीतिवा[६५] अर्थात् अन्न बांटने वाली, जो घर वालों को भोजन दें। गृह पत्नीके अर्थमें यह उपयुक्त है। इसके अनुसार इस शब्द में अद्य + सन् सम्भक्तौ धातुका योग है। अर्थात्मक आधार पर दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत है। प्रथम निर्वचनकी अर्थ संगतिमें अन्न प्राप्त कराने वाली स्त्रीका अर्थ विवक्षित है। दोनों ही निर्वचन गृहपत्नीका वाचक है। प्रथम निर्वचन भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे उपयुक्त माना जाएगा।

(६२) इष्मिण :- इसका अर्थ होता है गतिशील। निरुक्तके अनुसार (१) ईषणिन:[६५] अर्थात् जाने वाले। इसके अनुसार इस शब्दमें इष् गतौ धातुका योग है। (२) वैषणिन इतिवा अर्थात् चाहने वाले। इसके अनुसार इस शब्द में इष् इच्छायां धातुका योग है। (३) वार्षणिन इतिवा[६५] अर्थात् देखने वाले। इसके अनुसार इस शब्द में दर्शनार्थक ऋष् धातुका योग है। इष्मिण: मरुतोंसे सम्बन्ध रखता है। मरुतोंका सम्बन्ध प्रमुख रूपसे आंधी तूफानसे है अत: ये वेगवान (ईषणिन:) हैं। ये वर्षा से पूर्व की स्थिति लानेमें प्रमुख रूपसे सहायक होते हैं अत: वर्षाकी इच्छासे युक्त (एषणिन:) है। तूफान लानेके विशिष्ट ज्ञानसे युक्त होनेके कारण अर्षणिन: भी हैं।[६६] प्रथम दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार इष् +मक् = इष्म- इष्मिण: शब्द बनाया जा सकता है। प्रथम दोनों निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार संगत हैं।

(६३) वाशी :- यह वाणी का वाचक है। निरुक्त के अनुसार वाशीतिवाङ् नाम वाश्यत इति सत्या:[६५] अर्थात् इससे शब्द किया जाता है। इसके अनुसार वाशी शब्द में वाश् शब्दे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यास्क आगे चल कर इसी अध्याय में वाशीभि: का अर्थ वाग्भि: करते हैं जिस से भी स्पष्ट होता

है कि वाशी शब्दमें वाश् धातुका योग है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(६४) वाह :- निरुक्तमें वाहः शब्दका निर्वचन स्तुतिके अर्थमें हुआ है। (१) वाहः अभिवहन स्तुतिम् अर्थात् देवताओंकी स्तुतिमें प्रयुक्त ऋचाएं या देवताओंके आह्वानके लिए प्रयुक्त स्तुति। इसके अनुसार वाहः शब्दमें वह् प्रापणे धातुका योग है। (२) अभिषवण प्रवादां स्तुति[९५] अर्थात् अभिषवण के लिए प्रयुक्त स्तुति वाहः कहलाती है। वेदोंमें इसका प्रयोग दो रूपोंमें प्राप्त होता है। उत्तर पदके रूपमें इसका प्रयोग स्तुति तथा वहन करना अर्थमें हुआ है[९६] तथा स्वतंत्र रूपमें इसका प्रयोग स्तुतिके अर्थमें।[९७] यास्कने वाहः का प्रयोग स्तुतिके अर्थमें ही किया है। उपर्युक्त निर्वचन कर्मकाण्डकी दृष्टिसे दो अर्थोंमें किया गया है। प्रथम अभिवहन स्तुतिके अर्थमें तथा द्वितीय अभिषवण स्तुतिके अर्थमें वाहः व्युत्पन्न है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। द्वितीय निर्वचनका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार वह् प्रापणे + घञ्[९९] प्रत्यय कर या वाह् प्रयत्ने+अच्[९२] प्रत्यय कर वाहः शब्द बनाया जा सकता है। कोष ग्रन्थों के अनुसार वाहः शब्द भुजा, मानभेद, अश्व, वृष, वायु आदि के लिए प्रयुक्त होता है[९३]। स्तुतिके अर्थमें वाहः शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृत में नहीं प्राप्त होता।

(६५) सुविते :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तके अनुसार (१) सुविते सु इते अर्थात् अच्छा गमन वाला। इसके अनुसार इस शब्दमें सु +इण् गतौ धातुका योग है। (२) सूते अर्थात् पैदा करती है। इसके अनुसार यह शब्द सू प्राणिगर्भ विमोचने धातुसे निष्पन्न होता है। सुगते प्रजायामिति वा[९४] अर्थात् सु+इण् गतौ धातुसे सुविते मानने पर इसका अर्थ होगा गमन करता है तथा सू प्राणिगर्भ विमाचने धातुसे सुविते शब्द मानने पर इसका अर्थ होगा प्रजाओंको उत्पन्न करता है।[९५] द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। प्रथम निर्वचनका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है लेकिन ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं। सुविते शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता। सूतेके अनुसार सू धातुसे छान्दस इडागम कर सुविते शब्द बनाया जा सकता है।

(६६) दयते :- दयते शब्द अनेकार्थक है। इसमें दय् धातुका योग है। यास्क दयते का निर्वचन प्रस्तुत नहीं कर दय् धातुके विभिन्न अर्थों में प्रयोगका प्रदर्शन करते

हैं। सुविते (नि. ४।५८) के समान इसका निर्वचन नहीं कर मात्र इसके विभिन्न अर्थों को दिखाते हैं। दय् धातु रक्षा,[९६] दान[९७], विभाग[९८], जलाना[९९], हिंसा[१००] और गति[१०१] अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। लौकिक संस्कृतमें भी दय् धातु के वे ही अर्थ सुरक्षित हैं। वह (दानगतिरक्षणहिंसा दानेषु) दान, गति रक्षा, हिंसा एवं दान (विभाग) अर्थों में प्रयुक्त होता है।

(६७) नूचित् :- यह एक निपात है। यास्क इसका अर्थ करते हैं -प्राचीन और नवीन। नूचिदिति निपात:। पुराणनवयो: नूचेति।[९४] नू च भी निपात है तथा नूचित् के समान ही अर्थ धारण करता है। यास्क निपातोंका अर्थ ही स्पष्ट करते हैं एवं उस अर्थमें उसके प्रयोगका प्रदर्शन करते हैं। वेदोंमें दोनोंका प्रयोग इन्हीं अर्थोंमें प्राप्त होता है। लौकिक संस्कृतमें भी यह निपात आंशिक रूपमें प्रचलित है। नूचित् दो निपातों का समुदाय है। निपातसमुदायका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें भी होता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जा सकता।

(६८) रयि: :- रयि: धनका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -रयिरिति धननाम रातेर्दान कर्मण:[९४] अर्थात् रयि: शब्द रा दाने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसका दान किया जाता है (एक दूसरे को दिया जाता है।) धन की प्रथमगति दान ही अभिप्रेत है।[१०२] इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है। लौकिक संस्कृतमें भी इसका प्रयोग इसी अर्थमें प्राप्त होता है[१०३] वैदिक कालमें यास्कके समयमें लोग धनका उपयोग दान करनेमें करते थे, इस निर्वचन से स्पष्ट हो जाता है। व्याकरणके अनुसार रय्+इन् प्रत्यय कर रयि: शब्द बनाया जा सकता है।

(६९) अकूपार :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तमें कई अर्थों में इसके निर्वचन प्राप्त हैं :- (१) आदित्योऽप्यकूपार उच्यते। अकूपारो भवति दूरपार:।[९४] अर्थात् आदित्यको भी अकूपार कहा जाता है। अकूपारका अर्थ होता है-दूरपार। सूर्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक बड़ा रास्ता तय करता है अत: दूरपार होने के कारण आदित्य को अकूपार कहा गया है। इसके अनुसार इस शब्द में अ+ कु + परण् का योग है। अ नञर्थ है तथा कु कुत्सितका वाचक है। जिसका कुत्सित मार्ग नहीं है या कुत्सित गमन नहीं है वह सुन्दर मार्ग वाला अकूपार कहलाता है। (२) समुद्रोऽप्यकूपार उच्यते अकूपारो भवति महापार:[९४] अर्थात् समुद्र को भी अकूपार कहा जाता है क्योंकि समुद्र महापार वाला होता है, विस्तीर्ण पार

कूपार कहा है। (३) कच्छमेऽकूपारं उच्यते।[१४] अकूपारो न कूपमृच्छतीति।[१५] अर्थात् कच्छप को भी अकूपार कहा जाता है क्योंकि वह कूप पर जाना पसन्द नहीं करता है। कछुआ होनेके कारण कच्छप नदी या समुद्रमें ही रहना पसन्द करता है। इस निर्वचनके अनुसार न+कूपार +ऋच्छतीति धातुका योग है। प्रथम एवं तृतीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचन अस्पष्ट है। व्याकरणके अनुसार अ + कु + पृ + अण्[१३] प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है। अथवा न+अ-कूपं +ऋ धतौ + अण्=अकूपार: बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें समुद्र एवं महाकच्छपके अर्थमें अकूपारका प्रयोग मिलता है।[१६] सादृश्यके आधार पर अकूपार विभिन्न अर्थोंका वाचक हो गया।

(७०) कच्छप :- इसका अर्थ होता है-कछुआ। निरुक्तके अनुसार (१) कच्छं पातीति अर्थात् वह अपने कच्छ (मुखभाग) की रक्षा करता है।[१७] इसके अनुसार कच्छ+ पा रक्षणे धातुसे यह शब्द निष्पन्न होता है। (२) कच्छेन पातीति वा[१४] अर्थात् वह अपने कच्छ-कूर्म-कमठ से अपने अंगों की रक्षा करता है। इसके अनुसार भी कच्छप शब्द में कच्छ+ पा रक्षणे धातुका योग है। (३) कच्छेन पिवतीतिवा[१४] अर्थात् वह कच्छ मुख भागसे पीता है। इसके अनुसार इस शब्दमें कच्छ +पा पाने धातुका योग है। सभी निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे संगत हैं। कच्छ यहां तीन अर्थों को द्योतित करता है। कच्छ क्रमश: मुख, कमठ तथा मुख का द्योतक है। पा धातु भी रक्षा एवं पान दो अर्थों में प्रयुक्त है। व्याकरण के अनुसार कच्छ+ पा +क:[१८] प्रत्यय कर कच्छप: शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे सर्वथा संगत माना जाएगा।

(७१) कच्छ:- यह शब्द भी अनेकार्थक है। निरुक्तमें यह मुख, कमठ तथा नदी किनारा के अर्थमें विवेचित है।कच्छ:, खच्छ:, खच्छद:[१४] अर्थात् कच्छशब्द खच्छ या खच्छदसे बना है। खच्छ इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह आकाश से आच्छादित है। खेन छादयते-खच्छ: कच्छ: या यह कच्छ आकाश को आच्छादित रखता है-खमाकाशं छादयति।[१९] ख +छद्=खच्छद - कच्छ, ख का क - (महाप्राण का अल्प प्राण में परिवर्तन)। किनाराका वाचक कच्छ शब्दभी इसी प्रकार बनता है-अयमपीतरो नदी -कच्छ एतस्मादेव कमुदकम् तेन छादयते।[१४] अर्थात् नदीका किनारा वाचक कच्छ कम् +छद् धातुके योगसे बनता है क्योंकि वह जलसे आच्छादित रहता है।खच्छ: एवं

खच्छदः से कच्छ में ख + छद् धातुका योग है इनमें वर्ण परिवर्तन हुआ है नदीका किनारा वाचक कच्छ शब्दमें क + छद् धातु का योग है। यह ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। प्रथम दो अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं तथा ध्वन्यात्मक शैथिल्यसे युक्त हैं। व्याकरणके अनुसार-क +छो छेदने+कः[११०] प्रत्यय कर कच्छः शब्द बनाया जा सकता है अथवा क+छद्+ड से भी कच्छः शब्द बनायाजा सकता है.

(७२) शिशीते :- इसका अर्थ होता है तीक्ष्ण रखता है। निरुक्तमें निश्यति[९४] कह कर इसे स्पष्ट किया गया है। निश्यति का भी अर्थ होता है तीक्ष्ण करता है। यह निर्वचन अस्पष्ट है। इससे धातु आदिका पूर्ण पता नहीं चलता। यास्कने भी इसे अनवगत संस्कार के शब्दोंमें परिगणित किया है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे अपूर्ण माना जाएगा।

(७३) रक्षः :- रक्षः का अर्थ होता है-राक्षस। निरुक्तके अनुसार- रक्षः रक्षितव्यमस्मात् अर्थात् इससे अपनी रक्षा करनी पड़ती है। इसके अनुसार रक्षः शब्द में रक्ष् पालने धातुका योग है। (२) रहसि क्षणोतीति वा[९४] अर्थात् वह एकान्तमें मारता है। इसके अनुसार इस शब्दमें रहस् + क्षण् हिंसायाम् धातुका योग है। (३) रात्रौ नक्षत इतिवा अर्थात् वह रात्रि में गमन करता है।[१११] इसके अनुसार रक्षः शब्द में रात्रौ-र+ नक्ष् गतौ धातुका योग है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। शेष दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोण से अन्तिम दोनों अपूर्ण हैं। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी रक्ष् धातुसे ही रक्षः का निर्वचन प्राप्त होता है।[११२] व्याकरणके अनुसार रक्ष् पालने +असुन्[११३] प्रत्यय कर रक्षः शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें भी इसी अर्थ में रक्षः शब्दका प्रयोग देखा जाता है।

(७४) सुतुकः- इसका अर्थ होता है अच्छी गति वाला। निरुक्तके अनुसार- सुतुकः सुतुकनः[९४] सु सुष्ठु का वाचक है तथा तुक गमन का।[११४] यह अनवगत संस्कारका शब्द है। यह अस्पष्ट है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे अपूर्ण माना जाएगा। तुकका अर्थ सन्तान करने पर सुतुकः का अर्थ होगा अच्छी सन्तान वाला। प्रकृतमें सुतुकः अग्निके विशेषणके रूपमें प्रयुक्त है।

(७५) सुप्रायणाः- इसका अर्थ होता है-सुन्दर गमन वाला। यास्कने इस अनवगत संस्कार वाले पदका मात्र अर्थ स्पष्ट किया है। इसका वे निर्वचन नहीं प्रस्तुत

करते। सुप्रायणा: सुप्रगमना:[९४] सुप्रायणा: शब्द में सु+प्र+अय् गतौ धातुका योग स्पष्ट है। निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार यह निर्वचन अपूर्ण है।

(७६) अप्रायुव :- इसका अर्थ होता है-प्रमाद रहित। निरुक्तके अनुसार - अप्रायुवोऽप्रमाद्यन्त:।[९४] यास्क अप्रायुव: का भी मात्र अर्थ स्पष्ट करते हैं। अप्रायुव: शब्द में अ+प्र +आ + यु धातुका योग प्रतीत होता है। अप्रमाद्यन्त: से ही अप्रायुव: का अर्थ यास्क स्पष्ट करते हैं। निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे अपूर्ण माना जाएगा।

(७७) च्यवन :- यह ऋषि का वाचक है। मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहे जाते है। निरुक्तके अनुसार च्यवन ऋषिर्भवति। च्यावयिता स्तोमानाम्[९४] अर्थात् वह मन्त्रों (स्तोमों) का च्यावयिता प्रकाशक है या संग्रह करने वाला है। च्यवन एक ऋषिका भी नाम है जिसका वेदों में च्यवान रूप प्राप्त होता है।[११५] च्यावयिता स्तोमानाम् के आधार पर च्यवन शब्द में च्यु गतौ धातुका योग है। इस निर्वचनका आधार ऐतिहासिक है। ब्राह्मण ग्रन्थों में च्यवन शब्द ऋषि विशेषके लिए प्रयुक्त हुआ है।[११६] यह निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। उपर्युक्त निर्वचनके आधार पर च्यवनको वैदिक ऋषि विशेष माना जाएगा।

(७८) युवा :- इसका अर्थ होता है जवान। निरुक्तके अनुसार-युवा प्रयौति कर्माणि[९४] अर्थात् जो कार्यों का सम्पादन करता है या कर्मों को मिश्रित करता है। इसके आधार पर युवा शब्दमें यु मिश्रणे धातुका योग है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरण के अनुसार यु मिश्रणे धातुसे कनिन् प्रत्यय कर युवन् युवा शब्द बनाया जा सकता है।

(७९) तक्षति :- यह क्रिया पद है। यह करोति कर्म वाले तक्ष् धातुसे निष्पन्न होता है- तक्षति: करोतिकर्मा[९४] यास्क तक्षति क्रियाका प्रकृत सम्बन्धमें अर्थ स्पष्ट करना ही अपना उद्देश्य समझते हैं। तक्ष् धातुसे तक्षति ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार रखता है। इसे पूर्ण निर्वचन नहीं कह कर धातु संकेत कहा जा सकता है।

(८०) रज :- यह अनेकार्थक है। इसका अर्थ- प्रकाश,जल, लोक, रक्त तथा दिन होता है।[११८] निरुक्तके अनुसार-रजो रजते:[९४] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक रज् धातुसे निष्पन्न होता है जो निघण्टु पठित है। रज: शब्दके सभी अर्थोंमें गति विद्यमान

है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार-रज् +असुन्[११९] = रजस् शब्द बनाया जा सकता है। दुर्गाचार्य ने रंज् से रज की व्युत्पत्ति मानकर अपने प्रकाश से द्रव्यों को प्रकाशित करने के कारण रज का अर्थ प्रकाश किया है। इसी प्रकार अपने स्निग्धगुणसे अनुरंजित करने के कारण जल को रज, तथा प्राणियों के उनमें अनुरक्त होने के कारण लोकको रज कहा है।[१२०] लोकमें आर्तव, पराग, रेणु, गुण आदि के अर्थमें रजः का प्रयोग होता है।

(८१) हर :- यह शब्द अनेकार्थक है। ज्योतिः, उदक, लोक, रक्त एवं दिन हरः कहे जाते हैं।[१२१] निरुक्तके अनुसार - हरो हरतेः[१४] अर्थात् हरः शब्द हृञ् हरणे धातुसे निष्पन्न होता है। ज्योतिको हर इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अन्धकार को हरण करती है। उदकको हर इसलिए कहते हैं क्योंकि व्यक्ति उसे हरण करता है लोक को हर इसलिए कहा जाता है क्योंकि लोक क्षीण पुण्य मर्त्यो को स्वर्ग से हरण करता है। रुधिर को हर इसलिए कहते हैं क्योंकि वह क्षीणता का हरण करता है[१२२] तथा दिनको हर इसलिए कहते हैं क्योंकि वह अन्धकारका हरण करता है। हृञ्हरणे धातु से हरः शब्द मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति उपयुक्त रहती है। अनेक अर्थों में इसका प्रयोग गुणसाम्य या क्रिया साम्य के कारण हुआ है। इसे आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित माना जा सकता है। व्याकरणके अनुसार हृञ् हरणे धातुसे अच्[१२३] प्रत्यय कर हरः शब्द बनाया जा सकता है।

(८२) जुहुरे :- यह अनवगत संस्कार वाला पद है। इसका अर्थ होता है यज्ञ करता है। निरुक्तके अनुसार-जुहुरे जुहिवरे[१४] अर्थात् जुहुरे शब्द में हु धातुका योग है। यह निर्वचन स्पष्ट है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। निर्वचनकी प्रक्रिया से इसे अपूर्ण माना जाएगा।

(८३) व्यन्त :- यह अनेकार्थक है। यास्क व्यन्त के अनेक अर्थोंमें मात्र प्रयोगका प्रदर्शन करते हैं। यह वी गतौ धातुसे बनता है। वेदोंमें यह देखना,[१२४] खाना[१२५] एवं अशन[१२६] अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। लौकिक संस्कृतमें वी धातु गतिप्रजननकान्त्यशन खादनेषु अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। यास्कने इसमें धातुका निर्देश नहीं किया है। लेकिन विभिन्न अर्थोंके दर्शनसे वी धातु अनुमेय है। वी गतौ से व्यन्तः में ध्वन्यात्मकता एवं अर्थात्मकता का उचित योग है। यह निर्वचन अस्पष्ट है।

(८४) उस्रा :- यह गो का वाचक है। निरुक्तके अनुसार-उस्रियेति गो-नाम। उस्त्रविणोऽस्यां भोगा:[९४] अर्थात् इससे मनुष्य को अनेक भोग पदार्थकी प्राप्ति होती है। इसके अनुसार उस्रा शब्द में उत्+स्रु धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। उत्+स्रु = उस्रा का अर्थ होगा जिससे दूध स्रवित होता रहता है। व्याकरणके अनुसार वस् निवासे धातु से रक्[१२७] प्रत्यय कर उस्र-उस्रा शब्द बनाया जा सकता है। वस् का उस्र सम्प्रसारण का परिणाम है।[१२८]

(८५) क्राणा :- इसका अर्थ होता है - करते हुए। निरुक्तके अनुसार-क्राणा: कुर्वाणा:[९५] अर्थात् इसके अनुसार इस शब्द में कृ धातुका योग है। यह निर्वचन अर्थात्मक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे अपूर्ण माना जाएगा।

(८६) हरि :- हरि: का अर्थ यहां हरे वर्णका सोम है। सोमलतासे स्रवित सोम हरित वर्ण का होता है। निरुक्तके अनुसार -हरि: सोमो हरितवर्ण:[९५] अर्थात् हरि: सोम को कहते हैं क्योंकि वह हरित वर्णका होता है। हरि: का अर्थ बन्दर भी होता है क्योंकि वह भी हरित वर्णका होता है। अयमपीतरो हरिरेतस्मादेव। इस निर्वचन में यास्क ने दृश्यात्मक आधार का सहारा लिया है तथा हरित वर्णके होने के कारण सोम एवं बंदरको हरि: माना। हरितसे हरि: शब्द बना। हरित वर्ण है जिसमें या जो हरे वर्ण का है। इस अर्थमें सोम तथा बन्दर रूढ़ हो गया। इसे लक्षणा का आधार माना जाएगा। लौकिक संस्कृत में हरि: के व्यापक प्रयोग मिलते हैं। यमराज, वायु, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, विष्णु, सिंह, किरण, घोड़ा, तोता, सांप, वानर, मण्डूक परलोक आदि कई अर्थों में हरि: शब्द प्रयुक्त होते हैं।[१२९] हरित का अर्थ डा. लक्ष्मणस्वरूप ने स्वर्णिम किया है। बन्दर स्वर्णिम वर्ण के प्राप्त होते हैं।[१३०] दुर्गाचार्य ने हरित वर्णके बन्दर (स्वर्णिम रंग वाला) की चर्चा में रामायण के नाम से एक उद्धरण उपस्थापित किया है।[१३१] हरे रंग के बन्दर की चर्चा उपलब्ध नहीं होती। हरि: का अर्थ स्वर्णिम रंग वाला मानने पर सोम एवं बन्दर को स्वर्णिम रंग वाला माना जाएगा जो अधिक संगत है क्योंकि कोष ग्रन्थों के अनुसार हरि: पिंगल या कपिल वर्णका भी वाचक है। व्याकरणके अनुसार हृञ् हरणे धातुसे इ: प्रत्यय[१३२] कर हरि: शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे अस्पष्ट माना जाएगा।

(८७) शिश्नम् :- इसका अर्थ होता है पुरुष जननेन्द्रिय (उपस्थ)। निरुक्तके

अनुसार शिश्नं श्नथते:[९४] अर्थात् यह शब्द वधार्थक श्नथ् धातुसे निष्पन्न होता है। श्नथ् धातु (वधार्थक) निघण्टु पठित है। इसके अनुसार अर्थ होगा जिससे वध किया जाए। डा. लक्ष्मण स्वरूप इसका अर्थ करते हैं- जिससे भेदन किया जाए।[९३] वध का अर्थ भेदन करना प्रकृत में संगत है। अर्थात्मक दृष्टिकोण से इस निर्वचन को उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार शश् प्लुतगतौ या शिञ् निशाने धातु से नक् प्रत्यय[९४] कर शिश्नम् शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसमें व्यंजनगत औदासिन्य है।

(८८) पिता :- पिताका अर्थ होता है-जनक। निरुक्तके अनुसार-पिता-पाता वा पालयिता वा[९५] पिताका अर्थ होता है-रक्षा करने वाला या पालन करने वाला। इसके अनुसार पिता शब्दमें पा रक्षणे या पाल् पालने (रक्षणे) धातु का योग है। पिता पुत्र की रक्षा एवं पालन पोषण करता है। पा धातुसे पिता शब्द मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक औचित्य संगत होता है। इसे भाषावैज्ञानिक आधार पर भी उपयुक्त माना जाएगा। पाल् धातुसे पिता माननेमें अर्थात्मक आधार ही मात्र संगत रहता है। व्याकरणके अनुसार पा धातुसे तृच[९६] प्रत्यय कर पितृ पिता शब्द बनाया जा सकता है। भारोपीय परिवारका यह प्रसिद्ध शब्द है। किंचित् ध्वन्यन्तरता के साथ इस परिवार की अन्य भाषाओं में भी इसका रूप सुरक्षित है-सं. पितृ-ग्रीक Pater, लैटि. Pater, गाथि. fader, अंग्रे. father.

(८९) बन्धु :- यह बन्धनका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-बन्धुः सम्बन्धनात्[९४] अर्थात् सम्बन्धित होने के कारण या एक साथ रहने के कारण बन्धु कहलाता है। इसके अनुसार बन्धुः शब्दमें बन्ध् बन्धने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार बन्ध् बन्धने धातुसे उण्[९६] प्रत्यय कर बन्धुः शब्द बनाया जा सकता है। अंग्रेजी का Bind बन्ध् का समानान्तर है।

(९०) नाभि :- यह नाल का वाचक है। सामान्यतया इसे उदर कूप भी कहा जा सकता है। निरुक्त के अनुसार नाभिः सन्नहनात्[९७] अर्थात् यह शब्द नह् बन्धने धातु से निष्पन्न होता है। क्योंकि नाभिः से सन्नद्ध गर्भ हुआ करते हैं।[९७] अतः एक बन्धनमें होनेके कारण नाभि कहलाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। इसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी संगत माना जाएगा। धातु स्थित ह् का

महाप्राण भ में परिवर्तन हो गया है। लौकिक संस्कृतमें काष्ठ दण्डोंसे जुड़े होने के कारण ही पहिए के बीच वाले भागको भी नाभि कहा जाता है।[१३८] भाषा विज्ञानके अनुसार इसे सादृश्य का परिणाम माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार नह् बन्धने + इञ् (नहोभश्च) प्रत्यय कर नाभिः शब्द बनाया जा सकता है।[१३९]

(९१) ज्ञाति :- ज्ञातिका अर्थ सम्बन्धी होता है। निरुक्तके अनुसार-ज्ञातिः संज्ञानात्९४ अर्थात् अच्छी तरह ज्ञात रहने के कारण ज्ञाति कहा जाता है। इसके अनुसार ज्ञातिः शब्द में ज्ञा अववोधने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार ज्ञा + क्तिन्[१४०] प्रत्यय कर ज्ञातिः शब्द बनाया जा सकता है।

(९२) उत्तान :- उत्तान का अर्थ होता है- चारों ओर फैला हुआ। निरुक्तके अनुसार उत्तानः उततानः ऊर्ध्वतानोवा[१४] अर्थात् चारों ओर फैला हुआ या ऊपर तक फैला हुआ। प्रथम निर्वचनमें उत + तानः दो पदखण्ड हैं। इसमें उत्त स्थित त वर्ण का लोप हो गया है। उत् +तानः = उत्तानः। द्वितीय निर्वचनमें ऊर्ध्व+ तानः दो पद खण्ड हैं। यहां ऊर्ध्व उत् का वाचक है। प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रथम निर्वचन उपयुक्त माना जाएगा। दोनों ही निर्वचनोंमें तन् विस्तारे धातुका योग है। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार उत् +तन् +अण् प्रत्यय कर उतानः शब्द बनाया जा सकता है।

(९३) शंयुः :- इसका अर्थ होता है रोग का शमन तथा भय से मुक्ति। निरुक्त के अनुसार शंयुः सुखंयु अर्थात् शम् सुख को कहते हैं तथा यु का अर्थ होगा उसे प्राप्त कराने वाला। यह अनवगत संस्कार का पद है। इसके दोनों पद खण्डों -(शम्-युः) में क्रमशः शम् तथा यु धातुका योग है। इन दो धातुओं के अर्थ को स्पष्ट करते हुए यास्क कहते हैं- शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम् अर्थात् रोगों को शमन करने वाला तथा भय को दूर करने वाला।। शुक्ल यजुर्वेद के प्रसिद्ध टीकाकार उब्वट ने अपने मन्त्र भाष्य में एवं महीधर ने अपने वेद दीप भाष्य में भी यास्क सम्मत ही इसका अर्थ किया है।- (शु. य. वे ३६।१२) वृहस्पति के पुत्रका नाम भी शंयु था अथापि शंयुर्वार्हस्पत्य उच्यते।[१४] यह निर्वचन अस्पष्ट है। अर्थात्मकता की पुष्टि के लिए दो धातुओं की कल्पना की गयी है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसे पूर्ण संगत नहीं माना जाएगा। पाणिनि प्रक्रिया के अनुसार इसमें शम् + यु[१४१] प्रत्यय माना गया है। यास्क के समय भी यु प्रत्यय

कई अर्थों में प्रचलित थे जैसा कि अध्वर्यु[१४२] इदंयु[१४३] आदि में स्पष्ट है।

(९४) अदिति :- अदितिदेवमाता का वाचक है। निरुक्तके अनुसार-अदिति-रदीना देवमाता।[१४४] अर्थात् यह अदीना क्षयरहिता देवमाता है। इसके अनुसार अदिति: शब्द में-न-अ + दी क्षये धातुका योग है। मुग्धानल अदितिमें वन्धनार्थक दा धातु + भावार्थक ति प्रत्यय का योग मानते हैं-अ-दा + ति =अदिति। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा स्वतंत्र या वन्धन से रहिता।[१४५] दुर्गाचार्य ने अदिति को महर्षि कश्यप की पत्नी एवं आदित्य आदिदेवताओं की माता माना है।[१४६] यास्कका निर्वचन उक्त आधार पर ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। यास्कका निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसमें अद् धातुका योग माना जाएगा। इस आधार पर यास्कके अर्थ की उपेक्षा हो जांएगी। यद्यपि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अदितिका अर्थ अदन करने वाली उपलब्धं होता है।[१४७] अत: भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अद् धातु का योग ही उचित है। व्याकरणके अनुसार दा अवखण्डनेधातु से ति प्रत्यय कर अ+दा +ति = अदिति बनाया जा सकता है।[१४८] यास्क ने एकादश अध्याय के तृतीय पाद में अदिति को मध्यस्थानीय देवताओं में प्रथमगामिनी माना है। यह दक्ष की पुत्री तथा दक्षकी माता है। एक ही में पुत्रत्व और जनकत्व मानने का कारण दोनों का एक दूसरे के प्रति जन्यजनक भाव माना गया है। (प्रात: सन्ध्या-अदिति से सूर्य उत्पन्न हुआ तथा सायं काल के सूर्य से सन्ध्या (अदिति) उत्पन्न हुई। ऋग्वेद में अदिति को पिता तथा पुत्र दोनों कहा गया है।[१४९] यह अदितिकी व्यापकता का परिणाम है।

(९५) एरिरे :- यह आङ् + ईर् गतौ धातुके लिट् के प्रथम पुरुष बहुबचन का रूप है। निरुक्त के अनुसार एरिर इतीर्तिरूपसृष्टोऽभ्यस्त:[१५०] अर्थात् अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। इसके अनुसार इसमें इर् गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(९६) वस्त्रम् :- यह कपड़ाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वस्त्रं वस्ते:[१५१] अर्थात् इससे आच्छादन किया जाता है। इस निर्वचन के अनुसार वस्त्रम् शब्द में वस् आच्छादने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार वस् आच्छादने धातु से ष्ट्रन्[१५०] प्रत्यय कर वस्त्रम् शब्द बनाया जा सकता है।

(९७) तायु :- इसका अर्थ होता है-चोर। निरुक्त के अनुसार तायुरिति स्तेन

नाम। (१) संस्त्यानमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ता:[१४४] अर्थात् निरुक्तकारोंके अनुसार इसमें पाप कर्म एकत्र होता रहता है। इसके अनुसार तायु शब्द में स्त्यै शब्द संघातयो: धातु का योग है। स्त्यै-स्तायु: तायु:। समान स्थानीय ऊष्म वर्ण स् का समान स्थानीय स्पर्श वर्ण के संयोग होने से लोप हो गया है। इसे ध्वनि विकास का परिणाम माना जा सकता है। (२) तस्यतेर्वा स्यात्[१४४] अर्थात् यह शब्द तसु उपक्षये धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह अपने अधर्मपूर्ण व्यवहारके चलते नष्ट हो जाता है।[१५१] प्रथम निर्वचनको ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे संगत माना जा सकता है। द्वितीय निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। द्वितीय निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत नहीं है। व्याकरणके अनुसार ताय् धातुसे उण् प्रत्यय कर तायु: शब्द बनाया जा सकता है।

(९८) भर :- यह संग्रामका वाचक है। निरुक्तके अनुसार भरइति संग्राम नाम (१) भरतेर्वा[१४४] अर्थात् भर: शब्द में भृ भरणे धातुका योग है, क्योंकि युद्धमें लाभ भी होता है।[१२५] (२) हरतेर्वा[१४४] अर्थात् युद्धमें हानि भी होती है। धन, जीवन आदि का प्रचुर हरण होता है। इसके अनुसार यह शब्द हृ हरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। हृ धातुसे हर, पुन: वर्ण विपर्यय के द्वारा ह का भ होकर भर: शब्द बनता है। वैदिक संस्कृत में धातु स्थित ह का कहीं कहीं भ वर्ण में परिवर्तन पाया जाता है। यास्क भ्राता शब्द के निर्वचन में हृ धातु की कल्पना इसीलिए करते हैं।[१५३] कात्यायन ने भी लौकिक संस्कृतके ह को वैदिक भ ही माना है।[१५४] लगता है भ प्राचीन रूप रहा होगा। यास्क के समय में हृ एवं भृ दोनों का प्रचलन था। लौकिक संस्कृत में हृ ही मूल माना जाता है। प्राकृत भाषा में भी संस्कृत की ख घ थ ध भ ध्वनियां ह में परिवर्तित हो जाती है।[१५५] वैदिक संस्कृत में जबकि ह ही भ में परिवर्तित पाया जाता है। यास्क का प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। द्वितीय निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। द्वितीय निर्वचनमें ध्वनि परिवर्तन की दिशा स्पष्ट होती है। डा. वर्मा के अनुसारभी यह निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुकूल है।[१५६] संस्कृत व्याकरणके अनुसार भृञ् भरणे +अच्[१५७] प्रत्यय कर भर: शब्द बनाया जा सकता है।

(९९) नीचै::- इसका अर्थ होता है-नीचे। निरुक्तके अनुसार -नीचैर्निचितं भवति[१४४] अर्थात् निश्चित रूपमें नीचे रहता है या नीचे एकत्र रहता है।इसके अनुसार इस शब्दमें नि+चिञ् चयने धातुका योग है।इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक

आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार यह अव्यय माना गया है। इसे नि + चित्र् +डैस् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।[१५८]

(१००) नीचायमानम् :- इसका अर्थ होता है-नीचे गया हुआ। निरुक्तके अनुसार -निचायमानं नीचैरयमानम्[१४४] अर्थात् नीचे जाते हुए। इसके अनुसार इसमें नीचै: +(अयमान) अय् गतौ धातुका योग है। नीच +अयमान = नीचायमानम्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा।

(१०१) उच्चै :- यह ऊंचा अर्थके लिए प्रयुक्त होता है। निरुक्तके अनुसार उच्चैरूच्चितं भवति:[१४४] अर्थात् ऊपर में गया हुआ होता है। इसके अनुसार इस शब्द में उत् + चित्र् चयने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार यह अव्यय शब्द है। इसे उत् +चित्र् +डैस्[१५९] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।

(१०२) श्येन :- इसका अर्थ होता है बाजपक्षी। निरुक्त के अनुसार श्येन: संशनीयं गच्छति[१४४] अर्थात् प्रशंसनीय गतिसे युक्त होनेके कारण श्येन कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें शंस् स्तुतौ धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। यह अर्थात्मक महत्त्व रखता है। यास्क निरुक्तके चतुर्दश अध्याय में श्येन का अर्थ आदित्य एवं आत्मा करते हैं। तदनुसार श्येन आदित्यो भवति श्यायतेर्गतिकर्मण:[१६०] अर्थात् श्येन आदित्य को कहते हैं क्योंकि वह गतिकर्मा है। इसके अनुसार श्येन शब्दमें स्यै गतौ धातुका योग है। श्येन आत्मा भवति श्यायतेर्ज्ञानकर्मण:[१६०] अर्थात् श्येनका अर्थ आत्मा होता है क्योंकि वह ज्ञान कर्मा है। इसके अनुसार इस शब्दमें ज्ञानार्थक श्यै धातुका योग है। ये दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। वाजपक्षीके अर्थमें भी श्यै गतौ धातुसे इसका निर्वचन मानना ज्यादा संगत होगा। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यास्कके अंतिम दोनों निर्वचन सर्वथा संगत हैं। व्याकरणके अनुसार श्यैङ् गतौ +इनच्[१६१] प्रत्यय कर श्येन: शब्द बनाया जा सकता है।

(१०३) यूथम् :- यह समूह का वाचक है। निरुक्त के अनुसार-यूथं यौते: समायुतं भवति[१४४] अर्थात् इसमें लोग मिले रहते हैं। इसके अनुसार यूथम् शब्द में यु मिश्रणे धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा

विज्ञानकी दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। डा. वर्मा भी इस निर्वचन को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त मानते हैं। इनके अनुसार भी इस निर्वचन में ध्वन्यात्मकता एवं अर्थात्मकता का सर्वथा निर्वाह हुआ है।[१६२] व्याकरणके अनुसार यु मिश्रणे धातु से थ प्रत्यय[१६३] कर यूथम् शब्द बनाया जा सकता है।

(१०४) जरते :- इसका अर्थ होता है-स्तुति करता है या उपदेश करता है- जरते गृणाति[१६४] अर्थात् यह शब्द गृ स्तुतौ धातुके योगसे बना है। गृ धातुसे निष्पन्न गरिते शब्द ही जरिते हो गया है। इस निर्वचन में धातु स्थित ग का ज वर्ण में परिवर्तन हुआ है। अर्थात्मक दृष्टिकोण से यह पूर्ण उपयुक्त है। इसे जृ या जर् धातु से निष्पन्न मानना भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संगत होगा। ग ध्वनि का ज में परिवर्तन भी भाषा वैज्ञानिक महत्त्व रखता है। अभ्यास में तो अभी भी वह दृश्य होता है यथा गद् जगाद् गम् जगाम आदि।

(१०५) मन्दी :- मन्दी का अर्थ होता है-स्तुत्य। मन्दते: स्तुतिकर्मण:[१६५] अर्थात् यह शब्द स्तुत्यर्थक मन्द धातु से व्युत्पन्न है, क्योंकि वह स्तुतिके योग्य होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। प्रकृतमें मन्दी शब्द इन्द्रके लिए प्रयुक्त हुआ है जिसके अनुसार इन्द्र की स्तुति प्राधान्येन निर्दिष्ट है। इन्द्रकी स्तुति अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक हुई है।[१६६] व्याकरणके अनुसार मन्द +इन् =मन्दी शब्द बनाया जा सकता है।

(१०६) अपीच्यम् :- इसका अर्थ होता है पृथक्। निरुक्त के अनुसार (१) अपीच्यमपचितम् अर्थात् पृथक् करके रखा हुआ। इसके अनुसार इस शब्द में अप् + चि चयने धातु का योग है। (२) अपगतम् अर्थात् पृथक् होकर गया हुआ। इसके अनुसार इस शब्द में अप + गम् धातुका योग है। (३) अपिहितम् अर्थात् पृथक् धारण किया हुआ। इसके अनुसार इस शब्दमें अपि + धा धातुका योग है। (४) अन्तर्निहितम्[१६७] अर्थात् अन्दर रखा हुआ। इसके अनुसार इस शब्दमें अन्त: + धा धातुका योग है। सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे सभी निर्वचन अपूर्ण हैं। भाषा विज्ञान के अनुसार कोई भी निर्वचन पूर्ण संगत नहीं है।

(१०७) दंसय:- इसका अर्थ होता है कर्म। निरुक्तके अनुसार दंसय: कर्माणि। दंसयन्ति एनानि[१६८] अर्थात् इन कर्मोंको लोग सम्पन्न करते हैं। इसके अनुसार इस शब्द में उपक्षयार्थक दंस् धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक

आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। लौकिक संस्कृत में दंस् धातु दर्शन एवं डंसना अर्थोंमें प्रयुक्त है।[१६५]

(१०८) तूताव :- तूताव का अर्थ होता है बढ़ता है। इसके अनुसार इसमें तु वृद्धौ धातुका योग है। इसके निर्वचनमें यास्कने तुताव कह कर धातुको स्पष्ट किया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(१०९) अंहति :- इसका अर्थ होता है, पाप या विपत्ति। निरुक्तके अनुसार अहंति श्चांहश्चांहुश्च हन्तेः अर्थात् अंहति, अंहः एवं अंहु ये तीनों शब्द समान अर्थ रखने वाले हैं तथा हन् धातुसे निष्पन्न होते हैं। निरूढोपधात् विपरीतात[१४४] अर्थात् हन् की उपधा को निकालकर एवं विपरीत कर ये शब्द बनते हैं। हन् -उपधा निकालने पर हन् -ह+अन् - विपरीत करने पर अन् +ह् =अहंति, अंह या अंहुः। इस निर्वचन का अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यास्कने इसकी सिद्धिमें धातुकी खींचातानी की है।

(११०) चयसे :- इसका अर्थ होता है नाश करते हो। यह मध्यम पुरुष एक वचन का रूप है तथा अनवगत संस्कार का पद है। यास्क ने चयसे-चातयसि।[१४४] चातयसि अर्थात् नाशयसि के द्वारा चयसे का मात्र अर्थ ही स्पष्ट होता है।[१६६] इसका ध्वन्यात्मक आधार अस्पष्ट है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे अपूर्ण माना जाएगा। चातयसि के आधार पर इसमें चत् धातु का अनुमान लगाया जा सकता है जो हिंसा अर्थ में होना चाहिए। लेकिन धातु पाठ में इस अर्थ में चत् धातुका निर्देश नहीं प्राप्त होता। वैदिक कालमें इस प्रकार के धातु रहे होंगे।

(१११) पियारुम् :- इसका अर्थ होता है - हिंसक। निरुक्तके अनुसार - पियारुम् पीयुम्। पीयति हिंसाकर्मा[१४४] अर्थात् यह शब्द हिंसार्थक पीय् धातुसे व्युत्पन्न है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। पीयुः पियारु समानार्थक है। दोनों में पीय् धातुका योग है। इसका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता। डा. लक्ष्मण स्वरूप पीय् को उपहास करना अर्थ मानते हैं।[१६७]

(११२) वियुते :- इसका अर्थ होता है द्यु लोक एवं पृथ्वी लोक। निरुक्तके अनुसार वियुते द्यावापृथिव्यौ। वियवनात्[१४४] अर्थात् ये दोनों लोक एक दूसरेसे पृथक् रहते हैं। इसके अनुसार वियुते शब्दमें वि +यु विमिश्रणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे अनुकूल

माना जायगा।

(११३) समानम् :- यह सदृशका वाचक है। निरुक्तके अनुसार समानं सम्मान मात्रं भवति[१४४] अर्थात् जिसकी माप समान हो। इसके अनुसार-समम् + मा धातु का योग इस शब्दमें स्पष्ट होता है। मा धातु माने या परिमाण अर्थमें प्रयुक्त होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार सम् + आ + अन् + ल्यु = समानम् बनाया जा सकता है।[१६८]

(११४) मात्रा :- इसका अर्थ होता है माप। निरुक्तके अनुसार -मात्रा मानात्[१४४] अर्थात् माप होनेके कारण मात्रा कहलाती है। जिसे मापी जाय उसे मात्रा कहेंगे। इसके अनुसार मात्रा शब्दमें माङ् माने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार भी माङ् माने धातु से त्रन्[१६९] प्रत्यय कर मात्रा शब्द बनाया जा सकता है। मात्रा शब्द परिच्छद, कर्ण विभूषा, अक्षरावयव, मान आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।[१७०]

(११५) अन्त :- इसका अर्थ होता है समाप्त। निरुक्तके अनुसार अन्तोऽतते:[१४४] अर्थात् यह शब्द अत् सातत्य गमने धातुसे निष्पन्न होता है। क्योंकि नजदीक की चीजें प्राप्त हुई होती है। यह आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार अम् गतौ + तन् प्रत्यय कर अन्त: शब्द बनाया जा सकता है। या अत् वन्धने से अच् प्रत्यय[१७१] कर इसे बनाया जा सकता है। अंग्रेजी का हें शब्द इसी के समान है।

(११६) ऋधक् :- यह शब्द अनेकार्थक है। पृथक् भावके अर्थमें इस शब्दका विवेचन करते हुए यास्क कहते हैं-ऋधगिति पृथग्भावस्य प्रवचनं भवति अर्थात् ऋधक् पृथग्भाव का वाचक है। पुन: समृद्धि के अर्थमें विवेचन करते हुए वे कहते हैं- अथात्यृध्नोत्यर्थे दृश्यते[१४४] अर्थात् ऋधक् शब्दका अर्थ समृद्धि भी होता है। यास्कने विभिन्न अर्थोंमें इसका निर्वचन प्रस्तुत नहीं किया है। समृद्धिके अर्थमें प्राप्त विवेचनसे स्पष्ट होता है कि यह शब्द ऋध् समृद्धौ धातुसे निष्पन्न होता है। इस आधार पर यह भी स्पष्ट होता है कि समृद्धिके अर्थमें प्रयुक्त निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्वसे युक्त हैं। प्रथम पृथक्वाची ऋधक् को अपूर्ण निर्वचन माना जाएगा। द्वितीय निर्वचन भाषा विज्ञान की दृष्टि से उपयुक्त है।

(११७) उदात्तम् :- उदात्त स्वरभेद को कहते हैं। निरुक्तके अनुसार तीव्रार्थतरमुदात्तम्[१४४] अर्थात् जिसे बोलने में अर्थमें तीव्रता होती है उसे उदात्त स्वर कहते हैं लोक में प्रयुक्त उदात्त शब्द उत्कृष्ट का वाचक है अर्थात् उदात्त का अर्थ है तीव्रार्थतर उत्कृष्ट गुणयुक्त। स्वरोदात्त में अर्थमें तीव्रता रहती है। यास्क इसका निर्वचन प्रस्तुत नहीं कर मात्र अर्थ ही स्पष्ट करते हैं। निरुक्तमें उदात्त को प्रधान भी माना गया है। शुक्लयजु: प्रातिशाख्य के अनुसार उच्च ध्वनिसे उच्चरित स्वर उदात्त कहलाता है।[१७२] प्रसिद्ध भाष्यकार उष्वट वहीं पर इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं- गात्रों के ऊर्ध्वगमनसे जो स्वर निकलता है वह उदात्तसंज्ञक होता है।[१७३] आचार्य पाणिनि भी शुक्लयजु: प्रातिशाख्यके सूत्रको ग्रहण करते हैं।[१७४] जिसकी वृत्तिमें भट्टोजिदीक्षितका कहना है कि तालु आदि समान भाग वाले स्थानों में ऊर्ध्व भाग में निष्पन्न स्वर उदात्त संज्ञक होता है।[१७५] निर्वचनकी प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञान की दृष्टि से यास्कका यह निर्वचन अपूर्ण है। व्याकरणके अनुसार उत + दा + क्त प्रत्यय कर उदात्त शब्द बनाया जा सकता है।[१७६] उत् उच्चै आदीयते उच्चार्यते इति उदात्तम्।

(११८) अनुदात्तम् :- यह स्वर भेद है। निरुक्तके अनुसार अल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तम्[१४४] अर्थात् कम बल दिए गए अर्थ में अनुदात्त होता है। यास्क ने अनुदात्त का मात्र अर्थ स्पष्ट किया है। जिसे बोलनेमें अर्थ में अल्पता रहे उसे अनुदात्त कहेंगे। अनुदात्तका लोक प्रयुक्त अर्थ होगा हीनगुणसे युक्त। अर्थात् अनुदात्त गौणका वाचक है शुक्लयजु: प्रातिशाख्यके अनुसार नीची ध्वनिसे उच्चरित स्वर अनुदात्त कहलाता है।[१७७] उव्वट इसकी व्याख्या में कहते हैं- गात्रों के अधोगमनसे जो स्वर निष्पन्न होता है उसे अनुदात्त कहते हैं।[१७८] पाणिनि इसके लिए शुक्ल यजु: प्रातिशाख्य के सूत्र को ग्रहण करते हैं।[१७९] व्याकरणके अनुसार अन् + उ + दा + क्त प्रत्यय कर अनुदात्त शब्द बनाया जा सकता है।[१७६]

(११९) ररिवान् :- इसका अर्थ होता है- दान देते हुए। निरुक्तके अनुसार- ररिवान् रातिरभ्यस्त:[१४४] अर्थात् इस शब्द में रा दाने धातुका योग है। रा दाने धातुका द्वित्व होकर ररिवान् हो गया है। इसमें क्वसु प्रत्यय हैं। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(१२०) अज: :- यह वकराका वाचक है। निरुक्तके अनुसार अजा अजना:[१४४] अर्थात् गमन युक्त होने के कारण अज कहलाता है। इस निर्वचनके अनुसार अज

शब्दमें अज् गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जाएगा। अजा: शब्द के निर्वचनमें अजनना: भी निरुक्तमें प्राप्त है इसके अनुसार अ +अज् प्रादुर्भावे धातुका योग माना जाएगा। अजके वकराके अतिरिक्त शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, रघुपुत्र, कामदेव आदि कई अर्थ होते हैं।[१८०] व्याकरणके अनुसार वकरा वाचक अजको अज् गतौ धातुसे अच्[१८१] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। ब्रह्मा, विष्णु आदिके अर्थमें न-अ +जन्+ड प्रत्यय कर अज: शब्द बनाया जा सकता है।[१८२]

(१२१) शरद् :- यह ऋतु वाचक शब्द है। आश्विन कार्तिक महीनेमें शरद् ऋतु होती है। निरुक्तके अनुसार (१) शृता अस्यामोषधयो भवन्ति अर्थात् इस शरद् ऋतुमें औषधियां (पेड़ पौधे) पक जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें शृ धातुका योग है। (२) शीर्णा आप इतिवा[१४४] अर्थात् इस ऋतुमें जल कम हो जाते हैं।[१८३] इसके अनुसार भी इस शब्दमें शृ धातुका योग है। डा. लक्ष्मण स्वरूपने शीर्णा आप: का अर्थ जलप्लावन से युक्त किया है।[१८४] जो पूर्ण उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। यास्क के दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार शृ हिंसायाम् धातुसे अत्[१८५] प्रत्यय कर शरद् शब्द बनाया जा सकता है।

(१२२) भ्राता:- इसका अर्थ होता है भाई। निरुक्तके अनुसार-भ्राता भरतेहरति कर्मण: अर्थात् भ्रातृ शब्द भृञ् हरणे धातु से निष्पन्न होता है क्योंकि वह भाग हरण करता है। हरतेर्भागं भर्तव्यो भवतीतिवा[१४५]वह अपना भाग पितृधन का हिस्सा हरण करता है या उसे भरण पोषण करना पड़ता है। इसके अनुसार भ्राता शब्दमें भृञ् भरणे धातुका योग है।इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यह पूर्णरूप से आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है। यह निर्वचन सामाजिक दायित्व को भी स्पष्ट करता है। भृ हरणे की उपलब्धि लौकिक संस्कृत में नहीं होती। लौकिक संस्कृतमें हरणार्थक हृ धातुका प्रयोग होता है। भृ धातु हरणार्थक प्राचीन धातु है। इसे वैदिक धातु कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं। यास्कके कालमें यह भरणार्थक एवं हरणार्थक था। भृ धातु का बादमें अर्थ संकोच हुआ है।यास्क प्रतिपादित दोनों अर्थ आजभी भ्रातृ शब्द में सुरक्षित हैं। व्याकरण के अनुसार भृ भरणे धातुसे तृच् प्रत्यय कर भ्रातृ-भ्राता शब्द बनायाजा सकता है।भ्रातृ शब्द भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें भी किंचित् ध्वन्यन्तरके

साथ सुरक्षित है- संस्कृत-भ्रातृ, ग्रीक Phrater, लैटिन Frater, गाथिक Brothor, अंग्रेजी Brother.

(१२३) सप्त-पुत्रम् :- यह सूर्य की सात रश्मियोंका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-सप्तपुत्रं सप्तमपुत्रं सर्पणपुत्रमिति वा[१४४] अर्थात् सूर्यकी रश्मियां ही सप्तमपुत्र होने से सर्पणपुत्रको सप्तपुत्र कहा गया। इसमें सृ गतौ धातुका योग है। सप्तपुत्र सामासिक शब्द है। सप्त पद क्रमशः सप्तम एवं सर्पणका वाचक है ऐतिहासिकोंके अनुसार आदित्य को ही सातवां पुत्र कहा जाता है। ब्राह्मणग्रन्थोंसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है।[१४९] इस निर्वचनका आधार ऐतिहासिक है। सामासिक आधार भी इसका उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे भी यह उपयुक्त है। हिन्दी भाषाका सपूत शब्द सप्त पुत्र से निकला जान पड़ता है। व्याकरणके अनुसार सप्त + पुम् + त्र = सप्त पुत्रम् माना जा सकता है।

(१२४) सप्त :- यह संख्या वाचक शब्द है। इसका अर्थ होता है-सात। निरुक्तके अनुसार सप्तसृता संख्या[१४४] अर्थात् यह छः संख्याओं से आगे गयी होती है। इसके अनुसार सप्त शब्दमें सृप्तौ धातुका योग है। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे किंचित् शिथिल है। व्याकरणके अनुसार सप् + तुट्[१८७] प्रत्यय कर सप्त शब्द बनाया जा सकता है। भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओंमें भी किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ सप्त शब्द उपलब्ध होता है। संस्कृत सप्त अवे. हप्त, ग्रीक hepta लैटिन septen ऐ.से. seofen अंग्रेजी-seven.

(१२५) चक्रम्:- चक्रम् का अर्थ होता है चक्का। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं। :- (१) चक्रं चकतेर्वा अर्थात् यह शब्द चलनार्थक चक् धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह गमन करता है या चलता है। (२) चरतेर्वा अर्थात् इस शब्दमें चर् गतौ धातुका योग है क्योंकि यह गमनशील है। (३) क्रामतेर्वा[१४४] अर्थात् इस शब्दमें गत्यर्थक क्रम् धातुका योग है। इस आधार पर इसका अर्थ होगा चलने वाला। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जाएगा। अन्य निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। इस शब्दको कृ धातुसे भी व्युत्पन्न माना जा सकता है। व्याकरणके अनुसार कृ धातुसे घञर्थे कः[१८८] कर चक्रम् शब्द बनाया जा सकता है।चक्र शब्दकाअर्थ चक्काके अतिरिक्त राज्य, सेना आयुधविशेष, चक्रवाकपक्षी, समूह, चाक, भ्रमर आदि भी होते हैं।[१४९] चक्र के अन्य अर्थों

में सादृश्य का आधार दृष्टिगत होता है।

(१२६) नाम :- निरुक्तमें सप्तनामा शब्द में आये नाम पद का निर्वचन करते हुए यास्क कहते हैं-सप्तनामा, सप्तास्मैरश्मयो रसान्नमयन्ति सप्तैनमृषयः नमन्ति स्तुवन्तीति सप्तनामन्। यहां नाम शब्दमें नम् धातुका स्पष्ट योग प्राप्त है नम् धातु झुकना तथा स्तुति करना अर्थका द्योतक है। वहीं पर यास्क पुनः कहते हैं- इदमपीतरन्नामेतस्मादेव अर्थात् दूसरे अर्थमें प्रयुक्त नाम भी इसी नम् धातुसे बनते हैं। यह अभिधान या संज्ञा का वाचक है। अभिसन्नामात्[१४४] अर्थात् नाम शब्द झुकना अर्थ वाला नम् धातुसे बना है। क्योंकि अपने गुणोंको प्रकट करनेके लिए सम्मुख होकर जो झुकता है वही नाम है-(स्वम् अर्थं प्रत्याययितुम् आभिमुख्येन सन्नमति इति नाम) तात्पर्य यह है कि नाम में गुण सन्निहित रहता है।[१९०] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यह आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जाएगा। यह नामकी यथार्थप्रक्रिया का प्रदर्शक है। व्याकरणके अनुसार णम् प्रह्णत्वे धातु से ड.[१९१] प्रत्यय कर नाम शब्द बनाया जा सकता है। उच्चारणान्तरके साथ यही शब्द भारोपीय परिवारकी लै.मे Nomen तथा अंग्रेजी भाषा में Name के रूप में उपलब्ध होता है।

(१२७) सम्वत्सर :- इसका अर्थ होता है साल या वर्ष या ग्रीष्म, वर्षा तथा हेमन्त तीन ऋतुओं वाला। निरुक्तके अनुसार - सम्वत्सरः संवसन्तेऽस्मिन्भूतानि[१४४] अर्थात् इसमें सभी प्राणी अप्राणी (भूतजात) रहते हैं। इसके अनुसार सम्वत्सर शब्दमें सम् + वस् निवासे धातुका योग है- सम् + वस् + सर् = सम्वत्सरः। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार सम् + वस् + सर प्रत्यय कर सम्वत्सरः शब्द बनाया जा सकता है।[१९२]

(१२८) ग्रीष्म :- यह ऋतु वाचक शब्द है। ज्येष्ठ एवं आषाढ़ में ग्रीष्म ऋतु रहती है। निरुक्तके अनुसार -ग्रीष्मो ग्रस्यन्तेऽस्मिन् रसाः[१४४] अर्थात् इस ऋतुमें रस (जल) सूर्य के द्वारा सुखा दिये जाते हैं।[१९३] इस निर्वचनके अनुसार ग्रीष्म शब्दमें ग्रस् अदने धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार ग्रस् अदने धातुसे मक्[१९४] प्रत्यय कर ग्रीष्मः शब्द बनाया जा सकता है।

(१२९) वर्षा :- यह ऋतु वाचक शब्द है। इसका अर्थ होता है प्रावृट् या पावस। श्रावण एवं भाद्रपद मास में वर्षा ऋतु रहती है। निरुक्तके अनुसार-वर्षा वर्षत्याशु पर्जन्य:[१४४] अर्थात् इस ऋतुमें मेघ जल्दी बरसता रहता है। इस निर्वचनके अनुसार वर्षा शब्दमें वृष् सेचने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार वृष् या वर्ष् धातुसे अच्[१९५] प्रत्यय + टाप् प्रत्यय कर वर्षा शब्द बनाया जा सकता है।

(१३०) हेमन्त :- यह ऋतु वाचक शब्द है। अग्रहण एवं पौष मास में हेमन्त ऋतु रहती है।[१९६] निरुक्तके अनुसार - हेमन्तो हिमवान्[१४४] अर्थात् हेमन्त हिमसे युक्त होता है। इस ऋतुमें हिमपात अधिक होता है। इसके अनुसार हेमन्त शब्द में हिम + अन्त शब्द खण्ड है। अन्त मतुप् का वाचक प्रत्यय है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार हन् + झच् =हिरादेश मुडागम एवं गुण करने पर हेमन्त शब्द बनाया जा सकता है।[१९७]

(१३१) हिमम् :- यह वर्फ का वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) हिमं पुनर्हन्तेर्वा[१४४] अर्थात् यह ओषधियों एवं वनस्पतियों को मारता है, जीर्ण कर देता है।[१९८] इसके अनुसार इस शब्दमें हन् धातुका योग है। (२) हिनाते र्वा[१४४] अर्थात् यह यवादि अन्नको तृप्त करता है। इस ऋतुमें यवादि अन्न काफी बढ़ते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें हि गतौ, वृद्धौ धातुका योग है। दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार दोनों उपयुक्त माने जायेंगे। व्याकरणके अनुसार हन् हिंसागत्यो: धातुसे मक्[१९९] प्रत्यय कर या हि गतौ वृद्धौच धातुसे मन्[२००] प्रत्यय कर हिम् शब्द बनाया जा सकता है।

(१३२) अनर्वम् :- इसका अर्थ होता है जो अन्यत्र न गया हो। निरुक्तके अनुसार अनर्वमप्रत्यृतमन्यस्मिन्[१४४] अर्थात् जो दूसरी जगह गया न हो। इसके अनुसार अनर्वम् शब्दमें न - अन् + ऋ गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार न - अ + ऋ गतौ + वनिप् प्रत्यय[२०१] कर अनर्व शब्द बनाया जा सकता है।

(१३३) अर:- इसका अर्थ होता है रथ की नाभि में लगा चक्रदण्ड। निरुक्तके अनुसार-अरा: प्रत्यृता नाभौ[१४४] अर्थात् ये रथकी नाभिमें प्रतिगत होते हैं। इस निर्वचनके

अनुसार अरः शब्दमें ऋ गतौ धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणकेअनुसार ऋ गतौ धातुसे अच्[२०१] प्रत्यय कर अरःशब्द बनायाजा सकता है।

(१३४) षट् :- यह संख्या वाचक शब्द है। इसका अर्थ होता है छः। निरुक्तके अनुसार षट् सहतेः[१४४] अर्थात् यह पंच संख्याको पराभूत करके स्थित है।[२०३] इसके अनुसार षट् शब्दमें सह् मर्षणे धातुका योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवँ अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ भारोपीय परिवार की अन्य भाषाओंमें भी यह सुरक्षित है-संस्कृत षट्, अवे. क्वश्, ग्रीक-Hex, लैटिन Sex, अंग्रेजी Six.

(१३५) मास :- इसका अर्थ होता है- महीना। निरुक्तके अनुसार मासाः मानात[१४४] अर्थात् इससे सम्वत्सरका माप होता है। वारह मासका एक सम्वत्सर होता है। इसके अनुसार इस शब्द में मा माने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार मसि परिमाणे धातुसे घञ् प्रत्यय कर मासः शब्द बनाया जा सकता है।[२०४]

(१३६) प्रधि :- इसका अर्थ होता है-हाल या परिधि। निरुक्तके अनुसार-प्रधिः प्रहितो भवति[१४४] अर्थात् यह चक्रमें प्रहित (निहित) होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें प्र +धा धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार प्र +डुधाञ् धारणे +किः प्रत्यय कर प्रधिः शब्द बनाया जा सकता है।[२०५]

-: संदर्भ संकेत :-

१.अथ यानि अनेकार्थानि एक शब्दानि तानि अतोऽनुक्रमिष्यामः। अनवगतसंस्कारांश्च निगमान्। तत् ऐकपदिकमित्याचक्षते - नि. ४।१, २. ह्यग्रहोर्भश्छन्दसि- (अष्टा.३।१।८४का)वार्तिक, ३. नि. ४।१, ४. अत्र अन्तेर्जहातेश्च सन्देह इतिभाष्यकारेणा वधृतं जघान्नेत्यर्थः नि.दु.वृ. ४।१,५.मर्यो मरणधर्मा-नि.दु.वृ.४।१,६. वाचकमुचित्सम स्मात् घहस्मत्व ईम्मर्याअरेस्विन्निपाताश्चेत् शु.य प्रा. २।१६, ७. नि. ३।३, ८. मर्यादा सीमनि स्थितौ मे.दि.- ७७।३७, ९. शब्दकल्पद्रुम - भा. ३।पृ.६४३, १०. यस्मात् इयं निधीयते नीचैर्धार्यते पक्षिग्रहणार्थम् नि.दु.वृ. ४।१, ११. यो वालमयः स्नायुमयो वा पाशः समूहः पक्षिग्रहणार्थः स पाश्येति उच्यते- नि.दु.वृ. ४।१।, १२.

तेन हि पाश्यते पक्षी वध्यत इत्यर्थः नि.दु.वृ. ४।१, १३. The Etymologies of Yaska, p. ४८, १४. अष्टा. ३।३।१९, १५. पाशादिभ्यो यः-अष्टा. ४।२।४९, १६. सुपर्णः स्वर्णचूड़े च गरूड़े कृतमालके। सुपर्णा कमलिन्यां च वैनतेयस्य मातरि। मेदि. ५१।८५-८६, १७. उणा ३।६, १८. The Etymologies of Yaska, P.७७, १९. चक्षेः शिच्च- उणा. १।१९९, २०. अष्टा. २।४।५४ पर वा. चक्षिङः क्शाञ्ख्याञौ (महाभाष्य) द्र., २१. हला. -पृ. ४२९, २२. स्पृशेः श्वण् शुचौ च-उणा. ५।२७, २३. उणा २।१२ (द्र. तत्ववोधिनी टीका), २४. नि. ४।१, २५. अष्टा. २।१।१३४, २६. The Etymologies of Yaska, p.९२, २७. उणा. ४।११८, २८. दमेर्डोस्- उणा. २।९६, २९. नि. ४।१, ३०. स च गुदः विषितः व्याप्तः स पुरीषेण भवति- नि.दु.वृ. ४।१, ३१. नि. ४।१, ३२. उणा. १।१४५, ३३. शकेर्ऋतिन् -उणा. ४।५८, ३४. नि. ४।१, ३५. अष्टा. ३।३३।९४, ३६. अष्टा. ३।३।१७४, ३७. सर्वस्य हि मांसे मनः सीदति नि.दु.वृ. ४।१, ३८. मने दीर्घश्च-उणा. ३।६४, ३९. उणा ४।१८९, ४०. अष्टा. ३।३।१९, ४१. अमिचि. - उणा. ४।१६४, ४२. वैदिक वाङ्मयमें भाषा चिन्तन पृ. ६०, ४३. त्राणि मध्यमानि पदानि मे इह न इति-मम गृहेनास्ति यद्धनम्-नि.दु.वृ. ४।१, ४४. नि. २।१, ३४. नि. ४।१, ४५. नि. ९।१, ४६. अद्रयोद्रुमशैलार्काः अम.को. ३।३।१६३, ४७. अदि शदिभूशुभिभ्यः क्रिन्- उणा ४।६५, ३४. नि. ४।१, ४८. उणा. ४।१८९, ४९. अभ्येति अभ्यागच्छति तिथिषु पौर्णमास्याद्यासु पर कुलानि यजमानकुलानीत्यतिथिः- नि. दु.वृ. ४।१, ५०. ऋतन्यंजि.- उणा. ४।२, ५१. दुरवा दुस्तर्पा- उक्तञ्च कुटुम्व तन्त्राणि हि दुर्भराणि- नि.दु. वृ. ४।१, ५२. The Etymologies of Yaska, p.७, ५३. ऋ. १०।११०।५, ५४. ते हि हरन्ति धान्यादीनि-नि.दु.वृ. ४।१, ५५. मूषोऽप्येतस्मादेव-नि. ४।१, ५६. उणा. २।४२, ५७. ऋ. १।१८७।१ नि. ९।३, ५८. थितो सामानाम् सविश्तो थित्यो मांम्मश्यो अस्त्वइथ्याइ हुनूत गएथ्याइ अवे.-९।१० (त्रितः सामानां शविष्ठस्त्रित्यो माम्यर्त्यो अस्थन्वत्यै सुनुतजगत्यै), ५९. इषिरेण त्वां प्रति सवात्मना गतेनेत्यर्थः नि.दु.वृ. ४।१, ६०. तानि हि शीतं विवासयन्ति नाश्यन्तीत्यर्थः - नि. दु. वृ. ४।१, ६१. जनेररष्टच -उणा. ५।३८, ६२. मे.को. १३४।१५३,६३. नि. ९।३, ६४. उणा. ३।१२३, ६५. नि. ४।२, ६६. ततेन चर्मणा नद्धं तितउ- नि.दु.वृ. ४।२, ६७. क्षुद्रच्छिद्रशतोपेतं चालनं तितउः स्मृतः-

कात्यायन, ६८. तनोतेर्डउः सन्वच्च-उणा. ५।५२, ६९. नि. ११।२, ७०. ऋज्रेन्द्र. उणा. २।२८, ७१. ये हि लक्ष्मीवन्तोभवन्ति ते स्वयमात्मानं न श्लाघन्ते नि.दु.वृ. ४।२, ७२. लक्षेर्मुट्- उणा. ३।१६०, ७३. श्रयतेः स्वाङ्गेशिरः किच्च-उणा. ३।१९४, ७४. शिरः प्रधाने सेनाग्रे शिखरे मस्तकेऽपि च-मेदि. १७१।३१, ७५. शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते। विकारमस्यार्येषुभाषयन्तेशवइति-नि. २।१, ७६. अष्टा. ३।१।१३४, ७७. शुसिचिमीनां दीर्घश्च-उणा. २।२६, ७८. भवेद्वर्णागमाद्ध्वंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् गूढोत्मा वर्ण विकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरम्।। अष्टा. ६।३।१०९ की व्याख्या के लिए द्र. (सि.कौ.), ७९. The Etymologies of Yaska, p.९३, ८०. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, ८१. वहिश्रियु.-उणा. ४।५१, ८१. नि. दु.वृ. ४।२, ८३. कनीनकेव विद्रधेः ऋ ४।३२।२३, ८४. जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्-ऋ. १।६४।४, ८५. अघ्न्यांदि. उणा. ४।११२, ८६. दृसनिजनि-उणा. १।३, ८७. उणा. ४।१८९, ८८. वैदिक वाङ्मय में भाषा चिन्तन - पृ.२२६, ८९. ऋ. १।६१।४, ९०. ऋ. १०।२९।३, ९१. अष्टा. ३।३।१९, ९२. अष्टा. ३।१।१३४, ९३. वाहो भुजे पुमान्मनिभेदाश्ववृषवायुषु - मेदि. १७५।९, ९४. नि. ४।३, ९५. यदा सु इते तथा सुगते इत्यर्थः। यदा सूते इति तदा प्रजायाम् सूते देवदत्ता पुत्रमिति प्रजायत इत्यर्थः। नि.दु.वृ. ४।३, ९६. नवेन पूर्वं दयमानाः स्याम मै.सं. ४।१३।८, ९७. य एक इद्विदयते वसु (ऋ. वे. १।८४।७-इतिदानकर्मा वा विभागकर्मावा-नि. ४।३, ९८. दुर्वर्तुभीमोदयते वनानि-ऋ.६।६।५इतिदहति कर्मा नि. ४।३, ९९. विद्वद्व सुर्दयमानो वि शत्रून्-ऋ.३।३४।१ इतिहिंसाकर्मा नि. ४।३, १००. इमे सुता इन्दवः इति-मन्त्रे दयमानःगतिकर्मा नि. ४।३,१०१.अष्टा ८।२।१९ की व्याख्या के लिए द्र. (सि.कौ.),१०२.दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य। यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।। नी.श. ४३,१०३.अम.को. २।९।९०, १०४. न कूपमृच्छति अल्पोदकत्वात्- नि.दु.वृ.४।३,१०५.कर्मण्यण्-अष्टा.३।२।१,१०६.अकूपारः कूर्मराजसमुद्रयोः हैम. ४।२४४, १०७. स हि किंचित् दृष्ट्वा श्वशरीरे एव मुख सम्पुटं, प्रवेशयति नि.दु.वृ.४।३,१०८.सुपि. अष्टा.३।२।४,१०९. नि.दु.वृ. ४।३, ११०. आतोऽनुप. अष्टा ३।२।३, १११. रात्रौ नक्षते गच्छति इतिवा-नि.दु.वृ. ४।३, ११२. देवान् ह वै यज्ञेन यजमानांस्तान् असुररक्षसानि ररक्षुर्नं ग्रक्ष्यध्व इति, तद् यदरक्षंस्तस्माद्रक्षांसि-श.ब्रा. १।१।१।१६, ११३. सर्वधातुभ्योऽसुन्-उणा. ४।१८९,

११४ .सुतुक:सुतुकन :सुगमन इत्यर्थ :नि .दु .वृ .४।३ , ११५ . युवं च्यवानं सनयं यथारथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथु: ऋ . १०।३९।४ , ११६ . ऐत . ब्रा .-८।२१ , विशेष-कीकट प्रदेश में च्यवनका आश्रम था जो पुण्यवान् माना जाता था। च्यवनके आश्रमकी चर्चा वाणभट्ट ने अपने हर्षचरितम् में की है। सरस्वती का भूतल अवतरण च्यवनके आश्रममें ही होता है। द्र .वा .पु . एवं हर्षचरितम् ,११७ .कनिन्युवृषि -उणा .१।१५६ ,११८ . ज्योतीरज उच्यते। उदकं रज उच्यते। लोका रजांस्युच्यन्ते। असृगहनी रजसी उच्येते। नि . ४।३ , ११९ . भूरजिभ्यां कित्-उणा . ४।२१७ , १२० .ज्योती ...अनुरंजयति द्रव्याणिस्वेन प्रकोशेन उदकम् स्वेन स्नेहाख्येन गुणेनानुरंजयति। लोका .तेष्वपि हि प्राणिनो रज्यन्ते। नि .दु .वृ .४।३ ,१२१ .ज्योतिर्हर उच्यते।उदकं हर उच्यते।लोका हरांस्युच्यन्ते। असृगहनीहरसी उच्येते।नि . ४।३ ,१२२ . नि .दु .वृ . ४।३। क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति श्रीमद्भ .-९।२१ , १२३ . पचाद्यच् -अष्टा . ३।१।१३४ , १२४ . पदं देवस्य नमसा व्यन्त: - ऋ . ६।१।४ , १२५ . वीहि शूर पुरोडाशम्- ऋ . ३।४१।३ , १२६ . वीतं पातं पयस उस्रियाया: ऋ . १।१५३।४ , १२७ . स्फायि तंचि ...वसि काशि शुभिभ्योरक्-उणा . २।१३ , १२८ . अष्टा . ८।३।११० , १२९ . यमानिलेन्द्रचन्द्रार्क विष्णु सिंहांशुवाजिषु। शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु।। अम . ३।३।१७४-१७५ , १३० . निघण्टु तथा निरुक्त अ . ४।पृ .१५२ , १३१ . शिरीष कुसुमप्रख्याकेचित्पिगंलकप्रभा नि .दु .वृ . ४।३ , १३२ . अच इ: उणा . ४।१३९ , १३३ . निघण्टु तथा निरुक्त-अ . ४।पृ . १५२ , १३४ . अष्टा . ६।३।१०९ , १३५ . उणा . २।९५ , १३६ . उणा . १।१० , १३७ . नाभ्यासन्नद्धा गर्भा जायन्त इत्याहु: नि . ४।३ , १३८ . अम . को . २।८।५६ , १३९ . उणा . ४।१२५ , १४० . अष्टा . ३।३।९४ , १४१ . अष्टा . ५।२।१३८ , १४२ . नि . १।३ , १४३ . नि . ६।६ , १४४ . नि . ४।४ , १४५ . निरुक्त मीमांसा-पृ .३४६ , १४६ . अदिति: कश्यपस्य महर्षेर्धर्मपत्नी , आदित्यादि देवानांजननी च नि .दु .वृ . ४।४ , १४७ . शत . ब्रा . १०।६।५।५ , १४८ . द्यति स्यति मा स्थाम् इत् ति किति-अष्टा . ७।४।४० , १४९ . अदितिर्द्यौरिदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र: विश्वेदेवा अदिति: पंचजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।। ऋ १।८९।१० , १५० . सर्वधातुभ्य: ष्ट्रन्-उणा . ४।१५९ , १५१ . नि .दु .वृ . ४।४ , १५२ . हतो वा प्राप्स्यति स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय:।। श्रीमद्भ .-२।३७ , १५३ . भ्राताभरतेर्हरतिकर्मण: हरतेर्भागिंभर्तव्यो भवति-नि . ४।४ ,

१५४. अष्टा. ८।२।३२ का वार्तिक-ह्नग्रहोर्भश्च्छन्दसि-द्र., १५५. ख घ थ ध भां हः :- प्राकृ. प्रका. २।२४, १५६. The Etymologies of Yaska, p.६५, १५७. पचाद्यच् अष्टा. ३।१।१३४, १५८. नौदीर्घश्च -उणा. ५।१३, १५९. उदिचेर्डैसि- उणा. ५।१२, १६०. नि. १४।१, १६१. श्यास्त्याह्नत्रविभ्यइनच्-उणा. २।४६, १६२. The Etymologies of Yaska, p.५०, १६३. उणा. २।१२, १६४. 'Indra is invoked alone in about one fourth of the hymns of the Rigveda for more than are addressed to any other duty'-A Vadic Reader for students, p.41 by Macdonull., १६५. दसि दर्शनदंशनयोः-हायर सं.ग्रा. (काले) पृ.परिशिष्ट धातु को ष ५३, १६६. नि.दु.वृ. ४।४, १६७. नि. तथा निरुक्त-पृ. १५५, १६८. हला. पृ. ६९४, १६९. हुयामा. उणा. ४।१६८, १७०. मात्रा कर्णविभूषायां क्तिे माने परिच्छदे। अक्षरावयवेस्वल्पे क्लीवं कात्स्न्र्येऽवधारणे।। मेदि.को. १२८।७५-७६, १७१. अष्टा. ३।१।१३४, १७२. उच्चैरुदात्तः शु.य.प्रा. १।१०८, १७३. उच्चैरायामेन ऊर्ध्वगमनेन गात्राणाम् यः स्वरो निष्पद्यते सः उदात्तः-उब्बट भाष्य शु.य.प्रा. १।१०८, १७४. उच्चैरुदात्तः अष्टा. १।२।२९, १७५. ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञःस्यात् द्र.सि.कौ. (अष्टा. १।२।२९ की वृत्ति), १७६. अष्टा. ३।२।१०२ अष्टा. ७।४।४७ (अच् उपसर्गात्त.), १७७. नीचैरनुदात्तः शु.शु.प्रा. १।१०९, १७८. नीचैः मार्दवेन अधोगमनेन गात्राणांयःस्वरोनिष्पद्यते सः अनुदात्त संज्ञः भवति (शु.य.प्रा. १।१०९ सूत्र का भाष्य), १७९. नीचैरनुदात्तः अष्टा. १।२।३०, १८०. अजश्छागे हरेर्विष्णो रघुजे वेधसि स्मरे। हैम. २।६६, १८१. पचाद्यच्- अष्टा. ३।१।१३४, १८२. अष्टा. २।२।१०२, १८३. वर्षासु हि प्रवृद्धानि स्रोतांसिशरदि विशीर्य छिद्यन्ते-नि.दु.वृ. ४।४, १८४. निघण्टु तथा निरुक्त पृ. १५६, १८५. शृदृभसोऽदिः उणा. १।१३०, १८६. सप्तमोह्यसावादित्यः पुत्र इत्येवमैतिहासिका मन्यन्ते। ब्राह्मणोऽपि च।...तस्मिन्नादित्यः सप्तम इन्द्रोऽष्टतमइति ह विज्ञायते। अथवा सप्त संस्थायुक्ता अस्य रश्मयः पुत्रास्तेनाऽसौ सप्तपुत्राः। नि.दु.वृ. ४।४, १८७. सप्यशूभ्यां तुट् च-उणा. १।१५५, १८८. वा. ३।३।५८ वा. ६।१।१२ (कृञादीनांके) इति द्वित्वम्, १८९. चक्रः कोके पुमान् क्लीवं वज्रे सैन्यरथांगयोः। राष्ट्रे दम्मान्तरे कुम्भकारोपकरणास्त्रयः) जलावर्तेऽपि... मेदि. १२५।३१-३२, १९०. सर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनकः। आशीरूपं च वाच्यं च सर्वं भवति कर्मतः।।

वृह.दे. १।२७, १९१. अन्येभ्योऽपि वा. ३।२।१०१, १९२. उणा. ३।७२ सः स्यार्धधातुके (अष्टा. ७।४।४९) इति तः, १९३. ग्रीष्मो ग्रस्यन्तेऽस्मिन्नसाः सूर्येण-नि.दु.वृ. ४।४, १९४. उणा. १।१४९। आतोमक् धातोर्ग्रीभावः पुगागमश्च-ग्रीष्मः), १९५. अर्शआद्यच् -अष्टा. ५।२।१२७, १९६. आग्रहायण पोषमासात्मकः हेमन्तः हला. पृ. ७४५, १९७. हन्तेर्मुट् हि च उणा. ३।१२९, अष्टा. ७।३।८४, १९८. हन्त्योषधि वनस्पतीनाम्-नि.दु.वृ. ४।४, १९९. उणा. १।१४७, २००. उणा. १।१४१, २०१. अन्येभ्योऽपि. अष्टा. ३।२।७५, २०२. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, २०३. पंचसंख्यामभिभूय वर्तन्ते-नि.दु.वृ., २०४. अष्टा. ३।३।१९, ३।३।१२१, २०५. उपसर्गे घोः किः अष्टा. ३।३।९२.

(ख) निरुक्तके पंचम अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निरुक्तका पंचम अध्याय निघण्टुके नैगम काण्डके द्वितीय खण्ड की व्याख्या है। नैगम काण्डके द्वितीय खण्डमें स्वतंत्र पदोंका संग्रह है जिसकी कुल संख्या ८४ है। इन सारे शब्दोंके निर्वचन निरुक्तके इस अध्यायमें किए गए हैं। नैगम काण्डके सारे शब्द क्लिष्ट संस्कार वाले हैं। अनेकार्थक होनेके चलते अर्थानुसंधानमें इन शब्दोंकी व्याख्यामें एकसे अधिक निर्वचन करनेकी आवश्यकता पड़ी है।

निरुक्तके पंचम अध्यायमें यास्कने कुल १३४ पदोंका निर्वचन किया है जिसमें निघण्टुके नैगम काण्डके द्वितीय खण्डमें पठित ८४ शब्दोंमें ७७ शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं शेष-वक्षः, विष्णुः, परिः, ईम्, सीम्, एनम् और एनाम् इन सात शब्दोंका पूर्व में निर्वचन किया जा चुका है इसकी सूचना देकर रह जाते हैं। इन शब्दोंमें कुछ निपातोंके तो मात्र अर्थ ही बताकर अपना कार्य पूरा कर लेते हैं। एनम् एवं एनाम्के सम्बन्धमें इनका कहना है कि इन शब्दों की व्याख्या चतुर्थ अध्यायमें अस्याः एवं अस्यके निर्वचन प्रसंगमें की जा चुकी है। ये निर्वचन स्पष्ट नहीं हैं। इस अध्याय में ५० ऐसे शब्दोंका भी निर्वचन किया गया है जो शब्द प्रसंगतः प्राप्त हैं। इन शब्दोंका वैदिक भाषामें उपयोग तो है लौकिक संस्कृतमें भी अत्यधिक महत्त्व है।

इस अध्यायमें यास्क द्वारा प्रस्तुत१३४ शब्दोंके निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि कुछ निर्वचन भाषा विज्ञानकी कसौटी पर खरे नहीं उतरते। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त निर्वचनोंमें-सस्निम्,वाहिष्ठ,वावशानः,वार्यम्, अमत्र,

अमा, पात्रम्, पापः भन्दना, आहनः, नदः, अक्षाः, ऊतिः, हासमाने, द्विता, शंभुः, वराहः, स्वसराणि, शरः, अर्कः, वंशः, पविः, धन्व, सिनम्, चित्, द्युम्नम्, पवित्रम्,तोदः, अरिः, स्वञ्चा, शिपिविष्टः, आघृणिः, पृयुज्रया, अथर्युः, दीधितयः, अरणी, आंगूषः, आपातमन्युः, धुनिः, शिमी, ऋजीषी, धानाः, बध्याम्, श्मशा, उर्वशी, अप्सरा, पुष्करः पुष्पम्, वयुनम्, वाजस्पत्यम्, वाजगन्ध्यम्, गधिता, तौरयाणः, अह्रयाणः, हरयाणः, आरितः, ब्रन्दी, निष्षपी, सपः, तूर्णाशम्, अंग, निचुम्पुणः पदिः, मुक्षीजा, पादुः, वुसम्, उरणः, ऊर्ग्या, जोषवाकम्, कृत्तिः, श्वघ्नी, कितवः, उर्मिः, नौः, पिपर्ति, पपुरि, कुट, शम्व, पृथक्, इर्म, कवचम्, आहावः, आवहः, अवतः, कोषः, संचयः, काकुदः कोकुवा, जिह्वा, तालु, वीरिटम् नियुतः, सृणिः, अंकुशः शब्द परगणित हैं। इन शब्दोंमें बहुतोंके एकसे अधिक निर्वचन भी प्राप्त होते हैं जिनमें एक या एकसे अधिक तो भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे पूर्ण हैं लेकिन शेष के भाषा वैज्ञानिक आधार संगत नहीं।

ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण निर्वचनोंमें नराः, दूतः, असश्चती, पापः, श्वात्रम्, वराहः, शर्याः, वंशः, सचा, आवर्पः, अधिगुः, तृप्रहारी, श्मशा, इक्षुः, पुष्कर, गध्यम्, कौरयाणः क्षुम्पम्, निचुम्पुणः, मुक्षीजा, वुसम्, वृकः, स्वम्, वेशायः, कवचम्, द्रोणम्, सिन्धु, वीरिटम्, अच्छा शब्द आते हैं। इनमें कुछ शब्दोंके एकाध निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे संगत भी है; लेकिन शेषके ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अपूर्ण निर्वचनोंमें अन्धः, वनुष्यति, रुरुष्यति, पड्भिः, ससम्, काणुका, तृप्रहारी एवं असंत्रम को देखा जा सकता है। ब्रः, इत्था, तवसः, समम्ः, चर्षणिः, तूतुमाकृषे शब्द निर्वचनकी दृष्टिसे अस्पष्ट हैं। किन्तु शब्द शब्दानुकृति पर आधारित है। आहन शब्दके निर्वचनमें लक्षणा का आधार लिया गया है। नद शब्दकी व्याख्या यास्क सादृश्यके आधार पर करते हैं। स्वसराणिमें दृश्यात्मक आधार है। पुष्प शब्द धातुज सिद्धान्त पर आधारित है।

निरुक्त के पंचम अध्याय में विवेचित निर्वचनों का परिशीलन द्रष्टव्य है-

(१) सस्निम् :- इसका अर्थ होता है मेघ। निरुक्त के अनुसार-सस्निं संस्नातम् मेघम्१ अर्थात् वह जलों से सम्यक् तया स्नात है। जल से वेष्टित है। इस निर्वचनके अनुसार सस्निम् शब्दमें स्ना शौचे या वेष्टने धातुका योग है। सम् + स्ना = सस्निम्। इसके ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार स्ना धातुसे

कित् प्रत्यय कर (द्वित्वकर) सस्निम् शब्द बनाया जा सकता है।

(२) वाहिष्ठ :- इसका अर्थ होता है अच्छी तरह ले जाने वाला। निरुक्तके अनुसार वाहिष्ठो वोढृतमो[१] अर्थात् वह् प्रापणे धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है। अच्छी तरह ढोने वाला वाहिष्ठ कहलाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे वह् प्रापणे धातुसे तृच् प्रत्यय कर वोढृ + इष्ठन् वाहिष्ठः बनाया जा सकता है।

(३) नरा :- नरका अर्थ मनुष्य होता है। निरुक्तके अनुसार-नराः मनुष्याः नृत्यन्ति कर्मसु१ अर्थात् वे अपने कार्य सम्पादनमें नाचते रहते हैं। अत्यन्त तत्परता से कार्य सम्पादन करते हैं। कार्य सम्पादनके समय अपने अंगों का इधर-उधर संचालन करते हैं।[२] इस निर्वचनके अनुसार नरः शब्दमें नृत् गात्रविक्षेपे धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। इसमें व्यंजनगत औदासिन्य स्पष्ट है। अर्थात्मकताके आधार पर यह प्रतीत होता है कि यास्कके समयमें मनुष्य कार्य सम्पादनमें काफी गतिशील थे। व्याकरणके अनुसार नृ नये धातुसे अच्[३] प्रत्यय कर नरः शब्द बनाया जा सकता है।

(४) दूत :- इसका अर्थ होता है सन्देश हारक। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं-१-दूतो जवतेर्वा[१] अर्थात् वह गतिशील होता है। इसके अनुसार दूत शब्दमें गत्यर्थक जू धातु का योग है-जू + क्त = जूतः- दूतः (ज वर्ण का द में परिवर्तन) २-द्रवतेर्वा१ अर्थात् दिए गये कार्यों के लिए दौड़ता रहता है। इस निर्वचन के अनुसार दूत शब्द में गत्यर्थक द्रु धातु का योग है-द्रु + क्तृद्रुत दूत (द वर्ण स्थित र लोप एवं आदि स्वर दीर्घीकरण) (३) वारयतेर्वा१ अर्थात् यह झगड़े आदि को शान्त करता है। इस निर्वचनके अनुसार वृ आवरणे धातुसे ण्यन्त कर वारि तथा वारि का दू भाव + क्त = दूतः। दूत अनर्थों से हटाता है। उपर्युक्त सभी निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टि से अपूर्ण हैं। द्वितीय निर्वचनमें भी पूर्ण ध्वन्यात्मकता नहीं। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंका उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार दु गतौ + क्त[४] या दुङ् परितापे + क्त[५] प्रत्यय कर दूतः शब्द बनाया जा सकता है।

(५) वावशानः :- इसका अर्थ होता है चाहता हुआ। यह कृदन्त शब्द है। निरुक्तके अनुसार -वावशानो वष्टेर्वा वाश्यतेर्वा१ अर्थात् कामना करता हुआ या आह्वान करता हुआ। इसके अनुसार वावशानः शब्दमें वश् कान्तौ या वाशृ शब्दे धातुका योग है।

दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार - वश् कान्तौ या वाशृ शब्दे धातुसे कानच् प्रत्यय कर वावशान: शब्द बनायाजा सकता है।[६]

(६) वार्यम् :- इसका अर्थ होता है वरणीय, वरदान। निरुक्तके अनुसार १- वार्यं वृणोते:[३] अर्थात् यह वरण करने योग्य होता है। इसके अनुसार वार्यम् शब्दमें वृञ्वरणे धातुका योग है। २- अथापि वरतमम्[४] अर्थात् वह वरतम- सर्वोत्कृष्ट होता है। इसके अनुसार भी वार्यम् शब्दमें वृ धातुका ही योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार -वृ वरणे + ण्यत् प्रत्यय कर वार्यम् शब्द बनाया जा सकता है।

(७) अन्ध: :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तके अनुसार १-अन्ध: इत्यन्न नाम। आध्नीयं भवति१ अर्थात् अन्ध: अन्नका नाम है क्योंकि यह सबोंके द्वारा आध्नीय या प्रार्थनीय होता है। इसके अनुसार अन्ध: शब्दमें आङ् + ध्यै ध्याने धातुका योग है। २- तमोऽप्यन्ध उच्यते। नास्मिन् ध्यानं भवति१ अर्थात् तम (अन्धकार) को भी अन्ध: कहा जाता है क्योंकि इसमें कोई वस्तु देखी नहीं जाती[७] या अन्धकारमें ध्यान नहीं हो पाता। इसके अनुसार अन्धस् शब्दमें न -अन् + ध्यै धातुका योग हैं। अन्धकारको अन्धा करने वाला भी कहा जाता है-अन्धंतम इति अभिभाषन्ते।१ अन्धा या दृष्टिहीनका वाचक अन्ध: शब्दभी इसी प्रकार निष्पन्न होता है ३- अयमपीतरोऽन्धएतस्मादेव१ दृष्टिहीन वाचक अन्ध: भी अन् (नञ्) + ध्यै ध्याने धातुसे ही निष्पन्न होगा क्योंकि वह भी नहीं देखता। अर्थ परीक्षणके लिए अन्ध: शब्दमें ध्यै ध्याने धातुका योग मानना यास्ककी विशेषता है। अर्थात्मक महत्त्वसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। किसीभी निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण नहीं है। भाषा-विज्ञानके अनुसार इसे संगत नहीं माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार अन्ध् दृष्ट्युपघाते धातुसे अच्[८] प्रत्यय कर अन्ध: शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें अन्नके लिए अन्ध: शब्दका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(८) अमत्रम् :- इसका अर्थ होता है पात्र, बर्तन। निरुक्तके अनुसार अमत्र पात्रम् अमा अस्मिन्नदन्ति[९] अर्थात् इसमें अपरिमित खाते हैं। अपरिमित लोग इसमें भोजन करते हैं।[९] इसके अनुसार अमत्र शब्दमें दो पद खण्ड हैं अम् + अत्रम्। अम् अमाका वाचक है। अमाका अर्थ है अपरिमित। अद् धातु से रक् प्रत्यय के द्वारा अत्रम् पद निष्पन्न है अम् + अत्रम् = अमत्रम्। उपयुक्त अर्थात्मकताके लिए यास्क

शब्दके प्रत्येक अंशमें आधार खोजते हैं। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन उपयुक्त है। उपर्युक्त निर्वचनोंसे पता चलता है कि अमत्र भोजन करनेकी थालीका वाचक है तथा यास्कके समयमें भी लोग भोजनके लिए इस प्रकारकी थालीका प्रयोग करते थे। लौकिक संस्कृतमें भी इसका प्रयोग पात्र के लिए होता है। व्याकरणके अनुसार अम् गत्यादिषु धातुसे अत्रन् प्रत्यय कर अमत्रम् शब्द बनाया जा सकता है।[१०] यास्क षष्ठ अध्यायमें अमत्रका अर्थ मात्रा रहित करते हैं-अमात्रो महान् भवति अभ्यमितो वा[११] अर्थात् अमत्र महान् होता है, शत्रुओं से अनभिहिंसित होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें अ (नञ्) + मा + अत्रन् प्रत्ययका योगहै। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे भी उपयुक्त माना जाएगा।

(९) अमा :- इसका अर्थ होता है अपरिमित। निरुक्तके अनुसार-अमा पुनरनिर्मितं भवति१ अर्थात् जो मापा न जा सके।[१२] इसके अनुसार अमा शब्दमें नञ्-अ + मा माने धातुका योग है। इस निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि यास्कके समयमें अमा अनिर्मित वस्तु होगी जो खाद्य भी हो सकती है। इसका अर्थ अपरिमित माननेमें लगता है यास्क निर्मित या बनी हुई वस्तुओंको परिमित मानते हैं क्योंकि एक परिमाणमें उसका निर्माण हो चुका रहता है। अनिर्मित पुनः असीमित होता है। अतः अमा शब्दमें अ नञर्थ है तथा मा माने धातु। इस आधार पर यास्कका यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। अमा शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें साथ एवं निकटके लिए होता है।[१३] व्याकरणके अनुसार अ + मा माने धातुसे क्विप् प्रत्यय कर अमा शब्द बनाया जा सकता है।[१४]

(१०) पात्रम् :- इसका अर्थ होता है वर्तन। निरुक्तके अनुसार -पात्रं पानात्[१५] अर्थात् जिससे पान किया जाय उसे पात्र कहते हैं। इस निर्वचन के अनुसार पात्रम् शब्दमें पा पाने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। इस निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि यास्कके समयमें पीनेके बर्तनको ही पात्र कहा जाता था जबकि आज कल कोई भी बर्तन चाहे उसमें खाया जाय या पान किया जाए या इसके अतिरिक्त भी कोई दूसरे उपयोगमें लाया जाए, पात्र कहलाता है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे अर्थ विस्तार कहा जाएगा। व्याकरणके अनुसार पा पाने धातुसे ष्ट्रन्[१५] प्रत्यय कर पात्रम् शब्द बनाया जा सकता है।

(११) असश्चन्ती :- इसका अर्थ होता है-अलग-अलग रहती हुई या अनुपक्षीण।

निरुक्तके अनुसार[१०] असश्चन्ती असज्यमाने इतिवा१ अर्थात् अलिप्त रहती हुई। इसके अनुसार इस शब्दमें अ- (नञ्) + सञ्ज् संगे धातुका योग है। २- अच्युदस्यन्त्याविति वा अर्थात् नष्ट नहीं होती हुई। दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण हैं। दोनों अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। व्याकरणके अनुसार अ + सञ्ज् + शतृ + ङीप् प्रत्यय कर असश्चन्ती शब्द बनाया जा सकता है।

(१२) वनुष्यति :- इसका अर्थ होता है मारना। निरुक्तके अनुसार -वनुष्यति हन्तिकर्मा।[१] अर्थात् वनुष्यति हन्ति कर्मा है। यास्क इसे अनवगत संस्कारका पद मानते हैं।[१६] यास्क इसके लिए धातु प्रत्ययका निर्देश नहीं करते। हन्ति कर्मा कहनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि इस शब्दमें हिंसार्थक वन् धातुका योग है। यह निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण है।

(१३) पाप :- इसका अर्थ होता है-पापी। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं- १- पापः पाताऽपेयानाम्[१] अर्थात् अपेय पदार्थोंको पीने वाला पापी कहा जाता है। इस निर्वचनके अनुसार पापः शब्दमें पा पाने धातुका योग है। २- पापत्यमानो वा[१] अथवा वह पाप कर्मसे वार-वार गिराया जाता है।[१७] इसके अनुसार पापः शब्दमें पत् धातुका योग है। ३- अवाङेव पततीति वा१ अर्थात् वह नीचेकी और गिरता जाता है, नरकमें ही जाता है।[१८] इसके अनुसार भी पापः शब्दमें पत् धातुका योग है। ४- पापत्यतेर्वा स्यात्१ वार-वार गिरनेके कारण वह पापः कहलाता है। यह पत् धातुके यङ् लुक् प्रयोगसे निष्पन्न होता है। पापत्यका पा आदेश तथा प प्रत्यय कर पापः बनाया गया है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। प्रथम निर्वचनमें ध्वन्यात्मक आधार संगत है। प्रथम निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि कुत्सित पान करने वाला पापी कहा जाता था। साथही साथ पापियोंको नरकमें भी जाना पडता था। व्याकरणके अनुसार पाप् धातुसे अच् प्रत्यय कर पापः शब्द बनाया जा सकता है।[१९]

(१४) तरुष्यति :- इसका अर्थ होता है - हिंसा करना। यास्क इसके निर्वचनमें मात्र कहते है - तरुष्यतिरप्येवं कर्मा[१] अर्थात् तरुष्यतिभी इसी हिंसार्थक धातुका है। इसके अनुसार तर् हिंसायां धातुका योग इस शब्दमें माना जायगा। धातु पाठमें हिंसार्थक तर् धातुकी उपलब्धि नहीं होती।[२०] वैदिक कालमें तर् धातु हिंसार्थकभी होगा।[२१] निरुक्त प्रक्रिया एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे पूर्ण निर्वचन नहीं माना जायगा।

(१५) मन्दना :- यह स्तुतिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -मन्दना मन्दतेः

स्तुतिकर्मण:[१] अर्थात् भन्दना शब्द स्तुत्यर्थक भन्द् धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है। इसके अनुसार भन्दनाका अर्थ होगा जिससे स्तुतिकी जाए। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। भन्दना शब्दका प्रयोग स्तुतिके अर्थमें लौकिक संस्कृतमें प्राय: नहीं देखा जाता। इससे मिलता जुलता वन्दना शब्द लौकिक संस्कृतमें मिलता है। लगता है भन्दना ही वन्दना रूपमें प्राप्त होता है। यद्यपि वन्द् धातु अभिवादन एवं स्तुति अर्थमें धातुपाठमें उपलब्ध है।

(१६) आहन :- इसका अर्थ होता है कटु भाषणशीला। यह सम्बोधनका पद है। निरुक्तके अनुसार आहंसीव भाषमाणेत्यसभ्यभाषणादाहना इव भवति। एतस्मादाहन: स्यात्[१] अर्थात् आघात सी पहुंचाती हुई भाषण करती असभ्य भाषण से आघात करने वाली आघातक सी हो जाती है।[२२] अत: आहन ऐसा सम्बोधन किया जाता है। इसके अनुसार आहन शब्दमें आ + हन् धातुका योग है इसका ध्वन्यात्मक तथा अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। कटुभाषिणीके अर्थमे लक्षणाका आधार माना जा सकता है। व्याकरणके अनुसार आ + हन् + असुन् = आहनस् - आहना: सम्बोधनमें आहन: पद बनाया जा सकता है। आहन :को हथौड़ेके सामान चोट करने वाली कहा जाय तो अधिक अच्छा होगा। हन्का ही हथौड़ेके लिए घन शब्दका प्रयोग हिन्दी भाषामें प्रचलित है अर्थात्जो चोट पहुंचाए उसे घन कहते हैं।

(१७) नद :- इसका अर्थ ऋषि होता है। निरुक्तके अनुसार-ऋषिर्नदो भवति।[१] नदते: स्तुतिकर्मण: अर्थात् नद: शब्द नद् स्तुतौ धातुसे निष्पन्न होता है[२३] क्योंकि वे स्तुति युक्त होते हैं। णद् धातु स्तुति अर्थमें निघण्टु पठित है।[२४] लौकिक संस्कृतमें णद् अव्यक्ते शब्दे धातु प्रसिद्ध है। उपर्युक्त निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें नदका अर्थ नदी होता है। व्याकरणके अनुसार णद् अव्यक्ते धातुसे अच्[२५] प्रत्यय कर नद: शब्द बनाया जा सकता है। नदियां भी प्रवाहित होने पर ध्वनि करती है। नद् धातुमें अर्थापकर्ष पाया जाता है। यास्क नदीको भी नद् धातुसे निष्पन्न मानते हैं क्योंकि वे शब्दवती होती हैं। ध्वनिसादृश्यके कारण नदीमें भी नद् धातु माना गया है।[२६]

(१८) अक्षा:- यह अनेकार्थक है। निरुक्तमें इसके कई अर्थ किए गये हैं। इससे सम्बद्धकई आचार्योंके मत प्राप्तहोते हैं।[१]-अक्षा: अश्नोतेरित्येवमेके[१] अर्थात् कुछ

आचार्योंके अनुसार अक्षाः शब्दमें अश् व्याप्तौ धातुका योग है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा व्याप्त होने वाला। यास्क सोमो अक्षाःके निर्वचन क्रममें ऋग्वेदके मन्त्रोंका उल्लेख करते हैं।[२७] तदनुसार अक्षाः क्रिया पद है। अक्षाःका प्रयोग संज्ञापदके लिए भी होता है जिसका अर्थ द्यूत-क्रीड़ाका पाशा होता है। यहां अक्षाः क्रियापद अश्नुते का स्थानापन्न है। २- क्षियति निगमः पूर्वः क्षरति निगमः उत्तर इत्येके।[१] अर्थात् कुछ आचार्योंका विचार है कि-अनूपे गोमान्गोभिरक्षा सोमोदुग्धाभिरक्षाः लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः।[२८] इस मन्त्रमें प्रथम अक्षाका अर्थ निवास करना है जिसके अनुसार अक्षाः शब्दमें क्षि निवासे धातुका योग है। क्षि अक्षाः। उत्तर पद अक्षाःमें क्षर् प्रवाहे धातुका योग है जिसके अनुसार इसका अर्थ होगा प्रवाहित होता है। ३-सर्वे क्षियति निगमा इति शाकपूणिः१ आचार्य शाकपूणिके अनुसार उक्त मन्त्रमें प्रयुक्त अक्षाःके सभी निर्वचनमें क्षि निवासे धातुका योग है। उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट है कि अक्षाः शब्दमें अश्, क्षि, एवं क्षर् धातुका योग माना गया है। शाकपूणि आचार्य अक्षाः शब्दमें अश् व्याप्तौ तथा क्षर् संचलने धातुका योग नहीं मानते हैं। ये सभी निर्वचन अर्थात्मक संगतिके लिए ही किये गये हैं। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह उपयुक्त नहीं है। लौकिक संस्कृतमें अक्षः संज्ञापदके रूपमें प्रयुक्त होता है तथा इसके कई अर्थ होते हैं- कर्ष (षोडश माषा का प्रमाण विशेष) जुआ खेलनेका पाशा, पहिया, बहेड़ा, व्यवहार आदि।[२९] व्याकरणके अनुसार अक्ष् व्याप्तौ धातुसे अच्[३०] प्रत्यय कर अक्षः शब्द बनाया जा सकता है।

(१९) श्वात्रम् :- इसका अर्थ होता है-शीघ्र। निरुक्तके अनुसार-श्वात्रमिति क्षिप्रनामाशु अतनं भवति१ अर्थात् वह सतत गति वाला या शीघ्र गति वाला होता है। इसके अनुसार श्वात्रम् शब्दमें अत् गतौ धातुका योग है-आशु-शु-आ +अत् + रक् = सु +आत् +रक् = श्वात्रम्। आशुका वर्ण विपर्यय होकर शु +आ तथा अत् + रक् = श्वात्रम्। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधारसे यह युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जाएगा।

(२०) ऊतिः :- इसका अर्थ होता है-रक्षा करना। निरुक्तके अनुसार ऊतिरवनात्[१] अर्थात् रक्षा करनेके कारण ऊतिः कहलाता है। इसके अनुसार ऊतिः शब्दमें अव् रक्षणे धातुका योग है। व का उ सम्प्रसारणका परिणाम है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसे संगत माना जाएगा।

(२१) हासमाने :- इसका निर्वचन नवम अध्यायमें किया गया है। हासमाने

शब्दका अर्थ होता है स्पर्धा करती हुई। निरुक्तके अनुसार हासमाने हासतिः स्पर्द्धायां हर्षमाणे वा[३१] अर्थात् हास् धातुसे यह शब्द निष्पन्न होता है जो स्पर्धा या प्रसन्न होना अर्थका द्योतक है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(२२) पड्भि :- इसका अर्थ होता है पेय पदार्थोंके साथ या सोमके साथ। निरुक्तके अनुसार १- पड्भिः पानैरिति वा१ अर्थात् यह पा पाने धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसका पान होता है। २- स्पाशनैरितिवा१ अर्थात् यह स्पश् बाधन-स्पर्शनयोः धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि स्तुतियोंसे यह स्पृष्ट होता है। ३- स्पर्शनैरितिवा१ अर्थात् यह स्पृश् स्पर्शे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसारभी इसका अर्थ होगा स्पृष्ट। पड्भिः पट् शब्दके तृतीया बहुबचनका रूप है। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है-पश् + भिस् = पड्भिः घोष महाप्राणवर्ण भ के पूर्व स्थित श का ड् हो गया है, जो उपयुक्त है। स्पश् धातुकी मान्यता यास्ककी अपनी विशेषता है। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है।

(२३) ससम् :- इसका अर्थ होता है स्वप्नशील। निरुक्तके अनुसार- स्वपनमेतन्माध्यमिकं ज्योतिरनित्यदर्शनम्[१] अर्थात् स्वप्नशीलजो आकाशस्थ यदा कदा दृश्य होने वाली माध्यमिक ज्योति (विद्युत्) है। इस निर्वचनके अनुसार ससम् शब्दमें स्वप् धातुका योग पता चलता है। यह अस्पष्ट निर्वचन है। लौकिक संस्कृतमें उक्त अर्थमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता है। सस् स्वप्ने धातुसे अच् प्रत्यय कर ससम् शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जाएगा।

(२४) द्विता :- इसका अर्थ होता है दो स्थानोंका या दो प्रकारका। निरुक्तके अनुसार द्विता द्वैधं मध्यमे च स्थान उत्तमे च।[१] अर्थात् द्वितका अर्थ होता है दो प्रकारका। विद्युत्के रूपमें अन्तरिक्ष स्थान तथा सूर्यके रूपमें द्युस्थान एवं उत्तम स्थानका वाचक है। इन्हीं दो स्थानों को द्विता कहा जाता है। द्वैतम् से ही द्विता शब्द माना गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(२५) शंभुः- इसका अर्थ होता है सुख उत्पन्न करने वाला। निरुक्तके अनुसार शंभुः सुखभूः[१] अर्थात् शंभुः शब्दमें शम् सुखका वाचक है तथा भू धातु। शम् (सुखम्)भूः=शंभुःस्वर परिवर्तन इसमें स्पष्ट है।इसका ध्वन्यात्मकएवं अर्थात्मक आधार

उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार शम् उपपद् + भू धातु + ड[३२] प्रत्यय कर शम्भुः शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें शम्भु शब्द शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, आदिका वाचक है।[३३] इन देवताओंमें शंकरके लिए तो शंभु शब्दका प्रयोग हुआ है। अर्थ सादृश्यके आधार पर इन देवताओंके अर्थमें भी शंभु शब्द रूढ हो गया है। शम्भुका शब्दिक अर्थ तथा निर्वचन गत अर्थ होता है - सुख शान्ति प्रदान करने वाला। इस गुणसे युक्त होनेके कारण शंकर आदि शम्भुः कहलाये। इस शब्दका प्रयोग व्यापक अर्थमें पाया जाता है।

(२६) व्रा :- इसका अर्थ होता है - शिकार करने वाला, आखेटक। निरुक्तके अनुसार - व्राः व्रात्याः प्रैषाः[१] अर्थात् व्रात्यासे व्राः माना गया। व्रात्याः का अर्थ होता है सेवक, नौकर या आखेटक। इस निर्वचनमें धातु प्रत्यय स्पष्ट नहीं है। अर्थ स्पष्ट करनेके लिए व्रात्या शब्दका प्रयोग किया गया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह निर्वचन अपूर्ण है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(२७) वराह :- यह अनेकार्थक है। यास्कने इसका निर्वचन कई अर्थोंमें किया है।१वराहो मेघो भवति।[१] अर्थात् वराह मेघको कहा जाता है क्योंकि यह श्रेष्ठवस्तु जलको लाता है या श्रेष्ठ वस्तु जल इसका आहार है। इसके अनुसार वराहः शब्दमें वर + आहारः, वर + आ + हृ धातुका योग है। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी वराह शब्दका निर्वचन मेघके लिए हुआ है -वरमाहारमाहार्षीः इति च ब्राह्मणम्[३४] अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थके अनुसार जल रूप श्रेष्ठ आहारको लानेके कारण वराह कहलाता है।२वराहका अर्थ शूकर भी होता है-अयमपीतरो वराह एतस्मादेव। वृहंति मूलानि। वरं वरं मूलं वृहतीति वा१ मूलों, जडोंको उखाडनेके कारण वराह कहलाता है या यह अच्छे-अच्छे मूलों, जड़ोंको उखाड़ता है इसलिए वराह कहलाता है। शूकरको मुस्ता आदिकी जड़ अधिक प्रिय है। अतःवह उसे उखाड़ता रहता है। उसके अनुसार वराहः शब्दमें वर + आ + हृ धातुका या वृह् धातुका या वर ± वृह् वर्हणे धातुका योग है। वर + आ + हृ से बना वराह शब्दका अर्थ होता है श्रेष्ठ मुस्ता आदि मूलोंका आहार करने वाला। वर +आ+ हृ = वराहारः- वराहः। अंगिरस गोत्रीयको भी वराह कहा जाते है- अंगिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते।[१] मध्यम स्थानीय देवतागणं भी वराह कहे जाता हैं। अथोप्येते माध्यमिका देवगणा वराहव उच्यन्ते।[१] यास्क अंगिरस गोत्रीयके लिए वराह तथा मध्यम स्थानीय मरुत् आदि देवताओं के लिए वराहु शब्दका अलगसे निर्वचन नहीं देते। लगता है

सादृश्यके आधार पर इन लोगोंको भी वराह कहा जाने लगा। वेदोंसे उद्धरण देकर स्पष्ट कर देते हैंकि वराहः शब्द अंगिरस गोत्रीय लोगोंके लिए[३५] तथा वराहु शब्द मध्यमस्थानीय देवताओंके लिए[३६] भी प्रयुक्त होता है। लौकिक संस्कृतमें वराहः शब्दका प्रयोग शूकरके लिए ही विशेष रूपमें होता है। इस प्रकार वराह शब्दमें अर्थ संकोच माना जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार वर +आ +हृ से वराहः मानना ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगतिके लिए उपयुक्त होगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। व्याकरणके अनुसार वर+ आ + हन् +ड प्रत्यय कर वराह शब्द बनाया जा सकता है।[३७]

(२८) स्वसराणि :- स्वसरका बहुबचन रूप स्वसराणि है। स्वसरका अर्थ होता है दिन। निरुक्तके अनुसार १- स्वसराणि अहानि भवन्ति। स्वयं सारीण्यपि वा[१] अर्थात् ये दिन स्वयं गतिमान होते हैं या चलते हैं। इसके अनुसार स्वर शब्द में स्व + सृ गतौ धातुका योग है। स्वरादित्यो भवति स एनानि सारयति।१ अर्थात् स्वःका अर्थ आदित्य होता है। आदित्य इन्हें (दिन को) गति देता है या चलाता है।[३८] इसके अनुसार स्वसर शब्दमें स्वः + सृ गतौ धातुका योग है स्वः संज्ञा पद आदित्यका वाचक है। दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। दोनों निर्वचनोंमें दृश्यात्मक आधार अपनाया गया है।

(२९) शर्या :- यह शब्द अनेकार्थक है। यास्कने कई अर्थोंमें इसका निर्वचन प्रस्तुत किया है-१-शर्या अंगुलयो भवन्ति। सृजन्तिकर्माणि।[१] अर्थात् शर्या अंगुलियां होती है, क्योंकि वह कर्मोंका सृजन करती है या काम करती रहती है। इसके अनुसार शर्याः शब्दमें सृज् धातुका योग है। सृज से सर्जा-शर्या। शर्याःका अर्थ वाण भी होता है-शर्या इषवः शरमय्यः[१] अर्थात् ये वाण सरकण्डोंसे बने होते हैं इसलिए शर्याः कहलाते हैं। इसके अनुसार शर्याः शब्दमें शृ हिंसायां +अप् =शरः +यत् (मयट् अर्थमें) प्रत्ययका योग है। वाणके अर्थमें शर्याःका निर्वचन ध्वन्यात्मक आधारसे युक्त है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। वाणके अर्थ में प्राप्त शर्याका निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे उपयुक्त है।

(३०)शरः- इसका अर्थ होता है वाण।निरुक्तके अनुसार शरः शृणातेः[१] अर्थात् यह हिंसा करता है। वाणका प्रयोग मारने (हिंसा)के लिए होता है।इसके अनुसार शरःशब्दमें शृ हिंसायां धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।भाषा विज्ञानके अनुसारइसे उपयुक्त माना जाएगा।व्याकरणके अनुसार शृ

हिंसायां धातुसे अप् प्रत्यय कर शरः शब्द बनाया जा सकता है।[३९] सरः शब्दका भी प्रयोग वाणके अर्थमें होता है। वाणके अर्थमें सरः मानने पर सृ गतौ धातुसे अच्[४०] प्रत्यय कर इसे बनाया जाएगा।

(३१) अर्क :- यह शब्द अनेकार्थक है। यास्कने कई अर्थोंमें इसका निर्वचन प्रस्तुत किया है १- अर्कः देवो भवति।[१] यदेनमर्चन्ति। अर्थात् अर्कका अर्थ देवता होता है क्योंकि लोग इनकी पूजा करते हैं। इसके अनुसार अर्कः शब्दमें अर्च् पूजायां धातुका योग है। २- अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति।[१] अर्थात् अर्कका अर्थ मन्त्र होता है क्योंकि इस मन्त्रसे लोग (देवताओंकी) अर्चना करते हैं।[४१] इसके अनुसार भी अर्कः शब्दमें अर्च् पूजायां धातुका योग है। ३-अर्कमन्नं भवति अर्चति भूतानि।[१] अर्थात् (अर्क अन्नको कहते हैं क्योंकि यह सभी प्राणियोंको जीवित रखता है। इसके अनुसार अर्कः शब्दमें जीवनार्थक अर्च् धातुका योग है। ४- अर्को वृक्षो भवति संकृत्तः कटुकिम्ना।[१] अर्थात् अर्कका अर्थ वृक्ष होता है क्योंकि वह कटुत्व युक्त होता है। अकवन वृक्ष कटुत्व की प्रधानताके चलते अर्क कहलाता है। इसके अनुसार अर्कः शब्दमें वृ आवरणे धातुका योग है। यास्कके प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय निर्वचनोंमें अर्च् धातुका योग है फलतः ये तीनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त हैं। चतुर्थ निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे उपयुक्त नहीं है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार अर्च् पूजायां धातुसे घञ्[४२] प्रत्यय कर या अर्क् स्तवने धातुसे घञ् प्रत्यय कर अर्कः शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें अर्क शब्दका प्रयोग सूर्य, अकवनवृक्ष, स्फटिक, ताम्र, ब्रह्मा आदि अर्थोंमें पाया जाता है।[४३]

(३२) वंश :- इसका अर्थ होता है बांस। निरुक्तके अनुसार १- वंशो वनशयो भवति१ अर्थात् यह वनमें शयन करने वाला होता है इसलिए बांस कहलाता है। इसके अनुसार वंशः शब्दमें वन + शीङ् स्वप्ने धातुका योग है। २- वननाच्छ्रूयत इति वा[१] अर्थात् इसकी सेवा करनेसे शब्द सुना जाता है। वांसकी वांसुरीसे ध्वनि निकलती है। इसके अनुसार वंश शब्दमें वन् सम्भक्तौ धातुका योग है। वन् सम्भक्तौसे इसका निर्वचन मानने पर इसका अर्थ विभिन्न भागोंमें विभाजित भी माना जा सकता है[४४] क्योंकि बांस अपनी प्रत्येक गांठसे विभाजित होता है। अंतिम निर्वचनमें पाठान्तर प्राप्त होता है१-वननात्श्रयते१ इसके आधार पर वन्+श्रि धातुका योग है।इस आधार पर इसका अर्थ होगा- बांसकी सेवा करनेसे आश्रय प्रदान करता है।(इससे बांस की

उपयोगिता सिद्ध होती है। २- वननात् श्रूयते[१] इसके अनुसार वन् + श्रु धातुसे वंश बनता है। इस आधार पर इसका अर्थ होगा सेवा करनेसे ध्वनि सुनाई पड़ती है। यास्कका प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे संगत हैं। अर्थात्मक दृष्टिसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार वंश् कान्तौ धातुसे घञ्[४५] प्रत्यय कर एंवं नुम् का आगम कर वंश: शब्द बनाया जा सकता है या वन् सम्भक्तौ + श: = वंश: बनाया जा सकता हैं।

(३३) पवि :- इसका अर्थ होता है-स्थनेमि हाल, चक्रके चारों ओर लगे लौहवृत्त। निरुक्तके अनुसार पवि: स्थनेमिर्भवति। यद्विपुनाति भूमिम्[१] अर्थात् जो भूमिको उखाड़ती है वह पवि: कहलाती है। इसके अनुसार पवि: शब्दमें पू धातुका योग है। पू धातु विशरण एवं पवित्रीकरण अर्थमें होता है पवित्रीकरण अर्थ मानने पर पवि:का अर्थ होगा जो पवित्र करता है। यहां पू विशरणे धातुका ही योग माना जाएगा। यास्क निरुक्तके द्वादश अध्यायमें पवि:का अर्थ वज्र भी करते हैं।[४७] वज्र इन्द्रायुधका नाम है। वज्र वाचक पवि:के निर्वचनमें -पवि: शल्यो भवति यद्विपुनातिकृयम्[४७] अर्थात् पवि: शल्य (वज्र) होता है जो शरीरको विदारण करता है। पवि:के अर्थ सादृश्यके कारण ही इसके स्थ नेमि एवं वज्र दो अर्थ होते हैं। दोनों अर्थोंमें पू विदारणे धातुका योग माना गया है। स्थनेमि भूमिको फाड़ती है, वज्र भी शरीर एवं भूमिको फाड़ देता है। लौकिक संस्कृतमें पवि:का अर्थ वज्रही पाया जाता है।[४८] दोनों अर्थोंमें पवि:का निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार पूञ् पवने धातुसे इ:[४९] प्रत्यय कर पवि: शब्द बनाया जा सकता है।

(३४) धन्वन् :- धन्वन्का अर्थ अन्तरिक्ष होता है। निरुक्तके अनुसार- धन्वान्तरिक्षं धन्वन्त्यस्मादापः[१] अर्थात् इससे जल गिरते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें धन्व् गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसारभी इसे संगत माना जाएगा। लौकिक संस्कृतमें धन्वन् शब्दका अर्थ धनुष होता है। व्याकरणके अनुसार धवि गतौ + कनिन्[५०] प्रत्यय कर धन्वन् शब्द बनाया जा सकता है। धनुषमें भी गति होती है। अत: धनुषको भी धन्वन् कहा गया।

(३५)सिनम्:- इसका अर्थ होता है अन्न।निरुक्तके अनुसार-सिनमन्नं भवति सिनातिभूतानि।[१]अर्थात् इससेसभी प्राणीबंधेरहते हैंया यह प्राणियोंको बांधेरखता हैसभी प्राणी इसीके वशीभूत हैं।इसके अनुसार सिनम् शब्दमें षिञ् बंधने धातुसे औणादिक्

नक् प्रत्यय कर सिनम् शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं पाया जाता।

(३६) इत्था :- यास्कने इसके निर्वचनमें कहा है कि अमुथा शब्दसे ही इसकी व्याख्या हो गयी। अमुथा शब्दका निर्वचन निरुक्तके तृतीय अध्यायमें हुआ है। यथा असौ से अमुथा शब्दको माना गया है। यह निर्वचन अस्पष्ट है। व्याकरणके अनुसार इदम्-इ +था[५१] प्रत्ययसे इत्था शब्द बना है। व्यत्ययसे विभक्तिका डादेश होकर इत्था शब्द निष्पन्न है[५२]

(३७) सचा :- यह एक निपात है। यास्क मात्र इसका अर्थ स्पष्ट करते हैं- सचाका अर्थ होता है एक साथ। निर्वचन प्रक्रिया तथा भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त निर्वचन नहीं माना जाएगा। इसका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्राय: नहीं देखा जाता। भाषा विज्ञानके अनुसार इसमें सच् समवाये धातुका योग माना जाएगा। यास्क धातुका निर्देश नहीं करते हैं।

(३८) चित् :- यह भी एक निपात है तथा अनेकार्थक है। यास्क चित् निपातका विभिन्न अर्थोंमें प्रयोग कर अर्थ स्पष्ट करते हैं। आचार्यश्चिदिदं ब्रूयात्[५३] में चित् निपातका प्रयोग सम्मानार्थक है। दधिचित्[५३] में चित्का प्रयोग उपमार्थक हैं। कुल्माषांश्चिदाहर[५३] इसमें चित्का प्रयोग कुत्सितार्थक है। उपमार्थक चित् निपात अनुदात्त होता है। पशुके अर्थमें चित्का प्रयोग उदात्त होता है-अथापि पशुनामेह भवत्युदात्त: चिदसि मनासि धीरसि[५४] इस उद्धरणमें चित् पशु वाचक है तथा उदात्त है। चित्के निर्वचनमें यास्कका कहना है- चितास्त्वयि भोगाश्चेतयत्यइतिवा१ अर्थात् वह पशु भोगके लिए संचित है अत: चित् शब्दमें चि चयने धातुका योग है। अथवा यह चेतना देने वाली है। इस आधार पर इस शब्दमें चित् संज्ञाने धातुका योग है। चि या चित् धातुसे चित् शब्द माननेमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। निपातोंका निर्वचन करना यास्ककी अपनी विशेषता है। इन निर्वचनों से स्पष्टहो जाता है कि सभी निपात किसी न किसी धातुसे अवश्य निष्पन्न होंगे।

(३९) आ:- यह एक उपसर्ग है। यह भी कई अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। यास्क इसका कई अर्थोंमें प्रयोग दिखलाते हैं-देवेभ्यश्च पितृभ्य आ[५५] इस उदाहरणमें आ उपसर्ग समुच्चयार्थक है। अधिके अर्थमें भी आ उपसर्गका प्रयोग देखा जाता है-अभ्र आ अप:[५६]यहांआ उपसर्ग अधिके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है-मेघमें जलया जलमें मेघ।अधि का

अर्थ होता है (उसके) अन्दर। भाषा विज्ञान एवं निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार इसे उपयुक्त निर्वचन नहीं माना जाएगा।

(४०) द्युम्नम् :- इसका अर्थ होता है यश एवं अन्न। निरुक्तके अनुसार - द्युम्नम् द्योतते:[१] अर्थात् द्युम्न शब्द द्युत् दीप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यश एवं अन्न दोनों दीप्त होते हैं। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। द्युम्न शब्दमें म्न को प्रत्यय माना जाएगा। लौकिक संस्कृतमें यह शब्द धनका वाचक है।[५६] व्याकरणके अनुसार दिव् + म्ना + क: प्रत्यय कर द्युम्नम् शब्द बनाया जा सकता है।[५७]

(४१) पवित्रम् :- यह अनेकार्थक है। इसका शाब्दिक अर्थ है पूत। निरुक्तके अनुसार पवित्रं पुनाते:[५८] अर्थात् पवित्रम् शब्द पुञ् पवने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। मन्त्रको भी पवित्र कहा जाता है क्योंकि इससे देवता लोग अपनेको सदा पवित्र करते हैं। पवित्र करने वाले गुणसे युक्त होनेके कारण ही रश्मि, जल, अग्नि, वायु, सोम, सूर्य एवं इन्द्र पवित्रके नामसे अभिहित हैं। सूर्य रश्मि स्पर्श मात्रसे ही प्रत्येक वस्तुओंको पवित्र कर देती है। इसी प्रकार जलसे भी लोग पवित्र हो जाते हैं। अग्नि वायु सोमादिमें भी इसी प्रकार के पवित्र करने वाले गुण हैं। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा-विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार पुञ् पवने धातुसे इत्र प्रत्यय कर पवित्रम् शब्द बनाया जा सकता है।[५९] लौकिक संस्कृतमें पवित्र शब्द कुश, ताम्र, अर्थोपकरण आदिके लिए भी प्रयुक्त होता है।[६०]

(४२) तोद :- इसका अर्थ होता है-भूमि का छिद्र, कूप। निरुक्तके अनुसार- तोदस्तुद्यते:[५९] अर्थात् यह शब्द तुद् व्यथने धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह छिद्रित होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार तुद् व्यथने धातुसे घञ् प्रत्यय कर तोद: शब्द बनाया जा सकता है।[६१]

(४३) अरि :- यह शत्रु का वाचक है। निरुक्त के अनुसार-अरिर मित्र ऋच्छते: अर्थात् अरि: अमित्र को कहते हैं। इसके अनुसार अरि: शब्द ऋच्छ् गतौ धातु के योग से निष्पन्न होता है। जो शत्रुओं के प्रति गमन करता है उसे अरि: कहते हैं। इसी निर्वचनके अनुसार ईश्वर (देवता) भी अरि: कहे जाते हैं- ईश्वरोऽप्यरि रेतस्मादेव[५९] गति करने के कारण, सभी भूत इनके प्रति गमन करते हैं या ये सभी भूतों के प्रति गमन करते हैं अत:

अरि: कहलाते हैं। इस निर्वचनमें ऋ धातुका गुण होकर अर तथा अरि: बन गया है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह उपयुक्त माना जाएगा। लौकिक संस्कृतमें अरि: शब्द ऋ हिंसार्थक धातुके योग से निष्पन्न माना जाता है। व्याकरणके अनुसार ऋ धातु से इ:१ प्रत्यय कर अरि: शब्द बनाया जा सकता है।दुर्गाचार्य अरि:शब्दमें हिंसार्थक ऋ धातुका योग मानते हैं।[२]

(४४) स्वञ्चा :- इसका अर्थ होता है-सुन्दर गमन युक्त। निरुक्तके अनुसार-स्वञ्चा: सु अञ्चना:[५८] अर्थात् सुन्दर गति वाला। इसके अनुसार इस शब्दमें सु+अञ्च गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जाएगा।

(४५) शिपिविष्ट :- यह विष्णुका नाम है। निरुक्तके अनुसार-शिपिविष्ट विष्णुरिति विष्णोर्द्वे नामनी भवत:। कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यव:। अर्थात् शिपिविष्ट एवं विष्णु विष्णुके दो नाम हैं। आचार्य औपमन्यवके अनुसार प्रथम नाम अर्थात् शिपिविष्ट कुत्सित अर्थ रखने वाला है। इसके निर्वचनमें कहा गया है- शेप इव निर्वेष्टित:[५९] अर्थात् शेप (शिश्न) के समान निर्वेष्टित (नग्न))। यह अप्रख्यापनीय नाम है। शिपिविष्टका उत्तम अर्थ भी किया गया है जो सबजगह ग्रहण करने योग्य है। शिपिविष्टका अर्थ होगा पूर्ण, रश्मियों से युक्त। शिपयोडत्र रश्मय उच्यन्ते तैराविष्टो भवति अर्थात् शिपि रश्मिका वाचक है तथा उन रश्मियोंसे युक्तको शिपिविष्ट कहा जाता है। दोनोंही निर्वचन विष्णु (आदित्य) के अर्थमें संगत हैं। प्रथम निर्वचनके सम्बन्धमें औपमन्यवका कहना है कि यह अश्लील अर्थ प्रकट करने वाला है। यास्क आदित्यके अर्थमें शेप इव निर्वेष्टित:का अर्थ अप्रतिपन्न रश्मि करते हैं।[५९] अप्रतिपन्न रश्मि कहनेका तात्पर्य है कि सूर्य सूर्योदय कालमें किरणोंसे पूर्ण वेष्टित नहीं रहते। मात्र प्रकाश स्वरूप (शेप) ही रहते हैं।[६४] अत: यास्कके अनुसार इसका अर्थ कुत्सित नहीं है। शिपि +विश् + क्त = शिपिविष्ट: द्वितीय निर्वचनमें शिपि +आविष्टि: शिपि +विश् +क्त। दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे सम्पन्न हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार यह सामासिक शब्द माना जाएगा। शेपैराविष्ट: शिपिविष्ट:। लौकिक संस्कृतमें शिपिविष्ट शब्दका प्रयोग रोग आदिके कारण झड़े बाल वाले खल्वाट, खराब चमड़े वाला, शिव, विष्णु आदिके अर्थमें होता है।[६५]

(४६) वर्प :- यह रूपका नाम है। निरुक्तके अनुसार वर्प इति रूपनाम।

वृणोतीति सत:[५५] अर्थात् यह वस्तुओंको आवृत कर लेता है। इसके अनुसार इस शब्दमें वृञ्वरणे धातुका योग है। इस निर्वचनमें ध्वन्यात्मक शैथिल्य है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत नहीं माना जाएगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: देखा नहीं जाता है।

(४७) तवस: :- यह शब्द महत्का पर्याय है। निरुक्तके अनुसार-तवस इति महतो नामधेयम्।[५६] उदितो भवति अर्थात् यह उदित होता है। यह निर्वचन अस्पष्ट है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जाएगा। इस शब्दका धातु प्रत्यय पूर्णतया अस्पष्ट है। ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण तथा संगत प्रतीत नहीं होता।

(४८) आघृणि: :- इसका अर्थ होता है प्रदीप्त। निरुक्तके अनुसार-आघृणि: आगतह्रणि:[५७] अर्थात् क्रोध या दीप्तिको प्राप्त। इसके अनुसार आघृणि: शब्दमें आ + ह्रणि: का योग है। आ आगतका वाचक है तथा ह्रणि: दीप्ति या क्रोध का।[५८] ह्रणि: स्थित ह का घ वर्ण विपर्ययके द्वारा हो गया है। ह वर्णका महाप्राण वर्णमें परिवर्तन अन्य शब्दोंमें भी पाया जाता है-हन्का जघान आदि। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार यह सामासिक शब्द है-आगतो घृणिर्दीप्तिरस्य।

(४९) पृथुज्रया :- इसका अर्थ होता है प्रवल वेगवाला। निरुक्तके अनुसार-पृथुज्रया: पृथुजव:[५९] अर्थात् पृथु वेगवाला। इसके अनुसार पृथु ज्रया शब्द में पृथु+ ज्रि धातुका योग है। ज्रि धातु निघण्टु पठित है जो गति अर्थमें है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार पृथु +ज्रि +अशुन् प्रत्यय कर पृथुज्रयस्- पृथुज्रय: पृथुज्रया शब्द बनाया जा सकता है।

(५०) अथर्यु :- इसका अर्थ होता है सततगमनशील। निरुक्तके अनुसार-अथर्युम् अतनवन्तम्[६०] अर्थात् अथर्यु शब्द अत् सातत्यगमने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा जाने वाला। अत् - अथस् +यु: = अथर्यु:। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे भी यह उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता। अथर्युमें यु तद्वान् अर्थमें प्रत्यय है धातु स्थित त का थ महाप्राणीकरण है जो भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत है। अध्वर्यु:[६१] इदंयु:[६२]आदि शब्दोंमें भी यु प्रत्यय ही है।(अत्-अतर् +यु: = अतर्यु: अथर्यु:)

(५१) दीधितय :- यह अंगुलिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - दीधितयोऽगुंलयो भवन्ति, धीयन्ते कर्मसु।[५८] अर्थात् इन्हें कार्योंमें लगायी जाती है। अत: दीधितय:का अर्थ होता है अंगुलियां। इसके अनुसार इस शब्दमें धी आधारे धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा। लौकिक संस्कृतमें दीधिति किरणके अर्थमें प्रयुक्त होता है। व्याकरणके अनुसार इसे दीधिङ् दीप्तिदेवनयो: धातुसे क्तिच[६९] प्रत्यय कर बनाया जा सकता है। यास्कने निरुक्तके तृतीय अध्यायमें दीधितिका अर्थ विधान किया है।[७०] विधान वाचक दीधिति:के लिए भी यह निर्वचन उपयुक्त माना जा सकता है।

(५२) अरणी :- इसका अर्थ होता है काष्ठ विशेष, अग्नि पकड़ने वाली लकड़ी जिसके संघर्षणसे यज्ञकी अग्नि निकलती है। निरुक्तके अनुसार १- अरणी प्रत्यृत एने अग्नि:[५८] अर्थात् इन दोनों में अग्नि वास होता है दो लकड़ियां परस्पर संघर्षणसे अग्नि प्रकट करती हैं, दोनोंमें ही अग्नि का वास है।[७१] कार्यानुकूल कारणकी संभावना उपयुक्त है। इन निर्वचनोंके अनुसार अरणी शब्दमें ऋ गतौ धातुका योग है। २- सरणाज्जायत इति वा[५८] अर्थात् संघर्षसे अग्नि जन्म लेती है। इसके अनुसार इस शब्दमें भी ऋ गतौ धातुका योग है। ऋ धातुका अर् गुण होकर आया है जो दोनों निर्वचनोंमें है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार दोनों निर्वचनोंको संगत माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार ऋ गति प्रापणयो: धातुसे अनि:[७२] प्रत्यय कर अरणी शब्द बनाया जा सकता है।

(५३) काणुका :- यह अनेकार्थक है एवं सरांसि तथा इन्द्रके विशेषणके रूपमें प्रयुक्त हैं। यास्क दोनोंके विशेषणके रूपमें अलग-अलग निर्वचन करते हैं। सरांसिके अर्थमें काणुकाके निर्वचन १- काणुका कान्तकानीति वा[५८] अर्थात् प्रिय सरोवर। इसके अनुसार काणुका शब्दमें कमु कान्तौ धातुका योग है। कम् क्त कान्त + क = कान्तक काणुक - काणुका। २- क्रान्तकानीतिवा[५८] अर्थात् ऊपर तक पूर्ण रूपमें भरे हुए (लवालव) सरोवर।[७३] इसके अनुसार इसमें क्रमु पाद विक्षेपे धातु का योग है-क्रम् + क्त-क्रान्त+क=क्रान्तक -काणुका-काणुका। ३-कृतकानीतिवा[५८] अर्थात्ऋत्विजों द्वारा संस्कार किया गया सरोवर। इसके अनुसार इस शब्दमें कृ करणे धातुका योग है-कृ+क्त - कृत +क = कृतक-काणुक - काणुका। इन्द्रके विशेषणके रूपमें काणुकाके निर्वचन १- इन्द्र: सोमस्य कान्त इतिवा १ अर्थात् इन्द्र सोमका कान्त है या प्रिय है। इसके अनुसार

कमुकान्तौ से कम् +क्त - कान्त - कान्तक - काणुक - काणुका। २- कणे धात इतिवा१ अर्थात् इच्छा भर पान करने वाला। इसके अनुसार काणुका शब्दमें कण ₹ हन् धातुका योग है - कणे धातः- काणुकः ३- कणे हत इतिवा१ अर्थात् यह कणे घातःका ही अर्थ रखने वाला है। इसमें भी कण + हन् धातुका योग है। यास्कने विभिन्न अर्थोंकी उपलब्धिके लिये इतने निर्वचन प्रस्तुत किये। सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। ध्वन्यात्मक आधार किसीभी निर्वचनका उपयुक्त नहीं है। भाषा विज्ञान के अनुसार इन्हें उपयुक्त नहीं माना जाएगा। व्याकरणके अनुसार कण् गतौ धातुसे उकञ् प्रत्यय कर काणुक - काणुका शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग प्रायः नहीं प्राप्त होता।

(५४) अधिगु :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तमें कई अर्थोंमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं। मन्त्रके अर्थमें अधिगुःका प्रयोग भी होता है। अधिगुः मन्त्रो भवति गव्यधिकृतत्वात्[५८] अर्थात् वेदवाणीमें अधिकृत होनेके कारण अधिगुः कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें अधि ₹ गो का योग है। अधि +गाऽ=अधिगुः अधिगुः। २- अपि वा प्रशासनमेवाभिप्रेतं स्यात्। तच्छब्दत्वात्[५९] अर्थात् अधिगु का अर्थ प्रशासक या राजा भी होता है क्योंकि प्रशासन उसे अभिप्रेत रहता है। उसी शब्दसे इस अर्थमें भी निर्वचन मान लिया जाएगा-गवि अधिकृतः भूमौ अधिकृतः। इसमें भी अधि ₹ गो का योग है। अधिगुःका अर्थ अग्नि भी होता है। ३- अग्निरप्यधिगुरुच्यते। अधृतगमनः१ अर्थात् यह बाधा रहित गमनवाला होता है। इसके अनुसार (न) अ +धृ +गम् =का योग होकर अधिगुः शब्द बना है। इन्द्र को भी अधिगुः कहा जाता है- ४- इन्द्रोऽप्यधिगुरुच्यते अधिगवः[६४] अर्थात् वह सदा गमनशील होता है इसलिए इन्द्रभी अधिगु कहे जाते हैं। इसके अनुसार अधिगुः शब्द में अधि ₹ गम् धातुका योग है। तृतीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा। शेष निर्वचनों का अर्थात्मक महत्त्व है। डा. वर्मा[७५] इन निर्वचनोंको अस्पष्ट मानते हैं। इनका कहना हैकि यह निर्वचन धिगु शब्दके कल्पित प्रयोग पर आधारित है। अवेस्तामें द्रिगु- Drigu शब्द बलहीनका वाचक है। अतः अधिगुःका अर्थ होगा बलसम्पन्न, बलहीनतासे रहित। नाइसरने भी अपने ऋग्वेद कोषमें धिगुको बलहीन की माना है। यास्कके निर्वचनों में तृतीयके अतिरिक्त सभी निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टि से अपूर्ण हैं। व्याकरणके अनुसार अधि +गम् +कुः प्रत्यय कर अधिगुः शब्द बनाया जा सकता है।

(५५) **आङ्गूष :-** यह स्तोमका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - आङ्गूषः स्तोम आघोषः[५८] अर्थात् यह उच्चस्वरसे गाया जाता है। अतः स्तोमको आङ्गूष कहा जाता है। इसके अनुसार आघोष शब्दही परिवर्तित होकर आंगूषहो गया है - आघोष - आंघूष। इस आंगूष शब्दमें आ + घुष् विशब्दने धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अगि +ऊषच् +स्वार्थे अण् प्रत्यय कर आंगूषः शब्द बनाया जा सकता है।

(५६) आपातमन्यु :- इसका अर्थ होता है तेजयुक्त या क्रोधयुक्त। निरुक्तके अनुसार - आपातमन्युः आपातितमन्युः[५९] अर्थात् जिसका क्रोध उत्पन्न हो चुका है या जिसका तेज प्रकटहो चुका है। इसके अनुसार आपातमन्युः शब्दमें दो पद खण्ड हैं - आपात आपातितका वाचक है तथा मन्युः दीप्तिः या क्रोधका वाचक है।[६६] यह सामासिक शब्द है इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(५७) तूप्रहारी :- इसका अर्थ होता है शीघ्र प्रहार करने वाला। निरुक्तके अनुसार तूप्रहारी क्षिप्रहारी, तूप्रप्रहारी[५९] अर्थात् जो शीघ्र आक्रमण करे या शीघ्र प्रहार करे। तू प्रहारी शब्दमें दो खण्ड है - प्रथम खण्ड तू - क्षिप्र या सूप्रका वाचक है। द्वितीखण्ड प्रहारी है। दोनों खण्डोंके योगसे तूप्रहारी शब्द बना है। यह सामासिक शब्द है तथा सोम एवं इन्द्रके विशेषणके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। सोमो वा इन्द्रोवा[५९] सूप या क्षिप्रसे तू मान लेना ध्वन्यात्मक शौथिल्य होगा। इस निर्वचनका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत नहीं माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता है।

(५८) धुनिः- इसका अर्थ होता है कंपाने वाला। निरुक्तके अनुसार - धुनिः धुनोतेः[५९] अर्थात् यह शब्द धू कम्पने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह कंपा देने वाला होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें धुनी शब्द प्राप्त होता है जो नदी वाचक है।[७७] व्याकरणके अनुसार धू कम्पने धातुसे क्विप्+नुक्+ ङीप् प्रत्यय कर धुनी शब्द बनाया जा सकता है[७९] क्योंकि नदी भी वेतसोंको कंपा देती है।

(५९) शिमी :- यह कर्मका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - शिमीति कर्म नाम। ९- शम्यतेर्वा[५९] अर्थात् यह शब्द शम् उपशमे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि

यह अनिष्टका शमन करता है। २- शक्नोतेर्वा अर्थात् यह शब्द शक् सामर्थ्ये धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है क्योंकि कर्मसे मनुष्य सामर्थ्यवान् होता है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे शिथिल है।

(६०) ऋजीषी :- इसका अर्थ होता है सोम। निरुक्तके अनुसार - ऋजीषी सोमः यत्सोमस्य पूयमानस्यातिरिच्यते तद् ऋजीषम्। अपार्जितं भवति।[५८] अर्थात् जो पवित्र किए गये सोमका अवशिष्ट भाग रह जाता है वह ऋजीष कहलाता है यह अवशिष्ट भाग फेंक दिए जाते हैं वह अपार्जित या अवशिष्टसे युक्त होनेके कारण ऋजीषी कहलाता है जो सोमका वाचक है। इसके अनुसार ऋजीषी शब्दमें अर्ज् अर्जने धातुका योग है - अर्ज् - अज् +ईष् +ऋजीषी। ऋजीषीका अर्थ इन्द्र भी होता है - अथाप्येन्द्रो निगमो भवति।[५८] ऋजीषीका प्रयोग इन्द्रके अर्थमें ऋग्वेदमें प्राप्त होता है - ऋजीषी वज्री।[५९] ऋजीषीका अर्थ होगा सोमका अवशिष्टांश खाने वाला। इन्द्राश्व तथा उससे युक्तको ऋजीषी कहा जायगा। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अर्ज् धातुसे ऋज् + ईषन्[६०] +ऋजीष - ऋजीषी बनाया जा सकता है।[५८]

६१) धाना :- इसका अर्थ होता है भुने हुए जौ। निरुक्तके अनुसार १- धाना भ्राष्टे हिता भवन्ति[५८] अर्थात् ये भांड़में भुने जाते है। यह घोड़ेका भोज्य है। इसके अनुसार इस शब्दमें धा धातुका योग है। २ - फले हिता भवन्तीतिवा[५८] अर्थात् ये फलक पर रखे जाते है। इसके अनुसारभी धाना शब्दमें धा धातुका योग है। उपर्युक्त दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें भी धाना शब्द भुने हुए जौके लिए प्रयुक्त होता है।[८१] व्याकरणके अनुसार डुधाञ् धातुसे नः[८२] प्रत्यय कर धानः धानाः बनाया जा सकता है।

(६२) बब्धाम् :- इसका अर्थ होता है भक्षण करें। निरुक्त के अनुसार आदिनाभ्यासेनोपहितेनोपधामादत्ते। बभस्तिरतिकर्मा।[५८] अर्थात् यह शब्द भस् भक्षणे धातु के आदि स्थित अभ्यास वर्ण को उपस्थापित कर तथा उपधा को निकाल कर बनाया जाता है। भस् धातुका अभ्यास - भस् - भस् + ताम् - भ + भस्ताम् - बभस् ताम् - बब्धाम् इस शब्दमें भस् धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात् आधार उपयुक्त है। धातु

पाठमें यद्यपि भस् धातु भर्त्सनदीपयोः अर्थात् निन्दा करना तथा चमकना अर्थमें प्रयुक्त होता है। इससे धातुओंकी अनेकार्थता स्पष्ट है। प्रारंभिक अवस्थामें भस् धातु भक्षण अर्थमें था। कालान्तरमें इसका अर्थ विस्तार या अर्थ परिवर्तन पाया गया। भक्षण अर्थमें भस् धातुसे निष्पन्न शब्द क्षेत्रीय भाषाओंमें उपलब्ध होते है - मगही - भस् - भकोसना, भसकाना (खानेके अर्थमें) आदि। व्याकरणके अनुसार भस् - भस् +ताम् - भ - भस् - ताम् - ब - भस् ताम् - भस् धातु स्थित उपधा लोप बभस- सकारलोप एवं भ् का ब्, त् का ध् कर बब्धाम् बनाया जा सकता है।[८३]

(६३) श्मशा :- इसका अर्थ होता है कुल्या तथा नाड़ी। निरुक्तमें दोनों अर्थोमें इसके निर्वचन प्राप्त होते हैं १ - श्मशा शु अश्नुत इति वा[५८] यह नदी या कुल्या शीघ्रतासे व्याप्त हो जाती है, फैल जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें शु +अश् व्याप्तौ धातुका योग है। २ - श्म अश्नुते इतिवा अर्थात् नाड़ीके अर्थमें श्मशा शरीरको व्याप लेनेके कारण कहलाती है।[८४] इसके अनुसार श्म - (शरीर) +अश् व्याप्तौ धातुका योग है। द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार द्वितीय निर्वचनही संगत है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे शिथिल है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग उपर्युक्त अर्थमे प्रायः नहीं देखा जाता।

(६४) उर्वशी :- यह अनेकार्थक है। यह अप्सरा विद्युत् तथा स्त्रीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार १- उर्वश्यप्सरा, उर्वम्यश्नुते[८५] स्त्रीके अर्थमें वह महान् गुणों से व्यापक होती है। विद्युत्के पक्षमें वह चारों ओर व्याप्त होती है। इसके अनुसार इस शब्दमें उरु +अश् व्याप्तौ धातुका योग है- उरु +अशू उर्वश् +ङ्न् उर्वशिः +ङीष् = उर्वशी:। २- ऊरुभ्यामश्नुते[८५] स्त्रीके पक्षमें अपनी दोनों ऊरूओं जंघाओं से पुरूषों को व्याप्त कर लेती है[८६] या ज्ञान एवं कर्मसे पुरूषों को व्याप्त कर लेती है। विद्युत् के पक्षमें -यह दो बड़े-बड़े पदार्थों से व्याप्त होती है, शैत्य एवं उष्ण धाराओं के संयोग से व्याप्त हो जाती है।[८७] इसके अनुसार उर्वशी शब्द में ऊरु+ अश् व्याप्तौ धातुका योग है। ३-उरुर्वा वशोऽस्याः[८५] स्त्री के पक्ष में इसकी कामना (वशः) महान् होती है या स्त्रीके अधीन गृहकी सारी स्थितियां रहती हैं। विद्युत् के पक्षमें - संसारकी स्थिति प्रायः विद्युत् के वश में है। इसके अनुसार उर्वशी शब्दमें उरु+ वश् -उरुवशी- उर्वशी - उर्वशी। उपर्युक्त सभी निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे

संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें उर्वशी स्वर्गलोककी अप्सरा (वेश्या) का नाम है।[८८] विद्युत्के अर्थमें उर्वशीका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता। व्याकरणके अनुसार उरु + अश् +अण् = उर्वश -उर्वशी शब्द बनाया जा सकता है।[८९]

(६५) अप्सरा :- यह स्त्री विशेष (जलपरी) तथा विद्युत्का वाचक है। दोनोंही अर्थोमें इसके निर्वचन निरुक्तमें प्राप्त होते हैं - अप्सरा अप्सारिणी[९५] अर्थात् जलमें चलने वाली। (स्त्री) जलमें चलने वाली होती है। विद्युत्भी जलमें चलने वाली होती है। पनविजली जलसे ही संचालित होती है। अपंका अर्थ जलके अतिरिक्त कर्म भी होता है इसके अनुसार अर्थ होगा स्त्रियां कर्ममें लगी रहने वाली होती हैं। इसके अनुसार अप्सरा शब्दमें अप् ₹ सृ गतौ धातुका योग है। अप्सरा शब्दको अप्सु जलेषु कर्मसु वा सर्तुं शीलं यस्याः सा अप्सरा कहा जा सकता है। अपि वाप्स इति रूप नाम[९५] अर्थात् अप्स रूपका नाम है क्योंकि यह रूप भक्षणीय नहीं होता - अप्सानीयं भवति[९५] अर्थात् प्सा भक्षणे धातु नञर्थ से युक्त होकर अ+ प्सृ अप्स बना जिसका अर्थ होता है अभक्षणीय। आदर्शनीयं व्यापनीयं वा अर्थात् यह दर्शनीय होता है तथा व्यापनीय होता है। स्त्री एवं विद्युत् दोनों ही भक्षणीय नहीं हैं दर्शनीय एवं व्यापनीय है। स्पष्टं दर्शनायेति शाकपूणिः शाकपूणिका भी कहना है कि यह स्पष्टदर्शनके लिए होता है। अप्सका प्रयोग अभक्ष्यके अर्थमें तथा व्यापकके अर्थमें वैदिक साहित्यमें देखा जाता है। तद्रा भवति रूपवती अर्थात् वह रूपको ग्रहण किए रहती है यह विद्युत् एवं स्त्री दोनोंके अर्थमें संगत है। इसके अनुसार अ+ प्सा भी माना जा सकता है - अप्स (रूप)+ रा दाने = अप्सरा। अप्स से मतुप् अर्थ में र प्रत्यय भी माना जा सकता है अप्स - र+टाप् = अप्सरा। तदनयातमिति वा अर्थात् यह रूप इसके द्वारा ग्रहण किया हुआ रहता है। तदस्यै दत्तमितिवा[९५] अर्थात् वह रूप उसके लिए दिया गया रहता है। विद्युत् एवं अप्सरा स्त्रीके द्वारा रूप ग्रहण किया रहता है या ये रूपवती होती हैं। यास्कके प्रथम निर्वचन अप् +सृ गतौ तथा द्वितीय निर्वचन अप्स +रा दाने धातुके योगसे निष्पन्न है। निश्चय ही दोनोंके ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त हैं। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे भी ये निर्वचन संगत हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें अप्सरा स्वर्गलोक की वेश्याका नाम है।[९०] अतिशय सौन्दर्य के कारणही स्वर्ग लोककी वेश्या अप्सरा कहलाई। गुण एवं कर्म सादृश्य के कारण ही यह स्त्रीका वाचक भी है। व्याकरणके अनुसार इसे अद्भ्यः सरन्ति इति अप्सरा - अप् +सृ +असुन् प्रत्यय कर अप्सरस् अप्सरा शब्द बनाया जा सकता है।[९१] जिसका

अर्थ होगा जलपरी।

(६६) द्रप्स :- इसका अर्थ होता है जल या वीर्य। निरुक्तके अनुसार द्रप्सः संभृतः प्सानीयो भवति[८५] अर्थात् यह इक्कठा किया हुआ होता है। प्सानीयका अर्थ होता है भक्षणीय। यह वीर्य स्त्री योनिका भक्षणीय होता है। इसके अनुसार इसमें भृ भरणे द प्सा भक्षणे धातुओंका योग है। यह भरणीय या भक्षणीय होता है। अतः दो धातुओंका योग दिखलाया गया - भृ + प्सा = द्रप्सः[९२] (वर्ण परिवर्तन) ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह निर्वचन किंचित् शिथिल है। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें द्रप्सका अर्थ शिथिल दधि होता है।[९३] इसे व्याकरणके अनुसार दृप् हर्षादौ धातुसे सः प्रत्यय कर द्रप्सः माना जा सकता है।

(६७) पुष्करम् :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तमें अन्तरिक्ष, उदक, कमल आदिके अर्थमें इसका निर्वचन हुआ है। अन्तरिक्षके अर्थमें - पुष्करमन्तरिक्षं पोषति भूतानि[८५] अर्थात् वह प्राणियोंका पोषण करता है अतः अन्तरिक्षको पुष्कर कहते है। इसके अनुसार इसमें पुष् +कृ धातुओंका योग है। पुष् +कृ - पुष् +कर् - पुष्कर। उदकके अर्थमें - पुष्करमुदकं पूजाकरं पूजयितव्यम् वा अर्थात् यह पूजा सम्पादित करने वाला तथा प्राणियोंके द्वारा पूज्य है। कार्य सम्पादनमें जलका अत्यधिक महत्त्व है। जलमें देवताका वास (वरुण) रहनेके कारण धार्मिक दृष्टिसे भी जल पूज्य है इसके अनुसार इस शब्दमें पूज् + कृ धातुका योग है- पूज् - कृ - पूज -कर = पुष्कर। कमलके अर्थमें इदमपीतरत् पुष्करमेतस्मादेव पुष्करं वपुष्करं वा[८५] अर्थात् कमल वाचक पुष्कर शब्द भी इसीसे निष्पन्न होगा क्योंकि वह पूजाके लिए उपयुक्त होता है एवं पूज्य तथा शरीरकी शोभाको बढ़ाने वाला होता है। कमलपुष्पसे व्यक्ति अपने शरीरको सजाता है या अलंकृत करता है अतः वपुष्कर ही पुष्कर बन गया।[९४] वपुः +कृ धातुका योग इस शब्दमें स्पष्ट है- वपुः + कृ - कर - वपुष्कर - पुष्करम् - वपुःके आद्यक्षरका लोप इसमें पाया जाता है। यास्कका अन्तरिक्ष वाचक निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। उदकके अर्थमें भी इसी निर्वचनको माना जा सकता है क्योंकि जलसे भी प्राणियों का पोषण होता है। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। वपुष्करसे पुष्कर शब्द में आदि व्यंजन लोप पाया जाता है। व्याकरण के अनुसार पुष् पुष्टौ + करन् प्रत्यय कर पुष्कर शब्द बनाया जा सकता है।[९५] पुष्कर शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें इन अर्थोके अतिरिक्त करिकराग्र, वाद्य, भाण्ड, नख, खड्ग आदि अर्थोमें

भी पाया जाता है।[९६]

(६८) पुष्पम् :- इसका अर्थ होता है - फूल। निरुक्तके अनुसार - पुष्पं पुष्पतेः[८५] अर्थात् यह शब्द पुष्प् विकसने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह विकसित होता है, खिलता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यह धातुज सिद्धांत पर आधारित है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पुष्प् विकसने धातुसे अच् प्रत्यय कर पुष्पम् शब्द बनाया जा सकता है।[९७]

(६९) वयुनम् :- यह कान्ति या बुद्धिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञावा[८५] अर्थात् यह शब्द वी गत्यादौ धातुसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। वी धातु कान्त्यर्थक एवं प्रज्ञार्थक भी है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वय् + उ नन् प्रत्यय कर वयुनम् शब्द बनाया जा सकता है।

(७०) वाजस्पत्यम् :- यह सोमका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - वाजस्पत्यं वाज पतनम्[८५] अर्थात् वाजका अर्थ होता है अन्न या वल तथा वाज अन्न या वलका आधान कराने वाला वाजस्पत्यम् कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें वाज+पत् धातुका योग है- वाज+पत् = वाजपत् - वाजस्पत्य। अन्न या भोज्य समझ कर जिस ओर दौड़ा जाता है उसे वाजस्पत्यम् (सोम) कहा जाता है।[९८] देवता सोमको भोज्य या पेय समझकर उस ओर दौड़ पड़ते हैं। सोम देवताओंका प्रमुख भोज्य है। यह निर्वचन समास पर आधारित है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसारभी इसे संगत माना जायगा।

(७१) वाजगन्ध्यम् :- यह सोम, दूध, दही, घृत आदिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वाजगन्ध्यं गध्यत्युतरपदम्[८५] अर्थात् गध्य उतर पदसे वाजगंध्य कहलाता है। गध्यका अर्थ होता है मिश्रित या ग्राह्य। इस प्रकार वाजगंध्य का अर्थ होगा बलके लिए मिश्रित सोमादि या बलके लिए ग्राह्य पदार्थ।[९९] इसके अनुसार इस शब्दमें वाज+ गध् मिश्रीकरणे, या ग्रहणे धातुका योग है। यह सामासिक शब्द है। इस निर्वचनमें यास्कने मात्र इसके उतर पदका निर्देश किया है। पूर्व पद पूर्व विवेचित तथा स्पष्ट होनेके कारण यहां विवेचित नहीं हुआ है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे भी संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः

नहीं देखा जाता।

(७२) गध्यम् :- इसका अर्थ होता है ग्राह्य। निरुक्तके अनुसार - गध्यं गृह्णातेः[१] अर्थात् यह शब्द ग्रह् उपादाने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह ग्रहण करने योग्य होता है इसलिए गध्य कहा जाता है। इसमें ह् ध्वनिका महाप्राण वर्ण ध् में परिवर्तन या ध्वनि विकास कहा जा सकता है। यास्क गध्यमें गध् मिश्रीकरणे धातुका भी संकेत करते है - गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा[८५] इसके अनुसार गध्यम् शब्दमें गध् धातुका योग है। गध् धातुसे गध्य माननेमें ध्वन्यात्मक उपयुक्तता पूर्ण रूपमें रहती है। भाषा विज्ञानके अनुसार गध् धातुसे ही गध्य मानना ज्यादा उपयुक्त होगा। अर्थात्मकताकी दृष्टिसे दोनों धातुओंकी मान्यता दी जा सकती है। व्याकरणके अनुसार गध् +यत् गध्यम्, ग्रह् + यत् = गध्यम् शब्द बनाया जा सकता है।

(७३) गधिता :- इसका अर्थ होता है - सम्मिश्रित, मिला हुआ। निरुक्तके अनुसार - गध्यतिः मिश्रिभाव कर्मा[८५] अर्थात् यह शब्द मिश्रित करना अर्थ वाली गध् धातुसे निष्पन्न होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें गध् धातुकी प्राप्ति नहीं होती है। यह वैदिक धातु है। गधिता शब्दका प्रयोगभी लौकिक संस्कृतमें नहीं देखा जाता। व्याकरणके अनुसार इसे गध् +क्त गधितः गधिता शब्द बनाया जा सकता है।

(७४) कौरयाण :- इसका अर्थ होता है - तैयार रथ या सुसज्जित रथ या सुसज्जित रथ वाला। निरुक्तके अनुसार - कौरयाणः कृतयानः[८५] अर्थात् संस्कृत १०० या सज्जित रथ इस शब्दमें दो पद खण्ड हैं कौर + याणः। कौर कृतका वाचक है जिसमें कृ धातुका योग है तथा याणः वाहन, यान या सवारीका वाचक है। यह सामासिक शब्द है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह निर्वचन किंचित् शिथिल है। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।

(७५) तौरयाण :- इसका अर्थ होता है शीघ्र गामी रथ वाला। निरुक्तके अनुसार तौरयाणः[८५] अर्थात् तीव्र गति वाला यान या तीव्रगति वाला रथ है जिसका वह। इस शब्दमें दो पदखण्ड हैं - तौर+ याणः। तौर तूर्ण का वाचक है जो तूर् धातुके योग से निष्पन्न होता है। याणः यानका वाचक है। तूर्णयानः ही तौरंयाणः बन गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे

उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार यह सामासिक शब्द है - तूर्ण यानमस्य - तूर्णयानः तौरयाणः।

(७६) अह्रयाण :- इसका अर्थ होता है अशिथिल यान या अशिथिल यानवाला। निरुक्तके अनुसार - अह्रयाणः अह्रीतयानः[८५] अर्थात् लज्जासे रहित गमन युक्त रथ। इसके अनुसार यह शब्द न - अ +ह्री लज्जायां +यानके योगसे निष्पन्न है। अह्रीतयानसे ही अह्रयाणः शब्द बन गया। अ +ह्री = अह्र+यान अह्रयाणः। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे सामासिक शब्द माना जायगा। अह्रीतं यानमस्य अह्रयानः।

(७७) हरयाण :- इसका अर्थ होता है (शत्रुओं को) हरण करने वाला यान या शत्रुओंको हराने वाला यानसे युक्त। निरुक्तके अनुसार हरयाणो हरमाणंयानः[८५] अर्थात् यह शब्द हृ हरणे धातु +मान् +यान से निष्पन्न है- हृ का हर +मान (लोप) +यानः हरयानः हरयाणः। इसमें मतुप्, प्रत्यय का लोप हो गया है तथा हृ का हर गुण होकर आया है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरण के अनुसार इसे सामासिक शब्द माना जायगा-हरमाणं यानमस्य हरयाणः।

(७८) आरितः- इसका अर्थ होता है पहुंचा हुआ। निरुक्तके अनुसार-आरितः प्रत्यृतः स्तोमान्[८५] अर्थात् स्तोम के लिए गया हुआ। इसके अनुसार इस निर्वचनमें ऋ गतौ धातुका योग है-ऋ यङ् लुक् +क्त =ऋ - अर् +यङ लुक् +क्त आरितः। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता है।व्याकरणके अनुसार भी ऋगतौ धातुसे यङ लुक् +क्त प्रत्यय कर आरितः शब्द बनाया जा सकता है।

(७९) व्रन्दी :- इसका अर्थ होता है-कोमलता से युक्त। निरुक्तके अनुसार - व्रन्दी व्रन्दतेर्मृदुभावकर्मणः[८५] अर्थात् यह शब्द मृदु भावार्थक व्रन्द् धातु से निष्पन्न होता है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्रन्द् धातु वैदिक धातु है। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(८०) निष्पी :- इसका अर्थ होता है कामी, व्यभिचारी। निरुक्तके अनुसार निष्पी स्त्री कामो भवति विनिर्गतः सपः[८५] अर्थात् यह स्त्री कामी होता है। वह विनिर्गत

सप वाला होता है।[१०१] सप का अर्थ होता है उपस्थेन्द्रिय। जिसका उपस्थेन्द्रिय सदा उत्थित रहता है[१०२] उसे निष्पी कहा जाता है। इस निर्वचन के अनुसार निष्पी शब्द में निः + सप् स्पर्शने धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। यह सामासिक शब्द है निर्गतः सपः यस्य स निष्पी।

(८७) सप :- यह उपस्थेन्द्रिय का वाचक है। निरुक्तके अनुसार-सपः सपतेः स्पृशति कर्मा[८५] अर्थात् सपः शब्द स्पर्श करना अर्थ वाले सप् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इससे स्त्री योनि स्पर्श की जाती है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरण के अनुसार-सप् स्पर्शने + अच् प्रत्यय कर सपः शब्द बनाया जा सकता है।

(८८) तूर्णाशम् :- इसका अर्थ होता है-जल। निरुक्त के अनुसार तूर्णाशम् उदकं भवति। तूर्णमश्नुते[८५] अर्थात् यह शीघ्र ही व्याप्त हो जाता है। इसके अनुसार इस शब्द में तूर्णम् +अशु व्याप्तौ धातु का योग है-तूर्ण+अश् -तूर्णाश्-तूर्णाशम्। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायेगा। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(८३) क्षुम्पम् :- यह अहिच्छत्र का वाचक है। अहिच्छत्र वर्षाकाल में छाते के समान पृथ्वी से फूट पड़ने वाला अंकुर विशेष तथा केंचुल (सर्पत्वक्) को कहते हैं। निरुक्त के अनुसार-क्षुम्पमहिछत्रकं भवति।[८५] यत्क्षुम्यते अर्थात् जो क्षुब्ध होती है छूते ही डोलता है अथवा टूट जाता है। इस निर्वचन के अनुसार क्षुम्पम् शब्दमें क्षुभ् संचलने धातुका योग है-क्षुभ्-क्षुम्प। ध्वन्यात्मक दृष्टि से इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा। अर्थात्मक आधार इसका संगत है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(८४) अंग :- यह शीघ्र का वाचक है। निरुक्तके अनुसार अँग इति क्षिप्र नाम। अंचितमेवांकितं भवति[८५] अर्थात् अंग क्षिप्र का नाम है तथा अञ्च ही अंक होता हुआ अंग बन गया है। इसके अनुसार यह शब्द अञ्च् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है-अञ्च अंक अंग। अञ्च् या अंक् लक्षणे धातु से स्पष्ट है यह शीघ्र लक्षित होता है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें अंग शब्द क्षिप्र अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। व्याकरण के अनुसार अगि गतौ +अच् प्रत्यय कर अंगम् शब्द बनाया जा सकता है।

(८५) निचुम्पुण :- यह अनेकार्थक है। कई अर्थों में इसके निर्वचन निरुक्त में प्राप्त होते हैं १- निचुम्पुणः का अर्थ सोम होता है-निचुम्पुणः सोमो निचान्तपृणो निचमणेन प्रीणाति[८५] यह खाने के बाद आनन्द देता है या खाने से तृप्ति प्रदान करता है।[१०३] इसके अनुसार इस शब्द में-नि +चम् अदने +प्री तर्पणे् निचम्+प्री- निचुम्पुणः है। नि+चम् +पृण् निचुम्पुणः। २- निचुम्पुणः का अर्थ समुद्र भी होता है - समुद्रोऽपि निचुम्पुण उच्यते निचमनेन पूर्यते[८५] अर्थात् यह पानी से भरा होता है। इसके अनुसार निचुम्पुणः शब्द में नि + चम् +पुर् आप्यायने धातु का योग है- नि +चम +पुर् =निचमन + पुर् =निचमन +पूण=निचुम्पुणः। ३- यज्ञादि कर्म को भी निचुम्पुण कहा जाता है-अवभृथोऽपि निचुम्पुण उच्यते। (क) नीचैरस्मिन्क्वणन्ति[८५] अर्थात् इस यज्ञ में धीमे स्वर में पाठ करते हैं इसके अनुसार इस शब्द में नीचै +क्वण् शब्दे धातु का योग है नीचै + क्वण्-नीचंक्वण-नीचुंकुण निचुम्पुणः। (ख) नीचैर्दधतीति वा[८५] अर्थात् अवमृथनिम्नकर्म को नीचे रखता है या यज्ञीय पात्र इसमें नीचे रखे जाते हैं।[१०५] इसके अनुसार इस शब्द में नीचैः +धा धातुका योग है। निचुम्पुण शब्द निचुंकुण के रूप में भी प्राप्त होता है[१०४] जो यज्ञ का वाचक है। इसके अनुसार निचुंकुण ही निचुम्पुण हो गया है। सोम एवं समुद्रके अर्थ में प्राप्त निचुम्पुणके निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त हैं।इन्हें भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं।इस शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्रायःनहीं देखा जाता।

(८६) पदिः- इसका अर्थ होता है-जाने वाला-पक्षी या यात्री। निरुक्तके अनुसार-पदिः गन्तुर्मवति। यत्पद्यते[८५] अर्थात् क्योंकि वह जाता है, चलता है, इसलिए पदिः कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्द में पद् गतौ धातु का योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पद्+इण् प्रत्यय कर पदिः शब्द बनाया जा सकता है।

(८७) मुक्षीजाः- यह जाल या पाश का वाचक है। निरुक्त के अनुसार १- मोचनाच्च।[८५] अर्थात् यह शब्द मुच् मोक्षणे धातु के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि इससे बंधे पक्षी आदि मुक्त किए जाते हैं। २- सयनाच्च[८५] अर्थात् इस शब्दमें सि बन्धने धातुका योग हैक्योंकि इससे पक्षी आदि बांधे जाते हैं।जाल में पक्षी स्वयंबंध जाते हैं। ३-तननाच्च[८५] अर्थात् इस शब्द में तन् विस्तारे धातु का योग है क्योंकि पक्षियों को बांधने

के लिए इसे फैलाया जाता है।[१०६] इस शब्दमें तीनों धातुओंका योग पाया जाता है - मुच् मोक्षणे, सि बन्धने तथा तन् विस्तारे। मुच् +सि + तन् = मुक् +षि +तन् मुक्षीता-मुक्षीजा। इस आधार पर इसका अर्थ होगा जिसे पक्षी आदि को पकड़ने के लिए फैलाया जाय, जिससे पक्षी आदिको बांधा जाय तथा बंधे हुए जीवों को मुक्त किया जाय। एक साथ सभी अर्थोंका आधान इस शब्दमें हो जाय इसलिए यास्कने तीन धातुओंकी कल्पनाकी है। तीनों धातुओंसे अलग-अलग भी निर्वचन संभव हैं। मुच् मोक्षणे धातुसे मुक्षीजा शब्द मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति रहती है। सि बन्धने तथा तन् विस्तारे धातुसे मुक्षीजा शब्दमें मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(८८) पादु :- इसका अर्थ होता है गति या चरण। निरुक्तके अनुसार पादुः पद्यते:[५८] अर्थात् पादु शब्द में पद् गतौ धातुका योग है क्योंकि यह गमन का नाम है या इससे चला जाता है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पद् गतौ धातु से उण् प्रत्यय कर पादुः शब्द बनाया जा सकता है।

(८९) बुसम् :- यह जल का वाचक है। निरुक्तके अनुसार २-बुसमित्युदक नाम। ब्रवीतेः शब्द कर्मणः[५९] अर्थात् यह शब्द ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि धातु के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि जल वर्षण आदि के समय शब्द करता है। २-भ्रंशतेर्वा[५९] अर्थात् यह शब्द भ्रंस् अधः पतने धातु के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि मेघ से वह नीचे गिरता है। (ज़ल की गति निम्नाभिमुख होती है) भ्रंस् धातुसे भुसम्-बुसम्। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टि से शिथिल है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना ज़ा सकता है। व्याकरणके अनुसार वस् उत्सर्गे धातु से कः[१०७] प्रत्यय कर बुस बनाया जा सकता है लौकिक संस्कृतमें बुसम् का अर्थ फलरहित धान्य या पुआल आदि होता है।[१०८]बुसम्का ही हिन्दी भाषामें भूसा शब्द प्रयोग होता है जो पुआल आदि पशु आहारका वाचक है। लौकिक संस्कृतमें वैदिक बुसम् का अर्थान्तर पाया जाता है।

(९०) वृकः- यह अनेकार्थक है।कई अर्थों में इसके निर्वचन निरुक्तमें उपलब्ध होते हैं १- वृकः का अर्थ चन्द्रमा होता है (क) विवृत ज्योतिष्को[१०९] वा अर्थात् वह अत्यधिक चमकने वाला होता है या खुले प्रकाश वाला होता है। इसके अनुसार वृकः

शब्दमें वृ वरणे धातुका योग है। (ख) विकृत ज्योतिष्कोवा[१०९] अर्थात् यह विकृत प्रकाश, ज्योति वाला है। (उष्ण धर्म का विरोधी शीतल किरणों वाला चन्द्र होता है जबकि ज्योति का धर्म उष्णता है। अत: चन्द्रमा विकृत ज्योतिवाला कहा गया) इसके अनुसार इस शब्द में वि +कृ धातु का योग है वि - कृ +ज्योतिष्क: वृक:। (ग) विक्रान्त ज्योतिष्को वा[१०९] अर्थात् वह विक्रान्त ज्योतिवाला होता है। अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा चन्द्रमामें प्रकाशाधिक्य होता है। इसके अनुसार इस शब्द में वि +क्रम् धातु +ज्योतिष्क: का योग है - वि +कम् + ज्योतिष्क: वृक:। वृक: का अर्थ सूर्य भी होता है २- आदित्योऽपि वृक उच्यते यदावृक्ते[१०९] अर्थात् यह प्रकाश से जगत् को आवृत करता है या अन्धकार को दूर भगाता है। इसके अनुसार वृक: शब्दमें वृ वरणे या वृज् वर्जने धातुका योग है। ३- वृक: का अर्थ श्वा (कुत्ता) भी होता है-श्वापि वृक उच्यते। विकर्तणात् अर्थात् कुत्ते में काटने की आदंत विशेष है। वह काटता है इसलिए उसे वृक कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्द में वि +कृन्त् कर्तने धातुका योग है - वि +कृन्त = विकृन्त - विकृ = वकृ -वृक:। ४- वृकी का अर्थ वृद्धवाशिनी शिवा (जोर से आवाज करने वाली शिवा) भी होता है क्योंकि वह भी काटती है। इसके अनुसार भी इसमें वि +कृन्त् धातु का ही योग माना जायगा।[११०] ५- वृक: का अर्थ लांगल (हल) भी होता है- वृको लांगल भवति विकर्तनात्[१११] अर्थात् लांगल वाचक वृक भी वि+कृन्त् कर्तने धातुके योगसे ही निष्पन्न होता है क्योंकि वह जमीन को उखाड़ता है। ध्वन्यात्मक आधार किसी भी निर्वचन का उपयुक्त नहीं है। सभी अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। विकर्तने से वृक: हल, श्वा एवं वृकी से शिवा का बोध होता है जिसमें कर्म सादृश्य का आधार है। लौकिक संस्कृत में वृक: का अर्थ भेड़िया होता है[११२] जो कर्म सादृश्य के आधारपर है। व्याकरणके अनुसार वृक आदाने धातु से क: प्रत्यय कर वृक: शब्द बनाया जा सकता है।[११३] या वृञ् वरणे धातुसे कक् प्रत्यय कर वृक: शब्द बनाया जा सकता है।[११४] किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ यह शब्द भारोपीय परिवारकी अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होता है-संस्कृत-वृक-गाँथि., वुल्फस Wolf (र ल का अभेद)। संस्कृतका ऋ वर्ण यूरोपीय शाखाओं में उ ध्वनि हो गयी है-सं.-ऋक्षस् लाँ. Ursus (उर्सुस) सं-कृप-ला. Corpus कार्पस सं. मृत-प्राचीन एवं उच्च जर्मन में Mord (मोर्द)।[११५]

(९१) उरण :- यह भेड़ का वाचक है। निरुक्तके अनुसार-उरण ऊर्णावान् भवति।[१०९] अर्थात् ऊर्णा से युक्त को उरण कहते हैं। भेड़ भी ऊर्णा से युक्त होता है।

अत: उरण कहलाता है। इस शब्दमें उर्णा +मतुवर्थीय अच् प्रत्ययका योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार ऋ गतौ +क्यु: प्रत्यय कर उरण: शब्द बनाया जा सकता है।[११६]

(९२) ऊर्णा :- इसका अर्थ होता है-ऊन। निरुक्तके अनुसार १-ऊर्णा पुन:वृणोते:[१०९] अर्थात् यह शब्द वृञ् आच्छादने धातु के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि इससे आच्छादन किया जाता है। शीत से रक्षा के लिए शरीर को ढंका जाता है। २- ऊर्णोतेर्वा[१०९] अर्थात् इस शब्द में ऊर्णुञ् आच्छादने धातुका योग है क्योंकि इससे शरीर का आच्छादन किया जाता है। दोनों निर्वचनों के ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। द्वितीय निर्वचन को भाषा विज्ञानके अनुसार भी सर्वथा संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार ऊर्णुञ् आच्छादने से उ: प्रत्यय कर ऊर्णा शब्द बनाया जा सकता है।[११७] भारोपीय परिवार की अंग्रेजी भाषा में भी यह शब्द किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ प्राप्त होता है-सं. ऊर्णा-अं. Wollen (र एवं ल का अभेद)

(९३) जोषवाकम् :- इसका अर्थ होता है अविज्ञात। निरुक्तके अनुसार जोषवाकमित्यविज्ञात नामधेयम्। जोषयितव्यं भवति।[१०९] अर्थात् वह अविज्ञापनीय होता है। इसके अनुसार इस शब्द में जुष् परितर्कणे धातुका योग है। जुष्-जोष +वच्-वाक =जोषवाकम्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार जुष् +घञ् जोषम्। जोष +वाक् =जोषवाकम् शब्द बनाया जा सकता है।

(९४) कृत्ति: :- यह यश एवं अन्न का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- कृत्ति: कृन्ततेर्यशोवा अन्नं वा[१०९] अर्थात् यह शब्द कृत् छेदने धातुके योग से निष्पन्न होता है क्योंकि यश शत्रुओं के मर्म हृदय को काटता है, विदीर्ण करता है या अनेक अनर्थों बुराइयों को समाप्त करता है।[११८] अन्न दुरुपयुक्त होने पर आयुको क्षीण करता है आयु को घटाता है या यह भूख मिटाता है। कृत्ति का अर्थ चिथड़ा (कंथा भी होता है- इयमपि इतरा कृत्तिरेतस्मादेव सूत्रमयी उपमार्थे वा[१०९] अर्थात् यह कन्था वस्त्र वाचक कृत्ति:भी इसी कृत् धातु से निष्पन्न होता है जो सूत्रमयी और उपमार्थक है। कपड़े सूत्र से ही निर्मितहोते हैं।इसलिए कन्था(वस्त्र,चादर) कृत्ति कहलाता है।उपमार्थक होने के कारण चर्मभी कृत्ति कहलाता है।कृती छदने धातुका अर्थ साम्य होनेके कारण चर्म कृत्ति

कहलाया।[११९] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसें संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें चर्म, त्वक् आदिके अर्थमें इसका प्रयोग पाया जाता है।[१२०] व्याकरणके अनुसार कृती छदने धातुसे क्तिन् प्रत्यय कर कृत्तिः शब्द बनाया जा सकता है। वैदिक कालसे लौकिक काल तक इस शब्द में अर्थ संकोच हुआ है।

(९५) श्वघ्नी :- यह शब्द जुआरीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार श्वघ्नी कितवो भवति स्व हन्ति[१०९] अर्थात् श्वघ्नीका अर्थ कितव होता है क्योंकि यह धन का नाश करता है। इसके अनुसार इस शब्द में श्व - (धन) + हन् धातुका योग है। स्व + हन्-श्वघ्न-श्वघ्नी स्व धन का वाचक है स्व ही श्वघ्नी शब्दके पूर्व पदमें श्वके रूप में आया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। श्वघ्नी शब्दका प्रयोग उक्त अर्थ में लौकिक संस्कृत में प्रायः नहीं देखा जाता।

(९६) स्वम् :- इसका अर्थ होता है-धन। निरुक्तके अनुसार -स्वं पुनराश्रिंतं भवति[१०९] अर्थात् यह किसीका आश्रित होता है। अतः आश्रित होनेके कारण स्वम् को धन कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्द में श्रिञ् सेवायां धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार किंचित् शिथिल है। अर्थात्मक आधार सर्वथा संगत है। व्याकरणके अनुसार स्वन् शब्दे धातु से डः[१२१] प्रत्यय कर स्वम् शब्द बनाया जा सकता है। धन के अतिरिक्त स्वम् के आत्मीय आदि भी अर्थ होते हैं।[१२२]

(९७) कितव :- इसका अर्थ होता है जुआरी। निरुक्तके अनुसार १-कितवः किं तव अस्तीति शब्दानुकृतिः[१०९] अर्थात् तुम्हारे पास क्या है? इस किं तव की शब्दानुकृति के कारण कितवः शब्द बन गया। किम् + तव - कितवः। २-कृतवान् वाशीर्नामकः अर्थात् आशीर्वादात्मक कृतवान् शब्दसे ही कितवः शब्द बन गया- कृतवान्- कृतवत् कृतव-कितवः। जुआरी के मित्र सदा जय मनाते रहते हैं।[१२३] डा. वर्मा के अनुसार इस निर्वचनमें स्वरगत एवं व्यंजनगत औदासिन्य है।[१२४] वस्तुतः शब्दानुकरणके आधार पर यह नामकरण हुआ है जो निरुक्त सम्प्रदायके अनुकूल है तथा भाषा विज्ञानके अनुसार संगत है। प्रथम निर्वचनको भाषा विज्ञानके अनुसार भी संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचनमें ध्वन्यात्मक शैथिल्य अवश्य है। व्याकरणके अनुसार कित + वा + कः प्रत्यय कर कितवः शब्द बनाया जा सकता है।[१२५]

(९८) समम् :- यह परिग्रहार्थीय सर्व वाचक सर्वनाम है। इसके सम्बन्ध में यास्क का कहना है-सममिति परिग्रहार्थीय सर्वनामानुदात्तम्[१०९] अर्थात् समम् शब्द सर्व अर्थ द्योतित करने वाला सर्वनाम है जो अनुदात्त है। यास्क पुनः उपस्थापित करते हैं तत्कथमनुदात्त प्रकृतिनाम स्याद् दृष्टव्ययं तु भवति[३] अर्थात् अनुदात्त प्रकृति वाला सम् शब्द नाम कैसे हो सकता है। फिट् सूत्र फिषोऽन्त उदात्तः[१२६] इस सूत्र से नाम अन्तोदात्त होते हैं अनुदात्त नहीं होते। साथ ही साथ सम शब्द तो दृष्ट व्यय है। यह अव्यय नहीं है। इसके विभिन्न रूप (विकार) देखे जाते हैं। ज्ञातव्य है अव्यय अनुदात्त होते हैं-चादयोऽनुदात्ताः।[१२७] समम् शब्द के दृष्टव्यय के उदाहरण में यास्क समस्मिन्[१२८] समस्मात्[१२९] समे[१३०] आदि पदों का उपस्थापन भी कहते हैं। समम् शब्द का निर्वचन प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसका मात्र व्याख्यान प्रस्तुत हुआ है। व्याकरणके अनुसार सम् वैक्लब्ये धातुसे अम् प्रत्यय कर समम् शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें समम् शब्द अव्यय है।[१३१]

(९९) ऊर्मि :- इसका अर्थ होता है जलतरंग। निरुक्तके अनुसार ऊर्मिरूर्णोतेः[१०९] अर्थात् यह शब्द ऊर्णुञ् आच्छादने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। क्योंकि वह जलस्थ सभी वस्तुओं को आच्छादित कर लेती है। इसका अर्थात्मक एवं ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार ऋ गतौ धातुसे मिः प्रत्यय कर ऊर्मिः शब्द बनाया जा सकता है।[१३२]

(१००) नौ :- इसका अर्थ होता है नाव। निरुक्तके अनुसार १-नौः प्रणोतव्या भवति[१०९] अर्थात् यह प्रेरितकी जाती है, चलाई जाती है। इसके अनुसार इस शब्द में णुद् प्रेरणे धातु का योग है-णुद्-नौ। २-नमतेर्वा[१०९] अर्थात् यह शब्द नम् प्रह्वे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि नाव चलते समय इतस्ततः झुक जाती है।[१३३] दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार णुद् + डौः प्रत्यय कर नौः शब्द बनाया जाता है।[१३४]

(१०१) पिपर्ति :- इसका अर्थ होता है कामनाओं को पूर्ण करता है या तृप्त करता है।[१३५] निरुक्तके अनुसार पृणातिः[१०९] अर्थात् यह शब्द पॄ पूरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें प्रीञ् तर्पणे धातुका योग है। यह क्रिया पद है।पृ धातुसे इसका निर्वचन माननेपर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण

उपयुक्त होता है। प्रीञ् धातुसे इसका निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याक-अनुसार भी पृ पालन पूरणयो :धातु+ लट् तिप् = पिपर्ति शब्द बनाया जा सकता ह।

(१०२) पपुरि :- इसका अर्थ होता है कामनाओं को पूरा करने वाला या तृप्त करने वाला १-पपुरिरिति पृणाति वा[१०९] अर्थात् पपुरि शब्द पृ पूरणे धातु के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि वह पूरा करने वाला होता है। २-प्रीणाति वा[१०९] अर्थात् पपुरि: शब्दमें प्रीञ् तर्पने धातुका योग है क्योंकि यह तृप्त करता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार -पृ- द्वित्व + कि प्रत्यय कर पपुरि: शब्द बनाया जा सकता है।

(१०३) कुट :- इसका अर्थ होता है किया हुआ। निरुक्त के अनुसार कृत ही कुट बन गया है।[१०९] इसके अनुसार इसमें कृ धातुका योग है। कृत के ऋ का उ तथा त का ट हो गया है। त का ट मूर्धन्यीकरण माना जायगा। ऋ का उ वैदिक ध्वनि विकास माना जायगा। यास्क ने कृन्त् धातुसे कुत्स,[१३६] कृन्त् से कुरू[१३७] निचुम्पुण:[१३८] में -नि+ चम् + पृ धातु माना है। ये उदाहरण ऋ का उ वर्ण में विकास सिद्ध करते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरण के अनुसार कुट् धातु से क प्रत्यय कर कुट शब्द बनाया जा सकता है।

(१०४) चर्षणि :- इसका अर्थ होता है द्रष्टा। निरुक्तमें चर्षणि: शब्द को चायिता कह कर स्पष्ट किया गया है। इसके अनुसार इस शब्द में चाय् (देखना) धातु का योग माना जायगा। यह निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टि में अस्पष्ट है।

(१०५) शम्ब :- यह वज्र का नाम है। निरुक्तके अनुसार शम्ब इति वज्रनाम, शमयतेर्वा[१०९] अर्थात् शब्द शम् उपशमे + णिच् के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि यह शमन करता है। २- शातयतेर्वा अर्थात् यह शब्द शद् शातने णिच् के योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा मारने वाला। वज्र शत्रुओं को शमन करता है या मार डालता है। इससे शत्रु शमन किये जाते हैं या मार डाले जाते हैं। प्रथम निर्वचम ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। लौकिक संस्कृतमें भी शम्ब शब्द का प्रयोग वज्र के अर्थ में होता है।[१३९] व्याकरण के अनुसार शम्व् सम्बन्धने धातु से अच् या शं उपशमे धातु से वन् प्रत्यय कर शम्ब शब्द बनाया जा सकता है।[१४०]

(१०६) केपय :- इसका अर्थ होता है कुत्सित कर्म। निरुक्तके अनुसार केपय: कपूया भवन्ति। कपूयामिति पुनातिकर्म कुत्सितं दुष्पूयं भवति।[१०९] अर्थात् केपय का अर्थ होता है कपूय। कपूय शब्दका अर्थ होता है कुत्सित या निन्दित कर्म को पवित्र करने वाला। वह दुष्पूय होता है वह कठिनाई से पवित्र किया जाने वाला होता है। इसके अनुसार इस शब्द में कु+ पुञ् धातु का योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं है। अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(१०७) पृथक् :- पृथक्का अर्थ होता है अलग। निरुक्तके अनुसार पृथक् प्रथते:[१०९] अर्थात् यह शब्द प्रथ् विस्तारे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह संगत माना जायगा। यास्कीय पद्धति से यह निपात है। व्याकरणके अनुसार इसे अव्यय माना जाता है। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग बिना तथा अलगके अर्थमें होता है। व्याकरणके अनुसार पृथ् + कक् प्रत्यय कर या प्रथ्+ अज् प्रत्यय कर पृथक् शब्द बनाया जा सकता है।[१४१]

(१०८) ईर्म :- यह बाहुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-ईर्म इति बाहुनाम समीरिततरो भवति[१०९] अर्थात् यह अन्य अवयवोंकी अपेक्षा लम्बा होता है। या अधिक कार्यरत होता है। इसके अनुसार ईर्म शब्दमें ईर् गतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। ईर्म शब्द विस्तृत अर्थ में चतुर्थ अध्याय में भी प्रयुक्त हुआ है।[१४२] व्याकरणके अनुसार ईर् गति प्रेरणयो: धातु से मन् प्रत्यय कर ईर्म शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृत में ईर्म शब्द व्रण के अर्थमें प्रयुक्त होता है।[१४३] वैदिक कालसे लौकिक काल तक इस शब्द में अर्थान्तर हो गया है।

(१०९) तूतुमाकृषे :- इसका अर्थ होता है शीघ्र करते हो। निरुक्तके अनुसार तूतुमाकृषे तूर्णमुपाकुरुषे[१०९] अर्थात् तूतुमाकृषे क्रिया पद है जिसमें दो पद खण्ड हैं तूतुम् +आकृषे। तूतुम् तूर्णम् का वाचक है तथा आकृषे उपाकुरुषे का। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा शीघ्र ही सम्पादन करते हो। यह निर्वचन अस्पष्ट है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण नहीं माना जायगा।

(११०) अंसत्रम् :- यह धनुष या कवच का वाचक है। इससे प्रहार से रक्षा की जाती है निरुक्त के अनुसार-अंसत्रमंहस्त्राणं धनुर्वा कवचं वा।[१०९] अर्थात् असंत्रम् शब्द

में अंस-अंहस: का वाचक है जिसका अर्थ होता है पाप से। त्रै धातुका त्र उत्तर पद में स्थित है। अंहस: त्राणम् =अंसत्रम्। कवच के अर्थ में अंसत्रम् को अंसं त्रायते इति करना ज्यादा संगत होगा। अंहस: त्राणम् से कवच अर्थ में पापादि कर्मो: से बचाने वाला मन्त्र विशेष माना जा सकता है जिसे भी कवच कहा जाता है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(१११) कवचम् :- यह वर्मका वाचक है। शरीर की रक्षा करने वाला लौह वस्त्र वर्म कहलाता है। निरुक्तके अनुसार १- कवचं कुअंचितं भवति१ अर्थात् यह तिर्यक् बना होता है।१४४ शरीर के अनुरूप यह निर्मित होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें कु + अञ्च् गतौ धातुका योग है। कु+अञ्च् = कवचम्। २- कांचितं भवति[१०९] अर्थात् वह थोड़ा तिर्यक् चढ़ा होता है।[१४५] इसके अनुसार इस शब्दमें का +अञ्च् धातुका योग है। का ईषत् का वाचक है। का+ अञ्च् = कवचम्। ३- काये अंचितं भवतीति वा[१०९] अर्थात् यह शरीर पर लगा रहता है। इसके अनुसार इस शब्द में काये + अञ्च् धातुका योग है। काये शरीरे का वाचक है- काय +अञ्च् कवचम्। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिकोणसे महत्त्व रखते हैं। कवच शब्द उक्त अर्थमें लौकिक संस्कृतमें भी प्रयुक्त होता है।[१४६] व्याकरणके अनुसार इसे कं +वञ्च् गतौ+क: = कवचम् शब्द बनाया जा सकता है।

(११२) द्रोणम् :- इसका अर्थ होता है द्रुममय। निरुक्त के अनुसार द्रोणं द्रुममयं भवति[१०९] अर्थात् द्रोण द्रुममय होता है। इसके अनुसार द्रुम + मय ही द्रोणम् शब्द बन गया है। यास्क द्रोणका स्वरूप प्रदर्शन करते हैं। इसका ध्वन्यात्मक आधार संगत नहीं है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। काष्ठ के अर्थ में द्रोण शब्द का प्रयोग लौकिक संस्कृत में भी होता है।[१४७] व्याकरणके अनुसार द्रु गतौ धातुसे न: प्रत्यय कर द्रोण शब्द बनाया जा सकता है।[१४८] ण णत्व का परिणाम है।

(११३) आहाव :- इसका अर्थ होता है पशुओं को जल पीने का पात्र विशेष (कुण्ड ,नाद आदि)।निरुक्तके अनुसार आहाव आवहनात्[१०९]अर्थात् आहाव शब्द आ+ह्वे शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह पशुओं को जल पीने के लिए आह्वान करता है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थ में लौकिक संस्कृत में भी होता है।[१४९]व्याकरणके अनुसार आ +ह्वे धातुसे व प्रत्यय कर आहाव

शब्द बनाया जा सकता है।१५०

(११४) आवह :- इसका अर्थ जल कुण्ड होता है। निरुक्तके अनुसार आवह: आवहनात्[१०९] अर्थात् यह शब्द आ+वह् प्रापणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वहां पशुओं को पानी पीने के लिए लाया जाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(११५) अवत :- यह कूपका वाचक है। निरुक्त के अनुसार अवतोऽवातितो महान् भवति[१०९] अर्थात् यह नीचे काफी दूर तक गया होता है इसके अनुसार इस शब्दमें अव +अत् सातत्य गमने धातुका योग है। अव +अत् + क्त = अतित अव +अत- अवत। या-अव +अत् = अवत। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(११६) कोश :- इसका अर्थ होता है म्यान, तरकस या जल निकालने का पात्र विशेष। निरुक्तके अनुसार कोश: कुष्णातेर्विकर्षितो भवति[१०९] अर्थात् कोश शब्द कुष् निष्कर्षे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इससे खींच कर निकाला जाता है। म्यान से तलवार, तरकस से वाण तथा पात्र विशेष से जल खींचा जाता है। अयमपीतर: कोष एतस्मादेव[१०९] अर्थात् खजाना, धन संग्रह स्थान वाचक कोष भी उसी से निष्पन्न होगा क्योंकि खजाना से भी धन निकाला जाता है। शब्द संग्रह को भी इसी सादृश्य के आधार पर कोष कहा जाता है तथा यह भी इसी कुष् निष्कर्षे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इस कोषसे शब्द ढूंढ लिए जाते हैं। यास्कके इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार कुष निष्कर्षे धातुसे घञ् प्रत्यय कर कोश: शब्द बनाया जा सकता है।[१५१]

(११७) संचय :- यह कोष का वाचक है। निरुक्तके अनुसार सञ्चय आचित मात्रो महान् भवति[१०९] अर्थात् इसमें धन संचित होते हैं तथा यह महान् बड़ा होता है। इसके अनुसार इस शब्द में सम् +चि चयने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृत में भी संचय का प्रयोग समूह तथा कोशके अर्थमें होता है। व्याकरणके अनुसार सम्+चित्र् चयने +एरच् प्रत्यय कर संचय शब्द बनाया जा सकता है।[१५२]

(११८) **काकुदम्** :- इसका अर्थ होता है तालु। निरुक्त के अनुसार १-काकुदं तालु इत्याचक्षते। जिह्वा कोकुवा सास्मिन् धीयते[१०९] अर्थात् जिह्वाको कोकुवा कहा जाता है। वह जिह्वा (कोकुवा) जिसमें रखी जाती है उसे काकुदम् कहा जायगा- कोकुवा +धा - कोकुध-काकुध-काकुद। २- कोकूयमाना वर्णान् नुदतीतिवा[१०९] अर्थात् वह कोकुवा शब्द करती हुई वर्णों के लिए तालु को प्रेरित करती है[१५३] अतः कोकुवा+नुद् प्रेरणे धातु से काकुदम् बना। कोकुवा + नुद्-कोकु-नुद्-काकुद। प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक तथा अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे संगत माना जायगा। काकुद शब्द का प्रयोग तालु के अर्थ में लौकिक संस्कृत में भी होता है। यास्कका द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। इसमें ध्वन्यात्मक शैथिल्य है। व्याकरणके अनुसार काकुदे भवं काकुदं-ककुद +अण्[१५४] काकुदम् बनाया जा सकता है। अथवा का ईषत् कुङ् शब्दे + दः प्रत्यय कर काकुद शब्द भी बनाया जा सकता है।

(११९) **कोकुवा** :- यह जिह्वाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार कोकुवा को - कूयतेर्वा स्याच्छब्दकर्मणः[१०९] अर्थात् यह शब्द करना अर्थ रखने वाले कुङ् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि जिह्वा की सहायता से ही शब्द किया जाता है। लौकिक संस्कृत में काकु का अर्थ जिह्वा होता है।[१५५] वैदिक काल का कोकुवा शब्द ही लगता है लौकिक संस्कृत में काकु बन गया है जो वर्ण लोप एवं ध्वनिपरिवर्तन का परिणाम है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरण के अनुसार कुङ् शब्दे + यङ्लुक +अच् प्रत्यय कर कोकुय कोकुवा शब्द बनाया जा सकता है।

(१२०) **जिह्वा** :- यह जीभका वाचक है। निरुक्तके अनुसार जिह्वा जोहुवा।[१०९] अर्थात् इससे लोग अपने अन्दर अन्न का हवन करते हैं जिह्वा से अन्न उदर में डाला जाता है।[१५६] इसके अनुसार इस शब्द में हु दानादनयोः धातुका योग है-हु दानादनयो. + यङ्लुक् जोहुवा-जिह्वा। आह्वयतीतिवा[१०९] अर्थात् ह्वेञ् शब्दे धातु से जिह्वा शब्द निष्पन्न होता है क्योंकि लोग इससे शब्द करते है-[१५७] ह्वेञ् +यङ्लुक् = जोहुवा-जिह्वा। इन निर्वचनों का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार लिह् आस्वादने धातुसे वन् (लकार का जकार) = जिह्वा शब्द बनाया जा सकता है।[१५८]

(१२१) **तालु** :- यह उच्चारणांग विशेष है। इ, चवर्ग य तथा श वर्णों के

उच्चारण में जहां जिह्वा सटती है उस उच्चारण अंग विशेष को तालु कहा जाता है। निरुक्त के अनुसार १- तालु तरते:[१०९] अर्थात् यह शब्द तृ प्लवन-संतरणयो: धातुके योग से निष्पन्न होता है। क्योंकि यह अन्य उच्चरणांगों की अपेक्षा विस्तृत होती है[१५९] तृ-तर-तल-ताल-तालु। २- लततेर्वा स्यात् लम्ब कर्मण: विपरीतात्[१०९] अर्थात् यह शब्द लम्ब अर्थ वाला लत् धातुको विपरीत करने पर बना है लत्-आद्यन्त विपर्यय-ताल-तालु। इसके अनुसार भी यह अंग अन्य उच्चारणांगों की अपेक्षा विस्तृत है-प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द्वितीय निर्वचनमें ध्वन्यात्मकता की कमी है, यद्यपि यह निर्वचन प्रक्रिया के अनुकूल है। व्याकरण के अनुसार तृ प्लवनतरणयो: धातुसे युण् प्रत्यय कर तालु शब्द बनाया जा सकता है।[१६०] तृ + युण् - (रस्य ल:) तालु। या तल् प्रतिष्ठायाम् धातुसे कु प्रत्यय कर तालु शब्द बनाया जा सकता है।[१६१]

(१२२) सिन्धु :- यह नदीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार सिन्धु: स्रवणात्[१०९] अर्थात् यह प्रवाहित होता है। इसके अनुसार इस शब्द में स्रु प्रस्रवणे धातुका योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। यास्क निरुक्तके नवम अध्यायमें सिन्धु शब्द का निर्वचन स्यन्द् धातुसे मानते हैं-सिन्धु: स्यन्दनात्[१६२] अर्थात् यह स्यन्दित होता है इसलिए सिन्धु कहलाता है। स्यन्द् प्रस्रवणे धातुका योग इस शब्द में स्पष्ट होता है। स्यन्द् धातुसे सिन्धु: शब्द ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। वेद में सिन्धु शब्द नदी वाचक है। लौकिक संस्कृत में यह समुद्र का वाचक हो गया है। इसे अर्थोत्कर्ष कहा जायगा। व्याकरण के अनुसार स्यन्द् प्रस्रवणे धातुसे यु: प्रत्यय कर सिन्धु: शब्द बनाया जा सकता है।[१६३]

(१२३) वीरिटम् :- यह अनेकार्थक है। यास्क इसके निर्वचन में अन्य आचार्य का मत भी उपस्थापित करते हैं। आचार्य तैटीकि के अनुसार यह अन्तरिक्ष का वाचक है। पूर्व वयेरुत्तरमिरते:[१०९] अर्थात् वीरिट शब्द में दो पदखण्ड हैं पूर्वार्द्ध वी गतौ धातुसे तथा उत्तरार्द्ध इर् गतौ धातुसे निष्पन्न होता है। वी+ ईर् + इटन् वीरिटम्। २- वयांसीरन्त्यस्मिन्[१०९] अर्थात् इसमें पक्षीगण गमन करते हैं। इसके अनुसार इस शब्द में वि+ईर् गतौ धातु का योग है-(वयस् वि +ईर् +इटन् वीरिटम्।३-भांसिवा[१०९] अर्थात् इस अन्तरिक्षमें सूर्यचन्द्रादि प्रकाश गमन करते हैं।इसके अनुसार इस शब्दमें भास् +

ईर् गतौ धातु का योग है-भास् +ईर् +इटन्- भीरिटम् वीरिटम्। आचार्य तैटीकि के मत का उल्लेख करने के बाद यास्क इस संबंध में अपना मत प्रतिपादित करते हैं। इनके अनुसार भी वीरिटम् का अर्थ अन्तरिक्ष होता है-वीरिटमन्तरिक्षं भियो वा भासो वा ततिः अर्थात् इस अन्तरिक्षमें भय एवं प्रकाश का विस्तार होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें भी + तन् धातुओं का या भास् +तन् धातुओंका योग है। भी धातु +तन् = भीरिट वीरिट, भास् +तन् भीरिट वीरिट। यास्क के मत की अपेक्षा आचार्य तैटीकि के निर्वचन अधिक भाषावैज्ञानिक हैं। यास्कके निवर्चनोंमें ध्वन्यात्मक औदासिन्य है जबकि आचार्य तैटीकि के प्रथमदो निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे भी उपयुक्त हैं। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंके उपयुक्त हैं। वीरिटम् का प्रयोग उक्त अर्थमें लौकिक संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता।

(१२४) नियुत :- इसका अर्थ होता है नियमित। निरुक्तके अनुसार १- नियुतो नियमनाद्वा[१०९] अर्थात् नियमन होने के कारण नियुतः कहलाया। इसके अनुसार इस शब्द में नि +यम् उपस्मे धातुका योग है- नि-यम+क्त = नियुत। २- नियोजनाद्वा अर्थात् नियोजित होने के कारण नियुतः कहलाता है।[१०९] इसके अनुसार नि +युज् योगे धातु से यह शब्द निष्पन्न होता है। दोनों निर्वचनों का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार नि + यम् +क्त कर नियुतः शब्द बनाया जा सकता है।

(१२५) अच्छ :- यह एक निपात है। यह अभि के अर्थमें प्रयुक्त होता है। अभि उपसर्ग आभिमुख्य अर्थ का द्योतक है। फलतः अच्छ का अर्थ भी आभिमुख्य ही हुआ। आचार्य शाकपूणिः अच्छ का अर्थ करते हैं प्राप्त करना-अच्छ अमेराप्तुमिति शाकपूणिः[१०९] अर्थात् शाकपूणि के अनुसार अच्छका अर्थ होता है प्राप्त करनेके लिए। इसके अनुसार आप् प्रापणे धातु से अच्छ माना गया है। यास्क इसका निर्वचन प्रस्तुत नहीं करते मात्र अर्थ प्रदर्शन करते हैं। लगता है शाकपूणि द्वारा प्रदत्त निर्वचनसे ये भी सहमत हैं। आचार्य शाकपूणिका निर्वचन भी ध्वन्यात्मक दृष्टि से पूर्ण संगत नहीं है। इसका अर्थात्मक आधार संगत है। व्याकरणके अनुसार (नी-अ +छो + कः प्रत्यय कर अच्छः या न अ +छा +कः अच्छम् शब्द बनाया जा सकता है।

(१२६)सृणि :- इसका अर्थ होता है अंकुश, हाथी को नियमन करने का लौह अस्त्र।निरुक्तके अनुसार-सृणिरंकुशो भवति सरणात्[१०९]अर्थात्यह हाथियोंके मस्तकपर गमन करता है। इसके अनुसार इस शब्द में सृगतौ धातु का योग है। ध्वन्यात्मक एवं

अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। सृणि: का अर्थ दात्री भी होता है जो वैदिक साहित्य में प्रयुक्त है।[१६४] लगता है अर्थ सादृश्य के आधार पर सृणि: दात्री का वाचक बन गया। व्याकरणके अनुसार सृ गतौ धातुसे नि: प्रत्यय कर सृणि: शब्द बनाया जा सकता है।[१६५]

(१२७) अंकुश :- इसका अर्थ होता है हाथी को नियमित करने का लौह विशेष। निरुक्तके अनुसार अंकुशोऽञ्चतेराकुचिंतो भवति[१६६] अर्थात् यह थोड़ा वक्र (आकुंचित) होता है। इसके अनुसार यह शब्द अंच् गतौ धातुके योग से निष्पन्न हुआ है क्योंकि यह हाथीके मस्तक पर गमन करता है। आकुंचित से अंकुश मानने पर इसमें कुच् संकोचे धातुका योग माना जायगा। अंच् गतौ धातुसे इसका निर्वचन मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत होता है। फलत: इसे भाषा विज्ञानके अनुसार भी उपयुक्त माना जायगा। आ+ कुच् धातुसे अंकुश में ध्वन्यात्मक औदासिन्य है। अर्थात्मक आधार इसका भी उपयुक्त है। व्याकरण के अनुसार अंक धातुसे उशच् प्रत्यय कर अंकुश: शब्द बनाया जा सकता है। (अंक्यते हस्तिचालनार्थमाहन्यतेऽनेन)

- : सन्दर्भ संकेत :-

१.नि.५।१, २. कर्मसूपस्थितेषु नृत्यन्ति गात्राणि इतस्तत: प्रक्षिपन्ति तन्नरा: इत्युच्यन्ते-नि.दु.वृ. ५।१, ३.अष्टा.३।१।१३४,४. दुतनिभ्यां दीर्घश्च-उणा. ३।९०, ५. गत्यर्था:-अष्टा ३।४।७२, ६. अष्टा. ६।१।७, ७. नेत्रयो: दृष्टिनिरोधात्-नि.दु.वृ. ५।१, ८. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, ९. अपरिमिता: अस्मिन्नदन्ति इति-नि.दु.वृ. ५।१, १०. अभिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्-उणा. ३।१०५, ११. नि. ६।५, १२. अमा शब्देन परिमाण हीनता बोध्यते नि.दु.वृ. ५।१, १३. अम. को. ३।३.२५०, १४. अष्टा. ३।२।७६, १५. उणा. ४।१५९, १६. नि.दुवृ. ५।१. १७. पापेन कर्मणा पुन: पुन: पापत्यमान:-नि.दु.वृ. ५।१, १८. अवाङ् नीचैरेव नरकमेवेमितियावत् पततीतिवा पाप. नि.दु.वृ. ५।१, १९. अर्श आद्यच्-अष्टा ५।२।१२७, २०. तृ प्लवन संतरणयो:- द्र.-अष्टा १।२।१७ पर सिद्धा. कौ.वृ., २१. तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्योविमुक्तोऽभृतोभवति तरति मृत्युं तरित ब्रह्महत्याम्-मुण्डकोप.-२ २ २२. त्वम असम्यभाषणात् आहंसि इव तस्मात् आहना असि- नि.दु.वृ ५।१, २३. रुत्यर्थात् नदते: नि.दु.वृ. ५।१, २४. निघ.-३।१४, २५. अष्टा. ३।१।१३४, २६. शब्द: कस्मात् नदनाभवन्ति शब्दवत्य: नि. २।७, २७. ऋ १०।८९।६, २८.

ऋ. ९।१०७।९, सा.वे. २।३४८, २९. अक्षः कर्षे तुषे चक्रे शकटव्यवहारयोः, आत्मज्ञे पाशके चाक्षं तुत्थे सौवर्चलेन्द्रियेा। विश्व.- १८२।२, ३०. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, ३१. नि. ९।४, ३२. मितद्रवादित्वात्-वा. ३।२।१७८, ३३. अम.- ३।३।१३५-रामाश्र. (द्र.), ३४. नि.दु.वृ. ५।१, ३५. ऋ.-१०।६७।७, अथर्व.- २०।९१।७, ३६. ऋ. १।८८।५, ३७. अन्येभ्योऽपि. वा. ३।२।१०१, ३८. नि.दु.वृ. ५।१ (द्र.), ३९. ऋदोरप्-अष्टा. ३।३।५७, ४०. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, ४१. नि.दु.वृ. ५।१, ४२. कर्मणि घञ् अष्टा. ३।३।१९, ४३. अर्को द्रुभेदे स्फटिके ताम्रे सूर्ये विडौजसि- हैम.-२।१, ४४. निघण्टु तथा निरुक्त- पृ. १६४, ४५. अष्टा. ३।३।१९, ४६. आच्छीनद्यो : ७।१।८०, ४७. नि.-१२।३, ४८ .अम.को. १।१।४७, ४९. अच इः-उणा.-४।१३९, ५०. कनिन् युवृषि. - उणा. १।१५६, ५१. उदमस्थमुः- अष्टा. ५।३।२४, ५२. सुपां सुलुक्-अष्टा ७।१।३९, ५३. नि. १।४, ५४. वाज. सं. ४।१९, मैत्रा. सं. १।२।४, ५५. नि. १।२, ५६. अम. को. २।९।९०, ५७. आतोऽनुपसर्गे कः- अष्टा. ३।२।३, ५८. नि. ५।२, ५९. कर्तरिचार्षिदेवतयोः-अष्टा ३।२।१८६, ६०. पवित्रं तु मेध्ये ताम्रे कुशे जले। अर्थोपकरणे चापि पवित्रा तु नदीभेदि।। हैम.- ३।६९०, ६१.तुद्व्यथने इत्यस्माद् धातोर्घञ्तोदः- नि.दु.वृ. ५।२, ६२- अच इः - उणा.- ४।११९, ६३. नि. दु.वृ. ५।२, ६४. अप्रतिपन्न रश्मि हि सूर्यः उदयवेलायां निर्वेष्टित शेपस्वरूपो भवति तस्य तद्रूप गुणयोगितया न कुत्सार्थतेत्युपपन्नम्- नि.दु.वृ. ५।२, ६५. शिपिविष्टस्तु खल्वाटे दुश्चर्मणि पिणाकिनि-हैम. - ४।६८, ६६. हृणिः दीप्तिः क्रोधो वा नि.दु.वृ. ५।२, ६७. नि. १।३, ६८. नि. ६।६, ६९. अष्टा ३।३।१७४, ७०. नि. ३।१- नि.दु.वृ. ३।१ (द्र.), ७१. निधानमर्भामिव सागराम्वरां शमीमिवाभ्यन्तरलीन पावकाम् नदीमिवान्तः सलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्वां महिषीममन्यत्।। -रघु. ३।९, ७२. अर्ति सृधृधम्यग्यश्य वितृभ्योऽनिः-उणा.२।१०२, ७३ क्रान्तकानि पूर्णानि सोमरसेन- नि.दु.वृ. ५।२, ७४. अधिगव ओहमिन्द्राय ऋ. १।६१।१, ७५. दी इटीमोलोजीज आफ यास्क पृ. १२४, ७६ .आपादितमन्युः आपादित दीप्तिः उत्पादित क्रोधो वा अरिमीरणे-नि.दु.वृ.५।२,७७ .अम. को. १।१०।३०, ७८. अष्टा. ३।२।१७८, पृषोद रादित्वात्-नुक्) अष्टा. ६।३।१०९ नान्त्वान्दङ्ीप्-अष्टा. ४।१।५, ७९. ऋ. ५।४०।४, ८०. अर्जेऋज च-उणा. ४।२८, ८१. घानाभृष्टयवेस्त्रियः अम.को. २।९।४७, ८२. धापृवस्यज्यतिभ्यो नः- उणा.-

३।६, ८३. घसि भसोर्हलि च-अष्टा ६।४।१००, ८४. नि.दु.वृ. ५।२, ८५. नि. ५।३, ८६. ऊरूभ्यां पुरुषं संगमकाले अश्नुते व्याप्नोति-नि.दु.वृ. ५।३, ८७. ऊरूभ्यां विस्तृताभ्यां धाराभ्यां शुष्कार्द्राभ्यामश्नुते व्याप्नोति-नि.दु.वृ. ५।३, ८८. अम.को. १।१।५१, ८९. अष्टा. ३।२।१, वा. ३।२।५, ९०. अम.को. १।१।५१, ९१. सरतेरसुन्-उणा. ४।२३७ अनचि च-अष्टा. ८।४।४७- पर महाभाष्य (द्र.), ९२. स हि पुरुषस्यागांत्संभृतः स्त्रीयोनेः प्सानीयोभवति भक्षणीयो भरणीयश्च। नि.दु.वृ. ५।३, ९३. अम.को. २।९।५१, ९४. नि.दु.वृ. ५।३, ९५. पुषः कित् उणा. ५।४, ९६. अम. को. ३।३।१८६, ९७. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, ९८. बाजम् अन्नम्। एतदस्माकमिति मन्यमाना सन्तो यं सोममाभि मुख्येन पतन्ति स वाजस्पत्यः सोमः। नि.दु.वृ. ५।३, ९९. गध्यम् ग्राह्यम् नि.दु.वृ. ५।३, १००. कौरयाणः संस्कृतयानः नि.दु.वृ. ५।३, १०१, स हि नित्यं निर्गतशेप एव भवति-नि.दु.वृ. ५।३, १०२. नित्योत्थितः शेपो यस्य-नि. ५।३ (स्कन्द टी.), १०३. निचुम्पुण निचुडकुणेति च नि. ५।३, १०४. यस्मादेव निचमनेन पानेन प्रीणाति-नि.दु.वृ. ५।३, १०५. नीचैः अस्मिन् यज्ञपात्राणि दधतीति वा नि.दु.वृ. ५।३, १०६. सां हि पक्षिणो वधार्थं तन्यते नि.दु.वृ. ५।३, १०७. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः अष्टा. ३।१।१३५, १०८. अम.को. २।९।२२, १०९. नि. ५।४, ११०. वृद्धवाशिन्यपि वृकी उच्यते-नि. ५।४, १११. नि. ६।५, ११२. अम.को.- २।५।७, ११३. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः - अष्टा. ३।१।१३५, ११४. सृवृशुषिमुषिभ्यः कक्-उणा. ३।४१, ११५. द्र.नि.मी.- पृ. ४३४, ११६. अर्तेः क्युरूच्च-उणा. ५।१७, ११७. ऊर्णोतेर्डः उणा. ५।४७, ११८. यस्मदरीणां मर्माणि कृन्तति। अन्नपि च दुरूपयुक्तमायुः कृन्तति-नि.दु.वृ., ११९. अवतत धन्वा पिनाकहस्तः कृत्तिवासाः यजु. ३।६१, १२०. कृत्तिश्चर्मत्वचोर्भूर्जेकृत्तिकायां द्वयं स्त्रियाम्। मेदि. ५४।१२, १२१. अन्येभ्योऽपि-वा. ३।२।१०१, १२२. अम.को.-३।३।२११, १२३. कृन्नवानयं भूयात् इति सुहृद्भिराशास्यते। नि.दु.वृ. ५।४, १२४. दी इटीमोलोजीस आफ यास्क पृ. ११६, १२५. आतोऽनुपसर्गेकः-अष्टा. ३।२।३, १२६. फिट् सूत्र-१।१, १२७. फिट् सूत्र-३।१६, १२८. उरूष्याणो अघायतः समस्मात्-ऋ. ५।२४।३, १२९. उतो समस्मिना शिशीहि नो वसो-ऋ. ९।२१।८, १३०. ऋ. ८।१९।१-१०, १३१. सार्द्धं तु साकंसत्रासमं सह-अम. को. ३।४।४, १३२. अर्तेरूच्च-उणा.- ४।४४, १३३. सा हि पारं गन्तु प्रणोतव्या भवति। पारगमनाय नम्रेव भवति- नि. दु. वृ. ५।४,

१३४. ग्लानुदिभ्यां डौ.-उणा. २।६४, १३५. पिपर्ति पूरयति- नि.दु.वृ. ५१४, १३६. नि. ४।४, १३७. नि. ६।४, १३८ नि. ५।३, १३९. अम.को. १।१।४७, १४०. शमेर्वन्-उणा. ४।९४, १४१. प्रथः कित्सम्प्रसारणंच-उणा. १।१३४, द्र.हला. पृ. ४४४, १४२. नि. ४।२, १४३. अम. को. २।६।५४, १४४. कु कुटिलम् अंचितं भवति नि.दु.वृ. ५।४, १४५. ईषदंचितं भवति-नि.दु.वृ. ५।४, १४६. अम.को. २।८।६४, १४७. द्रोणोऽस्त्रियामाढके स्यादाढकादि चतुष्टये। पुमान कृपीपतौ कृष्णंकाकेस्त्रीनीवृदन्तरे। स्त्रियां काष्टाम्बु वाहिन्यां गवादन्यामपीष्यते।। -मेदि. ४६।१७-१८, १४८. कृवृनृसि.-उणा. ३।१०, १४९. अम.को. १।१०।२६, १५०. निपानमाहावः अष्टा ३।३।७४, १५१. अष्टा ३।३।१९, १५२. एरच्-अष्टा. ३।३।५६, १५३. कोकूयमाना शब्दं कुर्वाणा सा तालुनि शब्दान् नुदति तस्मात् कोकुवा नुदनात् काकुद शब्दं निरुक्तं स्यात् -नि.दु.वृ. ५।४, १५४. तत्र भवः अष्टा. ४।३।५३, १५५. अम.को. २।६।९१ (द्र. रामा.) अभि. चि.-३।२४९-द्र. शेषरक् (रसाकाकुर्ललना च), १५६. तया सर्वेआत्मनि अन्नं जुह्वति नि.दु.वृ. ५।४, १५७. तया आह्वयन्ति-नि.दु.वृ. ५।४, १५९. शेवयह्वजिह्वाग्रीवाप्वमीवाः- उणा. १।१५२, १५९. तद्धि अन्येभ्यः अंगेभ्यः तीर्णतरं भवति-नि.दु.वृ. ५।४, १६०. त्रो रश्च लः- उणा. १।५, १६१. मृगय्वादयः-उणा. १।३७, १६२. नि. ९।३, १६३. स्यन्देः सम्प्रसारणं घश्च-उणा. १।११, १६४. नेदीय इत्सृण्यः पक्वेमेयात्-ऋ. १०।१०१।३, १६५. सृवृषिभ्यां कित्-उणा. ४।४९.

(ग) निरुक्तके षष्ठ अध्याय के निर्वचनोंका मूल्यांकन

निरुक्तका षष्ठ अध्याय निघण्टुके नैगम काण्डके तृतीय खण्डकी व्याख्या है। नैगम काण्डके तृतीय खण्डमें स्वतंत्र पदोंका संग्रह है जिसकी कुल संख्या १३३ है। इन सारे शब्दोंके निर्वचन निरुक्तके इस अध्यायमें प्राप्त होते हैं नैगम काण्डके ये सारे शब्द अनेकार्थक तथा क्लिष्ट संस्कार वाले हैं। अनेकार्थक होने के कारण इन शब्दोंकी व्याख्यामें एक से अधिक निर्वचन देनेकी आवश्यकता पड़ी है।

निरुक्तके षष्ठ अध्यायमें यास्कने कुल २०६ पदोंका निर्वचन किया है। जिसमें निघण्टुके नैगम काण्डके तृतीय खण्डमें पठित एक सौ तैंतीस पदोंके निर्वचन भी सम्मिलित हैं। शेष ७३पद प्रसंगतः आये हैं जिनका वैदिक संस्कृत की अपेक्षा लौकिक

संस्कृत में अधिक महत्त्व है। कुछ निर्वचनों को पूर्व में स्पष्ट किया गया है या बादमें व्याख्याकी जायगी, कह कर यास्क काम चला लेते हैं। अमत्र: एवं दूत: की व्याख्या पूर्व में भी की जा चुकी है, तथा ऋदूपेकी व्याख्या बादमें की जायगी, के द्वारा यास्क स्पष्ट करते हैं।

इस अध्यायमें यास्क द्वारा प्रस्तुत २०६ शब्दोंके निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे सारे निर्वचन सर्वथा उपयुक्त नहीं हैं। कुछ निर्वचन ध्वन्यात्मक शैथिल्यसे युक्त हैं तथा कुछ भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे सर्वथा अस्पष्ट। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे उपयुक्त निर्वचनों में -आशुशुक्षणि:, शुक्, शुचि:, आशा, काशि:, मुष्टि, रोदसी, रोध, लोष्ट:, कुणारुम्, अलातृण: बल:, व्रज:, पुरूहूत:, तपुषि, हेति:, विस्रुह: वीरुध, पुलुकाम:, कपना:, रूजाना:, जूर्णि, ओमना, उपलप्रक्षिणी, कारू:, ननां, उपसि, प्रकलवित्, अभ्यर्द्धयज्वा, ईक्षे, क्षोणस्य, पाथ:, सवीमनि, सप्रथा, विदथानि, श्रायन्त:, ओज:, आशी:, अजीग:, शशमान:, कृपा, जामाता, स्याल:, लाजा, स्यम्, सोमानम्, औशिज:, उशिक्, अनवायम्, अघम्, तपु:, चरू:, पिशुन:, प्रसिति:, तृष्वी, तपिष्ठै:, अमीवा, क्रिमि:, दुरितम्, अप्वा, श्रुष्टी, नासत्यौ, पुरन्धि:, स्रवत्, आप्यम्, सुदत्र:, सुविदत्र, आनुषक्, तुर्वणि:, गिर्वणा, असूर्ते, सूते, अम्यक्, अग्रिया, पचता, शुस्रुध:, अमिन:, जज्झती:, अप्रतिष्कुत:, सृप्र:, हनू, नासिका, धेना, रंसु, द्विवर्हा:, अक्र:, उराण:, स्तिया, स्तिपा:, जवारू, जस्रुथम्, स्कन्ध:, तुज्र:, वर्हणा, ततनुष्टि:, घ्रंस, ऊघ:, कियैधा:, भूमि:, तुरीयम्, रास्पिन:, ऋजति:, ऋजुनीति, हिनोत, शकटम्, दिविष्टिषु, कुरूंग:, क्रूरम्, जिन्वति, ऋचीसम:, अनर्शरातिम्, अश्लीलम्, अनर्वा, मन्द्रजिह्वं, असामि, सामि, गल्दया, लागंल:, लांगूलम्, मत्स्या:, जालम्, अंहुर:, वाताप्यम् वाय:, आधव:, सदान्वे, शिरिम्बिठ:, विकट:, मगन्द:, पण्डग:, शाखा, वुन्द:, ऋदूपे, उल्वम्, और गण:।

पूर्ण ध्वन्यात्मकतासे रहित निर्वचनोंमें आशा, मुष्टि, वाणी, मूलम्, अग्रम्, सललूकम्, भाऋजीक:, जूर्णि:, कृपा, स्याल:, सूर्पम्, क्रव्यम्, किमीदिने, अमवान्, पाज:, रिशादस:, जारयायि, सुशिप्र:, कुलिश:, इलीविश:, विष्पित:, कुलम् जल्हव:, लिवुजा, ब्रतति, करूलती, आणि और ऋवीसम् है।

यास्कके कत्पयम्, अस्कृधोयु: निश्रम्मा, विजामाता, अणु: और स्थर्यति निर्वचनकी दृष्टिसे अस्पष्ट हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अपूर्ण निर्वचनोंमें कूलम्, नक्षद्दाभम्,

वृवदुक्थ, असिन्वति, ततः, अस्मे, ओमासः, अमति, यादृश्मिन् चनः शासदानः, करस्नौ, प्रतद्वसू, चोष्कूयमाणः, चोष्कूयते, सुमत्, स्थूरः, बकुरः, वृकः, वेकनाटा, अभिधेतन, वत, चाकन, असक्राम् अनवद्रवः, क्रिविर्दती, दनः,शरारूः और किः हैं।

र ल की एकता के सिद्धान्त पर आधारित निर्वचन-हैं-लोष्टः, रूजः, कूलम्, वलम्, पुरुकामः। अधम् में ह का ध में परिवर्तन है। अर्थसादृश्य पर अलातृणः, स्कन्धः, ऊधः, रात्रिः और शाखा हैं। अलातृण में स्वर संस्कार अस्पष्ट है। मृदुदर से ऋदूदर शब्द में आदि व्यंजन लोप है। दृश्यात्मक आधार पर लम्ब एवं लांगूल शब्द आधारित हैं। अमूर से अमूढ़ः शब्द में क्षेत्रीय प्रभाव स्पष्ट है। क्रिमिः तथा काणः शब्द आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित हैं। लांगल से लांगूल में रूपसादृश्य है। जज्झतीः शब्द में शब्दानुकरण स्पष्ट है। नासत्यौ, कुरुंगः, कुरूः शिरिम्विठः, पराशर आदि शब्दोंके निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखते हैं। औपमन्यव द्वारा प्रदर्शित विकट एवं काणः के निर्वचन यास्कके निर्वचनोंकी अपेक्षा कम वैज्ञानिक हैं।

निरुक्त के षष्ट अध्याय में विवेचित निर्वचनों का परिशीलन द्रष्टव्य है-

(१) आशुशुक्षणिः- इसका अर्थ होता है-अग्नि। निरुक्तके अनुसार १- आशुइति च शु इतिच क्षिप्रनामनी भवतः। क्षणिरन्तरः क्षणोतेः१ अर्थात् आशु एवं शु दोनों क्षिप्र का वाचक है अन्तिम पद क्षणिः क्षण् हिंसायां धातुसे निष्पन्न है। आशु + शु +क्षण् = आशुशुक्षणिः इसके अनुसार इसका अर्थ होगा शीघ्र नष्ट करने वाली। अग्नि किसी वस्तु को तत्काल जला डालती है। २-आशु शुचा क्षणोतीति वा१ अर्थात् वह अपनी कान्तिसे शीघ्र नष्ट कर देने वाली होती है।इसके अनुसार इस शब्दमें आशु +शुच्+ क्षण् धातुका योग है-आशु + शुच्-शुक्+षणिः=आशुशुक्षणिः।३-सनोतीति वा१ अर्थात् यह अपनी दीप्तिसे धन प्रदान करने वाली है। इसके अनुसार इस शब्दमें आशु + शुचा+षण् सम्मक्तौ धातुका योग है- आशु +शुक् +षण् =आशुशुक्षणिः। ४- आशुशोचयिषु१ अर्थात् जो प्रदीप्त होनेकी इच्छा वाली है। इसके अनुसार आ + शुद् दीप्तौ +सन् + अनि प्रत्ययके योगसे आशु शुक्षणिःशब्दनिष्पन्न होता है२-आ+शुच्+शुच्+सन्+अनिः =आशुशुक्षणिः। यास्कके प्रथम एवं तृतीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचनों के अर्थात्मक महत्त्व हैं। उपर्युक्त निर्वचनोंसे अग्निके कार्य एवं उसकी उपयोगिता स्पष्ट होती है। धार्मिक दृष्टिकोण से भी अग्नि का महत्त्व है क्योंकि इसकी दीप्तिसे धनकी

प्राप्ति होती है। व्याकरणके अनुसार आङ्+ शुष्+सन् + अनि: प्रत्यय कर आशुशुक्षणि: शब्द बनाया जा सकता है।

(२) शुक् :- इसका अर्थ होता है तेज। निरुक्त के अनुसार शुक् शोचते:१ अर्थात् यह शब्द दीप्त्यर्थक शुच् धातुसे निष्पन्न होता है- शुच् + क्विप् शुक्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार भी शुच् + क्विप् प्रत्यय कर शुक् शब्द बनाया जा सकता है।

(३) शुचि: :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तके अनुसार इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं। १- शुचि: शोचते: ज्वलतिकर्मण:१ अर्थात् शुचिका अर्थ दीप्ति होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें ज्वलत्यर्थक शुच् धातुका योग है। शुचि:का अर्थ पवित्र भी होता है- अयमपीतर: शुचिरेतस्मादेव१ अर्थात् पवित्र वाचक शुचि: शब्द भी इसी धातुसे निष्पन्न होगा- शुच्-शुचि:। निरुक्त सम्प्रदाय वालों के अनुसार शुचि: का निर्वचन होता है-निषक्तमस्मात्पापकमति नैरुक्ता:१ अर्थात् निकल गया है पापका समूह जिससे उसे शुचि: कहा जायगा तथा यह पवित्रका वाचक होगा या जिससे पापका निर्गमन हो गया है उसे शुचि कहते हैं। इस निर्वचनके अनुसार शुचि: शब्द में नि+ सिच् क्षरणे धातुका योग है। यास्कके निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। निरुक्त सम्प्रदायका निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे शिथिल हैं। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यास्कके अतिरिक्त भी निरुक्त सम्प्रदाय प्रचलित थे या यास्कके पूर्व से ही निरुक्त सम्प्रदाय थे यह यास्कके उद्धरणसे ही स्पष्ट होता है। व्याकरणके अनुसार शुच् + इन् प्रत्यय कर शुचि: शब्द बनाया जा सकता है।३

(४) आशा :- यह दिशाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-आशा दिशो भवन्ति आसदनात्१ अर्थात् यह निकट, आसन्न होती है इसलिए आशा कही जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें आ +सद् गतौ धातुका योग है। आशाका अर्थ उपदिशा भी होता है - आशा उपदिशो भवन्ति अभ्यशनात्१ अर्थात् यह चारो ओर व्याप्त होती है इसलिए आशाका अर्थ उपदिशा भी होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें अभि+ अश् व्याप्तौ धातुका योग है अभि + अश् = आशा।द्वितीय निर्वचन अर्थात् उपदिशाके अर्थमें निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार अभि +

अश् = आशाको संगत माना जायगा। प्रथम निर्वचनमें ध्वन्यात्मक औदासिन्य है। यह अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार आ + अश् व्याप्तौ धातुसे अच् प्रत्यय कर आशा शब्द बनाया जा सकता है।४ लौकिक संस्कृतमें भी आशा दिशाका वाचक है। दिशा के अतिरिक्त इसका अर्थ तृष्णा भी होता है।५ तृष्णा वाचक आशा भी इसी निर्वचनसे माना जायगा क्योंकि तृष्णा भी व्याप्त रहती है।

(५) काशि :- यह मुष्टि (मुट्ठी) का वाचक है। निरुक्तके अनुसार-काशिः मुष्टिः प्रकाशनात्१ अर्थात् प्रकाशित होने के कारण काशिः कही जाती है क्योंकि मुट्ठीमें रखी हुई वस्तु प्रकाशित होती है। इस निर्वचनके अनुसार काशिः शब्दमें काश् दीप्तौ धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार काश् दीप्तौ+ इन्६ प्रत्यय कर काशिः शब्द बनाया जा सकता है।

(६) मुष्टि :- इसका अर्थ होता है-मुट्ठी। निरुक्तके अनुसार १- मुष्टि-मोचनाद्वा। अर्थात् यह शब्द मुच् मोक्षणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह बन्धन से छुड़ाता है - मुच् +क्तिन् = मुष्टिः। २- मोषणाद्वा अर्थात् यह शब्द मुष् स्तेये धातुके योगसे निषपन्न होता है क्योंकि इससे वस्तुएं चुराई जाती है-मुष्-क्तिन् = मुष्टिः। ३- मोहनाद्वा अर्थात् यह शब्द मुह् वैचित्ये धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि मुष्टिगत वस्तुकी जानकारीमें व्यक्ति संदिग्ध रहता है। मुह् + क्तिच्= मुष्टिः। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। प्रथम एवं तृतीय निर्वचनोंमें ध्वनिगत औदासिन्य है। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंका उपयुक्त है। इन निर्वचनोंसे मुष्टि जन्य कार्यकलापोंका संकेत मिलता है। व्याकरणके अनुसार मुष् +क्तिच् प्रत्यय कर मुष्टिः शब्द बनाया जा सकता है।

(७) रोदसी :- यह रोधसी अर्थात् द्यावा पृथ्वीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-रोदसी रोधसी द्यावापृथिव्यौ। विरोधनात्२ अर्थात् रोधसी शब्द ही रोदसी हो गया है। यह द्यावा पृथिवीके प्राणियोंको रोके रहता है। इसके अनुसार इसमें रुध् आवरणे धातुका योग है- रुध्+ असुन् = रोधस्-द्विक्चनमें रोधसी तथा ध का द होकर रोदसी शब्द हुआ इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द वर्ण का ध महाप्राणीकरण माना जायगा। व्याकरणके अनुसार रुद्+असुन्७ प्रत्यय कर रोदस् -रोधसी शब्द बनाया जा सकता है।

(८) **रोध**. :- इसका अर्थ होता है किनारा। निरुक्तके अनुसार-रोधः कूलं निरुणद्धि स्रोतः१ अर्थात् रोधः का अर्थ होता है किनारा क्योंकि वह स्रोत को रोकता है। इसके अनुसार रोधस् शब्दमें रूध् आवरणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार, इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार रूधिरावरणे धातुसे असुन् प्रत्यय कर रोधस् शब्द बनाया जा सकता है।

(९) कूलम् :- यह किनाराका वाचक है। निरुक्तके अनुसार कूलं रूजतेः विपरीतात्१ अर्थात् यह जलकी धारासे प्रायः (भंग) टूटता रहता है। इसके अनुसार इस शब्दमें रूज् भंगे धातुका योग है। रूज् धातुको विपरीत कर यह शब्द बनाया जाता है- रुज्-रूज्-रूक्-र +ऊ +क - क्+ ऊ+ र- कूर-कूल। रूक का आद्यन्त विपर्यय होकर तथा र का ल होकर कूलम्, शब्द बना है। निरुक्तकी प्रक्रियाके अनुकूल होने पर भी भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जायगा। अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार कूल +अच् प्रत्यय कर कूलम् या कूल् +घञर्थे कः प्रत्यय कर कूलम् शब्द बनाया जा सकता है।

(१०) लोष्ट :- इसका अर्थ होता है-मृत्तिका खण्ड, ढेला। निरुक्तके अनुसार रूजतेरविपर्ययेन१ अर्थात् यह भंग होता रहता है। इसके अनुसार लोष्ट शब्द रूज् भंगे धातुसे निष्पन्न होता है। रूज् से लोष्ट शब्द बनता है-रूज्-रोष्ट-लोष्टः (र का ल में परिवर्तन)। र ध्वनिका ल में परिवर्तन यास्कके पूर्वसे ही दीख पड़ता है। रलयोरैक्यम् का उदाहरण यास्कने अत्यधिक प्रस्तुत किया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार लोष्ट संघाते धातुसे अच्८ प्रत्यय कर या घञ् प्रत्यय कर लोष्टः शब्द बनाया जा सकता है।

(११) कुणारूम् :- इसका अर्थ होता है शब्द करने वाला, गर्जनशील। निरुक्तके अनुसार कुणारूम् परिक्वणनम् मेघम्१ अर्थात् शब्द करते हुए मेघ। कुणारूम् शब्द मेघका विशेषण है।। इसके अनुसार इस शब्दमें क्वण् शब्दे धातु का योग है। इसमें व का उ सम्प्रसारणके द्वारा हुआ है क्वण्-क-व-उ-ण् + आरू = क-उ-ण् + आरू= कुणारू। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार क्वण् शब्दे धातुसे आरू प्रत्यय कर कुणारू शब्द बनाया जा सकता है।

(१२) अलातृण:- यह मेघका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-अलातृणोऽलमातर्दनो मेघो१ अर्थात् जिसकी पर्याप्त हिंसा हो सके। इसके अनुसार इस शब्दमें अलम् +आ + तृद् हिंसानादरयो: धातुका योग है। अलम् के लिए वैदिक शब्द अरम् प्राप्त होता है। र वर्णका ल होकर अरम् शब्द ही अलम् हो गया है। इस निर्वचनका प्रकृति एवं विकार स्वर एवं संस्कार अस्पष्ट है। इसमें अर्थ सादृश्यका आधार अपनाया गया है।९ अलम्+ आ+ तृद् से अलातृण मानने में ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त रहता है। अत: भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अलम्+ आ+ तृद् हिंसानादरयो: धातु से घञ् प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है।

(१३) बल :- यह मेघका वाचक है। निरुक्तके अनुसार मेघो बलो वृणोते:१ अर्थात् बल: शब्द वृञ् (वरणे) आच्छादने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह जल को आच्छादित किए रखता है। वृञ् +अप्-वृ + अप् = वर: -वल:। र वर्णका ल में परिवर्तन इस निर्वचनमें हुआ है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वल् + अच्१० प्रत्यय कर बल: शब्द बनाया जा सकता है।

(१४) व्रज :- इसका अर्थ होता है मेघ। निरुक्तके अनुसार-व्रजो व्रज न्त्यन्तरिक्षे१ अर्थात् वह अन्तरिक्षमें गमन करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें व्रज गमने धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें यह गोष्ठ, मार्ग एवं समूहके अर्थमें प्रयुक्त होता है।११ व्रजका लौकिक संस्कृतमें अर्थ विस्तार माना जायगा। व्रज् गतौ धातुका सम्बन्ध सभी अर्थों में विद्यमान है। व्याकरणके अनुसार व्रज् गतौ धातुसे अच्३ प्रत्यय कर व्रज: शब्द बनाया जा सकता है।

(१५) वाणी :- यह अनेकार्थक है। यहां जल एवं वचनके अर्थमें प्रयुक्त है। निरुक्त के अनुसार १-वाणी:आपो वा-वहनात्१ अर्थात् इसको सभी लोग ग्रहण करते हैं,वहनकरते हैं।इसके अनुसारइस शब्दमें वह् प्रापणे धातुका योग है।२-वाचोवा वदनात् अर्थात् वाणीका अर्थ वचन होता है क्योंकि वाणी बोली जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें वद् व्यक्तायां वाचि धातुका योग है। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे दोनों निर्वचन अपूर्ण हैं। अर्थात्मक आधार दोनों निर्वचनोंके पुष्ट हैं।। वह् धातुसे वाणी जलके अर्थको तथा वद् धातुसे वाणी वचन अर्थको व्यक्त करती है। व्याकरणके अनुसार वण् शब्दे

धातुसे इञ् +ङीष् प्रत्यय कर वाणी: शब्द बनाया जा सकता है।

(१६) पुरूहूतम् :- इसका अर्थ होता है जल। निरुक्तके अनुसार पुरूहूतं बहुभिराहूतमुदकं भवति१ अर्थात् यह जल बहुत लोगोंके द्वारा आहूत (अभीप्सित) होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें दो पद खण्ड हैं-पुरू +हूतम्। पुरू वहु का वाचक है तथा हूतम् हूञ् स्पर्धायां शब्दे च धातुका वाचक है-पुरू + ह्वेञ् +क्त=पुरूहूतम्। यह सामासिक शब्द है पुरूभि: हूतम् पुरूहूतम्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। पुरूहूतका अर्थ इन्द्र भी होता है।१२ इन्द्र भी यज्ञोंमें बहुतोंके द्वारा बुलाये जाते हैं। व्याकरणके अनुसार पुरू +ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च धातुसे क्त प्रत्यय कर पुरूहूत: शब्द बनाया जा सकता है।

(१७) मूलम् :- यह जड़का वाचक है। निरुक्तके अनुसार मूलं मोचनाद्वा अर्थात् इसे उखाड़ा जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें मुच् मोक्षणे धातुका योग है। २ - 'मोषणद्वा' अर्थात् यह मिट्टीमें छिपी रहती है या यह पृथ्वीसे रस ग्रहण करती है। इसके अनुसार इस शब्दमें मुष्स्तेये धातुका योग है। ३- मोहनाद्वा अर्थात् यह काफी दूर तक मिट्टीमें गयी होती है तथा पृथिवी से रस चूसती है अत: सब क्रियाओंसे यह व्यक्तियोंको चकित कर देती है मूढ़ बना देती है। इसके अनुसार इस शब्दमें मुह् वैचित्ये धातुका योग है। ध्वन्यात्मक आधार सभी निर्वचनों के अपूर्ण है। अर्थात्मक आधार सभीके संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन निर्वचनोंको उपयुक्त नहीं माना जायगा।व्याकरणके अनुसार मूल् धातुसे क प्रत्ययकर मूलम् शब्द बनायाजा सकताहै।

(१८) अग्रम् :- इसका अर्थ होता है अगला। निरुक्तके अनुसार अग्रमागतं भवति१ अर्थात् यह आया होता है। इसके अनुसार इस शब्द में आ +गम् धातुका योग है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह निर्वचन किंचित् शिथिल है। अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार अगि कुटिलायां गतौ धातुसे रक् प्रत्यय कर अग्रम् शब्द बनाया जा सकता है।

(१९) सललूकम् :- इसका अर्थ होता है- पापी, आवारा घूमने वाला। १- सललूकं संलुब्धं भवति पापकमिति नैरुक्ता:१ अर्थात् नैरुक्तके अनुसार सललूक का अर्थ है पापी। सललूक संलुब्धको कहते हैं इसके अनुसार इस शब्दमें सम् + लुभ् विमोहने धातुका योग है सम्+ लुभ्- (यङलुक्) + क्त +कन् =संललुब्धकम्- सललूकम् (इसमें वर्ण लोप आदि होकर यह शब्द निष्पन्न हुआ) २- सर रूकं वा स्यात्

सर्तेरभ्यस्तात्१ अर्थात् शरणशील या आवारा घूमने वाला। इसके अनुसार इस शब्दमें सृ गतौ धातुका योग है। सृ धातुका अभ्यास होकर ससरूकम् (सृ +अभ्यास+ अक)= सररूकम्-सललूकम्। नैरुक्तों का निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे किंचित् शिथिल है। यास्क का निर्वचन नैरुक्तोंके निर्वचनकी अपेक्षा ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अधिक उपयुक्त है। अर्थात्मक आधार दोनों निर्वचनोंके उपयुक्त हैं।

(२०) तपुषि :- इसका अर्थ होता है तपाने वाला। निरुक्तके अनुसार तपुषिस्तपते:१ अर्थात् यह शब्द तप् सन्तापे धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह तपाने वाला होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(२१) हेति :- यह आयुधका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - हेतिर्हन्ते:१ अर्थात् यह शब्द हन् हिंसागत्यो: धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह हनन करता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। उक्त अर्थमें ही इसका प्रयोग लौकिक संस्कृत में भी पाया जाता है। व्याकरणके अनुसार हन् धातुसे क्तिन्१३ प्रत्यय कर हेति: शब्द बनाया जा सकता है।

(२२) कत्पयम् :- इसका अर्थ होता है सुखदायी जलवाला मेघ। निरुक्तके अनुसार कत्पयं सुखपयसम्। सुखमस्य पय:१ अर्थात् कत्पयं में दो पद खण्ड हैं कत् सुख प्रदका वाचक है तथा उत्तर प्रदमें पयस् शब्द जलका वाचक है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा सुखप्रद जलवाला। मेघका जल भी सुखप्रद या मधुर होता है१४ अत: कत्पयं मेघका वाचक है। यह निर्वचन अस्पष्ट है। इसका केवल अर्थ स्पष्ट किया गया है। इसके आधार पर भी इस शब्दमें कत + पयसम्-कत्पयसम् - कत्पयम् माना जायगा। इसका ध्वन्यात्मक आधार इसके अनुसार संगत माना जायगा। अर्थात्मक आधारसे तो यह उपयुक्त है ही। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग उक्त अर्थमें प्राय: नहीं देखा जाता।

(२३) विस्रुह :- यह जलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-विस्रुह: आपो भवन्ति विस्रवणात्१ अर्थात् विस्रुह: शब्दमें वि + स्रु गतौ धातुका योग है। जल भी गतिमान होता है। अत: विस्रुह: का अर्थ जल होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(२४) वीरुध :- यह औषधि या वनस्पतिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार

वीरूध: औषधयो भवन्ति विरोहणात्१ अर्थात् अनेक प्रकारसे उगनेके कारण वनस्पतियों को वीरुध: कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें वि +रूह् बीज जन्मनि प्रादुर्भावे धातुका योग है वि + रूह्-वि-रूध् ह का ध वर्ण परिवर्तन-वी+ रूध-वीरूध:। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। ह ध्वनिका महाप्राण वर्ण ध में परिवर्तन यास्कके अन्य निर्वचनोंमें भी प्राप्त होता है- ह्-अर्ध१५ गाह्-गाध१६ वह्-वधू१७ आदि। व्याकरणके अनुसार वि + रूध् + क्विप्१८ + दीर्घ१९-वीरूध: शब्द बनाया जा सकता है। लता गुत्मादिके अर्थमें इसका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें भी पाया जाता है।

(२५) नक्षद्दाभम् :- इसका अर्थ होता है व्यापक होकर गति देनेवाला या प्रहार करने वाला। निरुक्तके अनुसार नक्षद्धाभम् अश्नुवान दाभम्१ अर्थात् व्याप्त होकर हिंसा करने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें व्याप्त्यर्थक नक्ष् धातु तथा हिंसार्थक दभ् धातुका योग है। नक्ष् +दभ् = नक्षद्दाभम्। उक्त दोनों धातुओंकी उपलब्धि उक्त अर्थोंमें निघण्टुमें होती है। अभ्यशनेन दभ्नोतीति वा१ अर्थात् व्याप्त होकर या समीप आकर हिंसा करता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधारपूर्ण संगत नहीं है। अर्थात्मक आधार इसका उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(२६) अस्कृधोयु :- यह दीर्घायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- अस्कृधोयुरकृध्वायु: कृध्वितिह्रस्वनाम, निकृतं-भवति१ अर्थात् अस्कृधोयु:का अर्थ होता है अकृध्वायु:। कृधु शब्द ह्रस्वका वाचक है क्योंकि यह कटा होता है। कृधु शब्दमें कृत् छेदने धातुका योग है। अ + कृत्-कृधु + आयु:= अकृध्वायु: -अस्कृधोयु:। यह निर्वचन अस्पष्ट है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे स्वरगत औदासिन्य भी स्पष्ट है। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें लौकिक संस्कृतमें प्राय: नहीं देखा जाता।

(२७) निशृम्भा:- इसका अर्थ होता हैअशिथिल गतिसे ले जाने वाला। निरुक्तके अनुसार-निशृम्भा: निश्रथ्यहारिण:१९अर्थात् दृढ़तासे हरण करने वाले।२० इसके अनुसार इस शब्दमें नि +श्रथ् मोक्षणे हिंसायाम् धातुका योग है। इस निर्वचनमें प्रकृति प्रत्ययका संकेत अस्पष्ट है। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे यह पूर्ण संगत नहीं है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जा सकता। इस निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरण के अनुसार नि + श्रन्थ् + भक् प्रत्यय कर निशृम्भ: शब्द बनाया जा

सकता है।

(२८) बृबदुक्थ :- इसका अर्थ होता है-बृहत् स्तोत्र। निरुक्तके अनुसार- बृबदुक्थो महदुक्थो वक्तव्यमस्या उक्थमिति बृबदुक्था वा१ अर्थात् महान् स्तोत्र वाला या अकथनीय स्तोत्र वाला। इसके अनुसार बृबदुक्थः शब्दमें दो पदखण्ड हैं- बृबत् + उक्थः। बृबत् बृहत् का वाचक है तथा उक्थ उत्तर पदस्थ है जिसका अर्थ होता है स्तोम। यास्कने बृबदुक्थ:का अवगत रूप महदुक्थ कहा है। महदुक्थ से बृबदुक्थ मान लेना ध्वन्यात्मक दृष्टिसे सर्वथा असंगत होगा। महत् को वृहत् मानकर भी वृहत्+ उक्थ; बृबदुक्थः मानने में ध्वनिगत औदासिन्य रहता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इस निर्वचनको पूर्ण नहीं माना जायगा। इस निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है।

(२९) ऋदूदर :- इसका अर्थ होता है सोम। निरुक्तके अनुसार-ऋदूदरः सोमो मृदुदरः मृदूदरेष्विति वा१ अर्थात् मृदु उदर वाला या उदरमें जाने पर जो मृदु हो। जो अन्दरसे मृदु या कोमल हो उदरस्थ होने पर उस मृदु को मृदुदर कहा जायगा मृदु + उदर=मृदूदर- ऋदूदर। इस शब्दमें प्रथम पद ऋदु है जो मृदु से वर्ण लोप होकर बना है उत्तर पद उदर है। अतः ऋदु+उदर=ऋदूदरः शब्द बना। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इस से उपयुक्त माना जायगा। उक्त अर्थमें इसका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता।

(३०) ऋदूपे :- यास्क इसकी व्याख्या आगे करेंगे कह कर विश्राम ले लेते हैं लेकिन आगे में इसकी उपलब्धि नहीं होती।

(३१) पुलुकाम :- इसका अर्थ होता है बहुत कामनाओं वाला। निरुक्तके अनुसार पुलुकामः पुरूकामः१ अर्थात् बहुत हैं कामनाएं जिसकी। इस शब्दमें दो पद खण्ड हैं- पुलु+ कामः। पुलु पुरू का वाचक है जिसका अर्थ होता है अधिक। इसमें र वर्ण का ल में परिवर्तन हो गया है फलतः पुरू पुलु उत्तर पद कामः कामना का वाचक है- पुलु + कामः= पुरूकामः। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(३२) असिन्वती :- इसका अर्थ होता है- न चबाते हुए। निरुक्तके अनुसार- असिन्वती असंखादन्त्यौ१ अर्थात् ठीक ढंग से नहीं खाते हुए। यास्कने इस निर्वचनका मात्र अर्थ ही स्पष्ट किया है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जा सकता। असिन्वती शब्दमें न-अ+षिञ् बन्धने धातु + शतृ+ ङीप् प्रत्ययका योग है। यह

प्रथमाके द्विबचनका रूप है।

(३३) कपना :- यह क्रिमिका वाचक है। यह लकड़ी आदिमें लगने वाला कीड़ा, घुणविशेषका बोधक है। निरुक्तके अनुसार-कपना: कम्पना: क्रिमयो भवन्ति१ अर्थात् कपना: रस चोषक कीड़ेका वाचक है जो गतिमान होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें कप् गतौ धातुका योग है। कम्पनासे भी कपना: शब्द माना जायेगा। कप् धातुसे कपना: शब्द माननेमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त रहता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे यह संगत है। व्याकरणके अनुसार कप् गतौ + ल्यु प्रत्यय कर कपन: कपना: शब्द बनाया जा सकता है। इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थ में लौकिक संस्कृतमें प्राय: नहीं देखा जाता।

(३४) भाऋजीक :- इसका अर्थ होता है-अप्रतिहत प्रकाशवाला। निरुक्तके अनुसार-भाऋजीक: प्रसिद्धभा:१ यह सामासिक शब्द है। ऋजीक प्रसिद्ध का वाचक है तथा भा दीप्तिका। ऋजीका भा दीप्तिर्यस्य स ऋजीकभा: वर्णविपर्ययसे भाऋजीक: ऋजु ह कन् ह भा ऋजु कभा: ऋजीकभा:- भाऋजीक:। यह अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है। इसका ध्वन्यात्मक पक्ष किंचित् शिथिल है। अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(३५) रूजाना :- यह नदीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार रूजाना: नद्यो भवन्ति रूजन्ति कूलानि१ अर्थात् ये तटों को तोड़ती रहती है अत: नदियां रूजाना: कहलाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें रूज् भंगे धातुका योग है-रूज्-रूजाना:। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। यह वैदिक शब्द हैं। लौकिक संस्कृतमें नदीके अर्थ में इसका प्रयोग नहीं प्राप्त होता।

(३६) जूर्णि :- इसका अर्थ होता है-गति करने वाला या हिंसा करने वाला। निरुक्तके अनुसार १- जूर्णिर्जवतेर्वा१ अर्थात् यह शब्द जू गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह गति वाला होता है।२-द्रवतेर्वा१अर्थात् यहशब्द द्रुगतौ धातुके योग से निष्पन्न होता है-द्रु धातुके उ एवं र का आपसीवर्ण परिवर्तनतथा द का ज कर द् र् उ-द-ऊ-र्-जूर्+ नि:= जूर्णि:। इसके अनुसार भी इस शब्दका अर्थ होगा गति करने वाला। ३- दूनोतेर्वा१ अर्थात् यह शब्द दुङ् परितापे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा हिंसा करने वाला। इन निर्वचनों से स्पष्ट होता है कि

जूर्णि: शब्द सेनाका वाचक है क्योंकि वह गति करने वाला या हिंसा करने वाला होता है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय एवं तृतीय निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। भाषा विज्ञानके अनुसार जृ वयोहानौ धातुसे नि प्रत्यय कर जूर्णि: शब्द बनाया जा सकता है। व्याकरण के अनुसार ज्वर् धातु से नि: प्रत्यय कर जूर्णि: शब्द बनाया जाता है।२१

(३७) ओमना :- इसका अर्थ होता है रक्षा करनेके लिए। ओमना अवनाय१ अर्थात् यह शब्द अव् रक्षणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। अव् रक्षणे धातु के व को ऊ करने पर अ + ऊ = मन् = ओमन् ओमना शब्द बनता है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार- अव् +मनिन् प्रत्यय कर ओमन्- तृ.ए.व. ओमना शब्द बनाया जा सकता है।

(३८) उपलप्रक्षिणी :- इसका अर्थ होता है-सक्तुकारिका, सक्तु बनाने वाली। निरुक्तके अनुसार- उपलप्रक्षिणी उपलेषु प्रक्षिणाति२२ अर्थात् प्रस्तरों पर अन्नको कूटने वाली। इसके अनुसार इस शब्दमें उपल +प्र + क्षि धातुका योग है। २- उपलप्रक्षेपिणी वा२२ अर्थात् बालुओंमें अन्नको डालने वाली। इसके अनुसार इस शब्दमें उपल + प्र + क्षिप् प्रेरणे धातुका योग है। उपल+ प्र +क्षिप् =उपलप्रक्षिणी। यह सामासिक शब्द है। इन निर्वचनोंसे स्पष्ट होता है कि पहले अन्नको कूटा जाता है तदन्तर उसे भूंजा जाता है और अन्तमें पीसने पर सक्तुका निर्माण होता है। दुर्गाचार्य प्रथम निर्वचनका अर्थ अन्न कूटना, भूनना तथा पीसना मानते हैं जो सक्तु निर्माणके तीन प्रमुख संस्कार हैं।२३ यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जायगा। वैदिक अन्नोंमें जौ सर्वाधिक प्रसिद्ध रहा है। जौ से सक्तु बनानेमें अभी भी कूटना, भूनना तथा पीसना तीन संस्कार निहित है।

(३९) कारू :- इसका अर्थ होता है स्तुतियोंका प्रयोक्ता या शिल्पी। इसके संबंधमें यास्कका कहना है-कारू: कर्ता स्तोमानाम् अर्थात् स्तात्रों का प्रयोग करने वाला। इसके अनुसार कारू: शब्दमें कृ धातुका योग है। शिल्पीके अर्थमें कारू: शब्द भी कार्य सम्पादन रूप कृ धातुसे ही निष्पन्न है। कार्य करने वालेको कारू: कहते हैं। इसका ध्वन्यात्मकतथा अर्थात्मक आधारउपयुक्त है।व्याकरणकेअनुसार कृ+उण् प्रत्यय कर यह शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें भी यह शब्द शिल्पीके अर्थमें

प्रयुक्त होता है।२४

(४०) तत :- यह सन्तानका वाचक है। निरुक्तके अनुसार तत इति सन्तान नाम पितुर्वा पुत्रस्य वा अर्थात् तत शब्द सन्तानका पर्याय है। यह पिताका नाम है और पुत्रका भी नाम है। पिताके अर्थमें तत शब्दमें तनु विस्तारे धातुका योग है तन्यते यस्मात् स ततः तथा पुत्रके अर्थमें तन्यते यः स ततः माना जायगा अर्थात् जिसे पैदा किया जाता है वह ततः पुत्रका वाचक है तथा इसमें भी तनु विस्तारे धातुका ही योग है। इस प्रकार पिता विस्तार करने वाला तथा पुत्र विस्तार पाने वाला है। यास्कका यह निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार अपूर्ण है। इन्होंने तत शब्दमें धातु प्रत्ययादिका संकेत नहीं कर मात्र अर्थोंका ही प्रकाशन किया है। व्याकरणके अनुसार तनु विस्तारे धातुसे क्त प्रत्यय कर ततः शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें प्रचलित तात शब्दका मूल ततः ही है।

(४१) नना :- इसका अर्थ होता है- माता या लड़की। निरुक्तके अनुसार नना नमतेर्माता वा दुहिता वा२२ अर्थात् नना शब्द नम् प्रह्वत्वे धातुसे निष्पन्न होता है। इसका अर्थ माता एवं दुहिता दोनों होता है दोनोंके अर्थमें नम् धातुका ही योग माना जायगा। माताके अर्थमें ननाका प्रयोग इसलिए होता है क्योंकि माता दुग्ध पानादि करानेके लिए अपनी सन्तानकी ओर झुकती है२५ नमति या सा ननाः पुत्रीके अर्थमें नना प्रयोगके संबंध में कहा जा सकता है- वह अपने पिता आदिकी परिचर्या आदिके लिए नम्र होती है।२६ या सम्मानमें नमस्कारं करती है- नमति नमस्कारं करोति या सा ननाः दुहिता। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग उक्त अर्थमें प्रायः नहीं देखा जाता। क्षेत्रीय भाषामें नाना एवं नानी शब्दका प्रयोग होता है जो लगता है नना का ही विकृत रूप है। नाना एवं नानी शब्द मातामह एवं मातामहीके लिए प्रयुक्त होता है। इन शब्दोंमें अर्थात्मक सादृश्यका आधार माना जायगा। मगही आदि क्षेत्रीय भाषाओंमें नुनु का प्रयोग लड़का या लड़की के लिए होता है। लगता है नना शब्द ही अपने भिन्न रूपमें यहां प्रयुक्त है।

(४२) उपसि :- इसका अर्थ होता है-समीप स्थानमें। निरुक्तके अनुसार उपसि उपस्थे२२ अर्थात् इस शब्दमें उप + आस् धातुका योग है। यह निकट का वाचक है। उप + आस् -उपस् + ङि = उपसि। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।

भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(४३) प्रकलवित् :- इसका अर्थ होता- वणिक्। निरुक्तके अनुसार-प्रकलवित् वणिक् भवति। कलाश्च वेद प्रकलाश्च२२ अर्थात् यह कलाओं एवं उपकलाओं को जानने वाला होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें प्र + कला+ विद् ज्ञाने धातुका योग है। प्र कला = प्रकला शब्द कला एवं उपकला का पर्याय है। प्रकला या कला आकलनको कहते हैं जिसके अन्तर्गत शिल्प , मान , प्रतिमान आदि आते हैं। उपकला- गणित रत्न परीक्षा आदि विषयोंसे सम्बन्ध रखता है। वणिक् व्यवहारकी इन दोनों कलाओंका ज्ञाता होता है। यह सामासिक शब्द है। उपर्युक्त निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है।२७ भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार -प्र+ कला+ विद्+क्विप् = प्रकलविद् शब्द बनाया जा सकता है।

(४४) अभ्यर्द्धयज्वा :- इसका अर्थ होता है अभिवृद्धिके साथ दान देता हुआ यज्ञ करता है। निरुक्तके अनुसार-अभ्यर्द्धयज्वाऽभ्यर्द्धयन् यजति२२ अर्थात् अभिवृद्धि करता हुआ या पृथक् विभाजन कर यज्ञ करने वाला अभ्यर्द्धयज्वा कहलाता है।२८ इसके अनुसार अभि + अर्द्ध +यज् धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा।

(४५) ईक्षे :- इसका अर्थ होता है-शासन करते हो। निरुक्तके अनुसार-ईक्षे ईशिषे२२ अर्थात् ईक्षे एवं ईशिषे दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। ईक्षे शब्द ईशिषे से ही निष्पन्न है। इशिषे में इट् का लोप होकर ईश् +षे =ईक्षे शब्द बन गया है। ईश् ऐश्वर्ये धातुसे ईक्षे निष्पन्न हुआ है। इसके अनुसार इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(४६) क्षोणस्य :- यह षष्ठ्यन्त पद है। इसका अर्थ होता है-निवास का। निरुक्त के अनुसार-क्षोणस्य क्षयणस्य२२ अर्थात् यह शब्द क्षि निवासे धातुके योग से निष्पन्न होता है। क्षि निवासे + ल्युट् (अण्) क्षवण-क्षोण- क्षोणस्य। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार क्षि निवासे+डोन प्रत्ययकर क्षोण-क्षोणस्य शब्द बनाया जासकताहै

(४७) अस्मे :- यह शब्द अनेकार्थक है तथा विभिन्न विभक्तियों के अर्थ से युक्त है। यह शब्द प्रसंगानुकूल कई विभक्तियोंमें प्रयुक्त हुआ है। अस्मद् शब्दसे शे

करने पर अस्मे शब्द निष्पन्न होता है।२९ शे प्रत्यय किसी भी विभक्तिके स्थानमें आ सकता है। यह सुवन्त पद है इसलिए किसी भी सुप् विभिक्ति के स्थानमें इसका प्रयोग होगा। निरुक्तमें विभिन्न विभक्तियों में वैदिक प्रयोगों का प्रदर्शन किया गया है जिससे विभिन्न विभक्तियों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है :-

वैदिक प्रयोग	विभक्तियां	विभिन्न अर्थों में अस्मे
१. अस्मे ते बन्धु३०	प्रथमा बहुबचन	वयम् के अर्थ में
२. अस्मे यातं नासत्यासजोषा३१	द्वितीया बहुबचन	अस्मान् के अर्थ में
३. अस्मे समानेभिर्वृषभपौस्येभि:३२	तृतीया बहुबचन	अस्माभि: के अर्थ में
४. अस्मे प्रयन्धि मधवनृजीषन्३३	चतुर्थी बहुबचन	अस्मभ्यम् के अर्थ में
५. अस्मे आराच्चिद्द्वेष:सुनुतर्युयोतु३४	पंचमी बहुबचन	अस्मात् के अर्थ में
६. ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे३५	षष्ठी बहुबचन	अस्माकम् के अर्थमें
७. अस्मे धत्त वसवो वसूनि३६	सप्तमी बहुबचन	अस्मासु के अर्थ में

यास्क ने अस्मे शब्दका विभिन्न विभक्तियोंमें प्रयोग प्रदर्शन मात्र किया है। इसके निर्वचनके लिए अर्थ स्पष्ट करना ही अपना मूल उद्देश्य माना है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे या निर्वचन प्रक्रियाकी दृष्टिसे इसे पूर्ण निर्वचन नहीं माना जायगा।

(४८) पाथ :- यह अनेकार्थक है। पथिन् शब्दसे पाथ: बनता है। पाथ: शब्द की निरुक्ति निरुक्तके द्वितीय अध्यायमें की गयी है जिसमें पत् गतौ, पद गतौ या पन्थ् गतौ धातुका योग माना गया है।३७ वहां यह मार्गके अर्थ में प्रयुक्त है। पन्था से ही पाथ: शब्दका भी निर्वचन हो जाता है। निरुक्त के षष्ठ अध्याय में पाथ: शब्दके निर्वचन कई अर्थों में किए गए हैं- पाथ:का अर्थ अन्तरिक्ष होता है जो पथिन् शब्दके निर्वचनसे ही व्याख्यात है १- पाथ: अन्तरिक्षम्२२ पथा व्याख्यातम्३७ जलको भी पाथ: कहा जाता है २- उदकमपि पाथ उच्यते पानात् अर्थात् उदक वाचक पाथ: शब्दका निर्वचन पा पाने धातुसे किया गया है क्योंकि इसका पान किया जाता है। ३- अन्नमपि पाथ उच्यते पानादेव२२ अर्थात् अन्नको भी पाथ: कहा जाता है क्योंकि यह खाया जाता है। इसके अनुसार इसमें पा धातुका योग है। लगता है पा धातु वैदिक कालमें भक्षणार्थक भी था। इस प्रकार प्रथम निर्वचनमें पत् गतौ या पद्गतौ या पन्थ् गतौ से पाथ:, द्वितीय एवं तृतीय निर्वचनों में पा पाने या भक्षणे धातुसे पाथ: को व्युत्पन्न माना गया है। भाषा विज्ञानके

अनुसार पत् या पा धातुसे पाथः शब्द मानना उपयुक्त होगा। अतः यास्कके निर्वचनोंमें प्रथमको पत् धातुसे तथा द्वितीय एवं तृतीय को पा धातुसे माना गया है। वे सभी ध्वन्यात्मक एव अर्थात्मक आधारसे युक्त हैं। व्याकरणके अनुसार पा धातुसे थुट् प्रत्यय कर पाथः शब्द बनाया जा सकता है।३८ अंग्रेजी का **Path** (राह) शब्द पाथस् का ही अन्तरराष्ट्रीय रूप है।

(४९) सवीमनि :- इसका अर्थ होता हैं आज्ञा पर, शासन में, प्रसव में आदि। निरुक्तके अनुसार- सवीमनि प्रसवे२२ अर्थात् यह शब्द षु प्रसवैश्वर्ययोः धातुसे निष्पन्न होता है- सु + इमनिच्-(गुण) सव् + इमनिच्- (दीर्घ) सवीमन्- ङि .-सवीमनि। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-सु-इमनिच्+ ङि= सवीमनि शब्द बनाया जा सकता है।

(५०) सप्रथा :- इसका अर्थ होता है सर्वत्र प्रस्तृत। निरुक्तके अनुसार- सप्रथा सर्वतः पृथुः२२ अर्थात् इस शब्दमें स +प्रथ् विस्तारे धातुका योग है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा चारो ओर से फैला हुआ। स + प्रथ् + असुन् = सप्रथा। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार स +प्रथ् प्रख्याते धातुसे असुन् प्रत्यय कर सप्रथस् -सप्रथा शब्द बनाया जा सकता है।

(५१) विदथानि :- विदथ ज्ञानका वाचक है। विदथानि विदथका ही बहु वचनान्त रूप है निरुक्तके अनुसार-विदथानि वेदनानि२२ अर्थात् यह शब्द विद् ज्ञाने धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह जाना जाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार विद् धातुसे कथच् प्रत्यय कर विदथ्- विदथानि शब्द बनाया जा सकता है। विदथका अर्थ यज्ञ भी होता है। वेदके प्रसिद्ध व्याख्याकार उव्वट एवं महीधरने विदथको यज्ञ ही माना है।३९ यज्ञका ज्ञानसे सम्बन्ध होनेके कारण कोई विरोध नहीं माना जायगा।

(५२) श्रायन्तः- इसका अर्थ होता है आश्रित। निरुक्तके अनुसार- श्रायन्तः समाश्रिताः२२अर्थात् श्रायन्तः शब्द श्रिसेवायाम् धातुके योगसे निष्पन्न होताहै। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत

माना जायगा। आश्रित होनेके कारण श्रयन्तः या श्रायन्तः शब्द माना गया। यह शतृ प्रत्ययान्त शब्द है श्रि +शतृ श्रयन्- श्रयन्तः श्रायन्त- आश्रय लिए हुए।

(५३) ओज :- इसका अर्थ होता है बल, कान्ति आदि। निरुक्तके अनुसार- १- ओज ओजतेर्वा२२ अर्थात् यह शब्द उज् वृद्धौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है।४० यह वृद्धि करने वाला होता है। उज् धातु वैदिक धातु प्रतीत होता है। २- उब्जतेर्वा२२ अर्थात् यह शब्द उब्ज् आर्जवे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार उब्ज् आर्जवे धातुसे असुन् प्रत्यय कर ओजस् शब्द बनाया जा सकता है।४१ ओजका अर्थ प्रकाश, दीप्ति आदि भी होता है।४२

(५४) आशी :- यह अनेकार्थक है। आशीःका अर्थ आशिर होता है- आशीराश्रयणाद्वा अर्थात् इसका सेवन किया जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें आङ् + श्रिञ् सेवायां धातुका योग है। २- आश्रपणाद्वा अर्थात् उसे पकाया जाता है। अतः इसके अनुसार इस शब्दमें आङ् + श्रीञ् पाके धातुका योग है। आशीः का अर्थ आशीर्वाद भी होता है ३- अथेयमितराशीराशास्ते अर्थात् आशीर्वाद वाचक आशीः शब्द आङ् +शास् इच्छायां धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इस प्रकार प्रथम निर्वचनमें आङ् +श्रिञ् + क्विप् = आशीः, द्वितीयमें आङ् +श्रीञ् पाके + क्विप् = आशीः तथा तृतीयमें आङ् + शास् इच्छायां क्विप् = आशीः शब्द है। सभी निवर्चनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इन्हें उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार आङ् +शास् + क्विप् + ईत्व=आशीः शब्द बनाया जा सकता है लौकिक संस्कृतमें आशीः आशीर्वाद एवं सर्पदंष्ट्र४३ के लिए प्रयुक्त होता है। वेदमें आशिर या आशीर मिश्रत दुग्ध को कहते हैं। (आशीरके तीन प्रकार होते हैं १- यवाशिर, २- दध्याशिर एवं सोमाशिर। इन सबोंमें दुग्धके साथ क्रमशः यव, दधि एवं सोमका विशेष मिश्रण होता है। ये सभी विशेष पद्धतिसे पकाये भी जाते हैं)।

(५५) अजीग :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तके अनुसार -अजीगः: जिगर्तिर्गिरति कर्मा वा२२ अर्थात् यह शब्द निगरणार्थक गृ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा -खाता है,निगरण करता है। २- गृणाति कर्मा वा२२ अर्थात् यह शब्द गृ स्तुतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा स्तुति करता है। ३ गृह्णाति कर्मा वा२२ अर्थात् अजीग शब्द ग्रह् उपादाने धातुके

योगसे बनता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा ग्रहण करता है। इन निर्वचनोंमें यास्कने मात्र धातुकी कल्पनाकी है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे गृ निगरणे या गृ स्तुतौ या ग्रह् उपादाने धातु + लुङ् मध्यम पुरुष एक वचन का रूप माना जायगा।

(५६) अमूर :- इसका अर्थ होता है ज्ञानी। निरुक्तके अनुसार-अमूरः अमूढ़ःः२२ अर्थात् अमूरः शब्द अमूढ़ः का वाचकहै। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा जो मूढ़ या मूर्ख नहीं है। अमूरः शब्दमें न-अ + मूरः=अमूरः है। र का ढ में स्वस्थानीय परिवर्तन हुआ है। लगता है वैदिक संस्कृत में र ध्वनि ढ में विकसित हुई है। अमूढ़ःका ही अमूरः शब्द लगता है तत्कालीन क्षेत्रीय भाषाकी ध्वनियोंसे प्रभावित हो। शिक्षा ग्रन्थोंसे यह पता चलता है कि सम्प्रदाय भेदसे वर्णोंका उच्चारण तथा परिवर्तन होता रहा है। ष का ख, य का ज, र का ल ड का ल उच्चारण प्रायः हो जाता है उसी प्रकार ढ का र भी कालान्तरमें हो गया होगा। व्याकरणके अनुसार अ + मुह् वैचित्ये + क्त प्रत्यय कर अमूढ़ः अमूरः शब्द बनाया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे ध्वनिपरिवर्तन माना जायगा।

(५७) शशमानः :- इसका अर्थ होता है- स्तुति करता हुआ। निरुक्तके अनुसार शशमानः शंसमानःः२२ अर्थात् शशमानः शब्द शंस् स्तुतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह शानच् प्रत्ययान्त शब्द है। यास्कने इसका धातु प्रत्यय स्पष्ट नहीं किया है। शंस् धातुसे निष्पन्न मानने पर यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार शंस् स्तुतौ धातुसे शानच् प्रत्यय कर-शंसमान-शशमानः शब्द बनाया जा सकता है।

(५८) कृपा :- यह दयाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार १- कृपा कृपतेर्वा२२ अर्थात् यह शब्द कृप् कृपायां गतौ धातुसे निष्पन्न होता है दयाका योग होने के कारण कृपा दयाका वाचक है। २- कल्पतेर्वा२२ अर्थात् यह शब्द क्लृप् सामर्थ्ये धातुसे निष्पन्न हुआ है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचनमें ध्वनिगत औदासिन्य है। अर्थात्मक दृष्टिसे द्वितीय निर्वचन भी उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार कृप् कृपायां गतौ धातुसे क्विप् प्रत्यय कर कृपा शब्द बनाया जा सकता है।

(५९) विजामातृ :- धन देकर कन्या खरीदने वाला जामाता विजामाता कहलाता है। विजामातृ शब्दको स्पष्ट करते हुए यास्क कहते हैं- विजामातुरसुसमाप्तजामातु:२२ अर्थात् गुणोंसे अपरिपूर्ण जामाता। दक्षिण देशमें क्रीतापतिके लिए विजामाता शब्दका प्रयोग होता था। जामातृभाव की असमाप्ति इसमें भी रहती है। अत: असुसमाप्त अ समाप्त जामाताको विजामाता कहते हैं। लगता है वि उपसर्ग असु या अ का स्थानापन्न है। यह निर्वचन अस्पष्ट है। उपसर्ग वि भी अर्थात्मक दृष्टिसे स्पष्ट नहीं है।

(६०) जामाता :- यह जमाई, दामादका वाचक है। निरुक्तके अनुसार १- जामाता जा अपत्यं तन्निर्माता२२ अर्थात् सन्तान को निर्माण करने वाला। इस शब्दमें जा पूर्व पद है तथा मा धातु है। जा जाया का वाचक है जा+मा + तृच् = जामातृ- जामाता। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। दक्षिण देश वाले क्रीता कन्या के पति को विजामाता कहते हैं।४५ व्याकरणके अनुसार जा + माङ् माने या डुमिञ् प्रक्षपणे धातुसे तृच्४५ प्रत्यय कर जामातृ- जामाता शब्द बनाया जा सकता है।

(६१) स्याल :- इसका अर्थ होता है पत्नी का भाई, साला। निरुक्तके अनुसार १- स्याल: आसन्न: संयोगेनेति नैदाना:२२ अर्थात् नैदान सम्प्रदाय वालों का मंतव्य है कि वह सम्बन्धमें अत्यंत निकट होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें आ ऽ सद् धातुका योग है। इसके अनुसार सद् से स् तथा युज् से य लेकर स्याल शब्द बनाया गया है। २- स्यात् लाजानावपतीति वा२२ अर्थात् वह सूपसे लाजाको वहनके हाथमें डालता है इसके अनुसार इस शब्दमें स्यात्+लाज्+ड प्रत्ययका योग है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधार दोनों निर्वचनोंका उपयुक्त है। विवाह प्रकरणमें लाजाहुतिके समय कन्या भ्राता अपनी बहनके हाथमें लाजा देता है तथा कन्या लाजाकी आहुति डालती है। इस निर्वचनसे तत्कालीन भारतीय संस्कृतिका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। व्याकरणके अनुसार श्यै +कालन् प्रत्यय कर स्याल शब्द बनाया जा सकता है। या श्या +ला+ क: प्रत्यय कर श्याल: शब्द बनाया जा सकता है।४६ अभी भी विवाहके अवसर पर लाजाहुतिकी विधि प्रचलित है जिसमें कन्या भ्राता बहनके हाथमें रखे वंशपात्रमें लाजा देता है।

(६२) लाजा :- यह भूंजे हुए धान (लावा) का वाचक है। निरुक्तके अनुसार लाजा: लाजते:२२ अर्थात् लाजा शब्द भूनना अर्थ वाले लाज् धातुके योगसे निष्पन्न

होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा जो भूंजा हुआ हो। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार लज् भर्जने धातुसे घञ् प्रत्यय कर लाजा शब्द बनाया जा सकता है - लज् + घञ् लाजः लाजा।४७

(६३) स्यम् :- इसका अर्थ होता है खाद्यान्न साफ करने वाला पात्र विशेष-सूर्प। निरुक्तके अनुसार-स्यं शूर्पं स्यते:२२ अर्थात् स्य शूर्प का वाचक है तथा यह सो अन्तकर्मणि धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इससे खाद्यान्न से अनावश्यक वस्तुएं फटक दी जाती हैं, निकाल दी जाती हैं।४८ इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जायगा।

(६४) शूर्पम् :- यह खाद्यान्न आदिको साफ करने वाला सूप विशेषका वाचक है। निरुक्तके अनुसार १- शूर्पमशनपवनम्२२ अर्थात् यह अन्नको पवित्र करने वाला होता है। इसके अनुसार शूर्पम् शब्दमें अश्+ पू पवने धातुका योग है। २- शृणातेर्वा अर्थात् यह शब्द शृ हिंसायाम् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इससे अन्नसे संबंधित कीड़े नष्ट कर दिये जाते हैं। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। डा. वर्मा के अनुसार द्वितीय निर्वचन स्वरगत औदासिन्यसे युक्त है।४९ वस्तुतः यह निर्वचन ध्वन्यात्मक शैथिल्यसे समन्वित है। इसका अर्थात्मक आधार सर्वथा संगत है। व्याकरणके अनुसार शूर्प् माने धातुसे अच् प्रत्यय कर सूर्पम् शब्द बनाया जा सकता है।५०

(६५) ओमास :- इसका अर्थ होता है रक्षक या प्रापणीय। यह बहुबचनान्त है। यास्कने इसका विवेचन द्वादश अध्यायमें किया है। षष्ठ अध्यायमें इस शब्दका मात्र संकेत किया गया है। ओमासः अवितारो अवनीया च। अर्थात् रक्षा करने वाला या प्रापणीय को ओमासः कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें अव रक्षणे या अव् प्रापणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत नहीं है।

(६६) सोमानम्:- इसका अर्थ होता है ऐश्वर्य सम्पादकको या सोम अभिषवन करनेवाले को।यह द्वितीयान्तपद है।निरुक्तके अनुसार-सोमानं सोतारम्५१अर्थात् यह शब्द सु धातुके योगसे निष्पन्न होता है। सु धातु अभिषव, ऐश्वर्य प्रसव आदि अर्थोंमे होता है।इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।भाषा विज्ञानके

अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार सु + मनिन्- सोमन्-सोमानम् शब्द बनाया जा सकता है।

(६७) औशिज :- इसका अर्थ होता है उशिक् के पुत्र। निरुक्तमें उशिजः पुत्रः५२ औशिजः कह कर स्पष्ट किया गया है। यह तद्धितान्त शब्द है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(६८) उशिक् :- यह एक संज्ञापद है। उशिक् व्यक्ति विशेषका नाम है। निरुक्त के अनुसार उशिग्वष्टेः कान्ति कर्मणः५२ अर्थात् उशिक् शब्द वश् कान्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वे उशिक् कान्तिमान् हैं। वश् धातु स्थित व का उ सम्प्रसारण के द्वारा हो गया है-वश्-उश्-उशिक्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(६९) अनवायम् :- इसका अर्थ होता है अवयव रहित, पूर्ण। निरुक्तके अनुसार १- अनवायम् अनवयवम्५२ अर्थात् इस शब्दमें नञ्-अन् +अवाय शब्दका योग है। अवाय अवयव का वाचक है। २- यदन्ये न व्यवेयुरद्वेषस इतिवा५२ अर्थात् दोषहीन दूसरे व्यक्ति भी जिसे शान्त न कर सकें। इसके अनुसार इसमें अव +वि + अव एवं इण् धातुका योग है। यह अनेकार्थक एवं अनवगत संस्कारका है। प्रथम निर्वचन अन् +अव् + इ का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचनका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार अन् + अव् + इण् गतौ + घञ् प्रत्यय कर अनवायः अनवायम् शब्द बनाया जा सकता है।

(७०) अघम् :- यह पापका वाचक है। निरुक्तके अनुसार अघं हन्तेः निर्हसितोपसर्गः५२ अर्थात् यह शब्द हन् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इस शब्द में उपसर्ग आ हसित होकर आया है आ-अ+ हन् = अहन्-इ का घ वर्ण परिवर्तन-अघम्। आहन्तीति५२ अर्थात् इसके अनुसार इस शब्दमें आ+ हन् धातुका योग है। आ + हन्-अघम्। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दका अर्थ होगा जो आघात पहुंचाता है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। भाषा विज्ञानके अनुसार भी ह का घ होना सर्वथा संगत है।घन् ही हन् का प्राचीन रूप है।इसी प्रकार यास्कने घनकी व्युत्पत्ति हन्५३से ओघकी वह्५४से तथा मेघकी मिह्५५सेचने धातुसे की है।व्याकरणके अनुसार अधिगतौ

धातुसे अच् प्रत्यय कर अघम् शब्द बनाया जा सकता है।५६

(७१) तपु :- इसका अर्थ होता है- सन्तप्त। निरुक्तके अनुसार तपुस्तपते:५ अर्थात् यह शब्द तप् सन्तापे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा सन्तप्त होकर। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार तप् सन्तापे धातुसे उन् प्रत्यय कर तपु: शब्द बनाया जा सकता है।

(७२) चरू :- इसका अर्थ होता है मृतिका पात्र, जिसमें जल आदि रखे जाते हैं, घट विशेष। निरुक्तके अनुसार चरूर्मृच्चयो भवति चरतेर्वा५ अर्थात् यह मिट्टीका समुदाय विशेष होता है या मृत्तिका समूहसे निर्मित होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें चर् गतौ धातुका योग है। समुच्चरन्त्यस्मादाप:५२ अर्थात् इस पात्रमें जल गतिमान होते हैं। या तो जल भरनेमें गति पाता है या जल निकालनेमें गति पाता है। इस पात्रमें रखा जल भी यदा कदा डोलता रहता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। डा. वर्मा के अनुसार यह निर्वचन आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित है।५७ व्याकरणके अनुसार चर् गतौ धातुसे उन् प्रत्यय कर चरू: शब्द बनाया जा सकता है। उक्त अर्थका द्योतक शब्द मगही भाषामें चरू (चरूह)के रूपमें मिलता हैजो शुद्ध वैदिक शब्द माना जा सकता है।लौकिक संस्कृतमें भी इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें देखा जाता है।

(७३) क्रव्यम् :- इसका अर्थ होता है कच्चा मांस। निरुक्तके अनुसार क्रव्यं विकृताज्जायत इति नैरुक्ता:५२ अर्थात् नैरुक्तोंके अनुसार क्रव्य शब्द कृत् छेदने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह काटनेके बाद प्राप्त होता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधार इसका संगत है। व्याकरणके अनुसार क्लव् भये धातुसे यत्५८ प्रत्यय (र का ल) कर क्रव्य शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें भी यह शब्द उक्त अर्थमें प्रयुक्त होता है।५९

(७४) किमीदिन:- इसका अर्थ होता है आवारा। निरुक्तके अनुसार किमीदिने किमिदानीमिति चरते।५२अर्थात् इदानीं किम् अव क्या- इस प्रकार कहता चलने वाला किमीदिन कहा जाता है। इसके अनुसार किम् + इदानीम् के योगसे ही किमीदिन शब्द बना है। २-किमिदं किमिदमिति वा पिशुनाय चरते५२ अर्थात् यह क्या है, यह क्या है- किमिदं किमिदं इस प्रकार कहते चलने वाले पिशुन (चुगलखोर) को किमीदिन कहा

जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें किम् + इदम् शब्दका योग है। किम् + इदम्-किमिदिन-किमीदिन। यास्क कई शब्दांशोंके योग से भी निर्वचन करते हैं। इस प्रकारके कई शब्द निरुक्तमें आये हैं जिनके निर्वचनमें यास्क कई शब्दोंके योगकी कल्पना करते हैं। कई शब्द आपसमें सम्पृक्त होकर भी नए शब्दके रूपमें आ जाते हैं कीकट६०स्याल६१ऋत्विज्६२आदिके निर्वचनमें भी इसी प्रकार अनेक शब्दके अंशोंकी कल्पना की गयी है।यास्कका उपर्युक्त निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे पूर्ण संगत नहीं है। इनके अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। ग्रासमैन इसका अर्थ दुष्ट,राक्षस करते हैं।६३ व्याकरणके अनुसार-किम्+इदानीम्+इनिप्रत्ययकर किमीदिनशब्द बनायाजा सकताहै।

(७५) पिशुन :- इसका अर्थ होता है चुगली खाने वाला। निरुक्तके अनुसार ५- पिशुन: पिंशते:५२ अर्थात् यह शब्द पिश् अवयवे दीपनायां च धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह सामान्य बातको भी बढ़ा-चढ़ा कर कहता है। दूसरे व्यक्तिकी त्रुटियोंको प्रकाशित करता है।२-विपिंशतीतिवा५२अर्थात् वह विशिष्ट रूपसे त्रुटियोंको फैलाता है,विशेष रूपसे बातोंको बढ़ा चढ़ाकर कहता है।६५इसके अनुसार भी इसमें पिश् धातुका ही योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।भाषा विज्ञानके अनुसारइसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पिश् अवयवे दीपनायां च धातुसे उनन् प्रत्यय कर पिशुन: शब्द बनाया जा सकता है।६४

(७६) अमवान् :- इसके अनेक अर्थ होते हैं। निरुक्तके अनुसार १- अमवानमात्यवान् २- अभ्यमनवान् ३- स्ववान् वा५२ अर्थात् अमवानका अमात्यवान अमात्यसे युक्त, अभ्यमनवान् रोगभूत दूसरोंको भयभीत करने वाला६६, स्ववान् आत्मीय व्यक्तियोंसे युक्त कई अर्थ होते हैं। अमात्यवानसे अमवान् में अमात्यका अम् तथा वतुप् प्रत्ययका योग है। अभ्यमनवान्-अभ्यमन्-अमन् + वतुप्- अमनवान्- अम-वान्। स्ववान्-अम-स्व का वाचक +वतुप्-अम् +वतुप् = अमवान्। सभी निर्वचन अनवगत संस्कारके हैं। ध्वन्यात्मक आधार किसीका पूर्ण संगत नहीं है। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंका संगत है। व्याकरणके अनुसार अम +वतुप् प्रत्यय कर अमवान् शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें प्राय: नहीं देखा जाता।

(७७) पाज:-यह बलका वाचक है।निरुक्तके अनुसार -पाज: पालनात् अर्थात् यह शब्द पाल् रक्षणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। क्योंकि अपनी एवं दूसरों की रक्षा इसीसे की जाती है।इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। इस

निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार पा पालने या रक्षणे धातुसे असुन् प्रत्यय +जुट कर -पाजः शब्द बनाया जा सकता है।

(७८) प्रसिति :- इसका अर्थ होता है जाल, पाश। निरुक्तके अनुसार - प्रसितिः प्रसयनात् तन्तुर्वा जालं वा५२ अर्थात् प्रसिति शब्द प्र + सि बन्धने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसे बांधकर बनाया जाता है या इससे बांधा जाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार प्र+ षिञ् वन्धने धातुसे क्तिन् प्रत्यय कर प्रसितिः शब्द बनाया जा सकता है।६७

(७९) तृष्वी :- यह शब्द शीघ्र या क्षिप्रका पर्याय है। निरुक्तके अनुसार १- तृष्वीति क्षिप्रनाम तरतेर्वा५२ अर्थात् तृष्वी शब्द तृ प्लवन संतरणयोः धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा सन्तरित होने वाला। २- त्वरतेर्वा५२ अर्थात् इस शब्दमें त्वर् संभ्रमे धातुका योग है क्योंकि यह शीघ्रता के गुणसे युक्त है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(८०) तपिष्ठैः :- यह तृतीयान्त बहुबचनका रूप है। यह अनेकार्थक है। निरुक्तके अनुसार १- तपिष्ठैस्तप्ततमैः५२ अर्थात् अत्यन्त सन्ताप देने वाले। इसके अनुसार यह शब्द तप् सन्तापे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह तप्ततम होता है। तृप्ततमैः५२ अर्थात् अत्यन्त तृप्त तम। इसके अनुसार इस शब्दमें तृप् तृप्तौ धातुका योग है। तृप् ऋ (तमप्) इष्ठन्- तपिष्ठः। ३- प्रपिष्ठतमैर्वा५२ अर्थात् अत्यन्त पीसने वाले। इसके अनुसार इस शब्दमें पिष् संचूर्णने धातुका योग है क्योंकि यह प्रपिष्ठतम होता है- पिष्ठतम- तपिष्ठः। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगतमाना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार तप्+ तृच् इष्ठन् प्रत्यय कर तपिष्ठः- तपिष्ठैः शब्द बनाया जा सकता है।६८

(८१) अमीवा :- इसका अर्थ होता है- रोगोत्पादक क्रिमी। निरुक्तके अनुसार अमीवा अभ्यमनेन व्याख्यातः५२ अर्थात् अमीवा शब्द अभ्यमन से ही व्याख्यात है। अमवान् शब्दके निर्वचनमें यास्कने अभ्यमनवान शब्द दिया है। अमीवाका निर्वचन भी इसीसे हो जायगा।इसके अनुसार अम्+वन् प्रत्यय कर अमीवा शब्द बनाया जा सकता

है। अम् धातु रोगका वाचक है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अम् रोगे धातुसे वन् +टाप् प्रत्यय कर अमीवा शब्द बनाया जा सकता है।

(८२) क्रिमि :- यह कीटाणु, रोगाणुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार क्रिमि क्रव्ये मेथति५२ अर्थात् वह मांसमें प्रेम रखती है। इसके अनुसार इस शब्दमें क्रव्य + मिद् धातुका योग है। क्रव्यका क्र तथा मिद् धातुका मि -क्रमिः क्रिमिः। २- क्रमतेर्वा सरण कर्मणः५२ अर्थात् यह शब्द सरणार्थक क्रम् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। क्योंकि हिंसाके लिए यह क्रमण करती है क्रम् - क्रिमिः। ३- क्रामतेर्वा५२ अर्थात् यह शब्द धावनार्थक क्राम् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि हिंसा के लिए वह दौड़ती है। यास्कका द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंके अर्थात्मक महत्त्व हैं। यह निर्वचन धातुज सिद्धान्त पर आधारित है। व्याकरणके अनुसार क्रम् पादविक्षेपे धातुसे इन् प्रत्यय कर क्रिमिः शब्द बनाया जा सकता है।६९

(८३) दुरितम् :- इसका अर्थ होता है-पाप, दुष्कर्म। निरुक्तके अनुसार- दुरितम् दुर्गतिगमनम्५२ अर्थात् दुर्गति देने वाले कर्म, दुर्गतियुक्त कर्म। इसके अनुसार इस शब्दमें दुः+ इण् गतौ धातुका योग है। अपने निर्वचनमें यास्क धातु, प्रत्ययको स्पष्ट नहीं करते। गमन अर्थके द्वारा ही इण् धातुका संकेत प्राप्त हो जाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार दुः + इण् गतौ+ क्त७० प्रत्यय कर दुरितम् शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें भी इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें होता है।७१

(८४) अप्वा :- यह रोग या भयका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-अप्वा ऽदेनया विद्धौऽपवीयते। व्याधिर्वा भयंवा५२ अर्थात् यह शब्द रोग या भय का पर्याय है क्योंकि इससे विद्ध होकर मनुष्य नष्ट हो जाते हैं, प्राणों से पृथक् हो जाते हैं। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें अप +वी गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्यसन खादनेषु धातुका योग है। वी धातु गति, व्याप्ति, प्रजनन, कान्ति, पाना, फेंकना, सुन्दर होना, चाहना, खाना आदि अर्थोंका द्योतक है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(८५) अमति :- इसका अर्थ होता है आत्म नियंत्रक बुद्धि। निरुक्तके अनुसार-

अमतिः अमामयीमतिः। आत्ममयी५२ अर्थात् अमतिः आत्ममयीका वाचक है। अमासे युक्त मतिको अमति कहते हैं। अमति शब्दमें अ +मति पद खण्ड है अ अमा या आत्मका वाचक है तथा उत्तर पद मतिः है। आत्म +मतिः - आत्ममतिः अमतिः, अमा + मतिः- अमामतिः अमतिः। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार भ्रमात्मक है। अर्थात्मक आधार उपयुक्त है लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता है।

(८६) श्रुष्टी :- यह शीघ्रका वाचक है। निरुक्तके अनुसार श्रुष्टी इति क्षिप्र नाम। आशु अष्टीति५२ अर्थात् यह क्षिप्रका पर्याय है क्योंकि यह शीघ्र व्याप्त हो जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें अश् व्याप्तौ धातुका योग है आशु+ अष्टी, आशु-शु +अश् +क्तिन्=श +अष्टा =श्रुष्टी। इस निवर्चनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार शु + अश् + क्तिन् कर श्रुष्टी शब्द बनाया जा सकता है।

(८७) नासत्यौ :- यह अश्विनीयुगलका वाचक है। निरुक्तमें विभिन्न आचार्योंके निर्वचनों का उल्लेख हुआ है। १- सत्यावेव नासत्यावित्यौर्णवाभः५२ अर्थात् आचार्य और्णवाभ नासत्यका अर्थ सत्य मानते हैं। इनके अनुसार नासत्यौ शब्दमें न +असत्यौ का योग है। २- सत्यस्य प्रणेतारावित्याग्रायणः५२ अर्थात् आचार्य आग्रायण नासत्यौका अर्थ करते हैं सत्यके प्रणेता। इनके अनुसार भी नासत्यौ में ना+ सत्यका योग है। ना नेतारौका वाचक है। भाषा विज्ञानके अनुसार ना को ही उत्तर पदस्थ होना चाहिए था। ३- नासिका प्रभवौ वभूवतुरितिवा५२ अर्थात् नासिकासे उत्पन्न होने वाले नासत्यौ कहलाये, यह निर्वचन ऐतिहासिकों का है।७२ इसके अनुसार इस शब्दमें नासा +त्य प्रत्यय है। और्णवाभका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। डा. वुष्ट नासत्यौ में नस् साथ होनाका योग मानते हैं।७३ व्याकरणके अनुसार इसे सामासिक शब्द माना जायगा नास्ति असत्यं ययोः- नासत्यौ।

(८८) पुरन्धि :- इसका अर्थ होता है काफी बुद्धिमान्। निरुक्तके अनुसार पुरन्धिर्बहुधीः५२ अर्थात् इस शब्दमें दो पद खण्ड हैं पुरु बहुका वाचक है तथा उत्तर पदस्थ धी है जो बुद्धिका वाचक है। यह शब्द कई देवताओंके विशेषणके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। देवताओंके कर्मके अनुसार यास्क इस शब्दका भी निर्वचन प्रस्तुत करते है। १-भग :पुरस्तात्तस्यान्वादेशः इत्येकम्५२ अर्थात् कुछ लोगोंके अनुसार यह शब्द पूर्वनिर्दिष्ट

भग देवताका विशेषण है। २- इन्द्र इत्यपरं स बहुकर्मतमः पुरां च दारयितृतमः५२ अर्थात् कुछ लोगोंके अनुसार यह शब्द इन्द्रका वाचक है क्योंकि वे इन्द्र अनेक कर्मोंको धारण करने वाले हैं या शत्रुओं के पुरों (नगरों) को विदीर्ण करने वाले हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें पुरु +धी या पुरु+ धा या पुर +दृ विदारणे धातुका योग है।७४ ३- वरुण इत्यपरम्५२ अर्थात् कुछ लोग वरुण देवताको भी पुरन्धि कहते हैं। तं प्रज्ञया स्तौति अर्थात् इस वरुणदेवकी स्तुति प्रज्ञा, बुद्धिसे की जाती है।७६ इसके अनुसार इस शब्दमें पुरु + धी= का योग है पुरु +धा धातुसे निष्पन्न पुरन्धिः शब्द ध्वन्यात्मक आधार रखता है। इसे भाषा विज्ञानके अनुसार उपयुक्त माना जायगा। शुक्ल यजुर्वेदके प्रसिद्ध भाष्यकार उव्वट तथा महीधर ने पुरन्धिः शोभन अंगोंसे युक्तका वाचक माना है।७७ इसके अनुसार-पुरं +धा का योग माना जायगा। भारोपीय भाषाकी अन्य शाखाओंमें भी इसके रूप दृष्टिगोचर होते हैं-ग्रीक Plous सं. पुरु, अंग्रेजी deed कर्म (संस्कृत धा या धि७५ व्याकरणके अनुसार पुरु +धा + कि प्रत्यय कर पुरन्धिः शब्द बनाया जा सकता है।

(८९)रूशत् :- यह वर्णनामका वाचक है।निरुक्तके अनुसार रूशत् इति वर्णनाम। रोचतेर्ज्वलति कर्मणः५२ अर्थात् यह शब्द ज्वलत्यर्थक रूच् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह प्रदीप्त होता है, चमकता है इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार रूच् धातुसे अत् प्रत्यय कर रूशत् शब्द बनाया जा सकता है।

(९०) रिशादस :- इसका अर्थ होता है हिंसकों का नाशक। निरुक्त के अनुसार रिशादसः रेशयदासिनः५२ अर्थात् हिंसा करने वालोंको दूर फेंकने वाले। इसके अनुसार रिशादस में रिश् हिंसायां +अस् क्षेपणे धातुका योग है। रेशयत् (हिंसक) में रिश् धातु है जो पूर्व पदस्थ है तथा उत्तर पदस्थ अस् क्षेपणे धातु है। यास्क रिशादसः को रेशयत् + आसिनः के द्वारा स्पष्ट करते हैं। रिश् धातुसे णिच् + शतृ= रेशयत् + अस् क्षेपणे= रेशयद् रिशदस - रिशादसः। कुछ आचार्योंके अनुसार इसका निर्वचन रेशयदारिणः से किया गया है। इसके अनुसार इस शब्दमें रेशयत् +दृ विदारणे धातुका योग है।७८ अर्थ होगा हिंसकों (शत्रुओं) को विदारण करने वाला। यह निर्वचन निरुक्तके वर्तमान संस्करणों में नहीं देखा जाता। दुर्गाचार्य ने अपनी दुर्गवृत्ति में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि निरुक्त के किसी न किसी संस्करण में यह अवश्य

होगा। यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे शिथिल है। अर्थात्मक आधार उसका उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचन जिसमें रेशयत् + दृ विदारणे धातुका योग माना गया है, अर्थात्मक महत्त्व रखता है। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थ में प्रायः नहीं देखा जाता है।

(९१) आप्यम् :- इसका अर्थ होता है प्राप्य। निरुक्त के अनुसार-आप्यमाप्नोतेः५२ अर्थात् यह शब्द आप्लृ व्याप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अप् +अण् +ष्यञ् प्रत्यय कर आप्यम् शब्द बनाया जा सकता है।

(९२) सुदत्र :- इसका अर्थ होता है कल्याणके लिए दान देने वाला। निरुक्तके अनुसार- सुदत्रः कल्याणदानः५२ अर्थात् सुदत्रः शब्दमें दो पद खण्ड है- पूर्व पदस्थ सु कल्याणका वाचक है तथा उत्तर पदस्थ दत्र शब्द दा दाने धातुके योगसे निष्पन्न है। यह दत्र दानका वाचक है। सु + दा =सुदत्रः। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(९३) सुविदत्र :- इसका अर्थ होता है- कल्याणकारी विद्यासे युक्त। निरुक्त के अनुसार-सुविदत्रः कल्याणविद्यः५२ इसके अनुसार सुविदत्र शब्दमें सु + विदत्र दो पद खंड हैं। सु कल्याण का वाचक है जो पूर्वपदस्थ है। उत्तरपदस्थ विदत्रमें विद् ज्ञाने धातुका योग है सु +विद्= सुविदत्रः। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(९४) आनुषक् :- यह आनुपूर्व्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-आनुषगिति नामानुपूर्वस्य, अनुषक्तं भवति५२ अर्थात् एक दूसरे से जुड़ा होने के कारण आनुषक् कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें अनु+सञ् संगे धातुका योग है- अनु +सञ् = आनुषक्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार- आ + अनु+ षञ् + क्विप् प्रत्यय कर आनुषक् शब्द बनाया जा सकता है।

(९५) तुर्वणिः- इसका अर्थ होता है प्रदान करने वाला, या शीघ्र व्याप्त करने वाला।निरुक्तके अनुसार-तुर्वणिःतूर्णवनिः५२ इस निर्वचनमें तुर् तूर्णका वाचक है तथा वन् सेवायां शब्दे च धातुके योगसे तुर्वणिः शब्द निष्पन्न हुआ है-तुर (तूर्ण) +वन् +इन् =तुर्वणिः।अर्थ होगा शीघ्र देने वाला।इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार

उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-तुर् + वन् सेवायां +इन् प्रत्यय कर तुर्वणिः शब्द बनाया जा सकता है।

(९६) गिर्वणा :- यह देवता का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- गिर्वणाः देवो भवति। गीर्भिरेवं वनयन्ति५२ अर्थात् वाणियों से स्तुतियों से इनकी सेवा, स्तुति की जाती है। वाणीके द्वारा लोग इनका भजन करते हैं।७९ इनके अनुसार इस शब्दमें गीः+ वन् सेवायां संभक्तौ धातुका योग है। गिर्वणाः में गीः +वनस् स्वतंत्र प्रकृति मानी जाएगी- गीः+ वनस् = गिर्वनस्- गिर्वणाः। डा. वर्मा वनस् को स्वतंत्र प्रकृति नहीं मानते८० जबकि पेशस्८१ तपस्८२ आदि शब्द स्वतंत्र सकारान्त प्रकृतिके रूपमें निरुक्तमें प्राप्त होते हैं। यास्कके उपर्युक्त निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार गीः +वन्+ असुन् प्रत्यय कर गिर्वणाः शब्द बनाया जा सकता है।

(९७) असूर्ते :- इसका अर्थ होता है वायुके द्वारा प्रेरित (मेघ या अन्य मरुद्गण) निरुक्तके अनुसार-असूर्ते असुसमीरिता५२ अर्थात् इस शब्द में असु+ ईर् गतौ धातुका योग है। असु प्राणका वाचक है इससे प्रेरित को असूर्त कहा जायगा।८३ असूर्ते सप्तमीका एक वचन रूप है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार असु+ ईर् गतौ + क्त प्रत्यय (इड्भाव) कर असूर्त- असूर्ते शब्द बनाया जा सकता है।

(९८) सूर्ते :- यह विस्तीर्णका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -सूर्ते-सुसमीरिते५२ अर्थात् यह प्रथमाके अर्थमें प्रयुक्त सप्तम्यन्त पद है। इस शब्दमें सु + ईर् गतौ धातुका योग है। सु + ईर्+ क्त + सप्तमी एकवचन=सूर्ते। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता। व्याकरणके अनुसार सु + ईर् गतौ + क्त प्रत्यय कर सूर्त-सूर्ते शब्द बनाया जा सकता है।

(९९) अम्यक् :- इसका अर्थ होता है आत्मज्ञान प्राप्त कराने वाली विद्या, शत्रुओं की ओर फेका गया अस्त्र विशेष। निरुक्तके अनुसार १-अम्यक् अमाक्तेति वा५२अर्थात् जिससे अपनेको अंचित करता है।इसके अनुसार इस शब्दमें अमा +अञ्च् पूजायां गतौ धातुका योग है-अमा +अञ्च सम्यक्। अञ्च् का गति अर्थ माननेपर इसका अर्थ होगा मेरी ओर फेंकी गयी। २- अम्यक्तेति वा५२ अर्थात् चारो ओर फेंकी गयी।

इसके अनुसार अमि + अञ्च् गतौ पूजायां धातुका योग है। प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार अमा + अञ्च् धातुसे क्विप् प्रत्यय कर अम्यक् शब्द बनाया जा सकता है।

(१००) यादृश्मिन् :- इसका अर्थ होता है-जिस प्रकारके काममें। निरुक्तके अनुसार यादृश्मिन् यादृशै५२ अर्थात् यह अनवगत संसारका वाचक है तथा पूर्ण अस्पष्ट है। यह सप्तम्यन्त पद है। यादृशके अर्थमें इसका प्रयोग होता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे अपूर्ण माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-यत् + दृश्-यादृश: + सप्तमी एकवचन -यादृश्मिन् बनाया जा सकता है।

(१०१) जारयायि :- इसका अर्थ होता है-उत्पन्न हुआ। निरुक्तके अनुसार-जारयायि अजायि५२ इसके अनुसार इसमें जन् प्रादुर्भावे धातुका योग माना जायगा। यास्क मात्र इसका अर्थ ही स्पष्ट करते हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे अपूर्ण माना जायगा। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। इस निर्वचन का मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसका अर्थ शरीर किया है- जारं जरावस्थां यातुं शीलमस्य तच्छरीरम्८४ व्याकरणके अनुसार जार + या + णिनि८५ प्रत्यय जारयायि शब्द बनाया जा सकता है।

(१०२) अग्रिया :- इसका अर्थ होता है आगे बढ़ना, प्रधान होना। निरुक्तके अनुसार १- अग्रिया अग्रगमनेनेति वा५२ अर्थात् आगे जानेके कारण। इसके अनुसार इसमें अग्र +या प्रापणे धातुका योग है। २- अग्रगरणेनेति वा५२ अर्थात् अग्र निगरणके कारण अग्रिया कहा जाता है। इसके अनुसार अग्र + गृ निगरणे धातुका योग है। ३- अग्रसम्पादिन इति वा५२ अर्थात् अग्र सम्पादन करनेके कारण अग्रिया कहलाता है। इसके अनुसार- अग्र + या (कार्य सम्पादन) का योग है। ४- अपि वा अग्रम् इत्येतदनर्थकमुपबन्धमाददीत५२ अर्थात् अग्र शब्दमें या उपबंध है जो अनर्थक है या स्वार्थ में ही प्रयुक्त है। अग्र+ या =अग्रिया। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार अग्र + घ =अग्रिय- अग्रिया शब्द बनाया जा सकता है।

(१०३) चन :- यह अन्नका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-चन इत्यन्ननाम५२

यास्क ने इसका निर्वचन प्रस्तुत नहीं किया है। मात्र यह अन्नका वाचक है या अन्न नाम है ऐसा अर्थ देकर छोड़ दिया है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे निर्वचन नहीं माना जायगा। निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार भी यह निर्वचन नहीं है। लोकमें प्रयुक्त चना अन्न विशेषका आधार यही चन शब्द मालूम पड़ता है। इस शब्दका आज अर्थ संकोच माना जायगा। व्याकरणके अनुसार चायृ पूजादौ + असुन् प्रत्यय कर (चात् नुट्) चनः शब्द बनाया जा सकता है।८६

(१०४) पचता :- यह आख्यात स्वरूप पचति का नाम रूप में प्रयुक्त हुआ है। निरुक्तके अनुसार-पचतिर्नामीभूत:५२ अर्थात् यह पच् धातुका नाम भूत शब्द है। इसका अर्थ है पक्वः (पका हुआ)। प्रकरणके अनुसार तीनों वचनोंमें यह प्रयुक्त होता है पचता- पक्वम्, पक्वौ, पक्वानि। यास्क इस शब्दका मात्र अर्थ ही स्पष्ट करते हैं तथापि इस शब्दमें पच् धातुका योग स्पष्ट हो जाता है- पच्+ क्त+पचतम् +सु का आ- पचता। इसके अनुसार इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-पच् + अतच्- पचत् + आ = पचता शब्द बनाया जा सकता है।

(१०५) शुरुध :- यह जलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार शुरुध आपो भवन्ति। शुचं संरुन्धन्ति।५२ अर्थात् यह शुच् (शोक, प्रकाश, उष्णता) को रोक लेते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें शुच् +रुध् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१०६) अमिन :- यह महान् का वाचक है। निरुक्त के अनुसार १- अमिनो अमित मात्रो महान् भवति५२ अर्थात् यह अपरिमित मात्रा वाला होता है जिसे महान् कहा जाता है। अमिता मात्रा यस्य सः अमिनः इसके अनुसार नञ्-अ +मि + क्त= अमिनः। २-अभ्यमितोवा१अर्थात् जिसकी हिंसान की जा सके-अहिंसित। इसके अनुसार अ+ मीञ् हिंसायाम् + क्त =अमिनः शब्द है। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे अ + मि क्षेपे + नङ् प्रत्यय कर अमिनः शब्द बनाया जा सकता है।

(१०७) जज्झती:- इसका अर्थ होता है- जल। निरुक्तके अनुसार-जज्झतीः आपो भवन्ति। शब्द कारिण्य:५२ अर्थात् यह शब्द जज्झ (शब्द करना) से निष्पन्न है। वर्षा होनेके समय जज्झ शब्द होता हैअत:जज्झती को जल कहा जाता है। शब्दानुकृतिके

आधार पर इसका नामकरण हुआ है। शब्दानुकरण सिद्धान्त की मान्यता भाषा विज्ञानमें भी है। बहुत सारे शब्द शब्दानुकरणके अनुसार बने हैं। यह निर्वचन भाषा विज्ञान एवं निर्वचन प्रक्रिया के अनुरूप है। व्याकरण के अनुसार जज्झ शब्द करणे धातुसे जस् कर जज्झती: (पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश) शब्द बनाया जा सकता है।

(१०८) अप्रतिष्कुत :- इसका अर्थ होता है जिसका प्रतिकार न किया जा सके। निरुक्तके अनुसार- अप्रतिष्कुतोऽप्रतिष्कृतोऽप्रतिस्खलितोवा।५२ अर्थात् जो युद्ध भूमिमें शत्रुओं से मुख न मोड़े या जो रणस्थलमें स्खलित न हो। इसके अनुसार इस शब्दमें नञ्-अ + प्रति +स्कूञ् आप्रवणे धातुका योग है। अप्रतिस्खलित: के द्वारा मात्र अर्थ निर्देश किया गया है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। द्वितीय निर्वचनका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार न अ+ प्रति +स्कुञ्+ क्त =अप्रतिस्कुत: शब्द बनाया जा सकता है।

(१०९) शाशदान :- इसका अर्थ होता है- पुन: पुन: दबाता हुआ या मारता हुआ। निरुक्तके अनुसार-शासदान: शाशद्यमान:५२ अर्थात् शत्रुओंको दबाता हुआ। इसके अनुसार इस शब्दमें शद्लृ शातने धातुका योग है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे यह निर्वचन पूर्ण उपयुक्त नहीं है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। इस निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग उक्त अर्थ में प्राय: नहीं देखा जाता।

(११०) सृप्र :- इसका अर्थ होता है सर्पणशील, नमनशील, कोमल। निरुक्तके अनुसार १- सृप्र: सर्पणात्८७ अर्थात् इस शब्दमें सृप् सर्पणे धातुका योग है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा सर्पण करने वाला २- इदमपीतरत्सृप्रमेतस्मादेव। सर्पिर्वा तैलं वा८७ अर्थात् घृत एवं तैलका वाचक सृप्र शब्द भी इसी सर्पण क्रिया के कारण बनता है अर्थात् यह शब्द सृप् सर्पणे धातुके योगसे ही निष्पन्न होता है। यास्कके निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा व्याकरणके अनुसार सृप् गतौ धातुसे क्रुन प्रत्यय कर सृप्र: शब्द बनाया जा सकता है।

(१११) सुशिप्र :- इस शब्दका अर्थ भी नमनशील होता है। यह जबड़े या नासिकाका वाचक है। सुशिप्रम् की व्याख्या सृप्र: से ही हो जाती है अर्थात् इस शब्दमें भी सृप्सर्पणे,गतौ धातुका योग है।निरुक्तके अनुसार सुशिप्रमेतेन व्याख्यातम्। शिप्रेहनू

नासिकेवा८७ हनु तथा नासिका के लिए शिप्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। हनु (जबड़े) अन्नग्रहण के लिए गति करते हैं तथा नासिका गन्ध ग्रहणके लिए गति करते हैं। सृप् गतौ से सुशिप्र शब्द में ध्वन्यात्मक औदासिन्य है।अर्थात्मक आधारइसका उपयुक्त है।

(११२) करस्नौ :- यह वाहूका वाचक है। निरुक्तके अनुसार करस्नौ बाहू। कर्मणां प्रस्रातारौ।८७ करस्नौ द्विवचनान्त पद है जिसका अर्थ होता है भुजाएं। भुजाएं कार्य सम्पादन करने वाली होती हैं। अत: करस्नौ कहलाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें कर्म +स्ना धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक आधार शिथिल है। अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा।

(११३) हनू :- यह द्विवचनान्त शब्द दोनों जबड़ेका वाचक है। निरुक्तके अनुसार हनुर्हन्ते:८७ अर्थात् हनु: हन्, हिंसागत्यौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि ये खाद्य वस्तुओं को चबाते हैं या अन्नके लिए गति करते हैं। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार हन् धातुसे उ: प्रत्यय कर हनु: शब्द बनाया जा सकता है।८८

(११४) नासिका :- यह नाकका वाचक है। निरुक्तके अनुसार नासिका नसते:८७ अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक नस् धातुके योगससे निष्पन्न होता है क्योंकि गन्धग्रहण में इसमें गति होती है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार -नस्-ण्वुल् = नासिक नासिका शब्द बनाया जा सकता है। भारोपीय परिवारकी अंग्रेजी भाषा में नस् से निष्पन्न Nose नासा-नासिका (संस्कृत) किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ प्राप्त होता है।

(११५) धेना :- यह जिह्वा या वाणीका वाचक है। आचार्य दुर्गने इसका अर्थ जिह्वा या उपजिह्वा माना है- तयोर्हि अन्नं धीयते८९ अर्थात् दोनों में अन्न रखे जाते हैं या उनसे अन्न धारण किए जाते हैं। निरुक्तके अनुसार-धेना दधाते:८७ अर्थात् धेना शब्द धा धारण पोषणयो; धातुके योगसे निष्पन्न होता है। जिह्वा के पक्षमें अर्थ होगा वह अन्नको धारण करने वाली होती है। धा-धेना। वाणीके अर्थमें अभिधेय धारण करने वाली। निघण्टु के धेना शब्दकी व्याख्यामें देवराज यज्वा ने इसकी तीन व्याख्या प्रस्तुतकी है-१धा धातुसे-दधाना-धेना वाणी अर्थपरक।२-धेट् पाने धातुसे-धेना, वाणीको लोग स्वीकार करते हैं, ग्रहण करते हैं। ३- धिवि प्रीणने धातुसे धेना, सुप्रयुक्त वाणी

प्रसन्न रखती है या लोगों की प्रसन्नताका कारण होती है।९० यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायेगा। व्याकरणके अनुसार धे धातुसे नन् प्रत्यय कर धेन-धेना शब्द बनाया जा सकता है।९१

(११६) रंसु :- इसका अर्थ होता है- रमणीय स्थानों या पदार्थों में। निरुक्तके अनुसार - रंसु रमणीयेषु रमणात् अर्थात् यह शब्द रमु क्रीड़ायां धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह सप्तम्यन्त पद है इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार रम् + क्विप् + सुप् = रंसु शब्द बनाया जा सकता है।

(११७) द्विबर्हा :- इसका अर्थ होता है दो स्थानों में बढ़ा हुआ। निरुक्तके अनुसार-द्वयो: स्थानयो: परिवृढ़: मध्यमे च स्थान उत्तमे च।८७ अर्थात् उत्तम स्थान द्युलोक में तथा मध्यम स्थान अन्तरिक्ष लोकमें बढ़ा हुआ है। इसके अनुसार इस शब्द में द्वि+ वृह् वृद्धौ धातुका योग है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार द्वि + वृह्+ असुन् प्रत्यय कर द्विबर्हा शब्द बनाया जा सकता है।

(११८) अक्र :- इसका अर्थ होता है- दुर्ग, प्राकार, किला। निरुक्तके अनुसार- अक्र: आक्रमणात्८७ अर्थात् आक्रमण करनेके कारण अक्र कहलाता है। युद्धमें शत्रु इस दुर्ग पर आक्रमण करते हैं। इसके अनुसार इस शब्द में आ+ क्रम् धातुका योग है। आ-अ+ क्रम का क्र = अक्र:। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्व से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अचु गतौ धातुसे रक् प्रत्यय कर अक्र: शब्द बनाया जा सकता है।

(११९) उराण :- इसका अर्थ होता है अल्पको अत्यधिक करने वाला। निरुक्तके अनुसार उराण: उरु कुर्वाण:८७ अर्थात् उरु कुर्वाण ही उराण बन गया है- उरु+ कुर्वाण- उर्वाण-उराण। उरुका अर्थ होता है विस्तृत, कुर्वाण करने वाला। ध्वनि लोप आदि निर्वचन प्रक्रियाके अन्तर्गत मान्य हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसकी स्वीकृति है। तं त्वां याचामि में वर्ण लोप होकर तत्त्वायामि शब्द इसके अन्य उदाहरणों में द्रष्टव्य है।९२ भाषा विज्ञानके अनुसार यास्कका यह निर्वचन उपयुक्त है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारभी उपयुक्त है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग उक्त अर्थमें प्राय नहीं देखा जाता।

(१२०) स्तिया :- इसका अर्थ जल होता है। निरुक्तके अनुसार- स्तिया आपो भवन्ति स्त्यायनात्८७ अर्थात् यह शब्द स्त्यै शब्द संघातयो: धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि जलका संग्रह किया जाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(१२१) स्तिपा :- इसका अर्थ होता है जलोंका पालन करने वाला या स्थित पदार्थों की रक्षा करने वाला। निरुक्तके अनुसार १- स्तिपा: स्तियापालन: २- उपस्थितान् पालयतीति वा८७ अर्थात् जलोंका पालक, उपस्थित पदार्थों या लोगोंकी रक्षा करता है। तृष्णार्तोंकी प्यास बुझाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें स्त्यै-स्तिया+ पा=स्तियापा-स्तिपा: या स्थित + पा= स्थितपा- स्थिपा= स्तिपा (थ वर्ण का त में परिवर्तन महाप्राणका अल्पप्राणीकरण है। दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इन्हें संगत माना जायगा।

(१२२) जवारू :- इसके अर्थ होते हैं-१- सवेग आरूढ़, २- नष्ट करते हुए आरूढ़, ३- निगरानी करते हुए आरूढ़। निरुक्तके अनुसार १- जवारू जवमानरोहि८७ अर्थात् गतिमान् आरूढ़। इसके अनुसार इस शब्दमें जव + रूह् आरोहे धातुका योग है- जव+रूह्- जवारू। २- जरमाणरोहि अर्थात् नष्ट करते हुए आरूढ़। इसके अनुसार इस शब्दमें जृ+ रूह् धातुका योग है-जृ-जर् + रूह्-जव +रूह् =जवरूह - जवारू ३- गरमाणरोहीतिवा८७ अर्थात् निगलते हुए आरूढ़। इसके अनुसार इस शब्दमें गृ निगरणे +रूह् आरोहे धातुका योग है-गृ-गर-जर-जव + रूह् जव रूह- जवारू। प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। दुर्गाचार्य ने जवारू शब्दका अर्थ सूर्यमण्डल किया है।९३ उपर्युक्त तीनों निर्वचन सूर्य मण्डलके पक्षमें संगत हैं क्योंकि वह वेगसे आरूढ़ होता है, अन्धकार को नष्ट कर बढ़ता है तथा रसों का निगरण कर बढ़ता है। ग्रास मैन इसका अर्थ करते हैं- शीघ्रता करता हुआ।९४

(१२३) जरूथम् :- यह स्तोत्रका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- जरूथम् गरूथम् गृणाति८७ अर्थात् गरूथम् शब्दही जरूथम् हो गया है क्योंकि यह स्तुतिके लिए प्रयुक्त होता है। इसके अनुसार यह शब्द गृ स्तुतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है- गृ-गर + ऊथन्= गरूथम् -जरूथम्। गृ धातुसे जरूथम् शब्द माननेमें ध्वनि परिवर्तन हुआ है।

ग ध्वनिका ज में परिर्वतन कर जरूथम् माना गया है।९५ जरूथम् शब्दको जृ धातुसे ही निष्पन्न मानना अधिक संगत होगा। वैदिक युगमें जृ धातु शब्दे, स्तुतौ च रहा होगा। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी गृ धातुसे इसका निर्वचन मानना ज्यादा संगत होगा। निर्वचनकी प्रक्रियाके अनुसार यह निर्वचन उपयुक्त है। गृ धातुसे जरूथम् शब्द मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्व रहता है। व्याकरणके अनुसार जृ धातुसे ऊथन् प्रत्यय कर जरूथम् शब्द बनाया जा सकता है।

(१२४) कुलिश :- यह वज्रका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-कुलिश इति वज्र नाम कूल शातनो भवति८७ अर्थात् कुलिश वज्रको कहते हैं। यह नदीके किनारों की भांति मेघ या पर्वतों को फाड़ने वाला होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें कूल + शद् शातने धातुका योग है-कूल + शद् - कूलशः -कूलिशः। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। इस निर्वचनमें ध्वन्यात्मक औदासिन्य है। व्याकरणके अनुसार कुलि + शीङ्शः प्रत्यय कर कुलिशः शब्द बनाया जा सकता है।९९ कुलौ शेते। या कुलि +शो तनूकरणे +कः९२ प्रत्यय कर कुलिशः शब्द बनाया जा सकता है।

(१२५) स्कन्ध :- इसका अर्थ होता है पेड़ की शाखा। निरुक्तके अनुसार स्कन्धो वृक्षस्य समास्कन्नो भवति८७ अर्थात् यह वृक्षमें लगा होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें स्कन्द् धातुका योग है। स्कन्धका अर्थ कन्धा भी होता है। अयमपीतरः स्कन्ध एतस्मादेव आस्कन्नं कायेे८७ अर्थात् कन्धावाचक स्कन्ध भी इसी निर्वचनसे माना जायगा क्योंकि वह शरीर में लगा होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। स्कन्ध का कन्धा अर्थ सादृश्यके आधार पर हुआ है। स्कन्दसे स्कन्ध में द वर्ण का ध हो गया है जो अल्पप्राणका महाप्राण में वर्ण परिवर्तन है। मद् से मधु९९ तथा स्यन्द धातुसे सिन्धु१०० शब्दमें भी द का ध देखा जाता है। व्याकरणके अनुसार स्कन्द धातुसे घञ्९८ प्रत्यय कर स्कन्धः शब्द बनाया जा सकता है।

(१२६) तुअ :- इसका अर्थ होता है दान। निरुक्तके अनुसार तुअस्तुअतेर्दानकर्मणः८७ अर्थात् तुअ शब्द दानार्थक तुजि धातुसे निष्पन्न होता है। दानार्थक तुजि धातु निघण्टु पठित है। दान कर्मसे युक्त होनेके कारण तुअः शब्द कहलाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग

प्रायः नहीं देखा जाता। मोनियार विलियम्स महोदय इसका अर्थ करते हैं धक्का या प्रहार। ग्रास-मैन के अनुसार इसका अर्थ होता कूच करना, दौड़, आगे दबाव देना, ढकेलना।१०१

(१२७) बर्हणा :- इसका अर्थ है बढ़ा हुआ या परिहिंसा। निरुक्तके अनुसार बर्हणा परिवर्हणा८७ अर्थात् यह शब्द वृद्धयर्थक वृह् या वर्ह् हिंसायाम् धातु के योगसे निष्पन्न होता है।१०२ वृह् + ल्युट् = बर्हण-बर्हणा, बर्ह् +ल्युट्-वर्हण, वर्हणा। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। ग्रासमैन इसका अर्थ शक्ति या बल करते हैं। मोनियार विलियम्स इसका अर्थ फाड़ना या खींचना करते हैं।१०३

(१२८) ततनुष्टि :- इसका अर्थ है विस्तार चाहने वाला या भोगमें लगा रहने वाला। निरुक्तके अनुसार ततनुष्टि धर्म सन्तानादपेतम् अलंकरिष्णुमयज्वानं८७ अर्थात् जो मनुष्य धर्म सन्तान अर्थात् अग्निहोत्रादिसे पृथक् होकर केवल भोगमें ही लगा रहता है। इसके अनुसार तनु विस्तारे धातु से ततन् +वश् कान्तौ धातुसे उष्टि = ततन् + उष्टिः ततनुष्टिः या तन् +सन् +क्तिच् - तितनिष्टिः ततनुष्टिः शब्द माना जा सकता है। तन् एवं वश् कान्तौ धातुसे निष्पन्न मानने में ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त होता है। व का उ सम्प्रसारण से हुआ है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जायगा।

(१२९) घ्रंस :- यह दिन का वाचक है। निरुक्तके अनुसार -घ्रंस इत्यहर्नाम ग्रस्यन्तेऽस्मिन् रसाः८७ अर्थात् इसमें रस-जल सोख लिए जाते हैं। दिनमें सूर्य तापसे जल (रस) सोख लिए जाते हैं।१०४ इसके अनुसार इस शब्दमें ग्रस् धातुका योग है। ग्रस् धातुसे ग का घ होकर घ्रंस शब्द बना है। यहां वर्णका महाप्राणीकरण हुआ है। ग्र का प्राचीन रूप घ्र है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार ग्रस् आधारे धातुसे घञ्१०५ प्रत्यय कर घ्रंसः शब्द बनाया जा सकता है।

(१३०) ऊधस् :-यह(गाय का) थन एवं रात्रिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार १-गोरूध्र उद्धततरं भवति८७ अर्थात् यह गाय का थन कुछ उभरा होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें उत्+ हन् धातुका योग है। उत+हन्-उद्धत-ऊधस्। २- उपोनद्धमिति वा८७ अर्थात् यह पेटसे सटा होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें उत् +नह् बन्धने

धातुका योग है-उत् + नह् = ऊधस्। स्नेहानुप्रदान सामान्यात् रात्रिरप्यूधः उच्यते८७ अर्थात् (स्नेह) दूध- (रस) ओस दान रूप समानता के कारण रात्रिको भी ऊधः कहा जाता है। गायके समान ही रात्रि भी ओसका वर्षण करती है। गाय के थन अर्थमें ऊधस् शब्द का प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। रात्रिके अर्थ में ऊधस् प्रयोग सादृश्य आधार रखता है। उक्त अर्थमें इसकी ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति उपयुक्त नहीं है। गायके थन के लिए भारोपीय परिवार की अन्य भाषाओं में भी किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ यह शब्द उपलब्ध होता है- लैटिन Uder अंग्रेजी Udder आयरिश Ult जर्मनी Cuter१०६ लौकिक संस्कृत में ऊधस् का प्रयोग थनके लिए ही होता है। व्याकरणके अनुसार उन्दी क्लेदने धातुसे असुन् प्रत्यय कर ऊधस् शब्द बनाया जा सकता है।१०७

(१३१) इलीविश :- इसका अर्थ होता है बादल। निरुक्त के अनुसार इली विश इलाविलशयः८७ अर्थात् पृथ्वी के बिलमें शयनकरने वाला। जल वर्षाके रूपमें पृथ्वीके खातोंमें संग्रह होता है।१०८ इसके अनुसार इला +बिल +शीङ् शयने धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है-बिले शेते इति बिलेशयः बिलशयः। वर्णलोप होकर विशः -इला +विशः इलाविशः वर्ण परिवर्तनसे इलीविशः। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधार इसका संगत है। व्याकरणके अनुसार इल ₹ विल् इलीवि+ शयः शः=इलीविशः या इल् + कः= इलः +ङीष् = इली+ विशः=इलीविशः शब्द बनाया जा सकता है।

(१३२) कियेधा :- इसका अर्थ होता है- बहुत धारण करने वाला, मेघ। निरुक्तके अनुसार १- कियेधाः कियद्धा इतिवा८७ अर्थात् अत्यधिक (जल) धारण करने वाला।१०९ इसके अनुसार इस शब्द में कियत् + धा धारणे धातुका योग है- कियत् + धा= कियेधा। २- क्रममाण धा इति वा८७ अर्थात् क्रमण करते हुए धारण करने वाला। इसके अनुसार इस शब्दमें क्रम् + धा धारणे धातुका योग है- क्रम + धा = कियेधा। प्रथम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचनका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। कियेधाका आचार्य स्कन्द इन्द्र विशेषण मानते हैं।११० लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें प्रायः नहीं देखा जाता।

(१३३) भूमि :- इसका अर्थ होता है भ्रमणशील। निरुक्तके अनुसार- भूमिः भ्राम्यते:८७ अर्थात् इस शब्दमें भ्रम् भ्रमणे धातुका योग है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा भ्रमण करने वाला या भ्रमण कराने वाला। वेद में यह अग्नि के लिए प्रयुक्त हुआ है जो अग्निका विशेषण है।१११ इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार भ्रम् भ्रमणे धातुसे इन् प्रत्यय कर भूमिः शब्द बनाया जा सकता है। पृषोदरादित्वात् भूमिः।

(१३४) विष्पित :- इसका अर्थ होता है- विस्तीर्ण। निरुक्तके अनुसार विष्पितो विप्राप्त:८७ अर्थात् विविध प्राप्त।११२ इसके अनुसार इस शब्द में वि + पितः शब्द खण्ड है, पितः प्राप्त:का वाचक है। वि +पा +इण् गतौ धातुका योग माना जा सकता है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत नहीं माना जा सकता।

(१३५) तुरीपम् :- इसका अर्थ होता है जल्द प्राप्त होने वाला जल। निरुक्तके अनुसार-तुरीपम् तूर्णापि।८७ अर्थात् यह शब्द तुर् त्वरणे धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है। क्योंकि यह शीघ्र प्रवाह वाला होता है तुर् + ई प् =तुरीपम् या त्वर् + आप्-त्वरीपम् - तुरीपम्। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। अथर्ववेदमें प्रयुक्त तुरीप शब्द नवजात शिशुका वाचक है।११४ ग्रासमैनके अनुसार यह शब्द द्रव या वीर्यका वाचक है।११३ स्वामी ब्रह्ममुनि भी इसका अर्थ वीर्य करते हैं। क्योंकि वीर्य सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहता है।११४ दुर्गाचार्य इसका अर्थ जल ही मानते हैं।११५ व्याकरणके अनुसार तूर्ण+आप्+क=(पृषोदरादित्वात्) तुरीपम् शब्द बनायाजा सकता है।

(१३६) रास्पिन :- इसका अर्थ होता है अधिक जल या अधिक बोलने वाला वक्ता। निरुक्तके अनुसार रास्पिनो रास्पी रपतेर्वा सरतेर्वा८७ अर्थात् रास्पी शब्द रप् व्यक्तायां वाची या रस् शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। जल वर्षणके समय शब्द होता है तथा वक्ता शब्द करने वाला होता है। रप्-रास्पी, रस्-रास्पी। द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। अर्थात्मक आधार प्रथम निर्वचनका भी उपयुक्त है। उक्त अर्थमें इस शब्दका प्रयोग संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता।

(१३७) ऋञ्जति :- इसका अर्थ होता है- सजाना। निरुक्तके अनुसार-ऋञ्जतिः

प्रसाधनकर्मा८७ अर्थात् यह शब्द ऋञ् अलंकरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। ऋञ् अलंकरणे धातु वैदिक धातु है ऋञ्+ तिप्= ऋञति। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१३८) ऋजुनीति :- यह सरल नीतिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार ऋजु शब्द भी ऋञ् धातुसे ही निष्पन्न होता है।११६ इसके अनुसार इसका अर्थ होगा अलंकृत नीति। ऋजु+ नीति= ऋजुनीति। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अर्ज् अर्जने धातुसे सम्प्रसारण कर अर्ज्-ऋज् +कु प्रत्यय कर ऋजु +नीति= ऋजुनीति शब्द बनाया जा सकता है।

(१३९) प्रतद्वसू :- इसका अर्थ होता है- जिसने धन प्राप्त कर लिया है। निरुक्तके अनुसार प्रतद्वसू प्राप्तवसू८७ अर्थात् प्राप्तं वसु धनं येन सः प्राप्त वसुः। द्विवचन में प्राप्त वसू-प्रतद्वसू प्राप्त- प्रतद्+ वसू = प्रतद्वसू। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं है। यह अर्थात्मक महत्त्व रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा।

(१४०) हिनोत :- इसका अर्थ है भेजो, प्रेषित करो। निरुक्तके अनुसार हिनोत प्रहिणुत८७ अर्थात् यह शब्द हि गतौ वृद्धौ च धातुके योगसे निष्पन्न होता है। उ का औ गुण होकर हिनोत हो गया है। हिनुत -हिनोत। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। यह वैदिक प्रयोग है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(१४१) शकटम् :- इसका अर्थ होता है बैलगाड़ी। निरुक्तके अनुसार -१- शंकटं शकृदितं भवति८७ अर्थात् यह गोवर से लिप्त रहता है११७ इसके अनुसार इस शब्दमें शकृत्+ इतका योग है। शकृत् गोमयका वाचक है तथा इतः इण् गतौके योग से निष्पन्न रूप। शकृत+ इत= शक् + इत = शकत = शकटम्। २- शनकैस्तकतीति वा८७ अर्थात् यह धीरे-धीरे चलता है। इसके अनुसार इस शब्द में शनैः + तक् गतौ, धातुका योग है- शनैः +तक् = शन् +तक् = शन्+कत् (वर्णविपर्यय)श+कत= शकट। ३- शब्देन तकनीतिवा८७ अर्थात् वह शब्दके साथ चलता है या इसके चलने पर शब्द होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें शब्द + तक् धातु का योग है- शब्द + तक श+ तक -श + कत- (वर्ण विपर्यय) शकत= शंकट। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं

अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। द्वितीय निर्वचन गत्यात्मक आधार रखता है। तृतीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। व्याकरण के अनुसार शक् धातुसे अट्१२८ प्रत्यय कर शकट शब्द बनाया जा सकता है।

(१४२) चोष्कूयमाण :- इसका अर्थ होता है देता हुआ। यह शब्द अनवगत संस्कारका है। दुर्गाचार्यके अनुसार इसका पूर्व खण्ड सुबन्त तथा उत्तर खण्ड तिङन्त है। इसमें धातु अस्पष्ट है।११९ प्रकरणके अनुसार इसका अर्थ लगाया जाता है - देता हुआ। इस शब्दमें स्कूञ् दाने धातुका योग माना जा सकता है। इसे निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार अपूर्ण निर्वचन माना जायगा। स्कूञ् द्वित्व शानच् कर चोष्कूयमाणः शब्द बनाया जा सकता है।

(१४३) चोष्कूयते :- इसका अर्थ होता है नष्ट कर डालता है। निरुक्तके अनुसार चोष्कूयतेश्चर्करीतवृत्तम्८७ अर्थात् यह स्कूञ् धातुका यङन्त रूप है। यहां स्कूञ् धातु नाश अर्थमें प्रयुक्त है। इस निर्वचनका धातु अस्पष्ट है। यहां धात्वर्थ परिवर्तित नजर आता है। निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार इसे अपूर्ण निर्वचन माना जायगा स्कूञ् धातुसे चोष्कूयते शब्द मानने में ध्वन्यात्मक आधार संगत होता है। यास्क ने द्वित्वका संकेत स्पष्ट रूपमें कर दिया है।

(१४४) सुमत् :- यह स्वयं का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- सुमत् स्वयमित्यर्थः८७ अर्थात् सुमतका अर्थ स्वयं होता है। यास्कने इस शब्दका निर्वचन नहीं कर मात्र अर्थ स्पष्ट कर दिया है। निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त निर्वचन नहीं माना जायगा।

(१४५) दिविष्टिषु :- इसका अर्थ होता है- स्वर्ग की प्राप्ति जिन अनुष्ठानों से होती है उनमें। यह सप्तम्यन्त पद है। निरुक्तके अनुसार- दिविष्टिषु दिव एषणेषु८७ अर्थात् दिविष्टि शब्द दिव + इष् धातुके योगसे निष्पन्न होता है- दिव + इष् + क्तिन्= दिविष्टि। दिवः स्वर्गस्य इष्टिः एषणम्= दिविष्टि। सप्तमी बहुबचन में दिविष्टिषु पद निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१४६) स्थूर :- यह अत्यधिक, बहुत का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- समाश्रितमात्रो महान्भवति८७ अर्थात् क्योंकि यह सभी ओर से मिश्रित होकर महान्

होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें श्रिञ् सेवायां धातुका योग है- श्रि-स्थि स्थूरः। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं है। अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। लौकिक संस्कृत में प्राप्त स्थूल शब्द र ल की एकताके आधार पर निष्पन्न है।

(१४७) अणु :- इसका अर्थ सूक्ष्म होता है। निरुक्तके अनुसार अणुरनु स्थवीयांसम् अर्थात् स्थूलका विपरीत अनु शब्द ही अणुः है। वह वृहत् का विपरीत है। अनु के न का ण होकर अणुः बन गया है। उपसर्गो लुप्तनामकरणो यथा सम्प्रति८७ अर्थात् यह अनु उपसर्ग है जिसे संज्ञाके रूपमें प्रयोग किया जाता है अनु + क्विप् (क्विप् का सर्वापहारी लोप)=अनु।सम्प्रति शब्द में सम् एवं प्रति उपसर्ग है लेकिन प्रति संज्ञाके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। सम्प्रति में प्रति की विभक्ति लुप्त है।साम्प्रतम् शब्दमें प्रतिके नाम पद की स्पष्टता प्रति लक्षित हो जाती है सम्+प्रति=सम्प्रति+अण् =साम्प्रतम्। यास्कने अणुः शब्दका भी निर्वचन नहीं किया। मात्र उसके स्वरूप एवं अर्थकी ओर संकेत किया है। लौकिक संस्कृतमें अणुः शब्द सूक्ष्मका वाचक है। व्याकरणके अनुसार अणु शब्दे धातुसे उःप्रत्यय कर अणुः शब्द बनाया जा सकता है।१२०यास्ककी अणुः शब्दकी व्याख्यासे पता चलता है कि प्रत्येक उपसर्ग संज्ञाके ही अवशिष्ट रूप है।

(१४८) कुरुंग :- यह एक राजाका नाम है। निरुक्तके अनुसार कुरुंगो राजा बभूव। कुरूगमनाद्वा८७ अर्थात् कुरुंग नाम कुरू गमनके कारण पड़ा क्योंकि इसने कुरू राजाओं पर चढ़ाई की थी। इसके अनुसार इस शब्दमें कुरू + गम् धातुका योग है। २- कुलगमनाद्वा८७ अर्थात् यह शत्रुकुलों पर आक्रमण करनेके कारण कुरुंग कहलाया। इसके अनुसार इस शब्द में कुल + गम् धातुका योग है कुल +गम्- कुलुंग-कुरंग (ल का र वर्ण परिवर्तन)। दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। कुरुंग शब्दका निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखता है।

(१४९) कुरू :- इसका अर्थ होता है नष्ट करने वाला। निरुक्तके अनुसार कुरूः कृन्ततेः८७ अर्थात् यह शब्द कृती छेदने धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है-कृत् कुर्- ऋ का उ में विकास कुरू। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। ऋ का उ ध्वनिमें विकास अन्य शब्दों में भी देखा जा सकता है- कृत कुट्१२१ कृन्त् से कुत्स१२२ आदि। कुरूः शब्दका निर्वचन भी ऐतिहासिक आधार रखता है। कालान्तरमें यह प्रदेश विशेषका वाचक हो गया है।

व्याकरणके अनुसार कृ + क +उः प्रत्यय कर कुरूः शब्द बनाया जा सकता है।

(१५०) क्रूरम् :- इसका अर्थ है-पापी। निरुक्तके अनुसार क्रूर शब्द भी कृती छेदने धातुके योगसे निष्पन्न होता है- क्रूरमित्यप्यस्य भवति८७ कृत्=क्रूरम्। इसमें ऋ का ऊ ध्वनि में विकास माना जायगा। इस निर्वचन में ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मक आधार भी इसका संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार कृती छेदने धातु का क्रू आदेश +रक् प्रत्यय कर क्रूरः शब्द बनाया जा सकता है।१२३

(१५१) कुलम् :- इसका अर्थ वंश होता है। निरुक्त के अनुसार कुलं कुष्णातेः विकुषितं भवति८७ अर्थात् यह शब्द कुष् निष्कर्षे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह विस्तीर्ण होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। भाषा विज्ञानके अनुसार कुल् धातुसे अ प्रत्यय कर इसे सिद्ध किया जा सकता है। व्याकरणके अनुसार कुल् संस्त्याने धातुसे कः प्रत्यय कर कुलम् शब्द बनाया जा सकता है।१२४

(१५२) जिन्वति :- इसका अर्थ होता है- प्रीति करता है। निरुक्तके अनुसार- जिन्वतिः प्रीतिकर्मा८७ अर्थात् यह शब्द प्रीणनार्थक जिवि धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। यास्क यहां घात्वर्थ को स्पष्ट करना ही अपना अभीष्ट मानते हैं।

(१५३) अमत्र :- इसकी व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है। पंचम अध्याय इसके लिए द्रष्टव्य है। षष्ठ अध्यायके पंचम पादमें भी अमत्रका निर्वचन प्राप्त होता है। इसका अर्थ महान् होता है- अमत्रोऽमात्रो महान् भवत्यभ्यमितोवा१२५ अर्थात् अमात्र मात्रासे रहित को कहा जाता है जो महान् होता है। वह किसीसे पराभूत नहीं होता। पंचम अध्ययमें अमत्रका अर्थ पात्र किया गया है। पात्र अर्थकी अभिव्यक्तिके लिए वहां इसका निर्वचन भी करते हैं जो महान् के अर्थ में किए गए निर्वचन से भिन्न है। अमा अस्मिन्नदन्ति अर्थात् अपरिमित इसपात्र में खाते है। इसके अनुसार अमा+ अद् भक्षणे धातुका योग है। महान् के अर्थमें किए गए निर्वचनके अनुसार अभि + मित्र् धातुका योग माना जायगा। पात्रके अर्थमें अमत्र का निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। शेष का अर्थात्मक महत्त्व है।

(१५४) ऋचीसम :- इसका अर्थ होता है- ऋचाओंके समान। निरुक्तके अनुसार ऋचीसमः ऋचासमः१३५ अर्थात् अर्च् अर्चने धातुसे वर्ण परिवर्तन एवं सम्प्रसारणके द्वारा ऋक् (अर्चनामृक) ऋचासमः- ऋचीसमः। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१५५) अनर्शरातिम् :- इसका अर्थ होता है उत्तमदान देने वाला, जिसका दान पवित्र हो। निरुक्तके अनुसार- अनर्शरातिम् अनश्लीलदानम्१२५ अर्थात् अनर्शरातिम् शब्दमें दो पदखण्ड हैं। अनर्श अनश्लील का वाचक है तथा उत्तर पदस्थ रातिम् शब्द है, जिसका अर्थ होता है दान। नञ्- अन + अर्श +रातिम्= अनर्शरातिम् इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(१५६) अश्लीलम् :- इसका अर्थ होता है- पाप, अशोभन। निरुक्तके अनुसार अश्लीलं पापकमश्रीमद्विषमम्१२५ अर्थात् अश्लील पापका वाचक है तथा अश्रीमद् ही अश्लील है। अश्रीमत् अर्थात् जो श्रीमत् नहीं है। फलतः वह अश्लील विषम है या कष्टदायक है। इसके अनुसार इस शब्दमें नञ् का अ +श्री + ल = अश्रील = अश्लील है। दुर्गाचार्य भी श्रियं लक्ष्मी रातीति श्रीरम् तन्न भवतीति अश्रीरम्। रलयोरैक्यात् अश्लीलम्, मानते हैं।१२६ अर्थात् श्री से युक्त को श्रीर तथा उसके अभाव को अश्रीर कहा जाता है। र ल की एकता से ही अश्रीर शब्द अश्लील बन गया है। अ - श्री + र = अश्रीर- अश्लील। लौकिक संस्कृतमें अश्लील ग्राम्य अर्थात् लज्जाजनक वचनको कहा जाता है जो अश्रीर का ही विकसित रूप है। र ध्वनि ही ल में विकसित हुई है इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। निरुक्तके कुछ संस्करणोंमें अश्रिमत् विषमम् कहा गया है।१२७ इसके अनुसार अश्रि + मत् का योग इसमें माना जायगा अर्थात् ग्रहण नहीं करने योग्य कार्य। श्रि सेवायाम् धातु से न-अ+ श्रि = अश्रि + मत् = अश्रिमत् - अश्लीलम्। यास्कने यहां मतुप् के अर्थमें ही र प्रत्यय किया है। व्याकरणके अनुसार न + श्रियं लाति न +श्री ला + क प्रत्यय कर अश्लीलः शब्द बनाया जायगा।१२८

(१५७)अनर्वाः- यह स्वतंत्रका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- अनर्वाऽप्रत्यृतोऽन्यस्मिन्१२५ अर्थात् जो दूसरों पर आश्रित न हो। इसके अनुसार इस शब्दमें नञ्- अन् + ऋ गतौ + वनिप् प्रत्यय का योग है। ऋ- अर्- अन् + अर् + वन् =

अनर्वन् = अनर्वा। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१५८) मन्द्रजिह्वम् :- इसका अर्थ होता है- मधुरभाषी या मधुर जिह्वा वाला। निरुक्तमें इसे -मन्द्रजिह्वं मन्दन जिह्वं मोदमानजिह्वमिति वा।१२५ अर्थात् मन्द्र जिह्वा शब्द मन्दनजिह्व से बना है या मोदमान जिह्व से। प्रथम निर्वचनके अनुसार मद्से मन्द् शब्द माना गया है। मद् धातु हर्ष और स्तुति दोनों अर्थोंमें प्रयुक्त है। इस आधार पर इसका अर्थ होगा जिसकी जिह्वा प्रसन्न रहती हो या स्तुति करने वाली हो। द्वितीय निर्वचनके अनुसार मुद् धातुका योग है जिसका अर्थ होता है आनन्दित होना। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द्वितीय निर्वचन में स्वरगत औदासिन्य है। व्याकरण के अनुसार मद्+रक् कर मन्द्र शब्द बनाया जा सकता है। यह सामासिक शब्द है। मन्दना जिह्वा यस्य तम् मन्द्रजिह्व।

(१५९) असामि :- इसका अर्थ होता है- अनन्त। निरुक्तके अनुसार-असामि सामि प्रतिषिद्धम्१२५ अर्थात् यह शब्द सामिका विपरीत है। इसके अनुसार इसमें नञ्- अ ₹ सामि है। सामि अन्तका वाचक है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१६०) सामि :- इसका अर्थ होता है- अन्त करना, आधा। निरुक्तके अनुसार- सामि स्यते:१२५ अर्थात् यह शब्द षोऽन्तकर्मणि धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। किंचित् ध्वन्यन्तर के साथ भारोपीय भाषा की लैटिन भाषा में Semi शब्द प्राप्त होता है जिसका अर्थ है आधा। संस्कृत के सामि भी अर्धका ही वाचक है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(१६१) गल्दया:- यह धमनीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-गल्द धमनयो भवन्ति। गलनमासु धीयते१२५ अर्थात् इसमें गलन रस (अन्नादि के रस) रखे जाते हैं।अत: धमनीको गल्दा कहा जाता है।धमनियोंसे रक्तप्रवाहित होता है।इसके अनुसार इस शब्दमें गल्+ धा =गल्धा -गल्दा तृतीया एकवचन में गल्दया है।इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।गल् + धा=गल्धाके ध वर्णका द में परिवर्तन होकर गल्दा शब्द बना है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। डा.

लक्ष्मण स्वरूप इसका अर्थ करते हैं· सोमपात्र।१२९ सोम पात्र में अर्थ सादृश्य है क्योंकि इसमें सोमरस निचोड़कर रखे जाते हैं। अत: यह अर्थ भी संभव है। दुर्गाचार्य इसका अर्थ धमनी ही करते हैं। वेदों में एवं श्रौत सूत्रोंमें गल्दाका प्रयोग धमनीके अर्थमें ही हुआ है।१३०

(१६२) जल्हव :- इसका अर्थ होता है ज्वलन रहित। निरुक्तके अनुसार जल्हव: ज्वलनेन हीन:१२५ अर्थात् यह शब्द ज्वल् + हा परित्यागे धातुके योगेसे निष्पन्न हुआ है। इस निर्वचनमें ध्वन्यात्मक औदासिन्य है। अर्थात्मक आधार से यह युक्त है। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें प्राय: नहीं देखा जाता। दुर्गाचार्य ने इसका अर्थ किया है- अज्वनशीला: अनाहिताग्नयो वा।

(१६३) बकुर :- यह भास्कर, भयंकर तथा भासमान गति वालाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार बकुरो भास्करो भयंकरो भासमानो द्रवतीति वा१२५ अर्थात् बकुर शब्द भास्कर से बना है- भास्कर-भकर-बकुर (वर्ण लोप वर्ण परिवर्तन आदि) या यह शब्द भयंकर से नि:सृत है भयंकर-भंकर-भंकुर-बकुर: या यह शब्द भास् + द्रु गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है-भास् +द्रु = भादुर - भाकुर-बकुर:। सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक आधार किसी भी निर्वचनका पूर्ण संगत नहीं है। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें प्राय: नहीं देखा जाता। वेदोंमें इस शब्दका प्रयोग ज्योति एवं जलके रूपमें देखा जाता है।१३१

(१६४) वृक :- इसका अर्थ होता है हल। निरुक्तके अनुसार-वृको विकर्तनात्१२५ अर्थात् वह जमीन को उखाड़ता है इसलिए वृक कहलाता है। इसके अनुसार वृक शब्दमें वि + कृत् धातुका योग है। कृत् का अर्थ होता है काटना। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं है। यह शब्द अनेकार्थक है। इसका निर्वचन अन्य अर्थों में पूर्व भी हो चुका है। कुत्ते एवं भेड़िये को भी वृक् कहा जाता है। काटनेके गुण दोनोंमें ही विद्यमान हैं।

(१६५) लांगलम् :- इसका अर्थ होता है- हल। निरुक्तके अनुसार १- लांगलं लंगते:१२५ अर्थात् यह शब्द लग् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इससे खेत जोता जाता है। या खेतमें यह गतिमान होता है।२-लांगलवद्वा१२५अर्थात् यह पूंछ के ऐसा होता है इसलिए इसे लांगल कहा जाता है।प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्तहै।भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगतमाना जायगा।द्वितीय

निर्वचन सादृश्यके आधार पर निष्पन्न हुआ है।व्याकरणके अनुसार लगि गतौ +कलच् प्रत्यय कर लांगलः शब्द बनाया जा सकता है। यह शब्द उक्त अर्थमें लौकिक संस्कृतमें भी प्रयुक्त होता है।१३२ यास्कके समयमें भी हल लांगलाकृति रहता होगा।

(१६६) लांगूलम् :- यह पूंछ का वाचक है। निरुक्तके अनुसार १- लांगूलं लगते:१२५ अर्थात् यह शब्द लगि गतौ संगे च धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि पूंछ गतिशील होती है। या शरीर से लगी होती है। २- लंगते: अर्थात् यह शब्द लंग् गतौ धातुसे निष्पन्न होता है। इसका अर्थ भी प्रथम निर्वचन के समान ही होगा। ३- लम्वतेर्वा१२५ अर्थात् यह शब्द लम्ब् अवसंस्त्रने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि पूंछ लटकी रहती है या लम्बी होती है। प्रथम एवं द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें उपयुक्त माना जायगा। अन्तिम निर्वचनका आधार दृश्यात्मक है। व्याकरणके अनुसार भी लगि गतौ धातु से ऊरच्+अण् प्रत्यय कर लांगूलम् शब्द बनाया जा सकता है।१३३

(१६७) बेकनाटा :- इसका अर्थ होता है- सूदखोर। निरुक्तके अनुसार १- बेकनाटा: खलु कुसीदिनो भवन्ति द्विगुण कारिणो वा१२५ अर्थात् वेकनाटा सूद पर जीवन निर्वाह करने वाले को कहा जाता है क्योंकि वह अपने धन को दुगुना करने वाला होता है- द्वि +गुण-द्वेगुण- वेगन = वेकन + डाटन् = बेकनाटा। २- द्विगुणदायिनो वा१२५ अर्थात् वह दुगुने सूद पर रुपये लगाने वाला होता है। इसमें भी द्विगुण-वेगुन वेकन-वेकनाटा। ३- द्विगुणं कामयन्त इति वा१२५ अर्थात् वह अपने धन से दुगुने की कामना करता है। इसमें भी द्विगुण से वेकन वेकनाटा है। यास्क का यह निर्वचन अस्पष्ट है। यास्क ने वेकनाटा शब्दके अर्थको स्पष्ट करनेके लिए ही अनेक संभावनाएं व्यक्तकी है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वे+ एक +नाट् अच् प्रत्यय कर वेकनाटा शब्द बनाया जा सकता है।

(१६८) मत्स्याः:- इसका अर्थ होता है- मछलियां। निरुक्तके अनुसार मधौ उदके स्यन्दन्ते१२५ अर्थात् यह जलमें विचरण करती है। इस शब्दमें मधु+स्यन्द् प्रस्त्रवणे धातुका योग है। मधु जलका वाचक है। जलमें विचरण करनेके कारण मत्स्य कहलाती है। २- माद्यन्ते अन्योन्यं भक्षणाय इतिवा१२५ ये मछलियां एक दूसरे के भक्षण के लिए प्रसन्न होती है।१३४ बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें मद्+भस् +धातुका योग है- मद्+भस् + य=मत्स्य:। प्रथम

निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार मद् + स्यन् = मत्स्य: शब्द बनाया जा सकता है।१३५

(१६९) अभिधेतन :- इसका अर्थ होता है-हमारी ओर तेजी से आओ। निरुक्तमें- अभिधेतन- शब्द अभिधावत कहकर स्पष्ट किया गया है।१२५ इसके अनुसार अभिधेतन शब्दमें अभि+ धाव् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक संगति ही इस निर्वचनका प्रयोजन है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत नहीं माना जायगा।

(१७०) जालम् :- यह पाश (जाल) मछली आदि पकड़ने के फन्दा का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- १- जालं जलचरं भवति१२५ अर्थात् यह जलमें चलने वाला होता है। जल स्थित मछलियोंको पकड़नेके लिए जलमें डाल दिया जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें जल + चरणार्थ में अण् का योग है। २- जलेभवं वा१२५ अर्थात् यह जलमें होता है या जल में रहता है। इसके अनुसार इसमें जल+ होना अर्थमें अण् जालम् है ३- जलेशयं वा१२५ अर्थात् यह जलमें शयन करने वाला होता है। इसके अनुसार भी इस शब्दमें जल +शयन अर्थमें अण् प्रत्यय का योग है। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार जल् संवरणे धातुसे करणे घञ् प्रत्यय कर या जल् धातुसे अण् प्रत्यय कर जालम् शब्द बनाया जा सकता है।१३६

(१७१) अंहुर :- इसका अर्थ होता है- पापी। निरुक्तके अनुसार-अंहुर: अहंस्वान अहूंरणमित्यप्यस्य भवति१२५ अर्थात् अंहुर का अंहस्वान एवं अंहूरण पर्याय है। इस शब्दमें र मत्वर्यीय प्रत्यय है। अंहु + र = अंहुर:। सातमर्यादाओं में एक को भी प्राप्त करना अंहुर कहलाता है१३७ अर्थात् सात मर्यादाओंमें एक को भी प्राप्त करने वाला पापी कहलाता है। वे सप्त मर्यादायें हैं-चोरी, परस्त्री गमन, ब्रह्महत्या, भ्रूण हत्या, सुरापान, दुष्कृत कर्म को पुन: पुन: करना तथा पाप कर उसे छिपाने के लिए झूठ बोलना।१३८ यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अहि+ उरच् प्रत्यय कर अंहुर शब्द बनाया जा सकता है।

(१७२) बत:-यह एक निपात है जो खेद एवं अनुकम्पाके अर्थ में प्रयुक्त होता

है। निरुक्तके अनुसार-बत इति निपात: खेदानुकम्पयो: बतो बलादतीतो भवति।१२५ अर्थात् वत: का अर्थ होता है बल से रहित। वलादतीत: से वत: माना गया है जो अर्थात्मक आधार रखता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार संगत नहीं है। खेद आदि के अर्थमें यह निपात लौकिक संस्कृतमें भी प्रयुक्त होता है।१३९ यास्क ने बत को निपात माना है तथा संज्ञाके अर्थमें भी इसका निर्वचन किया है। बल से रहित बत: यमके विशेषणके रूप में प्रयुक्त है।१४० वही बल निपात के रूप में भी प्रयुक्त है जो खेद का सूचक है। कुछ संस्करणमें बलातीत से भी वत: शब्द माना गया है। बलका आद्यक्षर व तथा अतीतका अन्तिम अक्षर त मिलकर लगता है वत हो गया है।

(१७३) लिबुजा :- यह लताका वाचक है जो काफी लतरती है तथा वृक्षों पर चढ़ जाती है या वृक्षों से सम्पृक्त रहती है। निरुक्तके अनुसार-लिजुबा व्रततिर्भवति। लीयते विभजन्तीतिवा१२५ अर्थात् लिबुजा व्रतति का पर्याय है क्योंकि वह वृक्ष में लीन हो जाती है, वृक्ष से लिपट जाती है या वृक्ष की सेवा करती है। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें ली+ वि +भज् सेवायां धातुका योग है- ली +वि + भज् = लिविजा- लिवुजा। इसका अर्थात्मक आधार संगत है। इस निर्वचनमें ध्वन्यात्मक शैथिल्य है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(१७४) व्रतति :- इसका अर्थ लता होता है। निरुक्तके अनुसार - व्रततिर्वरणाच्च सयनाच्च तननाच्च१२५ अर्थात् यह वृक्षको वरण करती है, और वृक्षको बांध लेती है तथा वृक्ष पर फैली रहती है। अत: व्रतति कहलाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें वृ आवरणे सि वन्धने तथा तन् विस्तारे धातुका योग है। यास्क ने इस शब्दमें तीनों धातुओंका योग माना है। ध्वन्यात्मक आधार पर सि बन्धने धातु का योग पूर्ण रूपमें अस्पष्ट है। अर्थात्मक आधार से यह निर्वचन युक्त है। ध्वन्यात्मक आधार पर वृ धातु या तन् धातुसे इसका निर्वचन माना जा सकता है। व्याकरणके अनुसार व्रत् + तति: कर व्रतति: शब्द बनाया जा सकता है।

(१७५) वाताप्यम् :- यह उदकका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वाताप्यमुदकं भवति। वात एतदाप्यायति१२५ अर्थात् वायु इसे शीतल करती है, बढ़ाती है, आप्यायित करती है। इसके अनुसार इस शब्दमें वात + प्यै वृद्धौ धातुका योग है। वात + आ+प्यै = वाताप्यम्। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जाएगा।

(१७६) चाकन् :- इसका अर्थ होता है देखता हुआ, चाहता हुआ। निरुक्तके अनुसार-चाकन् तायन्निति वा कामयमान इतिवा१२५ अर्थात् यह शब्द इच्छार्थक चक् धातुसे निष्पन्न होता है- चक् + शतृ = चकन्-चाकन्। चाकन् के क का य करके चायन् बनाया जाता है। यह चाकन् का पर्याय है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। इस निर्वचन में धातु स्पष्ट नहीं है। मात्र इसका अर्थात्मक महत्त्व है। निर्वचन प्रक्रिया या भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण निर्वचन नहीं माना जायगा।

(१७७) वाय :- यह पक्षी शावकका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-वायो वे पुत्र:१२५ अर्थात् वाय: वि के पुत्र को कहा जाता है इसके अनुसार वि+ अण् से वाय: शब्द निष्पन्न होता है। यास्क इस अवसर पर आचार्य शाकल्यका मत उद्धृत करते हैं- वेति च य इति च चकार शाकल्य:१२५ अर्थात् शाकल्य ने वा एवं य: को अलग-अलग किया है। यास्कके अनुसार यह उपयुक्त नहीं है। यास्कका कहना है-उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यत्। असुसमाप्तश्चार्थ:१२५ अर्थात् वाय: को अलग-अलग पदच्छेद करने पर (ऋ.१०।२९।१,अथर्व. २०।७।७६।१)१४१ आख्यात पद उदात्त हो जायगा तथा उदात्त करने पर मन्त्रार्थ की संगति उपयुक्त नहीं होगी। निर्वचनके अनुसार यास्कका वे: पुत्र: वाय: सर्वथा संगत है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जायगा। आचार्य शाकल्य पदपाठकार हैं। इन्होंने वाय: का पदविच्छेद उपयुक्त नहीं किया है या वा३ य: करना अशुद्ध पद विच्छेद है।

(१७८) रथर्यति :- इसका अर्थ होता है- रथ की कामना करने वाला। निरुक्तके अनुसार-रथर्यति इति सिद्धस्तत्प्रेप्सु: रथं कामयत इति वा१२५ अर्थात् रथर्यति का अर्थ है- रथ चाहने वाला या रथ की कामना करने वाला। इसके अनुसार रथ+ हर्य् प्रेप्सा कर्मा धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है- रथं हर्यतीति= रथर्यति।१४२ रथ की कामना करने वाला के अर्थमें -रथमात्मन: कामयते इति१४३ रथीयति- रथर्यति माना जायगा। यह निर्वचन पूर्ण स्पष्ट नहीं है। इस निर्वचन का अर्थात्मक महत्त्व है।

(१७९) असक्राम् :- इसका अर्थ होता है असंक्रमणीय। निरुक्तके अनुसार असक्राम् असंक्रमणीम्१२५ अर्थात् संक्रमण नहीं करने वाला असक्राम कहलाता है। यास्कने इसका मात्र अर्थ निर्देश किया है। निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जायगा। इसका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार

(नञ्) अ + क्रम् + ङ= असक्राम शब्द बनाया जा सकता है।

(१८०) आधवः- इसका अर्थ होता है कंपा देने वाला। निरुक्त के अनुसार आधव आधवनात्।१२५अर्थात् यह शब्द आ+ धूञ् कम्पने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। आधावन क्रिया के कारण ही आधवः कहा जाता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग उक्त अर्थमें प्रायः नहीं देखा जाता। व्याकरणके अनुसार आ +धुञ् +अप् प्रत्यय कर आधवः शब्द बनाया जा सकता है।

(१८१) अनवब्रव :- इसका अर्थ होता है निर्दोष वचन वाला। निरुक्तके अनुसार अनवब्रवोऽनवक्षिप्तवचनः१४४ अर्थात् अनवक्षिप्त बचनवाला, सार्थक बचन वाला। इसके अनुसार इस शब्दमें नञ्-अन्+अव + ब्रू+ अप् प्रत्ययका योग है। यास्कने इस शब्दका अर्थ मात्र ही संकेत किया है। अतः इस निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त निर्वचन नहीं माना जायगा।

(१८२) सदान्वे :- यह सम्बोधन पद है। इसका अर्थ होता है- शब्द करने वाली। निरुक्तके अनुसार- सदान्वे सदानोनुवे शब्दकारिके१४४ अर्थात् यह शब्द सदा + नु शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न होता है- सदा + वन् = सदान्व + टाप् = सदान्वा, सम्बोधन में सदान्वे। इसका अर्थ होगा। सदा शब्द करने वाली। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१८३) शिरिंबिठ :- यह मेघका वाचक है। निरुक्तके अनुसार शिरिविठो मेघः। शीर्यते बिठे।१४४ अर्थात् बिठका अर्थ अन्तरिक्ष होता है अन्तरिक्ष में हनन होने वाला शिरिंबिठ कहलायगा। इसके अनुसार इस शब्द में शृ हिंसायाम् धातुसे शिरि+ विठः= शिरि बिठः है। शिरिः बिठे यस्य स शिरिंबिठः। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शिरिम्बिठ भारद्वाजका भी नाम है- शिरिम्बिठो भारद्वाजः इसका आधार ऐतिहासिक माना जायगा। भारद्वाज ऐतिहासिक राजा हैं। या (अत्यधिक अन्न धारण करने वाला भी भारद्वाज कहलाता है।)

(१८४) काण :- यह एकाक्षका वाचक है। निरुक्तके अनुसार -काणोऽविक्रान्त दर्शन इत्यौपमन्यवः१४४ अर्थात् यास्कने आचार्य औपमन्यवका एतत्सम्बन्धी विचार प्रथमतः उपस्थित किया है। आचार्य औपमन्वके अनुसार अविक्रान्तदर्शी या विकृतलोचन

वाला काण कहलाता है। **काणोऽविक्रान्तदर्शन**:१४४ के दो पदविच्छेद किए जा सकते हैं- १- **अविक्रान्त दर्शन** :- अविक्रान्तमपगतं दर्शनं यस्य स: अविक्रान्त दर्शन: अर्थात् जिसे कम दिखलाई पड़ता है। २- विक्रान्तदर्शन:- विक्रान्तं विगतं दर्शनं यस्यस: विक्रान्त दर्शन: अर्थात् जिसका एक नेत्र नहीं है। इसके अनुसार इस शब्दमें क्रम् धातुका योग है- क्रम् + घञ् = क्राम: काण:। यास्क स्वयं भी इसके लिए निर्वचन प्रस्तुत करते हैं- कणेतेर्वास्यादणू भावकर्मण:१४४ अर्थात् यह शब्द अल्पार्थक कण् धातुके योगसे निष्पन्न होता है- कण् +घञ् = काण:। मात्राणूभावात्कण:, दर्शनाणूभावात्काण:१४४ अर्थात् मात्राके अणुभाव, स्वल्प भाव को कण कहा जाता है तथा दर्शन शक्तिकी अल्पतासे काण कहलाता है। यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। यह आख्यातज एवं सादृश्य सिद्धान्त पर आधारित है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा, आचार्य औपमन्यव का निर्वचन ध्वन्यात्मक आधार से युक्त नहीं है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। यास्कका निर्वचन औपमन्यवके निर्वचनकी अपेक्षा अधिक भाषा वैज्ञानिक है। व्याकरणके अनुसार कण् धातुसे घञ् प्रत्यय कर काण: शब्द बनाया जा सकता है।

(१८५) विकट :- इसका अर्थ होता है विकृत चाल। यास्क प्रथमत: आचार्य औपमन्यवके निर्वचन को उपस्थापित करते हैं। औपमन्यवके अनुसार-विकट: विक्रान्तगतिरित्यौपमन्यव:१४४ अर्थात् विक्रान्त गति वाला विकट कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें वि + क्रम् धातुका योग है- वि + क्रम् = विकट:। इस निर्वचनमें ध्वन्यात्मकता का अभाव है। अर्थात्मक आधार इसका संगत है। यास्क के अनुसार- कुटतेर्वास्यात् विपरीतस्य विकुटितो भवति१४४ अर्थात् यह शब्द वि + कुट कौटिल्ये धातुके योगसे निष्पन्न होता है- वि+ कुट् = विकुट विकट: क्योंकि यह विकुटित होता है कुछ कुटिल होता है।१४५ यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जायगा। यास्कका निर्वचन औपमन्यवके निर्वचनकी अपेक्षा अधिक भाषा वैज्ञानिक है। व्याकरणके अनुसार वि + कट् + अच् प्रत्यय कर विकट: शब्द बनाया जा सकता है।

(१८६) पराशर :- यह एक ऋषिका नाम है। शब्दार्थके अनुसार इसे अनेकार्थक कहा जा सकता है। निरुक्तके अनुसार १- पराशर: पराशीर्णस्य वशिष्टस्य स्थविरस्य जज्ञे।१४४ अर्थात् दुर्गुणोंके नाशक एवं वृद्धवशिष्ठ ऋषि से उत्पन्न पराशर कहलाता

है। इसके अनुसार पराशरः शब्द में पर+ आ+ शृ हिंसायाम् धातुका योग है। इन्द्रको पराशर कहा जाता है- २- पराशातयिता यातूनाम्१४४ अर्थात् जो राक्षसोंको समन करने वाला, मारने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें पर + आ + शद् शातने धातुका योग है। इन्द्रके अर्थ में पराशरका निर्वचन कर्म पर आधारित है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यह ऐतिहासिक आधार रखता है भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रथम निर्वचन अधिक संगत है। द्वितीय निर्वचन का अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार भी पर + आ + शृ+ अच् प्रत्यय कर पराशरः शब्द बनाया जा सकता है।

(१८७) क्रिविर्दती :- इसका अर्थ होता है काटने वाले दांतों से युक्त। निरुक्तके अनुसार क्रिविर्दती विकर्तनदन्ती१४४ अर्थात् कृत्-क्रिवि+दन्त= क्रिविर्दती शब्द माना जायगा। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं हैं। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त नहीं माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(१८८) करूलती :- इसका अर्थ होता है कटे हुए दांतों वाला। निरुक्तके अनुसार करूलती कृन्तदती१४४ अर्थात् कृत्तदती शब्द ही करूलती हो गया है- कृत्-करू+ दती-लती = करूलती। द वर्ण का ल में परिवर्तन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे पूर्ण संगत नहीं है। इस निर्वचन का अर्थात्मक महत्त्व है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जायगा। प्रकृत१४६ में करूलती भगःका विशेषण है कुछ लोग इसे स्वीकार करते हैं तथा कुछ लोग इसे पूषा का विशेषण मानते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थमें पूषाको अदन्तक कहा गया है।१४७

(१८९) वामम् :- इसका अर्थ होता- इष्ट सेवनीय। निरुक्तके अनुसार वामं वननीयं भवति१४४ अर्थात् यह शब्द वन् सेवायां समक्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह सेवनीय, या भजनीय होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार टुवम् उद्गिरणे धातुसे घञ् प्रत्यय कर वाम शब्द बनाया जा सकता है।१४८

(१९०) आदुरि :- इसका अर्थ होता है आदर करने वाला। निरुक्तके अनुसार आदुरिः आदरणात्१४४ अर्थात् यह शब्द आ + दृ विदारणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यहां ऋ का उ वर्णमें परिवर्तन हो गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक

आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१९१) दन :- इसका अर्थ होता है दानशील मनवाला। निरुक्तके अनुसार-दनः दानमनसः१४४ अर्थात् दानमनसः का ही संक्षिप्त रूप दनः है। दान का द तथा मनसः से न लेकर दनः माना गया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त नहीं माना जायगा। इसमें अर्थात्मकता उपयुक्त है। उक्त अर्थमें इस शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता।

(१९२) शरारू :- इसका अर्थ होता है मारने की इच्छा रखने वाला। निरुक्त के अनुसार-शरारुः संशिशरिषुः१४४ अर्थात् हिंसक।। इसके अनुसार इस शब्दमें शृ हिंसायां धातुका योग है। यास्कने इस शब्दका मात्र अर्थ ही प्रतिपादित किया है। निर्वचन प्रक्रिया एवं भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त निर्वचन नहीं माना जायगा। उक्त अर्थमें इसका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें प्रायः नहीं देखा जाता।

(१९३) इदंयुः- इसका अर्थ होता है इसकी अभिलाषा करने वाला। निरुक्तके अनुसार-इदंयुः इदं कामयमानः१४४ अर्थात् इसकी इच्छा करने वाला।अथापि तद्वदर्थे भाष्यते इदम् शब्दसे इच्छार्थक यु प्रत्यय लगा कर इदम् + युः इदंयुः शब्द बनता है। यु प्रत्ययसे निष्पन्न अन्य शब्द भी निरुक्तमें प्राप्त होते हैं। अध्वर्युः१४९ वसूयुः१५० आदि शब्द यु प्रत्ययके योगसे ही निष्पन्न है। यु मत्वर्थीय प्रत्यय हैं। इस प्रकार इसका अर्थ होगा इदंवान्। मत्वर्थीय यु प्रत्ययके अन्य उदाहरण ऋग्वेद में भी देखे जा सकते हैं- अश्वयुर्गव्यूरधर्युवसूयुः१५१ इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। यास्कने इदंयु शब्दमें युः दो अर्थोंमें माना है- १- कामयमान तथा २- तद्वान् यु प्रत्यय कालान्तर में तद्वान् अर्थमें ही सीमित हो गया है। पाणिनि ने तद्वान् के अर्थमें ही युः का विधान किया है।१५२ इससे स्पष्ट पता चलता है कि इस प्रत्यय में अर्थसंकोच हुआ है।

(१९४) कीकटा :- यह एक प्रदेश विशेषका वाचक है। निरुक्तमें इसे अनार्य निवास का देश कहा गया है- कीकटो नाम देशोऽनार्य निवासः१४४ इस निर्वचन में यास्क का कहना है-१- कीकटाः किं कृताः१४४ अर्थात् यहां के निवासी कुत्सित कर्म करने वाले हैं या धर्मादि कार्य किसलिए है ऐसा प्रश्न करते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें किम् + कृताःका योग है -किम् +कृताः=कीकटाः।२-किं क्रियाभिरिति प्रेप्सा वा अर्थात् उत्तम क्रियाओं से क्या लाभ ऐसी जिनकी प्रेप्सा(मान्यता)है उस देश विशेष को

कीकट कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें किं + क्रिया= कीकर-कीकट माना जा सकता है। वैदिक धर्मसे रहित नास्तिक प्रदेश कीकट के नाम से अभिहित था। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द्वितीय निर्वचनमें किंचित् ध्वन्यात्मक शैथिल्य है। अर्थात्मकता से समन्वित ये निर्वचन उस देश की संस्कृति के सूचक हैं।१५३ व्याकरणके अनुसार की + कट् +अच् प्रत्यय कर कीकट शब्द बनाया जा सकता है। कीकट शब्दका प्रयोग उक्त अर्थों में ऋग्वेद में प्राप्त होता है किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति धर्मम्। आनो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धयान:।१५४

यास्क का यह निर्वचन उक्त स्थान की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को स्पष्ट करता है। इस निर्वचनसे यह भी स्पष्ट है कि इस प्रदेश में यास्कके समय में वैदिक धर्म का प्रसार नगण्य था।

(१९५) मगन्द:- यह सूदखोरका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-मगन्द: कुसीदी। मामागमिष्यतीति च ददाति१४४ अर्थात् मगन्द सूदके धन खाने वालेका पर्याय है क्योंकि वह सूदपर अपना धन देता है। मुझे अधिक धन प्राप्त होगा इसलिए धन देने वाला मगन्द कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें माम् + गम् + दा धातुका योग है- माम् + गम् + दा = मगन्द। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार मगं पापं ददाति-मग +दा + ड प्रत्यय कर मगन्द: शब्द बनाया जा सकता है।

(१९६) पण्डक :- यह नपुंसकका वाचक है। निरुक्तके अनुसार पण्डक: पण्डग: प्रार्दकोवा प्रार्दयत्याण्डौ१४४ अर्थात् पण्डगको पण्डक कहा जाता है। पुरुषेन्द्रियकी ओर जाने वाला पण्डग कहलाता है। पण्डक ही पण्डग है इसके अनुसार पण्ड+ गम् पण्डग:= पण्डक:। पण्ड पुरुषेन्द्रिय का वाचक है। प्रार्दक से भी पण्डक माना गया है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा अण्ड को पीड़ित करने वाला वह अण्डकोषों को पीडित करता है इस शब्द में प्र=+ अद+ अण्डक: का योग है- प्र + अर्द +अण्डक - प्र + अण्डक= पण्डक:। अण्डो आणीव व्रीडयति तस्तम्भे१४४ अर्थात् वह अण्डकोषों को रथ के अणि (चक्रदण्ड) की तरह स्तम्भित किए रहता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं।

(१९७) आणि :- इसका अर्थ होता है- रथ चक्रदण्ड। निरुक्तके अनुसार आणिः अरणात्१४४ अर्थात् यह शब्द अर् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह गमन करता है या गतिशील होता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधार इसका संगत है। व्याकरणके अनुसार अण् धातुसे इण् प्रत्यय कर आणिः शब्द बनाया जा सकता है।

(१९८) शाखा :- यह अवयव, डाल आदिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार शाखा शक्नोतेः१४४ अर्थात् यह शब्द शक् शक्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। पेड़की शाखा एवं व्यक्तिकी शाखामें सादृश्यका आधार है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार यह -शाख् ट अच् ट टाप् कर बनाया जा सकता है।

(१९९) बुन्द :- इसका अर्थ होता है वाण। निरुक्तके अनुसार बुन्दः इषुर्भवति। बुन्दो वा भिन्दो वा१४४ अर्थात् यह शब्द भिद् विदारणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है भिद् + घञ् भिन्दः-बुन्दः क्योंकि यह भेदन करता है। २- भयदो वा अर्थात् यह वाण भय देने वाला होता है। इसके अनुसार भयद शब्द ही बुन्द बन गया है- भयद-बुन्द। ३- भासमानो द्रवतीतिवा अर्थात् इसमें भास् + द्रु गतौ धातुका योग है भास् + द्रु=बुन्दः क्योंकि यह चमकता हुआ गति करता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे अधिक संगत है। शेषके अर्थात्मक महत्त्व हैं। भ वर्ण का ब में परिवर्तन अल्प प्राणीकरण है।

(२००) ऋदूपे :- इसके अनेक अर्थ होते है- निरुक्तके अनुसार १- ऋदूपे अर्दन- पातिनौ१४४ अर्थात् गतिके साथ शत्रुओं को मारने वाले। इसके अनुसार इस शब्दमें ऋ गतौ+ पत् धातुका योग है। २- गमन पातिनौ अर्थात् गमनपूर्वक मार गिराने वाले। ३- शब्द पातिनौ अर्थात् शब्दसे ही मार गिराने वाले। ४- दूरपातिनौवा अर्थात् दूरसे मार गिराने वाले। ५- मर्मण्यर्दन वेधिनौ अर्थात् मर्मस्थल को गतिपूर्वक भेदन करने वाले। ६- गमनवेधिनौ१४४ अर्थात् गमनपूर्वक भेदन करने वाले। यास्कका प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है।

(२०१) वृन्दम् :- इसकी व्याख्या बुन्द शब्द से ही मानी गयी है।

(२०२) कि :- इसका अर्थ होता है कर्ता। निरुक्तके अनुसार किः कर्ता१४४

यास्क ने इसका मात्र अर्थ स्पष्ट किया है। भाषा विज्ञान एवं निर्वचन प्रक्रिया के अनुसार इसे संगत नहीं माना जायगा। कृ धातु से इन् प्रत्यय कर ऋ लोप कर किः शब्द बनाया जा सकता है।

(२०३) उल्वम् :- यह गर्भावरण जरायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार उल्वमूर्णोतेर्वृणोतेर्वा१४४ अर्थात् यह उर्णञ् आच्छादने धातुके योगसे निष्पन्न होता है या वृञ् आच्छादने धातुके योगसे बनता है। उर्णुञ्-उल्वम्। वृञ् से उल्वम् में व का उ सम्प्रसारण से हुआ है तथा र का ल हो गया है। क्योंकि यह गर्भ को आच्छादित किए रखता है। दोनों निर्वचनों का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार उच् समवाये धातुसे वन् प्रत्यय कर उल्वम् शब्द बनाया जा सकता है (चस्य लः)१५५

(२०४) ऋबीसम् :- इसका अर्थ होता है पृथ्वी। निरुक्तके अनुसार १- ऋवीसम् अपगतभासम्। अर्थात् जिसका प्रकाश समाप्त हो चुका है। २- अपहृत भासम्। अर्थात् जिसका प्रकाश अपहृत है। ३- अन्तर्हित भासं वा अर्थात् अन्तर्हित प्रकाश वाला। ४- गतभासम् वा१४४ अर्थात् जिसमें प्रकाश समाप्त है। प्रथम निर्वचन में ऋ+ भा धातुका, द्वितीयमें हृ + भा का, तृतीय में अन्तः+ धा+ भा का, चतुर्थ में ऋ+ भा का योग है। प्रथम निर्वचन ऋ+ भासम्= ऋबीसम् ध्वन्यात्मक दृष्टि से अधिक संगत है। शेष निर्वचनों में ध्वन्यात्मक शैथिल्य है। अर्थात्मक दृष्टिकोण से सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार - ऋ वर्जने धातु + भास+ अच् प्रत्यय कर ऋवीसम् शब्द बनाया जा सकता है।

(२०५) गण :- यह समूहका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-गणो गणनात्१४४ अर्थात् यह शब्द गण् संख्याने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसकी गिनती है या इसका गणन होता है।१५६ गुण शब्द भी इसी गण संख्याने धातु के योग से निष्पन्न होता है। गुणश्च गुणकी भी गणना होती है अतः गण् धातु से बना है।१४४ यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार गण् संख्याने धातुसे अच् प्रत्यय कर गणः शब्द बनाया जा सकता है।

- : सन्दर्भ संकेत :-

१. नि. ६।१, २. नि.दु.वृ. ६।१, ३. इगुपधात् कित्- ४।१२०, ४. पचाद्यच्-

अष्टा. ३।१।१३४, ५. अम.को. ३।३।२१६, ६. सर्वधातुभ्यः इन्- उणा. ४।११७, ७. उणा. ४।१८९, ८. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, ९. नि.मी.- पृ. ६५ (द्र.), १०. पचाद्यच् -अष्टा. ३।१।१३४, ११. गोष्ठाध्वनिवहा व्रजाः - अम. को. ३।३।३०, १२. ऋ. ६।२४।३, १०।४२।७ नि. १।२ ५।४, १३. अष्टा. ३।३।९४, १४. मधुरोदको मेघोऽभिधेयः नि.दु.वृ. ६।१, १५. नि. ३।४, १६. नि. २।१, १७. नि. २।१, १८. अष्टा. ३।२।१७८, १९. अष्टा. ६।३।१३६, २०. निःश्लथया दृढ़या गत्या हरन्त इत्यर्थः नि.दु.वृ. ६।१, २१. वीज्याज्वरिभ्यो निः- उणा. ४।४८, २२. नि. ६।२, २३. उपलेषु यवान् प्रकर्षेण क्षिणाति हिनस्ति पिनष्टीति यावत्- नि.दु.वृ. ६।२, २४. हला.- पृ. २२१, २५. यतौ ननना स्तनदानाद्यर्थम् अपत्यं प्रति नता भवति ततः माता-नि.दु.वृ. ६।२, २६. दुहितापि ननना भवति। सापि हि पितुः परिचर्यार्थं नम्रा भवति-नि.दु.वृ. ६।२, २७. दी इटीमोलौजीज आफ यास्क पृ. ६४, २८. अभ्यर्द्धयन् अभिवर्द्धयन्यजतीत्यवगमः- नि.दु.वृ. ६।२, २९. सुपां सु लुक पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः अष्टा. ७।१।३९, ३०. यजु.- ४।२२, ३१. ऋ. १।११८।११, ३२. ऋ. १।१६५।७, ३३. ऋ. ३।३६।१०, ३४. ऋ. ६।४७।१३, ३५. ऋ. ३।३०।१९, ३६. यजु. ८।१८, ३७. नि. २।७, ३८. उदके थुट् च उणा. ४।२०४, ३९. पृषदश्वामरूतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः यजु. २५।२० भाष्य (द्र.) ऋ.- १।१४३।७- विदथेषु यज्ञेषु- सा.भा., ४०. ओजते वृद्धयर्थस्य- नि.दु.वृ. ६।२, ४१. उब्जेजलेर्वलोपश्च-उणा. ४।१९२, ४२. ओजो दीप्तावववष्टम्भे प्रकाश वलयोरपि-मेदि- १७१।२० ओजो दीप्तो बले-अम. को. ३।३।२३३,४३ .अम.को .३।३।२२८,४४ .विजमातेतिशश्वद्दाक्षिणाजाः क्रीतापत्ति माचक्षते- नि.६।२,४५ .नप्तृनेष्ट्र.-उणा .२।९५,४६ .आतोऽनुपसर्ग- अष्टा .३।२।३, ४७. अष्टा. ३।३।१९, ४८. स्येन हि तुषाः प्रक्षिप्यन्ते- नि.दु.वृ. ६।२, ४९. दी इटीमोलौजीज आफ यास्क पृ. १०८, ५०. अष्टा. ३।१।१३४, ५१. नि. ६।३, ५२. नि. ६।३, ५३. नि. २।१, ५४. नि. २।१, ५५. नि. २।१, ५६. पचाद्यच्-अष्टा ३।१।१३४, ५७. दी इटीमौलौजीज आफ यास्क पृ. ८५, ५८. अचो यत्- अष्टा. ३।१।९७, ५९. अम.को. २।६।६३, ६०. नि. ६।६, ६१. नि. ६।२, ६२. नि. ३।४, ६३. ऋग्वेदकोष- पृ. ३२५, ६४. क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित्- उणा. ३।५५, ६५. स हि स्वल्पमपि पापं विपिंशति विपुष्णाति- नि.दु.वृ. ६।३, ६६. अभ्यमनवान् रोगरूपः

कंश्चित् परेभ्यो भयदाता स्यात्- नि.दु.वृ. ६।३, ६७. अष्टा. ३।३।९४, ६८. तुश्छन्दसि- अष्टा. ५।३।५९ तुरिष्टेमेयः सु- अष्टा.- ६।४।१५४, ६९. उणा. ४।१२१, ७०. अष्टा. ३।३।११४, ७१. अ.को. १।४।२३ दुरितैरपि कर्तुमात्मसात् प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत्- रघु. ८।२, ७२. ऐतिहासिकाः पुनः नासत्यौ नासिका प्रभवौ मन्यन्ते। नि.दु.वृ. ६।३, ७३. दी इटीमौलोजीज आफ यास्का पृ. १३७, ७४. धीः कर्म इति कर्मनामसु परिगणितम्- नि.दु.वृ.- ६।३, ७५. हिन्दी निरुक्त- पृ. १९६, ७६. यतो धिया प्रज्ञया वरूण एवं पुरू स्तूयते इत्युत्पत्तिः नि.दु.वृ. ६।३, ७७. पुरं शरीरं सर्वगुणसम्पन्नं दधातीतिपुरन्धिः- मही.भा. २२।२२, पुरैशरीरं रूपादिगुणसमन्वितं धारयतीतिपुरन्धिः उव्वट- २२।२२, ७८. केचित्पुनराचार्याः रेशयदारिणः इति निर्वचन्ति तेषां मते रेशयन्तं हिंसन्तं दारयन्तीति तथोक्ताः- नि.दु.वृ. ६।३, ७९. गिर्वणा देवः यस्मादेवं गीर्भिः स्तुतिभिः वनयन्ति- नि.दु.वृ. ६।३, ८०. वनस् एज ए स्टीम इन दी सैन्स आफ रीसीभर आफ प्रेजसी दी इटमौलौजीज आफ यास्का पृ. १६५, ८१. नि. ८।२, ८२. नि. २।३, ८३. असुः प्राणः पुनर्वायुः तेन समन्तात् ईरिताः माध्यमिकाः देवगणाः मेघाः इतरे च मरूदादयः- नि.दु.वृ. ६।३, ८४. द्र.हि.नि.पृ. १९९, ८५. सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये- अष्टा. ३।२।७८, ८६. चायतेरन्ने ह्रस्वश्च- उणा. ४।१९९, ८७. नि. ६।४, ८८. उणा. १।१०, ८९. नि.दु.वृ. ६।४, ९०. द्र. निघण्टु- १।११।३९ की व्याख्या, ९१. घेटइश्च- उणा. ३।१०, ९२. नि. २।१, ९३. नि.दु.वृ. ६।४, ९४. द्र. निघण्टु तथा निरुक्त- पृ. १९६, ९५. द्र. जरिता-गरिता- नि. १।३, ९६. अन्येभ्योऽपि- वा. ३।२।१०१, ९७. आतोऽनुपसर्गे- अष्टा. ३।२।३, ९८. अष्टा. ३।३।१९, पृषोदरादिः- अष्टा. ६।३।१०९, ९९. नि. २।१, ४।१, १००. नि. ९।३, १०१. निघण्टु तथा निरुक्त- पृ. १९७, १०२. परिवर्हणा परिवर्धन परिहिंसनं वा नि.दु.वृ. ६।४, १०३. निघण्टु तथा निरुक्त- पृ. १९७, १०४. अस्मिन्नहनि सूर्येण यस्माद् रसाः ग्रस्यन्ते तस्माद् घंसः अहइति- नि.दु.वृ. ६।४, १०५. अष्टा. ३।३।१९, १०६. निघण्टु तथा निरुक्त पृ. १९७, १०७. उणा. ४।१८९ ऊधसोऽनङ्- अष्टा. ५।४।१३१, १०८. स हि इलाहेतोरूदकस्यालीमानि निर्गमन विलानि संरूध्य शेते, तस्यैव वा विलेषु इलाहेतुरूदकं शेते इति इलीबिशः नि.दु.वृ. ६।४, १०९. कियदपि उदक परिमाणं धारयतीति कियेधा- नि.दु.वृ. ६।४, ११०. नि. स्कन्द-टीका. ६।४, १११. ऋ १।३१.१६,

११२. विस्तीर्णः इतश्चेतश्च सर्वतो यः प्राप्तः स विष्पितः नि.दु.वृ. ६।४, ११३. ऋग्वेद कोष- पृ. ५४२, ११४. हिन्दी निरुक्त- पृ. २०८, ११५. उदकमभिधेयम्। यतस्तत् तूर्णमाप्नोति- नि.दु.वृ. ६।४, ११६. ऋजुरपि अस्मादेव प्रसाधनार्थात् ऋ ऋजतेर्वोद्धव्यः नि.दु.वृ. ६।४, ११७. शकृता- गोमयेन इतं युक्तम् भवति- नि.दु.वृ. ६।४, ११८. शकादिभ्योऽटन्- उणा. ४।८१, ११९. नि.दु.वृ. ६।४, १२०. अणश्च- उणा. १।८, १२१. नि. ५।४, १२२. नि. ७।३, १२३. क्रू च- उणा. २।२१, १२४. इगुपधज्ञा.- अष्टा. ३।१।१३५, १२५. नि. ६।५, १२६. नि.दु.वृ. ६।५, १२७. द्र. हिन्दी निरुक्त पृ. २१२, १२८. हला. पृ. १४२ (अष्टा. ३।२।३), १२९. निघण्टु तथा निरुक्त पृ. २०१, १३०. ऋ. ८।१।२०, सा. १।३०७ आप. श्रौ. सू. ८।७।१० मान. श्रौ. सू. १।७।२।१८, १३१. ऋ. १।११७।२१, १३२. मेघ. १।४९, १३३. खर्जिपिंजादिभ्यऊरोलचौ- उणा. ४।९० (लंगेर्वृद्धिश्च)प्रज्ञाद्यण्- अष्टा. ५।४।३८, १३४. मधो अन्योन्यं भक्षणाय माधन्ति हृष्यन्तीतिवा नि.दु.वृ. ६।५, १३५. ऋतज्यजि- उणा. ४।२, १३६. शेषे- अष्टा. ४।२।९२, १३७. सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुतासामेकामिद्भ्यंहुरोगात्-ऋ. १०।५।६, १३८. स्तेयं तल्पारोहणं ब्रह्महत्याभ्रूणहत्यासुरापानं दुष्कृतस्य कर्मणः पुनःपुनः सेवां पातकेऽनृतोद्यमिति- नि. ६।५, १३९. अभि. ६।२५ (अस्मात्परं बत...), १४०. बतो बतासि यम नैव...ऋ. १०।१०।१३ अथर्व. १८।१।१५, १४१. वने न वायो न्यधायि चाकन- ऋ. १०।२९।१ अथर्व. २०।७६।१, १४२. नि.दु.वृ. ६।५, १४३. सुप आत्मनः क्यच्-अष्टा. ३।१।८, १४४. नि. ६।६, १४५. विपरीतात् कुटतेः विकटः स्यात् कुब्जीभूतइत्यर्थः नि.दु.वृ. ६।६, १४६. वामं वामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा। वामं पूषा वामं भगो वा देवः करूलती।।- ऋ. ४।३०।२४, १४७. नि. ६।६, १४८. अष्टा. ३।३।१९, १४९. नि. १।३, १५०. नि. ४।३, ६।२, ६।६, १५१. ऋ. १।५१।१४३, १५२. अष्टा. ५।२।१२३, १५३. यस्मात्ते किमपि न कुर्वन्ति देव पितृ मनुष्यादीनामुपक्रियाभिः। तस्मात्ते कीकटा उच्यन्ते। अथवा ये नास्तिका सन्तः क्रियाभिः देवतातिथिसेवारूपाभिः किम्- को लाभः इत्येवं वदन्ति ते कीकटाः अनार्याः। नि.दु.वृ. ६।६, १५४. ऋ. ३।५३।१४, १५५. उत्वादयश्च- उणा. ४।९५, १५६. स हि यस्मात् वहु संयोगात् गण्यते- नि.दु.वृ. ६।६.

अष्टम अध्याय

दैवत काण्डके निर्वचनोंका समीक्षण

निघण्टु के पंचम अध्याय को दैवत काण्ड कहा जाता है। दैवत काण्ड छ खण्डों में विभाजित है जिनमें क्रमशः ३, १३, ३६, ३२, ३६ तथा ३१ पद संकलित हैं। इन पदोंकी व्याख्या निरुक्तके क्रमशः सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश तथा द्वादश अध्यायोंमें हुई है।

निघण्टुके पंचम अध्यायके प्रथम खण्डमें मात्र अग्निसे सम्बद्ध ३ पद संकलित हैं जिनकी व्याख्या निरुक्तके सप्तम अध्यायमें हुई है। यद्यपि निरुक्तके सप्तम अध्यायके निर्वचनोंकी कुल संख्या ३७ हैं जिनमें तीन दैवत पठित हैं तथा शेष ३४ प्रसंगतः प्राप्त हैं।

निघण्टुके पंचम अध्यायके द्वितीय खण्डमें द्रविणोदा आदि १३ पद संकलित हैं जिनकी व्याख्या निरुक्तके अष्टम अध्यायमें की गयी है। निरुक्तके अष्टम अध्यायमें कुल २९ निर्वचन प्राप्त होते हैं जिनमें १३ दैवतकाण्ड पठित हैं शेष १६ निर्वचन प्रसंगतः प्राप्त हैं।

निघण्टुके पंचम अध्यायमें तृतीय खण्डमें अश्व आदि ३६ पद संकलित हैं जिनकी व्याख्या निरुक्तके नवम अध्यायमें की गयी है। निरुक्तके नवम अध्यायमें प्राप्त कुल निर्वचनोंकी संख्या ७६ हैं जिनमें ३६ दैवत काण्ड पठित तथा शेष ४० प्रसंगतः प्राप्त हैं।

निघण्टुके पंचम अध्यायके तृतीय खण्डमें अश्व आदि ३६ पद संकलित हैं जिनकी व्याख्या निरुक्तके नवम अध्यायमें की गयी है। निरुक्तके नवम अध्यायमें प्राप्त कुल निर्वचनोंकी संख्या ७६ है जिनमें ३६ दैवत काण्ड पठित तथा शेष ४० प्रसंगतः प्राप्त हैं।

निघण्टुके पंचम अध्यायके चतुर्थ खण्डमें वायु आदि २२ पद संकलित हैं जिनकी व्याख्या निरुक्तके दशम अध्यायमें की गयी है। निरुक्तके दशम अध्यायमें कुल निर्वचनोंकी संख्या ५७ है जिनमें ३२ दैवत काण्ड पठित हैं तथा शेष २५ पद प्रसंगतः प्राप्त हैं।

निघण्टु के पंचम अध्यायके पंचम खण्डमें श्येन आदि ३६ पद संकलित हैं जिनकी व्याख्या निरुक्तके एकादश अध्यायमें की गयी है। निरुक्तके एकादश अध्यायमें

कुल ५६ निर्वचन प्राप्त होते हैं जिनमें दैवत काण्ड पठित ३६ पद तथा शेष २० पद प्रसंगतः प्राप्त हैं।

निघण्टुके पंचम अध्यायके अन्तिम अर्थात् षष्ठ खण्डमें आश्विनौ आदि ३१ पद संकलित हैं जिनकी व्याख्या निरुक्तके द्वादश अध्यायमें की गयी है। निरुक्तके द्वादश अध्यायमें कुल निर्वचनोंकी संख्या ५१ हैं जिनमें ३१ पद दैवत काण्ड पठित हैं तथा शेष २० पद प्रसंगतः प्राप्त हैं।

निरुक्तके दैवत काण्डमें सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश एवं द्वादश अध्याय हैं, इन काण्डों में देवताओं के नाम प्रधान रूपमें विवेचित हैं। देवताओंका स्थानानुसार विभाजन यहां प्राप्त होता है। कुछ देवता पृथ्वी स्थानीय है, कुछ अन्तरिक्ष स्थानीय तथा कुछ द्युस्थानीय।

यास्कने निरुक्तके द्वादश अध्यायके बाद त्रयोदश एवं चतुर्दश अध्यायोंमें कुछ मन्त्रोंके ईश्वर परक अर्थोंका प्रतिपादन किया है इन्हें अतिस्तुतियोंके अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। इस प्रसंग में प्राप्त पदोंका निर्वचन भी यास्क करते हैं। इस प्रकार निरुक्तके त्रयोदश अध्यायमें कुल सात तथा चतुर्दश अध्यायमें आठ पदोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं।

दैवत काण्डकी परिसमाप्ति निरुक्तके द्वादश अध्याय तक ही हो जाती है फिर भी त्रयोदश एवं चतुर्दश अध्यायके निर्वचन देवताओं से ही किसी न किसी रूपमें सम्बद्ध हैं। अतः इन अध्यायोंके निर्वचनोंको भी इसी प्रसंगमें प्रस्तुत किया गया।

(क) निरुक्तके सप्तम अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निरुक्तके सप्तम अध्यायसे दैवत काण्डका आरम्भ होता है। निघण्टुका पंचम अध्याय दैवत काण्ड है। निघण्टुके पंचम अध्यायमें ६ खण्ड हैं वे क्रमशः निरुक्त के ७, ८, ९, १०, ११ एवं १२ अध्यायोंमें विवेचित हुए हैं।

निघण्टुके पंचम अध्यायके प्रथम खण्डमें अग्निके तीन नामोंका उल्लेख हुआ है- अग्निः, जातवेदा एवं वैश्वानर। निरुक्तका सप्तम अध्याय निर्वचनकी दृष्टिसे अग्निके इन्हीं तीनों नामोंका विवेचक है। यद्यपि इस अध्यायमें यास्क प्रतिपादित निर्वचनोंकी कुल संख्या ३७ है निघण्टु पठित दैवत काण्डके तीन नाम ही व्याख्यात हैं। इस प्रकार निरुक्तके इस अध्याय के ३४ निर्वचन प्रसंगतः प्राप्त हैं।
भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे एवं निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार सभी निर्वचन महत्त्वपूर्ण हैं।

अग्निके तीन नामोंके निर्वचनमें यास्कने विविध आधारों को अपना कर प्रचुर प्रकाश डाला है।प्रत्येक शब्दके एक से अधिक निर्वचन किए गए हैं।इस अवसर पर अन्य मतोंको भी उपस्थापित किया गया है।लगता है कि यास्कके समय में निर्वचन शास्त्रके अन्य चिन्तक भी समादृत थे।दैवत काण्ड के इन नामों के द्वारा देवताओंकी स्तुति प्रधान रूपमें की जाती है।ज्ञातव्य है कि दैवतकाण्डमें देवताओं के नामही संकलित हैं।

इस अध्याय के पदोंके निर्वचनमें यास्कने विभिन्न दृष्टियोंको अपनाया है। देवताओंके कार्य, स्वरूप, समानता आदि प्रमुख रूपसे सामने आते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे पूर्णतः उपयुक्त निर्वचनों मे- सुविदत्रम्, मन्त्राः, छन्दः, स्तोमः, यजुः, साम, गायत्री, उष्णिक्, कुब्जः, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्तिः, त्रिष्टुप्, जगती, विराड्, अग्निः, समनम्, नसतिः, हर्यति, दिव्यः, गरूत्मान्, जातवेदाः, दस्युः, जमदग्नयः, ऋग्मियम्, मातरिश्वा, घृतम्, मूर्धा, अदितयः शब्द परिगणित हैं। इन शब्दों के अनेक निर्वचनोंमें कुछ भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अपूर्ण भी हैं। ध्वन्यात्मक शैथिल्य-वाले पिपीलिका, अग्नि :, देवः, होता तथा वैश्वानरः, शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं। इन शब्दों के भी कुछ निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अपूर्ण निर्वचनों में उष्णीषम्, ककुप्, विवस्वान् तथा मिथुन शब्दोंको देखा जा सकता है। उष्णिक् एवं विराड् शब्दोंके निर्वचनमें यास्कने उपमाका सहारा लिया है। ककुप् शब्द सादृश्य पर आधारित है। दस्युः शब्दमें भी गुणसादृश्य पाया जाता है। त्रिष्टुप् एवं जगती शब्दोंके निर्वचन ऐतिहासिक महत्त्व से युक्त हैं।

छन्दके विविध नामोंके निर्वचनमें यास्क उसके स्वरूप को विशेष रूपमें सामने लाते हैं। वैदिक छन्द अक्षरों की गणना पर आधारित है। इन अक्षरोंके द्वारा नियन्त्रित सभी छन्द स्वरूप विशेष से युक्त हैं। वे कभी-कभी छन्दों का ऐतिहासिक महत्त्व तथा आध्यात्मिक महत्त्व भी अपने निर्वचनों में उपस्थापित करते हैं। छन्द नामों के अतिरिक्त अन्य शब्दोंके निर्वचन देवताओं से प्रायः सम्बद्ध हैं।

इस अध्यायके प्रत्येक निर्वचनोंका पृथक् मूल्यांकन द्रष्टव्य है :-

(१) सुविदत्रम्:-यह धनका वाचक है। निरुक्तके अनुसार सुविदत्रं धनं भवति विन्दतेर्वा एकोपसर्गात्१ अर्थात् एक उपसर्ग युक्त होकर विद्लृ लाभे धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है- सु+विद्+ त्र=सुविदत्र ददातेर्वा स्यात् द्व्युपसर्गात्१ अर्थात् दो उपसर्गोंसे युक्त दा दाने धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है-सु+वि+दा+त्र=

सुविदत्रम्। इन निर्वचनोंके ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(२) मन्त्रा :- इसका अर्थ होता है- वेद प्रयुक्त ऋचा। निरुक्तके अनुसार- मन्त्रा मननात्१ अर्थात् मनन क्रियासे निष्पन्न होनेके कारण मन्त्र कहलाया। मन्त्र शब्द में मन् ज्ञाने धातुका योग है। इसमें विचारोंका मनन होता है। आध्यात्मिक आधि दैविक एवं आधियज्ञ विचारोंके मनन से ही सम्बद्ध वैदिक ऋचाएं मंत्र कहलाए। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।२ भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसे सर्वथा संगत माना जायगा। मन्त्रका अर्थ सलाह भी होता है।३ इस अर्थमें मन्त्र शब्दकी व्युत्पत्ति मन्त्र् गुप्तपरिभाषणे धातु से घत्र्४ प्रत्यय या मन्त्र्+ अच् करने पर मानी जा सकती है। यास्क ने मन्त्र शब्दका निर्वचन वेद विहित ऋचाओं को ध्यानमें रख कर ही किया है जो सर्वथा उपयुक्त है। यास्क प्रोक्त मन् धातुसे ष्ट्रन् प्रत्यय के द्वारा भी मंत्र शब्द बनाया जा सकता है। ईश्वरादेश का ज्ञान या विचार जिससे हो उसे मंत्र कह सकते हैं।५

(३) छन्दस् :- यह पद्यबन्ध प्रक्रिया का वाचक है। निरुक्तके अनुसार छन्दांसि छादनात्१ अर्थात् आच्छादन करने के कारण छन्द कहलाया। इस शब्दमें छद् आच्छादने धातुका योग है। आच्छादन करने के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए दुर्गाचार्य ने कहा है कि मृत्यु से डर कर देवताओंने इन छन्दों से अपनेको आच्छादित किया था।१ इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार चन्द आह्लादने दीप्तौ च धातुसे असुन् प्रत्यय कर (आद्यक्षर च को छ)६ छन्दस् या छन्द् + असुन्= छन्दस् शब्द बनाया जा सकता है। छान्दोग्योपनिषद्७ एवं आरण्यक८ से भी छन्द शब्द में छद् धातुका ही संकेत प्राप्त होता है।

(४) स्तोमः :- इसका अर्थ होता है स्तोत्र। देवताओं के स्तवन में प्रयुक्त मन्त्र समुदाय स्तोम कहे जाते हैं। निरुक्तके अनुसार स्तोमः स्तवनात् अर्थात् स्तवन क्रियासे सम्बद्ध होने के कारण स्तोम कहलाया। क्योंकि इससे स्तुति की जाती है। इस शब्द में स्तु स्तुतौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार स्तु स्तुतौ धातुसे मन् प्रत्यय स्तु+ मन्९- स्तोमन् शब्द बनाया जा सकता है।

(५) यजु :- यह यजुर्वेदका वाचक है। निरुक्त के अनुसार यजुर्यजते: अर्थात् यजन क्रिया से सम्बद्ध होने के कारण यजु: कहलाता है। यजुर्वेदमें यज्ञ की प्रधानता है।१० इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें यज् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे सर्वथा संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार यज् देवपूजासंगतिकरणयजनदानेषु धातुसे उस्[११] प्रत्यय कर यजु: शब्द बनाया जा सकता है।

(६) साम :- यह सामवेदका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) साम सम्मितमृचा।१ अर्थात् यह ऋचाके तुल्य परिमाण वाला होता है। ऋचा ही उपासना भेद से साम कही जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें सम्+ मा धातुका योग है। (२) अस्तेर्वा१ अर्थात् यह शब्द अस् क्षपणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह ऋचाओंमें निक्षिप्त है। (३)स्यतेर्वा१अर्थात् यह षोऽन्तकर्मणि धातुके योगसे निष्पन्न है,क्योंकि साम उपासनात्मक अन्तकर्म है। (४) ऋचा समं मेन इति नैदाना:१ निदान सम्प्रदाय वाले नेताओं का कहना है[१२] कि इसे ऋचाके समान माना गया है। इस सम्प्रदायके अनुसार भी साम शब्दमें सम् + मन् धातुका योग है। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंके उपयुक्त हैं। प्रथम तृतीय एवं अन्तिम निर्वचन ध्वन्यात्मक महत्त्व रखते हैं। व्याकरण के अनुसार षोऽन्तकर्मणि धातुसे मनिन् प्रत्यय करने पर सामन् शब्द बनता है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जायगा।

(७) गायत्री :- यह एक छन्द भेद है। निरुक्तके अनुसार (१) गायत्री गायते: स्तुतिकर्मण:१ अर्थात् यह शब्द स्तुत्यर्थक गै धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इससे देवताओं की स्तुति की जाती है।[१३] (२) त्रिगमा वा विपरीता१ अर्थात् त्रि एवं गम् धातुको विपरीत करने पर गायत्री शब्द बनता है- त्रि-गम्-गम् + त्रि=गायत्री। त्रिगमना से तात्पर्य है कि गायत्री छन्दमें तीन चरण होते हैं। प्रत्येक चरण आठ अक्षरोंवाला होता है। गायत्री छन्दके तीन चरण ही उसके तीन गमन हैं। (३) गायतो मुखादुदपतत् इति च ब्राह्मणम्[१४] अर्थात् ब्राह्मण ग्रंथों का कहना है कि वह गाते हुए ब्रह्मा के मुख से गिर पड़ी। फलत: गायत्री कहलायी। इस ब्राह्मण ग्रन्थके निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें गै + पत् धातुका योग है। यास्कके निर्वचनोंमें ध्वन्यात्मकता एवं अर्थात्मकता पूर्ण संगत है। गै धातुसे इसका निर्वचन मानना भाषा वैज्ञानिक आधार रखता है। लौकिक विग्रहके अनुसार गायन्तं त्रायते इति गायत्री किया जा सकता है क्योंकि यह गायत्री पाठकों की रक्षा करती

है। व्याकरण के अनुसार गै+शतृ+त्रैङ् पालने+क:[१५]-गायत्र-गायत्री शब्द बनायाजा सकता है।

(८) उष्णिक् :- यह वैदिक छन्दका नाम है। निरुक्तके अनुसार (१)उष्णि गुत्स्नाता भवति१ अर्थात् यह छन्द गायत्रीकी अपेक्षा चार अधिक अक्षरोंसे उत्स्नात है, बढा हुआ है। गायत्री छन्दमें चौबीस अक्षर होते है जबकि उष्णिक् छन्दमें अठाइस अक्षर। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें उत् + स्ना धातुका योग है। (२) स्निह्यतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मण:१ अर्थात् यह शब्द इच्छार्थक ष्णिह् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह छन्द देवताओंको प्रिय लगता है। (३) उष्णीषिणीवेत्यौपमिकम्१ अर्थात् इस छन्दके बढे चार अक्षर उष्णीष तुल्य हैं। इस निर्वचनमें उपमाका आधार अपनाया गया है। फलत: उष्णीषके सादृश्यसे उष्णिक् माना गया। इसमें अर्थात्मक एवं ध्वन्यात्मक सादृश्य उपस्थापित किया गया है। यास्कके द्वितीय निर्वचनमें उपयुक्त ध्वन्यात्मकता है। डा० वर्मा इसे पापुलर इटीमौलोजी मानते है।[१६] व्याकरणके अनुसार उत् + स्निह् + किन् प्रत्यय कर उष्णिक् शब्द बनाया जा सकता है।

(९) उष्णीषम् :- यह पगड़ी (शिरस्त्राण) का वाचक है। निरुक्तके अनुसार - उष्णीष स्नायते:[१] अर्थात् यह शब्द स्नै वेष्टने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह शिरको आवेष्टित किए रहती है इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। अर्थात्मक आधार सर्वथा संगत है। यास्कके उक्त निर्वचनमें आदिस्वरागम माना जायगा। व्याकरणके अनुसार उष्ण+ ईष् गत्यादौ धातुसे क:[१७] प्रत्यय कर उष्णीष शब्द बनाया जा सकता है।

(१०) ककुप्:-यह छन्द का उपभेद है। इसे उष्णिक् छन्दका एक भेद माना गया है। निरुक्तके अनुसार ककुप् ककुभिनी भवति अर्थात् ककुप् छन्द मध्योन्नत होती है। १ इस छन्दके मध्य पादमें कुछ अधिक अक्षर होते है जैसे कुबड़े का मध्य भाग उठा होता है इसी सादृश्य के अनुसार इस छन्दको भी ककुप् कहा गया। ककुप् च कुजतेर्वा१ अर्थात् यह शब्द कुटिल अर्थ वाले कुज् धातुसे बनता है क्योंकि इसका मध्य कुब्ज होता है।कुज्=ककुप्।उब्जतेर्वा अर्थात्यह शब्द न्यग् भावार्थकउब्ज् धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि पृष्ठदेश या मध्य देश के पासका भाग कुछ नत रहता है।[१८] सभी निर्वचनों का अर्थात्मक महत्त्व है।ध्वन्यात्मक दृष्टिसे सभी निर्वचन अपूर्ण हैं। इसके निर्वचनोंमें यास्कने सादृश्य नियमका सहारा लिया है।व्याकरणके अनुसार क+ स्कुभ्+क्विप्

प्रत्यय कर ककुप् शब्द बनाया जा सकता है। (पृषोदरादित्वात् स लोपः)

(११) कुब्जः :- यह कूबड़ाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार कुब्जः कुजतेर्वा कुब्जतेर्वा[१] अर्थात् यह शब्द कुज् कौटिल्ये धातुसे या न्यग् भावार्थक उब्ज् धातुके योगसे निष्पन्न होता है- कुज्-कुब्जः, कु+ उब्ज् = कूबड़े का मध्य भाग कुटिल या नत होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार कु+ उब्ज् आर्जवे धातुसे अच्[१९] प्रत्यय कर कुब्जः शब्द बनाया जा सकता है।

(१२) अनुष्टुप् :- यह एक वैदिक छन्द है। इसमें आठ-आठ अक्षरोंके चार पाद होते हैं। कुल मिलाकर अक्षरोंकी संख्या ८ x ४=३२ होती है। निरुक्तके अनुसार अनुष्टुबनुष्टोभनात्[१] अर्थात् अनुस्तवन करनेके कारण ही अनुष्टुप् कहलाया। इस निर्वचन के अनुसार इस शब्द में अनु + स्तुभ् धातुका योग है। गायत्रीभेव त्रिपदांसतीं चतुर्थेन पादेन अनुष्टोभति[२०] अर्थात् आठ-आठ अक्षरके तीन चरणों वाली गायत्री ही चतुर्थ चरणसे अनुसरण करनेके कारण अनुष्टुप् कहलाती है[२१] ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है। यास्कके इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार सर्वथा संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। अन्तिम निर्वचन दैवत ब्राह्मण का है जो अनुष्टुप् छन्दके स्वरूप पर प्रकाश डालता है तथा अनुकरण (अनुस्तोभ) की अर्थात्मकताको स्पष्ट करता है। व्याकरणके अनुसार अनु + स्तुभ् धातु +क्विप् (षत्वम्) प्रत्यय कर अनुष्टुप् शब्द बनाया जा सकता है।

(१३) बृहती :- यह वैदिक छन्द भेद है। निरुक्तके अनुसार- बृहती परिवर्हणात्[१] अर्थात् परिवर्धन या परिवृद्धिके कारण इसका नाम वृहती है। अनुष्टुप् छन्दकी अपेक्षा इसमें चार अक्षर अधिक होते हैं। अनुष्टुप् छन्द में ८ x ४= ३२ अक्षर होते हैं जबकि वृहती छन्द में ८+ ८ + १२+ ८=३६ अक्षर होते हैं। उक्त निर्वचनके अधार पर इस शब्दमें वृह् वृद्धौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वृह् वृद्धौ धातु + शतृ+ङीप्[२२] प्रत्यय कर वृहती शब्द बनाया जा सकता है।

(१४) पंक्ति :- यह वैदिक छन्द भेद है। निरुक्तके अनुसार- पंक्तिः पंचपदा[१] अर्थात् यह छन्द पांच पदों वाला होता है। इसमें आठ-आठ अक्षरों के पांच पाद होते हैं-८ x ५=४० अक्षर।इस निर्वचन में पंच व्यक्तिकरणे धातुका योग है। पंच्-पंक्ति छन्द

अर्थोद्देश्य से यह निर्वचन अनुप्राणित है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पंच् + क्तिन्[२३] प्रत्यय कर पक्तिः शब्द बनाया जा सकता है।

(१५) त्रिष्टुप् :- यह वैदिक छन्दभेद है। निरुक्तके अनुसार- त्रिष्टुप् स्तोभति उत्तरपदा१ अर्थात् इसके उत्तर पद में स्तुभ् धातुका योग है- त्रि ₹ स्तुभ् त्रिष्टुप्। त्रि का अर्थ है तीर्णतमं छन्दः[१] अर्थात् यह कुछ छन्दों की अपेक्षा अधिक प्रस्तृत होती है। इस छन्दमें ग्यारह-ग्यारह अक्षरके चार पाद होते हैं- ११ˣ ४ ४४ अक्षर। इस प्रकार तीर्णतम होनेके कारण आदि में त्रि शब्द है। अथवा त्रिवृद्वज्रः। तस्य स्तोभतीतिवा१ अर्थात् त्रिवृत् वज्र का नाम है उसका स्तवन करनेके कारण त्रि- (वज्र)+ स्तुभ्= त्रिष्टुभ् शब्द बना। यत् त्रिस्तोभत् तत् त्रिष्टुभस्त्रिष्टुप्त्वम्१ इति विज्ञायते अर्थात् ऐसा जाना जाता है कि तीन बार स्तवन किया जाना ही त्रिष्टुप् का त्रिष्टुप्त है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे सर्वथा संगत माना जायगा। उक्त निर्वचन से छन्दगत उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। शेष निर्वचन भी प्रथम निर्वचनकी ही पुष्टि करते हैं। अन्तिम निर्वचन का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। डा. वर्मा यास्कके उपर्युक्त निर्वचनको प्रसिद्ध निर्वचनोंमें स्थान देते हैं।[२४] व्याकरणके अनुसार त्रि+ स्तुभ् जडी करणे + क्विप् (षत्वम्) कर त्रिष्टुप् शब्द बनाया जा सकता है।

(१६) जगती :- यह एक वैदिक छन्द भेद है। निरुक्तके अनुसार- जगती गततमं छन्दः अर्थात् यह सबसे अधिक गया हुआ, बढ़ा हुआ छन्द होता है। इस छन्दमें बारह-बारह अक्षरोंके चार पाद होते हैं १२x४=४८ अक्षर। वैदिक छन्दोंमें यह सबसे बड़ा छन्द है। इस निर्वचनके अनुसार इसमें गम् धातुका योग है। जलचरगति अर्थात् जलमें होने वाली तरंगकी भांति इसकी गति होती है गम् + गति ही जगती हो गया है। जलतरंगकी गति वाला सबसे बड़ा बढ़ा छन्द ही जगती है। जगत्यमानोऽसृजत् इति च ब्राह्मणम्[३५] अर्थात् ब्रह्मा ने इसे क्षीणहर्षके समय बनाया इसलिए इसका नाम जगती हुआ ऐसा दैवत ब्राह्मणका वचन है। यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। अन्तिम निर्वचन ब्राह्मण ग्रन्थका है जो ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार गम् +द्वित्व+ क्विप्-मुक्=जगत्+ ङीप्- जगती शब्द बनाया जा सकता है।[२६]

(१७) विराड् :- यह वैदिक छन्दका नाम है। निरुक्तके अनुसार विराड्विराजः

नाद्वा[१] अर्थात् यह शब्द वि+ राजृ दीप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह विशेष रूपमें सुशोभित होता है। विराधानाद्वा[१] अर्थात् यह शब्द वि+ राध् वृद्धौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह दूसरे छन्दों की अपेक्षा विगत ऋद्धि वाला होता है।[२७] विप्रापणाद्वा१ अर्थात् इस शब्दमें वि + प्र + आप् धातुका योग है क्योंकि इसमें विशेष की प्राप्ति होती है। विराजनात्सम्पूर्णाक्षरा[१] अर्थात् यह शब्द वि + राज् धातुसे सम्पूर्ण अक्षरोंकी उपस्थिति से बनता है। विराधनादूनाक्षरा[१] अर्थात् वि + राध् धातुसे कम अक्षरों वाला। विप्रापणादधिकाक्षरावा[१] अर्थात् वि + प्र + आप् से अधिक अक्षर वाला यह विराड् है। तात्पर्य है कि सम्पूर्ण अक्षरोंके रहने पर वि+ राज् से कम अक्षरों के रहने पर वि + राध् धातुसे तथा अधिक अक्षरोंके रहने पर वि + प्र + आप् धातुसे इसका निर्वचन माना गया है। पिपीलिकमध्येत्यौपमिकम्[१] अर्थात् उपमा की दृष्टिसे इसे पिपीलिक मध्या कहते हैं।[२८] इसके बीचके अक्षर पिपीलिक मध्य भागके समान है। वि + राजृ से विराड् शब्दका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्व रखता है। इसे भाषा विज्ञानके अनुसार संगत माना जायगा। अन्तिम निर्वचन तुलना पर आधारित है। शेष निर्वचनोंके अर्थात्मक महत्त्व हैं। उपर्युक्त निर्वचनोंसे उक्त छन्दका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। व्याकरणके अनुसार वि+राज् +क्विप् प्रत्यय कर विराड् शब्द बनाया जा सकता है।[२९] वैदिक छन्दके किसी एक पादमें दो वर्णों की कमी वाले छन्द विराज् के नामसे अभिहित होते हैं।

(१८) पिपीलिका :- इसका अर्थ होता है चींटी। निरुक्तके अनुसार पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मण:[१] अर्थात् पिपीलिका शब्द पेल् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह गतियुक्त होती है। इस निर्वचनमें स्वरगत औदासिन्य है। ध्वन्यात्मकताकी संगति आंशिक है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार पील् प्रतिष्टम्भे धातुसे घञ्[३०] स्वार्थेकन्[३१] + टाप् = पिपीलिका शब्द बनाया जा सकता है।

(१९) अग्नि :- यह आगका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) अग्रणीर्भवति५ अर्थात् यह सभी अच्छे कर्मोंमें अग्रणी होती है। इसके अनुसार अग्नि: शब्दमें अग्र + नी धातुका योग है- अग्र+नी= अग्नि:।(२) अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते[३२] अर्थात् यज्ञोंमें प्रथमत: इसीको ले जाया जाता है। अग्न्याधान यज्ञका प्रधान एवं प्रथम कर्म है। इसके अनुसार भी इस शब्दमें अग्र+नी धातुका योग है- अग्र+नी= अग्नि:। (३)अंगं नयति सन्नममान:[३२] अर्थात् अपनेमें सम्यक् नवे हुए को अपना अंग बनाती है।अग्निमें डाला गया हविष् भी अग्नि बन जाता है। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें अंग+नी धातुका योग है-अंग

+ नी=अग्नि:। यास्कके उपर्युक्त तीनों निर्वचन अथात्मक आधारसे तो युक्त हैं लेकिन ध्वन्यात्मक आधारसे उपयुक्त नहीं है। अग्नि शब्दके निर्वचन क्रममें यास्क कुछ आचार्योंके तत्सम्बन्धी मतोंका भी उल्लेख करते हैं- अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्टीवि: नक्नोपयति न स्नेहयति[३२] अर्थात् आचार्य स्थौलाष्टीवि के अनुसार अग्नि अक्नोपन होती है यह स्निग्ध नहीं करती रसोंको सुखाकर रूक्ष कर देती है। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें न - अ+ क्न = ग्न =अग्नि:। आचार्य शाकपूणि: अग्नि शब्दको तीन आख्यातोंसे निष्पन्न मानते हैं- त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणि:। इतात् अक्तादग्धाद्वा नीतात्। स खल्वेतेरकारमादते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नी: पर:।[३३] अर्थात् इण् गतौ धातुसे अकार अंज् या दह् भष्मीकरणे धातुसे दकार तथा नीञ् धातुसे नी लेकर अग्नि बना अ+ग् + नि: अग्नि: प्रत्येक अक्षर में धातुओंका योग निर्वचनकी सूक्ष्मताका परिचायक है। कई धातुओंके योगसे शब्दका निर्वचन वृहदारण्यकोपनिष्द् में भी प्राप्त होता है।[३३] आचार्य सायण ने इसकी व्युत्पत्ति अगि गतौ धातुसे नि प्रत्यय जोड़ कर की है[३४] यह भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे सर्वथा संगत है। व्याकरणके अनुसार भी अगि गतौ धातुसे नि प्रत्यय कर अग्नि: शब्द बनाया जा सकता है।

(२०) देव :- इसका अर्थ होता है देवता। निरुक्तके अनुसार १ देवो दानाद्वा[३२] अर्थात् यह शब्द दा दाने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यजमानोंको अभीष्ट पदार्थ देते हैं या यजमान भी उन्हें हविष् आदि प्रदान करते हैं।[३५] (२) दीपनाद्वा अर्थात् इस शब्दमें दीप् दीप्तौ धातुका योग है क्योंकि तेजोमय होनेके कारण वे प्रकाशित करते है।[३६] (३) द्योतनाद्वा[३२] अर्थात् इस शब्दमें द्युत् दीप्तौ धातुका योग है क्योंकि वे स्वयं प्रकाशित होते हैं। ४- द्युस्थानो भवतीतिवा[३२] धु स्थानमें होनेके कारण देव कहलाते हैं सूर्यादि देवताकी उपस्थिति आकाशमें होनेके कारण द्यु स्थानीय देव कहलाया। यास्कके उपर्युक्त निर्वचनोंमें दा- देव, दीप्-देव, द्युत्-देव तथा द्यु स्थान से देव माना गया है। ये सभी निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। ध्वन्यात्मकता की दृष्टिसे ये निर्वचन अपूर्ण हैं। यास्कके निर्वचनमें तीन धातुओंकी कल्पना अर्थात्मक संगतिके लिए ही प्राप्त हैं। आचार्य सायण देव शब्दमें दिव् धातुका योग मानते हैं।[३७] व्याकरणके अनुसार दिव् धातुसे अच् प्रत्यय कर देव शब्द बनाया जा सकता है।[३८] दिव् धातुसे देव शब्द मानना भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी संगत है। पाणिनीय धातु पाठमें दिव् धातुके क्रीड़ा, विजिगीषा व्यवहार, प्रकाश, प्रशंसा, आनन्द, मद, स्वप्न, कान्ति, गति आदि अर्थ होते हैं।[३९]

इन अर्थोंकी संगति देव शब्द में प्राय: देखी जाती है।[४०]

(२१) होता :- इसका अर्थ होता है बुलाने वाला। निरुक्तके अनुसार होतारं ह्वातारम्[३२] अर्थात् होता ह्वाता होता है। आवाहन करने वाला ह्वाता या होता कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च धातुका योग है। यास्क उक्त प्रसंग में आचार्य और्णवाभके मतका भी उल्लेख करते हैं- जुह्वेवेहोतेत्यौर्णवाभ:[३२] अर्थात् होता शब्द में हु दानादनयो: धातुका योग है। इसके अनुसार इसका अर्थ होता है यज्ञ करने वाला, हवन करने वाला या खाने वाला या देने वाला। यास्कका निर्वचनात्मक संकेत ध्वन्यात्मक औदासिन्य से युक्त है। अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त है।[४१] और्णवाभ का निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सर्वथा उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार हु धातुसे तृच्[४२] प्रत्यय कर होतृ-होता शब्द बनाया जा सकता है। डा.वर्मा इसे लोकप्रिय निर्वचन मानते हैं। ह्वेञ् धातुसे इसकी व्युत्पत्ति अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। तैतिरीय ब्राह्मण तथा गोपथ ब्राह्मण में भी इसका निर्वचन ह्वेञ् धातुसे ही माना गया है।[४३]

(२२) समनम् :- इसका अर्थ होता है समान मन वाला। निरुक्तके अनुसार समनं समननाद्वा[३२] अर्थात् समान मनन करनेके कारण समनम् कहलाया। इसके अनुसार इस शब्दमें सम् + मन् मनने धातुका या सम् + अन् धातुका योग है। स समान का वाचक है तथा मन् धातु। सम्माननाद्वा[३२] अर्थात् समान मान करने के कारण समनम् कहलाया। इसके अनुसार इस शब्दमें सम्+मान् पूजायां धातुका योग है-सम्-मान्-सम्मान-समनम्। दुर्गाचार्य ने समनस: का अर्थ समानमनस: किया है।[४४] प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है।अन्तिम निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है।

(२३) नसति :- इसका अर्थ होता है प्राप्त करना। निरुक्तके अनुसार -नसति-राप्नोतिकर्मा वा अर्थात् नसति: शब्द प्राप्त कर्मा है। यह नस् प्राप्तौ धातुके योग से निष्पन्न होता है। नमतिकर्मा वा[३२] अर्थात् नसति शब्द नमन अर्थवाला नस् धातुके योग से निष्पन्न होता है। इन निर्वचनों में मात्र अर्थ ही स्पष्ट किया गया है धातुका स्पष्ट निर्देश नहीं प्राप्त होता। नस् धातुसे इसकी व्युत्पत्ति मानने में ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।

(२४) दिव्य :- इसका अर्थ होता है द्यु लोकवासी। निरुक्तके अनुसार- दिव्यो दिविज:[३२] अर्थात् दिव्य शब्द दिविज: का वाचक है। दिव् से दिव्य शब्द को निष्पन्न

दिविज:[३२] अर्थात् दिव्य शब्द दिविज: का वाचक है। दिव् से दिव्य शब्द को निष्पन्न माना गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। दिव्य शब्दमें य कृदन्त प्रत्यय है जो निवास अर्थ का द्योतक है। व्याकरणके अनुसार दिवि भवम्- दिव्यम् दिव् दिविज:[३२] अर्थात् दिव्य शब्द दिविज: का वाचक है। दिव् से दिव्य शब्द को निष्पन्न माना गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।दिव्य शब्दमें य कृदन्त प्रत्यय है जो निवास अर्थ का द्योतक है। व्याकरणके अनुसार दिवि भवम्- दिव्यम् दिव् + यत् कर बनाया जा सकता है।

(२५) हर्यति :- इसका अर्थ होता है बार-बार प्राप्त करने की इच्छा करता है। निरुक्तके अनुसार- हर्यति: प्रेप्साकर्मा विहर्यतीति[३२] अर्थात् बार-बार प्राप्त करने की अभिलाषा करना अर्थ वाले हर्य् धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है- हर्य+ तिप- हर्यति। इसके अर्थमें यास्क विहर्य्यति[४५] या अभिहर्यति[४६] देते हैं जिसका हर्य्यति से पूर्ण सम्बन्ध है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(२६) गरूत्मान् :- इसका अर्थ होता है स्तुति से युक्त। निरुक्तके अनुसार- गरूत्मान् गरणवान्[३२] अर्थात् यह शब्द गृ निगरणे शब्दे च धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह स्तुति सम्पन्न होता है। गुर्वात्मा महात्मेति वा[३२] अर्थात् गुरू आत्मा वाला या महात्मा को गरूत्मान् कहा जाता है- गृ- गरूत् + मतुप् =गरूत्मान्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके नुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार गरूत् + मतुप्=गरूत्मन्-गरूत्मान् बनाया जा सकता है।

(२७) जातवेदस् :- यह अग्निका वाचक है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन प्राप्त होते हैं- १- जातानि वेद[४७] अर्थात् वह अग्नि सभी उत्पन्न वस्तुओं को जानती है।[४८] इसके अनुसार इस शब्दमें जात + विद् ज्ञाने धातुका योग है। २- जातानि वैनं विदु:[४७] अर्थात् जगत् की सभी उत्पन्न वस्तुएं इनको जानती हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें जात + विद् विचारणे धातुका योग है। ३- जाते जाते विद्यते इति वा[४७] अर्थात् यह प्रत्येक उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान है।[४९] इसके अनुसार इस शब्दमें जात + विद् सतायाम् धातुका योग है। ४- जातवित्तोवाजातधन:[४७] अर्थात् इससे धन उत्पन्न होता है।[५०] इसके अनुसार जातवेदस् शब्दमें जात+ विदलृ लाभे धातुका योग है। ५- जात विद्यो वा जात प्रज्ञान:[४७] अर्थात् यह प्रकृतिसे ही ज्ञानवान् या प्रकाशवान है। इसके अनुसार इस शब्दमें जात+ विद् ज्ञाने धातुका योग है।

उपर्युक्त सभी निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। अर्थोपलब्धि के लिए यास्क ने विभिन्न अर्थ वाले एक ही धातु से कई निर्वचनों को प्रस्तुत किया है। निर्वचन क्रम में वे ब्राह्मण ग्रन्थके निर्वचन का उल्लेख करते हैं- यत्तज्जातः पशूनविन्दत इति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम् इति ब्राह्मणम्[५०] अर्थात् उत्पन्न होते ही उसने पशुओं को प्राप्त किया। इसके अनुसार भी इस शब्दमें जन्-जात् + विद् धातुका योग है। विद्युत् तथा सूर्य भी जातवेदस् हैं। इसका स्पष्टीकरण यास्क निरुक्त में कर देते हैं।[५२] निर्वचन साम्य है। व्याकरणके अनुसार जात + विद् + असुन् प्रत्यय कर जातवेदस् शब्द बनाया जा सकता है।[५३]

(२८) वैश्वानर :- वैश्वानर का अर्थ अग्नि होता है। निरुक्तके अनुसार - (१) विश्वान्नयति[५४] अर्थात् सभी व्यक्तियोंको (परलोक) ले जाता है। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें विश्व +नर शब्द खण्ड है। विश्वनर ही वैश्वानर हो गया है। (२) विश्व एनं नरानयन्तीति वा[५४] अर्थात् सभी लोग इसे ले जाते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें विश्व +नरका योग है। (३) अपि वा विश्वानर एव स्यात् प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि। तस्य वैश्वानरः[५४] अर्थात् सबोंमें व्याप्त रहने वाला विश्वानर तथा उसमें स्वार्थ तद्धित अण् होनेके कारण वैश्वानर कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें विश्वान् +अर= विश्वानर + अण्= वैश्वानरः। उपर्युक्त सभी निर्वचन अर्थात्मक आधार से युक्त हैं। विश्व + नर से वैश्वानर मानने में ध्वन्यात्मक संगति भी है। प्रथम एवं द्वितीय निर्वचनमें नी धातुकी संगति अर्थात्मक महत्त्वके लिए है। तृतीय निर्वचनमें विश्वान् ऋ + अर् प्राप्त है फलतः विश्वान् +अर् = विश्वानर=वैश्वानर (अण्)। यह तद्धित अण् प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न है। दुर्गाचार्य वैश्वानर को विश्वानर का अपत्य मानते हैं इनके अनुसार विश्वानर से अपत्य अर्थमें प्रत्यय हुआ है।[५५] व्याकरणके अनुसार- विश्वे नरा अस्य इति विश्वानरः, विश्वानरस्यापत्यम् वैश्वानरः- विश्वानर + अण् = वैश्वानरः माना जायगा।[५६] वैश्वानर इन्द्र, आकाश, आदित्य, वायु, जल, पृथ्वी आदि का भी वाचक है।[५४]

(३४) मातरिश्वा :- इसका अर्थ होता है वायु । निरुक्त के अनुसार मातरिश्वा वायुः मातरि अन्तरिक्षे श्वसितिः[५९] अर्थात् वह अन्तरिक्ष में सांस लेता है। इसके अनुसार मातरि + श्वस् प्राण ने धातु के योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है। मातरि आशुं अनितीतिवा[५९] अर्थात् अन्तरिक्ष में वह शीघ्र गमन करता है। इसके अनुसार इस शब्द में मातरि + आशु + अन् धातु का योग है । प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त

है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार - मातरि अन्तरिक्षे श्वयति संचरतीति मातरिश्वा - मातरि+श्वि गति वृद्धयो :से निपातनके द्वारा मातरिश्वा की सिद्धि की जा सकती है।[६१]

(३५) मूर्धा:- यह मस्तकका वाचक है।[६२] **निरुक्तके** अनुसार - मूर्तमस्मिन्धीयते[५९] अर्थात् इसमें शरीर धारण किया जाता है। इस उतमांगके सहारे ही शरीर अवस्थित है। इसके अनुसार मूर्धा में मूर्त +धा धातुका योग है मूर्त मुर्च्छ मोहसमुच्छाययो :धातुसे क्त प्रत्यय करने पर निष्पन्न हो जाता है तथा धा धारणार्थक धातु है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। मूर्त + धा=मूर्धा में मध्यम वर्ण लोप हो गया है जो निर्वचन प्रक्रियाके अनुरूप है। व्याकरणके अनुसार मुह् वैचित्ये धातुसे कन् प्रत्यय कर मूर्धा शब्द बनाया जा सकता है।[६३]

(३६) आदितेय :- इसका अर्थ होता है सूर्य। निरुक्तके अनुसार - आदितेयम् अदिते: पुत्रम्[५९] अर्थात् अदितिके पुत्रको आदितेय कहा जाता है। यह तद्धितान्त शब्द है। इसका आधार ऐतिहासिक है।[६४] ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे यह उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। अदिति + ढक् - ऐय =आदितेयमें भाषा विज्ञान की दृष्टिसे अपश्रुति मानी जायगी। व्याकरणके अनुसार अदिति + ढक् प्रत्यय कर आदितेय शब्द बनाया जा सकता है।[६५]

(३७) मिथुनौ :- यह युगल या युग्मका वाचक है। निरुक्त के अनुसार मिनोति: श्रयतिकर्मा थु इति नामकरण: थकारो वा नयति पर: वनिर्वा[५९] अर्थात् यह शब्द आश्रय ग्रहण करना अर्थ वाले मि धातुसे थु या थ प्रत्यय कर बनाया जाता है जिसके उतर पद में नी या वन् धातुका योग है (१) मि+ थु नी - न = मिथुन। (२) मि+ थ + वन् - उन् (सम्प्रसारण)= मिथुन समाश्रितावन्योन्यं नयत: वनु तो वा[५९] अर्थात् मिथुन युगल आश्रित होकर एक दूसरे को ले चलते है ये आपस में मिले रहते हैं। प्रथम अर्थ नी प्रापणे धातु के योग का परिणाम है। (मि+ थु + नी= मिथुन) द्वितीय अर्थ वन् शब्दे सम्भक्तौ च धातु के योगका परिणाम है (मि + थ + वन् उन् = मिथुन)। मनुष्य मिथुनावप्येतस्मादेव। मथन्तावन्योन्यं वनुत इति वा[५९] अर्थात् मनुष्य का मिथुन शब्द भी इन्हीं निर्वचनों से बनता है क्योंकि वे एक दूसरे से मिलते है तथा एक दूसरे को आदर करते हैं। इस प्रकार मनुष्य जोड़ा वाचक मिथुन शब्द मिथ् मेधाहिंसयो: तथा वन शब्दे सम्भक्तौ च धातुओं के योग से निष्पन्न होता है मिथ् + वन् - उन्= मिथुन। यह निर्वचन अस्पष्ट है इसका

ध्वन्यात्मक आधार किंचित् शिथिल है। दो धातुओंके मध्यमे भी प्रत्यय की कल्पना की गयी है। अर्थात्मक आधार इसका पूर्ण उपयुक्त है। अर्थोपलब्धिके लिए ही यास्क को अनेक धातुओं की कल्पना करती पड़ी है। व्याकरणके अनुसार मिथ् धातुसे उनन् प्रत्यय कर मिथुन शब्द बनाया जा सकता है।[६६]

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि० ७।३, २. दी इटमोलोजीज ऑफ यास्क, पृ. ५०, ३. मन्त्रोवेद विशेष स्याद्देवादीनां च साधने। गुह्यवादेडपि च पुमान्...।। मेदिनी.१२८।७४-७५, ४. अष्टा. ३।३।१८, १९, ५. मन्यते ज्ञायते विचार्यते वा ईश्वरादेशः अनेन इति मन्त्रः, ६. चन्देरादेश्च छः- उणा. ४।२१९, ७. छान्दो. १।४, ८. ऐ.आ. २।५, ९. अर्तिस्तु सु- उणा. १।१४०, १०. तेन हि विशेषत इज्येत- नि.दु.वृ. ७।३, ११. उणा. २।११७, १२. साम आदि शब्दोंके मूलान्वेषक नैदान कहलाते हैं। निदान ग्रन्थ विशेष का अध्येता भी नैदान कहलाता है। (निदानमधीते वेत्तिवा नैदानः), १३. तया हि गीयन्ते-स्तूयन्ते देवताः नि.दु.वृ. ७।३, १४. नि. ७।३, देवता ब्रा. ३।३, १५. आतोऽनुपसर्गे- अष्टा. ३।२।३, १६. दी इटीमोलोजींज आफ यास्क, पृ. १०२, १७. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः-अष्टा. ३।१।१३५ शकन्ध्वादि- वा. ६।१।९४, १८. नि.दु.वृ. ७।३, १९. अष्टा. ३।१।१३४, २०. नि. ७।३ दैवत ब्रा. ३।४, २१. गायत्रा त्रिभिरष्टाक्षरैः समाप्यते पुनरपरः चतुर्थः पादो यैन तामेव अनुष्टोभति तस्मादनुष्टुप्- नि.दु.वृ. ७।३, २२. उणा. २।८४, अष्टा. ४।१।६, २३. अष्टा. ३।३।९४, २४. दी इटीमोलोजीज आफ यास्क, पृ. १०२, २५. देव. ब्रा. ३, २६. उगितश्च- अष्टा. ४।१।६, ६।४।४०, ६।१।७१, २७. विराधनादूणाक्षरा वैकल्याद्विराध्यन्तीव हि सा- नि.दु.वृ. ७।३, २८. मध्यात्पाक्षरपादा या सापि पिपीलिका मध्येव भवति पिपीलिकास्वरूपा- नि.दु.वृ. ७।३, २९. सत्सूद्विष. अष्टा. ३।२।६१, ३०. अष्टा. ३।३।१९, ३१. स्वार्थे कन्- अष्टा. ५।४।५, ३२. नि. ७।४, ३३. त्र्यक्षरं हृदयमिति हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददत्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एनं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एनं वेद। वृह. उ. ५।३।१ पृ. ११८८, ३४. ऋ. १।१।१ द्र. सायण भाष्य, ३५. ददाति ह्यसौ ऐश्वर्याणि- नि.दु.वृ. ३सप्तम अध्याय यादृगिव वै देवेभ्यः करोति, तादृगिवास्मै देवाः कुर्वन्ति- ऐ.ब्रा. ३।६, ३६. दीप्यति ह्यसौ तेजो मयत्वात्- नि.दु.वृ. ७।४, ३७. ऋ. १।१।१-द्र. (सायण भाष्य), ३८. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच

:- अष्टा ३।१।१३४, ३९. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहार्यद्युति स्तुतिमोदमदस्वप्न कान्ति गतिषु द्र. सिद्धा. कौ. दिवा.-१, ४०. दीव्यते क्रीडते यस्मात् द्योतते रोचते दिवि। तस्मात् देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैव सः।। (श्रुत), ४१. तदाहुर्यदन्यो जुहोत्यथ योऽनुचाऽऽह यजति च कस्मात्तं होतेत्याचक्षत इति। यद्भाव स तन्न यथाभाजनं देवता अमुमावहामुमावहे -त्यावाहयति तदेव होतु र्होतृत्वं होता भवति। ऐत.ब्रा. १।२, ४२. अष्टा ३।१।१९३३, ६।४।११, ४३. तै.ब्रा. ३।३२।१०, गो.ब्रा. १।१।१३, ४४. एकस्मिन् भर्तरि यासां मनांसि वर्तन्ते ताः समनसः- नि.दु.वृ., ४५. निरुक्त के कुछ संस्करणों में विहम्यति पाठ मिलता है। इसके लिए द्रष्टव्य- निरुक्तम्- (म.म. छज्जूराम शास्त्री), ४६. द्र. हिन्दी निरुक्त- (प्रो. उमाशंकर शर्मा ऋषि), ४७. नि. ७।५, ४८. न हि तदस्तिजातमस्मिन् लोके यदसौ न वेद सर्वज्ञ इत्यर्थः नि.दु.वृ. ७।५, ४९. न तदस्ति जातं यस्योदरे जठरानलरूपेणासौ नास्ति नि.दु.वृ. ७।५, ५०. ऋ. १।१।१३, धनमिच्छेत् हुताशनात् लो.श्रु., ५१. नि. ७।५, मै.सं. १।८।२, ५२. उदुत्यं जातवेदसम् सूर्यमुद्धहन्तीत्यत्र जातवेदाः सूर्यः। यद्यपि मन्त्रदर्शनमविशिष्टं त्रयाणामपि ज्योतिषां जातवेदस्त्वे, तथापि पार्थिवोऽग्निरितरया प्रसिद्धया विशेष्यते जातवेदस्त्वं हि यथा प्रसिद्धमस्मिन्नग्नौ न तथा वैद्युते न तथा सूर्ये- नि.दु.वृ. ७।५, ५३. उणा. ४।१८९, ५४. नि. ७।६, ५५. विश्वानि ह्यसौ भूतानि प्रति ऋतः प्रविष्टः इत्यर्थः तस्य विश्वानरस्यापत्यं वैश्वानरः- नि.दु.वृ. ७।६, ५६. नरं संज्ञायाम्- अष्टा ६।३।१२९, ऋष्यण- अष्टा ४।१।११४, ५७. यजिमनिशुन्धिदसि जनिभ्यो युच्- उणा. ३।२०, ५८. दस्युः प्रत्यर्थिचौरयोः मेदिनी को. ११५।३०, ५९. नि. ७।७, ६०. अष्टा. ५।२।९४, ६१. श्वनुक्षन्- उणा. १।१५७, ६२. अमरकोष २।६।९५, ६३. श्वन् उक्षन् पूषन्. उणा. १।१५७ (मुह्यन्यस्मिन्नाहते मूर्धा मुहेरूपधाया दीर्घो धोऽन्तादेशो रमागमश्च (सि.कौ.), ६४. अदितिदेवमाता - नि.दु.वृ. २।४, ६५. स्त्रीभ्यो ढक्- अष्टा ४।१।१२०, ६६. क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित्- उणा. ३।५५.

(ख) निरुक्तके अष्टम अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निघुण्टके पंचम अध्यायमें देवताओंके नाम संकलित हैं। परिणामतः इसे दैवत काण्ड कहा गया है। इन नामोंको छ खण्डोंमें पढ़ा गया है। द्वितीय खण्डमें१३नाम हैं। ये सभी नाम एक दूसरेके पर्याय नहीं बल्कि स्वतंत्र हैं। इन नामोंके द्वारा देवताओंकी स्तुति करना यास्कका मूल उद्देश्य है। देवताओंकी स्तुतिमें प्रयुक्त होनेके कारणये काण्ड दैवत काण्ड कहलाते हैं।यास्कने निघण्टु पठित पंचम अध्यायके द्वितीय खण्डमें प्राप्त१३नामोंका निर्वचन तो प्रस्तुत किया ही है प्रसंगतः प्राप्त१६अतिरिक्त शब्दोंके निर्वचन भी प्रस्तुत किये हैं।

अष्टम अध्यायमें कुल २९ निर्वचन प्राप्त होते है जिनमें १३ निघण्टु पठित तथा १६ प्रसंगतः प्राप्त हैं। सभी निर्वचन प्रक्रियाकी दृष्टिसे तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त निर्वचनोंमें द्रविणोदा धिष्ण्यः, वनस्पतिः, वनम्, आप्रियः, इध्मः, नराशंसः, वर्हिः, वरीयः, स्योनम्, उषासानक्ता, नक्ता, शुक्रम्, पेशः, भारती, आविः, चारुः, जिह्म, रजिष्ठम् तथा स्वाहा उल्लेखनीय है। ईलः, तथा उरुः शब्दमें ध्वन्यात्मक शैथिल्य है। द्रविणसः, तनूनपात्, यह्व, वितरम्, द्वारः और रजिष्ठम् शब्द भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अपूर्ण हैं। वनस्पतिः तथा इध्म शब्दोंके निर्वचन आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित हैं। तनूनपात् शब्दके निर्वचनमें सम्बन्धात्मक आधार अपनाया गया है।उरुः एवंनक्ता शब्दके निर्वचन दृश्यात्मक आधार पर आधृत हैं।शुक्र शब्दमें सादृश्य की परिकल्पनाकी गयी है।

इस अध्यायके प्रत्येक निर्वचनोंका पृथक् मूल्यांकन द्रष्टव्य हैः-

(१) द्रविणोदा :- इसका अर्थ होता है - धनदाता या बलदाता। निरुक्तके अनुसार - धनं द्रविणमुच्यते यदेनमभिद्रवन्ति[१] अर्थात् धनको द्रविण कहा जाता है। इस धन की ओर लोग दौड़ते हैं। इसके अनुसार द्रविण शब्दमें द्रु गतौ धातुका योग है। यदेनेनाभिद्रवन्ति[१] अर्थात् इससे युक्त होकर लोग गतियुक्त होते हैं। इसके अनुसार भी द्रविण शब्दमें द्रु गतौ धातुका योग है। द्रविणम् - तस्य दाता द्रविणोदाः[१] अर्थात् द्रविण (धन या वल)+दाता= द्रविण -दाता -(दा) -द्रविणोदा। इसमें द्रविण दा धातुका योग है। यह निर्वचन प्रक्रिया पर आधारित है। क्रौष्टुकिः के अनुसार द्रविणोदाका अर्थ इन्द्र है।[२] आचार्य शाकपूणिः द्रविणोदा अग्निको कहते है।[३] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार द्रु धातुसे इनन्[४] प्रत्यय कर द्रविण +दा + क्विप् प्रत्यय कर द्रविणोदा शब्द बनाया जा सकता है। निरुक्तमें ही द्रविणोदस् को ऋत्विज् कहा गया है।[५]

(२) द्रविणसः :- इसका अर्थ होता है धन चाहने वाले या धनसे। यह प्रथमान्त बहुवचन है या पंचम्यन्त सान्त। निरुक्तके अनुसार - द्रविणस इति द्रविणसादिन इति वा[१] अर्थात् द्रविण (धन) की प्राप्तिके लिए जो कष्ट उठाते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें द्रविण+सादिनः का सः= द्रविण+ सः= द्रविणसः है। द्रविणसानिनः इति वा[१] अर्थात् धनके या हविः के विभाजन करने वाले होते है। इसके अनुसार द्रविण+षण् सम्भक्तौ धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न माना जायगा- द्रविण+षण्=द्रविणसः। द्रविणसस्तस्मात् पिवत्विति वा[१] अर्थात् द्रविणतः पंचम्यन्त का सान्त रूप है। जिसका अर्थ होता है सोमसे (सोमसे अपना अंश लेकर पान करें)। यहां द्रविण सोमका वाचक है। उपर्युक्त सभी निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा।

(३) धिषणा :- धिषणा वाणीका वाचक है। धिषणासे भावार्थमें यत् प्रत्यय कर धिषण्यः या धिष्ण्यः बनाया जा सकता है। धिषणाभवः= बुद्धिसे उत्पन्न धिषण्यः या धिष्ण्यः कहलाता है। निरुक्तके अनुसार - धिषण्यो धिषणा भवः[१] अर्थात् धिषणासे यत् प्रत्यय होकर ही धिषण्य हुआ इसके अनुसार इसका अर्थ होगा बुद्धि से उत्पन्न। धिषणा वाग्धिषेर्दधात्यर्थे[१] अर्थात् धिषणा वाक् को कहते हैं यह धारणार्थक धिष् धातुके योगसे निष्पन्न होती है क्योंकि वाणी धारणकी जाती है या यह अर्थको धारण करती है।[७] धी सादिनीतिवा[१] अर्थात् यह वाणी ज्ञानको प्राप्त कराती है। इसके अनुसार इस शब्दमें धीःसद् धातुका योग है -धी+सदना=धिषणा। धी सानिनीतिवा[१] अर्थात् वह बाणी ज्ञानको देने वाली है। इसके अनुसार धिषणा शब्दमें धी+सन् सम्भक्तौ धातुका योग है - धी+सन्ना=धिषणा। प्रथम निर्वचन धिष् धातुसे माना गया है। यह धातुज सिद्धान्त पर आधारित है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। द्वितीय एवं तृतीय निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। लौकिक संस्कृतमें धिषणा शब्दका अर्थ बुद्धि होता है जो वैदिक शब्दसे ही विकसित है। व्याकरणके अनुसार ञिधृषा प्रागल्भ्ये धातुसे युच्[९] प्रत्यय कर इसे निष्पन्न किया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें धिष्णयम् का प्रयोग स्थान, गृह, नक्षत्र, अग्नि, शक्ति आदि अर्थ में होता है।[१०]

(४) वनस्पति :- यह अनेकार्थक है। विभिन्न आचार्यो के मत से इसके विभिन्न अर्थ प्राप्त होते हैं। निरुक्त के अनुसार - वनस्पत इत्येन माहैष हि वनानां पाता वा पालयिता वा[१] अर्थात् अग्नि को ही वनस्पति कहा गया है क्योंकि अग्नि वनों एवं जल के रक्षक हैं या पालन करने वाले हैं। यह निर्वचन

ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे भी इसे संगत माना जायगा। अगर अग्निका ताप न हो तो वन पीले पड़ जाएँगे तथा जल जम जायगा।[११] आचार्य यास्कने निरुक्तमें ही वनस्पति को औषधि भी स्वीकार किया है। इनका कहना है कि अग्नि वनस्पति एवं जलमें भी विद्यमान हैं[११] मेघसे औषधियां और वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं तथा इनमें अग्नि उत्पन्न होती है।[१२] यास्क ऋ० १०।११०।१० की व्याख्यामें वनस्पतिका अर्थ गार्हपत्याग्नि करते है।[१३] पुनः ऋ० ९।४७।२६ मन्त्र की व्याख्यामें वनस्पति का अर्थ लकड़ीका बना रथ भी किया गया है।[१४] आचार्य कात्थक्य वनस्पतिको यूप कहते हैं। यूपका अर्थ यज्ञ स्तम्भ होता है - यूप इति कात्थक्यः[१३] आचार्य शाकपूणि इसका अर्थ अग्नि मानते हैं- अग्निरिति शाकपूणिः[१३] शाकपूणि अग्निको देवताओंमें प्रधान मानते हैं। इनके अनुसार यूप भी अग्नि ही है। उपर्युक्त निर्वचनोंसे स्पष्ट होता है कि यास्क किसी शब्दके निर्वचनमें पूर्व आचार्योंके मत का भी उपस्थापन एवं सम्मान करते हैं। यास्कके अनुसार वनस्पति शब्दमें वन् सम्भक्तौ धातुसे वन तथा पा रक्षणे या पालने धातुसे पति शब्दके दोनों पद आख्यातज हैं। डा.वर्मा इसे आख्यातज शब्दोंसे बना मानते हैं।[१५] इस निर्वचनका आधार समासकी प्रक्रिया है। लौकिक संस्कृतमें वनस्पतिका अर्थ वनमें उत्पन्न होने वाले अपुष्प फलने वाले पेड़ पौधे हैं।[१६] वैदिक संस्कृतमें भी पेड़ पौधेके अर्थमें वनस्पति शब्दका प्रयोग होता है।[१७] व्याकरणके अनुसार वनस्पति वन् + पतिः (सुडागम) वनस्पति शब्द बनाया जा सकता है।[१८]

(५) वनम् :- इसका अर्थ जल होता है। निरुक्तके अनुसार वनं वनोतेः[१] अर्थात् यह शब्द वन् सम्भक्तौ धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसका सेवन किया जाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें वन के जल, जंगल, निवास, घर आदि अर्थ होते हैं।[१९] व्याकरणके अनुसार वन् सम्भक्तौ धातुसे घञ्[२०] या अच्[२१] प्रत्यय कर वन शब्द बनाया जा सकता है।

(६) आप्रिय :- इसका अर्थ होता है आप्री देवतागण। यह ऋचाका नाम भी है। यह प्रथमा का बहुवचनान्त है- आप्री-आप्रियः। निरुक्तके अनुसार- (१) आप्नोतेः[२२] अर्थात् यह शब्द आप्लृ व्याप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसे देवता प्राप्त करते हैं या इससे आप्री देवता प्राप्त होते हैं। (ऋचा अर्थ में) आप्लृ व्याप्तौ-आप्री आप्रियः (२) प्रीणातेर्वा अर्थात् यह शब्द आ + प्रीञ् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इन ऋचाओंसे सुख एवं आनन्दकी प्राप्ति होती है। आ + प्रीञ् धातुसे आप्री शब्दके निर्वचन की पुष्टि ब्राह्मण ग्रन्थ से

भी होती है- आप्रीभिराप्रीणाति इति च ब्राह्मणम् अर्थात् आप्री ऋचाओं से आनन्दित करता है।[२३] इन ऋचाओं से सम्बद्ध होने के कारण देवता लोग भी आप्री कहलाते हैं।[२४] यास्कका द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। प्रथम निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार आ+ प्री + उ + ङीष् आप्री - आप्रिय: शब्द बनाया जा सकता है।[२५]

(७) इध्म :- इसका अर्थ होता है अग्नि या इन्धन। निरुक्तके अनुसार- तासामिध्म: प्रथमगामी भवति, इध्म: समिन्धनात्[२२] आप्री देवताओंमें प्रथम गामी इध्म हैं। जलने या प्रदीप्त होने के कारण इध्म कहा जाता है। अग्नि तथा इन्धन दोनों में उपर्युक्त गुण पाये जाते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें इन्ध् दीप्तौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। यह धातुज सिद्धान्त पर आधारित है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। आचार्य कात्थक्यने इध्मको यज्ञ माना है- यज्ञेध्म इतिकात्थक्य:[२२]। आचार्य शाकपूणि ने इध्म को अग्नि कहा है- अग्निरिति शाकपूणि:।[२२] लौकिक संस्कृत में इध्म शब्दका प्रयोग इन्धनके अर्थमें होता है।[२६] व्याकरणके अनुसार इन्धी दीप्तौ धातुसे मक् प्रत्यय कर इध्म शब्द बनाया जा सकता है।[२७]

(८) तनूनपात् :- इसका अर्थ घृत एवं अग्नि होता है। आचार्य कात्थक्य इसका अर्थ घृत करते हैं- तनूनपादाज्यमिति कात्थक्य: इसके अनुसार तनूनपात् शब्द में तनू +नपात् दो पद खण्ड हैं। नपात् पौत्र या नाती का वाचक है। नपादित्यननन्तराया: प्रजाया नामधेयं निर्णततमा भवति[२२] अर्थात् पिता की अनन्तर सन्तान पुत्र तथा अननन्तर पौत्र होती है। यह नततम होता है। पितासे नत पुत्र तथा पुत्रसे नत पौत्र नततम हुआ। तनू गौ का वाचक है- गौरत्र तनूरूच्यते। तता अस्यां भोगा:[२२] अर्थात् गाय में भोग वस्तुएं व्याप्त रहती हैं। तनू+नपात का अर्थ हुआ गाय का पौत्र। तस्या: पयो जायते पयस: आज्यं जायते[२१] अर्थात् गायसे दुग्ध उत्पन्न होता है यह गायका पुत्र हुआ तथा दूध से घृत उत्पन्न होता है यह घृत उसका पौत्र या नपात् हुआ। आचार्य शाकपूणि तनूनपात् का अर्थ अग्नि करते हैं- अग्निरिति शाकपूणि:।[२२] आपोऽत्र तन्व उच्यते। तता अन्तरिक्षे ताभ्य औषधिवनस्पतयो जायन्त औषधि वनस्पतिभ्य एष जायते[२२] अर्थात् तनू मेघ जलका वाचक है क्योंकि यह अन्तरिक्षमें फैला रहता है। इससे ओषधि एवं वनस्पतियां उत्पन्न होती है। यह उसकी पुत्री हुई तथा वनस्पतियों से अग्नि उत्पन्न होती है यह वनस्पतियों की पुत्री, मेघ जल की पौत्री नपात् हुई।[२८] तनूनपात् सामासिक शब्द है तन्वा:नपात्= तनूनपात्।इस निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। इस निर्वचनमें यास्क अपना अभिमत

प्रदर्शन नहीं करते। अग्निके अर्थमें तनूनपात शब्दका प्रयोग लौकिक संस्कृतमें भी प्राप्त होता है।[२९] इसे तनूं स्वशरीरं न पाति न रक्षतीति तनूनपात् = अग्नि (आशुविनाशित्वात्) तनू + न + पा। अथवा तन्वा ऊर्ध्वं कृशं पातीति तनूपात्। तनूनपं घृतादि तदत्ति इति तनून पात्[३०] अग्निः। व्याकरणके अनुसार तनू+ न + पा + नुम् = तनूनपात् शब्द बनाया जा सकता है।[३१] आचार्य शाकपूणि एवं कात्थक्य के निर्वचनोंका आधार सम्बन्धात्मक लगता है। यास्क इन आचार्यों की कल्पनाओं को स्वीकार करते हैं।

(९) नराशंसः :- यह अनेकार्थक है। निरुक्तमें इसका निर्वचन यज्ञ तथा अग्निके अर्थमें प्राप्त होता है। आचार्य कात्थक्य इसका अर्थ यज्ञ करते हैं- नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यः। नरा अस्मिन्नासीनाः शंशन्ति[३२] अर्थात् इस यज्ञमें बैठकर मनुष्य मन्त्रोच्चारण करते हैं, स्तुति करते हैं। अतः यज्ञ नराशंस कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें दो पद खण्ड है नरा+ शंस=नृ- नर नरा + शंस् स्तुता =नराशंसः। आचार्य शाकपूणि नराशंसका अर्थ अग्नि करते हैं- अग्निरिति शाकपूणिः। नरैः प्रशस्यो भवति। नरैः मनुष्यैः शस्यते स्तूयते इति नराशंसः।[३३] अर्थात् वह अग्नि मनुष्योंके द्वारा प्रशस्य है या लोग उसकी स्तुति करते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें नृ- नरा+शंस् स्तुतौ धातुका योग है। यह सामासिक शब्द है। उपर्युक्त दोनों निर्वचनोंमें अर्थात्मकता पूर्ण उपयुक्त है। व्यावहारिकता ही इसका प्रबल आधार है। ध्वन्यात्मक आधारसे दोनों निर्वचन उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार- नृ-नर +आ+ शंस् स्तुतौ + घञ् = नराशंसः बनाया जा सकता है।

(१०) ईल :- इसका अर्थ अग्नि होता है। निरुक्तके अनुसार- ईलः इड्डेः स्तुति कर्मणः। इन्धतेर्वा[३४] अर्थात् यह शब्द ईड् स्तुतौ धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है क्योंकि इसकी स्तुति की जाती है। अथवा इन्धी दीप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह प्रदीप्त होता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। दो स्वरों के बीच स्थित ड का उच्चारण ल (ड़) के रूपमें होता है।[३५] द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक महत्त्व है। इसका आधार स्वरूपात्मक है। इसमें ध्वन्यात्मक औदासिन्य है। वैदिक संस्कृत की ड् ध्वनि ड़ एवं ल के रूप में रूपान्तरित हुई है। ड़ की उपलब्धि लौकिक संस्कृतमें नहीं होती है। हिन्दी भाषामें ड़ एवं ढ़ ध्वनियां वैदिक संस्कृतसे ही आयी हैं।

(११) यह्व :- यह महान् का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- यह्व इति महतो नामधेयं यातश्च हूतश्च भवति[२२] अर्थात् यह गया हुआ एवं पुकारा हुआ होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें दो धातुओंका योग है। या प्रापणे + हु दानादनयो: धातुओं के योग से यह्व: शब्द बनता है। इन दोनों धातुओंके धात्वादि वर्ण ही शेष रहते हैं। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मक संगतिके लिए ही दो धातुओं की कल्पना की गयी है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं मना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(१२) बर्हि :- यह कुश एवं अग्निका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - बर्हि: परिवर्हणात्[२२] अर्थात् यह शब्द वृह् वृद्धौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। बढ़ने (वृद्धि होने) के कारण कुशको वर्हि कहा जाता है कुश यज्ञवेदीकी चारो ओर फैलाया जाता है। अग्नि भी बढ़ी हुई होती है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें भी इसका प्रयोग उक्त अर्थोंमें प्राप्त होता है।[२२] व्याकरणके अनुसार वृह् वृद्धौ धातुसे इस् प्रत्यय कर वर्हिस् शब्द बनाया जा सकता है।[३४]

(१३) बितरम् :- इसका अर्थ होता है खूब फैला हुआ, काफी विस्तृत। निरुक्तके अनुसार- वितरम् विकीर्णतरमितिवा विस्तीर्णतरमितिवा[२२] अर्थात् यह विकीर्णतर होता है या विस्तीर्णतर होता है। प्रथम निर्वचनमें वि+कृ विक्षेपे + क्त= कीर्ण+तरम्=वि+कीर्णतरम् - वितरम् तथा द्वितीय निर्वचन में विस्तीर्ण+तरम् वि+तृप्लवनसंतरणयो:+तीर्ण+तरम् विस्तीर्णतरम् वितरम् है। इन निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। दोनों निर्वचनोंमें धातुका सर्वापहारी लोप हो गया है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे बड़े शब्दों के कुछ वर्ण लुप्त हो जाते हैं इसका कारण प्रयत्न लाघव हैं। याचामि का यामि[३५] वैदिक प्रयोग भी इसी प्रकार का है। लगता है विकीर्णतरम् या विस्तीर्णतरम् भी इसी प्रकार प्रयत्न लाघव के परिणाम स्वरूप वितरम् हो गया है।

(१४) वरीय :- इसका अर्थ होता है अधिक से अधिक, बहुत अधिक। निरुक्तके अनुसार वरीयो वरतरमुरूतरं वा[२२] अर्थात् यह शब्द वरतर या उरूतरका वाचक है। उरूतरका वरीय उ से व यण् का परिणाम है। यण् व्याकरण का पारिभाषिक शब्द है इ उ ऋ लृ का य व र ल होना यण् कहलाता है। अन्तस्थ ध्वनियोंका स्वरमें परिवर्तन भाषा वैज्ञानिक आधार रखता है। स्वर वर्ण भी अन्तस्थ वर्णमें परिवर्तित हो जाते हैं जिसे हम सम्प्रसारण की संज्ञा देते हैं। यहां तरप् के योग में ही ईयस् प्रत्यय हुए हैं। यास्क निर्वचन

प्रदर्शन में ईयस् प्रत्ययको स्पष्ट नहीं करते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे इसे उपयुक्त माना जायगा। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। व्याकरणके अनुसार वर+ईयसुन् याऊरु+ईयसुन्[३६] प्रत्यय कर वरीयस्-वरीय: बनाया जा सकता है।लौकिक संस्कृतमें वरीयान् शब्दका प्रयोग दो में एककी उत्तमता प्रदर्शनमें होता है।उरु शब्दका समानार्थी प्रयोग अवेस्तामें भी प्राप्त होता है।ग्रीकमें भी eurus शब्दइसी अर्थमें प्राप्त होते हैं।[३७]

(१५) द्वार :- इसका अर्थ होता है दरवाजा। निरुक्तके अनुसार द्वारो जवतेर्वा द्रवतेर्वा वारयतेर्वा[३२] अर्थात् द्वार शब्द जुधातुसे या द्रु धातुसे या वारि धातुसे निष्पन्न होता है। जु एवं द्रु का अर्थ है गति तथा वारि का अर्थ है निवारण। द्वार आने जानेकी गतिसे युक्त होता है। वारिके अनुसार यह अन्य के प्रवेशका निषेध करता है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे सभी निर्वचन अपूर्ण हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। कात्थक्यके अनुसार द्वारका तात्पर्य गृह-द्वार से है। शाकपूणिके अनुसार द्वारका तात्पर्य अग्निसे है। अग्नि ही हवि: गमनका द्वार है अर्थात् अग्निके माध्यमसे अन्य देवताओं के पास हवि: दी जाती है। वारि धातुके अनुसार यज्ञाग्निसे रोगका निवारण होता है। किंचित् ध्वन्यन्तरके साथ अंग्रेजी भाषामें भी यह शब्द Door प्राप्त होता है। ग्रीक का Thura द्वारके अधिक निकट है। इसका विवेचन द्वितीय अध्यायमें भी किया गया है।

(१६) स्योनम् :- इसका अर्थ सुख या विश्रान्ति होता है। निरुक्तके अनुसार-स्योनमिति सुखनाम, स्यतेरवस्यन्त्येतत्, सेवितव्यं भवतीतिवा[३२] अर्थात् स्योनम् शब्द सोऽन्तकर्मणि धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इस सुखको जीवनका आधार माना गया है क्योंकि प्राणी इसमें विश्राम करते हैं अथवा सबके द्वारा सेवनीय है। सो धातुसे निष्पन्न इस शब्दका आधार धातुज है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। सेवितव्यं भवति[३२] इसके द्वारा सेव् धातुसे भी स्योनम् के निर्वचनका संकेत प्राप्त होता है। इसमें मात्र अर्थात्मकता ही सुरक्षित रहती है। व्याकरणके अनुसार सिव् वाहुलकात् केवलोऽपि न: ऊडादेशो गुणश्चृस्योनम् बनाया जा सकता है।[३८]

(१७) उरु:- इसका अर्थ होता है जांघ। निरुक्तके अनुसार वरतरमंगमुरु[३२] अर्थात् यह शरीर के अन्य अंगोंकी अपेक्षा सुन्दर श्रेष्ठ होता है। इसके अनुसार वर से ही उरु माना गया। व का उ सम्प्रसारणके द्वारा हुआ। व का उ होना यद्यपि भाषा वैज्ञानिक महत्त्व रखता है फिर भी वरसे उरु मानने में ध्वन्यात्मक औदासिन्य है। यास्क का यह निर्वचन दृश्यात्मक आधार

अनुसार ऊर्णूञ् आच्छादने धातुसे कु[३९] प्रत्यय (नु लोप ह्रस्व) कर उरु शब्द बनाया जा सकता है।

(१८) उषासानक्ता :- इसका अर्थ होता है उषा एवं रात्रि। ये आप्री देवताओंमें परिगणित हैं। निरुक्तके अनुसार- उषासानक्तोषाश्च नक्ता च का उषासा[४०] आदेश होकर उषाश्च नक्ता च उषासानक्ता हो गया है। इस निर्वचनका आधार सामासिक है। द्वन्द्व समास करने पर उषासानक्ता हो गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार भी उषाश्च नक्ता च उषासानक्ता (देवता द्वन्द्वे)[४१] द्वन्द्व समास होगा।[४०]

(१९) नक्ता :- यह रात्रिका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- नक्तेति रात्रि नाम अनक्ति भूतानि अवश्यायेन[२२] अर्थात् नक्ता शब्दमें अञ् व्यक्तिम्रक्षण कान्तिगतिषु धातुका योग है क्योंकि यह रात सभी प्राणियोंको भूत पदार्थको ओससे लीपती है- न + अक्ता=(अज्+क्त) अक्त का अ लोप करने पर न+ क्त= नक्तम् (२) अपि वा नक्ता अव्यक्तवर्णा[२२] अर्थात् इसमें न+अञ् धातुका योग है। रात्रि में किन्ही भी वस्तुओंका स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। फलत: अव्यक्त वर्णा अ+न+क्त=नक्त माना गया है। यह निर्वचन दृश्यात्मक आधार रखता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। द्वितीय निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणमें नक्तम् शब्द अव्यय है। व्याकरणके अनुसार ओनस्जी व्रीडे धातुसे तमु[४२] प्रत्यय कर नक्तम् शब्द बनाया जा सकता है। आंग्ल भाषाका Night शब्द नक्त का ही विकास है। क का ग में परिवर्तन होनेके चलते Night हो गया है।[४३]

(२०) शुक्रम् :- इसका अर्थ होता है - शुक्ल। निरुक्तके अनुसार शुक्रं शोचतेर्ज्वलतिकर्मण:[२२] अर्थात् शुक्र शब्द ज्वलत्यर्थक शुच् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह शुक्ल होता है, दीप्त होता है। शुच्-शुक्रम्- र का ल होकर शुक्रका ही शुक्ल भी हो जाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। निरुक्तमें ही शुक्रका अर्थ वीर्य भी प्राप्त है।[४४] लगता है यहां वर्ण सादृश्य ही आधार है। धातुका शुक्लत्व सादृश्य है। लौकिक संस्कृतमें यह शब्द पुलिंगमें- शुक्राचार्य, ज्येष्ठमास, वैश्वानर तथा नपुंसक लिंगमें- वीर्य, अक्षिरोग भेद आदिका वाचक है।[४५] व्याकरणके अनुसार शुच् धातु से रक् प्रत्यय कर शुक्रम् शब्द बनाया जा सकता है।[४६]

(२१) पेश :- यह रूपका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- ``पेश इति रूप

नाम पिशतेर्विपिशितं भवति'' अर्थात् पेश रूपका नाम है। यह शब्द पिश् अवयवे दीपनायां च धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह विकसित होता है या प्रकाशित (दीप्त) होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पिश् + घञ्[४७] प्रत्यय कर पेश: शब्द बनाया जा सकता है।

(२२) भारती :- भारती आदित्य ज्योतिको कहते हैं। यह तीन देवियोंमें एक है। तीन देवियां भारती (ज्योति) इडा (अग्नि) तथा सरस्वती (विद्युत) हैं। निरुक्तके अनुसार भारती-भरत आदित्यस्तस्यभा:[२२] अर्थात् भरत आदित्यको कहते हैं क्योंकि वे सभी प्राणियोंका भरणपोषण करते हैं। आदित्य जलसे भरण पोषणका कार्य करते हैं जल बननेके मुख्य कारणोंमें आदित्य प्रधान कारण हैं। फलत: भरतका अर्थ भरण वाला सूर्य माना गया है।[४८] उस सूर्यकी दीप्तिको भारती कहेंगे। भृ-भरत-भारती। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें भारती शब्द वाणी तथा सरस्वती के नाम के रूप में विशेषकर व्यवहृत होता है। उपर्युक्त निर्वचनसे ही इस भारती शब्दकी भी सिद्धि होगी, क्योंकि भारती सरस्वती ज्ञानसे सभी प्राणियों को पुष्ट करती है, ज्ञान सम्पन्न बनाती है। वैदिक भारती शब्दका लौकिक संस्कृत में अर्थ विस्तार देखा जाता है। कर्म सादृश्य ही इसका मूल आधार है। व्याकरणके अनुसार भृ + अतच् ङीप् प्रत्यय कर भारती शब्द बनाया जा सकता है।

(२३) त्वष्टा :- आप्री देवताओं में एक का नाम त्वष्टा भी है। आप्री देवता पृथ्वी स्थानीय हैं। त्वष्टाका अर्थ होता है शीघ्र फैलने वाला। निरुक्त के अनुसार त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नैरुक्ता:[१२] अर्थात् निरुक्त सम्प्रदाय वालों के अनुसार तूर्ण+ अश् व्याप्तौ धातुके योगसे त्वष्टा शब्द निष्पन्न होता है क्योंकि त्वष्टा शीघ्र फैलने वाले होते हैं। (२) त्विषेर्वास्याद् दीप्ति कर्मण:[२२] अर्थात् यह शब्द दीप्त्यर्थक त्विष् धातुके योगसे निष्पन्न होता है- त्विष् त्वष्ट-त्वष्टा। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा कान्तिसे युक्त। यह कान्तिमान अग्निके अर्थ में भी संगत है तथा आप्रि देवता के अर्थ में भी। (३) त्वक्षतेर्वा स्यात् करोति कर्मण:[२२]अर्थात् करना अर्थ रखने वाली त्वक्ष् धातुके योग से यह शब्द निष्पन्न होता है-त्वक्ष्-त्वष्टा। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा करने वाला या सामर्थ्यवान्।त्विष् धातुसे इसका निर्वचन मानने पर ध्वन्यात्मक आधार संगत होगा। अर्थात्मक दृष्टिसे सभी निर्वचन उपयुक्त हैं। द्वितीय निर्वचन भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत है।लौकिक संस्कृतमें त्वष्टाका प्रयोग देवशिल्पी ,बढ़ई तथा

आदित्य भेद (सूर्य) के अर्थमें होता है।[४९] आचार्य शाकपूणि त्वष्टाका अर्थ अग्नि करते हैं अग्निरिति शाकपूणि:[१२] प्रथम एवं द्वितीय निर्वचनके अनुसार भी त्वष्टा अग्निका वाचक है क्योंकि अग्नि शीघ्र ही व्याप्त हो जाती है तथा कान्ति युक्त होती है। अग्निके अर्थ में त्वष्टाका प्रयोग ऋग्वेदमें भी प्राप्त होता है।[५०] कुछ आचार्योंके अनुसार त्वष्टा अन्तरिक्ष (मध्यम) स्थानीय माने जाते हैं क्योंकि निघण्टुमें वे मध्य स्थानीय देवताओंमें गिने जाते हैं।[५१] मध्यस्थानीय त्वष्टा वायुका वाचक है। बढ़ईके अर्थमें त्वष्टाका निर्वचन त्वक्ष् तनूकरणे धातुसे माना जायगा क्योंकि बढ़ई लकड़ी छीलनेमें दक्ष होता है। व्याकरणके अनुसार त्वक्ष् तनूकरणे धातुसे तृच् प्रत्यय कर त्वष्टृ-त्वष्टा शब्द बनाया जा सकता है। नि. ४।४ में त्वष्टा सूर्यका तथा १०।३ में वायुका वाचक है।

(२४) आवि :- यह प्रकाश या प्रकटका वाचक है। निरुक्तके अनुसार आविरावेदनात्[२२] अर्थात् यह शब्द आ + विद् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह आवेदन करने वाला है या प्रकट होने वाला है, सबको प्रकाशित करने वाला है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार आ+ अव्+ इसुन् प्रत्यय कर आविस् शब्द बनाया जा सकता है।[५२] लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रकट अर्थमें ही पाया जाता है तथा यह अव्यय के रूपमें प्रयुक्त होता है।[५३]

(२५) चारू :- इसका अर्थ होता है सुन्दर। निरुक्तके अनुसार चारू: चरते:[२२] अर्थात् चारू शब्द चर् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। क्योंकि सुन्दर वस्तु चित्रमें गति करती है या सुन्दरता चित्तको प्रभावित करती है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार चर् गतौ धातुसे ञुण्[५४] प्रत्यय कर चारू शब्द बनाया जा सकता है। आंग्ल भाषाका Charm शब्द इसी चारू का ही विकसित रूप है।

(२६) जिह्मम् :- यह कुटिलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-जिह्म जिहीते: अर्थात् जिह्म शब्द हाङ् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। कुटिल गमन करने वाला जिह्म कहलाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग कुटिल अर्थके अतिरिक्त मन्द तथा तगर वृक्षविशेषके लिए भी होता है।[५५] व्याकरणके अनुसार हा + मन् कर जिह्म शब्द बनाया जा सकता है।[५६]

(२७) रजिष्ठम् :- इस का अर्थ होता है - सरलतम, सुन्दरतम,

रजस्वलतम। निरुक्तके अनुसार-रजिष्टैर्ऋतुतमैः रजस्वलतमैः प्रपिष्टतमैरिति वा५७अर्थात् यहशब्द ऋजु +तम्(इष्टन् प्रत्यय) रजस्वल-रज+ तम् तथा प्रपिष्ट +तम से निष्पन्न माना गया है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। अन्तिम निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण है।

(२८) स्वाहा :- देवताओंको हवि प्रदान करनेके समय कहा जाने वाला शब्द स्वाहा कहा जाता है। निरुक्तके अनुसार-स्वाहेत्येतत्१ -सु आहेति वा५७ अर्थात् सुन्दर कहा। इसके अनुसार इस शब्दमें सु+ आह शब्दका योग है। २-स्वावागाहेति वा५७अर्थात् अपने हृदयकी वाणीको कहता है,याहृदयस्थ भावको वाणी द्वारा प्रकट करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें स्क्आहका योग है। ३- स्वं प्राहेतिवा५७ अर्थात् अपने को ही कहता है, अपनी वस्तुको ही ग्रहण करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें स्व + प्राह शब्दका योग है। ४-स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा५७ अर्थात् अच्छी प्रकार स्वच्छ की गयी हवन सामग्रीसे हवन करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें सु+आ+हु धातुका योग है। प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार ये निर्वचन संगत हैं। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। अमरकोषके अनुसार स्वाहा अग्नि की स्त्रीका नाम भी है।५८ व्याकरणव अनुसार सु + आह (वच्)+ अच=स्वाहा,सु+आ+हू+ डा=स्वाहा अथवा स्वाद् + आ(द का ह)= स्वाहा बनाया जा सकता है।५८

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि. ८।१, २. इन्द्र इतिक्रौष्टुकिः- स वल धनयोर्दातृतमस्तस्य च सर्वा वलकृतिः- निः ८।१, ३. अयमेवाग्निर्द्रविणोदाइतिशाकपूणिः। आग्नेयेष्वेव हि सूक्तेषु द्रविणोदसाः प्रवादाः भवन्ति-नि. ८।१, ४. द्रुदक्षिभ्यामिनन्- उणा. २।५१, ५.यथो एतदग्निं द्राविणोदसमाहेत्यृत्विजोऽत्र द्रविनोदस उच्यते हविषो दातारस्ते चैनं जनयन्ति-निः८।१, ६.आज्जसेरसुक्- अष्टा ७।१।५०, ७. धिषणा चवाग्मवति दधात्यर्थे वर्तमानात् धिषेः। सा हि अर्थान् धारयति। नि.दु.वृ. ८।१, ८.अम.को.१।५।१, ९ धृषेर्धिष् च संज्ञायाम् -उणा.२।८२, १०. धिष्ण्यं स्थानेगृहेभेऽग्नो-अम. को.३।३।१५५, ११.योऽयमृबीसे पृथिव्या मग्निरन्त रौषधि वनस्पतिष्वप्सु तमुन्निन्यथुः नि.६।६, १२. आपोऽत्र तन्व उच्यते। तता अन्तरिक्षे। ताभ्य ओषधिवनस्पतयो जायन्त ओषधिवनस्पतिभ्य एष जायते। नि.८।२, १३.८।३, १४. नि. ९।२, १५. दी इटिमोलोजीज

आफ यास्क, पृ. ९१, १६. तैरपुष्पाद्वनस्पतिः अम.को. २।४।६, १७. ऋ. १०।११०।१०, १८. पारस्कर प्रभृतीनि- अष्टा. ६।१।१५७,१९. वनं नपुंसके नीरे निवासालय काननेः मेदि.को. ८४।१९,२०. हलश्च-अष्टा.३।३।१२१, २१. कर्तरि पचाद्यच्- अष्टा.३।१।१३४, २२. नि.८।२,२३.ऐ.ब्रा. २।४।१, कौषितकी ब्रा १०।३, २४. आप्री देवताओं की संख्या बारह है- १. इध्म, २. तनूनपात, ३. नराशंस, ४. इंद्र, ५.बर्हिष्, ६.द्वार,७.उषासानक्ता, ८.देव्याहोतारा,९तिस्रोदेवी,१० .त्वष्टा-,११. वनस्पति, १२.स्वाहाकृतयः ,२५.षिद्गौरादिभ्यश्च- अष्टा. ४।१।४१, २६. अम. को.२।४।१३,२७. इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक्-उणा.१।४२, २८. नि.दु.वृ. ८।२,२९.अम.को.१।१।५३,३०.अम. को. (रामाश्रमी टीका) १।१।५३, ३१. उगिदचाम्- अष्टा. ७।१।७०,३२. अज्मध्यस्थ डकारस्य लकारं वह्वृचाजगुः। अज्मध्यस्थ ढकारस्य ल्हकारं वै यथाक्रमम्।।) ऋ. १।१।१ सायण भाष्य) डढौ ल ल्हावेकेषाम् शु.यजु. प्रा. ४।१४६, ३३. अम.को. १।१।५४, मेदि. को. १७२।२६,३४. वृहेर्नलोपश्च-उणा.२।१०९,३५.नि.२।२, ३६. द्विवचन विभज्योपपदे तरबीयसुनौ- अष्टा.५।३।५७,३७. नि.मी.-पृ.२१२,३८. शब्दकल्पद्रुम-भाग ५ पृ.४६५,३९.महति ह्रस्वश्च- उणा.१।३१,४०. उषासोषसः- अष्टा.६।३।३१,४१. देवताद्वन्द्वे च अष्ट. ६।३।२६, ४२. अम.को. ३।४।६ (रामा. टी.प्र.), ४३. यहां ग्रिम नियम-(Grim's Law) का समर्थन प्राप्त नहीं होता।,४४. शुक्रातिरेके पुमान् भवति- नि. १४।१, ४५. शुक्रः स्याद्भार्गवेज्येष्टमासे वैश्वानरे पुमान्। रेतोऽक्षिरूग्भिदोः क्लीवम्...मे.दि.को. १२९।९२-९३, ४६. ऋजेन्द्र.- उणा. २।२८, ४७. अष्टा. ३।३।१८, ४८. उदकेन सर्वभूतानां भरणात् भरतः सूर्यः- नि.दु.वृ. ८।२, ४९. त्वष्टा पुमान् देवशिल्पि तक्ष्णोरादित्यभिद्यपि-मेदि.को.३४।१६,५०.ऋ.१।९५।५, ५१. माध्यमिकस्त्वष्टेत्याहुः मध्यमेच स्थाने समाम्नातः- नि.८।२ त्वष्टा रूप विकर्ता च योऽसौ माध्यमिके गणे। स्तुतःस च निपातेन सूक्तं तस्य न विद्यते।। वृ.दे. ३।२५, ५२. वाच. पृष्ठ-८३०, ५३. अभि. चिन्ता. को. ६।१७५, ५४. दृसनिजनि- उणा. १।३, ५५. जिह्मस्तु कुटिले मन्दे जिह्मं तगरपादपे-हैं। २।३२७, ५६. जहातेः सन्वदालोपश्च-उणा. १।१३८, ५७. नि. ८।३, ५८. अम.को. २।७।८१, ५९. पृषोदरादित्वात्- अष्टा. ६।३।१०९ (ह्रस्य दः)

(ग) निरुक्तके नवम अध्याय के निर्वचनोंका मूल्यांकन

निघण्टु पठित दैवत काण्ड निघण्टुके पांचवें अध्यायमें छ खण्डोंमें पठित हैं। प्रथम एवं द्वितीय खण्ड क्रमशः निरुक्तके सप्तम तथा अष्टम अध्यायोंमें विवेचित हुए हैं। तृतीय खण्ड नवम अध्यायमें विवेचित हुआ है।

निघण्टुके पंचम अध्यायके तृतीय खण्डमें ३६ शब्द संकलित है। ये सभी शब्द देवताओंकी स्तुतिमें प्रयुक्त हैं साथ ही ये एक दूसरे के पर्याय नहीं बल्कि स्वतंत्र हैं।

निरुक्तके नवम अध्यायमें कुल ७६ निर्वचन प्राप्त होते हैं। इन निर्वचनोंमें यास्कने निघण्टुके दैवत काण्डके तृतीय खण्डमें पठित ३६ शब्दोंके निर्वचन तो प्रस्तुत किए ही हैं प्रसंगतः प्राप्त ४० अन्य शब्दोंकी भी व्याख्या की है। सभी निर्वचन भाषा विज्ञान एवं निर्वचन प्रक्रियाके अनुसार महत्त्वपूर्ण हैं। देवताओंके नामोंके निर्वचनसे उनके स्वरूप इतिहास, कर्म तथा निवास आदिका संकेत स्पष्ट होता है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे नवम अध्यायके सर्वथा पूर्ण निर्वचनों में- वारि, शकुनि, मंगल,गृत्समदः,मण्डूकः, मण्डः, अक्षाः, इरिणम्, मौजवतः, मुञ्ज, इषीका, विभीदकः,जागृविः,ग्रावाणः,घोषः नाराशंसः, अतूर्तः, रथः, दुन्दुभिः इषुधिः,संका,हस्तघ्नः,पुमान्,धनुः,ज्या,इषुः,कशा, सक्थिः, जघनम्, आजेः,सुभर्वम्,प्रधनम्, द्रुघणः, पूतनाज्यम्, मुद्गलः, भृम्यश्वः, पितुः, तविषी, गंगा, सरस्वती,मरुद्वृधा,आर्जिकीया,विपाट्,सुषोमा, आपः, औषधिः, अरण्यानी, श्रद्धा,ऋक्षरः,कण्टकः,अग्नायी,मुसलम्, हविर्धाने, आर्त्नी,शुनासीरो,देवीयोष्ट्री, देवी ऊर्जाहुती शब्द परिगणित हैं।इन शब्दोंके एक से अधिक भीनिर्वचन प्राप्त होते हैं। कुछ शब्दोंके एकाधिक निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण भी हैं।

भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण निर्वचन हैं- श्लोकः,बालः,चिश्चा, शुतुद्री,परुष्णी,असिक्नी एवं वितस्ता। ध्वन्यात्मक शैथिल्य वाले निर्वचन- मण्डूकः, ग्रावाणः,श्लोकः,बालः,रथः,मुद्गलः,यमुना,शुतुद्री,परुष्णी, असिक्नी,अरण्यानी और आर्त्नी हैं।यास्कने अश्वः, सुखम्, अभीशवः, वृषमः, सिन्धुःरात्रिः,पृथिवी, अप्वा, धावापृथिवी, विपाटशुतुद्री आदि शब्दोंके निर्वचनमें पूर्वव्याख्यात कहकर काम चला लिया है। वस्तुतः इन शब्दोंके निर्वचन पूर्व ही किए जा चुके हैं।

यास्क मंगल शब्दके निर्वचनमें अंगल शब्दको उपस्थापित करते हैं। अंगल से मंगल शब्दमें आदि व्यंजनागम माना जायगा। शकुनि शब्दके निर्वचनमें सांस्कृतिक आधारको अपनाया गया है। दुन्दुभिः शब्दका निर्वचन शब्दानुकरण पर आधारित है। दुम्दुम् शब्द इस वाद्य विशेषसे निकलता है। फलतः इसे दुन्दुभिः कहते हैं। दुन्दुभि शब्दके निर्वचनोंमें सादृश्य एवं धातुज सिद्धान्तका भी आश्रय लिया गया है। वितस्ता एवं विपाट् नदियोंके निर्वचन ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। कृन्त से कण्टक शब्द में मूर्धन्यीकरण का सिद्धान्त प्रतिपादित है।

इस अध्यायके प्रत्येक शब्दोंका निर्वचन द्रष्टव्य है :-

(१) वारि :- यह जलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वारि वारयति अर्थात् यह प्यास वारण करता है जल प्यास बुझाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें वृ आवरणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वृ+णिच् +इ[२] प्रत्यय कर वारि शब्द बनाया जा सकता है। आंग्ल भाषाका Water शब्द वारि का ही विकसित रूप है।

(२) शकुनि :- इसका अर्थ पक्षी होता है। निरुक्तके अनुसार- शक्नोत्युन्नेतु मात्मानम्[१] अर्थात् वह अपने को ऊपर ले जानेमें समर्थ है। इसके अनुसार इस शब्दमें शक् शक्तौ एवं नी धातुका योग है। (२) शक्नोति नदितुमितिवा[१] अर्थात् वह अव्यक्त शब्द करनेमें समर्थ है। इसके अनुसार भी इस शब्दमें शक् एवं नद् धातुका योग है। (३) शक्नोति तकितुमिति वा[१] अर्थात् वह गमन करनेमें समर्थ है। इसके अनुसार भी इस शब्दमें शक् धातुका ही योग है। (४) सर्वतः शंकरोऽस्त्विति वा[१] अर्थात् यह सभी ओरसे कल्याण करने वाली है ऐसी संभावना की जाती है।[३] इसके अनुसार इस शब्दमें शम्+ कृ धातुका योग है शंकरसे ही शकुनि माना गया है। (५)शक्नोतेर्वा[१] अर्थात् वह सामर्थ्ययुक्त है। इसके अनुसार भी इस शब्दमें शक् धातुका योग है। उपर्युक्त निर्वचनोंमें चतुर्थ के अतिरिक्त सभीमें शक् धातुका योग है। ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे चारों उपयुक्त हैं। चतुर्थ निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। डा. वर्मा भी शकुनि शब्दके निर्वचनको भाषा विज्ञानके अनुकूल मानते हैं।[४] चतुर्थ निर्वचनको छोड़ कर सभी निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार संगत है। चतुर्थ निर्वचनका सांस्कृतिक आधार है। पक्षियोंसे शुभाशुभ शकुनका संकेत ज्योतिष शास्त्र सम्बद्ध है। शकुन (निमित्त) सूचक होनेके कारण शकुनि कहलाया।[५] व्याकरणके अनुसार शक्लृशक्तौ धातुसे उनि प्रत्यय कर शकुनि शब्द बनाया जा सकता है।[६]

(३) मंगलम् :- यह कल्याण वाचक शब्द है। निरुक्तके अनुसार (१) मंगलं गिरतेर्गृणात्यर्थे[१] अर्थात् यह शब्द गृणात्यर्थक गृ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह स्तुति सम्बद्ध है।[७]मं+गृ -गर-गल मंगलम्। (२) गिरत्यनर्थानितिवा[१] अर्थात् यह शब्द गृ निगरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह अनर्थों को निगल जाता है। मं+गृ-गर-गल=मंगलम्। (३) अंगलमंगवत्[१] अर्थात् अंग से युक्त अंग । र (मत्वर्थीय)= अंगर। रको ल कर - अंगल: अंगल के आद्यक्षर अ को म में परिणत कर मंगल शब्द बनाया गया। दधि, अक्षत, मधु आदिको अंग माना गया है।[८] ये सभी मंगलके अंग हैं अतः अंग-अंगर अंगल-मंगल। (४) मज्जयति पापकमिति नैरुक्ता[१] अर्थात् निरुक्त सम्प्रदाय के अनुसार

यह पाप को डुबा देता है, समाप्त कर देता है अत: इसे मंगल कहते हैं।[९] इसके अनुसार इस शब्दमें मस्ज् शुद्धौ धातुका योग है। मस्ज्+अलच्= मंगलम्। (५) मां गच्छत्विति वा[१] अर्थात् मुझको प्राप्त हो ऐसा अर्थ होनेके कारण मंगल कहलाया। इसके अनुसार मां+ गम् धातुके योगसे इसको व्युत्पन्न माना जायगा। माम्+गम्+डलच्मंगलम्। अंतिम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। इसे भाषा विज्ञानके अनुसार संगत माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। अंगलसे मंगल शब्द माननेमें आदि व्यंजनागम माना जायगा। व्याकरणके अनुसार मंगि सर्पणे धातुसे अलच्[१०] प्रत्यय कर मंगलम् शब्द बनाया जा सकता है।

(४) गृत्समद :- यह एक ऋषिका नाम है। निरुक्तके अनुसार- गृत्समदो गृत्समदन:[१] अर्थात् गृत्समदन ही गृत्समद कहलाता है। गृत्स इत्तिमेधावि नाम गृणाते: स्तुतिकर्मण:[१] अर्थात् यह मेधावीका वाचक है क्योंकि यह शब्द स्तुत्यर्थक गृ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। जो व्यक्ति मेधावी एवं हर्षालु हो उसे गृत्समद कहा जायगा- गृत्सश्च असौ मदनश्चेति गृत्समदन: मृत्समद:। इस निर्वचनका आधार समास है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(५) मण्डूका :- इसका अर्थ होता है मेढक। निरुक्तके अनुसार- मण्डूका मज्जूका मज्जनात्[१] अर्थात् मण्डूक मज्जूक (मेढक) को कहा जाता है क्योंकि ये पानीमें निमग्न रहते हैं। मस्ज् धातुके योगसे निष्पन्न मज्जूक शब्द ही मण्डूक बन गया। मज्जूकसे मण्डूकमें ज वर्ण का उ में परिवर्तन तथा अनुनासिकीकरण हुआ है। (२) मदतेर्वा मोदतिकर्मण:[१] अर्थात् मोद अर्थ वाले मदी धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न हुआ है,क्योंकि वह सदा आनन्दित रहता है-[१२] मदीहर्षे-मद् + ऊक्कण्[११] =मण्डूक। (३) मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मण: अर्थात् यह शब्द तृप्त्यर्थक मन्द धातुके योगसे निष्पन्न होता है मन्द्- मण्ड + ऊकण् = मण्डूक:। मण्डूक जलमें निमग्न रहने पर तृप्त रहता है सन्तुष्ट रहता है।[१३] (४) मण्डयतेरिति वैयाकरणा:[१] अर्थात् वैयाकरण इसे मडि भूषायां हर्षे च धातुसे निष्पन्न मानते है- मड् +ऊकञ्[१४] =मण्डूक:। यह वर्षा कालका भूषण है या वर्षाकालको विभूषित करता है। दुर्गाचार्यका कहना है कि वे अनेक चित्रोंसे विभूषित होते हैं।[१५] मण्ड एषामोक: इति वा[१] अर्थात् इसका ओक (निवास स्थान) मण्ड- (जल) होता है फलत: मण्ड+ओक से मण्डूक माना गया। प्रथम तीन निर्वचन ध्वन्यात्मक औदासिन्यसे युक्त हैं। अर्थात्मक आधार इनका संगत है। चतुर्थ निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार मण्ड् +

ऊकण्[१४] से मण्डूक शब्द बनाया जाता है।

(६) मण्ड :- यह जलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-मण्डो मदे वा मुदेर्वा अर्थात् मण्ड शब्द हर्ष अर्थ रखने वाला मद् या मुद् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि जलसे स्नान पानादिके द्वारा हर्षकी प्राप्ति होती है। अत: मद् या मुद्- से मण्ड बना। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(७) अक्षा :- इसका अर्थ होता है जुआ खेलनेका पाशा। निरुक्तके अनुसार अक्षा अश्नुवत एनानिति अर्थात् द्युतक्रीड़ामें लोग इन पाशोंको अपना लेते हैं या खेलने वाले इसे अपने हाथमें रख लेते हैं।[१६] इसके अनुसार इस शब्दमें अशूङ् व्याप्तौ धातुका योग है- अश्+स := अक्ष:। (२) अभ्यश्नुवत एभिरिति वा अर्थात् इससे जुआरी लोग धनसे युक्त हो जाते हैं या इसके चलते जुआरी दुर्गतियोंसे व्याप्त रहते हैं। इसमें भी अशूङ् व्याप्तौ धातुका योग है। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। डा. वर्मा भी इसे सर्वथा संगत मानते हैं।[१७] व्याकरणके अनुसार अक्ष् व्याप्तौ धातुसे अच् प्रत्यय कर अक्ष: शब्द बनाया जा सकता है।[१८]

(८) इरिणम् :- इसका अर्थ होता है जल रहित प्रदेश। निरुक्तके अनुसार (१) इरिणं निर्ऋणम् ऋणातेरपार्णं भवति अर्थात् ऋगतौ धातुके योगसे ऋण् शब्द निष्पन्न हुआ- अप+ऋण=अपार्णम्। अप का निर् होकर निर् +ऋणम्=निर्ऋणम् पुन: निर् का न लोप होकर इरिणम् हुआ। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा गत्यात्मकताकी परिसमाप्ति। (२) अपरता अस्मादोषधय इति वा अर्थात् इन स्थानों से ओषधियां चली जाती है। जल रहित स्थानमें ओषधियां नहीं पनपती। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार ऋ गतौ-इन किच्च= इरिणम् शब्द बनाया जा सकता है।[१९]

(९) मौजवत :- इसका अर्थ होता है मूजवान पर्वत पर उत्पन्न। निरुक्तके अनुसार मौजवतौ मूजवति जात: अर्थात् मुजवान पर्वत पर उत्पन्न। यह तद्धितान्त पद है। मूजवान्+तद्धित अण् प्रत्यय = मौजवत:। मूजवान् पर्वत सोमलताका उद्गम स्थल माना जाता था। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार भी मूजवान्+अण्=मौजवत: शब्द बनाया जा सकता है।

(१०) मुञ्ज :- यह मूंज (सरकण्डे से प्राप्त होने वाला) का वाचक है।

निरुक्तके अनुसार मुञ्जो विमुच्यत इषीकया अर्थात् इषीकया सीकसे यह निकला रहता है। या अलग हो जाता है। फलतः यह मुञ्ज कहलाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें मुच् मोक्षणे धातुका योग है। मुच् धातुसे मुञ्ज शब्द मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत प्रतीत होता है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार मुंज्+अच् प्रत्यय कर मुञ्ज शब्द बनाया जा सकता है। यज्ञोपवीत संस्कारमें मुंजकी मेखलाका प्रथम उपयोग शास्त्र विहित है।[२१]

(११) इषीका :- इसका अर्थ सींक होता है। निरुक्तके अनुसार- इषीकेमतेर्गतिकर्मणः अर्थात् इषीका शब्द गत्यर्थक इष् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह मुञ्ज से निकली होती है। इयमपीतरेषीकेतस्मादेव अर्थात् वाण हलीषा आदि आर्थों वाली इषीका भी इसी प्रकार निष्पन्न होगी। यहां सादृश्य ही आधार है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इष् गतौ+इकन् प्रत्यय कर इषीका शब्द बनाया जा सकता है।

(१२) विभीदक :- यह बहेड़ाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार विभीदको विभेदनात् अर्थात् यह शब्द वि+भिद् विदारणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। विभेदन अर्थात् कोष्ठ शुद्धिके कारण इसे विभीदक कहा जाता है या इसे भेदन किया जाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।व्याकरणके अनुसार वि + भी+क्त=भीत-इवार्थे कन् = विभीतक:शब्द बनायाजा सकता है।[२२](विशेषेण भीतइव) विभीदकके बीजका प्रयोग वैदिककालमें जुआ खेलमें अक्षके रूपमें होता था।[२३]

(१३) जागृविः- इसका अर्थ होता है जगाने वाला। निरुक्तके अनुसार जागृविःजागरणात् अर्थात् जागरण करनेके कारण जागृविःशब्द बना। इसके अनुसार इस शब्दमें जागृ जागरणे धातुका योग है।इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।भाषाविज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(१४) ग्रावाण :- यह शिला का वाचक है। ग्रावन् शब्द का बहुबचनान्त ग्रावाणः होता है। निरुक्तके अनुसार ग्रावाणोहन्तेर्वा अर्थात् ग्रावाणः शब्द हन्धातु के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि इससे आघात किया जाता है। हन् धातुका ग्र आदेश कर ग्र+क्वनिप् =ग्रावन्-ग्रावा-ग्रावाणः। (२) गृणातेर्वा अर्थात् यह शब्द गृ शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न होता है गृ+वनिप्-ग्रावन्- ग्रावा-ग्रावाणः। पत्थर परस्पर संघर्षसे शब्द करते हैं। (३) गृह्णातेर्वा अर्थात् इस शब्दमें ग्रह् उपादाने धातु का योग है ग्रह्+वनिप्- ग्रावन्-ग्रावा-ग्रावाणः। इसे लोग ग्रहण किए रहते हैं। प्रथम एवं तृतीय निर्वचन ध्वन्यात्मक औदासिन्य से

युक्त हैं। शेष निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार द्वितीय निर्वचन संगत माना जायगा व्याकरणके अनुसार ग्रसु अदने धातुसे ड:[२३] प्रत्यय कर या गृहवन् सम्भक्तौ शब्दे च से ग्रावन् शब्द बनाया जा सकता है। यास्कके समय पत्थरका प्रयोग विविध रूपोंमें होता था। लोग इसे विविध उपयोगके लिए अपने हाथोंमें रखते थे। युद्धके लिए इसका अधिक प्रयोग होता था। इन सभी अर्थोंको स्पष्ट करनेके लिए यास्कने विविध धातुओंकी कल्पना की है।

(१५) श्लोक :- इसका अर्थ होता है श्रवणयोग्य, पद्य, छन्द। निरुक्तके अनुसार श्लोक: शृणोते: अर्थात् यह शब्द श्रु श्रवणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है- श्रु-श्रोक-श्लोक श्रूयते इति श्लोक: र का ल में परिवर्तन हो गया है। र का ल होना भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। इस निर्वचनका अर्थात्मक आधार संगत है। व्याकरणके अनुसार श्लोकृ संघाते धातुसे अच्[२४] या घञ् प्रत्यय कर श्लोक: शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें भी यह शब्द पद्यवन्ध तथा यशके अर्थमें प्रयुक्त होता है।[२५] अनुष्टुप् छन्द श्लोकके नामसे भी अभिहित है।[२६] वाल्मीकिके मुखसे प्रथम श्लोक अनुष्टुप्में ही निकला।[२७]

(१६) घोष :- यह आवाजका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-घोषो घुष्यते: अर्थात् यह शब्द घुष् विशब्दने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। क्योंकि यह ध्वनियुक्त है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार घुष् धातुसे घञ् प्रत्यय कर घोष: शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग आभीर पल्लीके अर्थमें भी होता है।[२८] गोपालकोंकी ध्वनि विशेष भी घोषके नामसे ज्ञात होता है।

(१७) नाराशंस :- यह कुछ मन्त्रोंके समुदायका नाम है। निरुक्तके अनुसार- येन नरा: प्रशंस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्र: अर्थात् जिन मन्त्रों से मनुष्योंकी प्रशंसा की जाय उसे नराशंस मन्त्र कहा जाता है तथा नराशंस ही नाराशंस कहलाता है। यह निर्वचन तद्धित पर आधारित है। अर्थ स्पष्ट करना ही मात्र इस निर्वचनका उद्देश्य है। व्याकरणके अनुसार-नर+ आ-शंस्-कर्मणि घञ्=नराशंस:=अण्=नाराशंस: बनाया जाता है।[२९] भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(१८) बाल :- यह बालक का वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) वालो वलवर्ती भर्तव्यो भवति अर्थात् वलवान के संरक्षणमें रहने के कारण बाल कहलाता है तथा वह भरण पोषणके योग्य होता है। वलवर्तीसे वाल: या भृ

धातुसे भर-भार-बार-बाल: भृ-भार्य: वाल: माना जा सकता है। (२) अम्बाऽस्मा अलं भवतीति वा अथवा माता ही इसके लिए पर्याप्त होती है। इसके अनुसार इस निर्वचनमें अम्वा+ अल= अम्वालम् बाल: माना गया है। (३) अम्बा अस्मै बलं भवतीतिवा अथवा बच्चे के लिए माता ही बल होती है। इसके अनुसार इस निर्वचनमें अम्वा+बलृबाल शब्द बना(४)बलो वा प्रतिषेधव्यवहित: अथवा बलका प्रतिषेध अबल तथा अबलका अ बल मध्यस्थ होकर अबल ब + अ + ल= बाल:। अर्थात् जिसे अपना बल नहीं होता या जो अबल होता है। उपर्युक्त सभी निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। ध्वन्यात्मक आधार किसीका भी पूर्ण संगत नहीं है। अन्तिम निर्वचन बल् धातुसे मानने पर ध्वन्यात्मक संगति होगी लेकिन यास्कने अर्थको ध्यानमें रखकर ही बाल को प्रतिषेधसे व्यवहित कहा है। व्याकरणके अनुसार बल् संचलने धातुसे घञ् प्रत्यय कर बाल: शब्द बनाया जा सकता है।[३०]

(१९) अतूर्त :- इसका अर्थ होता है शीघ्रता न करने वाला निरुक्तके अनुसार अतूर्ण इति वा अत्वरमाण इति वा अर्थात् जो गंभीर हो, शीघ्रता करने वाला न हो। इस शब्दमें अ+त्वर् धातुका योग है। व का उ सम्प्रसारणका परिणाम है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। दुर्गाचार्यने अतूर्त का अर्थ अचपल किया है।[३१]

(२०) रथ :- यह युद्धोपकरणमें परिगणित है। इसे युद्ध आदिमें प्रयुक्त होने वाला वाहन कहा जा सकता है। चतुरंगिणी सेनामें रथकी भी गिनती होती है, जो रथ- सेनाका वाचक होगा। रथ शब्दके निर्वचनमें यास्कका कहना है (१) रथ: रंहतेर्गतिकर्मण:[३२] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक रंह् धातुके योगसे निष्पन्नहोता है रह्+क्थनूरथ:।रथ गतिमानहोताहै(२) स्थिरतेर्वास्याद्विपरीतस्य[३३] अर्थात् स्थिर शब्दको विपरीत कर रथ शब्द बनाया जा सकता है स्थिर-रस्थि-रथ। उक्त निर्वचनमें शब्द विपर्ययके साथ ही अर्थ वैपरीत्यकी भी संभावना है। (३) रममाणोऽस्मिंस्तष्ठतीति वा[३२] अर्थात् इसमें मनुष्य आराम (आनन्द) से बैठता है। इसके अनुसार इस शब्दमें रम्+स्था धातुओंका योग है- रम्-स्थारथ: (४) रपतेर्वा[३२] अथवा यह शब्द रप् शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न होता है- रप् शब्दे+ थ:=रथ:। रथ चलने पर शब्द करता है। (५)रसतेर्वा[३२] अर्थात् यह शब्द रस् शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न होता है-रस् शब्द+थ:=रथ:।इसके अनुसार भी रथ चलने पर शब्द करता है ऐसा माना जायगा। उपर्युक्त सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अन्तिम

दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक आधार भी संगत है। अंतिम दोनों निर्वचनोंके अतिरिक्त शेषमें व्यंजनगत औदासिन्य है।[३३] व्याकरणके अनुसार रम् धातुसे क्थन् प्रत्यय कर रथ शब्द बनाया जा सकता है।[३४]

(२१) दुन्दुभि :- इसका अर्थ युद्ध वाद्य, नगाड़ा होता है। निरुक्तके अनुसार- दुन्दुभिरिति शब्दानुकरणम्[३२] अर्थात् दुन्दुभिः शब्द शब्दानुकरणके आधार पर निर्मित है। उससे दुम् दुम् आवाज होने के कारण उसका नाम दुन्दुभिः पड़ गया। (२) द्रुमोभिन्न इतिवा[३१] अर्थात् वृक्ष ही कटा हुआ सा होता है। यह आकृति सादृश्य के आधार पर प्रसिद्ध हुआ। कटे हुए द्रुम के सदृश दुन्दुभिः होता है। वृक्षके कटे भाग को सछिद्र चर्मसे आवृत कर वह बनाया जाता है।[३५] फलतः द्रुम्भिद् से दुन्दुभिः माना गया है। (३) दुन्दुभ्यतेर्वा स्याच्छब्दकर्मणः[३२] अर्थात् शब्दार्थक दुन्दुभ् धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है। इसके बजाने पर आवाज होती है। प्रथम निर्वचन शब्दानुकरण पर, द्वितीय सादृश्य पर तथा तृतीय धातुज सिद्धान्त पर आधारित है। अन्तिम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे सर्वथा उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार दुन्दु उपपदः उभ् पूरणे धातुःइन्[३६] प्रत्यय कर दुन्दुभिः शब्द बनाया जा सकता है। दुन्दुभि को भी युद्धोपकरण माना गया है प्राचीनकाल में दुन्दुभि की आवाज से युद्ध आरम्भ होता था।

(२२) इषुधि :- इसका अर्थ होता है- वाण रखने का पात्र- तरकस। निरुक्तके अनुसार इषुधिरिषूणां निधानम्[३२] अर्थात् यह वाणोंके रखने का स्थान पात्र होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें इषु + धा धारणे धातुका योग है- इषु+धा=इषुधिः इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इषु +धा+कि:[३७]प्रत्यय कर इषुधि शब्द बनाया जा सकता है। इसे यास्क युद्धोपकरणके अन्तर्गत मानते हैं।

(२३) चिश्चा :- धनुषसे निकलने वाली आवाजको चिश्चा कहते हैं। हसनार्थक भी चिश्चा शब्द माना जाता है। निरुक्तमें चिश्चा शब्द को शब्दानुकरण कहा गया है क्योंकि यह चीं चीं शब्द करता है। हसनार्थक मानने पर मुंख की दीप्ति से यह प्रदीप्त होता है या हसता है ऐसा अर्थ संभव है। शब्दानुकरण सिद्धान्त पर आधारित यह शब्द भाषा वैज्ञानिक महत्त्व रखता है। यास्कने इसके धातु प्रत्ययका निर्देश नहीं किया है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(२४) संका:-यह संग्रामका वाचक है। निरुक्तके अनुसार(१) संका: सचते: अर्थात् यह शब्द षच् समवाये धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि संग्राममें बहुत सी वस्तुओं एवं व्यक्तियोंका समवाय होता है। (२) सम्पूर्वाद्वा किरते:[३२] अर्थात् सम् उपसर्गक कृ धातुके योगसे यह निष्पन्न होता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा जहां ठीक ढंगसे किये जाएं। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(२५) हस्तघ्न :- इसका अर्थ होता है हस्तावरण, दस्ताना। निरुक्त के अनुसार हस्तध्नोहस्ते हन्यते[३२] अर्थात् यह हाथ में स्थित होकर आघात खाता रहता है एवं हाथकी चारो ओरसे रक्षा करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें हस्त+ हन् धातुका योग है हस्त+हन्=हस्तघ्न:। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे सर्वथा उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार हस्त+ हन् + क: प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है।

(२६) पुमान् :- इसका अर्थ होता है पुरूष। निरुक्त के अनुसार (१) पुमान् पुरूमना भवति[३२] अर्थात् यह विशाल मन वाला होता है। इसके अनुसार पुमान् शब्दमें पुरू+ मन् धातुका योग है पुरू +मन्= पुमन-पुमान्। (२) पुंसतेर्वा अर्थात् यह शब्द पुंस् अभिवर्धने धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह वृद्धिकी ओर अग्रसर होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पा रक्षणे धातुसे डुमसुन्[३८] प्रत्यय कर इसे बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें पुंस् शब्द ही है जिसका रूप पुमान् होता है। लगता है यास्कके समय में पुमान् शब्दके रूपमें भी प्रचलित था।

(२७) धनु :- इसका अर्थ होता है युद्धास्त्र, धनुष। निरुक्तके अनुसार (१) धनुर्धन्वतेर्गतिकर्मण:[३२] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक धन्व् धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह गति करता है। (२) वधकर्मणोवा[३२] अथवा यह शब्द वधार्थक धन्व् धातुके योगसे बना है क्योंकि यह युद्धमें वध करता है, प्राण हरण करता है। (३) धन्वन्त्यस्मादिषव:[३२] अर्थात् वाण इसमें गति करते हैं। इसके अनुसार भी धनु: शब्दमें धन्व् गतौ धातुका योग है। सभी निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार धन् शब्दे धातुसे उस् प्रत्यय कर धनु: शब्द बनाया जा सकता है।[३९]

(२८) समद :- यह संग्राम का वाचक हैं। निरुक्त के अनुसार - समद:

समदो वाते:[३२] अर्थात् यह शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक अद् भक्षणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि संग्राममें एक व्यक्ति दूसरे को मार डालते हैं, संग्राम व्यक्तियोंको पूर्ण रूपमें खा जाता है। (२) सम्मदो वा मदते:[३२] अर्थात् सम् उपसर्ग पूर्वक मदी हर्षे धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है। सम्+मद्= सम्मद:। युद्धमें हर्षके साथ एक दूसरे से लड़ते हैं। इन निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें उक्त अर्थमें इसका प्रयोग प्राय: नहीं देखा जाता।

(२९) ज्या :- इसका अर्थ होता है धनुषकी डोरी। निरुक्तके अनुसार (१) ज्या जयतेर्वा[३२] अर्थात् यह शब्द जि जये धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि युद्धमें यह विजय प्राप्त कराती है। (२) जिनातेर्वा[३२] अथवा यह शब्द ज्या क्योहानौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह अनेकों जीवनका हरण करती है। (३) प्रजावयति इषून् इति वा[३२] अथवा यह शब्द जव् गतौ धातुके योग से निष्पन्न होता है। यह वाणोंको फेंकती है चलाती है वाण इसीसे गतिमान होता है। सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार संगत है प्रथम एवं द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक आधार से युक्त हैं। प्रथम दोनों निर्वचनोंको भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसारज्या+ङ+टाप्=ज्या शब्द बनाया जा सकता है।

(३०) इषु :- यह वाणका वाचक हैं। निरुक्तके अनुसार (१) इषुरीषतेर्गति कर्मणो वध कर्मणोवा[३२] अर्थात् यह शब्द गत्यर्थक इष् धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह गतिमान होता है या चलता है या फेका जाता है, या यह वधार्थक इष् धातुके योगसे निष्पन्न होता हैं क्योंकि यह प्राणियोंका वध करता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार ईष् धातुसे उ[४०] प्रत्यय कर इषु: शब्द बनाया जा सकता है।

(३१) कशा :- यह चाबुक तथा वाणीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार चाबुकके अर्थ में - (१) कशा प्रकाशयति भयमश्वाय[३२] अर्थात् यह घोड़ेको भय दिखाती है। चावुकसे घोड़ेको भयभीत किया जाता है। इसके अनुसार कशा शब्दमें काशृ दीप्तौ धातुका योग है - काशृ - कशा। (२) कृष्यतेर्वाणूभावात्[३२] अर्थात् अणुभाव अर्थ रखने वाले कृश् धातुके योगसे यह निष्पन्न होता है क्योंकि यह पतली होती है। वाणीके अर्थमें कशा शब्दके निर्वचनमें यास्कका कहना है कि वाक् पुन: प्रकाशयत्यर्थान्[३२] अर्थात् वाणी वाचक कशा अर्थों को प्रकाशित करती है। इसके अनुसार भी इसमें काशृ दाप्तौ धातुका योग माना गया। (२) खशया यह मुखाकाश में सोने वाली है। वाणी आकाशका गुण है।[४१]

इसके अनुसार इस शब्दमें ख +शीङ् स्वप्ने धातुका योग है। ख का अल्प प्राण क+शी=कश-कशा (३) क्रोशतेर्वा अर्थात् मनुष्यके बोलने का यही आधार है। इसके अनुसार इस शब्दमें क्रुश् आह्वाने धातुका योग है क्रुश् - कशा। काशृ , कृष् तथा क्रुश् धातुसे कशा का निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार रखता है इन्हें भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त माना जायगा। ये धातुज सिद्धान्त पर आधारित हैं। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्व रखते हैं। व्याकरणके अनुसार कश् गति शासनयोः धातुसे अच्[४२] +टाप् प्रत्यय कर कशा शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें कशाका प्रयोग वाणीके अर्थमें प्रायः नहीं देखा जाता।

खशया से कशा=वाणी माननेका उद्देश्य संभवतः वाणीकी नित्यताका उपस्थापन है। यों तो दुर्गाचार्यने मुखसे निःसृत होनेके कारण वाणीको मुखाकाशमें सोने वाली माना है। वाणी का उत्पति स्थान हृदयाकाशसे मुखाकाश तक व्याप्त है इसमें संदेह नहीं, लेकिन उच्चरित शब्दोंका स्थान भी आकाश ही है। जिस प्रकार आकाश नित्य एवं अविनाशी है उसी प्रकार उसका गुण शब्द भी नित्य एवं अविनाशी है। वैज्ञानिकोंने भी आकाशमें ईथर मानते हुए शब्दकी उत्पति एवं प्रस्तृतिका स्थान इसे ही स्वीकार किया है। आकाशमें इथर रहने के कारण वह ध्वनि तरंगों को धारण करनेकी शक्तिसे समन्वित है। शब्द ईथर के तरंगों में विस्तृत होता जाता है। वह वीची तरंग न्यायकी भांति या कदम्वगोलक न्यायकी भांति उत्पन्न होता है।[४३]

(३२) सक्थि :- यह हड्डीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार सक्थिः सचतेरासक्तोऽस्मिन् कायः[३२] अर्थात् यह शब्द षच् समवाये धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि शरार इसी पर आसक्त रहता है। हड्डीके विना शरीर धारण संभव नहीं। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार संज् संगे धातुसे क्थिन्[४४] प्रत्यय कर सक्थिः शब्द बनाया जा सकता है।

(३३) जघनम् :- इसका अर्थ होता है जांघ। निरुक्तके अनुसार जघनं जङ्घन्यते[३२] अर्थात् यह शब्द हन् हिंसागत्योः धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है - हन् - हन् = जहन= जघन। घोड़े के जघन को बार बार पीटा जाता है। इस हनन क्रिया की प्रधानता के चलते जघन कहलाया। अथवा वह गतिमान होता है इसलिए भी जघन माना गया। सामान्य जघन को गत्यर्थक हन् से मानना ही संगत होगा। हन् हिसार्थक से मानने पर जघन में अर्थ संकीर्णता रहेगी। यास्क के निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार हन् + यङ्

+ अच्= जघ+नुक् = जघनम् शब्द बनाया जा सकता है।[४५]

(३४) उलूखलम् :- यह ओखलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) उलूखलमुरुकरं वां[३२] अर्थात् मेरे लिए अधिक करने वाला हो इस अर्थको व्यक्त करने वाला उलूखल कहलाया। इसके अनुसार उरुकरसे उलूखल शब्द माना जायगा -उरु +कर= उरुकरम् - र का ल में परिवर्तन उलूकलम् क अल्प प्राण का महाप्राणीकरण - उलूखलम्। (२) ऊर्ध्वं खं वा[३२] अर्थात् इसका मुख ऊर्ध्व होता है या आकाशमें होता है। खात या मुह ऊपर होनेके कारण उलूखल कहलाया। इसके अनुसार इस शब्दमें ऊर्ध्व+ खं का योग है। ऊर्ध्व ऊपर का वाचक है तथा खं खात का। (३) उर्क्करं वा[३२] अर्थात् यह अन्न (उर्क) बनानेके लिए (अन्न कूटने के लिए) होता है। इसके अनुसार उर्क् + कृ धातु का योग है - उर्क् + कृ= उर्क् + कर= उर्क्कर - उरुकर - उलूखलम्। (४) उरु मे कुर्वित्यब्रवीत् तदुलूखलमभवत्। उरुकरं वै तत्तदुलूखलमित्याचक्षते परोक्षेणेति च ब्राह्मणम्।[४९] अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थोंके अनुसार मुझे अधिक करो इस उरु + कृ से ही उरुकर - उलूखल हो गया। इसी उरुकरको परोक्ष रूपमें उलूखल कहा गया। उपर्युक्त निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार सभीको संगत माना जायगा। ब्राह्मण ग्रन्थोंके निर्वचन भी भाषा वैज्ञानिक महत्त्वसे युक्त हैं। व्याकरणके अनुसार- ऊर्ध्व खं लातीति उलूखलम्-ऊर्ध्व+खं+ला(ल)+क:=उलूखलम् शब्द बनाया जा सकता है।[४७]इस निर्वचनसे स्पष्ट होताहै कि यास्कके समयमें इसका व्यापक प्रयोग होता था।[४८]

(३५) आजे :- यह आजि शब्दके षष्ठ्यन्तका रूप है। आजि शब्दका अर्थ होता है संग्राम। निरुक्तके अनुसार- आजेराजन यस्याजवनस्येति वा[४९] अर्थात् यह शब्द आङ् उपसर्गक जि जये धातुके योगसे निष्पन्न होता है या आङ् उपसर्गक जु गतौ धातुके योगसे। आङ्+ जि जय=आजि: मानने पर इसका अर्थ होगा विजय दिलाने वाला। आङ्+जु गतौ=आजि: मानने पर इसका अर्थ होगा गतिसे सम्पन्न। उपर्युक्त निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार आजि: शब्द अज् गतौ धातुसे उण् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।[५०]

(३६) सुभर्वम् :- इसका अर्थ होता है अच्छी तरह मधुरादि खाने वाले को। निरुक्त के अनुसार- सुभर्वं राजानम् भर्वतिरत्ति कर्मा[४९] अर्थात् सुभर्व राजा का विशेषण है तथा भर्व् शब्द भक्षणार्थक है। सु+भर्व् भक्षणे धातु के योग से सुभर्व शब्द निष्पन्न हुआ है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार

उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार भर्व्+अच् =भर्वः सु+भर्वः=सुभर्वः सुभर्वम् बनाया जा सकता है।

(३७) प्रधन :- यह संग्रामका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- प्रधन इति संग्राम नाम प्रकीर्णान्यस्मिन् धनानि भवन्ति।[४९] अर्थात् इसमें धन प्रकीर्ण रहते हैं। इसके अनुसार प्रधन शब्दमें प्रकीर्ण-प्र+धनका योग माना जायगा।[५१] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार प्र+धा+क्नु:=प्रधनम् बनाया जा सकता है।[५२]

(३८) द्रुघण :- इसका अर्थ होता है मुद्गर, युद्धास्त्र। निरुक्तके अनुसार द्रुघणो द्रुममयो घनः[४९] अर्थात् यह लकड़ीका घन (कुन्द) बना रहता है। मुद्गर (गदा) लकड़ीसे नर्मित युद्धास्त्र है। इस निर्वचनके अनुसार द्रुघण शब्द द्रुम + घनके योग से निष्पन्न माना जायगा- द्रुम+घनः द्रुमघन, द्रुघनः। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार -द्रु+हन्+अप् प्रत्यय कर द्रुघणः शब्द बनाया जा सकता है।[५३]

(३९) पृतनाज्यम् :- यह संग्रामका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) पृतनाज्यमिति संग्रामनाम पृतनानामजनाद्वा[४९] अर्थात् संग्राम वाचक पृतनाज्य शब्द पृतना+ अज् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है। पृतना सेनाका वाचक है।[५४] सेना इस संग्राममें गमन करती है। (२) जयनाद्वा[४९] अर्थात् इस शब्दमें पृतना + जि जये धातुका योग है,क्योंकि सेना उस संग्राममें विजय प्राप्त करती है। यह निर्वचन सामासिक आधार रखता है (पृतनामस्मिन् अर्जन्ति या जयन्ति तत् पृतनाज्यम्) इसका ध्वन्यात्मक तथा अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता।

(४०) मुद्गल :- यह एक ऋषिका नाम है। भृम्यश्वके पुत्र भार्म्यश्व ही मुद्गल हैं।[५५] निरुक्तके अनुसार (१) मुद्गलो मुद्गवान्[४९] अर्थात् मूंगवान मुद्गल कहलाता है। इसके अनुसार मुद्ग+मतुप्- मुद्गवानसे मुद्गल माना गया।[५६] मत्वर्थमें ल प्रत्ययका विधान है। (२) मुद्गिलोवा अर्थात् वह मूंग खाने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें मुद्ग+गृ निगरणे धातुका योग है। मुद्ग + गृ-गर गल मुद्गलः (र का ल वर्ण परिवर्तन) (३) मदनं गिलतीति[४९] अर्थात् वह कामदेव को वश में करता है। इसके अनुसार मदन+गृ धातुसे मुद्गल माना गया। (४) मदंगिलो वा[४९] अर्थात् वह मद् को खा जाता है, शान्ति प्रिय होनेके कारण, या अप्रमत्त है। इसके अनुसार इस शब्द में मद+ गृ धातुका योग है- मद +गृ-

गत मुद्गल। (५) मुदांगतो वा[५९] अर्थात् वह हर्षसे परे हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें मुद्+ गृ धातुका योग है- मुद्+ गृ-गत= मुद्गलः। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंका युक्त है। प्रथम एवं अंतिम निर्वचन ध्वन्यात्मक महत्त्व भी रखता है। इन दोनोंको भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे उपयुक्त माना जा सकता है। शेष निर्वचनोंमें स्वरगत औदासिन्य है। व्याकरणके अनुसार मुदं + गृ + अच् प्रत्यय कर मुद्गल शब्द बनाया जा सकता है।[६०] यास्कका यह निर्वचन कर्म एवं प्रकृतिको आधार मानता है।[६१]

(४१) मृम्यश्व :- यह मुद्गल ऋषिके पिताका नाम है। निरुक्तके अनुसार मृम्यश्वो मृमयोऽस्याश्वाः[६२] अर्थात् जिनके घोड़े चंचल हों उन्हें मृम्यश्व कहते हैं। इसके अनुसार इसमें मृम् + अश्वका योग है। मृमयश्चंचलाः सन्ति अस्य अश्वाः इति मृम्यश्वाः। (२) अश्वमरणाद्वा[६३] अर्थात् वे अश्वोंको भरणपोषण करते हैं इसलिए मृम्यश्व कहलाये। इसके अनुसार इस शब्दमें अश्व + भृ भरणे धातुका योग है- अश्व + भृ = भृ + अश्व= भृम्यश्वः (पदपरिवर्तन) प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार प्रथम निर्वचनको संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इसे समासान्त शब्द माना जायगा। मृमयः अस्य अश्वा इति मृम्यश्वः।

(४२) पितु :- यह अन्नका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) पितुरित्यन्न नाम पातेर्वा[६४] अर्थात् अन्नवाचक पितुः शब्द पा रक्षणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि अन्नसे रक्षाकी जाती है। शरीरकी रक्षा अन्नसे होती है। (२) पिवतेर्वा[६५] अर्थात् पितुः शब्द पा भक्षणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि अन्नका भक्षण किया जाता है। (३) प्यायतेर्वा[६६] अर्थात् प्यै वृद्धौ धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है, क्योंकि इससे शरीरकी वृद्धि होती है। प्रथम दो निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त हैं। इसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे भी संगत माना जायगा। अंतिम निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। लौकिक संस्कृतमें पितुः शब्द अन्नका वाचक नहीं है। वह पितृ शब्दका षष्ठ्यन्तरूप है पितृ शब्दमें भी पा रक्षणे धातुका योग है जो पा + तृच् से बनता है, क्योंकि पिता पुत्रकी रक्षा करता है।

(४३) तविषी :- इसका अर्थ होता है-बल। निरुक्तके अनुसार- तविषीति बलनाम तवतेर्वा वृद्धिकर्मणः[६७] अर्थात् यह शब्द तु या तव् वृद्धौ धातुके योग से निष्पन्न होता है, क्योंकि इसकी वृद्धि होती है या यह वर्द्धनशील होता है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार तव् वृद्धौ से विषच्

कर तविष + ङीप् = तविषी शब्द बनाया जा सकता है।[५९]

(४४) गंगा :- यह नदीका नाम है। निरुक्तके अनुसार गंगा गमनात्[४९] अर्थात् गमन करनेके कारण गंगा कहलायी, क्योंकि यह लगातार चलती रहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें गम् धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। उपर्युक्त निर्वचन सामान्य नदीके अर्थमें भी संगत है परन्तु यमुना आदिके साथ प्रयुक्त होनेसे भागीरथी समझना उपयुक्त होगा। दुर्गाचार्यका कहना है[६०] कि जो विशिष्ट स्थान पर जाती है या विशिष्ट स्थान पर ले जाती है उसे गंगा कहते हैं। व्याकरणके अनुसार गम्ह् गन् प्रत्यय कर गंगा शब्द बनाया जा सकता है-[६१] गम् +गन् + टाप् = गंगा।

(४५) यमुना :- यह नदी विशेषका नाम है। निरुक्तके अनुसार (१) यमुना प्रयुवती गच्छतीति वा[४९] अर्थात् अपने जलकों दूसरी नदियोंके जलमें मिलाती है, या मिलाती हुई जाती रहती है।[६२] इसके अनुसार यमुना शब्दमें यु मिश्रणे धातुका योग है। (२) प्रवियुतं गच्छतीति वा[४९] अर्थात् वह शान्त सी चलती रहती है। तरंग रहितके समान चलती रहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें यु धातुका योग है। दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक आधार संगत नहीं है। व्याकरणके अनुसार यम् उपरमे धातुसे उनन्[६३] प्रत्यय कर यमुन-टाप् = यमुना शब्द बनाया जा सकता है। द्वितीय निर्वचनमें यु मिश्रणे धातु यमुना नदी के जलका प्रयाग स्थित गंगाके जलमें मिलनका संकेत है।

(४६) सरस्वती :- यह नदी विशेषका नाम है। निरुक्तके अनुसार सरस्वती सर इत्युदक नाम सर्तेस्तद्वती[४९] अर्थात् सर जलका नाम है, क्योंकि यह सृ गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। जलमें गत्यात्मकता है। सरसे युक्तको सरंस्वती कहेंगे-सरस् + वती= सरस्वती। अर्थात् जलसे युक्तको सरस्वती कहा जाता है।[६४] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार सरस् +मतुप्[६५] प्रत्यय कर सरस् +मतुप् (मस्य व:) +सरस +वत्+ङीप्=सरस्वती शब्द बनाया जा सकता है। वेदमें सरस्वतीका प्रयोग विद्या दात्री वाणीके अर्थमें भी प्राप्त होता है।[६६] सरका अर्थ ज्ञान भी होता है ज्ञान भी गतिशील है। अत: सरस्वती शब्द ज्ञानवतीका द्योतक माना जायगा।

(४७) शुतुद्री :- यह नदी विशेषका नाम है। निरुक्तके अनुसार (१) शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविणी[४९] अर्थात् यह तेजीसे बहने वाली होती है।

इसके अनुसार इस शब्दमें शु क्षिप्रका वाचक है तथा द्रु गतौ धातु है शु + द्रु=शु+द्रविणी= शुतुद्री।(२) आशु तुन्नेव द्रवतीतिवा[४९] अर्थात् यह किसीसे बिद्ध सी होकर आघातित सी होकर भागती है तीव्रगति से बहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें आशु + तु +द्रु गतौ धातुका योग है। आशुका शु, तुन्न का तु तथा द्रु धातुसे शुतुद्री माना गया है। दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। ध्वन्यात्मकता पूर्ण संगत नहीं। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। प्रथम निर्वचन की अपेक्षा द्वितीय निर्वचनमें अधिक ध्वन्यात्मकता है। द्वितीय निर्वचन अक्षरात्मक निर्वचन है। व्याकरणके अनुसार शु + तुद् +र + इन्[५७] प्रत्यय कर शुतुद्री शब्द बनाया जा सकता है। आज कल यह सतलज नदीके नामसे विख्यात है।

(४८) परुष्णी :- यह एक नदी विशेषका नाम है। यह इरावतीके नामसे विख्यात है। निरुक्तके अनुसार इरावती परुष्णीत्याहु: पर्ववती भास्वती कुटिलगामिनी[४९] अर्थात् जो पर्ववाली है, प्रकाशित होने वाली है या कुटिलगामिनी है। इसके अनुसार पर्ववतीसे परुष्णी माना गया है। भास्वती एवं कुटिलगामिनी इसके स्वरूप को प्रकाशित करने वाले विशेषण है अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंका संगत है। ध्वन्यात्मकता किसीमें भी पूर्ण नहीं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत नहीं माना जायगा। आज कल यह नदी रावीके नामसे विख्यात है। यह रावी शब्द इरावती से उद्भूत है।

(४९) असिक्नी :- यह एक नदी विशेषका नाम है। निरुक्तके अनुसार असिक्नयशुक्लासितासितमिति वर्ण नाम तत्प्रतिषेधोऽसितम्।[४९] अर्थात् यह अशुक्ला है, असिता है। सित शुक्ल वर्ण का नाम है। उसका विपरीत असित से असिक्नी माना गया है। अशुक्लसे भी असिक्नी माना जा सकता है। इस नदीका जल नीला दीखता होगा। दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। असितासे असिक्नी मानना अशुक्ला से असिक्नी की अपेक्षा ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अधिक संगत है। व्याकरण के अनुसार न सिता शुक्ल केशा। छन्दसि क्नमेव इति तस्यवन्नान्तोत्वाद्ङीप् च इति असिक्नी माना जा सकता है।[५८] न-अ-सित+क्नन् + ङीप्।

(५०) मरुद्वृधा :- यह एक नदीका नाम है। मरुतोंसे बढ़ने वालीको मरुद्वृधा कहेंगे। लगता है यह नदी, तूफान जनित वर्षासे बढ़ने घाली थी। निरुक्तके अनुसार मरुद्वृधा: सर्वा नद्यो मरुत एना वर्धयन्ति।[४९] अर्थात् हवा इन सभी को बढ़ाती है। इस निर्वचन के अनुसार मरुत् + वृध् वृद्धौ धातु के योग से मरुद्वृधा: शब्द निष्पन्न माना जायगा। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एव अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार यह सर्वथा संगत

है। यास्कके उपर्युक्त निर्वचनसे प्रतीत होता है कि यह नाम समी नदियोंके विशेषणके रूप में प्रयुक्त है।[६९] राथ का मंतव्य है कि असिक्नी तथा वितस्ता नदियोंके मिलनेके बाद बनने वाली नदी मरुद्वृधा है जो बादमें परुष्णीमें मिलती है।[७०] त्सिमर ने भी इसी मंतव्यको स्वीकार किया है।[७१] लेकिन लुडविगके विचारसे परुष्णी, असिक्नी तथा वितस्ताके संगमके बाद बनने वाली नदीका नाम मरुद्वृधा है।[७२] मैकडोनेल तथा कीथ राथके विचार पुष्टिको ही अधिक संगत मानते हैं।[७३]

(५१) वितस्ता :- यह एक नदी विशेषका नाम है। निरुक्तके अनुसार वितस्ताऽविदग्धा[७४] अर्थात् यह नदी अविदग्ध थी, जली नहीं थी। ब्राह्मण ग्रन्थोंके अनुसार एक अनुश्रुति प्रचलित है-वैदेहिक नाम की अग्निने सभी नदियोंको जला दिया। केवल वितस्ता बची रही। इसीलिए अविदग्ध होनेके कारण यह नदी वितस्ता कहलायी।[७४] इसके अनुसार अविदग्धासे वितस्ता माना जायगा अविदग्धा-विदग्धा-वितस्ता। (२) विवृद्धा महाकूला[७५] अर्थात् जो बढ़ी हुई किनारों वाली है या बड़े किनारों वाली है। इसके अनुसार विवृद्धासे वितस्ता मानी गयी है। प्रथम निर्वचनमें आंशिक ध्वन्यात्मकता है। दोनों निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। प्रथम निर्वचन ऐतिहासिक आधारसे युक्त है। द्वितीय निर्वचन रूपात्मक आधार रखता है। वितस्ताका आधुनिक काश्मीरी रूप वेथ है। मुसलमान इतिहासकारोंने वितस्ता को विहूत या विहत के रूपमें कर दिया है।[७५]

(५२) आर्जिकीया :- यह एक नदी विशेषका नाम है। इसे विपाशा भी कहते हैं। निरुक्तके अनुसार आर्जिकीयां विपाडित्याहुः ऋजीक प्रभवा वा ऋजुगामिनी वा[७६] अर्थात् आर्जिकीया ही विपाट् कहलाती है। यह ऋजीक नामक पर्वतसे निकली हुई है या सीधे बहने वाली ऋजुगामिनी है। इसके अनुसार ऋजीकसे आर्जिक-आर्जिकीया माना जायगा। ऋजु गामिनीसे आर्जिकीयामें पूर्ण ध्वन्यात्मकता नहीं है। ऋजीक्से आर्जिकीया ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्व रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसी संगत माना जायगा। इस नदी का एक दूसरा नाम उरुञ्जिरा भी है[७७] जिसका अर्थ होता है काफी जल वाली।

(५३) विपाट् :- यह आर्जिकीया नदीका ही दूसरा नाम है। निरुक्त के अनुसार (१) विपाटनाद्वा[७८] अर्थात् यह नदी तीव्र गतिसे चल कर भूमि को उखाड़ती रहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें वि + पट्गतौ धातुका योग है। (२) विपाशनाद्वा[७९] अर्थात् पाशसे रहित होने के कारण विपाश-विपाट् कहलायी। पहले इस नदी का नाम उरुञ्जिरा था।[८०] उरुञ्जिरा का अर्थ होता है प्रभूत जल

वाली उरूज्जला-उरूञ्जिला उरूञ्जिरा। पुत्र के मरण जन्य शोक से पीड़ित वशिष्ठ मरने की इच्छा से पाशमें बंध कर इस नदीमें डूब गये। लेकिन वे पाश इसके जलसे खुल गये।[७६] अर्थात् इसने वशिष्ठ को पाश से मुक्त किया। इसके अनुसार इस शब्दमें वि + पश् बन्धने धातुका योग है- विपाश्-विपाड्। (३) विप्रापणाद्वा[४९] अर्थात् विविध स्थानोंको इसने जल प्राप्त कराया। इसके अनुसार इस शब्दमें वि + प्र + आप् प्रापणे धातुका योग है विप्राप्-विपाट्। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखता है। अंतिम निर्वचनमें ध्वन्यात्मकता का अभाव है। व्याकरणके अनुसार वि + पश् वन्धने धातुसे क्विप् प्रत्यय कर विपाश् विपाट् शब्द बनाया जा सकता है।[७७] आजकल के पंजाब की व्यास नदी ही वैदिककालीन विपाट् थी।

(५४) सुषोमा :- सिन्धुको ही सुषोमा कहा गया है। निरुक्तके अनुसार सुषोमा सिन्धुर्यदेनामभि प्रसुवन्ति नद्य:[४९] अर्थात् इस नदीमें बहुत सी नदिया जाकर मिलती है।[७८] इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें सु- प्रसवैश्वर्ययो: धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(५५) आप :- इसका अर्थ होता है जल। निरुक्तके अनुसार आप: आप्नोते:[४९] अर्थात् यह शब्द आप्लृ व्याप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह सर्वत्र व्याप्त है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार आप् + अण् + आप: बनाया जा सकता है।[७९]

(५६) ओषधय :- इसका अर्थ होता है रोग निवारक दवाइयां। निरुक्तके अनुसार (१) ओषत् धयन्तीतिवा[४९] अर्थात् शरीरस्थ रोग तापको यह समाप्त कर देती है। इसके अनुसार इस शब्दमें ओषत् (दाह को) + धेट् पाने धातुका योग है। (२) ओषत्येना धयन्तीतिवा[४९] अर्थात् शरीरमें दाह या ताप रहने पर इन दवाइयों को लोग पीते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें ओषति + धेट्पाने धातुका योग है। (३) दोषं धयन्तीति वा[४९] अर्थात् यह त्रिदोषों (वात, पित, कफ) को नष्ट कर देती है। इसके अनुसार इस शब्दमें दोष + धेट् पाने धातुका योग है। प्रथम दो निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें उपयुक्त माना जायगा। अन्तिम निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। इसका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार ओष+ धा +कि: प्रत्यय कर ओषधि: ओषधय: शब्द बनाया जा सकता है।[८०]

निरुक्तमें ओषधि:का प्रयोग वनस्पतिके अर्थमें प्राप्त होता है।[८१]

(५७) अरण्यानी :- यास्कके अनुसार इसका अर्थ होता है अरण्यकी पत्नी। निरुक्तके अनुसार अरण्यान्यरण्यस्य पत्नी। अरण्यमपार्णं भवति ग्रामात्।[४९] अर्थात् अरण्य गांव से दूर होता है।[८२] इसके अनुसार इस शब्दमें अप +ऋ गतौ धातुका योग है। अप +ऋ- अर= अपार्ण अरण्य। (२) अरण्यं अरमणं भवतीति वा[४९] अर्थात् वह अरमणीय होता है सुखद नहीं होता। इसके अनुसार इस शब्दमें अ-(नञ्) + रम् धातुका योग है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे प्रथम निर्वचन संगत है। अर्थात्मक आधार दोनों निर्वचनोंके उपयुक्त हैं। व्याकरणके अनुसार अरण्य शब्द ऋ गतौ धातुसे ण्य प्रत्यय कर बनाया जा सकता है।[८३] अरण्यानी शब्द अरण्य शब्दमें ङीष् प्रत्यय कर बनाया गया जो जंगल की पत्नी अर्थका वाचक है। पाणिनी अरण्यानीका अर्थ भयानक जंगल करते हैं। महारण्य के अर्थमें ही अरण्यसे ङीष् प्रत्ययका विधान पाणिनिको अभीष्ट है। वररूचि भी हिमारण्ययोर्महत्त्वे वार्तिक के द्वारा उक्त अर्थको ही स्पष्ट करते हैं।[८४]

(५८) श्रद्धा :- चतुर्विध पुरुषार्थों में विना विपर्यय के यथावत् समझने वाली बुद्धि का नाम श्रद्धा है। निरुक्तके अनुसार-श्रद्धा श्रद्धानात्। श्रत सत्यं धीयतेऽस्यां सा श्रद्धा।[४९] अर्थात् श्रत सत्यका वाचक है वह इसमें धारण किया जाता है इसलिए श्रद्धा कहलाती है।[८५] इसके अनुसार इस शब्दमें श्रत् +धा धारणे धातुका योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार श्रत्+धा+अङ् +टाप् = श्रद्धा बनाया जा सकता है।[८६]

(५९) ऋक्षर :- इसका अर्थ होता है कांटा। निरुक्तके अनुसार ऋक्षर: कण्टक: ऋच्छते:[४९] अर्थात् ऋक्षर शब्द ऋच्छ् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह वृक्ष आदिके ऊपर उभरा होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार ऋक्ष् धातु से अच् = ऋक्ष +र= ऋक्षर: बनाया जा सकता है।

(६०) कण्टक :- इसका अर्थ होता है- कांटा। निरुक्तके अनुसार-कण्टक: कन्तपोवा[४९] अर्थात् यह शब्द कम् + तप् धातुके योगसे निष्पन्न है, क्योंकि मैं किसे कष्ट दूं ऐसा सोचकर ठहरने वाला है।[८७] अत: कम् + तप् =.कन्तप- कण्टक। (२) कृन्ततेर्वा[४९] अर्थात् यह शब्द कृती छेदने धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह छेद देता है या चुभ जाता है। (३) कण्टतेर्वा स्याद्गतिकर्मण: अर्थात् यह गत्यर्थक कट् धातु के योग से निष्पन्न होता है क्योंकि यह वृक्ष के

ऊपर निकला हुआ होता है।[८८] अन्तिम दो निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार संगत है। इनके ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। कृत् धातुसे कण्टकमें मूर्धन्यीकरणका नियम लागू है। प्रथम निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। व्याकरणके अनुसार कटि गतौ धातुसे ण्वुल्[८९] प्रत्यय कर कण्टकः शब्द बनाया जा सकता है।

(६१) अग्नायी :- इसका अर्थ होता है अग्निकी पत्नी। निरुक्तके अनुसार अग्नाय्यग्नेः पत्नी[९१] यास्क मात्र इसका विग्रह करते हैं। यह सामासिक शब्द है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त माना जायगा।

(६२) मुसलम् :- इसका अर्थ होता है- मूसल (समाठ)। निरुक्तके अनुसार मुहः सरम्[९०] अर्थात् यह बार-बार गति करता है ऊपर नीचे जाता है। ओखल में बारबार गमन करनेके कारण मूसल कहलाया।[९१] इसके अनुसार मुहुः +सृ गतौ धातुसे मुसलम् शब्द निष्पन्न माना जायगा। मुहुः सृ- सरम् = र का ल वर्ण परिवर्तन मुहु का मु + सृ+सरम् = मुसलम्। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार मुस् खण्डने धातुसे वलच् प्रत्यय कर मुसलम् शब्द बनाया जा सकता है।[९२]

(६३) हविर्धाने :- इसका अर्थ होता है हवियों को ढोने वाली बैलगाड़ी। हविर्धाने हविर्धानका सम्बोधन पद है। निरुक्तके अनुसार- हविर्धाने हविषां निधाने[९९] अर्थात् हविः को धारण करने वाला। इसके अनुसार हविस्+धा धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। वैदिक कालमें सोमलताको गाड़ियों पर लादकर ले जाया जाता था। हविर्धान उसी सोमलताको ढोने वाली गाड़ीका वाचक है।

(६४) आर्त्नी :- इसका अर्थ होता है- धनुष कोटि। धनुषके किनारेका वह भाग जिसमें डोरी बंधी रहती है। निरुक्तके अनुसार (१) आर्त्नी आर्तन्यौ[९०] अर्थात् यह शब्द ऋत् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि धनुष कोटियां आपसमें झुकती हैं।[९३] ऋत् से ऋ का गुण होकर आर्त्नी बन गया है। (२) वारण्यौ अर्थात् यह शब्द ऋ गतौ धातुके योगसे बनता है। गमन करने के कारण आर्त्नी कहलाया, क्योंकि वाणोंको गति देते हैं ऋ-आर्त्नी। (३) वारिषण्यौ[९०] अर्थात् आङ् उपसर्ग पूर्वक रिष् हिंसायां धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है, क्योंकि ये शत्रुओंको हिंसा करती है। आङ् + रिष् = आर्त्नी। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है।

(६५) शुनासीरौ :- यह वायु एवं आदित्य दो देवताओंका वाचक है। मेकडोनेल एवं कीथ कृषि देवताओंके नामके रूपमें शुनासीर शब्दको मानते हैं।[९४] निरुक्तके अनुसार-शुनो वायु: शु एत्यन्तरिक्षे, सीर आदित्य: सरणात्[९५] अर्थात् शुन: वायु का वाचक है क्योंकि वे शीघ्रतासे अन्तरिक्षमें गमन करते हैं। इस निर्वचनमें शु शीघ्रताका वाचक है तथा नु गत्यर्थक धातु है-शु + नु = शुन:, सीर: सृगतौ धातु से निष्पन्न होता है, आदित्य भी गमन करते हैं। सृ-सीर:। शु+नु गतौ = शुन: ,सृ -सीर:शुनाशीर:। यह निर्वचन सामासिक प्रक्रिया पर आधारित है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।यह देव युगल कृषि प्रधान देवताके रूपमें पठित हैं यद्यपि आदित्य द्युस्थानीय तथा वायु अन्तरिक्षस्थानीय हैं।

(६६) देवीजोष्ट्री :- दो देवताओंका युग्म द्यावापृथिवी या दिन रात या व्रीह्यादि अन्न एवं संवत्सरका वाचक है। निरुक्तके अनुसार देवीजोष्ट्री देव्यौ जोषायित्र्यौ द्यावापृथिव्याविति वाहोरात्रे इतिवा। शस्यं च समाचेति कात्थक्य:।[९५] अर्थात् देवीजोष्ट्री जो दो देवियां हैं तथा तृप्ति प्रदान करने वाली है। इसके अनुसार देवी + जुष् प्रीतिसेवनयो: धातुसे जोष्ट्रीका योग ही देवी जोष्ट्री है। यास्क इसे द्यावापृथिवी या दिन रात मानते हैं। आचार्य कात्थक्य व्रीह्यादि अन्न एवं सम्वत्सर मानते हैं। यास्कके इस शब्दका निर्वचन स्पष्ट है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(६७) देवीऊर्जाहुती :- यह दो देवताओंका युग्म है तथा द्यावापृथिवी, दिनरात या शस्य सम्वत्सरका वाचक है। निरुक्तके अनुसार देवी ऊर्जाहुती देव्या ऊर्जाह्वान्यौ द्यावापृथिव्याविति वाहोरात्रे इतिवा शस्यं च समाचेति कात्थक्य:।[९५] अर्थात् ये देवियां अन्न एवं रसोंको आह्वान करने वाली है। इसके अनुसार देवी +ऊर्जा + ह्वे स्पर्धायां शब्दे च धातु का योग है। आचार्य यास्कके अनुसार यह द्यावापृथिवी या दिन रातका वाचक है तथा आचार्य कात्थक्य के अनुसार यह शस्य तथा सम्वत्सरका वाचक है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जाएगा।

-: संन्दर्भ सूची :-

१ - नि. ९।१, २ - वसिवपियजिव्रजिसदिहनिवारिभ्य इञ् - उणा

४।१२५, ३ - अयं नः सर्वतः शं करोऽस्त्विति सर्वैराशासितव्यो भवति नि. दु. वृ ९।१, ४ - दी इटीमौलौजीस ऑफ यास्क पृ. ७१, ५ - भद्रं वद दक्षिणतो भद्रमुत्तरतोवद। भद्रं पुरस्तान्नो वद, भद्रं पश्चात्कपिंजलः ॥ नि. ९।१, ६ - शकेरुनोन्तोन्त्युनयः - उणा. ३।४९, ७ - मंगलं किल स्तुत्यं भवति - नि. दु. वृ. ९।१, ८ - अंगानि दधिमध्वक्षतानि अस्य सन्तीति अंगरम् (मत्वर्थेरः) रलयोरैक्यात् अंगलम् मकारोपजननेन मंगलम् - नि. दु. वृ. ९।१, ९ - नैरुक्ताः पुनः मंगलंमज्जयतेः साधयन्ति यस्मान्मंगलं पापं मज्जयति नाशयति। - नि. दु. वृ. ९।१, १० - मंगेरलच् - उणा. ५।७०, ११ - शलमण्डिभ्यामूकण् - उणा ४।२२, १२ - मोदत्यार्थात् मदतेः वा साध्याः नित्यमुदिता हि एते - नि. दु.वृ. ९।१, १३ - तृप्त्यर्थात् मन्दतेर्वा स्युः प्रचुरोदकवासित्वात् नित्यतृप्ता हि इमे - नि. दु. वृ. ९।१, १४ - शलमण्डिभ्यामूकण् - उणा. ४।२२, १५ - इमे विधात्रा नैकचित्राभिः भक्तिभिः मण्डिता भवति - नि. दु. वृ. ९।१, १६ - दीव्यन्ते कितवाः यस्मादेतान् हस्तैः अश्नुवते व्यापयन्ति तस्मादक्षाः - नि. दु. वृ. ९।१, १७ - दी इटामौलौजीज ऑफ यास्क पृ. ३९, १८ - पचाद्यच् - अष्टा. ३।१।१३४, १९ - वाचस्पत्यम् - भा. २ पृ. ९८३, २० - मनु. स्मृति (द्र.), २१ - वाचस्पत्यम् - भा. ६ पृ. ४९१५, २२ - ऋ. १०।३४।१, २३ - अन्येभ्योऽपि. वा. ३।२।१०१ इति ड. , २४ - वाचस्पत्यम् - भाग ६ पृ. ५१५८, २५ - श्लोकस्तु पद्यबन्धे यशस्यपि. - है म. २।२१, २६ - श्लोके षष्ठं गुरूज्ञेयं .....वृत्तरत्नाकर , २७ - शोकः श्लोकत्वमागतः - ध्वन्यालोक, २८ - घोष आभीरपल्यां स्यात् गोपालध्वनिघोषके - मेदि. १६६।११, २९ - वाच. भा. ६ पृ. ४०४७, ३० - अष्टा. ३।३।१९, ३१ - नि. दु. वृ. ९।१, ३२ - नि. ९।२, ३३ - दी इटीमौलौजीज ऑफ यास्क पृ. ११०, ३४ - हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन् - उणा. २।२, ३५ - द्रुमात् पूर्वं परम् मिदेरुत्तरम्। यत एष द्रुमसम्भवः चर्मणा च पिनद्धो भवति - नि. दु. वृ. ९।१, ३६ - इगुपधात् कित् - उणा. ४।१२०, ३७ - कर्मण्यधिकरणे च अष्टा, - ३।३।९३, ३८ - पातेर्डुमसुन् - उणा. ४।१७८, ३९ - अर्तिपृवपियजितनिधान्तिपिभ्योनित् - उणा. २।११७, ४० - ईषेः किच्च - उणा. १।१३, ४१ - आकाश गुणः शब्दः - नि. १४।१ खे सुखे शेते इति खशयासती कशा - नि. दु. वृ. ९।२, ४२ - अष्टा. ३।१।१३४, ४३ - वीची तरंग न्यायेन तदुत्पतिस्तुकीर्तिता। कदम्ब गोलक न्यायात् उत्पत्तिः कस्यचिन्मते।। (सि. मु. - शब्द खंड - का. १६६), ४४ - असिसंजिभ्यां क्थिन् - उणा. ३।१५४, ४५ यङ लुगन्तात् अच् - अष्टा. ३।१।१३४ (हन्यतेः शरीरावयवे द्वे च इत्यच् द्वित्वं च अभ्यासाच्च इति कुत्वम् - हन्ता को. पृ. ३०८, ४६ -

उरु मे करदिति तदुरूकरं ह वै तदुलूखलमित्याचक्षते - शत. ब्रा. ७।५।९।२२, ४७ - आतोऽनुपसर्गे कः - अष्टा. ३।२।४, ४८ - . १।२८।५, ४९ - नि. ९।३, ५० - अज्यतिभ्यां च - उणा. ४।१३१, ५१- प्रधनं कस्मात् ? उच्यते यतोऽस्मिन् प्रकीर्णानि धनानि भवन्ति तस्मात् प्रधनं युद्धम् - नि. दु. वृ. ९।३, ५२ - कृपृवृजिमन्दिनिधाञः क्नुः, ५३ - करणेऽयोविद्रुषु - अष्टा. ३।३।८२ पूर्वपदात्संज्ञायामगः अष्टा. ८।४।३, ५४- पृत्तनानाम् सेनानाम् - नि. दु. वृ. ९।३, ५५ - मुद्गलोभार्म्यश्वः नि. दु. वृ. ९।३, ५६ - मुद्गवान् मुद्गलः मत्वर्थे लो नामकरणः - नि. दु. वृ. ९।३, ५७ - वाच. - भा - ६। पृ. ४७५७, ५८ - इन निर्वचनों से मुद्गल ऋषि की प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। हर्षामर्ष से रहित स्थित प्रज्ञ के रूप में मुद्गल वर्णित है।, ५९ - तवेर्णिद्वा - उणा. १।४८, ६० - यतः सा विशिष्टं स्थानं गच्छति गमयति वा तस्मात् गंगा। - नि. दु. वृ. ९।३, ६१ - गन्गाम्यद्योः - उणा. १।१२०, ६२ - यस्मादियं स्वमुदकमन्याभिः नदीभिः प्रयुवती मिश्रयती गच्छति ततो यमुना इत्युच्यते - नि. दु. वृ. ९।३, ६३ - अजियमिशीडभ्यश्च - उणा. ३।६१, ६४ - सरसा उ दकेन तद्वती भवति - नि. दु. वृ. ९।३, ६५ - तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् - अष्टा. ५।२।९४, ६६ - पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः।। ऋ. १।३।१० नि. - ११।३, ६७ - इगुपधात् कित् - उणा. ४।१२०, ६८ - हलायुध - पृ. १४३, ६९ - मरुद्वृधाः सर्वा एव नद्यः मरुद्वृधा उच्यन्ते यस्मादेना मरुतः वर्धयन्ति वर्षेण - नि. दु. वृ. ९।३, ७० - व्सु. वे. १३८ तथा वाद का अंश, ७१ - आल्टिण्डिशे लेबेन ११,१२, ७२ - ऋग्वेद का अनुवाद ३।२००, ७३ - वै. इण्डे. भाग २। पृ. १५१, ७४ - वैदेहिको नामाग्निः सोऽन्या नदीः निर्ददाह न वितस्तामिति सामिधेनी - ब्राह्मणेऽनु श्रूयते। तस्मादियम् अविदग्धेत्युक्ता - नि. दु. वृ. ९।३, ७५ - वै. इण्डः भाग २। पृ. ३३०, ७६ - सुतमरणशोकार्तः वशिष्टः मुमूर्षुः आत्मानं पाशैर्वद्धा अस्यां ममज्ज ते च पाशाः अस्यां उदकेन व्यपाश्यन्त। नि. दु. वृ. ९।३, पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद्विपाडुच्यते - नि. ९।३, ७७ - अष्टा. ३।२।७६, ७८ - यत एनाम् अत्रिप्रसुवन्ति अन्याः वहुलाः नद्यः अभिगच्छन्ति। - नि. दु. वृ. ९।३, ७९ - तस्य समूहः - अष्टा. ४।२।३७, ८० - कर्मण्यधिकरणे च - अष्टा. ३।३।९३, ८१ - नि. ६।१, ६।६, ८२ - तद्धि ग्रामात् अपार्णं - अपगतं भवति - नि. दु. वृ. ९।३, ८३ - अतेर्निच्च - उणा. ३।१०२, ८४ - अष्टा. ४।१।४९, ८५ - अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापति - नि.दु.वृ. ९।३, ८६ - हलायुध. पृ. ६७२ षिद्भिदादिभ्योऽङ् - अष्टा. ३।३।१०४, ८७ - कमहं तापयामि इत्युद्गतस्तिष्ठति - नि. दु. वृ. ९।३, ८८

- कण्टतेर्वासाध्यः यस्मात्स तरोरूद्गतो भवति।नि.दु.वृ.९।३,८९-अष्टा.३।१।१३३, ९० -नि. ९।४, ९१ -यतस्तत् मुहुःव्रीह्यादिषु सरति-नि.दु.वृ.९।४, ९२ - वृषादिभ्यश्च - उणा. १।१०६, ९३ - आर्ल्ली धनुष्प्रान्ते। यस्मात् ते अर्तन्यौ। गत्यर्थात् ऋतेः। ते हि इषून् गमयतः-नि.दु.वृ.९।४,९४ - वै. इण्डे. भाग २। बृ. ४२८, ९५ - नि. ९।४।

(घ) निरुक्तके दशम अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निघण्टुका दैवत काण्ड उसके पंचम अध्यायमें पठित है। निघण्टुके पंचम अध्यायके चतुर्थ खण्डमें ३२ देवताओंसे सम्बद्ध पद संकलित हैं। इन ३२ पदोंका निर्वचन निरुक्तके दशम अध्यायमें हुआ है।निघण्टुके पंचम अध्यायके चतुर्थखण्डके अधिकांश नाम देवताओंके है तथा कुछ नाम देवताओं से सम्बद्ध हैं।यही कारण है कि इनका संकलन दैवत काण्डमें हुआ है।

निरुक्तके दशम अध्यायमें कुल ५७ निर्वचन प्राप्त होते हैं। इन निर्वचनों में निघण्टुके पंचम अध्यायके चतुर्थ खण्डमें पठित ३२ पद भी हैं। शेष २५ पद जिनका निर्वचन यास्कने किया है वे प्रसंगतः प्राप्त हैं। सभी निर्वचनोंका भाषा विज्ञान एवं निर्वचन प्रक्रिया की दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे सर्वथापूर्ण निर्वचन निम्नलिखित हैं। इन शब्दोंके निर्वचन एकसे अधिक भी है। इन निर्वचनोंमें कुछ पदोंके सभी तथा कुछके एकाधिक निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार संगत हैं। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे सर्वथा पूर्ण निर्वचन - वायुः, वरुणः, कबन्धम्, रूद्रः, तिग्मः, आयुधम्, दिद्युत्, तोकम्, तनयम्, जरा, उत्सः, पर्जन्यः, बृहस्पतिः, चमसः, ब्रह्मणस्पतिः, क्षेत्रस्यपतिः, क्षेत्रम्, वास्तोस्पतिः, वाचस्पतिः, अपांनपात्, यमः, मित्रः, कृष्टिः, कः, हिरण्यगर्भः, गर्भः, विश्वकर्मा, मन्युः, सविता, हिरण्यस्तूपः, वातः, वेनः, जरायुः, शिशुः, रिहन्ति, असुनीतिः, इन्द्रः परूच्छेपः, प्रजापतिः और बुध्नम् है। इन शब्दोंमें किन्हीं शब्दोंके एकाधिक निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण भी हैं।

ध्वन्यात्मक शैथिल्यसे युक्त निर्वचनोंमें इन्द्रः, वृहस्पतिः ब्रह्मणस्पतिः, स्तूपः, जरायुः, शिशुः तथा परूच्छेद शब्दोंके निर्वचन परिगणनीय हैं। इनमें स्वरगत या व्यंजनगत शैथिल्य है। दशम अध्यायके कुछ निर्वचन भाषा विज्ञान की दृष्टिसे अपूर्ण भी है। वे है - शेवः, तार्क्ष्यः, मधु तथा असुरः। ये सभी निर्वचन यद्यपि निर्वचन प्रक्रिया से उपयुक्त हैं।

अर्थात्मक शैथिल्यके उदाहरणमें श्रवः को देखा जा सकता है। तनयम् शब्दमें अर्थादेश स्पष्ट है। आजकल तनयका अर्थ पुत्र होता है लेकिन यास्क ने

तनय शब्दका निर्वचन पौत्रके अर्थमें किया है। लगता है यास्कके समयमें तनय शब्द पौत्रके अर्थ में भी प्रयुक्त होता था। यास्क रूद्र एवं इन्द्र शब्दोंके निर्वचनमें ऐतिहासिक आधार को भी अपनाते है। वे इन्द्र शब्दके निर्वचनमें आग्रायणके सिद्धान्तको उपस्थापित करते है जो ऐतिहासिक एवं धार्मिक आधार पर आधारित है।

यास्क विवेचित इस अध्यायके कुछ शब्द सामासिक हैं। इनके निर्वचनों में सामासिक आधार अपनाया गया है। ब्रह्मणस्पतिः, हिरण्यगर्मः, विश्कर्मा, हिरण्य स्तूपः, और प्रजापतिः सामासिक आधार रखते हैं। पर्जन्य शब्दमें अर्थ विस्तार पाया जाता है। उत्सः शब्द जो जलप्रस्त्रवणं स्थान का वाचक है, मेघके अर्थमें प्रयुक्त है। इसका आधार लक्षणा है।

यास्क कुछ शब्दोंको पूर्व व्याख्यात है, कहकर आगे बढ़ जाते है। वस्तुतः कुछ शब्द निरुक्तमें एक से अधिक स्थलोंमें प्रयुक्त है तथा कुछ शब्द एक से अधिक स्थलोंमें व्याख्यात भी है।

इस अध्यायके प्रत्येक शब्दोंके निर्वचनोंका मूल्यांकन द्रष्टव्य है -

(१) वायु :- वायु मध्यम स्थानीय देवता हैं। निरुक्तके अनुसार - वायुर्वाते र्वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मणः[१] अर्थात् वायु शब्द गत्यर्थक वा धातु या वी धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है। वायु गतिशील है। आचार्य स्थौलाष्ठीविके अनुसार - ऐतेरिति स्थौलाष्ठीविः अनर्थको वकारः[१] अर्थात् इण् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न आयु शब्द ही वायु वन गया है, वायु में (क्व आयु) व अनर्थक है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे वर्णोपजन माना जायगा। यह आदि व्यंजनागमका परिणाम है। यास्क का निर्वचन वा धातुसे मानने पर ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे औचित्यपूर्ण माना जायगा स्थौलाष्ठीविके निर्वचनसे भी यास्क सहमत हैं। निरुक्त ९।३ में आयुः की व्याख्या में - आयुश्च वायुः अयनः कह कर स्थौलाष्ठीवि के मतकी पुष्टिकी है। व्याकरणके अनुसार वा गतिगन्धनयोः धातुसे युक् या उण् प्रत्यय कर वायु शब्द बनाया जा सकता है।[२] स्थानके अनुसार वायु अन्तरिक्षस्थानीय है जिसे मध्यम लोक कहा गया है। अन्तरिक्ष में गमनागमन वायुकी विशेषता है।

(२) श्रव :- यह अन्न का नाम है। निरुक्तके अनुसार - श्रव इति अन्न नाम श्रूयते इतिसतः[१] अर्थात् यह श्रु श्रवणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह सदा सुना जाता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मकता पूर्ण उपयुक्त नहीं। श्रवः कर्णका भी वाचक है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा। व्याकरणके अनुसार श्रूयतेऽनेनेति। श्रु +सर्वधातुभ्योऽसुन् कर श्रवः बनाया जा सकता है।[३]

(३) **वरुण** :- यह जल देवताका नाम है। निरुक्तके अनुसार - वरुणो वृणोतीति सतः अर्थात् यह शब्द वृ वरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। क्योंकि वह (मेघ समूह) आकाशको आवृत करता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वृञ् वरणे धातुसे उनन् प्रत्यय कर वरुण शब्द बनाया जा सकता है।

(४) **कबन्धम्** :- इसका अर्थ मेघ होता है। निरुक्तके अनुसार - कबन्धम् मेघम्। कवनमुदकं भवति तदस्मिन् धीयते[१] कवनका अर्थ जल होता है तथा वह इसमें रखा जाता है यानि मेघ। इसमें कवन + धा धातुका योग है। कबन्धका अर्थ जलभी होता है - उदकमपि कबन्धमुच्यते बन्धिरं निभृतवे कमनिभृतं च प्रसृजति[१] यह अनिभृत अर्थ वाले बन्ध् धातुसे निष्पन्न हुआ है क्योंकि यह (जल) चंचल होता है। यह सुख कारक है। प्रथम एवं द्वितीय निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार कम् + बन्ध् + अण् प्रत्यय कर कबन्धः शब्द बनाया जा सकता है।[५] शिर रहित धड़ को भी कबन्ध कहा जाता है।[६]

(५) **रुद्र** :- यह वायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - रुद्रो रौतीति सतः[१] रुद्र शब्द रु शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है क्योंकि यह शब्द करता है। (२) रोरुप्यमाणो द्रवतीतिवा१ अधिक शब्द करता हुआ गमन करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें रु शब्दे एवं द्रु धातुओंका योग है। (३) रोदयतेर्वा यह शब्द रुदिर् अश्रु विमोचने धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है क्योंकि यह शत्रुओंको रुलाता है यास्कके प्रथम एवं तृतीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। शेषका अर्थात्मक महत्त्व है। रुद्रके रोनेकी बातकी पुष्टि यास्क विभिन्न संहिताओंके उद्धरणसे करते है।[७] काठक संहिताके अनुसार उस रुद्रने प्रजापतिको वाणसे बींध दिया पश्चात् पश्चात्ताप करता हुआ रो पड़ा। इस आधार पर रोदीतीति रुद्र भी कियाजा सकता है। रुद्र को रोने की बात ऐतिहासिक आधार रखता है। अतः इस निर्वचनका आधार ऐतिहासिक माना जायगा। व्याकरणके अनुसार रुदिर् अश्रु विमोचने धातुसे रक् प्रत्यय कर रुद्रः शब्द बनाया जा सकता है।[८] वेदमें अग्निको भी रुद्र कहा गया है (ऋ. १।२७।१०)।[९] लौकिक संस्कृतमें रुद्र शब्द प्रायः शंकरके लिए प्रयुक्त हुआ है।[१०] गुणसादृश्यके आधार पर शंकर भी कालान्तरमें रुद्र कहलाये।

(६) **तिग्मम्** :- इसका अर्थ होता है तीक्ष्ण। निरुक्तके अनुसार - तिग्मं

तेजतेरूत्साहकर्मणः यह शब्द उत्साहार्थक तिज् धातुके योगसे निष्पन्न होता है इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार तिज् निशाने धातु से मक् प्रत्यय कर तिग्म शब्द बनाया जा सकता है।[११]

(७) आयुधम् :- इसका अर्थ शस्त्र होता है। अश्व, रथ, धनुष, कवच आदि युद्धोपकरण का यह वाचक है।[१२] ऋग्वेदमें इसका प्रयोग धनुषबाणके अर्थ में हुआ है।[१३] निरुक्तके अनुसार - आयुधमायोधनात् इसके अनुसार आङ् + युध् धातुके योगसे आयुध शब्द निष्पन्न माना जायगा क्योंकि इसकी सहायतासे युद्ध किया जाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार आङ्युधक् प्रत्यय कर आयुधम् शब्द बनाया जा सकता है।[१४]

(८) दिद्युत् :- इसका अर्थ आयुध होता है। निरुक्तके अनुसार (१) दिद्युत्, द्यतेर्वा[१] यह शब्द दो अवखण्डने धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह शत्रुओंको अवखण्डन करता है। (२) द्युतेर्वा[१] इसके अनुसार यह शब्द द्यु अभिगमे धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है क्योंकि यह शत्रुओंकी ओर अभिगमन करता है। (३) द्योततेर्वा इसके अनुसार इस शब्दमें द्युत् दीप्तौ धातुका योग है, क्योंकि यह चमकता रहता है। प्रथम तथा अंतिम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है प्रथम निर्वचनसे क्रियात्मकता भी स्पष्ट होती है। व्याकरणके अनुसार दो अवखण्डनेक्विप् - द्वित्व कर या द्युत् दाप्तौ धातुसे क्विप् - द्वित्व कर दिद्युत् शब्द बनाया जा सकता है। ऋग्वेद में यह दिव्यास्त्र या बाणका वाचक है।[१५]

(९) तोकम् :- इसका अर्थ पुत्र होता है। निरुक्तके अनुसार - तोकम् तुद्यतेः[१] तोक शब्द तुद् व्यथने धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह व्यथाका कारण होता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। यास्कके समयमें पुत्र दुःखका कारण होता होगा। आजकल इसे सुखका कारण माना जाता है। आजकल इसकी अर्थात्मकता पूर्ण संगत नहीं मानी जायगी। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार तु पूर्तौ धातुसे कः प्रत्यय कर तोकम् शब्द बनाया जा सकता है।[१६] ऋग्वेदादि में तोक सन्तान तथा वंशजका वाचक है।[१७] ऋग्वेदमें पुत्रके अर्थमें भी इसका प्रयोग देखा जाता है।[१८]

(१०) तनयम् :- यास्कने इसका अर्थ पौत्र किया है। तनयं तनोतेः[१] यह शब्द तनु विस्तारे धातु के योगसे निष्पन्न होता है क्योंके इससे वंश परंपरा

का विस्तार होता है। कालान्तरमें यह शब्द पुत्रके लिए प्रयुक्त होने लगा।[१९] इसे अर्थादेश कहा जायगा। यास्कके उपर्युक्त निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार तनु विस्तारे धातु से कयन् प्रत्यय कर तनयम् शब्द बनाया जा सकता है।[२०] ऋग्वेदमें तनय सन्तान या वंशजका वाचक है।[२१] पुत्रके अर्थमें भी तनय सम्बन्धी यास्कीय निर्वचन उपयुक्त होंगे। लौकिक संस्कृतमें तनयः शब्द पुत्रका वाचक है।[२२]

(११) जरा :- इसका अर्थ स्तुति होता है। निरुक्तके अनुसार - जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः[१] यह शब्द स्तुत्यर्थक जृ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इससे स्तुतिकी जाती है या यह स्तुतिके लिए प्रयुक्त है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें जरा शब्द बुढ़ापेका वाचक है जो जृष् वयोहानौ धातु + अङ्[२३] प्रत्ययसे निष्पन्न होता है। यास्कके समयमें जृष्स्तुतौ धातु रहा होगा। जरा शब्दमें अर्थ परिवर्तन माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें प्रयुक्त वृद्धके लिए जरा शब्दमें तो अर्थादेश ही हो गया है। निरुक्तमें जरा शब्द बुढ़ापेके अर्थमें भी प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेदमें भी जरा शब्द बुढ़ापेके अर्थको द्योतित करता है।[२४]

(१२) इन्द्रः :- यह एक देवता विशेषका नाम है। निरुक्तमें इसके कई निर्वचन उपलब्ध होते हैं। (१) इन्द्र इरां दृणातीतिवा[१] यह मेघको विदारण करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें इरा + दृ विदारणे धातुका योग है। (२) इरां ददातीति वा यह अन्न प्रदान करने वाला है। इसके अनुसार इन्द्र शब्द में इरा + दा धातुका योग है। इरा अन्नका वाचक है। (३) इरां दधातीति वा यह अन्नको धारण करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें इरा + धा धारणे धातुका योग है। यहां भी इरा अन्नका ही वाचक है। इरा + धा - घः= इन्द्रः। (४) इरां दारयते इति वा यह मेघका विदारण करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें इरा +चौरादिक दृ विदारणे धातुका योग है। इरा मेघका वाचक है- इरा+ दारयिता (दृ) इन्द्रः। (५) इरां धारयते इतिवा यह अन्न धारण करने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें इरा + धृ धारणें धातुका योग है। इरा अन्नका वाचक है तथा चौरादिक धृ धातु है। ६- इन्दवे द्रवतीति वा जो सोमपान के निमित्त यज्ञादि में जाता रहता है। इसके अनुसार इन्दु + द्रु गतौ धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होता है। इन्दु सोम का वाचक है। इन्दु + दु-द्रवृ इन्द्रः। ७- इन्दौ रमते इतिवा जो सोम में रमण करता है। इस शब्दं में इन्दु + रमु क्रीड़ायां धातु का योग है। इन्दु + रम् + इन्द्रः। (८) इन्धे भूतानीतिवा जो प्राणियों को अन्न देकर

बलयुक्त करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें इन्ध +रक् है या इन्ध शब्द ही इन्द्र बन गया है। इन्ध अन्नका वाचक है। उपर्युक्त सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। ध्वन्यात्मकता किसीमें पूर्ण उपर्युक्त नहीं। इन निर्वचनोंमें स्वरगत एवं व्यंजनगत औदासिन्य स्पष्ट है। इन्द्र शब्दका निर्वचन ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होता है- तद् यदेनं प्राणैः समैन्धंस्तद् इन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते[२५] प्राणाधिदेवताओं ने उसे उद्दीपित किया, यही इन्द्रका इन्द्रत्व है। इसके अनुसार इन्द्र शब्दमें इन्ध् दीप्तौ धातु+रक् प्रत्ययका योग है।

इन्द्र शब्द के निर्वचन प्रसंगमें यास्क अपने पूर्ववर्ती या समकालीन आचार्यों के सिद्धान्तोंका भी उल्लेख करते हैं- (१) आचार्य आग्रायणके अनुसार इदंकरणादित्याग्रायणः इसने यह सब कुछ किया इसलिए इन्द्र कहलाया। इसके अनुसार इस शब्दमें इदम् + कृ करणे धातुका योग है। इदं +कृ- इदंकरः = इन्द्रः।(२)(क) आचार्य औपमन्यवके अनुसार- इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः उसने सब कुछ दर्शन किया इसलिए इन्द्र कहलाया। इसके अनुसार इस शब्दमें इदं + दृश् दर्शने धातुका योग है। इदं + दृश्-इदं-दर्शी=इन्द्रः। (ख) इन्दतेवैश्यर्कर्मणः यह परमैश्वर्यशाली है। इसके अनुसार इस शब्दमें इदि परमैश्वर्ये धातुका योग है। (ग) इन्दं छत्रूणां दारयिता वा वह परमैश्वर्यशाली होकर शत्रुओं को भगाने वाला है। इसके अनुसार इन्द् + द्रु- द्रावि= इन्द्रः है। द्रु णिजन्त है। (घ) इन्दन् शत्रूणां दारयिता वा परमैश्यशाली होता हुआ शत्रुओंको विदारण करने वाला है। इसके अनुसार इन्द्र + दृ विदारणे धातुके योगसे इसे निष्पन्न माना जायगा। यहां भी दृ णिजन्त है (ङ) आदरयिता च यज्वनाम्- यह यज्ञ करने वाले लोगोंको आदर करने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें इन्द + दृङ् आदरे धातुका योग है। आग्रायण एवं औपमन्यवके निर्वचन ऐतिहासिक आधार रखते हैं तथा कुछ कर्माश्रित हैं। यास्क के निर्वचन इन दोनों आचार्योंके निर्वचनोंकी अपेक्षा अधिक भाषा वैज्ञानिक है। आचार्य औपमन्यव के अन्तिम तीन निर्वचन ऐतिहासिक एवं धार्मिक आधार रखते हैं। इदि ऐश्वर्ये धातुसे रन् प्रत्यय कर इन्द्र शब्द बनाना भाषा वैज्ञानिक आधार रखता है। औपमन्वय के निर्वचन ध्वन्यात्मक महत्त्वसे युक्त है। व्याकरणके अनुसार इदि परमैश्वर्ये धातुसे रन् प्रत्यय कर इन्द्रः शब्द बनाया जा सकता है।[२६]

(१३) उत्स :- निरुक्तके अनुसार उत्स मेघका वांचक है- (१) उत्स उत्सरणात् यह ऊपर अन्तरिक्षमें गमन करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें उत् +सृ गतौ धातुका योग है। (२) उत्सदनाद्वा यह ऊपर ही विखर जाता है।

इसके अनुसार इस शब्दमें उत् +सद् विशरणगत्यवसादनेषु धातुका योग है। (३) उत्स्यन्दनाद्वा यह ऊपर से ही स्रवित होता है। इसके अनुसार इस शब्दमें उत् +स्यन्द् धातुका योग है। (४) उनत्तेर्वा यह आर्द्र करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें उन्दी क्लेदने धातुका योग है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। व्याकरणके अनुसार उन्दीक्लेदने धातुसे स: प्रत्यय कर उत्सम् शब्द बनाया जा सकता है।[२७] कालान्तरमें लौकिक संस्कृतमें यह शब्द जल प्रस्रवणस्थानके लिए प्रयुक्त हुआ है।[२८] इसे अर्थ विकासकी संज्ञा दी जा सकती है जो लाक्षणिक आधार रखता है।

(१४) पर्जन्य :- इसका अर्थ मेघ होता है। निरुक्तके अनुसार (१) पर्जन्यस्तृपेराद्यन्त विपरीतस्य तर्पयिता जन्य: यह शब्द तृप् तृप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। तृप् धातुको आद्यन्त विपर्यय कर तृप्-पर्त् +जन्य: = पर्जन्य: बनाया जाता है। यह सभी लोगोंको तृप्त करने वाला होता है। तर्प् - जन्य:, पर्त् +जन्य:= पर्जन्य:। (२) पराजेता वा यह पर्जन्य सर्वोत्कृष्ट जेता है। अकाल पर विजय प्राप्त करने वाला है। इसके अनुसार इस शब्द में पर +जि जये धातुका योग है। (३) परोजनयिता वा यह सर्वाधिक अन्नादि उत्पन्न करने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें पर +जनी प्रादुर्भावे धातुका योग है। (४) प्रार्जयिता वा रसानाम् यह रसोंको उत्पन्न करने वाला है। पौधोंमें रस उत्पन्न करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें प्र + अर्ज् अर्जने धातुका योग है। अर्थात्मक आधार सभी निर्वचनोंका उपयुक्त है। तृतीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्वसे पूर्ण है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जा सकता है। व्याकरणके अनुसार पर्जन्य: शब्द पृषु सेचने धातुसे निपातनसे सिद्ध होता है षकारका जकारमें परिवर्तन हो जाता है।[२९] पर्जन्य इन्द्रका भी वाचक है।[३०] कोष ग्रन्थोंके अनुसार पर्जन्य मेघ, इन्द्र तथा बादलगर्जनका वाचक है।[३१] पर्जन्य शब्दमें अर्थ विस्तार पाया जाता है।

(१५) बृहस्पति :- वृहस्पति शब्दका प्रयोग निरुक्तमें, मेघ चालक वायुके अर्थ में प्राप्त होता है। वृहस्पतिर्बृहत:पाता वा पालयिता वा वह महान् जगत् का रक्षक है। इसके अनुसार इस शब्द में बृहत् + पा रक्षणे धातु का योग है। या वह इस महान् जगत् का पालन करने वाला है। इसके अनुसार इस शब्द में बृहत् + पा पालने धातुका योग है। यह निर्वचन सामासिक आधार रखता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्व से पूर्ण है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचनमें किंचित् ध्वन्यात्मक

औदासिन्य है। लौकिक संस्कृतमें वृहस्पति देवगुरूको कहा गया है।[३२] वैदिक इण्डेक्समें वृहस्पतिको स्तुतिके अधिपति एक देवताका नाम माना गया है।[३३] वायुके अर्थमें वृहस्पति शब्दका प्रयोग ऋग्वेदमें प्राप्त होता है।[३४] व्याकरणके अनुसार यह वृहतां पतिः (वृहतां वाचां पतिः वृहस्पतिः सुडागम होकर निपातित होता है।[३५]

(१६) चमस :- इसका अर्थ होता है यज्ञपात्र या वह पात्र जिसमें भोजन किया जाए। निरुक्तके अनुसार - चमन्त्यस्मिन्निति इस पात्र में खाते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें चमु अदने धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार चमु अदने धातुसे असच् प्रत्यय कर चमसः शब्द बनाया जा सकता है।[३६] आज कलका प्रचलित चमच शब्द इससे भिन्न नहीं। लेकिन चमस निश्चय ही चमच की अपेक्षा बड़ा पात्र रहता होगा। चमचसे खाना खाते हैं तथा वैदिक कालमें चमस पात्र में खाना खाते थे। चमससे साम्य रखने वाला चमच शब्दमें आजकल अर्थ संकोच माना जायगा।

(१७) ब्रह्मणस्पति :- इसका अर्थ होता है-मेघ, जल रक्षक वायु। निरुक्तके अनुसार- (१) ब्रह्मणः पाता वा यह अन्नका रक्षक है। ब्रह्मणः अन्नका वाचक है इसके अनुसार ब्रह्मणः +पा रक्षणे धातुके योगसे ब्रह्मणस्पतिः शब्द निष्पन्न होता है। (२) ब्रह्मणः पालयितावा यह अन्नका पालक है। इसके अनुसार ब्रह्मणः+ पा पालने धातुके योगसे ब्रह्मणस्पतिःशब्द निष्पन्न होता है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।भाषाविज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचनमें किंचित् ध्वन्यात्मक औदासिन्य है,इसका अर्थात्मक महत्त्व है।व्याकरणके अनुसार ब्रह्मणःपतिः ब्रह्मणस्पति-सुडागमकर निपातित होगा।[३७]इस निर्वचनका आधार सामासिक है।

(१८) क्षेत्रस्य पति :- इसका अर्थ होता है- क्षेत्ररक्षक (वायु)। निरुक्त के अनुसार क्षेत्रस्यपतिः क्षेत्रं क्षियतेर्निवास कर्मणस्तस्य पाता वा पालयिता वा।[३८] क्षेत्र शब्द निवासार्थक क्षि धातुके योग से निष्पन्न होता है, क्योंकि इसमें निवास किया जाता है। पति शब्द पा रक्षणे या पा पालने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। प्रथम निर्वचनमें क्षेत्रस्य +पा रक्षणे धातु है तथा द्वितीय निर्वचन में क्षेत्रस्य + पा पालने धातुका योग है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा क्षेत्र का रक्षक या पालक। इन निर्वचनों का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। मैकडोनल

तथा कीथने इसका अर्थ किया है- क्षेत्र का अधिपति देवता।[३९]

(१९) क्षेत्रम् :- इसका अर्थ होता है- भूमि, नगर, शरीर, कलत्र आदि। यास्कके अनुसार क्षेत्रं क्षियते निवासकर्मण:[३८] अर्थात् क्षेत्र शब्द निवासार्थक क्षि धातु से निष्पन्न होता है। निवास करना अर्थ रखनेके कारण ही यह भूमि आदिका वाचक है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है। व्याकरणके अनुसार क्षि + ष्ट्रन् प्रत्यय कर क्षेत्रम् शब्द बनाया जा सकता है।[४०]

(२०) वास्तोष्पति :- इसका अर्थ होता है - आवासका अधिपति (वायु) निरुक्तके अनुसार वास्तुर्वसतेर्निवासकर्मण: तस्य पाता वा[३८] पालयिता वा[३८] वास्तु शब्द गृहका वाचक है यह निवासार्थक वस् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। उस वास्तुगृह का रक्षक या पालक वास्तोष्पति कहलायगा। प्रथम निर्वचनमें वास्तो :+ पा रक्षणे धातुका योग है तथा द्वितीय निर्वचनमें वास्तो: + पा पालने धातुका। दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वास्तोर्गृहक्षेत्रस्य पतिरधिष्ठाता। वास्तोष्पति गृहमेधाच्छ च इति निपातन द्वारा अलुक् तथा षत्व करके वास्तोष्पति शब्द बनाया जा सकता है।[४२] ब्राह्म मुहुर्त में चलने वाली हवा वास्तोष्पति कहलाती है। यह रोगोंको विनाश करने वाली होती है।

(२१) वास्तु :- इसका अर्थ होता है भूमि, गृह भूमि गृह आदि। निरुक्तके अनुसार वास्तुर्वसतेर्निवासकर्मण:[३८] अर्थात् वास्तु शब्द निवासार्थक वस् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इस पर निवास करते हैं या इसमें निवास करते हैं। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वस् निवासे + तुन् प्रत्यय कर वास्तु शब्द बनाया जा सकता है।[४१]

(२२) शेव :- यह सुखका वाचक है। निरुक्तके अनुसार शेव इति सुखनाम शिष्यते र्वकारो नामकरणोऽन्तस्थान्तरोपलिंगी। विभाषितगुण: शिवमित्यप्यस्य भवति।[३८] यह शब्द हिंसार्थक शिष् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। शिष् + व प्रत्यय है। धातु स्थित ष् का लोप तथा आद्यक्षरका विकल्प से गुण हो जाता है। इस प्रकार इसके दो रूप बनते हैं शेव एवं शिव। दोनों ही सुखके वाचक हैं। क्योंकि ये दु:खको मार भगाते हैं। यहां ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं। अर्थात्मक आधार सर्वथा संगत है। शिष् धातुसे शेव मानना भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे अपश्रुतिका परिणाम है। व्याकरण के अनुसार शी +वन् प्रत्यय कर शेवम् शब्द बनाया जा सकता है।[४३]

(२३) वाचस्पति :- इसका अर्थ होता है वाणीका रक्षक अर्थात् प्राण वायु। निरुक्तके अनुसार -वाचस्पतिर्वाचः पाता वा पालयिता वा।[३८] वाचः वाणीका वाचक है तथा षष्ठयन्त पद है। वाचः+ पा रक्षणे एवं पा पालने धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न हुआ है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा वाणीकी रक्षा करने वाला या वाणीका पालन करने वाला। वायुके अभावमें वाणीका प्रादुर्भाव असंभव है। दोनों निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्वसे युक्त हैं।भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा।लौकिक संस्कृतमें वाचस्पति वृहस्पतिके लिए प्रयुक्त होता है।व्याकरणके अनुसार वाचःपतिः वाचस्पतिःअलुक् विसर्ग का स करनेपर यह शब्द बनेगा जो सामासिक शब्द है।[४४]

(२४) अपांनपात् :- यह विद्युत्का वाचक है। यास्कका कहना है कि अपांनपात् तनूनप्त्रा व्याख्यातः अपांनपात् की व्याख्या तनूनप्त्रा से हो गयी। अर्थात् जिस प्रकार तनूनप्त्रा शब्दका निर्वचन है उसी प्रकार अपांनपात् का भी निर्वचन होगा। नपात् के सम्बन्धमें निरुक्तमें कहा गया है- नपादित्यननन्तरायाः प्रजाया नामधेयं निर्णततमा भवति[४५] अर्थात् पिताकी अनन्तर सन्तान पुत्र तथा अननन्तर पौत्र है। अतः नपात् पौत्रका वाचक है। निर्णततम होने के कारण नपात् कहलाता है। अर्थात् पिता से नत पुत्र तथा पुत्रसे नततम पौत्र होता है। अपां जलका वाचक है। इसी प्रकार जलके पौत्र को अपांनपात् कहा जायगा। जलसे संघर्षण उत्पन्न होता है तथा संघर्षण से विद्युत् उत्पन्न है। अतः विद्युत् जलका पौत्र है। यास्क विद्युत् उत्पन्न होनेकी वैज्ञानिक प्रक्रियाकी ओर संकेत करते हैं। यह सामासिक शब्द है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जायगा।

(२५) यम :- यह मृत्युके देवता यमराजका वाचक है।[४६] निरुक्त के अनुसार- यमो यच्छतीति सतः[३८] यह शब्द यम् उपरमे धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि वह लोगोंको जीवनसे अलग करता है। यम अग्निको भी कहा जाता है- अग्निरपि यम उच्यते[३८] अग्नि कन्याके कन्यात्वको नष्ट करते हैं। विवाह में अग्निका साक्षी बनाकर कन्यादान होता है। विवाहके अन्तर वह कन्या न कहलाकर वधू कहलाने लगती है। अतः अग्निको यम भी कहा जाता है।[४७] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार यम् उपरमे धातुसे अच् प्रत्यय कर यमः शब्द बनाया जा सकता है।[४८]

(२६) मित्र :- निरुक्त के अनुसार मित्र वायुका वाचक है- १- मित्रः प्रमीतेस्त्रायते[३८] यह मृत्यु से रक्षा करता है। यह जीवन प्रदान करता है। इसके अनुसार इस शब्द में मा माने + त्रैङ् पालने धातु का योग है। २- सम्मिन्वानो

द्रवतीतिवा[३८] यह वृष्टि करती हुई आगे बढ़ता है। इसके अनुसार इस शब्दमें मिवि सेचनेद्रु गतौ धातुका योग है। ३- मेदयतेर्वा[३८] यह पेड़ पौधों को स्निग्ध करती है। इसके अनुसार इस शब्दमें मिद् स्नेहने धातुका योग है। प्रथम दो निर्वचनों में दो-दो धातुओं का प्रयोग हुआ है। वायुके अर्थमें मित्रका निर्वचन अर्थात्मक आधारसे युक्त है। तृतीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार भी संगत है- मिद् + रक्= मित्र:। भाषा विज्ञानके अनुसार तृतीय निर्वचनको उपयुक्त माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें मित्र: सूर्यके लिए प्रयुक्त होता है।[४९] व्याकरणके अनुसार मिद् स्नेहने धातुसे क्त्र: प्रत्यय कर मित्रम् शब्द बनाया जा सकता है।[५०]

(२७) कृष्टि :- यह मनुष्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार १- कृष्टय इति मनुष्य नाम कर्मवन्तो भवन्ति[३८] मनुष्य कर्मवान् होते हैं। इसके अनुसार कृष्टि में कृ धातुका योग है। २- विकृष्टदेहा वा ये विकृष्ट देह विशेष रूप से संचालित शरीर वाले होते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें कृष् धातुका योग है। द्वितीय निर्वचन का अर्थात्मक एवं ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। प्रथम निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार कृष्टि: शब्द कृष् +क्तिच् प्रत्यय कर बनाया जा सकता है (कृषत्यन्तर्मुवं विद्या लोचनाभ्यासादिभिरसौ) इसके अनुसार इसका अर्थ पण्डित होगा। कृष् + भावे क्तिन् प्रत्यय कर भी कृष्टि: शब्द बनाया जा सकता है जो मनुष्य का वाचक होगा।

(२८) क :- प्राणवायु:। निरुक्तके अनुसार क: कमनो वा क्रमणो वा सुखो वा[३८] यह कमनीय होता है। कामियों के काम्य (प्रयोजन) में साधन होता है[५१] या यह प्राणापानादिवायु के रूप में शरीरमें संक्रमण करता है या यह सुखप्रद है, सुख का वाचक है। प्रथम निर्वचनमें कम् कान्तौ धातुकी सम्भावना की गयी है द्वितीय में क्रम् पादविक्षेपे धातुकी। तृतीय में मात्र अर्थ संकेतित है। कम् एवं क्रम् धातुका आद्यक्षर शेष क: प्राणवायुके अर्थमें प्रतिपादित है। सुखार्थक क: भी इन्हीं धातुओं से माना जा सकता है। यह शब्द एकाक्षर है। प्रथम निर्वचनमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक संगति पूर्ण उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष के अर्थात्मक महत्त्व हैं। व्याकरणकेअनुसार कै शब्दे या कव् दीप्तौ धातुसे ड:प्रत्ययकरक:शब्द बनाया जा सकता है।[५२]कोष ग्रन्थों में क:[५३] ब्रह्मा तथा कम्[५४]मस्तक का वाचक है।

(२९) हिरण्यगर्भ :- यह लोकेश, ब्रह्माका वाचक है। निरुक्त के अनुसार हिरण्यमयो गर्भोऽस्येति वा।[३८] हिरण्यमय गर्भ है जिसका उसे हिरण्यगर्भ कहा जायगा। यह सामासिक आधार रखता है। दुर्गाचार्य ने हिरण्यगर्म का अर्थ

विज्ञानमय गर्भ किया है। क्योंकि सभी प्राणियों के अन्दर उसी का प्रकाश है।[५५] यास्कने इसका विग्रह कर ही इसे स्पष्ट किया है। यास्कके अनुसार यह वहुव्रीहि समास माना जायगा। यों तो हिरण्यमयश्चासौ गर्भश्च इस प्रकार विग्रह कर कर्मधारय भी किया जा सकता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार हिरण्यं हेमभाण्डं गर्भ उत्पत्तिस्थानमस्य वहुव्रीहि समास किया जा सकता है।

(३०) गर्भ :- इसका अर्थ होता है- कुक्षी, भ्रूण आदि। निरुक्त के अनुसार १- गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे[३८] गर्भशब्द स्तुत्यर्थक गृभ् धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह सबों के लिए स्तुत्य है। २- गिरत्यनर्थानिति वा[३८] अथवा गर्भशब्द गृ निगरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह अनर्थों को नष्ट करता है। उपर्युक्त दोनों निर्वचनों का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इन्हें संगतमाना जायगा। यास्क स्त्रीगर्भ को भी ग्रह् उपादने धातुसे बना मानते हैं-यदा हि स्त्रीगुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति[३८] जब स्त्री पुरुषके गुणोंको ग्रहण करती है तथा पुरुष के द्वारा इसके गुणग्रहण किए जाते हैं तब गर्भ होता है। स्त्री पुरुषके परस्पर गुणोंके ग्रहणसे हर्षातिरेक में रजवीर्य संयोगसे गर्भ होता है। इसके अनुसार गर्भ में ग्रह् धातु स्पष्ट है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसका अर्थात्मक महत्त्व है। पाणिनीय पद्धति में भृ धातु वैदिक एवं प्राचीन है इसका लौकिक रूप हृ ने ग्रहण कर लिया। इसी प्रकार ग्रभ् भी वैदिक एवं प्राचीन धातु है लौकिक संस्कृत में ग्रह् उसका रूप प्राप्त कर लेता है।[५६] इससे स्पष्ट होता है कि भ एवं ह ध्वनियां परिवर्तित होती हैं। अतः ग्रह् उपादाने धातुसे गर्भ शब्द मानना भाषा वैज्ञानिक आधारसे उपयुक्त होगा। यास्कके काल तक ग्रभ् धातुका प्रयोग होता होगा तथा ग्रह् धातुका भी। व्याकरणके अनुसार गृ + भन् प्रत्यय कर गर्भः शब्द बनाया जा सकता है।[५७]

(३१) विश्वकर्मा :- यह परमात्मा या प्राण वायुका वाचक है। निरुक्त के अनुसार- विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता[५८] यह सभी जीवोंका कर्ता है। यह एक सामासिक शब्द है। इस निर्वचनका आधार भी सामासिक है। विश्व पूर्वपद है जो सर्व का वाचक है तथा उत्तर पद कर्मन् कर्ता का वाचक है। कर्मन् में कृ धातुका योग है। इस शब्दमें मात्र अर्थ स्पष्ट ही करना यास्कका उद्देश्य रहा है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार भी विश्वेषु विश्व वा कर्म यस्य स विश्वकर्मा माना जायगा। दुर्गाचार्य विश्वकर्मा को मध्यमस्थानीय देवता वायु मानते हैं क्योंकि वे भूत भविष्य एवं वर्तमान जगत् के कर्ता हैं। सभी कार्य-कलापोंमें वायु ही आधार है।[५९]

(३२) तार्क्ष्यः :- यह वायु का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- १- तार्क्ष्यस्त्वष्ट्रा व्याख्यात:[५८] तार्क्ष्य की व्याख्या त्वष्टा से ही मान लेनी चाहिए। यास्कने त्वष्टा की व्याख्या नि. ८।२ में की है। २- तीर्णे अन्तेरिक्षे क्षियति[५८] अर्थात् यह प्रस्तृत अन्तरिक्षमें निवास करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें तीर्ण + क्षि निवासे धातुका योग है। ३- तूर्णमर्थं रक्षति[५८] यह शीघ्र ही कार्य सिद्ध करता है या जलकी रक्षा करता है।[६०] इसके अनुसार इस शब्दमें तूर्ण + रक्ष् धातुका योग है। ४- अश्नोतेर्वा[५८] अथवा यह शीघ्र ही व्याप्त कर लेता है। इसके अनुसार इस शब्दमें तूर्ण + अश् व्याप्तौ धातुका योग है। सभी निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक महत्त्व है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार- तार्क्ष + यञ् प्रत्यय कर तार्क्ष्य: शब्द बनाया जा सकता है।[६१]

(३३) मन्यु :- इसका अर्थ होता है वायुके गतिभेदसे उत्पन्न क्रोध। निरुक्तके अनुसार-मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मण: क्रोधकर्मणो बधकर्मणो वा[५८] यह शब्द दीप्त्यर्थक, क्रोधार्थक या वधार्थक मन् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। निरुक्तमें मन्यु को मध्यमस्थानीय पढ़ा गया है। क्रोधार्थक दीप्त्यर्थक मन्यु शरीरके भीतर स्थित वायुके गतिभेदसे उत्पन्न होता है। सूक्ष्म दृष्टिसे मन्यु तथा क्रोध में अन्तर है। क्रोधमें व्यक्ति अपनी बुद्धि खो देता है लेकिन मन्युकी स्थिति में मनुष्य के पास बुद्धि यथावत् काम करती रहती है। इस निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार मन्- धातुसे यु: प्रत्यय कर मन्यु: शब्द बनाया जा सकता है।[६२]

(३४) मधु :- यह जल या पुष्परसका वाचक है। इसकी व्याख्या चतुर्थ अध्यायमें भी की जा चुकी है। मधुके संबंधमें यास्कका कहना है-मधु धमतेर्विपरीतस्य[५८] अर्थात् मधु शब्द गत्यर्थक घम् धातुको विपरीत कर बनाया जाता है। धमका विपरीत मध + उ प्रत्ययमधु। जल एवं रस गतिमान् होता है। चतुर्थ अध्यायमें मधु शब्द पुष्परसके अर्थमें विवेचित है जिसे मद् धातुसे निष्पन्न माना गया है।[६३] दशम अध्यायमें मधु जलका वाचक है जिसके लिए यास्क धम् धातुकी कल्पना करते हैं। यह निर्वचन अस्पष्ट है। मद् धातुसे मधु मानना भाषा विज्ञानकी दृष्टिमें अधिक संगत है। व्याकरणके अनुसार मन् ज्ञाने + उ,ध का अन्तादेश कर मधु शब्द बनाया जा सकता है।[६४]

(३५) सविता :- इसका अर्थ होता है- प्रेरक वायु,पार्थिव अग्नि, आदित्य। निरुक्त के अनुसार सविता सर्वस्य प्रसविता इसके अनुसार सविता शब्दमें सू प्रेरणे धातु का योग है क्योंकि यह सभी का प्रेरक है। आदित्य को भी

सविता कहा जाता है। गायत्री मन्त्र का सवितु: शब्द आदित्यका ही वाचक है। आदित्य वाचक सविता शब्दके लिए भी उपर्युक्त निर्वचन ही उपयुक्त है। सदृश कर्मके कारण सविताको आदित्य कहा गया है।[६५] निरुक्तमें पार्थिव अग्निको भी सविता कहा गया है, क्योंकि वह अग्निहोत्र आदि कर्मोंका उत्पादक है, सभी का प्रेरक है। उपर्युक्त निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें आदित्यके अर्थमें ही सविताका प्रयोग प्राय: देखा जाता है। व्याकरणके अनुसार-सू प्रेरणे धातुसे तृच्[६६] प्रत्यय कर सवितृ- सविता शब्द बनाया जा सकता है।

(३६) हिरण्यस्तूप :- यह एक सूक्त विशेषका नाम है। निरुक्तके अनुसार १- हिरण्यस्तूपो हिरण्मयस्तूपो[५८] हिरण्यस्तूप का अर्थ होता है हिरण्मय स्तूप अर्थात् तेजो मय पुञ्ज। यह सामासिक आधार रखता है। इसमें कर्मधारय समास है। २- हिरण्मय: स्तूपोऽस्येति वा[५८] हिरण्मयस्तूप तेजोमय पुञ्ज है जिसको इसे हिरण्यस्तूप कहेंगे। यह भी सामासिक आधार पर आधारित है। इसमें वहुव्रीहि समास है। यास्कने सामासिक विग्रहके द्वारा इसका अर्थ स्पष्ट किया है। भाषा विज्ञानके अनुसार यह संगत है।

(३७) स्तूप :- यह समूहका वाचक है। निरुक्तके अनुसार स्तूप: स्त्यायते:[५८] यह शब्द स्त्यै शब्द संघातयो: धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण संगत नहीं माना जायगा। व्याकरण के अनुसार स्तु स्तुतौ धातु से प:[७१] प्रत्यय कर स्तूप: शब्द बनाया जा सकता है। सायणने स्त्यै धातुसे ही इसको निष्पन्न माना है।[७२]

(३८) असुरत्वम् :- इसका अर्थ होता है- प्रज्ञावत्ता, प्राणवत्ता तथा धनवत्ता। निरुक्तके अनुसार असुरत्वमेकं प्रज्ञावत्वं वान्नवत्वं वापे[५८] अर्थात् असु प्रज्ञा या प्राणको कहते हैं। असुर में स्थित र प्रत्यय मतुवर्थ का है। असु प्रज्ञाका नाम है क्योंकि प्रज्ञा अनर्थों को दूर कर देती है। पुन: इस प्रज्ञामें समी पदार्थ रख दिए जाते हैं।[६७] अथवा यास्कके अनुसार वसुरत्व ही असुरत्व हो गया है। वसुरत्व का आदि अक्षर व लोप होने पर असुरत्व बचा। वसुरत्वका अर्थ होता है धनवत्ता। वसु धनका वाचक है। यहां असुर शब्द देवताका वाचक है कालान्तरमें असुर शब्द सुरविरोधीका वाचक हो गया है। निरुक्तके तृतीय अध्याय में भी असुर शब्द का विवेचन हुआ है।[६८] भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे भी यह निर्वचन अपूर्ण है। व्याकरणके अनुसार अस् +उरन् प्रत्यय कर असुर शब्द बनाया जा सकता है।[६९] ऋग्वेद में ही असुरशब्द सुर विरोधीके रूपमें प्रयुक्त

है।[७०]

(३९) वात :- यह वायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वातो वातीति सत:[५८] यह शब्द वा गतिगन्धनयो: धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि वह गमन करती है या गति युक्त है। इसका ध्वन्यात्मक तथा अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार वा गतिगन्धनयो:+ तन् प्रत्यय कर वात: शब्द बनाया जा सकता है।[७३]

(४०) वेन :- यह नाभिस्थानस्थ समानवायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वेनो वेनते: कान्तिकर्मण:[७४] यह शब्द कान्त्यर्थक वेन् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। कान्ति इच्छार्थक है। क्योंकि यह समान वायु सबोंका इप्सित है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। यास्कके अनुसार वेन्+घञ् प्रत्यय है। व्याकरणके अनुसार अज् गतौ धातुसे न प्रत्यय कर अज् का वा[७५] आदेश +न:[७६] = वेन: बनाया जा सकता है।

(४१) जरायु :- यह गर्भाशयका वाचक है। निरुक्तके अनुसार १- जरायुर्जराया गर्भस्य २- जरया यूयत इतिवा[७४] गर्भ की वृद्धि से इसमें भी वृद्धि होती है अथवा यह जरा (जेर नाभि सूत्र) से मिला रहता है। इस निर्वचन के अनुसार जरा+ यू मिश्रणे धातुके योग से यह शब्द निष्पन्न माना जायगा। प्रथम निर्वचनमें मात्र अर्थ स्पष्ट किया गया है। अन्तिम निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-जरा+ इण् गतौ + ञुण् प्रत्यय कर जरायु: शब्द बनाया जा सकता है। जरामेति जरायु:।[७७]

(४२) शिशु: :- बच्चा। निरुक्तके अनुसार १- शिशु: शंसनीयो भवति[७४] यह सबके द्वारा शंसनीय होता है। सब लोग इसे चाहते हैं। इसके अनुसार शिशु शब्दमें शंस् स्तुतौ धातुका योग है। २- शिशीतेर्वा स्याद्दानकर्मण:[७४] यह शब्द शिश् दानकर्मा धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि इसे पत्नी को धारण करने के लिए प्रदान किया जाता है।[७९]प्रथम निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।व्याकरणके अनुसार शो तनू करणे + उ:[७९] या शश् प्लुतगतौ+ कु: प्रत्यय कर शिशु:शब्द बनाया जा सकता है।

(४३) रिहन्ति :- इसका अर्थ होता है- स्तुति करते हैं, बढ़ाते हैं, पूजा करते हैं। निरुक्त के अनुसार- रिहन्ति, लिहन्ति, स्तुवन्ति, वर्धयन्ति, पूजयन्तीतिवा[७४] यह शब्द लिह् स्तुतौ, वृद्धौ, पूजायाञ्च धातु के योग से

निष्पन्न होता है। यहां ल का र वर्ण में परिवर्तन हो गया है। रलयोरभेदः का सिद्धान्त यास्कको मान्य है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार लिह् + झि = लिहन्ति, रिंहन्ति बनाया जा सकता है।[८०]

(४४) असुनीति :- यह प्राणवायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार - असुनीतिरसून्नयति[७४] इस शब्दमें असुन् + नी प्रापणे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(४५) इन्दु :- यह चन्द्रमाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार इन्दु रिन्धेरुन्तेर्वा[७४] इन्दु शब्द इन्धी दीप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह प्रकाशित होता है। अथवा यह शब्द उन्दी क्लेदने धातुके योग से निष्पन्न होता है। क्योंकि वह स्निग्ध करता है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचनका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार उन्दी क्लेदने धातुसे उ प्रत्यय कर इन्दुः शब्द बनाया जा सकता है।

(४६) परुच्छेप :- परुच्छेप एक ऋषि हैं। निरुक्तके अनुसार पर्ववच्छेपः अर्थात् जिसका प्रजनन महान् है। २ - परुषि परुषि शेपोऽस्येति वा[७४] अर्थात् इसके प्रत्येक अंगमें शेप का योग है। प्रथम निर्वचनके अनुसार पर्वन् + शेप तथा द्वितीय निर्वचनके अनुसार परुष्+शेप पदखण्ड है। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक महत्त्व रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। प्रथम निर्वचन में ध्वन्यात्मक औदासिन्य है।

(४७) प्रजापति :- इसका अर्थ होता है प्रजापालक। निरुक्तके अनुसार प्रजापतिः प्रजानां पाता वा पालयिता वा[७४] वह प्रजा का रक्षक होता है या पालन कर्ता होता है। इसके अनुसार प्रजापतिः शब्दमें प्रजा + पा रक्षणे या पालने धातुका योग है। यह सामासिक आधार रखता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार प्रजानां पतिः प्रजापतिः तत्पुरुष समास है।

(४८) बुध्नम् :- यह अन्तरिक्षका वाचक है। निरुक्त के अनुसार बुध्न मन्तरिक्षम् वद्धा अस्मिन् धृता आपइति वा[७४] इसमें जल बंधे रहते हैं। या इसमें रखे रहते है। इसके अनुसार इस शब्दमें बन्ध् बन्धने धातुका योग है। बुध्नका अर्थ शरीर भी होता है। इदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेव। वद्धा अस्मिन् धृताः प्राणा इति[७४] शरीर वाचक बुध्न शब्द भी उपर्युक्त रीतिसे ही व्याख्यात है, क्योंकि शरीरमें प्राण बंधे हैं या शरीर में प्राण धारण किया गया है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे

उपयुक्त माना जायगा।

(४९) अहिर्बुध्न्य :- इसका अर्थ होता है अन्तरिक्ष स्थित मेघ। निरुक्तके अनुसार योऽहिः स बुध्न्यो बुध्नमन्तरिक्षं तन्निवासात्[७४] जो अहि है वही वुध्न्य है। बुध्न का अर्थ अन्तरिक्ष होता है, तथा उस बुध्न (अन्तरिक्ष) में रहने वाले को बुध्न्य कहेंगे। अहिः + बुध्न्यः = अहिर्बुध्न्यः। इसका भाषा वैज्ञानिक आधार उपयुक्त है। इस निर्वचन में ध्वन्यात्मक तथा अर्थात्मक संगति है।

(५०) पुरूरवा :- इसका अर्थ होता है मध्यम स्थानीय वायु। निरुक्तके अनुसार पुरूरवा वहुधा रोरूयते[७४] वह वहुधा शब्द करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें पुरू + रू शब्दे धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषाविज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। कालान्तर में पुरूरवा ऐतिहासिक पात्र के रूप में प्राप्त होता है, जो इला का पुत्र है।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१ - नि. १०।१, २ - कृ वा पाजि - उणा. १।१ आतो युक् - अष्टा. ७।३।३३, ३ - हलायुघ - पृ. ६७३, ४ - कृ वृदारिभ्य उनन् - उणा. ३।५३, ५ - कर्मण्यण् - अष्टा. ३।२।१, ६ - अ. को. २।८।११८, ७ - स किल पितरं प्रजापतिमिषुणाविन्ध्यन्तमनुशोचन् अरूदत् - यदरूदतद्रूद्रस्य रूद्रत्वम् - काठक सं. २५।१ (नि. १०।१) यदरोदीत्तद् रूद्रस्य रूद्रत्वम् - (नि. १०।१) हारिद्रविक सं., ८ - रोदेर्णिलुक् च - उणा. २।२२, ९ - जराबोध तद् विविड्ढिविशेविशे यज्ञियाय स्तोमं रूद्राय दृशीकम्।। ऋ. १।२७।१०, १० - अम. को. १।१।३४, ११ - युजिरूचितिजां कुश्च - उणा. १।१४६, १२ - ऐ. ब्रा. ७।१९।२, १३ - ऋ. १।३९, २।६१, १३।९२ आदि (द्र. वै. इ. भा. १ पृ. ६८), १४ - घञर्थे कविधानम् - स्था स्ना पा हनियुध्यर्थम् - वा. ३।३।५८, १५ - ऋ. १।६६।७, ५।८६।३, ७।२५।१, २।१३।७ (द्रं. वै. इण्ड. भाग १ पृ. ४०२) १६ - तौति पूरयति गृहमिति। तु पूर्तौ + वाहुलकात् कः (शब्द कल्पद्रुम - भाग २ - पृ. ६५०), १७ - ऋ. १।४३।२, २।२।११ आदि अथर्व - १।१३।२ आदि, १८ - ऋ. १।३१।१२ आदि।, १९ - अ. को. २।६।२७, २० - वलिमलितनिभ्यः कयन् - उणा. ४।९९, २१ - १।९६।४, १८३।३, १८४,५, २ २३।१९, ७।१ ।२१ आदि, २२ - हला. पृ. ३२४ (चै. इ. भाग १ पृ. ३३३), २३ - षिदिभदादिभ्योऽङ् - अष्टा. ३।३।१०४, २४ - ऋ. १०।८६।११, नि. ११।४, २५. श.प.ब्रा. ६।११।२, २६. ऋजेन्द्र. उणा. २।२८, २७. उन्दिगुधिक्रुषिभ्यश्च-उणा. ३।६८, २८. अ.को.- २।३।५, २९. पर्जन्यः उणा. ३।१०३,३०. पर्जन्यः शक्रमेघयोः उणा. प्र.सि.कौ. (द्र.), ३१. पर्जन्यो रसदब्देन्द्रो- अ. को. ३ । ३ । १४७ पर्जन्यो मेघ शब्देऽपि ध्वनदम्बुदशक्रयोः

विश्व. १२१।८३, ३२. वृहस्पति : सुराचार्यो गीष्पतिर्धिषणो गुरूः अ.को.१।३।२४, ३३. द्र.वै.इ. भाग-२ पृ. ७८, ३४. ऋ. १०।६८।८, ३५. पारस्कर प्रभृतीनि च संज्ञायाम्- अष्टा. ६।१।१५७ द्र.- हलायुध-पृष्ठ६३६, ३६. अत्यविचमि. उणा. ३।११७, ३७. पारस्कर प्रभृतीनि च संज्ञायाम् अष्टा. ६।१।१५७, ३८. नि. १०।२, ३९. वै. इ. भाग-२-पृ. २३५, ४०. हला. २५९ पृष्ठ, ४१. हला. पृ. ६०६, ४२. हला. को. पृ. ६०६, ४३. इण्शीभ्यां वन्-उणा. १।१५०, ४४. षष्टयाः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु- अष्टा. ८।३।५३, ४५. नि. ८।२, ४६. ऋ. १०.१४।१, ४७. ऋ. १।६६।४, ४८. पचाद्यच्-अष्टा. ३।१।१३४, ४९. अ.को. ३।३।१६७, ५०. अमिचिमिदिशसिभ्य क्त्रः :- अष्टा. ४।१।६४, ५१. कमनो भवति। कामिनां काम्येषु अर्थेषु साधनं भवति- नि.दु.वृ. १०।२ ५२. अन्येभ्योऽपि. वा. ३।२।१०१, ५३. अभि. चिन्ता २।१२५, अ.पुरा.-३४८, ५४. अभि. चिन्ता. ३।२३०, ५५. शरीरेन्द्रिय मनो बुद्धिभावेनैतमपेक्ष्य परमात्मानं च विज्ञानप्रकाशमात्र सतत्वं सर्वविशेषहारित्वात् हिरण्यगर्भमपेक्ष्य तत्प्रकृतित्वं च क्षेत्रज्ञस्यापेक्ष्य सोऽस्य हिरण्यमयो हिरण्यप्रकृति गर्भ इति हिरण्यगर्भ-नि.दु.वृ. १०।२, ५६. अष्टा. ८।२।३२ पर.वा. हृग्रहोर्भच्छन्दसि, ५७. अर्तिगृभ्यां भन्-उणा. ३।१५२, ५८. नि. १०।३, ५९. नि.दु.वृ. १०।३, ६०. तूर्णम् उदक रक्षतीतिवा-नि.दु.वृ. १०।३, ६१. गर्गादिभ्यो यञ्-अष्टा. ४।१।१०५, ६२. मनिजनिदसिभ्यो युः उणा. ३।२०, ६३. नि. ४।१, ६४. हला.- पृ. ५११, ६५. आदित्योऽपि सवितोच्यते- नि. १०।३, ६६. अष्टा. ३।१।१३३, ६७. असुरिति कथं? अस्यति अनर्थान् अस्ताश्चास्यामर्था इति वा-नि.दु.वृ. १०।३, ६८. नि. ३।२, ६९. हला. पृ. १४४, ७०. ऋ. १०।१०८।१ नि. ११।३, ७१. स्तुवोदीर्घश्च-उणा ३।२५ इति पः, ७२. स्त्यै शब्दसंघातयोः। स्त्यः सम्प्रसारणमूच्च इति य प्रत्ययः। तत्सन्नियोगेन यकारस्य सम्प्रसारणं परपूर्वत्वे ऊकारादेशश्च सा.भा.ऋ. १।२४।७, ७३. हसिमृग्रिण-उणा. ३।८६, ७४. नि. १०।४, ७५. अजेर्व्यघञपोः- अष्टा २।४।५६, ७६. धापृवस्यज्यतिभ्योनः- उणा. ३।६, ७७. किंजरयोः श्रिणः- उणा. १।४, ७८. दानार्थात् शिशीतेर्वा पुरूषेण स्त्रियै धारणाय दीयते- नि.दु.वृ. १०।४, ७९. शः कित् सन्वच्च-उणा. १।२०, ८०. अष्टा. ३।४।७८, ८१. उन्नेरिच्यादेः- उणा. १।१२.

(ङ) निरुक्तके एकादश अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निघण्टु का पंचम अध्याय दैवत काण्ड है। इस अध्यायके पंचम खण्ड में देवताओं से सम्बद्ध ३६ पद संकलित हैं। इन पदों का निर्वचन निरुक्त के

एकादश अध्यायमें हुआ है।

निरुक्तके एकादश अध्यायमें कुल ५६ शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं। इनमें निघण्टुके पंचम अध्यायके पंचम खण्डके ३६ पद भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार २० पद ऐसे हैं जो देवताओं से सम्बद्ध हैं या प्रसंगतः प्राप्त हैं। निघण्टु पठित उक्त सभी ३६ पदोंकी व्याख्या भी यास्क नहीं करते केवल प्रसंगतः उन पदोंका उल्लेख कर पूर्व में व्याख्यात है, कह कर काम चला लेते हैं। वस्तुतः वैसे पदोंको पुनः विवेचित करना पुनरुक्ति दोष से युक्त होता। इतना कहा जा सकता है कि निघण्टु पठित ये सारे शब्द प्रधान रूपमें यहां पठित हैं। अतः ऐसे शब्दोंका निर्वचन यहीं करना चाहिए था जबकि प्रसंगतः आये ये ही शब्द यास्कके द्वारा पूर्व ही व्याख्यात हैं। पूर्व व्याख्यात शब्दोंमें विश्वानरः, विधाता,रूद्रः,अंगिरस्,पितरः, अदितिः, भृगवः सरस्वती, वाक्, यमी, उर्वशी, पृथिवी, गौः, उषा, स्वस्ति और इला परिगणित हैं। इस प्रकार निघण्टु के पंचम अध्याय के पंचम खण्ड के ३६ पद भी व्याख्यात नहीं है।

यास्कके सारे निर्वचन भाषा विज्ञान एवं निर्वचन प्रक्रिया की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यास्क एक पद का एकाधिक निर्वचन भी प्रस्तुत करते हैं। एक से अधिक निर्वचनों में सभी निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे उपयुक्त नहीं हैं भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे पूर्ण निर्वचनोंमें- सोमः, चन्द्रमा, चन्द्रः, मृत्युः, धाता, कलशः, स्वर्कः, तृष्णक्, उदन्युः, ऋभुः, अथर्वाणः, आप्त्याः, आगः, एनस, सरमा, जगुरिः, तक्म, रसा, स्वसा, स्तुकः, नर्यः, इन्द्राणी, धेनुः, अध्न्या, पथ्या और अनः द्रष्टव्य है। इन निर्वचनों में कुछ पदों के एकाधिक निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण भी हैं।

ध्वन्यात्मक शिथिलताके चलते कुछ निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टि से अपूर्ण माने जाते हैं। ध्वन्यात्मक शैथिल्य से युक्त-चन्द्रमा, चन्द्रः, चारू, स्वर्कः, सूची तथा कुहूः शब्दके निर्वचन प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त मरूतः, ऋभुः, अंगिरस्, किल्बिषम्, गौरी तथा रोदसी के निर्वचन भी भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण है। ध्वन्यात्मक या अर्थात्मक या उभय शिथिलता ही इसके कारण हैं। चन्द्र एवं चंद्रमा शब्दके निर्वचन ज्योतिष शास्त्रीय आधारसे युक्त हैं। कलिः शब्दके निर्वचन में धार्मिक आधार प्रतिलक्षित होता है। कला शब्दके निर्वचन में यास्क ने दृश्यात्मक आधार को अपनाया है।

सरमा तथा अनुमति शब्द के निर्वचनोंमें यास्क अपनी ऐतिहासिकताका परिचय देते हैं। इससे उक्त शब्दोंके आधारमें इतिहासकी पृष्ठभूमि स्पष्ट होती है। सिनीवाली शब्द सामासिक आधार रखता है। इसके निर्वचनमें यास्क सादृश्यको भी अपनाते हैं।

निर्वचन प्रक्रिया से प्रायः शब्दों के निर्वचन संगत हैं। निरुक्त सम्प्रदायमें मान्य सिद्धान्तोंके अनुसार पंचविध निरुक्त प्रशस्त है। फलतः यास्कने इस सिद्धान्त को पूर्णरूपेण अपनाया है। यही कारण है कि निर्वचन प्रक्रिया से सर्वथापूर्ण भी निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण सिद्ध होते हैं।

इस अध्यायके प्रत्येक पदों के निर्वचनोंका मूल्यांकन द्रष्टव्य है :-

(१) सोम :- यह एक लता विशेष औषधिका वाचक है। चन्द्रमाके लिए भी इसका प्रयोग होता है। सोम लता हेमवान् या मुंजवान् पर्वत पर उत्पन्न होती है।[१] निरुक्तके अनुसार औषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति[२] अर्थात् यह औषधि वाचक सोम शब्द षुञ् अभिषवे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि इसका अभिषवन किया जाता है, यज्ञके समय इसका रस चुलाया जाता है।[३] सोमलता को कूटकर रस निकाला जाता है जिसे सोमाभिषव कहते हैं। सोम इन्द्रका सर्वाधिक प्रिय पेय है। यज्ञोंके अवसर पर ऋत्विज, यजमान आदि भी इसका पान करते हैं। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। सोम चन्द्रमाका भी वाचक है क्योंकि दोनोंमें रूप विशेष की एकता है। सोम औषधि के पत्र चन्द्रकलाके साथ-साथ घटते एवं बढ़ते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा पूर्णिमाकी रात्रिमें पूर्णकलाओंसे युक्त रहता है उसी प्रकार सोम लता भी १५ पत्तोंसे युक्त रहती है तथा कलाहीन चन्द्रमाकी भांति अमावाश्या को पत्र विहीन भी।[४] यास्कके अनुसार औषधि सोमका वर्णन वेदों में गौण रूपमें अधिक प्राप्त होता है तथा मुख्य रूपमें कम पाया जाता है।[५] व्याकरणके अनुसार षुञ् धातु से मन् प्रत्यय कर सोम शब्द बनाया जा सकता है।[६] अवेस्तामें सोम शब्द के लिए (Hauma) होमका प्रयोग प्राप्त होता है।

(२) चन्द्रमा :- चन्द्र। निरुक्त के अनुसार (१) चन्द्रश्चायन द्रमति यह ऊपर स्थित सभी प्राणियों को देखता हुआ गमन करता है। इसके अनुसार इस शब्द में चायृ पूजा निशामनयोः धातु + द्रम् गतौ धातुका योग है- चाय्-द्रम् = चन्द्रः चन्द्रमा। (२) चन्द्रो माता वह दीप्तियुक्त एवं काल निर्माता है। इसके अनुसार इस शब्दमें चन्द्र +मा माने धातुका योग है। (३) चाद्रं मानमस्येति वा अर्थात् यह चान्द्र वर्ष का निर्माण करने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें चान्द्र+ मान् का योग है। चान्द्र का ह्रस्व होकर चन्द्र तथा मान् को मा= चन्द्रमा। द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचनों का अर्थात्मक महत्त्व है। तृतीय निर्वचन से स्पष्ट होता है कि चान्द्र वर्ष आदि का कारण

चन्द्रमा ही है। व्याकरणके अनुसार चन्द्र + मा + असुन् प्रत्यय कर चन्द्रमा शब्द बनाया जा सकता है।[७] चन्द्रमा शब्दका अर्थ चमकता हुआ चन्द्र भी हो सकता है। निरुक्तके इसी अध्यायमें चन्द्र शब्द प्रकाश या चमक के अर्थमें भी प्रयुक्त है। यास्क के चन्द्र +मा तथा चन्द्र +मान् के अन्तिम खण्ड भारोपीय परिवार की कुछ भाषाओं में श्टदह के रूपमें प्राप्त है।

(३) चन्द्र :- इसका अर्थ होता है- चन्द्रमा। निरुक्तके अनुसार (१) चन्द्रश्चन्दतेः कान्तिकर्मणः चन्द्र शब्द कान्त्यर्थक चदि धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह कान्ति सम्पन्न होता है। (२) चारुद्रमति यह सुन्दर गति करता है। इसके अनुसार चन्द्र में चारु + द्रम् गतौ धातुका योग है। चारु का च + द्रम्= चन्द्र:(३) चिरं द्रमति यह अधिक समय तक गति करता है। इसके अनुसार चन्द्र शब्दमें चिर-च +द्रम् गतौ धातुका योग है। (४) चम्मैर्वापूर्वरूपम् चन्द्र शब्दमें चमु अदने धातु पूर्व पदस्थ है चम् + द्रम्-गतौचन्द्रः। कृष्णपक्ष में सूर्य इसकी किरणोंका पान करते हैं। सूर्य से पीत चन्द्र गमन करता है।[८] प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। अन्तिम निर्वचन ज्योतिष शास्त्रीय आधार रखता है या ग्रहात्मक आधारसे युक्त है। शेष निर्वचनोंके भी अर्थात्मक महत्त्व हैं। व्याकरणके अनुसार चदि आह्लादने +रक् प्रत्यय कर चन्द्रः शब्द बनाया जा सकता है।[९]

(४) चन्दनम् :- श्रीखण्ड। निरुक्तके अनुसार (१) चन्दतेः चन्दन शब्द कान्त्यर्थक चदि धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह कान्तिमान् होता है। (२) चारु द्रमति चन्दनका सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। इसके अनुसार चारु-च +द्रम् धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न माना जायगा। (३) चिरं द्रमति अधिक समय तक इसका सुगन्ध व्याप्त रहता है। इसके अनुसार चिरं-च +द्रम् धातुका योग इस शब्द में माना जायगा। (४) चम्मैर्वापूर्वरूपम् चन्दन के पूर्व पदमें चमु अदने धातुका योग है, क्योंकि औषधिके रूपमें इसे खाया जाता है। प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार प्रथम निर्वचनको उपयुक्त माना जायगा। शेषका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार चदि आह्लादने धातुसे ल्युट् प्रत्यय कर चन्दनम् शब्द बनाया जा सकता है।[१०]

(५) चारु :- इसका अर्थ होता है-सुन्दर। निरुक्तके अनुसार-चारु रूच्वे विपरीतस्य यह शब्द रूच् दीप्तौ धातुको विपरीत कर बनाया जा सकता है- रूच- चरु- चारु। यह दीप्तिमान होता है। निर्वचन प्रक्रिया के अनुसार इसे

उपयुक्त माना जायगा। ध्वन्यात्मक महत्त्व इसका पूर्ण उपयुक्त नहीं है। व्याकरणके अनुसार चर् गतौ धातुसे ऋुण् प्रत्यय कर चारु शब्द बनाया जा सकता है।[११]

(६) मृत्यु :- निधन। शरीर से प्राण वायुका निकल जाना मृत्यु है। निरुक्तके अनुसार- मृत्युर्मारयतीति सत: यह लोगों को मारती है। इसके अनुसार इस शब्दमें मृङ् प्राण त्यागे धातुका योग है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। यास्क मृत्यु शब्दके निर्वचन क्रममें आचार्य शतवलाक्ष्यके मतका भी उल्लेख करते हैं- मृतं च्यावयतीति शतवलाक्ष्यमौद्गल्य: मुद्गलके अपत्य शतवलाक्षके अनुसार मृत्यु मृतकको दूसरे लोकमें ले जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें मृत+च्यु गतौ धातुका योग है (मृत् मृ + च्यु =मृत्यु:)[१२] यह मात्र अर्थात्मक महत्त्व रखता है। मृत्यो मदेर्वा मुदेर्वा मृत्यु शब्द मद् या मुद् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह निर्वचन अर्थात्मक दृष्टिसे भी उपयुक्त नहीं है। यास्कके निर्वचनके अतिरिक्त सभी निर्वचनोंमें ध्वन्यात्मकताका अभाव है। डा. वर्मा इसे असंगत मानते हैं।[१३] व्याकरणके अनुसार-मृङ् प्राणत्यागे धातुसे त्युक् प्रत्यय कर मृत्यु: शब्द बनाया जा सकता है।[१४]

(७) धाता :- यह सरस वायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-धाता सर्वस्य विधाता यह सभी ओषधियोंका स्रष्टा है। औषधियों को सरसता प्रदान कर बढ़ाने वाला है। इसके अनुसार इस शब्दमें धा धारण पोषणयोर्दाने च धातुका योग माना जायगा। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार धा + तृच् = धातृ धाता शब्द बनाया जा सकता है।[१५]

(८) विधाता :- विधाता की स्वतंत्र व्याख्या नहीं है। यह धाताके समान ही व्याख्यात है।

(९) कलश :- यह घटका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-कला अस्मिंच्छेरते मात्रा: इसमें जलकी मात्रा रहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें कला का कल +शीङ् शयने धातुका योग है-[१६] कला-कल +शीङ्-श: =कलश:इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-कल +शुगतौ +ड:[१७] = कलश: या क +लस् + अच्[१८] = कलस :शब्द बनायाजा सकता है(कलंमधुराव्यक्तशब्दं शवति जलपूरणसमये प्राप्नोतीति कलस:। कल +शु गतौ-ड:= कलश:)[१९] कलश तथा कलस दोनों शब्द प्रयुक्त होते हैं।[२०]निर्वाण तन्त्र में भी कलसका निर्वचन प्राप्त होता है जो धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।[२१]

(१०) कलि :- इसका अर्थ कलियुग है। निरुक्तके अनुसार-कलिः किरतेः विकीर्ण मात्राः यह शब्द कृविक्षेपे धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि कलियुग में शास्त्रीय व्यवस्थाएं विखर जाती हैं। कृ-कर,र का ल में परिवर्तन + इः कर कलिः रलयोरैक्यम् के अनुसार र का ल में तथा ल का र में परिवर्तन प्रायः देखा जाता है। इस प्रकारका परिवर्तन भाषा विज्ञानके अनुसार भी मान्य है। यह निर्वचन धार्मिक आधार रखता है। व्याकरणके अनुसार कल् गतौ धातुसे इः प्रत्यय कर या कल्+ इन् प्रत्यय कर कलिः शब्द बनाया जा सकता है।[२२]

(११) कला :- कारीगरी। निरुक्तके अनुसार कलाः किरतेर्विकीर्णमात्राः कला शब्द कृ विक्षेपे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। कला अपने समूह से विखरी रहती हैं।[२३] कृ-कर-र का ल में परिवर्तन-कल् +अच् = कल-कला। भाषा विज्ञानके अनुसार भी इस प्रकारका परिवर्तन मान्य है। इस निर्वचनका आधार दृश्यात्मक है। व्याकरणके अनुसार कल् शब्दसंख्यानयोः + अच् प्रत्यय कर कला शब्द बनाया जा सकता है।[२४]

(१२) मरुतः :- यह मध्य स्थानीय देवता वायुका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) मरुतो मितराविणो वा[२५] वे कम शब्द या सीमित शब्द करने वाले होते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें मित + रू शब्दे धातुका योग है। मित-म + रू शब्दे मरुतः (२) मितरोचिनो वा[२५] ये विद्युत् आदिकी अपेक्षा कम चमकने वाले होते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें मित +रूच् दीप्तौ धातुका योग है- मित-म + रूच् दीप्तौ=मरुतः।(३)महद्द्रवन्तीति वा[२५] यह महान् गति करने वाले होते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें महत् + द्रु गतौ धातुका योग है- महत् +द्रु = मरुत्। उपर्युक्त निर्वचनोंमें किसीका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। सभीका अर्थात्मक महत्त्व है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा। व्याकरणके अनुसार मृ + उत् प्रत्यय कर मरुत् शब्द बनाया जा सकता है।[२७]

(१३) स्वर्कः :- पूर्ण प्रकाश। निरुक्तके अनुसार-(१) स्वर्कः स्वञ्चनैरिति वा[२५] अर्थात् उत्तम गमन वाले, इसके अनुसार स्वर्क शब्द में सु + अंच् गतौ धातु का योग है। (२) स्वर्चनैरिति वा अर्थात् उत्तम अर्चन वाले, इसके अनुसार इस शब्द में सु + अर्च् दीप्तौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। (३) स्वर्चिभिरिति वा अर्थात् सुन्दर प्रज्ज्वलन से युक्त है। इसके अनुसार इस

शब्दमें सु + अर्चिस् का योग है। प्रथम एवं तृतीय निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण है। स्वर्क शब्द रथके विशेषणके रूपमें ऋग्वेदमें प्रयुक्त है।[२७] व्याकरणके अनुसार इसे सु + अर्च् + क्विप् कर बनाया जा सकता है।

(१४) तृष्णक् :- यह शब्द ग्रीष्मका वाचक है। निरुक्तके अनुसार तृष्णक् तृष्यते:[२५] यह शब्द तृष् पिपासायाम् धातुके योगसे निष्पन्न होता है- तृष् + नक् तृष्णक्। इसमें पिपासा की वृद्धि रहती है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार तृष् पिपासायाम् + नजिङ् प्रत्यय कर तृष्णक् शब्द बनाया जा सकता है।[२८] लौकिक संस्कृतमें यह शब्द लोभी तथा अभिलाषुक के अर्थमें भी प्रयुक्त होता है।[२९]

(१५) उदन्यु :- इसका अर्थ होता है जलाभिलाषी। निरुक्तके अनुसार- उदन्युरुदन्यते:[२५] इस शब्दमें उदन्+उ: प्रत्ययका योग है। उदककी चाह उदन्यति से उदन्य + उ: = उदन्यु:। उदक जलका वाचक है। जल चाहने वाला उदन्यु कहलायगा। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार उदक + क्यच्-उदन्य- डु: उदन्यु: माना जा सकता है। यास्कके समयमें यु प्रत्यय कामयमान अर्थमें काफी प्रचलित था। इदंयु, अध्वर्यु: आदि इसी प्रकारके शब्द हैं। पाणिनिके समय इस प्रत्ययका प्रयोग सीमित हो गया था।[३०]

(१६) ऋभव :- यह संज्ञापद है। ऋभु शब्दका बहुबचन रूप ऋभव: है। आंगोरिस ऋषिके पुत्रका नाम ऋभु था।[३१] निरुक्तके अनुसार (१) ऋभव उरु भान्तीति वा[२५] वे अधिक दीप्त होते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें उरु+भा धातुका योग है। (२) ऋतेन भान्तीतिवा ये यज्ञ से प्रदीप्त होते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें ऋत + भा दीप्तौ धातुका योग है। (३) ऋतेन भवन्तीति वा ये यज्ञसे समन्वित होते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें ऋत् + भू धातुका योग है। आदित्यरश्मि को भी ऋभु कहा जाता है। उपर्युक्त निर्वचन आदित्यअर्थमें भी संगत होगा। अन्तिम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार ऋ +भू +डु: प्रत्यय कर ऋभु: शब्द बनाया जा सकता है।[३२]

(१७) अंगिरस :- यह एक ऋषि का नाम है। निरुक्तके अनुसार अंगारेषु अंगिरा[३३] अर्थात् अंगिरा ऋषि अंगारे से उत्पन्न हुए। यह निर्वचन ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। एकादश अध्याय में यास्क ने इसे पूर्व व्याख्यात कहा है। भाषा

विज्ञानके अनुसार यह निर्वचन पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा।

(१८) अथर्वाण :- यह एक संज्ञापद है। नैरुक्तोंके अनुसार ये माध्यमिक देवता हैं। निरुक्तके अनुसार- अथर्वाणोऽथनवन्त:।[२५] अथन से युक्त को अथनवन्त कहेंगे। अथन वन्त ही अथर्वाण है। अथन शब्द गत्यर्थक थर्व् धातुके योगसे बनता है। थर्व् गतौ से थर्वाण तथा उससे रहित को अथर्वाण:[३४]-अ॒ थर्क्॒वतुप्॒ अथर्वाण:। इस प्रकार अथर्वाण: का अर्थ होगा स्थिर प्रकृति वाला।[३५] निरुक्त मीमांसामें अथर्वन् का अर्थ अग्नि को खोजनेके कारण पड़ा गुणाभिधान है जिसने कालान्तरमें व्यक्तिगत नाम का स्थान ले लिया।[३६] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अवेस्ताका आथ्रवन् शब्द अग्नि पुरोहितका वाचक है।[३७] वैदिक आथर्वण भी लगता है यज्ञाग्निसे पूर्ण सम्बद्ध थे।[३८]

(१९) आप्त्या :- यह मध्यम स्थानीय देवगणका वाचक है। निरुक्तके अनुसार आप्त्या आप्नोते:[२५] यह शब्द आप्लृ व्याप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है, क्योंकि वे व्याप्त हो जाते हैं। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। दुर्गाचार्यने इन्हें इन्द्रसहचारी माना है।[३६]

(२०) अदिति :- स्त्री देवताओंमें प्रथम अदिति हैं। यह मध्य स्थानीय स्त्री देव हैं। इसका विवेचन चतुर्थ अध्यायमें हो चुका है। अदितिको दाक्षायणी एवं अग्नि भी कहा गया है।[४०]

(२१) आग :- इसका अर्थ होता है अपराध। निरुक्तके अनुसार-आङ् पूर्वाद्गमे:[४०] यह शब्द आङ् उपसर्ग पूर्वक गम् धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि कर्ताको यह अवश्य प्राप्त होता है।[४१] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इण् गतौ से असुन् प्रत्यय कर आग: शब्द बनाया जा सकता है।[४२]

(२२) एनस् :- इसका अर्थ होता है पाप। निरुक्तके अनुसार एन एते:[४०] यह शब्द इण् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार इण् गतौ॒ असुन् प्रत्यय तथा नुडागमसे एनस् शब्द बनाया जा सकता है।[४३]

(२३) किल्विषम् :- यह पापका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) किल्विषं क्लिभिदं[४०] किल्विष शब्द किलभिद् शब्दसे वना है। किल् का अर्थ निश्चय ही तथा भिद् विष् का वाचक है। यहां विष की व्याख्या भिद्से की गयी

है। (२) सुकृतकर्मणोभयम्[४०] सुकृत कर्म करने वालेका भय स्वरूप है यहां विषम् की व्याख्या भयम् से की गयी। (३) कीर्तिमस्य मिनत्तीति वा अथवा यह सुकृत कर्म करने वाले कीर्तिको नष्ट कर देता है। यहां किल् कीर्तिका वाचक है तथा भिद् धातुसे विषम् की व्याख्या की गई है। दुर्गाचार्यने किल्बिष की व्याख्या में कहा है सुकृत का भेदक अथवा कीर्तिका विष।[४४] उपर्युक्त निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण हैं। इनका अर्थात्मक महत्त्व है। व्याकरणके अनुसार किल् + वुक् + टिषच् प्रत्यय कर किल्विषम् शब्द बनाया जा सकता है।[४५]

(२४) सरमा :- यह संज्ञा पद है। देवशुनी, इन्द्र की कुतिया, मध्यम वाक् इसके अर्थ है। निरुक्तके अनुसार - सरमा सरणात् यह शब्द सृ गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह गति युक्त है या घूमती रहती है।[४६] इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार सृ गतौ धातुसे अमच् प्रत्यय कर सरमा शब्द बनाया जा सकता है। सरमा जो देवशुनीका वाचक है ऐतिहासिक आधार रखता है। निरुक्त सम्प्रदायके अनुसार सरमा मध्यम वाक् है।[४६]

(२५) जगुरि :- इसका अर्थ होता है बहुत चलने वाला। या पुनः पुनः चलने वाला। निरुक्तके अनुसार जगुरिः जंगम्यते[४०] जगुरिः शब्द यङ् लुगन्त गम् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(२६) तक्म :- यह उष्णका वाचक है। निरुक्तके अनुसार तक्मेत्युष्ण नाम, तकत इति सतः[४०] यह शब्द तक् गमने धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है, क्योंकि यह सब ओर गया रहता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार तक् सहनेमन् प्रत्यय कर तक्म शब्द बनाया जा सकता है।

(२७) रसा :- इसका अर्थ होता है नदी। निरुक्तके अनुसार - रसा नदी, रसतेः शब्दकर्मणः।[४०] यह शब्द रस् शब्दे धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है, क्योंकि नदी शब्द युक्त होती है। जल प्रवाहसे शब्द निःसृत होता है अतः उसे रसा कहा गया। नदी शब्दमें भी नद् अव्यक्ते शब्दे का योग है।[४७] उपर्युक्त निर्वचन का ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार रस् शब्दे धातुसे घञ् प्रत्यय कर रस+टाप्रसा बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें रस जल के अर्थमें प्राप्त होता है[४८] जो रस् आस्वादने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। नदीके अर्थमें पुनः रसेन जलेन युक्ता रसा ऐसा भी माना जा सकता है।

(२८) अनुमति :- चतुर्दशीसे व्याप्त पूर्णमासी के पूर्व भागको अनुमति कहते है। निरुक्तके अनुसार - अनुमतिरनुमननात् यह शब्द अनुमन् धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। यह ऐतिहासिक आधार भी रखता है। ऋषियों एवं देवों की एतद्विषयक अनुमति के कारण अनुमतिः कहा गया। निरुक्त सम्प्रदायके अनुसार अनुमतिः देवपत्नी है। याज्ञिक लोग इसे पौर्णमासी मानते है।[४०] ब्राह्मण ग्रन्थके अनुसार यह पौर्णमासीका पूर्वभाग है।[४९] व्याकरणके अनुसार अनु + मन् + क्तिच् प्रत्यय कर अनुमतिः शब्द बनाया जा सकता है।[५०]

(२९) राका :- यह पूर्णिमाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार राका रातेर्दानकर्मणः[४०] राका शब्दमें रा दाने धातुका योग है, क्योंकि इसमें देवताओं को हवि दी जाती है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। अर्थात्मकता प्राचीन सांस्कृतिक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार रा दाने धातुसे कः प्रत्यय कर राका शब्द बनाया जा सकता है।[५१]

(३०) सूची :- इसका अर्थ सूई होता है। निरुक्तके अनुसार सूची शब्द सिव् तन्तु सन्ताने धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि इससे तन्तु का सन्तान होता है। इसका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण संगत नहीं है। अर्थात्मकता उपयुक्त है। व्याकरणके अनुसार सूच् धातुसे इ प्रत्यय कर सूचिः शब्द बनाया जा सकता है।[५२]

(३१) सिनीवाली :- निरुक्तकारोंके अनुसार देवपत्नी तथा याज्ञिकोंके अनुसार यह अमावास्या है। अमावास्याके पूर्वभागको सिनीवाली कहते हैं।[५३] निरुक्तके अनुसार - सिनमन्नं भवति सिनाति भूतानि[४०] सिनम् अन्न का वाचक है। इसमें षिञ् बन्धने धातु का योग है। षिञ् + नक् = सिनम्। यह सभी प्राणियों को बांधे रहता है। वाल पर्व का वाचक है क्योंकि उत्सवोंका वरण किया जाता है। इस प्रकार वृ धातुसे वार-वाल शब्द बना[५४] वालं पर्व वृणोतेः तस्मिन्नन्नवती वालिनी वा।[४०] सिनीवाली शब्दमें दो खण्ड हैं सिनी + वाली। सिनी शब्द षिञ् + नक् + ङीप् कर तथा वाली वृ - वार - वाल + ङीप् कर बनाया जा सकता है। (वालोऽस्यास्तीति वाली सिनी चासौ वाली इति सिनीवाली अर्थात् प्रशस्त अन्न युक्त पर्व वाली। वालिनी के लिए वालोऽस्यास्तीति वालिनी किया जा सकता है। (२) वालेनेवास्यामणुत्वाच्चन्द्रमाः सेवितव्यो भवतीति वा वाल की तरह सूक्ष्म होने से चन्द्रमा सेवितव्य होता है अतः इसे सिनीवाली कहा गया। इस निर्वचनका सामासिक आधार स्पष्ट है। सभी निर्वचनों का अर्थात्मक महत्त्व है अन्तिम निर्वचन उपमा (सादृश्य) पर आधारित

है। यह निर्वचन ध्वन्यात्मक आधारसे भी युक्त है। व्याकरणके अनुसार सिनी शुक्ला वाला चन्द्रकला अस्यामिति सिनी + वल् मिश्रणे + घञ् + ङीप् = सिनीवाली शब्द बनाया जा सकता है।[५४]

(३२) स्वसा :- यह भामिनीका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) स्वसा सुअसा इस शब्दमें सु + असा पद खण्ड है। सु +अस् भुवि धातुका योग स्पष्ट है। सु का अर्थ होता है अच्छी तरह तथा असा रहने वाली। अच्छी तरह मर्यादासे रहने वाली स्वसा कहलाती है। (२) स्वेषु सीदतीति वा[५०]इसके अनुसार इस शब्दमें स्व + सद् विशरणगत्यवसादनेषु धातुका योग है, क्योंकि वह अपने लोगों में रहती है। दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार सु + असु क्षेपणे धातु + ऋन् कर स्वसा शब्द बनाया जा सकता है।[५५] अंग्रेजी भाषा का sister इसका अन्तर्राष्ट्रीय रूप है।

(३३) स्तुक :- यह जघन तथा केशपाशका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- स्तुकः स्त्यायतेः संघातः[५०] यह शब्द स्त्यै संघाते धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि जघन प्रदेशमें मांसादिका संघात है तथा केश पाश भी बालोंका संघात होता है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(३४) कुहू :- इसका अर्थ होता है- अमावास्या। निरुक्तके अनुसार कुहूर्गूहतेः[५०] यह गुह् सम्वरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है। गुह्-धात्वस्थ आदक्षर ग् का क +कुह् +ऊङ् कुहूः। यह चन्द्रमाको छिपाती है। (२) क्वासूदीति वा (१) चन्द्रके अप्रत्यक्ष रहने पर वह (चन्द्र) कहां था ऐसा पूछे जानेके कारण भी इसे कुहूः कहा जाता है। इसके अनुसार इसमें-क्व + भू धातुका योग है। (३) क्व सती हूयत इति वा कहां रहती हुई पुकारी जाती है। इसके अनुसार इस शब्दमें क्व + हू धातुका योग है। (४) क्वाहुत हविर्जुहोतीति वा कहां रहती हुई हवनको ग्रहण करती है। इसके अनुसार भी इसमें क्व + हू धातुका योग है। सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। सभी कल्पनाश्रित आधार से युक्त हैं। व्याकरणके अनुसार कुह् विस्मापने धातुसे कूः प्रत्यय कर कुहूः शब्द बनाया जा सकता है।[५६]

(३५) नर्य :- इसका अर्थ मनुष्य होता है। यास्क नर्य शब्दके तीन अर्थ किए हैं- १- मनुष्य, २- नृभ्योहितः अर्थात् मनुष्यों के लिए हितकारी। इसके अनुसार-न + यत् प्रत्यय है। ३- नसापत्यमितिवा- अर्थात् नरकी सन्तानको भी नर्यः कहा जा सकता है। यहां अपत्य अर्थमें य प्रत्यय है। अन्तिम दो निर्वचन तद्धित पर आधारित है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(३६) इन्द्राणी :- इन्द्र की पत्नीको इन्द्राणी कहा गया है। यह स्त्री प्रत्ययान्त है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार इन्द्र + ङीष् (आनुक्) कर इन्द्राणी शब्द बनाया जा सकता है।[५७]

(३७) गौरी :- इसका अर्थ होता है- माध्यमिक वाक् (विद्युत्)। निरुक्तके अनुसार गौरी रोचतेर्ज्वलति कर्मण:[५८] गौरी शब्द ज्वलत्यर्थक् रूच् धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि वह तेजयुक्त है। लगता है यास्कने रूच् का वर्ण विपर्यय से चुर्-गुर्-गौरी माननेका प्रयास किया है। इसका ध्वन्यात्मक आधार संगत नहीं है। अर्थात्मक संगति के लिए ही रूच् धातुकी कल्पना की गयी है। यास्कके अनुसार गौर वर्ण वाचक गौरी शब्द भी इसी निर्वचनसे माना जायगा- अयमपीतरो गौरी वर्ण एतस्मादेव प्रशस्यो भवति[५९] गौरवर्ण कृष्णवर्णकी अपेक्षा दीप्त होता है प्रशस्य होता है।[५९] उपर्युक्त निर्वचनसे ही यह भी माना जायगा। व्याकरणके अनुसार गुरी उद्यमने धातुसे घञ्[६०] प्रत्यय कर, गौर + अण् गौर+ङीप्- गौरी शब्द बनाया जा सकता है।

(३८) धेनु :- यह माध्यमिक वाक् (मेघ) का वाचक है। निरुक्तके अनुसार धेनुर्धयतेर्वा[६१] यह शब्द धेट् पाने धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि इसका पान किया जाता है। (२) घिनोतेर्वा[६१] इस शब्दमें घिवि प्रीणने धातुका योग है। यह पृथ्वी को तृप्त करता है। दोनों निर्वचन मेघके अर्थमें संगत हैं। निरुक्त सम्प्रदाय के अनुसार धेनु: माध्यमिक वाक् है तथा याज्ञिकोंके अनुसार धेनु धर्मधुक् है।[६१] प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचन अर्थात्मक आधार रखता है। लौकिक संस्कृतमें धेनु: शब्द नव प्रसूता गौ का वाचक है अर्थ सादृश्यके आधार पर ही यह शब्द नव प्रसूता गौ के लिए प्रयुक्त हुआ। व्याकरणके अनुसार धेट् पाने धातुसे नु:[६२] प्रत्यय कर धेनु: शब्द बनाया जा सकता है।

(३९) अघ्न्या :- इसका अर्थ गाय तथा भैंस होता है। निरुक्तके अनुसार १- अघ्न्याऽहन्तव्या भवति[६३] अघ्न्या शब्द में नञ्-अ+हन् हिंसा गत्यो: धातु का योग है, क्योंकि वह अवध्या होती है। २- अघघ्नीति वा[६३] इस शब्दमें अघ + हन् धातुका योग है क्योंकि यह पापोंको दूर करने वाली होती है प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना जायगा। द्वितीय निर्वचन गायकी पवित्रता एवं उसके पूज्य भावना को व्यक्त करता है। यास्क के उपर्युक्त दोनों निर्वचन मेघ के

अर्थको पूर्ण रूपमें व्यक्त नहीं करते। व्याकरणके अनुसार-न+ हन् + यक् +टाप् प्रत्यय कर अघ्न्या शब्द बनाया जा सकता है।[६३]

(४०) पथ्या :- यह मेघका वाचक है। निरुक्तके अनुसार पन्था अन्तरिक्षं तन्निवासात्[५८] पन्था अन्तरिक्षको कहते हैं उस अन्तरिक्षमें निवास करनेके कारण मेघको पथ्या कहा जाता है। इसके अनुसार इस शब्दमें पथिन् + यत् प्रत्यय है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार पथिन् + यत्[६४]- इनो लोपः = पथ्य + टाप् = पथ्या शब्द बनाया जा सकता है।

(४१) स्वस्ति :- इसका निर्वचन यास्कने तृतीय अध्यायमें दिया है। यह शब्द कल्याणका वाचक है। निरुक्तके तृतीय अध्याय के अनुसार सु + अस्ति से स्वस्ति माना गया है। अस्ति अभिपूजित का वाचक है। इस प्रकार स्वस्ति का अर्थ होगा कल्याण युक्त रहना। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(४२) अन :- वायु, शकट, मेघ। निरुक्तके अनुसार-अनो वायुः अनितेः[५८] अनः वायुका वाचक है। यह शब्द अन् प्राणने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। वायु प्राण धारण का प्रधान आधार है। शकट को भी अनः कहा जाता है यह उपमार्थक है- अनः शकटम् आनद्धमस्मिन् चीवरम्[५८] अर्थात् इसमें चीवर (कपड़) बंधे रहते हैं इसके अनुसार अनः शब्दमें अह्नह् बन्धने धातुका योग है अनितेर्वास्यात् जीवनकर्मणः[५८] यह शब्द अन् प्राणने धातु (जीवनार्थक) के योग से निष्पन्न होता है। क्योंकि लोग गाड़ी को जीविका का आधार बनाते हैं।[६५] मेघ भी अनः कहा जाता है- मेघोऽप्यन एतस्मादेव[५८] जीवनका आधार मेघ भी है अतः मेघको भी अनः कहा जाता है। अन् धातुसे अनः मानना ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार रखता है।। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। व्याकरणके अनुसार अन् प्राणने धातुसे असुन् प्रत्यय कर अनस् शब्द बनाया जा सकता है।[६६] अन शब्दके शकट वाचक निर्वचनसे स्पष्ट होता है कि यास्कके समय कुछ लोग गाड़ी द्वारा व्यापार कर अपनी जीविका चलाते थे।

(४३) रोदसी :- यह रूद्रकी पत्नीका वाचक है। रूद्र वायुके लिए यहां प्रयुक्त है। वायु की पत्नी विद्युत् को रोदसी कहा गया है। इसका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है। लौकिक संस्कृतमें द्यु लोक एवं पृथ्वी लोकको रोदसी कहा जाता है।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि.दु.वृ. ११।१, २. नि. ११।१, ३. असौ यज्ञेषु अभिषूयते- नि.दु.वृ. ११।१, ४. नि.दु.वृ. ११।१, ५. बहुलमस्य नैघण्टुकं वृत्तमाश्चर्यमिव प्राधान्येन- नि ११।१, ६. अतिस्तुसु...उणा. १।१३७, ७. चन्द्रे मो डित्-उणा. ४।२२६, ८. चम्यमानः निर्पीयमानो देवैः द्रमतीति वा- नि.दु.वृ. ११।१, ९. स्फायितञ्चि.- उणा. २।१३, १०. अष्टा. ३।४।११३, ११. दसनिजनिचरिचटिभ्योञुण्- उणा. १।३, १२. तु-वृ.दे. २।६०, १३. दी इटीमोलोजीज ऑफ यास्क पृ. १२१, १४. भुजिमृड्भ्यां युक् त्युकौ- उणा. ३।२१, १५. अष्टा. ३।१।११३, १६. कलाः सोमसमुद्भवाः केचिदवयवाः अस्मिन् शेरते इति कलशः- नि.दु.वृ. ११।१, १७. अन्येभ्योऽपि. वा. ३।२।१०१, १८. पचाद्यच्- अष्टा. ३।१।१३५, १९. हला. को.-पृ. २१०, २०. तालव्या अपि दन्त्याश्च शम्बशूकर पांशवः। कलशः शम्बलश्चैव जिह्वायां रशना तथा- इति श भेदे, २१. कलां कलां गहीत्वा तु देवानां विश्वकर्मणा निर्मितोऽयं स वै यस्मात् कलशस्तेन कथ्यते।। (निर्वाणतंत्र) वाच. १७८१ पृष्ठ, २२. अच इः- उणा. ४।१३९, द्र.-हला. पृ. २११, २३. कला अपि राशेः विक्षिप्ता भवन्ति-नि.दु.वृ. ११।१, २४. अष्टा. ३।१।१३४, २५. नि. ११।२, २६. मृग्रोरूतिः- उणा. १।९४, २७. ऋ. १।८८।१, २८. स्वपितृषोर्नजिङ्- अष्टा. ३।२।१७२, २९. अ.को. ३।१।२२ (द्र. रामाश्रमी), ३०. नि.मी. पृ. ४२९, ३१. ऋभुर्विभ्वा वाजइति सुधन्वन्, आंगिरसस्य त्रयः पुत्रा वभूवुस्तेषां प्रथमोत्तमाभ्यां वहुवन्निगमा भवन्ति न मध्यमेन- नि. ११।२, ३२. हला. पृ. १८५, ३३. नि. ३।३, ३४. थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः- नि. ११।२, ३५. नि.दु.वृ. ११।२, ३६. द्र. नि.मी. पृ. ३४१, ३७. नि.मी.पृ. ३४१, ३८. ऋ. ४।६।८, ३९. यस्मात् ते स्तुत्तिभिः स्तुत्यान् आप्नुवन्ति तस्मादाप्त्याः इन्द्रसहचारिणः ऋषयः- नि.दु.वृ.११।२, ४०. नि. ११।३, ४१. यस्मादेतत् कर्तारमवश्यमेति तस्मादागः- नि.दु.वृ. ११।३, ४२. इणआगो ऽपराधे चाउणा. ४।२१२, ४३. इण आगा सि-उणा. ४।१९८द्र. हला. पृ. १८८, ४४. किल्विषकस्मात्? उच्यते यस्मादेतत् किल-निश्चयेन सुकृतस्य विषं भेदकं भवति तस्मात् किल्विषमुच्यते। अथवा कीर्तेः विषम् किल्विषम्। नि.दु.वृ. ११।३, ४५. किलेर्बुक्च- उणा. १।५०, ४६. देवशुनीति ऐतिहासिकाः, नैरुक्ताः पुनः सरमां मध्यमां वाचं मन्यन्ते-नि.दु.वृ. ११।३, ४७. नद्यः कस्मात्? नदना इमा भवन्ति शब्दवत्यः- नि.२।७, ४८. रसः स्वादे जले वीर्ये शृंगारादौ विषे द्रवे। वाले रागे गृहे धातौतिक्तादौ पारदेऽपि च। हेम२।६००-१, ४९. या पौर्णमासीसा अनुमतिः- ऐ.ब्रा.

७।११।३, ५०. अष्टा. ३।३।१७४, ५१. कृदाधार्चिकलिभ्यः कः- उणा. ३।४०, ५२. अच इः- उणा. ४।१३९, ५३. सिनीवाली कुहूरिति देवपत्न्याविति नैरुक्ताः अमावास्येइतियाज्ञिकाः। या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली-नि ११।३, ५४. हला. ७११ (पृ.), ५५. सुञ्यसेर्ऋन्- उणा. २।९६, ५६. नृतिशृध्योः कः- उणा. १।९१, ५७. हला.- १६१ पृ., ५८. नि ११।४, ५९. दीप्ति रूपत्वात् कृष्णादीन् अपेक्ष्य प्रशंसनीयो भवति-नि.दु.वृ. ११।४, ६०. हलश्च-अष्टा. ३।३।१२१ इति घञ्, ६१. एषा माध्यमिकावाक् इतिनैरुक्ताः धर्मधुगिति याज्ञिका मन्यन्ते-नि.दु.वृ. ११।४, ६२. धेट् इच्च-उणा. ३।३४ इतिनुः, ६३. अध्न्यादयश्च-उणा. ४।११०, ६४. दिगादिभ्यो यत्- अष्टा. ४।३।५४, ६५. उपजीवन्त्येनत्- नि. ११।४, ६६. सर्व धातुभ्योऽसुन्- उणा. ४।१८९.

(च) द्वादश अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निघण्टुके पंचम अध्यायके षष्ठ खण्डमें देवताओंसे सम्बद्ध ३१ नाम संकलित हैं। पंचम अध्यायका षष्ठ खण्ड दैवत काण्डका अन्तिम खण्ड है। इन पदोंके निर्वचन निरुक्तके द्वादश अध्यायमें सम्पन्न हुए हैं।

निरुक्तके द्वादश अध्यायमें कुल ५१ निर्वचन प्राप्त होते हैं। इनमें निघण्टुके पंचम अध्यायके अंतिम खण्ड के ३१ पद भी संकलित हैं। इस प्रकार इस अध्यायमें २० ऐसे पद हैं जो या तो देवताओं से सम्बद्ध हैं या प्रसंगतः प्राप्त हैं। निघण्टुके दैवतकाण्डके अन्तिम खण्डमें पठित ३१ पदोंमें सबोंका निर्वचन यास्क यहां उपस्थित नहीं करते हैं। वैसे पद जिसकी व्याख्या पूर्वमें हो चुकी है, को पूर्व व्याख्यात कह कर काम चला लेते हैं। यह पुनरुक्त दोषसे बचनेका उत्तम प्रकार है। पूर्व व्याख्यात इन शब्दोंके अर्थ बदल गये हैं या उनका अर्थान्तरमें प्रयोग हुआ है, वैसे शब्दोंका वे अर्थ स्पष्ट कर देते हैं। पूर्व व्याख्यात शब्दोंमें सविता, त्वष्टा, भगः, विश्वानरः, वरूणः, विकेशिन्, यमः, वृक्षः, पृथिवी, समुद्रः, अथर्वा, आदित्यः, अंशु, सप्त ऋषयः, देवा और वाजिनः शब्द परिगणित हैं।

इस अध्यायके सभी निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे या निर्वचन प्रक्रिया से महत्त्वपूर्ण हैं। यास्कने एक पद में अर्थके अन्वेषणमें एक से अधिक निर्वचनों का उपस्थापन किया है। इन निर्वचनोंमें कुछ तो ध्वन्यात्मक या अर्थात्मक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। फलतः ऐसे निर्वचनों को भाषा विज्ञानकी दृष्टि से पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस अध्याय के पूर्ण निर्वचन हैं- अश्विनौ, उषा, सूर्या, वृषाकपायी, उक्षणः, सरण्यः, कविः,

रामा, अधोरामः, कृकवाकु, तुरः, सूर्यः, पूषा, विष्णुः, केशो, विषम्, अजएकपात्, पविः, पवीरवान्, मनुः, साध्याः, वसवः, स्वर्काः, विश्वेदेवाः, देवपत्न्यः और राट्। इन निर्वचनोंमें कुछ पदोंके एकाधिक निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण भी हैं। ध्वन्यात्मक आधारसे शिथिल निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिमें अपूर्ण निर्वचन है। ध्वन्यात्मक शैथिल्यि से युक्त निर्वचनों में किंशुकम्, कविः, पांसवः, भुरण्युः, दध्यङ् एवं स्वर्काः है। इन पदोंके निर्वचनोंमें कुछ निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे उपयुक्त भी हैं। अर्थात्मक आदि आधारके अपूर्ण रहने पर ही निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण माने जाते हैं। इस अध्याय के निर्वचनों में शल्मलिः, स्नुषा, भुरण्युः, वृषाकपिः, पलाशः तथा घृतस्नूः शब्द भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे अपूर्ण है।

यास्कने अश्विनौ पदके निर्वचनोंमें अर्थसादृश्यको भी अपनाया है। उषा एवं केशी पदके निर्वचन दृश्यात्मक आधारसे युक्त हैं। किंशुक पदके निर्वचनमें रूप सादृश्यका सहारा लिया गया है। वृषाकपायी, विश्वेदेवाः देवपत्न्यः आदि पदोंके निर्वचन सामासिक आधार रखते हैं।

इस अध्यायके प्रत्येक पदोंके निर्वचनोंका मूल्यांकन द्रष्टव्य हैं -

(१) अश्विनौ :- इसका अर्थ होता है द्यु स्थानीय देवता अश्विनी युगल। यह शब्द द्विवचनान्त हैं क्योंकि देवयुग्मका वाचक है। निरुक्तके अनुसार अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषाऽन्यः अश्विनौ शब्द में अशुङ् व्याप्तौ धातुका योग है, क्योंकि ये दोनों सबोंको व्याप्त कर लेतें हैं। एक रससे व्याप्त करते हैं तो दूसरे प्रकाश से। इसके अनुसार रससे व्याप्त करने वाले देव पृथ्वी स्थानीय माने जायेंगे तथा प्रकाशसे व्याप्त करने वाले द्यु स्थानीय। एक साथ रहनेके कारण दोनों द्युस्थानीय ही निघण्टु पठित हैं। अश्विनौ शब्दके निर्वचन क्रममें यास्क आचार्य और्णवाभके मत का भी उल्लेख करते हैं- अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः इसके अनुसार अश्वि शब्द से अश्विनौ शब्द बना है। अश्विनौ का अर्थ होगा अश्ववन्तौ अश्व से युक्त। इस निर्वचनके अधार पर अश्व + इनि प्रत्यय से अश्विन्- अश्विनौ माना जायगा।

अश्विनी युगल को स्पष्ट करते हुए यास्क कहते हैं कि कुछ लोगों के अनुसार अश्वि द्युलोक एवं पृथ्वीलोक हैं क्योंकि द्युलोक प्रकाशसे तथा पृथिवी रससे सबको व्याप्त करती है तथा दोनों गतिमान हैं कुछ नैरुक्तोंके अनुसार अश्वि अहोरात्र है। दिन प्रकाश से तथा रात्रि ओस (रस) से सबको व्याप्त कर लेती है। ये दोनों भी गतिमान हैं। ऐतिहासिकों के अनुसार अश्विनी युगल पुण्य कर्मा दो राजा हैं क्योंकि वे अश्ववान् (घोड़ों से युक्त) होते हैं।[१] इस प्रकार अश्विनी युगल के द्यावा पृथिवी, अहोरात्र, पुण्यवान् राजा तथा सूर्य

एवं चन्द्रमा अर्थ प्राप्त होते हैं जो अर्थ सादृश्य रखते हैं।

यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे सर्वथा संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। और्णवाभका निर्वचन भी भाषा विज्ञानके अनुसार संगत है। व्याकरणके अनुसार प्रशस्ता अश्वा सन्ति ययो :- अश्व+इन्[२] = अश्विन् अश्विनौ, अथवा अश्विन्यां जातौ अश्विनौ बनाया जा सकता है।[३]

(२) उषा :- इसका अर्थ होता है सूर्योदय प्राक् समय। द्यु स्थानीय देवता। निरुक्तके अनुसार उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः उषा शब्द वश् कान्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। व का उ सम्प्रसारण से हुआ है। उषा का अर्थ विद्युत् भी है जो मध्यम स्थानीय है- उच्छतेरितरा माध्यमिका इसके अनुसार उषा शब्दमें उच्छ विवासे धातुका योग है। विद्युत् प्रकाशमें अन्धकार हट जाता है। सूर्योदय प्राक् काल उषाके अर्थमें भी उच्छ् धातु माना जा सकता है, क्योंकि यह अन्धकार को काटती है।[४] प्रथम निर्वचन दृश्यात्मक आधार रखता है उषा प्रकाश से समन्वित है। विद्युत् अर्थमें प्रथम निर्वचन की अर्थात्मक संगति उपयुक्त है। दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार उष् दाहे धातुसे असः[५] प्रत्यय कर या उष् + का प्रत्यय कर उषा शब्द बनाया जा सकता है।

(३) सूर्या :- सूर्य की पत्नी। निरुक्तके अनुसार- सूर्या सूर्यस्य पत्नी। एषैवाभिसृष्टकालतमा अर्थात् सूर्या सूर्य की पत्नी है। उषा ही अधिक समय छोड़ने के बाद सूर्या बन जाती है। सूर्योदय तथा उषा के बीच का काल सूर्या है। सूर्या शब्द स्त्री प्रत्ययान्त शब्द है। सूर्य + आ= सूर्या। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरण के अनुसार- सूर्य +चाप् =सूर्या शब्द निष्पन्न होता है।[६]

(४) किंशुकम् :- इसका अर्थ होता है प्रकाशयुक्त। निरुक्तके अनुसार किंशुकं क्रंशतेः प्रकाशयति कर्मणः यह शब्द प्रकाशन अर्थ रखने वाले क्रंश्, धातुके योग से निष्पन्न होता है क्रंश्- किंशुकम्। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। यह अर्थात्मक महत्त्व रखता है। लौकिक संस्कृत में किंशुक पलाशका नाम है।[७] उसका अवयव कुछ शुक के सदृश होता है इसलिए उसे किंशुक कहा जाता है।[८] यास्क ने किंशुक शब्दका निर्वचन सूर्य रश्मिके अर्थमें किया है। किंशुक पलाशमें वर्ण सादृश्य आधार भी दृष्टिगत होता है। दुर्गाचार्य ने भी सुकिंशुकम् का अर्थ पलाश कुसुमके समान किया है।[९] व्याकरणके

अनुसार किम् + शुक = किंशुक शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें किंशुक पलाश पुष्पका वाचक है।

(५) शल्मलि :- इसका अर्थ होता है सेमल। निरुक्तके अनुसार (१) शल्मलिः सुशरो भवति यह शब्द शृ हिंसायाम् धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि इसे आसानीसे काटा जा सकता है। (२) शरवान् वा अथवा कण्टकयुक्त होता है। सेमल वृक्ष में कांटे होते हैं। शर +वतुप् शरवान् शल्मलिः माना गया। इसमें र एवं ल वर्ण का अभेद माना गया है। किसी भी निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। सभी अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। लौकिक संस्कृतमें भी शल्मलिः सेमलके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है। व्याकरणके अनुसार शल् संचलने +मल् धारणे धातु + इन्[१०] प्रत्यय कर शल्मलिः शब्द बनाया जा सकता है।

(६) वृषाकपायी :- यह द्युस्थानीय देवता है। निरुक्तके अनुसार वृषाकपायी वृषाकषेः पत्नी वृषाकपि सूर्यका वाचक है। सूर्योदयके बाद सूर्या ही वृषाकपायी बन जाती है। सूर्योदय कालके प्रति गयी हुई यह सूर्या ओसकणों के वर्षण एवं कम्पन से वृषाकपायी कहलाती है।[११] यह निर्वचन सामासिक आधार रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। समयके विभागका प्रकाशन ही वृषाकपायी है।

(७) स्नुषा :- इसका अर्थ होता है- पुत्रवधू। निरुक्तके अनुसार (१) स्नुषा साधुसादिनीति वा सम्यक् रूप में वंश का अंग बन कर रहने वाली होती है। इसके अनुसार साधु +सद् धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न होगा। (२) साधुसानिनीतिवा यह अच्छी तरह गृह की वस्तुओं को व्यवस्थित करने वाली होती है। इसके अनुसार साधु+सन् सम्भक्तौ धातुका योग है। (३) स्वपत्यं तत् सनोतीति वा इसके अनुसार सु अपत्यका वाचक है तथा सन् सम्भक्तौ धातुका योग है। वह सुन्दर अपत्य प्रदान करती है। ध्वन्यात्मक दृष्टिकोणसे कोई भी निर्वचन संगत नहीं है।सभीका अर्थात्मक महत्त्व है।व्याकरणके अनुसार स्नु प्रस्रवणे धातुसे सः प्रत्यय कर स्नुषा शब्द बनाया जा सकता है।[१२]

(८) उक्षण :- (अवश्याय) यह ओसका वाचक है। निरुक्तके अनुसार- उक्षण उक्षतेर्वृद्धकर्मणः यह शब्द वृद्धयर्थक उक्ष् धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि इससे औषधियां बढ़ती है, या यह औषधियों को बढ़ाती है। (२) उक्षन्त्युदकेनेति वा या यह अपने जल कणोंसे पौधोंको सींचती है। इसके अनुसार इस शब्दमें उक्ष् सेचने धातुका योग है। दोनों निर्वचनोंका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इन्हें संगत माना जायगा।

(९) **सरण्यू** :- यह वृषाकपायी तथा त्वष्टा की दुहिता का वाचक है। निरुक्तके अनुसार सरण्यू: सरणात्। इस शब्दमें सृ गतौ धातुका योग है, क्योंकि वह सूर्य की ओर गयी हुई है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-सृ-गतौ + अन्यु कर सरण्यु: सरण्यू: बनाया जा सकता है।[९३]

(१०) **कवि** :- इसका अर्थ होता है मेधावी, काव्यकर्ता आदि। निरुक्तके अनुसार, कवि: क्रान्तदर्शनो भवति[९४] कवि क्रान्तदर्शन वाला होता है। सामान्य लोगोंकी अपेक्षा सभी पदार्थोंका अधिक ज्ञान रखता है। उससे किसी भी पदार्थका स्वरूप अज्ञात नहीं होता।[९५] इसके अनुसार कवि शब्द में क्रम् धातुका योग माना जायगा। कवतेर्वा[९४] वह अपने भावों को शब्दोंमें बांधता रहता है। या शब्द करता है। इसके अनुसार कवि: शब्दमें कु धातुका योग है। प्रथम निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। द्वितीय निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार कु शब्दे + इ[९६], कवृ वर्णे +इ:= कवि: शब्द बनाया जा सकता है। यास्कका प्रथम निर्वचन व्यंजनगत औदासिन्य से युक्त है।

(११) **रामा** :- इसका अर्थ होता है-शूद्रा, कृष्णा। निरुक्तके अनुसार-रामा रमणाय उपेयते न धर्माय[९४] वह रामा रमण (विषय भोग) के लिए होती है, धर्म के लिए नहीं। इसके अनुसार रामा शब्द में रमु क्रीडायाम् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा व्याकरणके अनुसार इसे रम् +अण् + टाप् कर (रमते रमयतीतिवा) या रम् + घञ् +=टाप् = (रमतेऽनयेति वा) रामा शब्द बनाया जा सकता है।[९७] (लौकिक संस्कृतमें रामा स्त्रीभेद है।[९८] मात्र शूद्रा के लिए इसका प्रयोग नहीं होता। रामा अविद्याग्रस्त स्त्री होती है। अविद्याग्रस्त होना शूद्रा की विशेषता है। यास्कके समय रामा संभोग मात्रके लिए होती थी। उस समय स्त्रियोंका एक वर्ग और होगा जो विद्यावती होती होगी, उसे ब्रह्मवादिनी कहा जाता होगा। उपनिषदों में ब्रह्मवादिनी की चर्चा प्राप्त होती है। यास्कने रामाका पर्याय कृष्णा दिया है जो अविद्या ग्रस्त होनेके कारण ही कृष्ण जातीय कृष्णा कहलाती थी।) यास्कके निर्वचनसे तत्कालीन स्त्रियोंकी स्थितिका पता चलता है। निरुक्तमें रामाका अर्थ दुश्चरित्र स्त्री किया गया है। निश्चय ही रामा शब्दके अर्थमें बादमें उत्कर्ष हुआ है। यास्कके समय जो मात्र रमणके लिए थी धर्माचरण के लिए नहीं, वही रामा शब्द लौकिक संस्कृतमें उत्कृष्ट स्त्रीविशेष के लिए प्रयुक्त है। श्रीमद्भागवत में गीतकला से अभिरमण करने वाली स्त्री विशेष रामा कहीं गयी हैं।[९९]

(१२) अधोराम :- यह सावित्र का वाचक है। सावित्र काल विशेष है इस समय पृथिवी पर अन्धकार रहता है। निरुक्तके अनुसार अधोरामः सावित्रः इति पशुसमाम्नाये विज्ञायते। अर्थात् पशुके अर्थमें अधोराम सावित्र पक्षी विशेष खंजन का वाचक है क्योंकि उसका भी पैर काला होता है। रामका अर्थ होता है कृष्ण। नीचेका भाग काला है जिसका उसे अधोराम कहा जायगा। सावित्र काल एवं खंजन पक्षीके अधो भागमें कृष्णत्वकी समानता है।[२०] रामका अर्थ कृष्ण इसलिए होता है क्योंकि कहा गया है - अग्निका चयन करके रामा अर्थात् शूद्राका संगम नहीं करना चाहिए। शूद्रा स्त्रीको कृष्ण जातीया कहा गया है अविधा ग्रस्त होनेके कारण वह कृष्ण वर्ण की कहलाती है। फलतः रामा एवं कृष्णा पर्याय वाची शब्दहो गये। इसी समानताके आधार पर रामका अर्थ कृष्ण हो गया। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा।

(१३) कृकवाकु :- इसका अर्थ होता है पक्षी विशेष, मुर्गा। निरुक्तके अनुसार कृकवाकोः पूर्वं शब्दानुकरणं वचेरुत्तरम्[१४] इस शब्दका पूर्व भाग कृक शब्दानुकरण है तथा उत्तर भागमें वच् धातुसे निष्पन्न वाकुः शब्द है। इसका अर्थ होगा कृक कृक शब्द करने वाला। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। यह निर्वचन शब्दानुकरण सिद्धात पर आधारित है। व्याकरणके अनुसार कृक + वच् + उण् प्रत्यय कर कृकवाकुः शब्द बनाया जा सकता है।[२२]

(१४) तुर :- यह यमका वाचक है। निरुक्तके अनुसार तुर इति यम नाम तरतेर्वा[१४] तुर यम का नाम है, यह शब्द तॄ प्लवनसंतरणयोः धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि वह पार करने वाला है। (२) त्वरतेर्वा[१४] अर्थात् तुरः शब्दमें त्वर् संभ्रमे धातुका योग है, क्योंकि वह शीघ्र गति वाला है।[२३]त्वरका सम्प्रसारण रूप तुर है त् -व-उ - र = तुर। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगतमाना जायगा।व्याकरणके अनुसार तुर् +क प्रत्यय कर तुरः शब्द बनायाजा सकता है।

(१५) सूर्य :- इसका अर्थ होता है - आदित्य। निरुक्तके अनुसार (१) सरतेर्वा[१४] यह शब्द सृ गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि वह अन्तरिक्षमें गमन करता है। (गमन करता सा दीख पड़ता है) (२) सुवतेर्वा[१४] यह शब्द सू प्रेरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह प्राणियों को अपने अपने कर्मोमें लगने के लिए प्रेरित करता है। (३) स्वीर्यतेर्वा[१४] इसके अनुसार यह शब्द सु + ईर् गतौ धातु के योग से निष्पन्न माना जायगा। वायु के द्वारा यह प्रेरित होता है।[२४] ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार प्रथम निर्वचन का

उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। द्वितीय निर्वचन व्यवहार परक अर्थ रखता है तथा तृतीय स्तर हीन कल्पनासे युक्त है। व्याकरणके अनुसार सृ गतौ या सू प्रेरणे धातुसे क्यप् प्रत्यय कर सूर्यः शब्द बनाया जा सकता है।[२५]

(१६) पूषा :- यह आदित्यका वह रूप है जो अपनी किरणोंसे सभी को पुष्ट करता है। निरुक्तके अनुसार अथ यद्रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषाभवति[१४] जो सूर्य रश्मि द्वारा प्रकाशित करता है पुष्ट करता है या व्याप्त है वह पूषा है। इसके अनुसार पूषा शब्दमें पुष् पुष्टौ धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार पुष्ट है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। अर्थात्मकता दृश्य पर आधारित है। व्याकरणके अनुसार पूष् वृद्धौ + कनिन् प्रत्यय कर पूषण् पूषा शब्द बनाया जा सकता है।[२६]

(१७) विष्णु :- इसका अर्थ होता है मध्यम स्थानीय देवता - सूर्य। निरुक्तके अनुसार (१) अथ यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति[१४] जब सूर्य किरणोंसे व्याप्त होते है तब विष्णु कहलाते है। अपने प्रकाशसे व्याप्त करनेके कारण ही विष्णु कहलाते हैं। इसके अनुसार इस शब्द में विष् व्याप्तौ धातुका योग है। (२) विष्णुर्विशतेर्वा[१४] विष्णु शब्द विश् प्रवेशने धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि यह अपनी किरणोंसे सब जगह आविष्ट होता है।[२७] (३) व्यश्नोतेर्वा[१४] विष्णु शब्द वि + अशुङ् व्याप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। यह अपनी किरणोंसे सभी को व्याप्त कर लेता है। विश् धातुसे विष्णुः शब्द माननेमें ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार संगत है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं। विष्णु पुराणमें भी विश् धातुसे ही विष्णु शब्दकी व्युत्पत्ति संकेतित है।[२८]व्याकरणके अनुसार विश् व्याप्तौ धातुसे नुःप्रत्यय कर विष्णु शब्द बनायाजा सकता है।[२९]

(१८) पांसव :-यह धूलिका वाचक है। पांसु धूलि को कहते है तथा पांसु का वहुवचन रूप पांसवः है। निरुक्त के अनुसार - पांसवः पादैः सूयन्त इतिवा१४ यह पैरोंसे पैदा होती है। इसके अनुसार यह शब्द पादैः का पाद तथा उत्पन्न करना अर्थ वाले सु धातुके योगसे निष्पन्न होता है। (२) पन्नाः शेरते इतिवा[१४] ये धूल गिर कर पड़ी रहती है या सोती रहती है। इसके अनुसार इस शब्दमें पद् गतौ एवं शी शयने धातुका योग है।(३) पिंशनीया भवतीतिवा[१४] वह नाशके योग्य होती है। शरीर में लग जानेपर लोग धूल को झाड़ देते है।[३०]इसके अनुसार इस शब्दमें पिष् संचूर्णने धातुका योग है। इन निर्वचनोंमें प्रथम निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त है। इन निर्वचनों की अर्थात्मक कल्पना उत्तम श्रेणी की नहीं है। डा-वर्मा के अनुसार इन निर्वचनों

में स्वरगत एवं व्यंजनगत औदासिन्य है।[३१] व्याकरणके अनुसार पंसि नाशने धातुसे कु प्रत्यय कर पांसुः शब्द बनाया जा सकता है।[३२]

(१९) मुरण्यु :- इसके अर्थ होते है - शीघ्र, पक्षी विशेष, सूर्यरश्मि। निरुक्तके अनुसार मुरण्युरिति क्षिप्रनाम। मुरण्युः शकुनिर्मुरिमध्वानं नयति मुरण्युः शीघ्रका नाम है। पक्षीको भी मुरण्यु कहते हैं क्योंकि यह दूर तक मार्ग तय करता है। इसके अनुसार इस शब्दमें मूरि +नी प्रापणे धातुका योग है। स्वर्गस्य लोकस्यापि वोढा यह द्यु लोकमें भी पहुंचने वाला है। उस सुपर्ण पक्षी की तरह द्युलोक तक पहुंचने वाला सूर्यरश्मि मुरण्यु कहलाती है।[३३] यह निर्वचन ध्वन्यात्मक दृष्टिसे अपूर्ण है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। सभी निर्वचनोंके अर्थात्मक महत्त्व हैं। व्याकरणके अनुसार मृ धातुसे कन्यु प्रत्यय कर मुरण्युः शब्द बनाया जा सकता है।

(२०) केशी :- यह आदित्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार केशी केशा रश्मयस्तद्वान् भवति[३४] केश रश्मिका द्योतक है तथा उससे युक्त केशी कहलायगा। इस शब्दमें केश + तद्वान् अर्थमें ई प्रत्यय है - केशी। (२) काशनाद्वा प्रकाशनाद्वा[३४] यह शब्द काश् दीप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह प्रकाशित होता है। प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिकोणसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक आधार है। काश् धातुसे केशीमें दृश्यात्मक आधार स्पष्ट है। डा. वर्माके अनुसार केशका काश् धातुसे संबंध ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे अनुपयुक्त है।[३५] लौकिक संस्कृतमें इसका अर्थ बाल है। व्याकरणके अनुसार के+शा+अच् = केशी (के मस्तके शेते) अलुक् समास (बालके अर्थमें) केश+ङीष् = केशी शब्द बनाया जा सकता है।[३६] निरुक्तमें अग्नि एवं वायु भी केशी कहे गये है। धूमसे अग्नि केश वाला होकर केशी कहलाये तथा रजःकणसे वायु केश वाला होकर केशी कहलाये।[३७]

(२१) केशिन :- यही केशी शब्द द्वारा ही व्याख्येय है। यह अग्नि एवं विषका भी वाचक है।

(२२) विषम् :- यह जलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार (१) विषमित्युदक नाम। विष्णातेः विपूर्वस्य स्नातेः शुद्धयर्थस्य[३४] यह शब्द वि + ष्णा शुद्धौ धातु के योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह शुद्ध होता है। (२) वि पूर्वस्य वा सचतेः[३४] विषम् शब्दमें वि + षच् समवाये धातुका योग है, क्योंकि यह स्नान पानादि के लिए संग्रह किया जाता है। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखता है। लौकिक संस्कृत में विषम् का अर्थ जल के अतिरिक्त

जहर भी होता है।[३८] व्याकरणके अनुसार विष्लृ व्याप्तौ धातुसे कः प्रत्यय कर विषम् शब्द बनाया जा सकता है।[३९]

(२३) वृषाकपि :- यह संज्ञापद है। यह अस्त कालीन आदित्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार अथ यद्रश्मिरभिप्रकम्पयन्नेति तद् वृषाकपिर्भवति, वृषाकम्पन:[३४] जब अपनी किरणोंसे प्रकम्पित करता हुआ सूर्य अस्त होता है तब उस समय वह वृषाकपि कहलाता है। वह वृषा कम्पन है। अस्त होते हुए अपनी रश्मियोंसे भूतोंको कंपाता है। इसके अनुसार वृषाकपिः शब्दमें वृषा+ कम्प् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त नहीं माना जायगा। मात्र इसका अर्थात्मक महत्त्व है। कोशग्रन्थोंमें वृषाकपिः शब्दके शंकर, विष्णु तथा अग्नि अर्थ प्राप्त होते हैं।[४०] व्याकरणके अनुसार वृषं (धर्म) +कम्प् +इ प्रत्यय कर वृषाकपिः शब्द बनाया जा सकता है।[४१]

(२४) पलाशम् :- यह एक वृक्ष विशेष किंशुकका नाम है। निरुक्तके अनुसार पलाशं पलाशदनाद्[३४] पलाश शब्द परा + शद् धातु - पला+शद् धातुके योग से निष्पन्न हुआ है। यह शत्रुओंको नष्ट करने वाला है। प्रकृतमें पलाश द्यु लोकका वाचक है। र का ल रलयोरभेदः के अनुसार हुआ है इसका अर्थात्मक आधार पूर्ण उपयुक्त नहीं है। दुर्गाचार्यने इसमें पल+ अश् धातुका योग माना है।[४२] व्याकरणके अनुसार पल + अश् + अण्[४३] या घञ् प्रत्यय कर पलाशः शब्द बनाया जा सकता है। यास्कका यह निर्वचन भाषा विज्ञानके अनुसार पूर्ण संगत नहीं है।

(२५) अजएकपात् :- इसका अर्थ होता है - अस्तादित्य। निरुक्तके अनुसार-अज एक पादजन एकः पादः[३४] सर्वदा गतिशील तथा ब्रह्मा का एक पाद।[४४] अजन- अज +एकपाद्- एकेन पादेन पातीति वा[३४] एक ही अंश (पाद) से सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करता है। एकेन पादेन पिबतीतिवा[३४] एक ही पाद (अंश) से सम्पूर्ण जगत् का जल पी जाता है। एकोऽस्य पाद इतिवा[३४] अथवा एक ही पाद (अंश) सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। इस प्रकार अजएकपात्- अजन-अज + एक +पा रक्षणे, तथा पा पाने धातुके योगसे माना जायगा। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(२६) पविः :- यह वज्र का वाचक है। निरुक्त के अनुसार पविः शल्यो भवति यद्विपुनाति कायम्[३४] पविः वज्र होता है क्योंकि यह शरीर को फाड़ता है।[४५] इसके अनुसार इसमें पू पवने धातु का योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञान के अनुसार इसे संगत माना

जायगा। व्याकरणके अनुसार पुञ् + इः = पविः शब्द बनाया जा सकता है।[४६]

(२७) पवीरवान् :- यह इन्द्रका नाम है। निरुक्तके अनुसार पविः शल्यो भवति यद्विपुनाति कायं तद्वत्पवीरमायुधं तद्वानिन्द्रः पवीरवान्[३४] अर्थात् पवि बज्र को कहते हैं क्योंकि वह शरीर को फाड़ देता है उस पवि से युक्त पवीर आयुध कहलाता है। पवीर शब्द में मत्वर्थीय र प्रत्यय है। पुनः तद्वान् अर्थमें वतुप् प्रत्यय के द्वारा पवीरवान् शब्द बनाया गया। अर्थात् पवीर (वज्रायुध) से जो युक्त है उसे पवीरवान कहा जायगा।इस निर्वचनका ध्वन्यात्मकएवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है।भाषाविज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

(२८) दध्यङ् :- यह आदित्यका वाचक है। निरुक्तके अनुसार दध्यङ् प्रत्यक्तोध्यानमितिवा[३४] ध्यान या प्रकाशनमें लगा हुआ है। प्रत्यक्त का द तथा ध्यानका ध्यङ् बन कर दध्यङ् शब्द बना है। (२) प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमितिवा[३४] अथवा इसमें ध्यान लगा हुआ होता है। इसमें भी प्रत्यक्त+ध्यानका ही योग है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक आधार उपयुक्त नहीं है। इसका मात्र अर्थात्मक महत्त्व है।

(२९) मनु :- यह संज्ञा पद है। आदित्यके लिए इसका प्रयोग हुआ है। निरुक्तके अनुसार- मनुर्मननात्[३४] मनु शब्दमें मन् ज्ञाने धातुका योग है। मनन करने के कारण मनु कहलाया।[४७] यास्कके अनुसार मन् धातु वधार्थक भी है। इसके अनुसार मनु (आदित्य) का अर्थ होगा रोगोंका नाश करने वाला। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार मन् ज्ञाने + उः प्रत्यय कर मनुः शब्द बनाया जा सकता है।[४८]

(३०) घृतस्नू :- इसका अर्थ होता है घी टपकाने वाली। निरुक्तके अनुसार (१) घृतस्नूः घृतप्रस्नाविन्य:[४९] इस शब्दमें घृत+स्ना धातुका योग है इसके अनुसार इसका अर्थ होगा घृत टपकाने वाली। (२) घृत प्रस्नाविन्य:[४९] यह शब्द घृत + स्रु धातुके योगसे निष्पन्न होता है। तदनुसार अर्थ होगा घृत प्रस्रवण करने वाली। (३) घृतसानिन्य:[४९] यह शब्द घृत + सन् धातुके योगसे निष्पन्न हुआ है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा घृत बांटने वाली। (४) घृतसारिण्य:।[४९] इस शब्दमें घृत + सृ धातुका योग है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा घृत वहाने वाली। सभी निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। ध्वन्यात्मक दृष्टिसे कोई भी पूर्ण नहीं है।

(३१) सप्तऋषयः :- सप्त की व्याख्या चतुर्थ अध्यायमें तथा ऋषिः की व्याख्या द्वितीय अध्यायमें की जा चुकी है। यहां सात रश्मियों या इन्द्रियों का वाचक है। सप्त शब्द सृता संख्याके द्वारा, तथा ऋषिः शब्द ऋषिदर्शनात् के

द्वारा स्पष्ट है।

(३२) देवाः :- देव शब्द का निर्वचन सप्तम अध्याय में हो चुका है। यहां देव शब्द सूर्यके लिए प्रयुक्त हुआ है। द्वितीय अध्यायमें देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा के द्वारा देव शब्दका निर्वचन किया गया है।[५०] दान के कारण दीपन के कारण तथा द्योतन के कारण देव कहलाता है। विशेष विवरणके लिए सप्तम अध्याय का देव शब्द निर्वचन द्रष्टव्य है।

(३३) विश्वेदेवाः :- यहां विश्वेदेवाः सूर्य रश्मियोंका वाचक है। निरुक्तके अनुसार विश्वेदेवाः सर्वे देवाः अर्थात् विश्व शब्द सर्व का द्योतक है। यास्कने विश्वेदेवाः[५१] शब्दका निर्वचन प्रस्तुत नहीं किया है मात्र अर्थ स्पष्टकिया है।भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे इसे उपयुक्त माना जायगा। विश्वेदेवाःशब्द व्याकरणकी प्रक्रिया के अनुसार सामासिक शब्द है सामासिक प्रक्रियाके द्वारा ही इसका निर्वचन हो जाता है।

(३४) साध्याः :- यह देवताका वाचक है, सूर्य रश्मियां। निरुक्तके अनुसार साध्या-देवाः साधनात्[५९] सम्पूर्ण जगत् को साधन से युक्त बनाते हैं, सिद्ध करते हैं, प्रकाशित करते हैं, अतः साध्याः देवतागण कहलाते हैं। साधन से साध्य माना गया है। इसके अनुसार इसमें साध् धातुका योग है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। निरुक्तकारोंके अनुसार साध्याः द्युलोक स्थित सूर्यरश्मियां हैं।[५१] ऐतिहासिकों के अनुसार साध्याःसत्ययुग माना जाता है।[५२] क्योंकि इसमें प्राणी मोक्षकी साधनामें संलग्न रहते हैं। व्याकरणके अनुसार सिध्णिच्ण्यत् प्रत्यय कर साध्यः साध्याः शब्द बनाया जा सकता है।

(३५) वसवः :- यह अनेकार्थक है। वसुका बहुबचन रूप वसवः है। निरुक्तके अनुसार वसवो यद्विवसते सर्वम्[५९] ये सम्पूर्ण जगत् को आच्छादित किए रहते हैं। इसके अनुसार इस शब्दमें वस् आच्छादने धातुका योग है। वसु अग्निका वाचक है। वसुओंके साथ रहनेके कारण वह वासव कहलाती है। फलतः वह पृथिवी स्थानीय है।[५३] वसुओंके साथ रहनेके कारण इन्द्र को भी वासव कहा जाता है। फलतः वसवः मध्यस्थानीय है।[५४] वसवः का अर्थ आदित्य रश्मियां भी है- क्योंकि वह अन्धकार को विवासित करती है- वसव आदित्य रश्मयो विवासनात् तस्मात् द्यु स्थानाः[५९] इसके अनुसार वसवःमें वसु स्नेहच्छेदापहरणेषु धातुका योग है। सूर्यरश्मियां मानने पर इसे द्युस्थानीय मानना पड़ेगा। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। पृथिवी, नक्षत्रः,सोम,अग्निः,वायु,अन्तरिक्षः,आदित्य तथा द्यौ आठ[५५] वसुओंके द्वारा सम्पूर्ण

संसार व्याप्त है। व्याकरणके अनुसार इसे वस् निवासे + उः प्रत्यय कर वसुः वसवः शब्द बनाया जा सकता है।[५६]

(३६) स्वर्काः :- इसका अर्थ होता है- सूर्य रश्मियां। निरुक्तके अनुसार स्वर्काः स्वंचना इतिवा[४९] अर्थात् सुन्दरगमन करने वाली या सुन्दर गति से युक्त। इसके अनुसार इस शब्दमें सु + अंच् गतौ धातुका योग है। स्वर्चना इतिवा[४९] सुन्दर स्तुति वाले। इसके अनुसार सु+ अर्च् धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न हुआ है। स्वर्चिषइतिवा[४९] वह सुन्दर दीप्तिसे युक्त है। इसके अनुसार इस शब्दमें सु + अर्च् धातुका योग है। द्वितीय निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार से युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचन अर्थात्मक महत्त्व रखते हैं।

(३७) देवपत्न्य :- इसका अर्थ होता है देवपत्नियां। निरुक्तके अनुसार देवानां पत्न्यः[४९] इस निर्वचनका मात्र सामासिक विग्रह प्रस्तुत किया गया है। यह सामासिक आधार रखता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। व्याकरणके अनुसार देवः पतिर्यस्याः सा देवपत्नी देव-पति-नुक् ङीष् = देवपत्नी देवपत्न्यः शब्द बनाया जा सकता है।[५७]

(३८) राट् :- यह राजाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार राट् राजतेः[४९] यह शब्द राजृ दीप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है, क्योंकि वह दीप्तिमान् होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार राजृ दीप्तौ + क्विप् = राट् शब्द बनाया जा सकता है।[५८]

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि. १२।१, २. अतइनिठनौ-अष्टा. ५।२।११५, ३. हलायुध-पृ. १४२, ४. नि. २।५ (द्र.), ५. उषः किच्च-उणा. ४।२३७ इत्यसिः, ६. सूर्या देवत्तायां चाप् वाच्यः- अ. ४।१।४८ का वार्तिक- १०७, ७. अ.को. २।४।२९, ८. शुक तुण्डाभपुष्पत्वात्- (रामा.) अ.को २।४।२९, ९. नि. दु.वृ. १२।१, १०. उणा. ४।११८, ११. सूर्योदयकालं प्रतिगततमा एषा सूर्या एवं अवश्याय कणानां वर्षणात् कम्पनाच्च वृणायी भवति- नि.दु.वृ. १२।१, १२. स्नुव्रश्चिकृत्युषिभ्यः कित्- उणा. ३।६६, १३. वाच. पृ. ५२४८, १४. नि. १२।२, १५. शु.यज. ४०।८, १६. अच इः- उणा. ४।१३९, १७. हलायुध-पृ. ५६६, १८. अ.को. २।६।४, १९. भाग.- ३।२३।४३, २०. नि.दु.वृ. १२।२, २१. नि,दु.वृ. १२।२, २२. कृके वचः कुश्च- उणा. १।६, २३. त्वरया तूर्णगतिर्यमः नि. १२।२, २४. वायुना ह्ययं सुष्ठु हर्यते तस्मात् सूर्यः - नि. दु.वृ. १२।२, २५. राजसूय सूर्यमृषोद्येति- (क्यप्) अष्टा. ३। १। ११४,

श२६. श्वन्नुक्षन्यूषन्प्ली. उणा. १।१५७, २७. यतोऽयं रश्मिभिः सर्वतः आविष्टो भवति- नि.दु.वृ. १२।२, २८. यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः। तस्मात् प्रोच्यते विष्णुर्विशधातोः प्रवेशनात्।। -विष्णु पुराण- ३।२।४५, २९. विषेः किच्च-उण ३।३९, ३०. पिंशनीया दूरी करणीया ध्वंसनीया- नि.दु.वृ. १२।२, ३१. दि. इटीमोलोजीज ऑफ यास्क पृ. ११४, ३२. उणा. १।२७, ३३. नि. १२।३, ३४. नि. १२।३, ३५. केश इज नाईदर फोनेटीक्ली नार सेमनटीकली रीलेटेड टू काश् दी इटीमोलौजीज आफ यास्क पृ. ८, ३६. हलायुध-पृ. २४५, ३७. अथाप्येते इतरेज्योतिषी केशिनी उच्यते। धूमेनाग्नीरजसा च मध्यमः नि. १२।३, ३८. विषं तु गरले तोये - विश्व को. १७१।२, ३९. इगुपधज्ञाप्रीकिरःकः- अष्टा. ३।१।१३५, ४०. वृषाकपिः पुमान् कृष्णे शंकरे जात वेदसि- मेदि. १०४।३०, ४१. अंहिकम्प्योर्न लोपश्च- उणा. ४।११४, ४२. पलस्य मांसस्य अशनाच्च पलाशम्- नि.दु.वृ. १२।३, ४३. कर्मण्यण्- अष्टा. ३।२।१, ४४. तदेतच्चतुष्पाद् ब्रह्म। अग्निः पादो, वायुः पाद, आदित्यः पादो दिशः पादः छा. उप. ३।१८।२, ४५. यतः स कायं विपुनाति विदारयति ततः पविः-नि.दु.वृ. १२।३, ४६. अच इः-उणा. ४।१३९, ४७. तन्नेहास्ति यदयं न मनुते-नि.दु.वृ. १२।३, ४८. सृस्वृस्निभृहि- उणा. १।१०, ४९. नि. १२।४, ५०. नि. ७।४, ५१. द्युस्थानो देवगण इति नैरुक्ताः नि १२।४, ५२- पूर्वं देवयुगमित्याख्यानम्- नि. १२।४, ५३. अग्निर्वसुभिर्वासवइतिसमाख्या तस्मान्पृथिवी स्थाना- नि. १२।४, ५४. इन्द्रोवसुभिर्वासव इति समाख्या तस्मान्मध्यस्थानाः- नि. १२।४, ५५. धरो धुवश्च सोमश्च अहश्चैवानिलोऽनलः प्रत्यूषश्च प्रभासश्च- वसवोऽष्टाविति स्मृताः- वाच. पृ. ४८६३, ५६. शृस्वृस्निहि. उणा. १।१०, ५७. वाच. भाग ५ पृ. ३७३६, ५८. व्रश्चभ्रस्ज. - अष्टा. ८।२।३६.

(छ) निरुक्तके त्रयोदश अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

निरुक्तके त्रयोदश अध्यायके पूर्व ही द्वादश अध्याय तक निघण्टुके शब्दों के निर्वचन हो गये हैं। त्रयोदश अध्यायमें यास्कका लक्ष्य कुछ मन्त्रोंके ईश्वरपरक अर्थको दिखलाना है इस प्रकारके अर्थ प्रदर्शनको अतिस्तुति कहा गया है। इस प्रसंगमें भी कुछ पदोंके निर्वचन हुए हैं। इस अध्यायके कुल निर्वचनोंकी संख्या सात हैं। सभी निर्वचन भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे संगत है। निर्वचनोंका पृथक् मूल्यांकन द्रष्टव्य है :-

(१) नैतोश :- यह एक संज्ञापद है। निरुक्त के अनुसार- नितोशस्यापत्यं नैतोशं[१] अर्थात् नितोश के अपत्य को नैतोश कहा जायगा। यह तद्धितान्त

शब्द है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। नितोश शत्रुहन्ता राजा का वाचक है।

(२) गुहा :- यह कन्दरा, गुफाका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-गूहते:[१] अर्थात् यह शब्द गूह् संवरणे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि गुफा सम्वृत होता है गूह्-गुहा-गुफा। यास्क के समय में गूह् दीर्घोपध होगा लेकिन गुह् ह्रस्वोपध ही मूल होना चाहिए। गूह इसी गुह् का ही विकसित रूप है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार गुह् सम्बरणे धातुसे क:[२] + टाप् प्रत्यय कर गुहा शब्द बनाया जा सकता है।

(३) तुरीयम् :- यह चार का वाचक है। निरुक्तके अनुसार- त्वरते:[१] अर्थात् यह शब्द त्विरा संभ्रमे धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि तीनके बाद शीघ्र ही उसे कहा जाता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार चतुर्णां पूरण: चतुर + छ =चतुरीय आद्यक्षर लोप कर तुरीयम् शब्द निष्पन्न होगा। डा. वर्मा इसे धातुज सिद्धान्त पर आधारित मानते हैं।[३]

(४) अक्षरम् :- यह वर्णका वाचक है। निरुक्त के अनुसार (१) न क्षरति[१] अर्थात् यह शब्द क्षर् संचलने धातुके योगसे निष्पन्न होता है न + क्षर् +अच् अक्षर। क्योंकि वह नष्ट नहीं होता है। (२) न क्षीयते[१] अर्थात् वह क्षीण नहीं होता इसके अनुसार इस शब्दमें न + क्षि क्षये धातुका योग है न-अ + क्षि +डरन् = अक्षरम्। (३) वाक्षयो भवति[१] अर्थात् वह अक्षय होता है उसमें कभी क्षय नहीं होता। इसके अनुसार इस शब्दमें अ + क्षि धातुका योग है। (४) वाचोऽक्ष इतिवा[१] अर्थात् वह वाणी का अक्ष धूरा होता है। वाणी का आधार अक्षर ही होता है। इस निर्वचनके अनुसार इस शब्दमें अक्ष +र प्रत्यय का योग है। आचार्य शाकपूणि: ओम् वाक् को अक्षर मानते हैं[४] जो ब्रह्म स्वरूप है। ब्राह्मण ग्रन्थसे भी इसी ओम् अक्षर ब्रह्म की पुष्टि होती है।[५] शाकपूणिके पुत्रका कहना है कि अक्षर आदित्य है तथा आदित्यको ऋक् कहते हैं।[६] प्रथम निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक दृष्टिसे उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। शेष निर्वचनोंका अर्थात्मक महत्त्व है। अक्ष से अक्षर का निर्वचन सादृश्य पर आधारित है।[७] अक्ष, धूरा पर जिस प्रकार शकट या रथ आश्रित रहता है उसी प्रकार ओम् अक्षर ब्रह्म में ही सभी वेद शास्त्र आश्रित हैं। ओम की चारो ओर सारी ज्ञान प्रक्रिया अवस्थित है। इस चक्कर काटने (रथ के चक्कर) की समानता के आधार पर अक्षर बना। वाणी का अक्ष तो अक्षर है हीं। अक्षर के बिना वाणीकी स्थिति रह ही नहीं सकती। शब्दोंके मूलमें अक्षर

ही है। अर्थात् अक्षरका समुदाय ही तो शब्द या वाणी है। व्याकरणके अनुसार इसे न-अ + क्षर्+अच्[८] प्रत्यय कर या अश् व्याप्तौ धातु से सर:[९] प्रत्यय कर अक्षर शब्द बनाया जा सकता है।

(५) ऋक् :- यह स्तुति परक मन्त्र का वाचक है। वेदमें प्रयुक्त मन्त्रको भी ऋक् कहा जाता है। ऋक् से ऋग्वेदका भी अर्थ बोध होता है। निरुक्तके अनुसार-यदेनमर्चन्ति[१] अर्थात् इसकी पूजा करते हैं। इसके अनुसार ऋक् शब्दमें अर्च धातुका योग है। प्रकृत प्रसंग में ऋक् आदित्यका वाचक है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। क्योंकि आदित्यकी भी पूजा करते हैं। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे उपयुक्त माना जायगा। ऋचाओं के अर्थमें ऋच्यते स्तूयते अनया वाण्या सा ऋक् किया जा सकता है क्योंकि इन ऋचाओं से देवताओं की पूजा की जाती है या स्तुति की जाती है।व्याकरणके अनुसार ऋच् स्तुतौ धातुसे क्विप्[१०]प्रत्यय कर ऋक्शब्द बनायाजा सकता है।

(६) अक्षः :- इसका अर्थ होता है गाड़ीका धूरा। निरुक्तके अनुसार अक्षोयानस्य अजनात्[११] अर्थात् यह शब्द अञ्ज् गतौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है। क्योंकि वह गतिमान होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार अक्ष् +अच्[११] प्रत्यय कर अक्षः शब्द बनाया जा सकता है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग कई अर्थोंमें होता है।[१२] वेद में भी अक्ष का प्रयोग जूआ खेलने के पाशा के अर्थमें हुआ है।

(७) ओहब्रह्माणः :- तर्कसे ब्रह्म का ज्ञाता। निरुक्तके अनुसार-ऊह एषां ब्रह्म इतिवा अर्थात् तर्क से ब्रह्मको जानने वाला या तर्क ही इन विद्वानोंका ब्रह्म है। ऊह[१३] तर्क का वाचक है। ब्रह्म ज्ञानका प्रतीक है। इस प्रकार ऊह + ब्रह्मके योग से ओहब्रह्माणः शब्द बना है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि. १३।१, २. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः-अष्टा ३।१।१३५, ३. दि. इटी. पृ. ८८, ४. ओमित्येषा वागिति शाकपूणिः। ऋच्रश्च ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नाना देवतेषु च मन्त्रेषु- नि. १३।१, ५. एतद्धवा एतदक्षरं यत् सर्वा त्रयीं विद्यां प्रति प्रति इति च ब्राह्मणम्- कौ. ब्रा. ६।१२ (नि. १३।१) एतदेवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदेवाक्षरं परम्। एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्- नि. १३।१, ६. आदित्य इति पुत्रः शाकपूणेः। एषर्ग् भवति यदेनमर्चन्ति तस्य यदन्यन्मन्त्रेभ्यस्तदक्षरं भवति-नि. १३।१, ७. तत् प्रकृतीतरद् वर्तनसामान्यादित्ययं- नि. १३।१, ८. पचाद्यच्- अष्टा ३।१।१३४, ९. अशेः

सरः-उणा. ३।७०, १०. वा. ३।३।१०८, ११. पचाद्यच्- अष्टा. ३।१।१३४, १२. अक्षः कर्मे तुषे चक्रे शकट व्यवहारयोः। आत्मज्ञे पाशके चाक्षं तुत्ये सोवर्चलेन्द्रिये। विश्व.को. १८२।२, १३. महाभाष्य-१।१.

(ज) चतुर्दश अध्यायके निर्वचनोंका मूल्यांकन

देवता संबंधी एवं यज्ञ संबंधी मंत्रों की व्याख्या करनेके बाद इस अध्याय में ऊर्ध्व मार्ग गति की व्याख्या की गयी है। इस प्रकार इस अध्यायमें यास्कका उद्देश्य स्वतंत्र रूपमें निर्वचन करना नहीं रहा है।[१] प्रसंगतः प्राप्त कुछ पदोंके निर्वचन कर देते हैं। इस अध्यायमें कुल आठ शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं। इन शब्दों में ज्ञाता, सखा, गृध्रः, पदवी, वेदः, आपः तथा हंसः भाषा विज्ञान की दृष्टि से पूर्ण संगत हैं। हंस शब्दकी व्याख्या इसके पूर्व भी की जा चुकी है लेकिन यहां पुनः इसके व्यापक अर्थ की ओर संकेत करते हुए निर्वचन किया गया है। कवीनाम् का निर्वचन इस अध्यायमें किया गया है लेकिन यह निर्वचन अस्पष्ट है। इस अध्यायके प्रत्येक पदोंके पृथक् मूल्यांकन द्रष्टव्य है -

(१) ज्ञाता :- इसका अर्थ होता है जानकार, जानने वाला। निरुक्तके अनुसार ज्ञाता ज्ञायतेः[१] अर्थात् यह शब्द ज्ञा ज्ञाने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। इसका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार ज्ञा अवबोधने धातुसे क्त[२] प्रत्यय कर ज्ञातः ज्ञाताः शब्द बनाया जायगा। ज्ञा + तृन् प्रत्यय कर भी ज्ञातृ-ज्ञाता शब्द बनाया जा सकता है।

(२) सखा :- इसका अर्थ होता है मित्र। निरुक्तके अनुसार-सख्यतेः[१] अर्थात् यह शब्द सख्या प्रकथने धातुके योगसे निष्पन्न होता है। समान ख्याति वाले को सखा कहा जायगा। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार- समान + ख्या + इञ्[३] (टि एवं य का लोप तथा समान का स भाव होकर सखि- सखा शब्द बनाया जा सकता है।

(३) कवीनाम् :- यह षष्ठ्यन्त पद है। इसका अर्थ होता है कवियों का। निरुक्तके अनुसार-कविनाम् कवीयमानानाम्।[१] अर्थात् इस निर्वचन में कवीयमान से कवि माना गया है। यह निर्वचन अस्पष्ट है। कव् धातुका संकेत मात्र प्राप्त हो जाता है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे पूर्ण उपयुक्त नहीं माना जायगा। व्याकरण के अनुसार कवते सर्वं जानाति, सर्वं वर्णयति सर्वतोगच्छति वा- कव्

+ इन् अथवा कु शब्दे + अच इ. इति इ = कविः शब्द बनाया जा सकता है।[४]

(४) गृध्र :- यह पक्षी विशेष, आदित्य, इन्द्रियका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-गृधः आदित्योभवति, गृह्यते: स्थानकर्मणो यत्त एतस्मिंस्तिष्ठति[५] अर्थात् गृध शब्द स्थान कर्मा गृधु धातुके योगसे निष्पन्न होता है। गृध्-गृध्र। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा आदित्य, स्थान में ठहरने वाला। गृध्र शब्दका अर्थ अध्यात्म पक्षमें इन्द्रिय भी होता है-गृध्राणीन्द्रियाणि गृध्यतेर्ज्ञानकर्मणो यत एतस्मिंस्तिष्ठति[६] इन्द्रियके अर्थमें गृध्र शब्दका निर्वचन गृधु ज्ञाने धातुसे माना गया है क्योंकि ये ज्ञानमें ही अवस्थित हैं। गृध्र शब्दके विभिन्न अर्थ प्रदर्शन के लिए धातुकी अनेकार्थता स्पष्ट है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें गीध पक्षी विशेषके लिए इसका प्रयोग होता है।[५] व्याकरणके अनुसार गृध् + क्रन्[६] प्रत्यय कर गृध्र शब्द बनाया जा सकता है।

(५) पदवी :- पदवी कविश्रेष्ठका वाचक है। निरुक्तके अनुसार पदं वेत्तीति[७] अर्थात् पदोंका ज्ञाता पदवी कहलाया। इसके अनुसार पद्दविद्ज्ञाने धातुके योगसे यह शब्द निष्पन्न माना जायगा। दुर्गवृत्ति के अनुसार स्खलित पदोंको साधुत्वके लिए लगाने वाला पदवी कहलायगा।[७] इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। लौकिक संस्कृतमें पदवी मार्गका वाचक है।[८] व्याकरणके अनुसारपदवि कृदिकारान्तादक्तिन:इतिपक्षे ङीष् = पदवी:बनायाजासकता है।[९]

(६) वेदः :- यह ज्ञान, ऋगादि वेदका वाचक है। निरुक्तके अनुसार वेदः विन्दतेर्वेदितव्यः[१] अर्थात् वेद शब्द विद् धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि यह वेदितव्य है अर्थात् जानने योग्य है। विद् धातु ज्ञान, लाभ, सत्ता, विचारणा चेतना ख्यान, निवास आदि अर्थोंमें प्राप्त होता है। इस निर्वचनके अनुसार इसका अर्थ होगा ज्ञानसे सम्पन्न, ज्ञान भण्डार। विद् धातुसे वेद मानने पर वेद समग्र ज्ञान लाभ, सता, विचारणासे सम्पन्न माना जायगा। यास्कका निर्वचन ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधारसे युक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार विद् +घञ् प्रत्यय कर वेदः शब्द बनाया जा सकता है।

(७) आपः :- यह जलका वाचक है। निरुक्तके अनुसार-आप आप्नोतेः[१] अर्थात् यह शब्द आप्लृ व्याप्तौ धातुके योगसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह व्याप्त है। इस निर्वचनका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। व्याकरणके अनुसार-आप् धातुसे कर्मणि घञ् प्रत्यय कर आपः शब्द बनाया जा सकता है।

(८) **हंस** :- इस शब्दका विवेचन चतुर्थ अध्यायमें किया जा चुका है। यहां हंस शब्द सूर्य एवं परमात्माका वाचक है। हंस शब्दमें गत्यर्थक हन् धातुका योग है। ये दोनों सर्वत्र गामी हैं। निरुक्तमें यहां हंसयन्त्ययति[१] कहकर स्पष्ट किया है। अययति गच्छतिका प्रतीक है। अत: गत्यर्थक हन् धातुकी ओर यास्क संकेत करते हैं। इस शब्दका ध्वन्यात्मक एवं अर्थात्मक आधार उपयुक्त है। भाषा विज्ञानके अनुसार इसे संगत माना जायगा। डा. वर्मा इस निर्वचन को आख्यातज सिद्धान्त पर आधारित मानते हैं।[१] हंसका निर्वचन सादृश्य पर आधारित है। गमन सादृश्यके कारण हंस पक्षी, सूर्य तथा परमात्मा हंसके नामसे भी अभिहित होते हैं ओल्ड हाई जर्मन में गन्स शब्दका प्रयोग हंसके लिए पाया जाता है।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. नि. १४।१, २. अष्टा. ३।२।१०२, ३. समाने ख्य: सचोदात्त: उणा. ३।१३७, ४. हलायुध-पृ. २१४, ५. अम. को. २।५।२१, ६. सुसूधाञ् गृधिभ्य: क्रन्-उणा. २।२४, ७. स्खलन्ति पदानि साधुत्वेन योजयति इति पदवी: वी गतौ इत्यस्मात् क्विपि रूपम्-नि.दु.वृ. १४।१, ८. अम.को. २।१।१५, ९. हला. को.-पृ. ४०९.

-: उपसंहार :-

निर्वचन शब्दनिहित अर्थोंके अनुसन्धानकी विशिष्ट प्रक्रिया है। साहित्यमें वैसे ही शब्द प्रयुक्त होते हैं जिनमें कोई न कोई अर्थ सन्निविष्ट होता है। भाषा के प्रारंभिक कालमें वैसे शब्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं जिन शब्दोंके अर्थ परिवर्तनकी स्थिति से अभिगमन करता है। साहित्य में प्रयुक्त होने के समय उन शब्दोंके अर्थोंमें निश्चितता आ जाती है। कुछ शब्दोंमें एकाधिक अर्थ होते हैं क्योंकि अनेकार्थक शब्दोंकी संख्या भी साहित्य में कम नहीं है।

शब्दोंके माध्यमसे सारी बातें अभिव्यक्त होती हैं। समग्र अर्थों का प्रकाशन शब्दोंके माध्यमसे सरलतया सम्पन्न होता है। आचार्य दण्डी ने ठीक ही कहा है कि यह सम्पूर्ण संसार अन्धकारमय होता यदि शब्द नामक ज्योति उसे प्रकाशित नहीं करती।[१] यद्यपि अर्थ प्रकाशनके अन्य भी साधन हैं लेकिन वे सभी साधन अपेक्षाकृत जटिल, व्ययसाध्य, श्रमसाध्य एवं अत्यधिक कालक्षेपक हैं।

शब्दोंमें अनेकार्थता सुविदित है। विभिन्न कारणोंसे एक ही शब्द अनेक अर्थों को अभिव्यक्त करता है। गुण, कर्म, रूप, सादृश्य, वचन आदि के आधार पर एक ही शब्द में अनेक अर्थों को व्याप्त देखते हैं। वैदिक साहित्य में

भी अनेकार्थक शब्दोंकी प्रचुरता है। निघण्टुका चतुर्थ अध्याय ऐकपदिक काण्ड कहलाता है इसमें तीन खण्ड हैं तथा क्रमशः ६२, ८४ एवं १३२ कुल २७८ पद संकलित हैं। यास्कके अनुसार ये सभी पद स्वतंत्र हैं तथा अनेकार्थक हैं। यास्क ने इन पदोंका निर्वचन निरुक्तके चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्यायोंमें किया है। संहिताओं से लेकर अद्यावधि अनेकार्थक शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। गमन् अर्थवाला हन् धातुसे निष्पन्न हंस शब्दका सामान्य अर्थ होता है- जाने वाला, गमन करने वाला। इस आधार पर यह शब्द एक पक्षी विशेषके लिए रूढ़ हो गया है जिसके संबंधमें कहा जाता है कि वह नीरक्षीर विवेकी होता है। यद्यपि गमन तो सभी पक्षियोंका कर्म है फिर मराल विशेष के लिए ही हंस शब्दकी प्रसिद्धि क्यों हुई। ऐसी स्थितिको समझने के लिए निर्वचनकी अपेक्षा हो जाती है।[२] हंस शब्दका निर्वचन करते हुए यास्क कहते हैं- हंसो हन्तेर्घ्नन्त्यध्वानमिति[३] अर्थात् हंस शब्द हन् गतौ धातुसे निष्पन्न होता है क्योंकि वह गमन करता है। हंसका अर्थ सूर्य भी होता है क्योंकि उसे गमन करते देखा जाता है।[४] सूर्यकी किरणें सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। ऋग्वेदमें हंस शब्द सूर्यके साथ ही आत्मा एवं परमात्माका भी द्योतक है।[५] सूर्यरश्मि एवं परमात्माकी ज्योति से समग्र संसार व्याप्त है इस व्याप्ति सादृश्यके कारण हंसको सूर्य एवं आत्माका वाचक माना गया। हन् धातुका अर्थ हिंसा भी होता है। आज हन् धातु गमन की अपेक्षा हिंसा अर्थमें ही अधिक प्रचलित है। निरुक्त में हन् धातु हिंसार्थक भी माना गया है। यास्क हस्त शब्दके निर्वचन में हन् (हिंसायाम्) धातुको ही उपस्थापित करते हैं- हस्तो हन्तेः प्राशु हननेः[६] अर्थात् हस्त शब्द हन् धातुसे बनता है क्योंकि वह मारने में शीघ्र करता है। इस प्रकार हिंसार्थक हन् धातुका प्रयोग निरुक्तमें अन्यत्र भी देखा जाता है। शब्दोंकी अनेकार्थताके लिए एक ही उदाहरण यहां पर्याप्त है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में तो इस प्रकार के अनेक शब्द परिशीलित हैं हीं।

एकार्थक शब्दोंमें भी अर्थानुसन्धान की जिज्ञासा बनी रहती है। किसी शब्दमें कोई विशेष अर्थ क्यों है उस अर्थके पीछे कौन आधार संभाव्य है। विभिन्न आधारोंमें ध्वन्यात्मक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, कर्मात्मक, रूपात्मक, सादृश्य आदि की संभावनाओंका परीक्षण अर्थानुसन्धानमें अपेक्षा रखता है।

शब्द निहित अर्थोंके अन्वेषणकी प्रवृत्ति वैदिक कालसे ही रही है। वैदिक मन्त्रोंमें प्रयुक्त शब्दोंको स्पष्ट करने के लिए उसके धातुकी ओर वहीं संकेत कर दिया गया है। शब्दोंका धात्वर्थ संकेत निर्वचन प्रक्रिया की ओर अभिगमन है। शब्दों का अर्थ विनिश्चय कोषग्रन्थ, व्याकरण, आप्तवाक्य, व्यवहार आदि से भी देखा जाता है।[७] लेकिन निर्वचन शास्त्र के द्वारा शब्दों का अर्थ निर्धारण

प्रधानरूपमें होता है। अर्थावबोधके लिए निरपेक्ष रूपसे प्रतिपादित समग्र पदजात ही तो निरुक्त है।[८] निरुक्त या निर्वचन को एक दूसरे के पर्याय के रूप में हम व्यवहार करते हैं। किसी शब्दमें निहित अर्थ या अर्थों को स्पष्ट करनेके लिए अनेक संभावनाओं की विवेचना धात्वादि की कल्पना निर्वचन है।

निर्वचनों की ऐतिहासिक परम्परा में संहिताओं का प्रथम दर्शन होता है। संहिताओं में ऋक्, यजु:,साम एवं अथर्व प्रसिद्ध हैं।संहिता मन्त्रों का समुदाय है। सहिताओं के मन्त्रों में कुछ विशिष्ट शब्दोंकी निरुक्ति प्राप्त होती है। मन्त्रोंका व्याख्यान भाग ब्राह्मण ग्रन्थ है। प्रत्येक वेद के अलग-अलग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड, ज्ञान काण्ड एवं उपासना काण्ड प्रधान रूपमें विवेचित हैं। ब्राह्मण भाग ही त्रिधा विभक्त हैं। कर्मकाण्ड की प्रधानता वाले ब्राह्मण ग्रन्थ, उपासना की प्रधानता वाले आरण्यक ग्रन्थ तथा ज्ञान काण्डकी प्रधानता वाले उपनिषद् ग्रन्थ हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों की यज्ञपरक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं जिसके चलते हम उन्हें कर्मकाण्ड प्रधान कहते हैं। यज्ञ परक व्याख्या के क्रममें ये ग्रन्थ सम्बद्ध विषयोंके उपस्थापनके साथ ही आर्य सभ्यता एवं संस्कृति की विभिन्न पहलुओंको भी उद्भासित करते हैं। उसकी धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक बिम्बोंको तो प्रतिविम्बित करते ही हैं, वैदिक साहित्य की शब्दार्थ सम्पत्ति को विशेष रूप में विवेचित करते हैं। ब्राह्मण भाग में यद्यपि मन्त्रोंकी विविध प्रकार की व्याख्या हुई है तथापि शब्दोंके विवेचन क्रममें निर्वचन भी उपलब्ध होते हैं। शब्दों के अर्थको स्पष्ट करनेके लिए यहां ऐतिहासिक आधार विशेष रूपसे अपनाये गये हैं।निर्वचन में ऐतिहासिक आधारके साथ-साथ अन्य आधार भी देखे जाते हैं।

आचार्य शौनक रचित बृहद्देवता संस्कृत साहित्यमें प्रसिद्ध है। इसमें देवता सम्बन्धी विचार विशेष रूपमें प्रयुक्त हैं। देवता सम्बन्धी विचारोंके अतिरिक्त इसमें अन्य विषयोंका भी व्यापक विवरण उपलब्ध होता है। विषय विवेचन क्रममें इसमें निर्वचन भी दिये गये हैं। पुराणोंका भारतीय साहित्यमें महत्त्वपूर्ण योगदान है। अष्टादश पुराण व्यासदेवकी रचना है। वादरायण व्यासने भारतीय इतिहासको पुराणोंमें विवेचित किया है। पुराणोंमें विषयकी व्यापकता पायी जाती है। भारतकी तत्कालीन सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, भौगोलिक आदि स्थितियों का विशद चित्रण पुराणों में प्राप्त होता है। पुराणों में कुछ निर्वचन भी प्राप्त होते हैं, जो ऐतिहासिक, भौगोलिक, ध्वन्यात्मक, अर्थात्मक आदि आधार रखते हैं। इसमें कुछ नाम पदोंको स्पष्ट करने के लिए निर्वचनका सहारा विशेष रूप में लिया गया है। वाल्मीकि आदि कवि हैं इनकी रचना रामायण आदि काव्य है। भगवान् राम

के वृत्तों का गुम्फन तो इसमें हुआ ही है अनेक अवान्तर वृत्त भी इसमें प्रतिपादित हैं। चौबीस हजार श्लोकों वाले इस महाकाव्य में यत्रतत्र निर्वचन भी प्राप्त होते हैं। इसमें आये संज्ञापदोंको स्पष्ट करनेके लिए निर्वचन भी दिए गए हैं जिससे उन संज्ञाओंके कर्म, रूप, सादृश्य आदिका संकेत प्राप्त हो जाता है। महाभारत विश्वका सर्वाधिक विशाल महाकाव्य है। इसमें एक लाख श्लोकोंका संग्रह है। वेद व्यासकी इस रचनामें समग्र विषय उपस्थित हैं। इसके संबंधमें कहा गया है कि जो यहां है वही अन्यत्र भी है जो यहां नहीं है वे अन्यत्र भी नहीं है।[९] महाभारत की कथा पर आधारित इस महाकाव्यमें अवान्तर कथाओंका समूह व्याप्त है। द्वापरकालीन भारतीय संस्कृतिको उपन्यस्त करने वाला यह महाभारत शब्दोंके निर्वचनमें भी पीछे नहीं है। बहुत सारे शब्द अपनी क्रियाओं की प्रधानता को व्यक्त करते हैं साथ ही साथ क्रियाओंके साथ विवेचित भी हुये हैं। लौकिक संस्कृत साहित्य अपने विपुल भण्डार से समृद्ध है। इसके पद्यकाव्य, गद्यकाव्य एवं चम्पूकाव्य अत्यधिक आयामी हैं। इन्द्रियों की उपयोगिता के आधार पर संस्कृत साहित्य को दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य के रूप में देखा जा सकता है। दृश्यकाव्य में १० रूपकों एवं १८ उपरूपकों का विशाल भण्डार है। श्रव्यकाव्यमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य आदि आते हैं। काव्य साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, अर्थशास्त्र आदि भी लौकिक संस्कृत के भण्डार हैं। समग्र लौकिक संस्कृतमें यत्र-तत्र निर्वचन प्राप्त होते हैं। सबोंका अन्वेषण एवं प्रदर्शन इस शोध प्रबंध में संभव नहीं। यहां लौकिक संस्कृमें प्रधान भूत महाकवि कालिदास के काव्यों से ही कुछ निर्वचन प्रस्तुत किए गए हैं। वैदिक संस्कृतसे लेकर लौकिक संस्कृतके निर्वचनों का परिदर्शन स्थालीपुलाक न्याय से किया गया है जो इस शोध प्रबंध के द्वितीय अध्यायमें विवेचित है। इन निर्वचनों का तुलनात्मक अनुशीलन भी वहीं उपस्थित किया गया है। वैदिक काल से लेकर अद्यतन निर्वचन की प्रक्रिया का मूल्यांकन ही यहां उद्देश्य रहा है।

षडंगों में निरुक्त भी परिगणित है। शिक्षा, कल्प, छन्द, व्याकरण, ज्योतिष एवं निरुक्त वेद के अंग होनेके कारण वेदांग तथा छ संख्या में होने के कारण षडंग कहलाते हैं।[१०] वैदिक साहित्य में निरुक्त के महत्त्व को भूला नहीं जा सकता। सम्प्रति एक ही निरुक्त ग्रन्थ उपलब्ध होता है जो आचार्य यास्क की रचना है। निर्वचनों का वैज्ञानिक एवं समृद्ध शास्त्र निरुक्त ही है। निरुक्त की रचना उस समय हुई जब वेद की परम्परा प्रवाहित थी। वैदिक संस्कृत विश्व में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी थी। सम्पूर्ण कर्म यज्ञमय था। यज्ञों में वैदिक मन्त्रों की ध्वनि अविरल व्याप्त थी। वेदों में प्रयुक्त मन्त्रों की

परीक्षा एवं सुरक्षा का प्रयास विभिन्न सम्प्रदायोंके द्वारा होता था। उस समय भी वैदिक धर्मके विपक्षी अपनी स्थिति दृढ़ करनेमें संलग्न थे। वे लोग वैदिक मन्त्रोंकी प्रामाणिकतामें संदेह करने लग गये थे। वेदांगोंकी रचनाके समय आने वाली वैदिक पीढ़ियोंकी वेदसे क्रमिक असम्पृक्तता दृष्टिगोचर हो रही थी। ऐसी स्थितिमें यही कहा जाने लगा कि या तो वेदके मन्त्रोंमें अर्थ है ही नहीं या इसके अर्थ की जानकारी व्यक्तियोंको नहीं है। इन प्रश्नोंके उत्तरमें निरुक्तका कितना महत्त्व है यह कहा नहीं जा सकता। यास्क इसी सांस्कृतिक संक्रमण के समय के प्रमुख निरुक्तशास्त्री हैं जिन्होंने तत्कालीन एवं भविष्यमें उठनेवाली शंकाओं के समाधानकी सफल चेष्टा की है।

निर्वचन आजभी भाषा विज्ञानके विशिष्ट अंगके रूपमें मान्य है। भारतीय भाषा विज्ञानमें निर्वचनों का पृथक् स्थान एवं अस्तित्व रहा है। शब्दोंके अर्थान्वेषणसे सम्बद्ध यह शास्त्र अन्य शास्त्रोंकी अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक माना जा सकता है। निर्वचनके लिए प्रयुक्त विविध शब्द भारतीय साहित्यमें दृष्टिगोचर होते हैं। निर्वचन एवं निरुक्त शब्दोंकी भी ऐतिहासिकता है। इन शब्दोंका विवेचन प्रकृतशोध प्रबंधके प्रथम अध्यायमें ही किया जा चुका है। वहीं पर भाषा संबंधी विवेचनोंको भी प्रस्तुत किया गया है क्योंकि भाषाका मनुष्य के साथ अविनाभाव संबंध है। भाषाके साथ निर्वचन शास्त्र का भी इसी प्रकार का संबंध माना जा सकता है।

भारतीय निरुक्तकारोंका इतिहास महत्त्वपूर्ण है। निश्चय ही भारतमें निरुक्तकारोंकी विशद परम्परा है। वैदिक ऋषियोंके बाद आचार्य यास्कने इस क्षेत्रमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। यास्कके निरुक्तके अतिरिक्त निवर्चन शास्त्रपर किसी दूसरे निरुक्तकारके निरुक्त ग्रन्थकी उपलब्धि आज नहीं होती। भारतमें सांस्कृतिक संक्रमण अधिक हुए हैं। लगता है विविध कारणोंसे अन्य निरुक्त ग्रन्थ नष्ट हो गए या अन्धकारमें विलीन हो गये। यह कहना इसलिए उचित प्रतीत होता है क्योंकि स्वयं यास्कने अपने निरुक्तमें पूर्ववर्ती एवं तत्कालीन चौदह निरुक्तकारों की चर्चा की है जिनका सिद्धान्त किसी न किसी रूपमें उल्लेखनीय रहा है। यास्कभी उनके सिद्धान्तोंसे प्रभावित हुए हैं। निर्वचन शास्त्र की परम्परा में औपमन्यव, औदुम्बरायण, वार्ष्यायणि, गार्ग्य, शाकपूणि, और्णवाभ, गालव, तैटिकी, क्रौष्टुकि, कात्थक्य, स्थौलाष्टीवि, आग्रायण, चर्मशिरा, शतवलाक्ष्य प्रभृति निरुक्तकार समादृत हैं जिनके सिद्धान्तों की चर्चा स्वयं यास्क ने की है या कुछ शब्दोंके निर्वचन के समय इन आचार्यों के मत का उल्लेख किया है इन आचार्यों के समय, परिचय एवं कृतियों का उल्लेख एकत्र कहीं प्राप्त नहीं होता। प्रकृत शोध प्रबंधके तृतीय

अध्यायमें उपर्युक्त निरुक्तकारोंका परिचय दिया गया है जिसमें समय, स्थान एवं कृतियोंका भी उल्लेख किया गया है। इन आचार्योंके परिचय में अन्यान्य साधनोंका भी सहयोग लिया गया है। इस कार्यके लिए विविध पुस्तकों, शोध पत्रों, शोधपत्रिकाओं एवं परम्परागत अध्येताओं से विशेष सम्पर्क किया गया है।

निर्वचनोंकी प्राप्ति प्रातिशाख्यों एवं व्याकरण ग्रन्थोंमें भी होती है। प्रातिशाख्य वेद की प्रत्येक शाखाओं से सम्बद्ध वैदिक व्याकरण ही हैं जिनमें वैदिक शब्दोंका व्युत्पादन, चिन्तन एवं विश्लेषण किया गया है। पुनः व्याकरण समग्र वैदिक एवं लौकिक शब्दों का व्युत्पादन या अनुशासन करता है। निरुक्तकारोंके स्वतंत्र अस्तित्वकी रक्षाके लिए प्रातिशाख्यकारों एवं वैयाकरणों को निरुक्तकारोंकी श्रेणीमें रखा गया है। प्रसिद्ध मुनित्रय (पाणिनि, कात्यायन एवं पंतजलि) के द्वारा शब्दोंकी व्याख्या की गयी है। बादके टीकाग्रन्थोंमें भी शब्दोंके ऊपर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। न्याय आदि दार्शनिक ग्रन्थोंमें भी व्याख्यात्मक ढंगसे शब्दोंकी विवेचना प्रस्तुत की गयी है। इन लोगोंके अपने-अपने क्षेत्रमें स्वतंत्र अस्तित्वकी रक्षाके लिए ही निरुक्तकारों की श्रेणीमें उन्हें यहां नहीं रखा गया है।

यास्कके समय, स्थान आदिके बारेमें अनेक मत-मतान्तर हैं। कुछ लोग पाणिनिको यास्कसे पूर्व मानते हैं तथा कुछ लोग यास्कको पाणिनिसे पूर्व मानते हैं। यास्कके परिचय आदिका गवेषणात्मक विवेचन प्रकृत शोध प्रबंधके चतुर्थ अध्यायमें किया गया है। वहीं पर यास्कको पाणिनि का पूर्ववर्ती भी सिद्ध किया गया है। पाणिनिके सूत्रों पर यास्कका प्रभाव स्पष्ट प्रतिलक्षित होता है। स्वयं पाणिनिने अपने सूत्रोंमें यास्कका उल्लेख किया है। पाणिनिके बादके आचार्यों पर तो यास्क का प्रभाव और भी अत्यधिक देखा जाता है। स्वयं महर्षि पंतजलि अपने महाभाष्यमें यास्कके सिद्धान्तोंका अनेकशः उल्लेख करते हैं। हम कह सकते हैं कि व्याकरणका बहुत बड़ा भाग निरुक्तका ऋणी है। प्रकृत शोध प्रबंध विशेष रूपसे निरुक्त पर ही आधारित है। निरुक्तकी विवेचनाके साथ यास्कके ज्ञान गाम्भीर्यका उल्लेख इसी अध्यायमें किया गया है।यास्कके ज्ञान गांभीर्यका संकेत निरुक्तसे ही विशेष रूपमें प्राप्तहो जाता है।

निर्वचन के कुछ मान्य आधार हैं। इन आधारों में ध्वनि को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। ध्वनि शब्द की लघुतम इकाई है जिनके संयोग से शब्द निष्पन्न होता है। शब्द की इकाई के रूप में ध्वनि का महत्त्व इसलिए और अधिक हो जाता है क्योंकि शब्द का वही मूल आधार है। भौतिक रूप के बिना शब्दकी स्थिति मानी नहीं जा सकती। ध्वनि को हम शब्द का भौतिक रूप कह सकते है तथा

अर्थको शब्दका आत्मिक रूप। भाषाका जीवनके साथ अभिन्न सम्बन्ध है। जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताके रूपमें भाषाको ही माना जा सकता है। भाषाकी उपेक्षा जीवनकी उपेक्षा है। संसारकी सम्पूर्ण वस्तुओंको मानसिक एवं शारीरिक दो रूपोंमें देखा जा सकता है। शरीरका सम्बन्ध भौतिक वस्तुओंसे है जबकि मानसका सम्बन्ध भौतिक वस्तुओंकी अपेक्षा अन्य रूपोंसे। निर्वचन इस प्रबल मानस पक्षका संवरण करता है जिसकी आवश्यकता केवल सैद्धान्तिक ही नहीं है। इसका व्यावहारिक क्षेत्र अधिक व्यापक है। भाषा का सम्बन्ध व्यवहारके साथ होनेसे उसकी परिचिति सर्वव्यापी हो जाती है। निर्वचन भाषाके गहनतम सूत्रोंको सुलझाता है जिसकी आवश्यकता भाषा विज्ञानके ज्ञानके लिए कम नहीं। शब्दोंका निर्वचन भाषा विज्ञानकी वह शाखा है जिसके बिना भाषा एवं भाषा विज्ञानका ज्ञान अधूरा रह जाता है। निर्वचनके लिए ध्वनिका महत्त्व कम नहीं। आधुनिक भाषा विज्ञानमें तो ध्वनि को ही मूल आधार माना गया है। निर्वचनोंमें ध्वनिकी उपेक्षा भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे उपयुक्त नहीं। ध्वनियोंका नियमानुसार परिवर्तन भाषा विज्ञानमें स्वीकृत है लेकिन नियमोंके विरुद्ध ध्वनिका रूपान्तरण ध्वन्यात्मक औदासिन्यका कारण माना जाता है। निर्वचनोंके क्रममें निरूक्तकार यास्कभी ध्वनि को कम महत्त्व नहीं देते। ज्ञातव्य है कि निरुक्तकारोंका मूल उद्देश्य शब्दोंके अर्थका विनिश्चय है। अतः वे अर्थात्मक आधारको ध्वन्यात्मक आधार की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते है। कभी-कभी अर्थात्मक अनुसंधानमें वे लोग ध्वनि की उपेक्षा भी कर देते हैं।[११] निरूक्तमें ध्वनि विज्ञान पर स्वतंत्र चर्चा नहीं है। निरुक्तकारों के द्वारा अर्थकी अपेक्षा ध्वनिका समादर अधिक नहीं है। प्रचानीकालमें ध्वनि विज्ञान प्रातिशाख्य एवं शिक्षाके अंग थे। व्याकरण ग्रन्थोंमें भी ध्वनिकी चर्चा हुई है। निर्वचनके क्रम में निरुक्तकारोंने ध्वनिको स्थान दिया है क्योंकि ध्वनिके बिना निर्वचन स्वयं अपूर्ण होता।

अर्थ विज्ञानके साथ निर्वचनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थ शब्दका प्राण है। प्राणका महत्त्व भौतिक शरीरमें अधिक होता है। यदि यह कहा जाए कि प्राण के चलते ही शरीरका शरीरत्व सुरक्षित रहता है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। शब्दों की रक्षा भी अर्थके कारण ही है। शब्दोंका प्रयोग भी अर्थ के कारण ही किया जाता है। निर्वचन का मूल उद्देश्य है अर्थोंका प्रकाशन। अर्थके महत्त्व को भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे भी भूला नहीं जा सकता क्योंकि सबों के मूलमें अर्थ ही विद्यमान है। यास्कने भी अर्थ को अत्यधिक महत्त्व दिया है। यही कारण है कि वे निर्वचन क्रममें अर्थ प्रकाशनके लिए ध्वनि नियमोंमें शिथिलता भी स्वीकार करते हैं तथा शब्दोंके निर्वचनमें अर्थके महत्त्वको हठपूर्वक सुरक्षित रखनेका प्रयास करते हैं[१२]जो भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे सर्वांशतः स्वीकार्य नहीं।

निर्वचनमें दृश्यात्मक आधार भी विचारणीय होता है कुछ शब्दोंकी निर्मिति दृश्यात्मक आधार पर आधारित होती है। पृथ्वी शब्दके निर्वचनमें यास्क दृश्यात्मक आधार को उपस्थापित करते हैं। बहुत आशंकाओंके बाद भी यास्क का यह कथन कि यह देखनेमें फैली हुई है इसलिए इसे पृथिवी कहते हैं अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है।[९३] इस प्रकारके अनेक शब्द हैं जिनके आधार दृश्यात्मक हैं।

कुछ शब्दोंके नाम शब्दानुकरण पर भी आधारित हैं किसी वस्तु या संज्ञाकी ध्वनियों के आधार पर बहुत सारे शब्द व्यवहारमें देखे जाते हैं। विशेष कर पक्षियों के नाम में शब्दानुकरण को सम्बद्ध देखा जाता है। आचार्य यास्क भी पक्षियों के नाम में शब्दानुकरण सिद्धान्त को विशेष रूपमें प्रश्रय देते हैं।[९४] यह सिद्धांत अन्य भाषाओंके साथ भी मान्य है। संस्कृत का काक, अंग्रेजी का (ण्दै) क्रो इसी प्रकार निष्पन्न हैं। यास्क ने कृकवाकु, तित्तिरि: आदि अनेक शब्दोंको उपस्थापित कर इस सिद्धान्त को महत्त्व मण्डित किया है। यद्यपि सभी शब्द उनके शब्दानुकरण पर आधारित नहीं हैं। यास्क ने भी सभी शब्दोंके निर्वचनमें शब्दानुकरणको आधार नहीं बनाया है लेकिन शब्दानुकरण पर आधारित कुछ शब्दोंके अस्तित्व पर आशंका नहीं की जा सकती।

सादृश्यके आधार पर भी वस्तुओंके नाम देखे जाते हैं। सादृश्यका अर्थ होता है समानता। कर्म सादृश्य, गुणसादृश्य, रूपसादृश्य, धर्मसादृश्य आदिके आधार पर बहुतसे शब्द आधारित हैं। निर्वचनमें रूपात्मक एवं ऐतिहासिक आधार भी अपनाये जाते हैं। कुछ शब्द अपने साथ एक विशेष इतिहास भी सुरक्षित रखते हैं। अपत्यार्थक शब्द विशेष रूपसे ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाले हैं। यास्क भी इन प्रकारके शब्दोंके निर्वचनमें ऐतिहासिक आधार को ही अपनाते हैं। ऐतिहासिक आधार वाले शब्दोंके निर्वचनमें वे ब्राह्मण ग्रन्थोंका प्रमाण भी उपस्थापित करते हैं। यास्क द्वारा अपनाये गये उपर्युक्त मान्य आधारों के विश्लेषण एवं विमर्श प्रकृत शोध प्रबंध के पंचम अध्याय में किए गये हैं। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे निर्वचनके मान्य आधारों का उपस्थापन एवं तद्विषयक यास्ककी दृष्टिका मूल्यांकन भी वहींसम्पन्न हुआ है।

निर्वचन के क्षेत्रमें यास्क का योगदान सर्वाधिक है। निर्वचन शास्त्र के जन्मदाता के रूप में भी हम यास्क को ही देखते हैं, जबकि निर्वचन विज्ञान का उत्कर्ष भी इनकी ही रचनाओं में उपलब्ध होता है। इनके पूर्व के निरुक्त ग्रन्थ की अनुपलब्धि ही उपर्युक्त कथन का कारण संभावित है। यास्क ने निघण्टु के शब्दों का निर्वचन करना अपना अभीष्ट समझा तथा उनके ही शब्दों का चिन्तन एवं निर्वचन अपने निरुक्त ग्रन्थमें किया। निघण्टु वैदिक शब्दोंका समाम्नाय

है जिसमें तीन काण्ड हैं- नैघण्टुक काण्ड, नैगम काण्ड एवं दैवत काण्ड। नैघण्टुक काण्ड तीन अध्यायों में विभाजित है जिनमें क्रमशः ४१४, ५१६ एवं ४१० शब्द संकलित हैं। नैघण्टुक काण्ड के शब्दों की कुल संख्या १३४० है। निघण्टुके शब्दोंकी व्याख्या निरुक्तके द्वितीय अध्यायसे आरंभ होती है। निरुक्तके प्रथमाध्यायमें भी कुछ निर्वचन प्राप्त होते हैं जो निर्वचन की भूमिका के प्रसंगमें प्राप्त हैं। ये शब्द निघण्टु पठित नहीं हैं। निघण्टु के प्रथम अध्यायमें यद्यपि ४१४ पद संकलित हैं लेकिन ये सभी शब्द निरुक्तमें व्याख्यात नहीं होते। निरुक्तके द्वितीय अध्यायमें मात्र १५१ शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं, जिनमें कुछ शब्द प्रसंगतः प्राप्त भी हैं। निघण्टुके द्वितीय अध्यायमें परिगणित शब्दोंके निर्वचन निरुक्तके तृतीय अध्यायके प्रथम एवं द्वितीय पादमें प्राप्त होते हैं लेकिन उनमें मात्र ५५ शब्द ही व्याख्यात हैं, इनमें भी कुछ प्रसंगतः प्राप्त हैं। ज्ञातव्य है निघण्टुके द्वितीय अध्यायमें ५१६ शब्द संकलित हैं। इसी प्रकार निघण्टु के तृतीय अध्यायकी व्याख्या निरुक्तके तृतीय अध्यायके तृतीय एवं चतुर्थ पादोंमें की गयी है। निघण्टुके तृतीय अध्यायके ४१० शब्द व्याख्यात न होकर चतुर्थांशसे भी कम शब्द यहां व्याख्यात हैं। निरुक्तके तृतीय अध्यायके तृतीय एवं चतुर्थ पादोंमें मात्र ७५ शब्दोंकी ही व्याख्या हुई है जिनमें कुछ प्रसंगतः प्राप्त भी हैं। इस प्रकार नैघण्टुक काण्डके कुल १३४० शब्दोंमें मात्र २१८ शब्दोंके निर्वचन प्राप्त होते हैं, इनमें भी बहुत से शब्द प्रसंगतः प्राप्त हैं। तात्पर्य यह है कि निघण्टु पठित शब्दोंमें से एक चतुर्थांश शब्दोंके निर्वचन भी यास्क नहीं करते। नैघण्टुक काण्डके निर्वचनोंका मूल्यांकन प्रकृत शोध प्रबंधके षष्ठ अध्यायमें किया गया है।

निघण्टुका द्वितीय काण्ड नैगम काण्ड कहलाता है, यह निघण्टुका चतुर्थ अध्याय है। निघण्टुका चतुर्थ अध्याय तीन खण्डोंमें विभाजित है जिसमें क्रमशः ६२, ८४ एवं १३३ पद संकलित हैं। इस प्रकार चतुर्थ अध्यायके शब्दो की कुल संख्या ३७९ है। प्रत्येक पदों की स्वतंत्रसत्ता होनेके कारण इन्हें ऐकपदिक काण्ड कहा जाता है। इन पदों के निर्वचन निरुक्तके चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्यायोंमें प्राप्त होते हैं। निरुक्त के चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्यायों में क्रमशः १४६, १३४ एवं २०६ निर्वचन प्राप्त होते हैं। इस प्रकार निरुक्त के नैगम काण्ड के निर्वचनों की कुल संख्या ४८६ है। यास्क निघण्टु के नैगम काण्ड के २७९ शब्दों के स्थान पर ४८६ निर्वचन प्रस्तुत करते हैं। इन निर्वचनो में अतिरिक्त निर्वचन प्रसंगत प्राप्त हैं । निघण्टु पठित नैगम काण्ड के २७९ शब्दों के निर्वचन भी यहां नहीं किए गये हैं क्योंकि इनमें कुछ शब्दों के निर्वचन में पूर्व व्याख्यात या आगे व्याख्या की जायगी कह कर काम

चला लिया गया है। नैगम काण्डके निर्वचनोंका मूल्यांकन प्रकृत शोध प्रबंध के सप्तम अध्यायमें किया गया है।

निघण्टुका अन्तिम अध्याय दैवत काण्ड कहलाता है। देवताओंके नाम से सम्बद्ध पदोंका संकलन दैवतकाण्ड है। निघण्टुका अन्तिम अर्थात् पांचवा अध्याय छः खण्डोंमें विभाजित है। इनमें क्रमशः अग्नि आदि-३, द्रविणोदा आदि-१३, अश्व आदि-३६, वायु आदि-३२, श्येन आदि- ३६ तथा अश्विनौ आदि-३१ पद संकलित हैं। इन पदोंके निर्वचन निरुक्तके क्रमशः सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश एवं द्वादश अध्यायों में प्राप्त होते हैं। निघण्टु के दैवत काण्डके प्रथम खण्डमें संकलित तीन पदोंकी व्याख्या में यास्क निरुक्तका पूरा सप्तम अध्याय लगाते हैं। निरुक्तके सप्तम अध्यायमें ३७ निर्वचन हैं जिनमे ३४ निर्वचन प्रसंगतः प्राप्त हैं। निघण्टुके दैवत काण्डके द्वितीय खण्डमें संकलित १३ पदोंके निर्वचन यास्क निरुक्तके अष्टम अध्यायमें करते हैं। अष्टम अध्यायमें निर्वचनोंकी कुल संख्या- २९ है। इनमें १६ निर्वचन प्रसंगतः प्राप्त हैं। निघण्टुके दैवत काण्डके तृतीय खण्डमें ३६ पद संकलित हैं, इन पदोंके निर्वचन निरुक्तके नवम अध्यायमें किए गये हैं। नवम अध्यायके निवर्चनों की कुल संख्या ७६ हैं जिनमें ४० प्रसंगतः प्राप्त हैं। पुनः निघण्टुके दैवत काण्डके चतुर्थ खण्डमें वायु आदि ३२ पद पठित हैं जिनके निर्वचन यास्क निरुक्तके दशम अध्यायमें करते हैं। दशम अध्यायके निर्वचनोंकी कुल संख्या-५७ है। निश्चय ही इनमें २५ निर्वचन प्रसंगतः प्राप्त पदों के हैं। इसी प्रकार निघण्टुके दैवतकाण्डके पंचम खण्डमें श्येन आदि ३६ पद संकलित हैं जिनके निर्वचन यास्क निरुक्तके एकादश अध्यायमें करते हैं। एकादश अध्यायके निर्वचनोंकी कुल संख्या ५६ है जिसमें २० प्रसंगतः प्राप्त हैं। पुनः दैवत काण्ड के षष्ठ अर्थात् अन्तिम खण्डमें अश्विनौ आदि ३१ पद संकलित हैं, इन पदोंके निर्वचन यास्क निरुक्तके द्वादश अध्यायमें करते हैं. निरुक्तके द्वादश अध्यायके निर्वचनोंकी कुल संख्या ५१ है जिनमें २० निर्वचन प्रसंगतः प्राप्त पदोंके हैं।

निरुक्तके त्रयोदश एवं चतुर्दश अध्याय यद्यपि विवादग्रस्त हैं फिर भी निरुक्तके साथ कई संस्करणोंमें प्राप्त होते हैं। अतः इन दो अध्यायों को भी निरुक्तका अंग माना जाता है। इन दो अध्यायों में यास्क ने कुछ मन्त्रों का उत्लेख कर इनके ईश्वरपरक अर्थ का प्रतिपादन किया है। इन्हें अति स्तुतियों के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। इस प्रसंग में प्राप्त कुछ पदोंके निर्वचन भी यास्क प्रस्तुत करते हैं। इन दो अध्यायों में क्रमशः सात एवं आठ निर्वचन प्राप्त होते हैं जो किसी न किसी प्रकार देवताओं से सम्बद्ध हैं। परिणामस्वरूप दैवत

काण्डके अन्तर्गत ही इन्हें विवेचित एवं मूल्यांकित किया गया है। दैवत काण्डके सभी निर्वचन अध्यायानुक्रमसे इस शोध प्रबंधके अष्टम अध्यायमें विवेचित हैं।

भाषा विज्ञानकी विविध शाखायें आज विकसित एवं पल्लवित हो रही हैं। विभिन्न भाषाओंके सम्पर्कमें लानेका श्रेय आज भाषा विज्ञान को ही है। तुलनात्मक भाषाके अध्ययनसे ही स्पष्ट होता है कि किसी भाषा परिवारका क्षेत्र कितना व्यापक है। भाषाके माध्यमसे देश विशेष की संस्कृतियों एवं स्थितियोंका मूल्यांकन सहज ढंगसे होता है। ज्ञातव्य है आधुनिक भाषा विज्ञानका स्वतंत्र अस्तित्व १९वीं शताब्दीसे पूर्व प्राप्त नहीं था। प्राचीन भारतमें भी भाषा विज्ञानके नामसे स्वतंत्र रूपमें तो कार्य नहीं हुए, लेकिन शब्द, ध्वनि, अर्थ, पदविन्यास, वाक्ययोजना, शब्दार्थ सम्बन्ध आदि भाषा विज्ञानके विविध अंगों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया। पाणिनि, याज्ञवल्क्य, व्यास, वशिष्ट, नारद आदि के लगभग २० से भी अधिक शिक्षा ग्रन्थोंकी उपलब्धिसे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतमें ध्वनि पर कितना अधिक काम हुआ है।[१५] प्राचीन भारतमें ध्वनि शास्त्र अपने आपमें स्वतंत्र अनुसंधानका विषय है। इसी प्रकार प्राचीन भारतमें अर्थ विज्ञान पर भी स्वतंत्र कार्य देखे जाते हैं। समग्र संस्कृत साहित्यमें अर्थ की प्रधानता देखी जाती है। प्राचीन भारतमें अर्थ विज्ञानभी स्वतंत्र अनुसंधानका विषय है। हम देखते हैं कि भाषा विज्ञानके सभी अंग किसी न किसी प्रकार प्राचीन भारतमें विवेचित हुए हैं। भाषा विज्ञानके विविध अंगों से निरुक्त भी सम्बद्ध रहा है। भारतमें भाषा विज्ञानका एक विशिष्ट अंग निर्वचन शास्त्र विशेष रूपमें विवेचित है। इस प्रकार की विवेचना विश्वकी अन्य भाषाओंमें कम मिलती है। इतना भी कहा जा सकता है कि यास्कके समयमें निर्वचन शास्त्रकी जो स्थिति थी, वह अन्य भाषाओंके निर्वचन शास्त्रसे उत्कृष्ट थी। इस प्रकार का कार्य विश्वकी किसी भाषामें उस समय नहीं हुआ था। निर्वचन शास्त्रके लिए व्युत्पत्ति शास्त्रका प्रयोग भाषा विज्ञानमें देखा जाता है।[१६] यद्यपि निर्वचन एवं व्युत्पत्ति में पार्थक्य है फिर भी व्युत्पत्ति का प्रयोग निर्वचन के लिए रूढ़ सा हो गया है। प्रकृत शोध प्रबंधमें भी निर्वचन शब्दके लिए व्युत्पत्ति शब्दका प्रयोग किया गया है।

निर्वचन शास्त्र की दृष्टि से यास्क के महत्त्व को देखा जाए तो कहा जायगा कि यास्क निर्वचन सम्राट् थे। भाषा विज्ञान के निर्वचन शास्त्र की शाखा पर यास्क की जो दृष्टि है वह अन्यत्र नहीं मिलती। यहां यह भी कहना असंगत नहीं होगा कि यास्क ने निर्वचन के प्रति अपनी विशेष आसक्ति को प्रदर्शित किया है। यही कारण हैं कि भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यास्क के सभी निर्वचन पूर्ण

संगत नहीं ठहरते हैं।

-: सन्दर्भ संकेत :-

१. इदमन्धतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्। यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।- काव्यादर्श-१।२, २. नि. १।५, ३. नि. ४।२, ४. अथर्व.-११।४।२१, ५. ऋ. ४।४०।५, ६. नि. १।३, ७. सि. मुक्ता. शब्द खण्ड-का.-८१ की व्याख्या द्र., ८. ऋ.भा.मू. (सायण)-पृ. ४५, ९. सं. सा. का इति. (वलदेव उपा.) पृ. ९०, १०. पा.शि.- ४१-४२, ११. नि. १।४।२।१, १२. नि. २।१, १३. नि. १।४, १४. नि. ३।४, १५. सं. सा. का इति.- (गैरोला) पृ. ११०-११२, भाषा वि.-भो.ति. पृ. ५२८, १६. भाषा विज्ञान-भो.ति.पृ. ४४६.

संकेत सूची

अथर्व सं	-	अथर्व संहिता
अ. प्रा.	-	अथर्व प्रातिशाख्य
अ. पु.	-	अग्नि पुराण
अम. को.	-	अमरकोष
अ.को.रा.	-	अमरकोष रामाश्रमी टीका
अष्टा. -	-	अष्टाध्यायी
अभि.	-	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
अभि.चि.	-	अभिधान चिन्तामणि
अ.रा.	-	अध्यात्म रामायण
अ.सं.	-	अनेकार्थ संग्रह
अवे.	-	अवेस्ता
अर.का.	-	अरण्य काण्ड
अश्व. पर्व	-	अश्वमेघ पर्व
आप.श्रौ.सू.	-	आपस्तम्ब श्रौत सूत्र
आप.शु.सू.	-	आपस्तम्ब शुल्व सूत्र
आप. ध.सू.	-	आपस्तम्ब धर्म सूत्र
उत्त. रा	-	उत्तररामचरितम्
उणा.	-	उणादि सूत्र
उणा.को.	-	उणादि कोष
ऐ.ब्रा.	-	ऐतरेय ब्राह्मण
ऐ.आ.	-	ऐतरेय आरण्यक
ऋ.प्रा.	-	ऋक् प्रातिशाख्य
ऋ.को.	-	ऋग्वेद कोष
ऋ.भा.भू.	-	ऋग्वेदभाष्य-भूमिका
ऋ.सं. (ऋ.)	-	ऋग्वेदसंहिता
ऋ.भा.	-	ऋग्वेद भाष्य
ऋ.त.	-	ऋक्तन्त्र
का.ग्र.	-	कालिदास ग्रन्थावली
का.	-	काशिका
कारि.	-	कारिकावली
का.गृ.सू.	-	कात्यायन गृह्यसूत्र
का.श्रौ.सू.	-	कात्यायन श्रौत सूत्र
काव्य	-	काव्यादर्श
का.व्या.	-	काशकृत्स्न व्याकरण
का.सं.	-	कण्वसंहिता
काठ. सं.	-	काठक संहिता
का.मी.	-	काव्य मीमांसा
का. अलं	-	काव्यालंकार
कि.का.	-	किष्किन्धा काण्ड
कौ.ब्रा.	-	कौषीतकि ब्राह्मण
कौ. अर्थ.	-	कौटिल्यस्यार्थ-शास्त्रम्
क्षीर.टी.द्र.	-	क्षीरस्वामी टीकाद्रष्टव्य
गो. ब्रा.	-	गोपथ ब्राह्मण
गौ.ध.सू.	-	गौतम धर्म सूत्र
छा. उ.	-	छान्दोग्योपनिषद्
छा.उ.शां.भा.	-	छांदोग्योपनिषद् शांकर भाष्य
त.वा.	-	तन्त्रवार्तिक
त.सं.	-	तर्कसंग्रह
तुल. भा.	-	तुलनात्मक भाषाशास्त्र
तै. उ.	-	तैत्तिरीय उपनिषद्
तै. ब्रा.	-	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै. आ.	-	तैत्तिरीय आरण्यक
तै.सं.	-	तैत्तिरीय संहिता
दश.	-	दशरूपकम्
द्र.	-	द्रष्टव्य
दै.ब्रा.	-	दैवत ब्राह्मण
ध्व.वि.	-	ध्वनि विज्ञान
ध्वन्या.	-	ध्वन्यालोक
न्या.मु.	-	न्यायमुक्तावली
न्या.शा.	-	न्यायशास्त्र
ना.पु.	-	नारद पुराण
नि.	-	निरुक्त
नि.दु.वृ.	-	निरुक्त दुर्ग वृत्ति
नि.मी.	-	निरुक्त मीमांसा
नि.स.	-	निरुक्तसमुच्चय
नि.श्लो.	-	निरुक्त श्लोकवार्तिक
नि.नि.	-	निघण्टु तथा निरुक्त
निरु.	-	निरुक्तालोचन

पद.	-	पदपदार्थ विभाग परिशीलन	वा.पु.	-	वायुपुराण
			वाच.	-	वाचस्पत्यम्
पा.त.	-	पाणिनि तन्त्रम्	वा. प्रा.	-	वाजसनेय प्रातिशाख्य
पा.शि.	-	पाणिनीय शिक्षा	विश्व.को.	-	विश्वकोष (विश्व.)
प्रा.प्र.	-	प्राकृत प्रकाश	वि.प्र.(विष्णु)	-	विष्णुपुराण
प्रा.स.	-	प्राकृतसर्वस्वम्	वे.दी.	-	वेदार्थ दीपिका
पद्म.पु.	-	पद्म पुराण	वै.इ.	-	वैदिक इण्डेक्स
ब्र.सू.	-	ब्रह्मसूत्र	वै.को.	-	वैदिक कोष
ब्र.वै.पु.	-	ब्रह्मवैवर्तपुराण	वौ.श्रौ.सू.	-	वौधायन श्रौतसूत्र
भाषा.वि.	-	भाषा विज्ञान	वृ.उ.	-	वृहदारण्यकोपनिषद्
भा.पु.	-	भागवत पुराण	वृ.दे.	-	वृहद्देवता
भोला.ति.	-	भोलानाथ तिवारी	शं.ब्र.	-	शतपथ ब्राह्मण
मही. भाष्य	-	महीधर भाष्य	शब्द.	-	शब्दकल्पद्रुम
म.भा.	-	महाभारत	शां.ब्रा.	-	शांखायन ब्राह्मण
महा.	-	महाभारत	शा.प.	-	शान्तिपर्व
म. भाष्य	-	महाभाष्य	शु.यजु.	-	शुक्लयजुर्वेद
मनु स्मृ.	-	मनुस्मृति	शु.य प्रा.	-	शुक्लयजुः-
माल.	-	मालविकाग्निमित्रम्	प्रातिशाख्य		
मान.श्रौ.सू.	-	मानव श्रौतसूत्र	श्रीमद्भ.	-	श्रीमद्भगवद्गीता
मा.शि.	-	माध्यन्दिनी शिक्षा	सा.सं.	-	सामसंहिता
मुण्ड.(मु.उ.)	-	मुण्डकोपनिषद्	सा.भा.	-	सायण भाष्य
मेघ.	-	मेघदूतम्	सा.वे.	-	सामवेद
मेदि.	-	मेदिनीकोष	सि.शि.	-	सिद्धान्त शिरोमणि
मैत्रा.सं.	-	मैत्रायणी संहिता	सि.मु.	-	सिद्धान्तमुक्तावली
य. प्रा.	-	यजुः प्रातिशाख्य	सि.कौ.	-	सिद्धान्त कौमुदी
या.शि.	-	याज्ञवल्क्य शिक्षा	स्क.पुरा.	-	स्कन्धपुराण-
या. स्मृ.	-	याज्ञवल्क्य स्मृति	रेवा.खं.		रेवा खण्ड
युद्ध का.	-	युद्ध काण्ड	हला.	-	हलायुधकोष
रघु.	-	रघुवंशम्	हैम.	-	हैमकोष
लघु.कौ.	-	लघुसिद्धान्त कौमुदी	हायर सं.ग्रा. काले	-	हायर संस्कृत ग्रामर,
वा.प.(वा.)	-	वाक्यपदीयम्			
वा.का.	-	वालकाण्ड	हि.नि.	-	हिन्दी निरुक्तम्
वा.रा.	-	वाल्मीकि रामायण	हितो.	-	हितोपदेश

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. अथर्व संहिता - सायण भाष्य - निर्णय सागर - बंबई
२. अथर्ववेद प्रातिशाख्य
३. अमरकोष - रामाश्रमी-मोतीलाल बनारसी दास,
४. अग्निपुराण
५. अमरकोष-क्षीरस्वामी
६. अष्टाध्यायी-पाणिनि, रामलालकपूर ट्रस्ट, हरियाणा
७. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी
८. अभिधान चिन्तामणि
९. अध्यात्म रामायण-गीताप्रेस, गोरखपुर
१०. अनेकार्थसंग्रह-हेमचन्द्रसूरि, शान्तिपुरी, हालार, गुजरात
११. अष्टाध्यायी भाष्य-ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलालकपूर ट्रस्ट, हरियाणा
१२. अष्टाध्यायी ऑफ पाणिनि- वसु- मोतीलाल बनारसीदास
१३. अवेस्ता
१४. अर्थशास्त्र-कौटिल्य
१५. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र
१६. आपस्तम्ब शुल्व सूत्र, मैसूर संस्करण
१७. आपस्तम्ब धर्मसूत्र
१८. ईशादि नौ उपनिषद् - गीता प्रेस, गोरखपुर
१९. ईश केन कठोपनिषद्, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
२०. उत्तररामचरितम्- भवभूति-चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९६२
२१. उपसृष्टधात्वर्थ संग्रह, का.सिं.द.सं. विश्वविद्यालय, दरभंगा
२२. उणादिकोष, रामलालकपूर ट्रस्ट, हरियाणा
२३. ए वैदिक रीडर फार स्टुडेण्ट्स - मैकडानेल
२४. ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर- एम विण्टरनीत्स, मोतीलाल बनारसीदास
२५. ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ संस्कृत फोनेटिक्स- डा. विधाता मिश्र, चौ.वि.भ. वाराणसी
२६. ए संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी- एम. विलियम, ऑक्सफोर्ड १९५१
२७. एन इण्ट्रोडेक्सन टू लिंग्विस्टिक साइन्स
२८. एलिमेण्ट्स ऑफ द साइन्स ऑफ लैंग्वेज- तारापोर वाला
२९. एसे दि सिमान्तिक, माइकेल ब्रील
३०. एतरेय ब्राह्मण - निर्णय सागर - बंबई
३१. ऐतरेय आरण्यक - आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना
३२. ऋग्वेद- वैदिक संशोधन मण्डल पूना
३३. ऋक्प्रातिशाख्य
३४. ऋग्वेद कोष
३५. ऋग्वेद भाष्यभूमिका- सायण, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
३६. ऋग्वेदभाष्य-रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
३७. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका-रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
३८. ऋग्वेदानुक्रमणी- बेंकट माधव रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
३९. ऋग्वेद संहिता- सायणभाष्य-मैक्समूलर सम्पादित

४०. ऋक्तन्त्र
४१. ऋक्तन्त्रव्याकरण-लाहौर संस्करण
४२. कालिदास ग्रन्थावली-सम्पादक- डा. रे.प्र.द्वि., का.हि.वि. वाराणसी
४३. काशिका-न्यासटीक-जिनेन्द्रबुद्धि
४४. कारिकावली-निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
४५. कात्यायन गृह्यसूत्र- रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
४६. कात्यायन श्रौतसूत्र
४७. काव्यादर्श, दण्डी, हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, काशी-१९८८
४८. काशकृत्स्न व्याकरण ``
४९. काण्वसंहिता
५०. काठक संहिता
५१. काव्यालंकार, भामह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
५२. काव्य प्रकाश-नागेश्वरी टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
५३ काव्यमीमांसा-राजशेखर, बिहार राष्ट्रभाषापरिषद्, पटना
५४. काले हायर संस्कृत ग्रामर- रामनारायण लाल वेणी प्रसाद, इलाहाबाद
५५. कैटलाग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स
५६. कौषीतकि ब्राह्मण
५७. कौटिल्यस्यार्थशास्त्रम्- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
५८. गोपथब्राह्मण- रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
५९. गौतमधर्म सूत्राणि- चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
६०. चैम्बर्स डिक्सनरी
६१. छान्दोग्योपनिषद् शांकर भाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर
६२. जर्मन संस्कृत शब्दकोष- रॉथ एवं ग्रासमान
६३. तंत्रवार्तिक - कुमारिलभट्ट
६४. तर्क संग्रह - अन्नंभट्ट, चौखम्बा विद्यामवन, वाराणसी
६५. तुलनात्मक भाषा शास्त्र - डा. मंगलदेव शास्त्री
६६. तैत्तिरीय उपनिषद्
६७. तैत्तिरीय आरण्यक
६८. तैत्तिरीय संहिता
६९. तैत्तिरीय ब्राह्मण
७०. दशरूपक धनञ्जय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
७१. द न्यु वैदिक सेलेक्सन- तैलंग एण्ड चौबे
७२. द वाक्यपदीयम्- के. राघवन पिलै, मोतीलाल बनारसी दास-१९७१
७३ द लिभिंग वेबेस्टर- इन्साइक्लोपेडिक डिक्सनरी ऑफ इंगलिश लैंग्वेज
७४ द वृहद्देवता- शौनक- सम्पा. मैकडोनेल, मोतीलाल बनारसी दास
७५. द इटीमालाजीकल कन्सेप्ट ऑफ द पुराणाज- विजय शंकर, जैनभारती, शोधअंक २०२०
७६. द स्टडी ऑफ लैंग्वेज- कैरोल
७७. द इटीमालाजीज ऑफ यास्क, वर्मा- विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान होशियारपुर
७८. दैवत ब्राह्मण
७९. ध्वनि विज्ञान- जी.वी. घल- बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादेमी, पटना

८० ध्वन्यालोक- आनन्दवर्धन, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
८१ न्याय मुक्तावली- चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन वाराणसी
८२ न्याय दर्शन
८३ न्यायशास्त्र
८४ नारदपुराण
८५ निरुक्तम्- देवराज यज्वा, मनसुखराय मोर, कलकत्ता
८६. निरुक्तम्- दुर्गवृत्ति, मनसुखराय मोर, कलकत्ता
८७. निरुक्तभाष्य- स्कन्द, महेश्वर
८८. निरुक्तम् - पं. छज्जुरामशास्त्री, कूचाचेला, दरियागंज, दिल्ली
८९. निरुक्तसमुच्चय-वररुचि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
९०. निरुक्तालोचन - सत्यव्रत सामश्रमी
९१. निरुक्तश्लोकवार्तिक - रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
९२. निरुक्तमीमांसा- शि.ना. शास्त्री, इण्डोलाजिकल हाउस, वाराणसी
९३. निरुक्त-टी. मुकुन्द झा बक्सी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
९४. निघण्टु तथा निरुक्त- लक्ष्मणस्वरूप, मोतीलाल बनारसी दास
९५. पद पदार्थ विभागपरिशीलन- चतुर्वेदी, किशोर विद्यानिकेतन, वाराणसी
९६. पद्मपुराण
९७. परमलघुमंजूषा
९८. पंचतन्त्र, विष्णुशर्मा
९९. परिभाषेन्दुशेखर- नागोजिभट्ट-चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१९३१
१००. पतंजलिकालीन भारत वर्ष-अग्निहोत्री-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
१०१. पाणिनि तन्त्रम्
१०२. पाणिनि और उनके उत्तराधिकारी उ.ना. तिवारी, लोकभारती प्रकाशन
१०३. पाणिनीय शिक्षा- चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी
१०४. पातंजल योगप्रदीप, गीताप्रेस, गोरखपुर
१०५. पाणिनिकालीन भारतवर्ष वा.श. अग्रवाल चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
१०६. पाणिनि हिज प्लेश इन संस्कृत लिटलेचर- गोल्ड स्टूकर
१०७. प्राकृत प्रकाश- वररुचि, चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी
१०८. प्राकृत सर्वस्वम्- प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, अहमदाबाद
१०९. प्रोसिडिंग्स ऑफ फिफ्थ वर्ल्ड संस्कृत कान्फ्रेन्स, वाराणसी
११०. किलोसोफी ऑफ ग्रामर-जेस्पर्शन, जार्ज एलेन एण्ड अल्विन लि. रस्किन हाउस म्युजिकल स्ट्रीट लन्दन
१११. ब्रह्मसूत्र- शांकर भाष्य, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
११२. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर
११३. ब्रह्मवैवत पुराण
११४. भर्तृहरिशतकत्रय- संस्कृति संस्थान, खाजा कुतुब, बरैली
११५ भाषा विज्ञान-भो.ना.ति., किताब महल, प्रैवेट लि. इलाहाबाद
११६ भाषाविज्ञान रूप और तत्त्व- सं. रामगोपालशर्मा दिनेश, आगरा
११७ भाषासाहित्य और संस्कृति-रामविलाश शर्मा, किताब महल, इलाहाबाद
११८ भागवतपुराण- गीता प्रेस, गोरखपुर
११९ भाषाविज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि-त्रिपाठी. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्.

पटना
१२०. भाषा विज्ञान की भूमिका- आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा
१२१. भाषा विज्ञान पर भाषण- एफ मैक्समूलर, अनु. डा. हेमचन्द्र जोशी
१२२. भाषा शास्त्र की रूपरेखा- उ.ना.ति. लीडर प्रेस, इलाहाबाद
१२३. भारतीय भाषा विज्ञान- किसोरी दास वाजपेयी, चौ.वि. भवन, वाराणसी
१२४. भाषा- ब्लूमफील्ड, मोतीलाल बनारसीदास- १९३८
१२५. मनोभाषिकी शास्त्री, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादेमी, पटना
१२६. मनुस्मृति- चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१९६५
१२७. मंजुश्रीमूलक्लप
१२८. महाभाष्य- पतञ्जलि- निर्णय सागर प्रेस, बंबई
१२९. महाकाव्य- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
१३०. महामास्त- गीता प्रेस, गोरखपुर
१३१. मानव श्रौतसूत्र
१३२. माध्यन्दिनी शिक्षा
१३३. मालविकाग्निमित्रम्- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
१३४. मीमांसाश्लोक वार्तिक- कुमारिलभट्ट
१३५. मुण्डकोपनिषद्- गीताप्रेस, गोरखपुर
१३६. मेघदूतम्-रेग्मी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
१३७. मेघदूतम्- जगद्धरी- का.सिं.द.सं.वि., दरभंगा
१३८. मेदिनीकोष
१३९. मैत्रायणी संहिता
१४०. यजु. प्रातिशाख्य
१४१. यास्कस्- निरुक्त, राजवाड़े, मण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टिच्युट, पूना-१९४०
१४२. यास्कीय निरुक्त- एस.के. गुप्त, भारतीय मन्दिर अनुसन्धानशाला, विश्वविद्यालयपुरी, जयपुर
१४३. याज्ञवल्क्य शिक्षा
१४४. याज्ञवल्क्य स्मृति-चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
१४५. रघुवंशम्-कालिदास, ज्ञानसागर प्रेस, मुम्बई
१४६. राजतरंगिणी-कल्हण
१४७. लैग्वेज, ब्लुमफील्ड, न्यूयार्क-१९५०
१४८. लघु सिद्धान्त कौमुदी- मैमी व्याख्या, मैमी प्रकाशन, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली
१४९. लघुकाशिका- त्रिपाठी, वाराणसेय संस्कृत वि.वि., वाराणसी
१५०. लिंग्विस्टिक इन्ट्रोडक्सन टू संस्कृत- वटकृष्ण घोष
१५१. व्याकरण शास्त्र का इतिहास- मीमांसक, मारतीय प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान, अजमेर
१५२. व्याकरण महाभाष्य- अनु. चारुदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास- २०२५
१५४. वायुपुराण
१५५. वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर
१५६. वाचस्पत्यम्-चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
१५७. वाजसनेय प्रातिशाख्य
१५८. विष्णु पुराण-गीताप्रेस, गोरखपुर
१५९. विश्वकोष

१६०. वेदार्थदीपिका
१६१. वैदिक पदानुक्रम कोष (पं. विश्वबन्धु) १९५६ ई.
१६२. वैदिक इण्डेक्स-मैकडोनेल एण्ड कीथ, (अनु. रामकुमार राय) चौ.वि.भ., वाराणसी
१६३. वैदिक साहित्य और संस्कृति-उपाध्याय, शारदामन्दिर काशी, १९५८
१६४. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी- वेंकटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई
१६५. वैदिक वाङ्मय में भाषा चिन्तन- शि.ना. शास्त्री, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी
१६६. वैदिक कोष-सूर्यकान्त, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
१६७. बौधायन श्रोतसूत्र- रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
१६८. वृहदारण्यकोपनिषद्- गीताप्रेस, गोरखपुर
१६९. वृहद्देवता-शौनक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
१७०. शतपथ ब्राह्मण- आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना
१७१. शब्दस्तोम महानिधि- तारानाथ भट्टाचार्य, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
१७२. शब्दकल्पद्रुम- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
१७३. शांखायन ब्राह्मण
१७४. शिवमहिम्नस्तोत्र- मधुसूदन सरस्वती
१७५. शुक्लयजुर्वेद- उब्बट महीधर भाष्य, मोतीलाल बनारसी दास
१७६. शुक्लयजु: प्रातिशाख्य- डा. वी.के. वर्मा, ज्ञानप्रकाश प्रतिश्ठान, गंगामहल, पटनीटोला, वाराणसी
१७७. श्रीमद्भगवद्गीता- गीताप्रेस, गोस्खपुर
१७८. षड्विंशब्राह्मण
१७९. सामवेद
१८०. सामान्यभाषा विज्ञान- डा. बाबू राम सक्सेना
१८१. साहित्यदर्पण- विमलाटीका, मोतीलाल बनारसीदास
१८२. सिद्धान्तकौमुदी भट्टोनिदीक्षित-चौ.वि.भ. वाराणसी
१८३. सिद्धान्त शिरोमणि- भाष्कराचार्य
१८४. सिस्टम ऑफ संस्कृत ग्रामर- वेल्भल्कर- १९१५
१८५. संस्कृत साहित्य का इतिहास- गैरोला, चौखम्बा, विद्यामवन, वारणसी
१८६. संस्कृत साहित्य का इतिहास - उपाध्याय
१८७. संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन- डा. भोलाशंकर व्यास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन- १९६६
१८८. संस्कृत साहित्य का इतिहास-कीथ, अनु. शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास
१८९. संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी, वी.एस. आप्टे
१९०. संस्कृत लैंग्वेज- टी.वेरो, फेवर एण्ड फेवर, लन्दन
१९१. संग्रह शिरोमणि- सरयू प्रसाद, लखनऊ
१९२. हिन्दी निरुक्त- पं. सीताराम शास्त्री, पो.बा. ११६५, नयी सड़क, दिल्ली
१९३. हिन्दी निरुक्त `ऋषि' चौखम्बा विद्याभवन, १९६१
१९४. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर- वेवर

शब्द सूची

अक्तुः - १५
उक्षः - ४९३
अक्षरम् - ४८९
अक्षाः - २९५
४२५
अक्षिः - १३०
अक्रः - ३६७
अकूपारः - २६५
अग्नायी - ४४१
अग्निः - ४०२
अग्निष्टोम - २४
अग्निस्तोम- २४
अग्रम् - ३४०
अग्रिया - ३६३
अघम् - ३५४
अघ्न्या - ४७३
अच्छः - ३२९
अजः - २७९
अजएकपात् -
४८४
अजीगः - ३५०
अणुः - ३७५
अत्याः - २५९
अत्रिः - २८
२२५
अतिथिः - २५२
अतूर्तः - ४२८
अथर्युः - ३०५
अथर्वाणः - ४६९
अद्भुतम् - १२५
अदमसत् - २६३
अदितिः - २७३
४६९
अद्रिः - १५
२५१
अध्वर्युः - १२९
अधः - १६०
अधरः - १६०
अधिगुः - ३०७
अधोरामः - ४८१
अन्यः - १२५
अन्तः - २७८
अन्तरिक्षम् - १६७
अन्धः - २९३
अन्नम् - २०७
अन्तिकम् - २०८
अनः - ४७४
अनवायम् - ३५४
अनवद्यवः - ३८४
अनर्वा - ३७७
अनर्शरातिम् -
३७७
अनर्वम् - २८३
अनुदात्तम् - २७९
अनुमूतिः - ४७१
अनुष्टुप् - ४००
अनूपा - १८२
अप्नः - २१४
अप्वा - ३५८
अप्सरा - ३११
अपत्यम् - १९९
अपामार्गः - २१
अपांनपात् - ४५४
अप्रतिष्कुतः - ३६५
अप्रायुवः - २६८
अपीच्यम् - २७६
अभ्यर्द्धयज्वा-३४७
अभिधेतन - ३८१
अभीके - २३२
अभीक्ष्णम् - १८७
अभीशवः - २०७
अम्यक् - ३६२
अमत्रम् - २९२
अमत्रः - ३७६
अमति - ३५८
अमवान् - ३५६
अमा - २९३
अमिनः - ३६४
अमीवा - ३५७
अमीमयत् - १६३
अमूरः - ३५१
अयम् - २२३
अर्कः - १४
३००
अर्थः - १३५
अर्बुदः - २११
अर्धः - २३४
अर्भकम् - २३३
अरः - २८३
अरणः - १९९
अरणी - ३०६
अरण्यानी - ४४०
अरातयः - २१४
अरिः - ३०३
अल्हवः - ३७८

अलातृणः - ३३९
अवतः - २२६
अवत्तम् - १४३
अवनयः - २०६
अवसम् - १३४
अश्वः - १३३
१८८
अश्विनौ - ४७७
अश्लीलम् - ३७७
अष्टौ - २१०
अस्कृधोयुः - ३८२
अस्मे - ३४७
असश्चन्ती - २९३
असक्राम - २८३
असामि - ३७८
असिक्नी - ४३७
असिन्वती - ३४३
असुरः - २५
२०३
असुरत्वम् - ४५८
असुनीतिः - ४६०
असूर्ते - ३६२
असौ - २८३
अहः - १८१
अह्नयाणः - ३१५
अहिः - १७८
अहिर्बुध्न्यः - ४६१
आ - ३०२
आक्षाणः - २१२
आखण्डलः - २१३
आगः - ४६९
आघृणिः - ३०५
आङ्गूषः - ३०८
आचार्यः - १२२
आज्यम् - २४
आजेः - ४३३
आणिः - ३८९
आत्मा - २२०
आदित्यः - १७२
आदितेयः - ४०७
आदुरिः - ३८६
आधवः - ३८४
आनुषक् - ३६१
आप्यम् - ३६१
आप्त्या - ४६९
आपः - २१
४३९
४९२
आपानः - २१२
आपातमन्युः - ३०८
आप्रियः - ४१२
आयुधम् - ४४८
आर्त्नी - ४४१
आर्जिकीया - ४३८
आर्टिषेणः - १६८
आरितः - ३१५
आवहः - ३२६
आविः - ४१९
आशयत् - १७७
आशा - ३३६
आशीः - ३५०
आशुशुक्षणिः - ३३५
आस्थत् - १५०
आस्यम् - १३०
आहनः - २९५
आहनसः - २६२
आहावः - ३२५
इड - १८
इत्था - ३०२
इदंयुः - ३८७
इध्मः - ४१३
इन्द्रः - २५,३२
४४९
इन्दुः - ४६०
इन्द्रवात्रुः - १७८
इन्द्राणी - ४७३
इनः - २१५
इर्मान्तः - २५७
इरिणम् - ४२५
इलीविशः - ३७१
इष्मिनः - २६३
इषिरः - २५४
इषीका - ४२६
इषु - ४३१
इषुधिः - ४२९
ईक्षे - ३४७
ईर्म - ३२४
ईलः - ४१४
उक्थम् - २८
उक्षणः - ४७९
उच्चैः - २७५
उत्सः - ४५०
उत्तरः - १७०

उत्तानः - २७२
उद्गीथः - ३०
उदकम् - १८४
उदन्युः - ४६८
उदात्तम् - २७९
उपसि - ३४६
उपलप्रक्षिणी - ३४५
उपजिह्विका - २३५
उपर उपल - १८२
उभौ - २५२
उर्वशी - ३१०
उर्वी - १८८
उरणः - ३१९
उराणः - ३६७
उरुः - ४१६
उल्वम् - ३९०
उलूखलम् - ४३३
उशिक् - ३५४
उशीरः - १६२
उष्णम् - १५४
उष्णिक् - ३९९
उष्णीषम् - ३९९
उषस् - १८०
उषा - ४७८
उषासानक्ता - ४१७
उस्रा - २७०
ऊतिः - १५२
२९६
ऊधस् - ३७०
ऊर्कः - २०४
ऊर्णा - ३२०
ऊर्द्वरम् - २३६
ऊर्मिः - ३२२
एकम् - २०९
एनस् - ४६९
एरिरे - २७३
एव - १८६
ओकः - २००
ओघः - १४८
ओजः - ३५०
ओमना - ३४५
ओमासः - ३५३
ओषधयः - ४३९
ओह ब्रह्माणः - ४९०
औशिजः - ३५४
अंकः - १९०
अंकुशः - ३३०
अंगम् - २४७
अंगः - ३१६
अंगारा - २२५
अंगिरा - २२५
अंगिरस् - २९
४६८
अंगुलयः - २०५
अंशुः - १६२
अंसत्रम् - ३२४
अंहति - २७७
अंहुरः - ३८१
ऋक् - २८
४९०
ऋक्षरः - ४४०
ऋक्षा - २३४
ऋग्मियम् -
ऋचीसमः - ३७७
ऋजीषी - ३०९
ऋजुनीति - ३७३
ऋञ्जतिः - ३७२
ऋत्विक् - २३१
ऋतम् - १८६
ऋतु - १८६
ऋदूदरः - ३४३
ऋदूपे - ३४३
३८९
ऋधक् - २७८
ऋभवः - ४६८
ऋवीसम् - ३९०
ऋषिः - २९,३०
१६९
कः - ४५५
ककुप् - ३९९
कक्ष्या - १५७
कच्छः - २६६
कच्छपः - २६६
कण्टकः - ४४०
कत्पयम् - ३४१
कन्या - २६१
कपना - ३४४
कपिञ्जलः - २२८
कबन्धम् - ४४७
कम्बलः - १५५
कम्बोजाः - १५४
कर्णः - १३०
कर्म - १९९

करन्धमः - ४०
करस्नौ - ३६६
करुलती - ३८६
कल्याणम् - १५९
कल्याणवर्णरूपः - १५९
कलशः - ४६६
कला - ४६७
कलिः - ४६७
कवचम् - ३२५
कविः - ४८०
कवीन्राम् - ४९१
कशा - ४३१
काकः - २२७
काकुदम् - ३२७
काणः - ३८४
काणुका - ३०६
कामयमानः - २७०
कार्तिकेयः - ३५
कारुः - ३४५
कालः - १८७
काशिः - ३३७
काष्ठा - १७६
किः - ३८९
कितवः - ३२१
किमीदिन - ३५५
किल्विषम् - ४६९
कियेधा - ३७१
किंशुकम् - ४७८
कीकटाः - ३८७
कुचरः - १३७
कुटः - ३२३
कुणारु - १५२
३३८
कुत्सः - २१४
कुब्जः - ४००
कुरुतन - २५५
कुरुंगः - ३७५
कुरु - ३७५
कुल्माषाः - १२३
कुलम् - ३७६
कुत्सिशः - ३६९
कुशिकः - १८७
कुहूः - ४७२
कूलम् - २३८
कूपः - २३१
केतपूः - १८
केपयः - ३२४
केशिनः - ४८३
केशी - ४८३
कोकुवा - ३२७
कोशः - ३२६
कौरयाणः - ३१४
क्रव्यम् - ३५५
क्राणाः - २७०
क्रिमिः - ३५८
क्रिविर्दती - ३८६
क्रूरम् - ३७६
कृकवाकुः - ४८१
कृत्तिः - ३२०
कृदरम् - २३६
कृपा - ३५१
कृष्णः - ३९
कृष्णम् - १८१
कृष्टिः - ४५५
खण्डम् - २१३
खम् - २१७
खलः - २१२
ग्ना - २३७
गणाः - ३९०
गत्वा - १४३
गतम् - १४४
गध्यम् - ३१४
गधिता - ३१४
गर्तः - २०१
गर्भः - ४५६
गरुत्मान् - ४०५
गल्दया - ३७८
गाथम् - ८९
गाधः - १४९
गायत्रम् - १३
गायत्री - २६
१२८
३९८
गिर्वणा - ३६२
गिरः - १३२
गिरिः - १३८
गिरिष्ठा - १३८
गीः - १३
गुहा - ४८९
गौ - १६०
गौरी - ४७३
गंगा - ४३६
गृत्समदः - २८

४२४
गृध्रः - ४९२
गृहम् - २१६
ग्रावाणः - ४२६
ग्रीवा - १८९
ग्रीष्मः - २८२
घनः - १४६
घोषः - ४२७
घृतम् - १५४
घृतस्नू - ४८५
घ्रंसः - ३७०
क्षणः - १८७
क्षत्रः - ४२
क्षा - १६३
क्षिप्रम् - २०८
क्षीरम् - १६१
क्षुम्पम् - ३१६
क्षेत्रम् - ४५३
क्षेत्रस्यपति - ४५२
क्षेत्रसाधा - १५३
क्षोणस्य - ३४७
च्यवनः - २६८
चक्षुः - २४७
चक्रम् - २८१
चत्वारः - २०९
चनः - ३६३
चन्द्रः - ३३
४६५
चन्द्रमा - ३३
४६४
चन्दनम् - ४६५
चमसः - ४५२
चयसे - २७७
चर्म - १६२
चर्षणि - ३२३
चरुः - ३५५
चाकन् - ३८३
चारुः - ४१९
४६५
चित् - ३०२
चित्तम् - १२५
चित्रम् - २५१
चिश्चा - ४२९
चोष्कूयमानः - ३७४
चोष्कूयते - ३७४
छदः - २८
छन्दस् - ३१
३९७
ज्या - ४३१
ज्योतिः - १४६
जग्मतुः - १४४
जग्मुः - १४४
जगती - २६
४०१
जगुरिः - ४७०
जघनम् - ४३२
जज्झती - ३६४
जठरम् - २५५
जमदग्न्यः - ४०६
जरते - २७६
जरा - ४४९
जरायुः - ४५९
जरूथम् - ३६८
जल्हवः - ३७९
जवारु - ३६८
जहा - २४५
जागृविः - ४२६
जातवेदस् - १९
४०५
जामाता - ३५२
जामिः - २०२
जाया - २४
जारः - २२०
जारयायी - ३६३
जालम् - ३८१
जिन्वति - ३७६
जिष्णोः - १४
जिह्मम् - ४१९
जिह्वा - ३२७
जुहुरे - २६९
जूर्णिः - ३४४
जोषवाकम् - ३२०
ज्ञाता - ४९१
ज्ञातिः - २७२
त्वः - २३३
त्वष्टा - ४१८
तक्म - ४७०
तक्षति - २६८
तडित् - २१३
ततः - ३४६
ततनुष्टिः - ३७०
तत्त्वायामि - १४५

तन्तु - १३
तनयम् - ४४६
तनूनपात् - ४१३
तपनः - ४२
तपिष्ठैः - ३५७
तपुः - ३५५
तपुषि - ३४१
तमः - १७७
तर्कुः - १४८
तरुष्यति - २९४
तवसः - ३०५
तविषी - ४३५
तस्करः - २९६
तायुः - ३७३
तार्क्ष्यः - ४५७
तालु - ३२७
त्विषि - १३५
तिग्मम् - ४४७
तितऊ - २५६
तित्तिरिः - २२७
तिरस् - २२३
तुग्वः - २६१
तुञ्जः - ३६९
तुर्वणिः - ३६१
तुरः - ४८१
तुरीपम् - ३७२
तुरीयम् - ४८९
तूताव - २७७
तूतुमाकृषे - ३२४
तूर्णाशम् - ३१६
तोकम् - ४४८
तोदः - ३०३
तौरयाणः - ३१४
तृचः - १४५
तृणम् - १३३
तृप्रहारी - ३०८
तृष्णक - ४६८
तृष्वी - ३५७
त्रय - २०९
त्रितः - २५४
त्रिष्टुप् - ४०१
दक्षिणा - ३५
१२६
दण्डः - १५७
दण्ड्यः - १५६
दण्डी - १४५
दघ्नम् - १३१
दध्यङ् - ४८५
दधिक्रा - १८९
दनः - ३८७
दभ्रम् - २३३
दाम्ना - १५३
दयते - २६४
दशः - २१०
दस्युः - ४०६
दाति - १५६
दात्रम् - १५६
दारु - २६१
दासः - १७८
दिद्युत् - ४४८
दिव्यः - ४०४
दिव्या - २५९
दिविष्टिषु - ३७४
दिशः - १७६
दीर्घम् - १७७
दीधितयः - ३०६
दुन्दुभिः - ४२९
दुरितम् - ३५८
दुरोण - २५३
दुहिता - २००
दूतः - २९१
दूरम् - २३२
देवः - २६
४०३
४८६
देवरः - २१८
देवपत्न्यः - ४८७
देवश्रुतम् - १७१
देवीयोष्ट्री - ४४२
देवीऊर्ज्जाहुती-४४२
दो - २४८
दंशः - १३६
दंशयः - २७६
द्युः - १२४
द्युम्नम् - ३०३
द्यौः - १८१
द्रप्सः - ३१२
द्रविणोंदा - ४१०
द्रविणसः - ४११
द्रुधणः - ४३४
द्रोणम् - ३२५
द्वारः - १५०
४१६

द्विता - २९७
द्विवर्हाः - ३६७
द्वौ - २०९
धन्वन् - ३०१
धनम् - २०८
धनुः - ४३०
धाता - ४६६
धातु - १३६
धान्यम् - १७
धाना - ३०९
धिषणा - ४११
धुनिः - ३०८
धूः - १७
२०७
धेना - ३६६
धेनुः - ४७३
नक्ता - ४१७
नक्षत्रम् - २६
नक्षत्राणि - २३४
नक्षदाभम् - ३४२
नदः - २९५
नदी - २०
१८४
नना - ३४६
नमः - १७५
नर्यः - ४७२
नरकम् - १३२
नराः - २९१
नराशंसः - ४१४
नव - २१०
नवम् - २३२
नसति - ४०४
नाकः - १७४
नाधः - १४९
नाभिः - २७१
नाम - २८२
नाराशंसः - ४२७
नारायणः - ३४
नासत्यौ - ३५९
नासिका - ३६६
निर्ऋतिः - १६५
निघण्टुः - १२१
निचुम्पुणः - ३१७
निधा - २४६
निधिः - १५
१५९
निर्णीतम् - २३१
नियुतः - ३२९
निश्रृम्णाः - ३४२
निमिषी - ३१५
निषादः - २९४
नीचायमानम् - २७५
नीचैः - २७४
नूचित् - २६५
नेमः - २३४
नैतोश - ४८८
नोधा - २६२
नौ - ३२२
नंसन्तें - २६२
पचता - ३६४
पड्भिः - २९७
पण्डुकः - ३८८
पणिः -
पतिः - १८
पथ्या - ४७४
पदवी - ४९२
पदि - ३१७
पन्था - १९०
पपुरिः - ३२३
पयः - १६१
पर्वः - १३८
पर्वतः - १३८
पर्शुः - २४८
पर्जन्यः - ४५१
पराशरः - ३८५
परुषः - १६४
परुच्छेपः - ४६०
परुष्णी - ४३७
पलाशम् - ४८४
पविः - ३०१
४८४
पवित्रम् - १६,१९
३०३
पवीरवान् - ४८५
पशुः - २२२
पंक्तिः - ४६
४००
पंच - २०५
पाकः - २१५
पाजः - ३५६
पणिः - १७९
पाणिः - १८८
पात्रम् २९३

पाथः - ३४८
पापः - २९४
पादः - १६५
पादुः - ३१८
पार्श्वम् - २८७
पाशः -
पाश्या - २४७
पांसवः - ४८२
पिजवनः - १८५
पिता - २७१
पितुः - ४३५
पिनाकम् - २३६
पिपर्ति - ३२२
पिपीलिका - ४०२
पियारुम् - २७७
पिशुनः - ३५६
पुत्रः - १६९
पुमान् - ४३०
पुरन्धिः - ३५९
पुराणम् - ३३
२३२
पुरीषम् - १८३
पुरुषः - १३३
पुरुहुतम् - ३४०
पुरुरवा - ४६१
पुरोहितः - १७१
पुलुकामः - ३४३
पुष्करम् - ३१२
पुष्पम् - ३१३
पूषा - ४८२
पेशः - ४१७
पैजवन - १८५
पृतनाज्यम् - ४३४
पृथक् - ३२४
पृथिवी- १८,३४
१३४
पृथु - १५२
पृथुश्रया - ३०३
पृश्निः - १७३
पृष्ठम् - २४७
पूषत - १५२
प्रकर्लवित् - ३४७
प्रजापतिः - ४६०
प्रन्तम् - १४२
प्रतद्वसू - ३७३
प्रथमः - १८२
प्रधनः - ४३४
प्रधि - २८४
प्रपित्वे - २३२
प्रस्कण्वः - २२४
प्रसितिः - ३५७
प्रियमेधः - २२४
फल्गु - ३५
बकुरः - ३७९
बत - ३८१
बन्धुः - २७१
बलः - ३३९
बलम् - २०८
बध्याम् - ३०९
बहुः - २१५
वाट्यः - १४७
बालः - ४२७
बाहुः - २०५
बिन्दु - १४६
बिलम् - १७९
बुध्नम् - ४६०
बुन्दः - ३८९
बुसम् - ३१८
बेकनाटा - ३८०
ब्रजः - ३३९
ब्रह्मणस्पतिः - ३०
४५२
ब्रह्मा - १२८
बृहत् - १२७
बृहती - ४००
बृहस्पति - ३०
४५१
भगः - २२१
भद्रम - २५७
भन्दना - २९४
भर्ता - ४०
भरः - २७४
भरतः - ४३
भरुजा - १५१
भाऋजीकः - ३४४
भारती - ४१८
भारद्वाजः - २८
२२६
भ्राता - २८०
भीमः - १३७
भीष्मः - १३७
भुरण्युः - ४८३
भूरिः - १६४

भृगुः - २२४
भूमिः - ३७२
भूम्यश्वः - ४३५
भगन्दः - ३८८
मघम् - १५
१२६
मघवान् - २५
मण्डः - ४२५
मण्डूकाः - ४२४
मत्सरः - १६१
मत्स्याः - ३८०
मधु - १४९
४५७
मधुच्छन्दा - २७
मन्त्राः -
मन्दी - २७६
मन्दू - २५८
मन्द्रजिह्वम् - ३७८
मन्युः - ४५७
मनस् - २५२
मनुः - ४८५
मनुष्यः - २०२
मर्यः - २१९
मर्या - २४६
मर्यादा - २४६
मरुद्वृधा - ४३७
मरुत्वान् - २५५
मरुतः - ४६७
महान् - २१६
महिव्रतः - २२६
मंगलम् ४२३
मातरिश्वा - ४०६
माता - १६६
मात्रा - २७८
मादुषः - २४
मानुषः - २४
मासः - २८४
मांसम् - २५०
मांसः - ४१
मित्रः - ४५४
मिथुनौ - ४०७
मुक्षीजा - ३१७
मुञ्जः - ४२५
मुद्गलः - ४३४
मुष्टिः - ३३७
मुसलम् - ४४१
मुहुः - १८६
मूर्धा - ४०७
मूलम् - ३४०
मूषिका - २५३
मेघः - १४८
मेदः - २५०
मेधा - २२९
मेधावी - २३०
मेना - २३६
मेषः - २२२
मेहना - २५१
मौजवतः - ४२५
मृगः - १३६
मृदु - १५२
मृत्युः - ३२
४६६
यक्षः - ३४
यकृत् - २५०
यज्ञः - १३
२३०
यजुः - ३९८
यमः - ४५४
यमुना - ४३६
यह्वः - ४१५
यादृश्मिन् - ३६३
युवा - २६८
यूथम् - २७५
योनिः - १८०
योषा - २२०
रक्षः - २६७
रजः - २६८
रजिष्ठम् - ४१९
रज्जुः - १४७
रथः - ४२८
रथर्यति - ३८३
रम्भः - २३६
रयि - २६५
रराण - १७१
ररिवान् - २७९
रश्मिः - १७५
रसा - ४७०
रंशु - ३६७
राक्षसः - ३४
राका - ४७१
राजन् - २२
राजपुरुषः - १५८

राजा - ३५,४२
१४४
राट् - ४८७
रात्रिः - १८०
राधः - २५२
रामः -३६,३७
४०
रामा - ३६
४८०
रावणः -३८,४०
राष्पिनः - ३७२
रिशादसः - ३६०
रिहन्ति - ४५९
रुजानाः - ३४४
रुद्रः -१८,३२
३६,४४
४४७
रुषत् - १८१
३६०
रूपम् - १५९
२१७
रेक्णः - १९९
रोदसी - ३३७
४७४
रोधः - ३३८
लक्ष्मणः - ३७
लक्ष्मीः - २५७
लाजा - ३५२
लांगलम् - ३७९
लांगूलम् - ३८०
लिबुजा - ३८२
लोधम् - २६०
लोम - २०२
लोष्टः - ३३८
वक्षः - २६२
वज्रः - २१४
वधू - १४९
वनम् - ४१२
वनस्पतिः - ३१
४११
वनर्गू - २१७
वनुष्यति - २९४
वम्री - २३५
वयः - १६३
वयाः - १२३
वयुनम् - ३१३
वर्णः - १५९
वर्तनिः - २०
वर्पः - ३०४
वर्षा - २८३
वर्हणा - ३७०
वर्हिः - ४१५
व्रतम् - १७२
व्रततिः - ३८२
व्रन्दी - ३१५
व्रा - २९८
वरः - १२५
वराहः - २९८
वरीयः - २०
४१५
वरुणः - ४४७
ववक्षिथ विवक्षसे-२१६
वव्रिः - १६६
वस्त्रम् - २७३
वसवः - ४८६
वंशः - ३००
वाक् - १८३
वाचस्पतिः - ४५४
वाजगन्ध्यम्- ३१३
वाजस्पत्यम् - ३१३
वाणी - ३३९
वातः - ४५९
वाताप्यम् - ३८२
वामम् - ३८६
वामदेवः - २८
वायः - ३८३
वायुः - ४४६
वार्यम् - २९२
वारवन्तम् - १३६
वारि - ४२३
वावशानः - २९१
वाशीः - २६३
वास्तोष्पतिः - ४५३
वास्तु - ४५३
वासरम् - २५५
वाहः - २६४
वाहिष्टः - २९१
व्यन्तः - २६९
व्यासः - ३९
व्याघ्रः - २२९
विकटः - ३८५
विजामातृ - ३५२

वितस्ता - ४३८
बितरम् - ४१५
विदथानि - ४४९
विधवा - २१८
विधाता - ४६६
विपाट् - ४३८
विभीदकः - ४२६
वियात - २१३
वियुते - २७७
विराट् - २४
४०१
विरूपः - २२६
विल्मम् - १३५
विल्वम् - १३४
विवस्वान् - ४०६
विश्चकद्राकर्षः - १५८
विश्वामित्रः - ४९
१८५
विश्वकर्मा - ४५६
विश्वेदेवा - ४८६
विश्रवा - ३८
विष्टप् - १७४
विष्णुः -१७,३२
३५,४८२
विष्पितः - ३७२
विषम् - ४८३
विसम् -
विस्रुहः - ३४१
विंशतिः - २११
वीभत्सुः - ४१
वीरः - १२७
वीरिटम् - ३२८
वीरुधः - ३४१
वेदः - ४९२
वेनः - ४५९
वैतसः - २३७
वैखानसः - २२६
वैश्वानरः - ४०६
बैश्रवणः - ३८
वृक्षः - १६३
वृकः - ३१८
३७९
वृत्रः -२५,४४
१७९
वृन्दम् - ३८९
वृवदुक्थमः - ३४३
वृवूकम् - १८३
वृषलः - २२३
वृषभः - २५६
वृषाकपिः - ४८४
वृषाकपायी - ४८९
श्मश्रः - २०१
श्मशानम् - २०१
श्मशा - ३१०
श्लोकः - ४२७
श्यामम् - २४९
श्येनः - २७५
श्वः - १२४
श्वघ्नी - ३२१
श्वा - २२८
श्वात्रम् - २९६
श्वेत्या - १८१
शक्वरी -२५,४५
१२८
शकटम् - ३७३
शकुनिः - ४२३
शतम् - २११
शन्तनुः - १७०
शम्बः - ३२३
शर्या - २९९
शरः - २९९
शरद् - २८०
शरारु - ३८७
शरीरम् - २८
१७७
शल्मलिः - ४७९
शवः - १५६
शवति - १५५
शशमानः - ३५१
शारवा - १२४
३८९
शाशदानः - ३६५
शिताम - २४९
शिति - २५०
शिपिविष्टः - ३०४
शिमी - ३०८
शिरः - २५८
शिरिविठः - ३८४
शिश्नम् - २७०

शिशिरम् - १३२
शिशीते - २६७
शिशुः - ४५९
शीरम् - २६०
शुक् - ३३६
शुक्रम् - ४१७
शुचि - ३३६
शुतुद्री - ४३६
शुन्ध्यु - २६२
शुनासीरौ - ४४२
शुरुधः - ३६४
शुष्मम् - १८४
शूर्पम् - ३५३
शूरः - २५९
शेपः - २३७
शेषः - २००
शेवः - ४५३
शंभुः - २९७
शंयुः - २७२
श्रद्धा - ४४०
श्रवः - ४०६
श्रायन्तः - ३४९
श्रुष्टी - ३५९
श्रेणिः - २६०
श्रोणिः - २४८
श्रृंगम् - १६४
षट् - २८४
स्कन्धः - ३६९
स्तः - १४३
स्तेनः - २३१
स्तोता - २३०
स्तोकाः - १४७
स्तृभिः - २३५
स्त्री - २३६
स्तिपा - ३६८
स्तिया - ३६८
स्तुकः - ४७२
स्तूपः - ४५८
स्तोमः - ३९७
स्थाणुः - १३५
स्थूरः - ३७४
स्नुषा - ४७९
स्यम् - ३५३
स्यालः - ३५२
स्योनम् - ४१६
स्वः - १७३
स्वसा - २२१
४७२
स्वस्ति - २३८
४७४
स्वसराणि - २९९
स्वञ्चा - ३०४
स्वम् - ३२१
स्वाहा - ४२०
स्वर्कः - ४६७
स्वर्काः - ४८७
सक्तुः - २५६
सक्थि - ४३२
सखा - ४९१
सगरः - ३७
सचा - ३०२
सत्यम् - २१७
सतः - २३३
सदान्वे - ३८४
सन्ति - १४३
सप्त - २८१
सप्तपुत्रम् - २८१
सप्तऋषयः - ४८५
सपः - ३१६
सप्रथाः - ३४९
सम्वत्सरः - २८२
समानम् - २७८
समुद्रः -२६,४४
१६७
समनम् - ४०४
समम् - ३२२
समद् -४०३०
समिद् - २९
सर्वम् - १८५
सर्वदमनः - ४३
सस्मिन् - २९०
ससम् - २९७
सरस्वती - ४३६
सरमा - ४७०
सरण्यू - ४८०
सविता - ४५७
सवीमनि - ३४९
सललूकम् - ३४०
सहस्रम् - २११
सहस् - १४
साध्याः - ४८६
सानुः - १८४
साम - ३०

३९८
सामि - ३७८
सिकता - १४८
सिन्धुः - ३२८
सिनम् - ३०१
सिनीवाली - ४७१
सिलिकमध्यम-२५८
सिंहः - २२८
सीमा - १२७
सीमिका - २३५
सुखम् - २१६
सुग्रीवः - ३७
सुतुकः - २६७
सुदत्र - ३६१
सुपर्णः - २१५
२४७
सुप्रायणा - २६७
सुभर्वम् - ४३३
सुमत् - ३७४
सुरा - १३२
सुविदत्र - ३६१
३९६
सुविते - २६४
सुशिप्रः - ३६५
सुषोमा - ४३९
सूची - ४७१
सूर्यः - ३२
४८१
सूर्या - ४७८
सूर्ते - ३६२
सेना - १६८
सैंहिकेयः - ३५
सोमानम् - ३५३
सोमः - १४
४६४
संका - ४३०
सग्रामः - २०८
संचयः - ३२६
सृणिः - ३२९
सृप्रः - ३६५
ह्यः - १२५
ह्नू - ३६६
हर्यति - ४०५
ह्रदः - १३१
ह्रस्वः - २१५
हरः - २६९
हरयाणः - ३१५
हरिः - २७०
हविर्धाने - ४४१
हस्तः - १२७
हस्तघ्नः - ४३०
हासमाने - २९६
हिनोत - ३७३
हिमम् - २८३
हिरण्यम् - १६६
हिरण्यगर्भः - ४५५
हिरण्यस्तूपः - ४५८
हिरण्मयः - २८
हेति - ३४१
हेमन्तः - २८३
होता - ४०४
हंसः - २६०
४९३